महर्षि व्यासदेवप्रणीतम्

मार्कण्डेय महापुराणम्

अनुवादक-सम्पादक :

डॉ० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री

साहित्य भण्डार
सुभाष बाज़ार, मेरठ-250002

6·3

महर्षि व्यासदेवप्रणीतम्

मार्कण्डेय महापुराणम्

अनुवादक-सम्पादक :

डॉ० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री

काव्यतीर्थ, वेदान्ताचार्य

एम० ए०, एम० ओ० एल०, पी-एच० डी०

भूतपूर्व प्राचार्य

पौराणिक एवं वैदिक शोध संस्थान, नैमिषारण्य

भूमिका लेखक :

डॉ० विष्णुदत्त राकेश

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०

साहित्य भण्डार

शिक्षा साहित्य प्रकाशक

सुभाष बाज़ार, मेरठ-२५०००२

प्रकाशक :
रतिराम शास्त्री
साहित्य भण्डार
सुभाष बाजार, मेरठ।
दूरभाष : ७७९५४

प्रथम संस्करण १९८३

मूल्य : १२५–०० रुपये केवल

मुद्रक :
राजबल शर्मा
अरविन्द प्रिंटिंग प्रैस,
मेरठ।
दूरभाष : ७४४७५

'समर्पण'



महाभावस्वरूपा, वागर्थमयी पूज्या माता
आनन्दमयी की प्रेरणा से अनूदित
एवं प्रकाशित प्रथम-पुराण-प्रसून
"मार्कण्डेय पुराण" उनकी
पुनीत स्मृति में—
श्रद्धासहित समर्पित।

—धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री

प्राक्कथन

८ अक्टूबर, १९७९ को लगभग १० बजे पूजनीया माता आनन्दमयी जी ने अपने नैमिषारण्य स्थित आश्रम में सन्देश भेजकर मुझे बुलाया। वे कोई विशेष बात करना चाहती थीं। मैं तुरन्त वहाँ गया और प्रणाम करके उनके पास ही बैठ गया। भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डा० त्रिगुणसेन भी वहाँ उपस्थित थे। पुराण विषयक चर्चा चल पड़ी। इसी चर्चा प्रसंग में मैंने उनसे निवेदन किया कि 'आपने यहाँ नैमिषारण्य के आश्रम में एक पुराण-मन्दिर की स्थापना की है, जिसमें पुराण-पुरुष की मूर्त्ति भी स्थापित है। मन्दिर में प्रायः नित्यप्रति पुराण पाठ भी चलता है। परन्तु पुराणों के सम्बन्ध में स्थिति यह है कि कुछ को छोड़कर अधिकांश पुराण बाजार में उपलब्ध नहीं हैं। यदि यही स्थिति रही तो भारतीय वाङ्मय एवं संस्कृति का एक अति महत्त्वपूर्ण अङ्ग दुर्लभ हो जायगा। इसकी संरक्षा एवं जनसामान्य के लिए उपयुक्त मूल्य पर सुलभ बनाने के लिए कोई ठोस उपाय करना चाहिए। आपके आशीर्वाद से यह कार्य सुकर बन सकता है।' परमपूज्या माताजी ने मेरी बात को बड़े अवधानपूर्वक सुना और पुराणों को सुलभ बनाने की दिशा में कार्य करने के लिए मुझे प्रेरित किया और इस कार्य की पूर्ण सफलता के लिए उन्होंने मुझे अपना आशीर्वाद दिया। डा० त्रिगुणसेन ने, जो मेरे पास ही बैठे थे, इस विषय में विशेष रुचि दिखायी। उनके परामर्श के अनुसार पुराणों के प्रकाशन के सुमहत् कार्य की योजना को अनेक चरणों में कार्यरूप में परिणत करने का विचार किया गया। यह निश्चय किया गया कि सभी पुराण शुद्ध मूल पाठ के साथ, उपयोगिता की दृष्टि से पहले हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित किए जाएँ और तदन्तर अंग्रेजी अनुवाद के साथ। डा० त्रिगुणसेन के अनुरोध से समस्त योजना को लिपिबद्ध करके मैंने उन्हें दिखाया। उनका समर्थन और प्रोत्साहन प्राप्त करके मेरे उत्साह में और वृद्धि हुई। परमपूजनीया माताजी की इच्छा से सर्वप्रथम मार्कण्डेय पुराण के हिन्दी में अनुवाद के कार्य को हाथ में लिया गया। मेरे आयुष्मान् पुत्र डा० राकेश शास्त्री प्राध्यापक गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार के सहयोग से पूर्ण तो हुआ, किन्तु अनेक अपरिहार्य बाधाओं के कारण १९८१ के मध्य में आकर सूत्र टूट सा गया। परन्तु उसका अथक परिश्रम फलीभूत हुआ।

प्रैस-कापी तैयार कर लेने पर भी, इसके प्रकाशन की समस्या भी कम गम्भीर नहीं थी। संस्कृत पुस्तकों के प्रमुख प्रकाशक, साहित्य भण्डार, मेरठ के स्वामी श्री रतिराम शास्त्री के समक्ष मैंने अपनी योजना प्रस्तुत की। मेरी प्रकाशन योजना को उन्होंने अपना समर्थन दिया तथा आर्थिक साधनों के अनतिसुलभ रहने पर भी, सोत्साह मार्कण्डेय पुराण को प्रकाशित करने का उन्होंने वचन दिया, जिसका मूर्तरूप आज आपके हाथों में है। श्री रतिराम शास्त्री के इस महनीय कार्य के लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। मार्कण्डेय पुराण तो 'पुराण-प्रकाशन-ग्रन्थमाला' का प्रथम पुष्प है। हमें विश्वास है कि श्री शास्त्री जी इस माला के सभी पुष्पों के प्रकाशन-पर्यन्त अपने पुनीत उत्साह को क्षीण नहीं होने देंगे। इस पुराण के सुन्दर मुद्रण के लिए अरविन्द प्रिंटिंग प्रैस, मेरठ के स्वामी श्री राजबल शर्मा तथा उनके सुपुत्र महेश चन्द्र शर्मा का अनुगृहीत हूँ।

इस मार्कण्डेय पुराण की भूमिका मेरे परमप्रिय शिष्य और बन्धु डॉ० विष्णुदत्त राकेश, प्राध्यापक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने लिखी है। वे इस विषय के अधिकारी विद्वान् हैं। साहित्यजगत् उनके वैदुष्य से सुपरिचित है। वे मेरे इस कार्य में सहयोगी बने हैं। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। इस पुराण के मुद्रण-काल में प्रूफ के संशोधन का कार्य मेरे प्रिय शिष्य और छोटे भाई डॉ० प्रेमदत्त चमोली ने किया है। मैं उनका भी आभार मानता हूँ।

इसके मुद्रण में जो अशुद्धियाँ रह गयी हों, उनके लिए मैं पाठकों से क्षमा चाहता हूँ। यदि कृपा करके वे सूचित कर देंगे तो अगले संस्करण में उनका परिहार कर दिया जायेगा।

मकर संक्रान्ति, २०३९ वि०

१४–१–१९८३

विद्वज्जनवशंवद,

धर्मेन्द्र शास्त्री

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

अष्टादश पुराणों में मार्कण्डेय की गणना सप्तम स्थान पर की गई है।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तम्। (मा० १३७।९)

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथान्यं तथा नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्। (विष्णु ३।६।२१)

श्रीमद्भागवत के द्वादशस्कंध के तेरहवें अध्याय में पुराणों की श्लोकसंख्या की गणना की गई है। वहाँ भी ब्राह्म; पाद्म, विष्णु, शिव, भागवत तथा नारद के बाद मार्कण्डेय को परिगणित किया गया है।

ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम्।

दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्च चतुःशतम्।४।५

पद्म पुराण में की गई पुराणगणना के अन्तर्गत भी मार्कण्डेय को सप्तम ही कहा गया है।[1] पुराणों के क्रम में मार्कण्डेय का उक्त क्रम सोद्देश्य कहा जा सकता है। प्रकृतिस्वरूपिणी देवी ही क्योंकि इस विश्व की मूल प्रेरिका शक्ति है और इसी मत का प्रतिपादन करना मार्कण्डेय का लक्ष्य है।[2] अतः घट और ब्रह्माण्ड के भीतर निहित प्राण तथा अग्निरूपा शक्ति का संकेत कराने वाला पुराण मार्कण्डेय है, और ठीक इसी मत का समर्थन करता है, अग्नि पुराण, जो क्रम में आठवाँ है तथा मार्कण्डेय के बाद आता है। मूर्त्तिरहस्य में देवी की अंगभूता ७ शक्तियों का उल्लेख किया गया है। मार्कण्डेय पुराण के ९१ वें अध्याय में प्रकृति रूपा देवी ने अपनी विकृतियों का सप्तधा उल्लेख किया है। नंदा, रक्तदन्तिका, शताक्षी, शाकम्भरी, दुर्गा, भीमा तथा भ्रामरी रूप से उल्लिखित इन ७ अवतारों का प्रतिपादन करने के कारण ही मार्कण्डेय का क्रम सातवाँ कहा जा सकता है। यही नहीं, मार्कण्डेय में सप्त माताओं के युद्ध का वर्णन भी मिलता है। योगिनी तंत्र में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्रावी तथा चामुण्डा को सात माताएँ कहा गया है।

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा बाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा सप्तमातरः।

मार्कण्डेय में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी तथा नारसिंही को सप्त माताएँ बताया गया है क्योंकि काली चण्ड मुण्ड का वध करने के कारण चामुण्डा कही गई है, अतः चण्डिका, चामुण्डा उसी के रूप हैं और इसीलिए शेष शक्तियों को ही पुराणकार ने सप्तमातृका बताया है। सप्तमातृका प्रधान होने के कारण भी इसका क्रम सातवाँ कहा जा सकता है।

मातृकाओं में नारसिंही का स्थान चामुण्डा ने क्यों ले लिया? इसका कारण यह है कि मूर्त्तिनिर्माण में कलात्मकता को बढ़ावा देने के कारण नारसिंही गौण हो गई। विष्णु धर्मोत्तर तथा रूपमण्डन में भी ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी तथा चामुण्डा का ही उल्लेख मिलता है। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में (५७ अध्याय) लिखा है कि 'यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम्' अर्थात् सभी मातृकाएँ अपने पति के वाहन तथा आयुध से युक्त होती हैं। मार्कण्डेय पुराण भी यही कहता है —

यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम्। तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ। ८८।१४

प्राचीन भारतीय मूर्त्ति विज्ञान की पाँचवीं शती पूर्व जानकारी मार्कण्डेय को है। पाँचवीं सदी के गुप्त सम्राट् प्रथम कुमारगुप्त के गंगाधर लेख में मातृका मन्दिर को 'वेश्मात्युग्रम्' कहा गया है। इलोरा, राजपूताना, एलिफेन्टा तथा उड़ीसा के अतिरिक्त मध्य प्रदेश के भेराघाट से पुराणोक्त मातृका मूर्त्तियाँ प्राप्त हुई हैं। नारसिंही की एकाकी प्रतिमा केवल बंगाल से मिली है।

---

१. तथैव नारदीयं तु मार्कण्डेयं तु सप्तमम्—पद्म उ० २३६।१४

२. सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या। (मा० ८४।७)

अथर्वशीर्ष में देवी के लिए 'वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्' पंक्ति आई है। वैरोचन अग्नि का नाम है। अग्नि के स्थान मणिपूर में इसका ध्यान किया जाता है। वज्रानाड़ी में प्रवाह होने से इनकी संज्ञा वज्रवैरोचनीया भी है। अतः लक्षणा से मातृकाओं को अग्नि की सप्त जिह्वाएँ भी समझा जा सकता है। मुण्डकोपनिषद् में काली, करालो, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरुचि देवी को अग्नि की सप्त जिह्वाएँ बताया गया हैं।[1] इनमें प्रत्येक क्रमशः चामुण्डा, वाराही, कौमारी, ब्राह्मी, वैष्णवी, माहेश्वरी तथा ऐन्द्री की प्रतीक कही जा सकती हैं। इन सप्त जिह्वाओं की विशद व्याख्या मार्कण्डेय के ९९ वें अध्याय के ५२ से लेकर ५८ तक श्लोकों में की गई है। भूति ऋषि के शिष्य शान्ति अग्नि की स्तुति करते हुए कहते हैं कि कला, काष्ठा और निमेष आदि काल के मानकों के रूप में तुम जगत् को परिणाम रूप में प्रस्तुत करने वाले हो। यह सम्पूर्ण दृश्य तुम्हीं हो। तुम्हारी काली नामक जिह्वा काल को आश्रय देने वाली है। इस लोक के महान् भय से हमें बचाओ। कराली नाम की जिह्वा महाप्रलय की कारण रूपा है। इसके द्वारा हमें भय से बचाओ। मनोजवा लघिमा गुणस्वरूपा है। सुलोहिता सम्पूर्ण भूतों की कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। सुधूम्रवर्णा रोग नाश कर जगत् की स्थिति और पालन करने वाली है। स्फुलिंगिनी समस्त जीवधारियों की आधारभूता अथवा महाकाल-रूपा संहारिणी शक्ति है। विश्वरुचि नामक जिह्वा प्राणियों को कल्याण देने वाली है। हे देव, तुम्हारी जो सात ज्वालामयी जिह्वाएँ हैं, उनसे मेरी उसी तरह रक्षा करो जैसे पिता अपने पुत्र की रक्षा करता है। भूति मुनि के पुत्र भौत्य एक मन्वन्तर के स्वामी हुए। क्योंकि कर्मफल अग्नि द्वारा ही प्राप्त होता है। अतः अग्नि और दुर्गा में साम्य माना गया।[2] यही नहीं क्योंकि अग्नि कला, काष्ठा आदि के रूप से क्रमशः परिणाम (अवस्था परिवर्तन) की ओर ले जाने वाली तथा विश्व का उपसंहार करने की सामर्थ्य वाली है अतः वह प्रकृतिरूपा है, नारायणी है।[3] देवी स्तुति में कहा भी गया है—

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनी, विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते। मा० ९१।८

मातृकाओं की उपलब्ध मूर्त्तियों में अंकस्थ शिशु का दृष्टिगोचर होना इसी स्तोत्र का प्रभाव है। मार्कण्डेय में क्योंकि सप्तजिह्वारूप कालाग्निरूपा प्रकृति का वर्णन किया गया है। अतः पुराणक्रम में इसका स्थान सातवाँ रखा गया है।

यत्ते वह्ने शिवरूपं ये च ते सप्तहेतयः। तैः पाहिनः स्तुतो देव पितापुत्रमिवात्मजम्। मा० ९९।७०

भयावह अग्निजन्य त्रास के त्राणार्थ ही पिता पुत्र सम्बन्ध या मातृवात्सल्य की कल्पना पुराणकार ने की है। यहाँ सप्त जिह्वाओं में सप्त हेतु की कल्पना भी सहेतुक है। श्वेताश्वतर में काल, स्वभाव, नियति,

---

१. काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा
स्फुलिंगिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः। मु० १।२।४

२. स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती प्रसादात् लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन। मा० ८४।१६

३. कला काष्ठानिमेषादिरूपेणाऽसि जगत्प्रभो।
त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान्।
या जिह्वा भवतः काली काल निष्ठाकारी प्रभो।
कराली नामया जिह्वा महाप्रलयकारणम्।
मनोजवाचया जिह्वा लघिमा गुण लक्षणा।
करोति कामं भूतेभ्यो या ते जिह्वा सुलोहिता।
सधूम्र वर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदाहिका।
स्फुलिंगिनी च या जिह्वा यतः सकलपुद्गला।
या ते विश्वा सदा जिह्वा प्राणिनां शर्मदायिनी। मा० ९९।५२–५८

यदृच्छा, भूत, प्रकृति और पुरुष को जगत् का हेतु मानने या न मानने का विचार किया गया है—

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या ।

यह उपनिषद् शिव-शक्ति प्रधान है। अतः शाक्तवादियों ने उक्त सात हेतुओं को एक शक्ति में ही निहित मानकर शक्ति से जगत् का परिणाम मान लिया। उपनिषद् में कहा भी गया है कि उन श्वेताश्वतर आदि ऋषियों ने ध्यानयोग द्वारा सत्त्व, रजस्, तमस्, एवं उनके कार्य कालादि रूप अपने गुणों से ढकी हुई परमात्म शक्ति का दर्शन किया।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्। (श्वे० १।१।३)

इसी त्रिगुणात्मिका शक्ति को मार्कण्डेय में मूल कारण बताया गया है।

सृष्टि-स्थिति-विनाशानां शक्तिभूते सनातनि, गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते। ९१।११

ब्रह्मवैवर्त में इसी सिद्धान्त का अनुकरण करते हुए कहा गया है—

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी। त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका। २।२६

ऋग्वेद में 'रुद्राय क्रूराय अग्नये'–(१।२७।१०) तथा 'त्वमग्नेरुद्र'–(२।१।६) कहकर अग्नि को रुद्र तथा काल कहा गया है। इन्हीं पूर्ण संवित्स्वभाव वाले रुद्र की शक्ति को तंत्रागमों में काली, कर्षणी, चण्डी, वाणी, भोगा, हकू तथा नित्या नाम दिया गया है। इनका समीकरण भी सप्त मातृकाओं से बैठाया जा सकता है। शतपथ में 'रुद्रो वै अग्निः' कहा जा चुका है।

विवेच्य पुराण का प्रतिपाद्य सप्तसती आख्यान है। सप्तसती प्रधान होने से भी इसके सप्तम क्रम की पुष्टि हो जाती है। त्रिकालाबाधित सत्य रूपा होने के कारण शक्ति को सती कहा गया है।[१] प्रथम चरित्र में सती के काली, तारा, छिन्नमस्ता, सुमुखी, भुवनेश्वरी, बाला तथा कुब्जा इन सात रूपों का चित्रण किया गया है। मध्यम चरित्र में लक्ष्मी, ललिता, काली, दुर्गा, गायत्री, अरुन्धती तथा सरस्वती नामक सात सतियों का उल्लेख है। उत्तर चरित्र में ब्राह्मी आदि सप्त मातृकाओं का निरूपण है। इस प्रकार २१ सती समष्टि रूप में नंदा, शताक्षी, शाकंभरी, भीमा, रक्तदन्तिका, दुर्गा तथा भ्रामरी सप्तक के रूप में शेष रह जाती हैं। इन सप्त सतियों का निरूपक होने के कारण ही मार्कण्डेय सातवाँ पुराण कहा जाता है। परम्परा से प्राप्त एक श्लोक में यही भावार्थ निहित बताया गया है—

उपास्या देवता जातास्ताश्चात्र ब्रह्मणा स्तुताः तस्मात्सप्तसतीत्येव व्यासेन परिकीर्त्तिता।

और अन्त में इस पुराण के वक्ता मार्कण्डेय क्योंकि सप्त कल्पान्त जीवी रहे, अतः गणना में यह पुराण सप्तम कहा गया है।

मार्कण्डेय ऋषि और पुराण का नामकरण

इस पुराण में वर्णित मूल कथाओं के वक्ता मार्कण्डेय ऋषि हैं। अतः वक्ताओं की दृष्टि से इसका नाम मार्कण्डेय हुआ। इस पुराण की महत्ता इस बात से भी प्रमाणित हो जाती है कि कल्पतरु में इस पुराण के १२० श्लोक योग-विषय में उद्धृत किए गए हैं। अपरार्क ने दानादि के विषय में इसके ८५ उद्धरण दिए हैं। पुराण का वर्तमान रूप पाँचवीं शती से पूर्व स्थिर हो गया था तभी वराहमिहिर ने मातृका निर्माण के लिए इसी पुराण की मान्यता आधार रूप में स्वीकार की। जोधपुर से उपलब्ध दधिमती माता के शिलालेख में इस पुराण का 'सर्व मंगलमांगल्ये' श्लोक उद्धृत है इसका समय २८९ दिया गया है जिसे भंडारकर गुप्त संवत मानते हैं।

---

१. नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया सर्वमिदं ततम्। मार्कण्डेय ८१।४८

२. यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके। ८१।६३
एतत् पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन् किलान्तरे। भा० १२।८।१५

६०८ ई० सन् में लिखा गया यह अभिलेख इस पुराण को ६०० ई० प्राचीनतर बताता है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस अनुमान की पुष्टि करते हुए लिखा कि मध्य एशिया की सीमा (यारकन्द) नदी से लेकर दक्षिण की गोदावरी तक एवं मेरु या पामीर से लेकर दक्षिण पूर्व समुद्र तट के मंदराचल तक का भौगोलिक क्षितिज मार्कण्डेय के इन वर्णनों की पृष्ठभूमि में है। गुप्तकालीन सम्राटों ने जिस भू भाग का पुनः उद्धार किया था वह भी लगभग इतना ही था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के महरौली स्तंभ लेख में वाल्हीक तक के प्रदेश को युद्ध में जीत-कर उसका उद्धार करने का स्पष्ट उल्लेख आया है। श्रीवत्सधारी नारायण यहाँ भागवत धर्म के प्रतीक हैं, उनकी कुक्षि का भौगोलिक विस्तार उस प्रदेश को सूचित करता है जहाँ गुप्त राजाओं के प्रभाव से भागवत धर्म की पुनः स्थापना हुई। यही उस समय की राष्ट्र और नगरों से आकीर्ण पृथ्वी थी जो मार्कण्डेय के दृष्टिपथ में आई।[1]

भृगु के पुत्र मृकण्डु की पत्नी मनस्विनी के गर्भ से मार्कण्डेय का जन्म हुआ।[2] मृकण्डु ऋषि ने अपने पुत्र के सभी संस्कार समय-समय पर किए। मार्कण्डेय जो विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके तपस्या और स्वाध्याय से सम्पन्न हो गए। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया था। कमण्डलु, दण्ड यज्ञोपवीत और मेखल", धारण करते थे। काला मृगचर्म, रुद्राक्ष और कुश ही उनकी पूंजी थी।[3] तपस्या और उपवास में तत्पर रह कर उन्होने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली, जिसको जीतना बड़े-बड़े योगियों के लिए दुष्कर है।[4] इनकी गणना सप्त चिरंजीवियों में की जाती है। सिद्धाचार्यों के साथ ये पृथ्वी पर घूमते रहते हैं।[5] प्रारम्भ में इनकी आयु कम थी किन्तु शिव की उपासना से इन्होंने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली थी। पद्म पुणाण में मार्कण्डेय ने कहा है—

रुद्र पशुपतिं स्थाणुं नीलकंठमुमापतिम् नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति। प० उ० २३७७५-९०

मत्स्य पुराण में भी ईश्वरीय कृपा से ही इनके दीर्घ जीवी होने का साक्ष्य मिलता है।

आयुः प्रदाता पौराणः किं मान्त्वन्नोपसर्पसि। १६६।४२

मार्कण्डेय पाशुपतव्रती थे। इसका समर्थन सूर्य पुराण भी करता है।

वामदेवश्च मैत्रेय मार्कण्डेय पुरोगमाः
कृष्णाजिनोत्तरीयास्ते जटिला भस्मभूषिताः
रुद्रा इव महात्मानो वेद वेदाङ्गपारगाः।२६।११-१२

शैव-वैष्णव विचारधारा के संघर्ष में इन्होंने समन्वय का कार्य किया। हरिहर सम्प्रदाय के जन्मदाताओं में इनका उल्लेखनीय स्थान है। विष्णु को प्रत्यक्ष कर शंकर जी की प्रतिष्ठा की अनुमति इन्होंने ली। पुरुषोत्तम क्षेत्र में इनकी उदारता से ही शिव मदिरों की स्थापना हुई। रुद्र और विष्णु की एकता की प्रेरणा इन्होंने दी।

शैव भागवतानां च वादार्थं प्रतिषेधकम् अस्मिन् क्षेत्रवरे पुण्ये निर्मले पुरुषोत्तमे।

---

१. मार्कण्डेय पुराण: एक सांस्कृतिक अध्ययन पृष्ठ १६
२. मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः। भा० ४।१।४५
३. बृहद्व्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः, बिभ्रतकमण्डलुं दण्डमुपवीतं समेखलम् कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये।
४. एवं तपः स्वाध्यायपरः वर्षाणामयुता युतम्,
आराधयन् हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम्। भा०१२।८।११
५. कुमारो नारद ऋभुरंगिरा देवलोऽसितः, अपान्तिर तमो व्यासो मार्कंडेयोऽथ गौतमः एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः। भा० ६।१५।१२-१५

शिवस्याऽऽयतनं देव करोमि परमं महत् प्रतिष्ठेयं तथा तत्र तव स्थाने च शंकरम्। ब्रह्म पुराण ५७।६४-६५
शिवे संस्थापिते विप्र मम संस्थाऽगनं भवेत् नाऽऽवयोरन्तरं किंचिदेक भावो द्विधाकृतो।५७।६६

उत्तर मौर्यकाल में वासुदेवधर्मी वैष्णवों ने आजीवकों तथा पाशुपतानुयाइयों को अपने धर्म में मिला लिया था। पतंजलि ने महाभाष्य में इन्हें शैव भागवत कहा है। मत्स्य, वायु, ब्रह्म तथा भागवत में सात्मीकरण का यह प्रयत्न दृष्टि गत होता है। मार्कण्डेय और दत्तात्रेय में शिव-विष्णु की अभेदता की चेष्टा इसी तथ्य को परिलक्षित कराती है। हरिहर की मूर्त्तियों का निर्माण भारत में एकता का फल है। वामन पुराण के ५९ वें अध्याय में हरिहर मूर्त्ति का सुन्दर वर्णन मिलता है। इस संयुक्त मूर्त्ति को वृषाकपि भी कहा जाता है।[1] तन्त्रयान के ह्रासोन्मुख काल में वैष्णव प्रभाव समाज, साहित्य तथा कला पर व्यापक रूप से पड़ा। शैव-शाक्त मतावलंवियों ने भी वैष्णव प्रभाव स्वीकार कर लिया। लिंग पुराण में अम्बरीष को जो परम भागवत कहा गया है। सुदर्शन चक्र किसे नहीं मारता का उपदेश करते हुए मार्कण्डेय ने कहा है कि जिस घर में शिवलिंग का पूजन, चण्डी की प्रतिष्ठा तथा विष्णु की अर्चना होती है, वहाँ चक्र का प्रभाव नहीं होता—

अग्नि होत्रं गृहे येषां लिंगार्चा वा गृहेषु च, वासुदेव तनुर्वापि चण्डिका यत्र तिष्ठति।
दूरतो व्रजतान् हित्वा सर्व पाप विवर्जिताम्।४४।१७।२८

डा० वासुदेव उपाध्याय ने तो हरिहरमूर्त्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि बायाँ भाग हरि तथा दाहिना हर का है। जटा मुकुट, तथा किरीट से दोनों देवता के सिरोभाग स्पष्ट हो जाते हैं। कानों में सर्प, कुंडल तथा मकर कुंडल क्रमशः हरिहर के आभूषण रूप में प्रदर्शित हैं नंदी तथा गरुड़ दोनों वाहन अपने देवता के अधोभाग (चौकी) पर दिखलाई पड़ते हैं। बादामी की प्रतिमा विहार प्रदेश की हरिहर मूर्ति भिन्न रूप में प्रदर्शित है। चतुर्भुजी प्रतिमा में त्रिशूल तथा कपाल शिव के हाथों में तथा शंख एवं चक्र विष्णु के आयुध के स्थान पर छोड़े गए हैं। कलकत्ता संग्रहालय में उत्तर भारत से प्राप्त कई हरिहर मूर्तियाँ हैं। गुजरात तथा बड़ोदा से भी ऐसी ही प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं। खजुराहो की हरिहर प्रतिमा भी सुन्दर होने के कारण उल्लेखनीय हैं।[2] हरिहर क्षेत्र पटना के पास सोनपुर में गंगा और बड़ी गंडक के संगम पर कहा जाता है। वाराह पुराण में इसकी विशेष चर्चा है। इन्हें वृषाकपि कहने का भी विशेष प्रयोजन है विष्णु और शिव दोनों का ही यह शब्द वाचक है तथा वृषाकपायी उमा और लक्ष्मी दोनों के लिए व्यवहृत होता है।[3] अतः शिव-विष्णु के सात्मीकृत रूप के लिए इससे उपयुक्त और अभिधान नहीं हो सकता था। विष्णु और शिव दोनों के लिए वृषाकपि का प्रयोग पुराणों में भी मिलता है—

ततो विभुः प्रवरवराहरूपधृक् वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्र या। हरिवंश २१६.४७
वृषाकपिश्च शंभुश्च कपर्दी रैवतस्तथा। हरिवंश ३।५२

वस्तुतः वैदिक देवताओं के ('अग्निषोम, अग्नी-वरुण, द्यावापृथिवी, शुक्रामंथी) जोड़े पर पाणिनि के समय तक लोकदेवतायुग्मक शिववैश्रवणौ, हरिहरौ स्कन्दविशाखौ', संकर्षण वासुदेवौ' की चर्चा होने लगी। उत्तर कालीन देवताओं में हरिहर की एकता के पीछे शैव-वैष्णवों के विवाह का समाधान निहित है जो मार्कंडेय को शैव-वैष्णव धाराओं का समन्वय सेतु सिद्ध करता है। भागवत में मार्कण्डेय का यही रूप उद्भासित हुआ है। भागवत पुराण में उन्हें अग्नि होम करते हुए तथा विष्णु की उपासना करते हुए वैखानस आगमिक बताया है। नरनारायण की कृपा से ही उन्होंने मायादर्शन किया। इसी का परिणाम था कि शिव पार्वती उनके आश्रम में

१. हिन्दू धर्म कोश—डा० राजबली पाण्डेय पृष्ठ ७०१
२. प्राचीन भारतीय मूर्त्ति विज्ञान—पृष्ठ १३१
३. संस्कृत हिन्दी कोष—वामन शिवराम आप्टे—पृष्ठ ९७४

आए। शंकर जी ने भी उन्हें यही उपदेश दिया कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव एक हैं, इनमें भेद नहीं किया जा सकता।[1] मार्कण्डेय को शिव ने ही अजर अमर होने का वर दिया तथा पुराण का आचार्यत्व भी दिया।[2] तात्पर्य यह कि शैव मार्कण्डेय का भागवत पुराण में वैष्णवीकरण कर दिया गया उसी प्रकार जैसे मुद्रायोषिता के संग विहार करने वाले दत्तात्रेय का वैष्णव रूप उपलब्ध होता है। महाभारत के बन पर्व में धर्मराज युधिष्ठिर को धर्मोपाख्यान सुनाते हुए मार्कण्डेय ने वर्ण निर्णय पर अपना जो मन्तव्य दिया था वह उनके अतिवर्णाश्रमी रूप का ही समर्थन करता है। वह जन्मना की अपेक्षा कर्मणा ही वर्ण को स्वीकार करते हैं—

शूद्रयोनौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः
वैश्यत्वं लभते ब्रह्मन् ! क्षत्रियत्वं तथैव च
आर्जवे वर्तमानस्य ब्राह्मण्यमभिजायते। ११२।११, १२

भागवतों ने स्मार्त्तधर्म की प्रतिष्ठा की। वैखानस आगमों में उल्लिखित यति धर्म की रूपरेखा भी मार्कण्डेय के मुख से ही भीष्म पितामह ने सुनी थी। 'मार्कण्डेय मुखात् कृत्स्नं यति धर्म मवाप्तवान्' शान्ति पर्व ३८।१३। भागवत में भी वह नरनारायण के शिष्य बताए गए हैं जो दर्शन देते समय मृगचर्म, वल्कल, कुश, यज्ञोपवीत, कमंडलु, बाँस का दण्ड तथा वस्त्र की कूंची रखे हुए थे। वैखानसवादी पूर्णतया वैदिक हैं। वैखानस श्रौतसूत्र में कहा गया है—

येन वेदार्थविज्ञेयो लोकानुग्रह काम्यया प्रणीतं सूत्र मौरवेयं तस्मै विखनसे नमः।

वैखानस कृष्णयजुर्वेद की ही एक शाखा थी जिसका नाम औखेय था। बाद में विखानस से सम्बन्धित होने के कारण वैखानस कही जाने लगी। शंकर ने ब्रह्मसूत्र में पांचरात्रों के सिद्धान्त का खंडन किया है, किन्तु वैखानसों का नहीं। यहीं इसकी वेदमूलकता के लिए प्रमाण है भागवत में नर नारायण के लिए 'वेदं च साक्षात्तप एवं रूपिणौ' इसीलिए कहा गया है। मार्कण्डेय वेद, शैव, शाक्त तथा वैष्णवागमवादी विचार धारा के समन्वय कर्त्ता थे। गुंटूर, गोदावरी क्षेत्र में पाये जाने वाले इस प्रकार के साधकों से मार्कण्डेय पुराण का परिचय है।

मार्कण्डेय और दत्तात्रेय एक दूसरे के पूरक रूप में हमारे सामने आते हैं। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि मार्कण्डेय दत्तात्रेय के समकालीन ऋषि हैं, चतुर्थांश धर्म के नष्ट होने पर धर्म संस्थापनार्थ पन्द्रहवें त्रेतायुग में दत्तात्रेय का पाँचवाँ अवतार हुआ। उनकी सहायता के लिए मार्कण्डेय पुरोहित हुए—

त्रेतायुगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूव ह
नष्टे धर्मे चतुर्थांशे मार्कण्डेय पुरः सरः
पंचमः पञ्चदश्यान्तु त्रेतायां संबभूव ह। म० ४७।२४२

वायु पुराण (९८।८९) में भी यह विवरण उपलब्ध है। मार्कण्डेय पुराण के १६ वें अध्याय से चवालीस तक योग विषयक लम्बे प्रकरण में सुमति जड़ और उसके पिता के संवाद के निमित्त दत्तात्रेय और अलर्क की चर्चा आई है। प्रवृत्ति मूलक और निवृत्ति मूलक भागवत धर्म का समन्वय प्रस्तुत करना ही इस प्रकरण का प्रयोजन था। मार्कण्डेय यति धर्म के व्याख्याता तो हैं ही, प्रवृत्ति धर्म के व्याख्याता भी हैं। सूर्य तत्त्व और वेदों

---

१. वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयंत्रयः। भा० १२।१०।१९
२. आकल्पान्ताद् यशः पुण्यमजरामरता तथा
ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात् पुराणाचार्यतास्तु ते। भा० १२।१०।३६-३७

के प्राकट्य का वर्णन करते हुए प्रवृत्ति मार्गी वैदिकों तथा निवृत्ति मार्गी आरण्यकों–अवधूतों की चर्चा मार्कण्डेय ने इसी उद्देश्य से की है।[1]

भागवत में सप्तम स्कंध (१३ अ०) में अवधूत प्रह्लाद संवाद तथा योग पारगामी दत्तात्रेय एवं अलर्क संवाद की पृष्ठभूमि एक ही है। भागवत अत्यन्त निवृत्तिवाद के पक्षधर न थे।[2] भोग और योग की समवेत साधना उन्हें रुचती थी। तंत्रयानी भी 'योगश्च भोगश्च करस्थ एव' का समर्थन कर रहे थे। दत्तात्रेय भी योग में मन लगाकर विषयों का उपभोग करते थे—

दत्तात्रेयोऽपि विषयान् योगस्थो बुभुजे हरिः। मार्क०१७।१५

सहजयान ने माध्यमिक और योगाचार के साथ अद्वैत वादी तांत्रिक शैव मत का समन्वय किया। पंचमकार सेवी कौल मार्गी भी साधना में इन्हीं के सामन थे। पिण्ड ब्रह्माण्ड साधना तथा नाड़ी साधन सभी अवैदिक मतों में समान रहा है। मुद्रायोषिता के साथ विहार सिद्धि के लिए अनिवार्य समझा गया। गुह्य समाज तंत्र में जो सातवीं शती का ग्रन्थ है तथा मंजु श्री मूलकल्प (छठी शती) में इस नारी साधना के संकेत मिलते हैं। निवृत्ति मार्गी होते हुए भी दत्तात्रेय का सुन्दरी के साथ जीवन यापन करना उक्त साधना का परिणाम कहा जा सकता है। भागवत के दत्तात्रेय अवधूत हैं। सह्याद्रि पर्वत उनका साधना स्थल रहा है। प्रह्लाद को यति-धर्म का उपदेश यहीं पर उन्होंने दिया। अजगर के समान जीवनवृत्ति धारण करने के कारण उन्हें आजगर मुनि भी कहा गया। परवर्ती सन्त कवियों ने 'अजगर वृत्ति हिरदै धार' का उद्घोष इसी परम्परा के अनुसरण के कारण किया। अजगर अक्रियाशील रहता है तथा प्रारब्ध-लब्ध भोग पर विश्वास करता है। आजगरव्रती मुनि के जीवन की यही दो विशेषताएँ हैं—

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः। भा० ११।९

प्रह्लाद संवाद में भी इसी आशय की चर्चा दत्तात्रेय ने की है यद्यपि यहाँ नाम केवल आजगर मुनि आया है। अजगर के साम्य से ही दोनों की अभिन्नता विद्वानों ने प्रतिपादित की है।

प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च

मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ, वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् .भा० ७।३४

यदृच्छा और दिष्टभुक् शब्दों का प्रयोग यहाँ सोद्देश्य है।[3] मुनियों के प्रचलित दार्शनिक सिद्धान्त हैं ये दोनों। मंखलिगोशाल ने यदृच्छावाद का समर्थन तथा ययाति ने दिष्टवाद का समर्थन इसी परम्परा में किया था। शान्तिपर्व (१७२/२५-३४) तथा संखपाल जातक (सख्या ५२४) इन तोनों मतवादों की चर्चा करते हैं ययाति का कथन दैवमूलक ही है—

ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः।भा० ९।१८।२३

---

१. यज्ञैर्यजन्ति परमात्मविदो भवन्तं
विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयं विवस्वन्।
ध्यायन्ति चापियतयो नियतात्मचित्ताः
सर्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामाः। मार्क० १०३।१०

२. निवृत्तिञ्चास्थितो धर्मं क्षेमी भागवत-प्रियः
प्रवृत्तिधर्मान् विदधे स एव भगवान् प्रभुः। शान्ति ३२७।२.

३. भुंजे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद् दिवानक्तं यदृच्छया
वसेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम्। भा० ७।१३।३८: ३९

मार्कण्डेय के दत्तात्रेय भागवत की अपेक्षा शैवशाक्तों की अवधूतचर्या के प्रतिनिधि हैं जो उच्छृंखल कही जा सकती है। यहाँ वे मद्यपान निरत, मैथुन में विश्वास रखने वाले तथा उन्मत्तव्रत का पालन करने वाले बतलाइए गए हैं।

मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो न चैवाहं जितेन्द्रियः।

इस प्रकरण में सुरापानरत बताना तथा नारी विहाररत बताना शाक्त अवधूतों की साधना की ओर प्रखर संकेत है।[1] यह परम्परा अथर्ववेद से आई है। ऐतशमुनि और महानग्नी पीवरी के उन्मत्त प्रलाप का संकेत इस परम्परा को प्राचीन सिद्ध करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से ५वीं शती के ग्रन्थ चतुर्भाणी (पाद ताड़ितकं भाण) में 'मुद्रितायां योषिति युक्तमुपेक्षा विहारित्वं' कहकर इस साधना का प्रभाव बताया गया है। तन्त्रालोक (१।३१) मे अभिनव ने अपने गुरु शंभुनाथ की वंदना दूती के साथ की है जिसे भगवती कहा है। अम्बक धारा शैव-शाक्तों की मुद्रा सेवन चर्या प्रधान धारा ही थी। उन्मत्तव्रत तन्त्रों की उन्मनी साधना का सूचक है।

दुन्दुभ्यादि निनादञ्च निःशृणोति कदाचन काष्ठवज्जायते देहो ह्युन्मन्यावस्थया ध्रुवम्। हंसवि० ४९

देवी यामल में दूतीयाग की विशेष चर्चा की गई है। शक्ति संगम तन्त्र में शैव-शाक्त अवधूतों की ही चर्चा है जो बाद में एक हो गए।

आद्यः शैवाभिधो योगो द्वितीया शाक्त संज्ञिका द्वयं मिलित्वा देवेशि योगः स्वराज्य वाचकाः। ६१।८२

इनके अनुसार नारी चक्र में ही सारा ब्रह्माण्ड अवस्थित है। अतः नारी साधना ही इनके मत में सार है।

नारी चक्रे सर्वरूपं यत्किञ्चिच जगतीगतम् ब्रह्माण्डानामनन्तं च स्त्री देहे स्फुटमेव च। १३।१२३

मार्कण्डेय के दत्तात्रेय नारी के साथ हैं और देवता उन्हें पवित्र घोषित करते हैं।

अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तव विद्यते। १८।२९

अनघेयं द्विजश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यते यथांशुमाला सूर्यस्य द्विजचण्डाल संगिनी। १८।३२

तात्पर्य यह है कि वैष्णव अवधूतों ने भी इस वाममार्गी साधना को सामाजिक स्वीकृति दे दी थी। शैव-शाक्त तथा वैष्णव साधकों की साधना प्रणालियों का समन्वित रूप मार्कण्डेय पुराण की अपनी विशेषता है।

दत्तात्रेय की पत्नी लक्ष्मी के अपहरण की प्रतीक कथा की ओर भी पुराणकार ने इशारा किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि दत्तात्रेय ने वैदिक समाज से बाह्य परिगणित गिरिजन तथा आदिवासी जनों को सुसंस्कृत कर उनका सामाजीकरण किया था। सह्यपर्वत की तलहटी में उनके आश्रम का होना इस ओर संकेत करता है।[2] वैदिकों और अवैदिकों के संघ के कारण भारतीय समाज में श्री की वृद्धि हुई। असुरों ने शोषितों और श्रमिकों के आचार्य दत्त के पास वह संगठन की श्री देखी। बलपूर्वक अपहरण करने के लिये असुर आगे बढ़े। पालकी पर बैठाकर वे उसे ले जाने लगे। दत्तात्रेय ने कहा लक्ष्मी इनके सिर पर चढ़ गई है। पराई स्त्री और पराए धन के बलपूर्वक अपहरण से ये निस्तेज हो गये हैं। अतः देवता अब इनका वध कर सकते हैं। सामाजिक संगठन के महत्व को समझने वाले देव, आदिजन तथा गिरिजनों ने मिलकर असुरों को पराजित किया तथा लूटी गई लक्ष्मी को पुनः लौटा लिया। सिर पर सवार लक्ष्मी धर्म अधर्म का भेद नहीं जानने देती। धन के लिये पागल ऐसा व्यक्ति अथवा समाज दोनों नष्ट हो जाते हैं। अतः लक्ष्मी का सिर पर सवार होना ठीक नहीं।[3]

---

१. अस्यास्तु योषितः संगादहमुच्छिष्टतां गतः। मार्क० १८।३०

२. दत्तात्रेयं महाभागं सह्यद्रोणीकृताश्रमम्। मा० १८।१२

तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि। भा० ७।१३।१२

३. शिरोगता सन्त्यजति ततोऽन्यं याति चाश्रमम्। मा० १८।५४

असुरों के सिर पर सवार लक्ष्मी ने भी यही किया। सम्पूर्ण विवेचन का अभिप्राय यह कि वैदिक अवैदिक संदर्भों से प्राप्त सामग्री को समष्टि रूप से मार्कण्डेय में स्थान प्राप्त हुआ। दत्तात्रेय अवधूत की धारणा इसी समष्टि की देन है।

पुराणों के अवतरण की विशेष चर्चा

भारतीय संस्कृति वैदिक और आगमिक मान्यताओं तथा रीति–रिवाजों का मिला जुला रूप है। धर्म साधनाओं में ऋषि और मुनिधारा के रूप में इसके स्रोत विद्यमान रहे। ऋषि मन्त्र भाग के साथ जुड़े रहे तथा मुनि व्रात्यधारा• के प्रतिनिधि होने से लोक जीवन और संस्कारों से सम्बद्ध रहे। वैदिक साहित्य तथा आगमिक साहित्य की दो विरोधी जीवन पद्धतियाँ तथा विचारणाएँ पौराणिक साहित्य में आकर अन्तर्भुक्त हो गईं। चाहे निर्ग्रन्थ मुनि हों, चाहे पञ्चरात्रवाही, पुराण संहिता को प्रतिवर्णाश्रमी अथवा स्त्री-शूद्र सभी के लिये सर्वसुलभ मानते हैं। ईश्वर संहिता के अनुसार शाण्डिल्य, औपगायन, मौंजायन, कौशिक तथा भारद्वाज मुनि पुंगव थे।[१] मार्कण्डेय पुराण में वेद के अधिकारी ऋषि तथा पुराण के अधिकारी मुनि बताए गए हैं।

वेदान् सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहु स्तस्य मानसाः पुराणं जगृहुश्चाद्या मुनयस्तस्य मानसाः। ४५।२३

अर्थात् प्रजापति ने वेद ऋषियों को तथा पुराण मुनियों को दिए। शंख स्मृति तथा महाभारत के वनपर्व के १२वें अध्याय में मुनियों के स्वरूप की विस्तृत चर्चा हुई है। ऋषि मुनि का साधारण प्रयोग भले ही अभिन्नार्थक माना जाय किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में यह भेद नितान्त प्रयोजन-निष्ठ कहा जाएगा।

पुराण के वक्तृत्व का अधिकार भी मार्कण्डेय सभी को प्रदान करते हैं। शर्त यही है कि वक्ता का जीवन तपस्या प्रधान तथा अपरिग्रही हो। मार्कण्डेय के प्रारम्भ में जैमिनी का एक प्रश्न यह भी है कि बलदेव जी को तीर्थयात्रा के ब्याज से ब्रह्महत्या का प्रायश्चित क्यों करना पड़ा?

भेषजं ब्रह्महत्या का बलदेवो महाबलः। तीर्थयात्रा प्रसंगेन कस्माच्चक्रे हलायुधः। मा० १।१५

जैमिनी व्यास के शिष्य हैं तथा साम के आचार्य हैं।[२] रोमहर्षण पुराण के आचार्य हैं तथा सूत के पिता हैं। सूतजी पुराणों का प्रवचन कर रहे थे। बलराम मद्यपान कर कहां पहुँचे। श्रोतारूप में उपस्थित ऋषियों ने उनकी अभ्युत्थानपूर्वक वन्दना की पर व्यास पीठ पर बैठे सूत जी नहीं उठे इससे क्रुद्ध हो उन्मत्त बलदेव ने सूतजी का वध कर दिया। बाद में उन्होंने प्रायश्चित किया। पश्चाताप किया।

मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः पूजयन्तो हलधर मृते तं सूत वंशजम्। ६।२८
अध्यास्यति पदं ब्राह्मं तस्मिन् सूते निपातिते निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्वे वनात्कृष्णाजिनाम्बराः। ३०
तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादश वार्षिकम्। ३५।

वस्तुतः यह घटना ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर सघर्ष पर प्रकाश डालती है। भागवत में तो रोमहर्षण को सूत जाति में उत्पन्न हुआ मानकर ही बलराम जी ने वध किया—

कस्मादसा विमान् विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः धर्मपालां स्तथैवास्मान् वधमर्हति दुर्मतिः १०।७८।२४

इस पर ऋषियों ने कहा कि प्रतिलोम जाति का होने पर भी यह आचरण से ब्राह्मण है। अतः ब्राह्मणोचित आसन पर इनका प्रतिष्ठित होना अनुचित नहीं।[३] बलराम जी इस पर उसके पुत्र सूत को गद्दी पर बैठाकर पुराण वाचन का अधिकार प्रदान करते हैं—

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् तस्मादस्य भवेद् वक्ता आयुरिन्द्रियसत्ववान्। १०।७८।३६

---

१. अध्यापयामास यतस्ततस्तदेतन्मुनि पुंगवाः। ईश्वर २१।५१९, ५३२, ५३३

२. तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः।
इतिहास पुराणानां पिता मे रोमहर्षणः। भा० १।२।६, ७, ८

३. अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दनः। भा० १०।७८।३०

प्रतिलोमज मा अर्थ है क्षत्रिय पिता तथा ब्राह्मणी माता की सन्तान। प्राचीन भारत में सामाजिक स्तर की दृष्टि से यह हीन समझी जाती थी। बाद में पुराण साहित्य के उत्कृष्ट व्याख्याता होने से उन्हें द्विजत्व मिला। उक्त घटना इसी संस्कार का संकेत कराती है। हरिवंश के 'अग्निजो लोमहर्षणः' जैसे वाक्य यह कहना चाहते हैं कि अग्निवादियों, वैदिकों द्वारा इन्हें भी याज्ञिकों की पंक्ति में स्थान मिल गया।

मार्कण्डेय पुराण का वैष्णव संस्कार

वैष्णव चतुर्व्यूहवाद का समावेश पुराण संहिता में भागवत सम्प्रदाय के पुनरुत्थान से हुआ। मार्कण्डेय का प्रारम्भ ही विष्णु के मंगलाचरण से हुआ है।

दत्तात्रेय को विष्णु का अवतार बताना मार्कण्डेय के भागवतीकरण का परिणाम है—

विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्वनः। मा० १६।३७

जैमिनि के प्रथम प्रश्न के लिए ही चतुर्व्यूहवाद का सहारा लिया गया है। प्रथम प्रश्न था—निर्गुण भगवान् का जन्म ग्रहण कैसे हुआ?

कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः। ४।३१

उत्तर दिया गया कि भगवान् पूर्ण काम होते हुए भी धर्म आदि की रक्षा के लिए स्वेच्छया अवतार लेते हैं। मार्कण्डेय का यह अंश गीता के अनुरूप ही है—

प्रोद्धूतानसुरान् हन्ति धर्म विच्छित्तिकारिणः
प्रतिदेवान् सतश्चान्यान् धर्मरक्षा परायणान्
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजत्यसौ। मा० ४।५२, ५३

जैमिनि के प्रश्न के उत्तर में नारायण शब्द की निरुक्ति तथा वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध की कथा भागवत प्रभाव को ही परिलक्षित करती है। वासुदेव मूर्त्ति सात्त्विकी, संकर्षण तामसी, प्रद्युम्न सत्व प्रेरित तथा अनिरूद्ध राजसी कही जाती है। वासुदेव निर्गुण क्षेत्रज्ञ है, जीव संकर्षण है, मन प्रद्युम्न है तथा अनिरुद्ध अहंकार है। इसी चतुर्व्यूह रूपात्मक विष्णु को पक्षियों ने नमस्कार कर इच्छित प्रश्न का उत्तर दिया है। तत्त्वदर्शी मुनियों ने जल को नारा कहा है। वह नारा ही पूर्वकाल में भगवान का निवास स्थान रहा, इसलिए वे नारायण कहे गए हैं। वे सर्वव्यापी भगवान् नारायणदेव सबको व्याप्त करके स्थित हैं वे सगुण हैं और निर्गुण भी।[1] उनका प्रथम स्वरूप शुक्ल वासुदेव है जिसे विद्वान् अहंता का त्याग करके ही देख पाते हैं। दूसरा रूप संकर्षण ब्रह्माण्ड का धारक तामसी रूप है। तीसरी मूर्त्ति प्रजा का भरण पोषण करने वाली धर्म स्वरूपा है। रजोगुण प्रधाना चौथी मूर्त्ति अनिरूद्ध सृष्टि का कारण होती है। वासुदेव निर्गुणमूर्त्ति है तथा सगुण मूर्त्ति भी, गुण की त्रिविधता के कारण इन्हें शेष, हरि तथा नारायण कहा जाता है। परमात्मा परमार्थ दृष्टि से निर्गुण होते हुए भी अनादि काल से गुणों से सम्पन्न हैं। इस गुण सम्पर्क के कारण ही उनका अवतार होता है। इस तथ्य की पुष्टि में अथर्ववेद का (५, १, २) यह मंत्र उद्धृत किया जा सकता है—

ऋधङ् मन्त्रो योनिं य आबभूवामृतासुर्वर्धमानः सुजन्मा। अदब्धासुर्भ्राजमानोऽहेव त्रितो धर्ता दाधार त्रीणि॥

एक सत्य है (ऋधक्) रहस्य है (मन्त्रः) जो (यः) अविनश्वरप्राणों वाला (अमृतासुः) दिव्य जन्मों वाला (सुजन्मा) शरीर के साथ शक्ति को बढ़ाता है (वर्धमानः) वही परमात्मा धर्म की रक्षा के लिये मनुष्यादि योनियों में (योनिम्) आता है आबभूव)। प्रकृति से न दबने वाली प्राण शक्ति से युक्त (अदब्धासु) दिन की तरह प्रकाशमान (अहाइव भ्राजमानः) रज तम सत्वात्मक प्रकृति (मितः, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) को वश में रखने

१. चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायाऽगुणाय च।
स देवो भगवान् सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः
चतुर्धा सस्थितो ब्रह्मन् सगुणो निर्गुणस्तथा। मा० ४।३७-४४

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता। त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः। प्रश्नो० २।२।९

अर्थात् हे प्राण तू तेज रूप इन्द्र है। प्रलय काल में रुद्र है तू ही प्राणियों को धारण करने वाला है। तू ही पृथ्वी-स्वर्ग के बीच विचरने वाला वायु है, तू ही ज्योति धारियों का स्वामी सूर्य है। पुराणकार ने रुद्र को अर्जुन, वायु को भीम, सूर्य नकुल सहदेव तथा इन्द्र रूप तेज को युधिष्ठिर बताया। 'प्राणस्मेदं वशे सर्वं' की धारणा को कहानी का रूप देना पुराणकार की प्रमुख शैली रही है।

जैमिनी का चतुर्थ प्रश्न द्रौपदी के पाँच पुत्रों की अकाल मृत्यु से सम्बन्धित है इसके उत्तर में सत्यवादी हरिश्चन्द्र के संकट से द्रवित तथा विश्वामित्र की क्रूरता से क्षुब्ध विश्वे देवों के शाप ग्रस्त होने की कथा कही गई है। विश्वामित्र के शाप से वह द्रौपदी के पुत्र हुए तथा अविवाहित अवस्था में मार डाले गए। धर्म की परीक्षा के लिए हरिश्चन्द्र का आख्यान रोचक रूप में प्रस्तुत किया गया है, क्षमा धर्म और तितिक्षा का ऐसा उदाहरण विश्व में नहीं मिलेगा—

अहो तितिक्षा माहात्म्यं अहो दानफलं महत् यदागतो हरिश्चन्द्रः पुरीं चेन्द्रत्वमाप्तवान्। ८।२७९

हरिश्चन्द्र आदर्श राजा हैं। वह अकेले स्वर्ग जाना नहीं चाहते। वह पुण्य में सारी प्रजा की साझेदारी मानते हैं। आदर्श राज्य व्यवस्था सर्वजन हिताय की भित्ति पर टिकी है—

यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर, ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह। ८।२५१–५९

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस कथा की महत्ता क्षान्तिवादी जातक के परिप्रेक्ष्य में अंकित करते हुए बताया कि काशी में ही क्षमा धर्म की प्रतिष्ठा बोधिसत्व ने दिखाई और काशी में ही हरिश्चन्द्र की कथा बौद्ध जातक के ओजस्वी उत्तर के रूप में प्रस्तुत की गई। ऐतरेय ब्राह्मण में मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व में जो मोह और लिप्सा दिखाई पड़ती है, उसका पूर्ण परिष्कार इस आख्यान में हुआ है। यह वरुण को ठगने वाले हरिश्चन्द्र न होकर सत्य की प्रतिष्ठा करने वाले हरिश्चन्द्र हैं जिनका कथन है—

सत्यञ्चोक्तं परमधर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितम्। ८।४१, ४२

यह धारणा भी केनोपनिषद् की 'सत्यमायतनम्' पंक्ति के अनुरूप ही निर्मित हुई है। ऐतरेय ब्राह्मण में कहा भी गया है—

ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा तस्माद्दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम्। (१।६)

पुराण का कथासार

पुराण की श्लोक संख्या ९ हजार कही जाती है। समग्र आख्यान १३७ अध्यायों में विभाजित है। मार्कण्डेय ऋषि पुराण के आरम्भ में वक्ता हैं, उनसे जैमिनि ने प्रश्न किए और मार्कण्डेय ने जैमिनी के प्रश्नों के उत्तर दिए। यह पुराण कथानक मूलक है और शैली में पक्षी संवाद के कारण परवर्ती ऐतिहासिक चरित्र काव्यों के लिए कथानक रूढ़ि का मूल कारण भी बन गया है। वसु के शाप के कथानक से इसका प्रारम्भ होता है। मार्कण्डेय ने जैमिनि को विन्ध्य पर्वत पर निवास करने वाले चार विद्वान् पक्षियों के पास भेजा। जैमिनि ने चार प्रश्न पूछे। पक्षियों के द्वारा दिए गए उत्तरों से पुराण की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ है। विश्वेदेवों के शाप के प्रसंग से स्वर्ग–नरकादि का वर्णन किया गया है। प्रवृत्ति धर्म के निरूपणार्थ हरिश्चन्द्र, मदालसा तथा निवृत्ति धर्म के निरूपणार्थ अलर्क और दत्तात्रेय के आख्यान दिए गए हैं। योग शास्त्र से सम्बन्द्ध रखने वाले विषयों का भी निरूपण किया गया है। फिर सृष्टि, प्रलय, भुवनकोष, वंश, मन्वन्तर आदि का विवरण है। तत्पश्चात् स्वारोचिष मन्वन्तर की दुर्गा की पूर्ण कथा दी गई है जिसे 'दुर्गा सप्तशती' कहा जाता है। इसमें सुरथ समाधि तथा सुमेधा के संवाद के माध्यम से मधुकैटभ, महिषासुर तथा शुम्भ, निशुम्भ के वध की कथा दी गई है तथा देवी माहात्म्य का निरूपण किया गया है। वैवस्वत मन्वन्तर के प्रसंग में सूर्य स्तवन, रौच्य मन्वन्तर के प्रसंग विवाह तथा गृहस्थाश्रम की महत्ता बताई गई है। पितरों की प्रेरणा से रुचि निवृत्ति मार्गी होते हुए भी मालिनी

पत्नी शची कृष्णा या द्रौपदी के रूप में प्रकट हुई। इस प्रकार पंचेन्द्र के समष्टि रूप में ही द्रौपदी पत्नी थी। पाँच पुरुषों की पृथक्-पृथक् पत्नी वह नहीं थी—

शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित्। ५।२५

महाभारत में भी 'पाण्डोः पुत्रा पंच पंचेन्द्रकल्पाः' कहकर (उद्योगपर्व ३३।१०३) इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में पंचप्राणों को इन्द्र कहा गया है इन्द्र के कारण ही प्राणों द्वारा संचालित इन्द्रियाँ इन्द्रिय संज्ञा धारण कर सकीं। पंच प्राणों का मुख्य महेन्द्र कहलाता है। एक ही क्रिया शक्ति पाँच प्राणों के साथ कार्य करती है।

स सोऽयं मध्ये प्राणः एष एवेन्द्रः, तान्येष प्राणान् मध्यत इन्द्रियेणैन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्द्धः। इन्धो ह वै तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षम्। ६।१।१।२

मथुरा की कुषाण कालीन मूर्त्तियों में पंचेन्द्र मूर्त्ति प्राप्त हुई है। इसे यों ही कहा जा सकता है कि प्रकृति ही द्रौपदी है तथा पंच तत्त्व पाण्डव हैं। प्रकृति इन्हीं तत्त्वों से प्रसार पाती है। पंच प्राण ही स्थूलवाक् के रूप में में अनुभव में आते हैं। अतः द्रौपदी वाग्देवी है तथा पंचप्राण ही पाण्डव हैं। जैमिनीय उपनिषद् में एक से अनेक रूप धारण करने की प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है—

एकोह्येवेष पुत्रोयत्प्राणः। स उ एव द्विपुत्र इति द्वौ हि प्राणापानौ। स उ एव त्रिपुत्र इति। त्रयोहि प्राणोऽपानो व्यानः। स उ एव चतुष्पुत्र इति। चत्वारो हि प्राणोऽपानो व्यानस्समानः। स उ एव पञ्चपुत्र इति। पंचहि प्राणोऽपानोव्यानउदानस्समानः इति।

यही नहीं अन्नमय पुरुष, प्राणमय पुरुष, मनोमय पुरुष, विज्ञानमय पुरुष तथा आनन्दमय पुरुष एक ही पुरुष के पाँच पुरुष हैं जो व्यक्त होकर स्थूल इन्द्रियों का विषय बन जाते हैं। देह रूपी द्रौपदी में उपस्थित पाँच पुरुष ही पाँच पाण्डव हैं जो एक महेन्द्र के ही रूप हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में इनकी विस्तृत व्याख्या है। महेन्द्र ब्रह्म है, उसके एकत्व को अनेकत्व (उपलक्षण से पंच) में बदलने वाली विषयीकरण की शक्ति ही वाक् है, इसी को आगम विमर्श कहते हैं, इसी से नानारूपात्मक विश्व की सृष्टि होती है। अथर्व में आया है—

अप्राणैति प्राणेन प्राणतीनां विराट्, स्वराज्यमभ्यौति पश्चात् विश्वंमृशन्तीमभिरूपा विराजं पश्यन्ति त्वे न त्वे पश्यन्त्येनाम्। ८।९।९। सृष्टि ही द्रौपदी है। प्रजापति पंच होता इन्द्र है जो पाण्डव रूप में कथन किया गया है पाँच ऋतु ही पंचाहुतियाँ हैं जो सृष्टि में डाली जा रही हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण (२, २, ३, ६) तथा शतपथ (३, १, ४, ५) में इस प्रतीक की चर्चा है। पुराणकार ने सृष्टि को द्रौपदी तथा पंचाहुत प्रजापति को पाण्डवों के रूप में ग्रहण किया है।

एकाष्टका तमसा तप्यमाना जजान गर्भं महिमानमिन्द्रम्। अथर्व ३।१०।१–१३

इस सूक्त में रात्रि को संवत्सर की प्रतिमा बताया गया है जो सारी प्रजा की सृष्टि करती है यह रात्रि प्रजापति की पुत्री है तप से उत्पन्न होती है तथा इन्द्र को उत्पन्न करती है। पुराणकार ने रात्रि की लक्षणा से द्रौपदी को कृष्णा कहा, प्रजापति को द्रुपद तथा तप को अग्नि कहा। तपोजन्मा होने से कृष्णा याज्ञसेनी कही गई। पुनः इन्द्र को उत्पन्न करने का अर्थ है वाक् को जन्म देना। वैदिक साहित्य में पंच महाभूतों को समष्टि रूप से वाक् कहा जाता है, यही द्रौपदी के पाँच पुत्र हैं। मन और प्राण की अभिव्यक्ति पंचभूतात्मक स्थूल वाक्य से ही होती है। प्राण के बिना भूतसृष्टि नहीं हो सकती। इन्द्र लोक, देव लोक, मनुष्य लोक, असुर लोक और ऋषि लोक ही वाक् के पाँच पुत्र हैं, द्रौपदी के पाँच पुत्र हैं। इसी को वेद की प्रक्रिया में 'पंच व्युष्टीरनु पंच दोहाः' कहा गया है। इन्हीं को पंच उषा भी गया जाता है। प्रथम उषा रात्रि या एकाष्टका है। दूसरी ऊर्जा, तृतीय प्रजा, चतुर्थ देवयुराष्ट्र रक्षिका तथा चतुर्थ ऋषियों से सम्बन्धित कही जाती है। पुराणकार प्रतीक रूप में इस आख्यान को कहता है। क्योंकि प्राण को ही उपनिषद् इन्द्र कहते हैं—

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः । प्रश्नो० २।२।९

अर्थात् हे प्राण तू तेज रूप इन्द्र है । प्रलय काल में रुद्र है तू ही प्राणियों को धारण करने वाला है। तू ही पृथ्वी-स्वर्ग के बीच विचरने वाला वायु है, तू ही ज्योति धारियों का स्वामी सूर्य है । पुराणकार ने रुद्र को अर्जुन, वायु को भीम, सूर्य नकुल सहदेव तथा इन्द्र रूप तेज को युधिष्ठिर बताया । 'प्राणस्मेदं वशे सर्वं' की धारणा को कहानी का रूप देना पुराणकार की प्रमुख शैली रही है ।

जैमिनी का चतुर्थ प्रश्न द्रौपदी के पाँच पुत्रों की अकाल मृत्यु से सम्बन्धित है इसके उत्तर में सत्य-वादी हरिश्चन्द्र के संकट से द्रवित तथा विश्वामित्र की क्रूरता से क्षुब्ध विश्वे देवों के शाप ग्रस्त होने की कथा कही गई है । विश्वामित्र के शाप से वह द्रौपदी के पुत्र हुए तथा अविवाहित अवस्था में मार डाले गए । धर्म की परीक्षा के लिए हरिश्चन्द्र का आख्यान रोचक रूप में प्रस्तुत किया गया है, क्षमा धर्म और तितिक्षा का ऐसा उदाहरण विश्व में नहीं मिलेगा—

अहो तितिक्षा माहात्म्यं अहो दानफलं महत् यदागतो हरिश्चन्द्रः पुरीं चेन्द्रत्वमाप्तवान् । ८।२७९

हरिश्चन्द्र आदर्श राजा हैं । वह अकेले स्वर्ग जाना नहीं चाहते । वह पुण्य में सारी प्रजा की साझे-दारी मानते हैं । आदर्श राज्य व्यवस्था सर्वजन हिताय की भित्ति पर टिकी है—

यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर, ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह । ८।२५१–५९

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस कथा की महत्ता क्षान्तिवादी जातक के परिप्रेक्ष्य में अंकित करते हुए बताया कि काशी में ही क्षमा धर्म की प्रतिष्ठा बोधिसत्व ने दिखाई और काशी में ही हरिश्चन्द्र की कथा बौद्ध जातक के ओजस्वी उत्तर के रूप में प्रस्तुत की गई । ऐतरेय ब्राह्मण में मिथ्यावादी हरिश्चन्द्र के व्यक्तित्व में जो मोह और लिप्सा दिखाई पड़ती है, उसका पूर्ण परिष्कार इस आख्यान में हुआ है । यह वरुण को ठगने वाले हरिश्चन्द्र न होकर सत्य की प्रतिष्ठा करने वाले हरिश्चन्द्र हैं जिनका कथन है—

सत्यञ्चोक्तं परमधर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितम् । ८।४१, ४२

यह धारणा भी केनोपनिषद् की 'सत्यमायतनम्' पंक्ति के अनुरूप ही निर्मित हुई है । ऐतरेय ब्राह्मण में कहा भी गया है—

ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा तस्माद्दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम् । (१।६)

पुराण का कथासार

पुराण की श्लोक संख्या ९ हजार कही जाती है । समग्र आख्यान १३७ अध्यायों में विभाजित है । मार्कण्डेय ऋषि पुराण के आरम्भ में वक्ता हैं, उनसे जैमिनि ने प्रश्न किए और मार्कण्डेय ने जैमिनी के प्रश्नों के उत्तर दिए । यह पुराण कथानक मूलक है और शैली में पक्षी संवाद के कारण परवर्त्ती ऐतिहासिक चरित्र काव्यों के लिए कथानक रूढ़ि का मूल कारण भी बन गया है । वसु के शाप के कथानक से इसका प्रारम्भ होता है । मार्कण्डेय ने जैमिनि को विन्ध्य पर्वत पर निवास करने वाले चार विद्वान् पक्षियों के पास भेजा । जैमिनि ने चार प्रश्न पूछे । पक्षियों के द्वारा दिए गए उत्तरों से पुराण की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ है । विश्वेदेवों के शाप के प्रसंग से स्वर्ग–नरकादि का वर्णन किया गया है । प्रवृत्ति धर्म के निरूपणार्थ हरिश्चन्द्र, मदालसा तथा निवृत्ति धर्म के निरूपणार्थ अलर्क और दत्तात्रेय के आख्यान दिए गए हैं । योग शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाले विषयों का भी निरूपण किया गया है । फिर सृष्टि, प्रलय, भुवनकोष, वंश, मन्वन्तर आदि का विवरण है । तत्पश्चात् स्वारोचिष मन्वन्तर की दुर्गा की पूर्ण कथा दी गई है जिसे 'दुर्गा सप्तशती' कहा जाता है । इसमें सुरथ समाधि तथा सुमेधा के संवाद के माध्यम से मधुकैटभ, महिषासुर तथा शुम्भ, निशुम्भ के वध की कथा दी गई है तथा देवी माहात्म्य का निरूपण किया गया है । वैवस्वत मन्वन्तर के प्रसंग में सूर्य स्तवन, रौच्य मन्वन्तर के प्रसंग विवाह तथा गृहस्थाश्रम की महत्ता बताई गई है । पितरों की प्रेरणा से रुचि निवृत्ति मार्गी होते हुए भी मालिनी

से विवाह करते हैं। गृहस्थ धर्म की मर्यादा का निरूपण यहाँ किया गया है। भौत्य मन्वन्तर में अग्न्याधान की महत्ता तथा मार्त्तण्ड महिमा पर प्रकाश डाला गया है। आदित्य का जन्म तथा वंश वृक्ष इतने विस्तार के साथ अन्य पुराण में नहीं मिलता। अन्तिम अध्याय में मार्कण्डेय पुराण की फल श्रुति कही गई। मार्कण्डेय का सृष्टि विवरण विष्णु पुराण के ही अनुरूप है। इसका कारण चतुर्व्यूह सिद्धान्त की स्वीकृति भी हो सकती है।

पुराण की संरचना

मार्कण्डेय पुराण की रचना त्रिस्तरीय है। प्रथम स्तर पर प्रथम अध्याय से ४२ वें अध्याय तक के वक्ता-श्रोता पक्षी और जमिनि हैं। द्वितीय स्तर पर ४३ से ८० तक के वक्ता श्रोता मार्कण्डेय और क्रौष्टुकि हैं तथा तीसरे स्तर पर ८१ से ९३ तक सुमेधा और सुरथ समाधि वक्ता-श्रोता कहे गए हैं। एक दूसरे से सर्वथा असम्बद्ध होने पर भी इनमें एक सूत्रता स्थापित कराई गई है।

पुराण की कसौटी पर भी मार्कण्डेय खरा उतरता है। ४७ अध्याय से ५५ तक सर्ग का वर्णन किया गया है। ४७ वें अध्याय में प्राकृत, वैकृत तथा कौमार सर्ग की चर्चा है। ४६ वें अध्याय में प्रतिसर्ग या प्रलय वर्णन हुआ है। १०१ वें अध्याय में वंशों और राज चरित्रों में का वर्णन किया गया है। ५३ वें अध्याय में मन्वन्तर का आख्यान आया है। वंशानुचरित्र की दृष्टि से नभग आदि राजाओं का जीवन, शिल्प, कला, विद्या, व्यवसाय, इतिहास, भूगोल, सामाजिक दृष्टि का उल्लेख किया गया है। आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से पुराणाकार ने इसमें पंच लक्षण घटाए हैं। ६१ वें अध्याय में अनुलेपन विद्या, द्वितीय अध्याय में स्वेच्छा रूप धारिणी विद्या, ६४ वें अध्याय में पद्मिनी विद्या, ७० वें अध्याय में रक्षोघ्न विद्या का उल्लेख हुआ है। मरुत के पुत्र नरिष्यन्त के अपूर्व यज्ञ प्रेम की चर्चा तथा ब्राह्मणी की कोढ़ी पति की सेवा का दृष्टान्त पातिव्रत्य की अलौकिक महिमा के लिए पुराणकार ने कहा है।

ऋतुध्वज की पत्नी मदालसा का चरित्र नारीमात्र के लिए अनुकरणीय है। उसने अपने बच्चों को बाल्यकाल में ही ऐसी शिक्षा दी कि वे बचपन में ही ज्ञान सम्पन्न एवं समताशून्य हो गए। भागवत की सुनीति ने अपने पुत्र ध्रुव को जो शिक्षा दी उसने उसे तत्त्वदर्शी बना दिया। मदालसा की लोरियाँ सुनकर उनके पुत्र अलर्क ब्रह्मविद् हो गए। इसके बाद अलर्क को दत्तात्रेय ने अध्यात्म एवं योग का दिव्य उपदेश दिया। योग की अनुपम सम्पत्ति पाकर अलर्क निर्वाण पद के अधिकारी बने। २५ तथा २६ वें अध्याय में मदालसा के उपदेश संकलित हैं। वह श्लोक तो पर्याप्त ख्याति पा चुका है

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाऽधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं तवैतन्नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः। २५।११

राष्ट्र प्रेम की भावना भी इस पुराण में परिलक्षित होती है। ५७ वें अध्याय में कर्मभूमि तथा पुण्य-भूमि के रूप में भारत का विवरण पुराणकार की राष्ट्र वादी भावना का परिचय देता है। हिमालय के दक्षिण में स्थित भारत वर्ष ही कर्म भूमि है पुण्य और पाप की व्यवस्था यहाँ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है। यहीं से स्वर्ग, मोक्ष, मर्त्य जीवन, पशु पक्षियों की योनि प्राप्त की जा सकती है। देवत्व के लिए भी सर्वथा स्पृहणीय है यह भूमि।

भारतं नाम यद्वर्षं दाक्षिणेन मयोदितम्, तत्कर्मभूमिर्नान्यत्र सम्प्राप्तिः पुण्यपापयोः।
तस्मात् स्वर्गापवर्गौ च मानुष्यानारकावपि, तिर्यक्त्वमथवाप्यन्नरः प्राप्नोति वै द्विज।
देवानामपि विप्रर्षे सदैवैष मनोरथः, अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात्प्रच्युताः क्षितौ। ५५, ५७

२७ वें अध्याय में राजा का कर्त्तव्य, २८ वें में वर्णाश्रम धर्म तथा २९ में बलिवैश्वादि पंच कर्म, ३०,३२ में श्राद्ध तथा ३५ में सदाचार का निरूपण किया गया है। ७१ वें अध्याय में नारी के महत्त्व का

निरूपण है। यह पहला पुराण है जहाँ नारी को उसकी समग्र गरिमा के साथ प्रस्तुत किया गया है—

पत्नी धर्मार्थकामानां प्रबलं नृणाम् विशेषतश्च धर्मश्च सन्त्यक्तस्त्यजता हि ताम्। ७१।९

शत्रु के प्रति भी सहृदयता का व्यवहार करना पुराणकार का उपदेश रहा है। राजा खनित्र की यह घोषणा उल्लेखनीय है—

यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु। ११७।१९

१२० वें अध्याय में अहिसा धर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है। अपुत्र राजा पुत्र प्राप्ति के लिए प्राणिहिंसा का मार्ग अपनाना चाहता है। मृग के उपदेश से वह हिंसा का मार्ग छोड़कर तप का मार्ग चुनता है। पितृ यज्ञ के निमित्त की गई मृगया वैदिकी हिंसा के कारण पवित्र कही जा सकती थी पर पुराणकार इस नृशंस प्रक्रिया का विरोध करता है। मृग का यह कथन बौद्ध, जैन तथा भागवतों के करुणावाद का समर्थन करता प्रतीत होता है। शैवशाक्तों, कापालिकों की बलि प्रदान विषयक धारणा का यहाँ परोक्ष खण्डन किया गया है—

एको यदाऽहमासन्तु प्राक् तदा देहजं मम, दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्यायास्तद्भूद् द्विधा।
यदा जातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै, तावच्छरीर भूमीनि मम दुःखान्यथा भवन्।
सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृते प्राणि वधं मृग, तपसैव प्रचंडेन यथा पूर्वं महीपतिः।
१२०।३३, ३४, ३८

मक्तक भक्त जातक तथा सस जातकों के आख्यानों का मूल तत्त्व जीव रक्षा ही कहा जाता है। वैदिक संस्कृति का अनिवार्य अंग है यज्ञ। मरुत्त के पुत्र नरिष्यन्त के यज्ञ प्रेम का विस्तृत विवरण पुराणकार ने इसी लिए दिया है। नरिष्यन्त ने इतने अधिक यज्ञ किए और ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में इतना प्रचुर धन दिया कि उस धन से वे स्वयं यज्ञ करने लगे। यहाँ तक कि राजा को आवश्यककता होने पर यज्ञ कराने के लिए ऋत्विज ही नहीं मिलते थे। इस प्रकार राजा और प्रजा दोनों यज्ञमय होगए। नरिष्यन्त के पुत्र दम ने महर्षि शक्ति से वेदांग तथा आर्ष्टिषेण से योग शिक्षा ग्रहण की। नरिष्यन्त पुत्र को गद्दी पर बिठाकर बानप्रस्थ धर्म का पालन करने के लिए वन चले गए। यही भारत की परम्परा रही है।

इस प्रकार सूर्य वंश में धर्मज्ञ, शूर तथा विद्वान् राजाओं का चरित्र सुनाकर मार्कण्डेय विरत हो गए। मार्कण्डेय पुराण का अन्त यहीं होता है। वेद और लोक की मर्यादाओं का सफल निरूपण करने वाला यह पुराण भारतीय समाज, धर्म तथा अध्यात्म का कोश कहा जा सकता है। वेद, सांख्य योग, पांचरात्र तथा शैवशाक्त चिन्तत धाराओं का अद्भुत सन्निवेश इसमें हुआ है, प्राचीन भारतीय जीवनादर्श इसमें ओत-प्रोत हैं।

देवीतत्त्व मीमांसा

मार्कण्डेय पुराण के ८१ से ९३ अध्यायों तक का प्रकरण सप्तसती के नाम से प्रसिद्ध है। मेधाऋषि के द्वारा उपदिष्ट देवी माहात्म्य सुनकर सुरथ राजा एव समाधि वैश्य का मोह दूर हो गया था। सुरथ राजा ही सावर्णि मनु हुए। महामाया की उपासना ने राजा को भोग तथा समाधि वैश्य को मोक्ष प्रदान किया महामाया भोग और मोक्ष प्रदान करती हैं—

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा। ९३।३

मार्कंडेय के परवर्ती विद्वानों ने ७०९ श्लोकों की गणना करते हुए इसे सप्तशती कहा। कात्यायनी तन्त्रानुसार ५७८, रुद्रयामल के अनुसार ५८० तथा ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार ५८४ एवं ६ अर्ध श्लोक मिलने के प्रमाण हैं। मूल पुराणान्तर्गत १३ अध्यायों के देवी महात्म्य की श्लोक संख्या ४९४ मिलती है। अतः श्लोक संख्या के आधार पर इसे सप्तशती नहीं कहा जा सकता। दुर्गा इस ग्रन्थ का बीज है, वही चेतनारूप में प्राणिमात्र में निवास करती है। जगत् मात्र के कार्य व्यापार उन्हीं के द्वारा संभव हो रहे हैं।[1] अथर्ववेद में उस देवी को सती

१. चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्यस्थिता जगत्। ८५।३४

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्। ऋग्वेद १०।१०।१२५।४

कहा गया है —

ते देवा उपाशिक्षन् मा अजानात् वधू सती ईशा वशस्य या जाया सा वर्णमारभत ।

अर्थात् उन देवताओं ने जानना चाहा कि शरीर में किसका प्रकाश है। तब वह सती वधू उनकी इच्छा को जान गई और उसने बताया कि ईश्वर की जो ईश्वरी जाया है, वह इस वर्ष का आभरण करती है। सती मूलक होने से इसे सती तथा उसकी अंगभूता सात माताओं का उल्लेख करने वाली होने से इस कृति को सप्तसती कहा जाएगा।

पुराणकार ने इसकी वेद मूलकता प्रतिपादित करने के लिए पक्षियों के संवाद की योजना की थी। विन्ध्याचल पर निवास करने वाले पिगांक्ष, विरोध, सुमुख तथा सुपुत्र नाम के चारपक्षियों ने जैमिनि के प्रश्नों का उत्तर दिया। ये पक्षि उच्चकोटि के तत्त्वज्ञानी थे तथा मनुष्य की बोली बोलने में प्रवीण थे। ये विपुलस्वान् मुनि के पौत्र थे। इनके पिता सुकृष ने पक्षी के रूप में आए इन्द्र का उनकी इच्छानुसार आतिथ्य करने के लिए इन्हें देहत्याग की आज्ञा दी। इन्होंने असमर्थता व्यक्त की तो पक्षी की योनि में जन्म लेने का शापमिला। तदनुसार द्रोण की पत्नी तार्क्षी के गर्भ में आए। संयोग से तार्क्षी कुरुक्षेत्र गई। वहाँ महाभारत के युद्ध में तीर लगने से उसका पेट फट गया, पेट फटते ही चार अण्डे भूमि पर गिरे। भगदत्त के हाथी का घंटा टूट कर उन पर गिरा। वहाँ ये सुरक्षित पड़े रहे। एक दिन वहाँ से गुजरते हुए शमीक ने घंटे के नीचे पक्षी शावकों के शब्द सुने। आश्रम में लाकर उन्हें पाल लिया। जब वे बड़े हुए तो ऋषि की आज्ञा से विन्ध्य पर्वत पर रहने लगे। ये पक्षी सुपण थे। शास्त्र निष्णात थे।

सामान्यपक्षिणो नैते केऽप्येते द्विजसत्तमाः। ३।८२)

ऋग्वेद के दशम मण्डल के १४२ वें सूक्त में ८ मंत्रों के ऋषि भी शाङ्र्ग पक्षी कहे जाते हैं। उनके नाम हैं जरिता, द्रोण, सरिसृक्क तथा स्तंभ। महाभारत के आदि पर्व में मन्दपाल ऋषि के भी चार पक्षी पुत्रों का उल्लेख है तथा उनके नाम जरितारि, सारि सृक्क, द्रोण और स्तम्भ बताए गए हैं। इन चारों पक्षियों को व्यास जी ने ब्रह्मवादी कहा है। ऋग्वेद के उक्त सूक्त में अग्नि की स्तुति की गई। ताण्ड्य ब्राह्मण में 'यज्ञो वै सुपर्णं कृत्वा चरति' (१४।३।१०) कहा गया है। इसका तात्पर्य है कि अग्नि के प्रतिपादक सुपर्ण हैं। सुपर्ण त्रिक् हैं, उसे ऋक यजु, और साम का प्रतीक कहा जा सकता है। पूर्वाह्न की ज्योति ऋक् रूप में, मध्याह्न की ज्योति यजुः रूप में तथा सायंकालीन ज्योति साम रूप में आदित्य (अदिति अथवा प्रकृति से उत्पन्न जगत्) का स्तवन करती हैं।[1] यह त्रयी विष्णु का अंग है और विष्णु रूप आदित्य में रहती है। अदिति द्यु है, अन्तरिक्ष है, पृथ्वी है। अतः सूर्य, वायु तथा अग्नि रूप में मूल शक्ति निवास करती है। शक्ति को रौद्रा कहा है क्योंकि रुद्र वायु रूप भी है, अग्नि रूप भी है तथा आदित्य रूप भी है।[2] सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मा ऋक् स्थितिकाल में विष्णु यजुः तथा संहार काल में रुद्र साम मय हैं—

सर्गादौ ऋङ् मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः रुद्रः साममयोऽन्ताय तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः। वि० पु० २।११।१३

इस प्रकार पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्यु में एक शक्ति ही अग्नि, वायु तथा सूर्य रूप में स्थित है। समस्त मूर्त्त अमूर्त्त जगत् इससे स्थित है। यह शक्ति सती है। यज्ञीय अग्नि है। इसकी रक्षा चार वेदों द्वारा ही संभव है अतः अग्नि रूपा देवी तत्त्व के साक्षी उक्त चार पक्षी या ब्रह्म वादी सुपर्ण कहे गए हैं। सुपर्ण से स्तुत होने के कारण अग्नि सुपर्णी है। पुनः वाक् सुपर्णी है जिसकी संताने गायत्री, त्रिष्टुम् तथा जगती हैं। यही तीन तत्त्व अग्नि, सोम तथा इन्द्र–वायु हैं। तीनों की समष्टि आदित्य है।

अग्नीषोमावब धुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषय कल्पयन्तः गायत्री त्रिष्टुभं जगतीं त्रैष्टुभ बृहदर्कों स्वरामरेतीम्।

---

१. ऋचः स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः क्षयेरविम्। विष्णु पु० २।११।१०

२. अग्निर्वा रुद्रः तस्य द्वैतन्वो घोरान्या च शिवान्या च ऐतरेय ज्योतिरग्निः–शतपथ।

वाक् देवी कारण रूप से समस्त विश्व की रचना करती है, वायु की तरह व्याप्त है तथा स्वेच्छा से कर्म में प्रवृत्त होती हैं। पृथ्वी आकाश से परे है। सम्पूर्ण भूतों के उत्पत्ति स्थान परमात्मा में तथा बुद्धि की व्यापक वृत्तियों में कारण स्वरूप चैतन्य के रूप में विराजमान हैं।

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।

ऋग्वेद १०।१०।१२५ ७,८

वैदिक अग्नि और देवी पर्याय हैं। तभी तो उसे अग्नि वर्णा, ज्ञान दीप्त, कर्मफल दात्री तथा असुर संहर्त्री कहा गया है—

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं, वैरोचनीं कर्म फलेषु जुष्टाम् दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्ये ते नमः।[1]

इसी तथ्य को ध्यान में रखकर प्रथम चरित्र का ऋषि ब्रह्मा, वेद ऋक् तथा तत्त्व अग्नि कहा गया है। द्वितीय चरित्र का ऋषि विष्णु, वेद यजुः तथा तत्त्व वायु कहा गया है और उत्तम चरित्र का ऋषि रुद्र, वेद साम तथा तत्त्व सूर्य कहा गया है। विष्णु पुराण (२।११।१०–१४) में इस योजना का शास्त्रीय आधार उपलब्ध होता है। सप्त सती के ये आख्यान क्रमशः ऋक्, यजुः तथा साम अग्नि और पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्यु स्थानीय शक्ति के परिचायक हैं।[2] शार्ङ्ग पक्षियों में जरिता ने भी कहा था—

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्य न्यदस्त्याप्यम्।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति तआरे हिंसा नामप दिद्युमा कृधि। १०।१४२।१

यहाँ त्रिवरूथ शब्द विचारणीय है अग्नि के संदर्भ में यह पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्यु स्थानीय है तथा जरिता अथवा स्तोता के संदर्भ में नाभि, हृदय तथा मस्तिष्क में रहने वाले अर्थ का बोधक है। आगे अग्नि को जल से उत्पन्न होने वाला कहा है—

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनं।१०।१४२।७

इसका तात्पर्य भी यही है कि अग्नि रूपा देवी की योनि 'अप्सु' है अर्थात् बुद्धि की व्यापक वृत्तियों में मेरे कारण स्वरूप चैतन्य ब्रह्म की स्थिति है। वाग्देवी ने कहा भी है—

मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। १०।१२५।७

सप्तसती के पंचम अध्याय में 'या देवि सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता' आदि का उल्लेख इसी कारण हुआ है। यह अग्नि जंगलों का भक्षण करते हुए आगे बढ़ता है, उर्वरा भूमि को खिल बना देता है। पेड़ गुल्मों तथा सुख समृद्धि के साधनों को वैसे ही जला देता है जैसे नाई के शादि मूंड देता है। द्रोण इसके उग्ररूप से बचने की प्रार्थना करता है—

उतवा उपरि वृणक्षि वप्सद्वहोरग्न उलपस्य स्वधावः उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेंति तविषीं चक्रुधाम।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्रभूम। १०।१४२।३, ४

सप्तसती में भी कहा गया—

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति।

अग्नि का यह असौम्य रूप ध्वंसकारी है पर सौम्य रूप मंगलकारी है। सोम होकर अग्नि लता, वीरुध, सस्य तथा जल में अमृत संचार करता है। स्तम्भ कहता है—

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः हृदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे।१०।१४२।८

अर्थात् तुम्हारे आगमन पर आने जाने वाले मार्ग दूर्व तथा पुष्पों से भर जायें। कमलों से भरे

---

१. देव्यथर्वशीर्ष, ९

२. ऋचः पूर्वाह्णे दिवि देव ईयते। यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः साम वेदेनास्तमये महीयते।

सरोवर हों। ये समुद्र के बीच में बने वास स्थान हैं। तात्पर्य यह कि अग्नि रूपा देवी ऊर्जा के कारण भौतिक उन्नति देने वाली, धन, यश, आजीविका प्रदान करने वाली है।

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां, तेषां यशांसि न च सीदति धर्म वर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा, येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना। ८४।१५

अग्नि के उग्र तथा सोम्य रूपों को लक्षित कर कहा गया—

सोम्यासोम्यतराशेष ।८१।८१

इसका वैदिक तात्पर्य यह है कि अन्तरिक्ष मण्डल तक वायु अग्नि प्रधान होने से उपद्रावक है। असोम्य है तथा द्यु अर्थात् परमेष्ठि मण्डल तक वायु सोम प्रधान है, शान्तिप्रद है। सोम ही अम्बा है, अग्नि प्रधान वायु रुद्र है, सोम प्रधान होने से उसे साम्ब सदाशिव कहा जाता है। इस प्रकार एक चेतन शक्ति ही महा-काली, महा लक्ष्मी तथा महा सरस्वती रूप में कार्यवश भिन्न-भिन्न नाम ग्रहण कर रही हैं। सप्तसती के तीन चरित्रों में तथा शरीर रूपी अश्वत्थ में साम्य रखा गया है।

मूलतः ब्रह्म रूपाय, मध्यतो विष्णु रूपिणे अग्रतः शिव रूपाय अश्वत्थाय नमोनमः।

गीता में 'ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं' कहा गया है। वह पृथ्वी, अन्तरीक्ष तथा द्यु के लिए ही है। तीनों चरित्रों में क्रमशः यदि शक्तियाँ कही गई हैं। तथा देह में भी मूलाधार से मणिपुर तकब्रह्मा–काली, अनाहद से विशुद्ध तक विष्णु–लक्ष्मी तथा आज्ञा से सहस्रार तक रुद्र–सरस्वती का व्यापार दिखाया गया है। इन्हें भी क्रमशः अग्नि, वायु और सूर्य के त्रिक् में समाविष्ट किया जा सकता है। जरिता ने प्रथम दो मंत्रों में नंदा (पशु पाइव), द्रोण ने रक्त दन्तिका (तविषीं, वप्सत्) सारिसृक्क ने दुर्गा (उत्तानां भूमि अन्वेषि), भ्रामरी (तेवाजः), भीमा (प्रर्घिनीठ सेना) तथा स्तंभ ने क्रमशः शताक्षी और शाकंभरी रूपों का ही परोक्ष कथन किया है। शताक्षी के लिए समुद्रस्य निवेशनं तथा शाकम्भरी के लिए हृदाश्च पुण्डरीकाणि प्रयोग किए हैं ९१। वें अध्याय में मार्कण्डेय ने इन रूपों की चर्चा की है। वेद और पुराण दोनों ही रूपक शैली में बात कहते हैं।

देवी भागवत के सप्तम स्कन्ध में आया है कि दुर्गम ने वेद को चुरा लिया। यज्ञीय अग्नि की रक्षा न होने से अकाल पड़ गया। पानी का अभाव हो गया। तब अग्नि रूपा देवी का स्तवन होने से दुर्गम का वध हुआ। वेदत्रयी मुक्त हुई। यज्ञीय अग्नि के संवर्द्धन से वर्षा हुई। मानों प्रकृति रूपी देवी करुणार्द्र होकर वारिधारा छोड़ने लगी। कन्दमूल पैदा हुए और जगत् की रक्षा हो सकी। ऋग्वेद के १४२ सूक्त की अन्तिम दो ऋचाओं के भावार्थ का पल्लवन इन आख्यायिकाओं में हुआ है।

अग्नौ होमाद्य भावस्तु वृष्ट्यभावोऽप्य भून्नृप वृष्टेरभावे सशुष्कं निर्जलं चापि भूतलम्।
नवरात्रं महावृष्टि रभूनेत्रोद्भवैर्जलैः, तर्पि स्तेन ते लोका ओषध्यः सकलाअपि।
स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा। मा० ७।२८।२२, ३९,४७

इस आख्यान का तात्पर्य अग्निहोत्र के लिये प्रेरणा देने में है। देवी कहती हैं कि वेदवाणी मेरा शरीर है, इसकी पुष्टि अग्निहोत्र से होती है।

ममेयं तनुरुत्कृष्टा पालनीया विशेषतः। ७।२८।७७

मार्कण्डेय में भी इनका सविस्तार कथन हुआ है। मार्कण्डेय के पक्षी भी विन्ध्या वासी हैं तथा देवी भी विन्ध्याचल निवासिनी हैं। भागवतों के अवतारवाद की तरह शाक्तों के अवतारवादी दृष्टिकोण को इसी प्रसंग में लेखक ने प्रस्तुत किया है—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्। ९१।५५

जैसा कि कहा जा चुका है अग्निसोम की अभिव्यक्ति ही शिव और शिवा के रूप में हुई है। लिंग पुराण (२४।७) में मार्कण्डेय-युधिष्ठिर संवाद में आया है—

अहमग्निर्महातेजाः सोमश्चैषा महांबिका अहमग्निश्च सोमश्च प्रकृत्या पुरुषः स्वयं।

मार्कण्डेय का 'त्वं स्वाहा त्वं स्वधा' कहना भी उक्त सिद्धान्त का समर्थन करता प्रतीत होता है।

पुराणकारों ने शक्ति को शिव परिवार के साथ सदस्य रूप में प्रस्तुत किया है। पार्वती के पुत्र कार्त्तिकेय, गणेश, क्षेत्रपाल तथा पुत्री कौशिकी (शरीर कोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा मा० ८६।८५) तथा पति शिव देवताओं की रक्षा के लिये युद्ध करने वाले चित्रित किये हैं। ऋग्वेद में दशम मण्डल के १५९ सूक्त में ६ ऋचाएँ हैं। सायण ने इन्हें पुलोमतनया शचीका आत्मस्तवन बताया है। इसे पार्वती की प्रशंसा में भी संक्रमित दिखाया जा सकता है, एक मन्त्र लीजिये।

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः। १५९।३

अर्थात् (मम) मेरे (पुत्राः) (शत्रुहणः) शत्रुओं को मारने वाले हैं और मेरी पुत्री (अथो मे दुहिता) भी शत्रुओं पर खूब चमकने वाली है और (उत) मैं भी शत्रुओं को अच्छी तरह जीतने वाली (संजया) हूँ। मेरे पति में भी (पत्यौ, भर्तरीन्द्रे) सबसे श्रेष्ठ (श्लोक उत्तमः) शत्रु विजय सम्बन्धी यश है। पुराणकार ने शिव परिवार की कल्पना उक्त मन्त्र के परिप्रेक्ष्य में की है। वागांभृणी सूक्त में भी कहा गया है—

अहं जनाय समदं कृणोमि।१२५।६

सप्तसती का प्रारम्भ सुरथ और समाधि के संवाद से हुआ है। मार्कण्डेय के अतिरिक्त देवी भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी सुरथ समाधि का उल्लेख मिलता है। ब्रह्मवैवर्तकार ने कथा में अन्तर रखा है। वहाँ ध्रुव के प्रपौत्र नन्दि से पराजित होकर सुरथ पुष्पभद्रा के तट पर गये तथा वहाँ समाधिवैश्य को देखा। दोनों फिर पुष्कर गये जहाँ सुमेधाऋषि के दर्शन किये।

एकाकी सुरथो भीतो नन्दिना च बहिष्कृतः निशायां हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्।
वैश्येन सार्द्धं नृपतिर्जगाम मेधसाश्रमम्, पुष्करं पुण्य क्षेत्रञ्च भारते सताम्। ४२।७

मार्कण्डेय के अनुसार स्वारोचिष मन्वन्तर का राजा सुरथ कोलाविध्वंसी लोगों से परास्त होकर मेधाऋषि के आश्रम में गया। वहाँ परिवार से निष्कासित समाधि वैश्य भी आया। दोनों ने शान्ति और सुख के लिये मेधा की शरण ग्रहण की। ऋषि ने महामाया का स्वरूप बताकर मधुकैटभ, महिषासुर तथा शुंभ निशुंभ का चरित्र और देवी महात्म्य सुनाया।

यह आख्यान भी प्रतीकात्मक है। सुरथ का अर्थ है शरीरासक्त कर्मनिष्ठ (पुरुष शरीरं रथमेव तु) तथा समाधि का अर्थ है (एकाग्र बुद्धि)। द्वन्द्व और संघर्ष भरे जीवन में दोनों यथार्थ जगत् से भागकर अन्तर्मुख हो सुमेधा (सद्विचार) की शरण में जाते हैं। विचार शक्ति से उन्हें माया के विद्या-अविद्या रूप का ज्ञान होता है। दोनों तत्त्वचिन्तन करते हैं। एक कर्म मार्ग में प्रवृत्त होता है, दूसरा ज्ञान मार्ग में। उपासना दोनों करते हैं। कर्ममार्गी उपासना से सुरथ को भोग सिद्धि मिलती है तथा ज्ञान मयी उपासना से समाधि को मोक्ष मिलता है।

ततो वव्रे नृपो राज्य मविभ्रंश्यन्यजन्मनि अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रु बलं बलात्
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युति कारकम्। ९३।१२, १८

दोनों क्रमशः प्रवृत्ति तथा निवृत्ति मार्गी विचार धारा के प्रतीक हैं। प्रवृत्ति-निवृत्ति प्रधान भारतीय संस्कृति में शक्ति की आराधना उभयवर्ती बताई गई है।

तमुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा।

मधुकैटभ की कथा

विष्णु एकार्णव में सोए हुए थे। नाभिकमल से ब्रह्मा निकले। विष्णु के कर्णमल से उत्पन्न मधुकैटभ ब्रह्मा को खाने के लिये बढ़े। ब्रह्मा ने विष्णु को जगाने के लिये योगमाया की स्तुति की। विष्णु जग गये उनका मधुकैटभ से युद्ध हुआ। पांच हजार वर्ष युद्ध होने के बाद विष्णु को मधुकैटभ ने वरदान के लिये कहा। विष्णु ने कहा, तुम दोनों का वध मेरे हाथ से हो। मधुकैटभ ने कहा—वहीं मारिये जहाँ पृथ्वी जल से युक्त न हो। विष्णु ने जंघा पर रखकर असुरों को मार डाला।

इसका तात्पर्य है, एकार्णव प्रलय की स्थिति है। शेष विराट् की कुण्डलिनीवत् आधार शक्ति है। योग निद्रा महासुषुप्ति रूपी बीज है। नाभिपद्म स्पन्द स्वरूपा रजोगुण की विमर्श शक्ति है। ब्रह्मदेव प्रणव हैं, ध्वनि से शब्द फिर श्रोत्र, आकाश का प्रसार होता है। आकाश नारायण के श्रोत्र हैं। मैल नाद का आवरण है। इनमें एक प्रमाद मधु है तथा दूसरा भ्रान्ति-विक्षेप कैटभ है। ज्ञान रूपी ब्रह्मा के ये शत्रु हैं। नारायण के जागने पर, तत्त्व ज्ञान होने पर इनका नाश होता है। मधुकैटभ को क्रमशः अंगिरा और भृगु भी कहा जा सकता सकता है। ये मिठास और खारेपन के प्रतीक हैं। दोनों जल रूप हैं, पृथ्वी के बनने में बाधक हैं। जल की चार अवस्थाएँ अम्भः, मरीचि, मर और आप ही समष्टि रूप में ब्रह्मा हैं। विष्णु रूप सूर्य अभी तमस् में है। तमस् योग निद्रा है। ऐतरेय ब्राह्मण में जल की उक्त चार अवस्थाओं का निरूपण है। चार मण्डलों के अतिरिक्त पांचवाँ मण्डल पृथ्वी है। यही पाँच स्तर पाँच हजार वर्ष के प्रतीक हैं। इनमें पहले फेन फिर बुद्बुद वायु संघर्ष से मृत्स्ना या पंक बनता है, पंक वायु और ऊष्मा से सिकता बनता है। यह पृथ्वी की पूर्वास्था है। पद्म सूर्य किरण है, इसका सम्पर्क होने से शर्करा तथा अश्मा, अयस् और स्वर्ण का निर्माण होता है। यही कैटभ है। उर्वी विष्णु के जघन अथवा सूर्य की किरणें हैं इन पर काटने से अर्थात् जल के अंश के दृढ़ होने से पृथ्वी का निर्माण होता है अर्थात् शर्करा तथा शकरा क्रमि के नष्ट होने पर पृथ्वी स्थिर होती है। इस पृथ्वी का शुद्ध जल ही जीवन का आधार है।[1] इस प्रकार सृष्टि प्रक्रिया की सूचना भी इस प्रकरण में मिलती है। पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ने पुराण परिशीलन में इसकी व्याख्या की है। अर्थात् यह आख्यान सत् सत्ता प्रतिपादक है। डा० वासुदेव शरण ने पारमेष्ठ्य असुर के संदर्भ से आख्यान की व्याख्या की है। क्योंकि भूततत्त्व का नाम असुर है। अतः असुर भाव की जन्मभूमि परमेष्ठी प्रकृति है। भूतत्त्व की व्याख्या यहाँ विद्यान है।

महिषासुर वध

इस प्रकरण में अन्तरिक्ष तत्त्व की व्याख्या है। प्रजापति ने एक बार पुत्री के साथ बल प्रयोग किया। देवताओं ने अनर्थ रोकने का प्रयत्न किया, पर सफलता न मिली। जब किसी एक देवता में रोकने का सामर्थ्य न देखा गया तब सबने मिलकर अपना घोर रूप एकत्र किया। इससे रुद्र का प्रादुभाव हुआ। रुद्र से देवताओं ने कहा कि प्रजापति का सिर काट डालो। रुद्र ने कहा कि क्या पारिश्रमिक मिलेगा। देवताओं ने कहा कि तुम्हें पशुपतित्व मिल जायगा। रुद्र ने प्रजापति का शिरच्छेद किया। प्रजापति का यह पराक्रम (पद) पवित्र है, देवताओं ने कहा, इसे दूषित न किया जाए। अर्थात् प्रजापतित्व का दुरुपयोग न हो।[2] इसके लिए मा दुषत् शब्द का प्रयोग किया गया। परोक्ष भाषा में मानुष हो गया यह। और वर्तमान संदर्भ में हो गया महिष। ऐतरेय ब्राह्मण के १३ वें अध्याय के नवम खंड में यह कथा आई है।

---

१. आधारभूता जगस्त्वमेका, मही स्वरूपेण यतः स्थितासि
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलंघ्य वीर्ये। मा० ९१।४

२. प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुष समित्यन्ये तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यैत्तं देवा अपश्यन्नकृतं वै प्रजापतिः करोतीति ते तमैच्छन्य एनमारिष्यत्येतमन्योन्यस्मिन्नाविदस्तेषां या एव घोरतमास्तन्व आसंस्ता एकधा समभरंस्ताः संभृता एष देवोऽभवच्दस्यैतद्भूततवन्नाम।

पुराण में इन्द्र का स्थान महिष ने ले लिया। प्रजापति महिष ने शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित की। प्रजा की शक्ति का अपहरण कर अपने बल का दुरुपयोग किया। यही दुहितृगमन था।

सूर्येन्द्राग्न्य निलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च अन्येषा चाधिकारान् स स्वयमेवाधि तिष्ठति। ८२।६

देवता उसके अनर्थ को न रोक सके। सबने मिलकर विष्णु, शिव से वृत्तान्त कहा। तब देवताओं के शरीर से तेज निकला और पुंजीभूत तेज से नारी विग्रह का जन्म हुआ।

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्व देव शरीरजम् एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयंत्विषा। ८२।१३

कवि अब रूपक का सहारा लेते हुए कहता है कि शंकर के तेज से उसका मुख, यम के तेज से केश, विष्णु के तेज से भुजा, चन्द्रमा के तेज से स्तन, इन्द्र के तेज से कटि, वरुण के तेज से जंघा, पृथ्वी के तेज से नितम्ब, ब्रह्मा के तेज से चरण, सूर्य के तेज से उँगली वसुओं के तेज से हथेलियाँ, कुबेर के तेज से नासिका, प्रजापति के तेज से दाँत तथा अग्नि के तेज से नेत्र बने। सन्ध्या के अंश से भौंहे तथा वायु के अंश से कान बने इस प्रकार देवताओं के तेज से विराट् शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ।

अन्येषां चैव देवानां तेजोराशि समुद्भवाम् ततः समस्त देवानां समंवस्तेजसा शिवा।८२।१८

यहाँ ऐतरेय के रुद्र शिवा बन गए हैं। उनके चरणों से धरती दब गई तथा किरीट आकाश छूने लगा।

पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोलिखिताम्बराम्। ८२।३८

यह योजना ऋग्वेद की निम्न पंक्ति के अनुसार है—

ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि। १०।१२२।७

शिवा ने महिष का शिरच्छेद किया। देवता प्रसन्न हुए।

तया महासिना देव्या शिरश्छित्वा निपातितः। हर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः।

देवी को सिंह वाहिनी पद मिला, पशुपतित्व भी। वैकृतिक रहस्य में कहा गया है कि देवी के सामने बाएँ भाग में पशु का पूजन (महिष रूप में) करना चाहिए क्योंकि उसने सायुज्य पा लिया तथा दाहिने भाग में सिंह का पूजन करना चाहिए क्योंकि वह धर्म है।

पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया दक्षिणे पुरतः सिंहम् समग्रं धर्ममीश्वरम्।

देवी का 'ईशया' विशेषण पशुपतित्व पद के सूचनार्थ ही है। क्योंकि ऐतरेय में भी आया है—

'पशूनामाधिपत्यं तदस्यैतत्पशुमन्नाम'।

उषा पक्ष में तमस् महिष है, उसका बाध उषा करती है तब इन्द्र (सूर्य) को पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। ऋग्वेद में आया है। (१०।१८९।२)

अन्तश्चरति रोचनाऽस्य प्राणादपनती व्यख्यन महिषोदिवम्।

चित् शक्ति के स्पन्दन केन्द्र सूर्य देवपात्र हैं, प्रकाश हवि है, इसे तमस् का महिष खाना चाहता है। प्राण बल देवता हैं, अपान बल उमा है। प्राण-अपान का संतुलन महिष को हटाता है। केवल प्राण बल असफल रहता है। द्युलोक ही इन्द्र लोक है। प्राणापान की ज्योति (रोचना) ने महिष का वध किया। यदि प्राण इन्द्र और नीहार महिष दुर्बल न होते तो सृष्टि उत्पन्न न होती। इसीलिए महिष के मरने पर देवताओं ने स्तुति करते हुए कहा—आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति में कारण हैं। आप में सत्त्व गुण, रजोगुण और तमोगुण मौजूद हैं तो भी दोषों के साथ आपका ससर्ग नहीं होता। आप सबका आश्रय है। यह जगत् आपका अंश भूत है क्योंकि आप सबकी परा प्रकृति (अव्याकृत) है।

हेतुः समस्त जगतां त्रिगुणापि दोषैः न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूतमव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या। ८५।७।

इसके अतिरिक्त राष्ट्र की संगठनात्मिका शक्ति का नाम भी दुर्गा है। राष्ट्र भक्त देवता हैं तथा राष्ट्र और समाज विरोधि महिष। संगठन के विना समाज रूपी इन्द्र की रक्षा नहीं की जा सकती। देवी सूक्त भी कहता है—

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।

व्यक्ति की सत्ता की अपेक्षा केन्द्र मुखी सत्ता निरापद होती है। प्रथम चरित्र पशुबल और दूसरा चरित्र मनुष्य बल की प्रचुरता के प्रतीक हैं। मधुकैटभ में पशुबल है, बुद्धि नहीं। पहले में आदिम समाज की पशु शक्ति है और दूसरे में मध्यकालीन समाज की संगठित जन शक्ति। शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए देवी और महिष का संघर्ष हुआ है। क्योंकि देवताओं ने देवी से वरदान मांगते हुए व्यक्ति का भयमुक्त होना तथा पुत्र पत्नी धन धान्य से सम्पन्न होना ही माँगा है।

संस्कृता संस्कृता त्वन्नो हिंसेथाः परमापदः तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्। ८५।३५, ३७

शुम्भ निशुम्भ आख्यान

यह समाज के चरम विकास का आख्यान है। शुम्भ निशुम्भ ने समाज विरोधी तत्त्वों का अद्भुत संगठन रक्त बीज के रूप में किया। इससे दुर्दान्त और उद्‌ण्ड असुरों को पराजित करना कठिन हो गया। एक रक्त बीज अनेक रक्त बीजों को जन्म देकर मर पाता था।

रक्त बिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः। ८१।४१

देवी ने भी अपनी असंख्य शक्तियों का विस्तार किया किन्तु अनेकता में पूर्ण सफलता न मिली। धूम्र लोचन, चण्ड मुण्ड तथा रक्त बीज के वध के बाद निशुम्भ मारा गया। शुम्भ ने कहा कि दूसरों के बल पर युद्ध करके मानिनी क्यों बनती हो? देवी ने कहा तुम असुर हो, एकता में अनेकता देखते हो, मैं तो अनेकता में एकता की पक्षधर हूँ।

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्योमद्विभूतयः। ९०।५

अभेदता के कारण शक्ति को विजय मिली। देवता विजयी हुए और असुर पराजित हुए अनेकता के कारण। अमृत अखंड दृष्टि में है, खंड दृष्टि में मृत्यु है। गीता में इसीलिए कहा गया।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु। ७।१

युद्ध विग्रह तथा अशांति भाषा, वर्ग, समाज, वर्ण, धर्म और राष्ट्र के नाम पर होती है। दैवी शक्ति सम्पन्न समाज तो अनेकता में एकता का दर्शन करता है। उसकी दृष्टि सर्वात्मवादी होती है। 'सर्वभूता यदा देवि' तथा रूपैरनेकै बहुधाऽऽत्ममूर्त्ति' तथा विश्वार्त्तिहारिणी' प्रार्थना मार्कण्डेय इसीलिए करता है। देवी भी लोकोपकार के लिए अपने अवतार ग्रहण का उद्देश्य निरूपित करती हैं। देवी माहात्म्य की महत्वपूर्ण फल श्रुति है, संगठन की फूट हटाकर उसे दृढ़ करना। प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र और वर्चस्वी समाज की यही आधार शिला है।

संघात भेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम्। ९२।१८

वैभव और आविष्कारों से सम्पन्न समाज का निर्माण सभी वर्गों, भाषाओं, आचार व्यवहार तथा रीति-रिवाज वाले व्यक्तियों के संगठन से ही हो सकता है। ऐसे संगठित समाज और राष्ट्र को ही देवी का वरदान मिलता है—

तयैतन्मोहिते विश्व सैव विश्वं प्रसूयते सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा रिद्धि प्रयच्छति। ९२।३७

इस प्रकरण में मार्कण्डेय ने एक गूढ़ बात कही है, शुंभ निशुंभ के मारने पर देवता अग्नि को आगे कर कात्यायनी की स्तुति करने गए। कात्यायनी चान्द्री शक्ति है। अग्नि द्यु स्थान में सोम होकर पुनः पृथ्वी पर आता है। सूर्य संवत्सर है, उसमें अदिति भाव है पर चन्द्र में दिति अदिति दोनों भाव हैं। १५ दिन प्रकाशमान होने पर अदितिभाव और १५ दिन तमसाच्छन्न होने पर दिति या असुरभाव रहता है। धूम्र लोचन, चण्ड मुण्ड तथा रक्त बीज चन्द्र मण्डल और पृथ्वी के बीच सोमद्रव को रोकने वाले अन्तराय हैं। कृष्ण पक्ष के दो सप्ताह शुंभ निशुंम्भ हैं। आवरण के कारण होने से इन्हें समवेत रूप में वृत्र भी कहा जाता है। चान्द्री शक्ति अग्नि ने इनका वध किया। चन्द्र या सोम का ओषधि, वनस्पति तथा जल भोज्य रूप पुष्टि कारी है ऐतरेय ब्राह्मण में अग्नि और असुरों के युद्ध की कथा प्रतीक रूप में आई है—

देवा वा असुरैर्युद्धमुपप्रायन्विजयाय तानग्निर्नान्वकामयतैतुं तं देवा अब्रुवन्नपि त्वमेह्यस्माकं वै त्वमेकोऽसीति स नास्तुतोऽन्वेष्या मीत्यब्रवीत्स्तुत नु मेति तथेति तं ते समुत्क्रम्योपनिवृत्त्यास्तुवंस्तांस्तुतोऽनु प्रैत। १४।१

उस अग्नि ने विजय के लिए तीन श्रेणि वाली सेना बनाई। ब्राह्मण में त्र्यनीक शब्द आया है। सायण ने प्रातः सवन, माध्यन्दिन तथा तृतीय सवन अर्थ किया है। प्रातः तमस को धूम्र लोचन, मध्याह्न को चण्ड मुण्ड तथा सायं को रक्त बीज कहकर पुराणकार ने अग्नि का युद्ध दिखाया है। असुर पराभूत हुए और अग्नि विजयी हुई। मार्कण्डेय ने इस प्रतीक के लिए ही 'वह्निपुरोगमास्ताम्' का प्रयोग किया है। तात्पर्य यह कि अग्निषोम की व्याख्या में सोम तत्त्व की चर्चा इस चरित्र का मूल लक्ष्य समझना चाहिए।

साधक को सोमरस दान पर उत्तम यज्ञ का फल देने वाली अग्नि ही देवी है। इस तथ्य का प्रतिपादन इस आख्या में हुआ है। देवी सूक्त का यह कथन यहाँ उल्लेखनीय है।

अहं सोम माहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते।

मार्कण्डेय का ८६वाँ अध्याय इसी पोषण प्रक्रिया का सूचक है। विश्व के इतिहास में ऐसा प्रार्थना साहित्य अन्यत्र नहीं है। 'ज्योत्स्नायै च इन्दु रूपिण्यै' के रूप में इन्द्रियों की अधिष्ठातृ देवी की उपासना प्रकृति की उपासना है।

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या भूतेषु सततं तस्यै व्याप्ति देव्यै नमोनमः। ८६।७७

निष्कर्ष यह कि मार्कण्डेय का सप्तसती आख्यान पूर्ण या वैदिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

उत्तम चरित्र वैदिक योग सिद्धान्त का भी समर्थन करता है। उत्तम चरित्र सरस्वती चरित्र है। शब्दमयी ज्ञान रूपा होने से कुण्डलिनी को ही सरस्वती कहा जाता है परा आधा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी पूरे तीन कुण्डल हैं। शक्ति होने से वह चिन्मयी है। 'चितिरूपेण या कृत्स्नम्' इसीलिये कहा गया है। यह चान्द्री शक्ति है क्योंकि चन्द्रमण्डल से क्षरने वाली है। योग शिखोपनिषद् में कहा गया है—

सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात् मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने। (६।३)

धूम्रलोचन इच्छा, रक्त बीज क्रिया तथा शुंभ-निशुंभ ज्ञान कुण्डल हैं। आधाचिति रूप कुण्डल है जिसे अर्धमात्रा कहा गया है। प्राणशक्ति रूपी सूर्य चितिशक्ति रूपी चन्द्रमा के साथ घटता बढ़ता रहता है। चितिशक्ति में प्राण का आरोहण अमृत स्राव कराता है।

विषं वर्षति सूर्योऽसौ स्रवत्य मृत मुन्मुखः तालुमूले स्थितश्चन्द्रः सुधां वर्षत्यधोमुखः। यो० शि० ५।३३

कुण्डललिनी के ऊर्ध्वगमन पर अधोमुखी सूर्य चन्द्रमण्डल को प्रकाशित करता है, उससे क्षरित अमृत का अनुभव साधक को होता है। इसके लिये ऋग्वेद (१।१५।९९) का एक मन्त्र उद्धृत है।

जातवेद से सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिंधुं दुरिता त्यग्निः

अर्थात् जातवेदा अग्नि के लिये हम सोम निचोड़ते हैं, इस कार्य के अन्तराय (आरातीयत:) को वह दग्ध कर देता है (निदहाति)। हमारे लिये वह पार्षद का कार्य करे तथा नाव के सदृश विघ्न बाधाओं से पार लगाए। मार्कण्डेय ने देवी के मुख को चन्द्रमा तथा सूर्य को महिष कहा है, निशुंभ के मरने पर शुंभ का आकाश चोरी होकर युद्ध करना (९०।२३) अधोमुखी सूर्य को ऊर्ध्वमुखी करने का संकेत है।

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।

इतना ही नहीं शुंभ के मरण से सूर्य की प्रभा के उत्तम होने का स्पष्ट संकेत पुराणकार ने दिया है। परमेष्ठी मण्डल की रुद्र वायु सौम्य हो गई। सोम बन गई। पुराणकार का परोक्ष संकेत समझिये।

ववु: पुण्यास्तथा वाता: सुप्रभोऽभूद्दिवाकर:। ९०।३१

समाजशास्त्रीय दृष्टि

पुराणकार ने आदिम युग से लेकर अपने समय तक की सृष्टि, निवास स्थान तथा जीविका के उपायों पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रकाश डाला है। प्रजा ने स्थिर और निरापद जीवन यापन करने के लिये पहले पुरों का निर्माण किया। आर्येतर जातियाँ पुरों में ही रहती थीं। मरुभूमि तथा धन्वदेश (सहारा, मरु तथा जल वाले स्थान) में कुछ लोग रहने लगे। कुछ लोगों ने पर्वतों, गुफाओं, वृक्षों और जल की परिखा वाले दुर्गों को अपना आवास बनाया। वस्तुओं की लम्बाई चौड़ाई मापने के लिये अंगुलियों से नाप नाप कर कुछ माप तैयार किये गए। इस तरह पैमाना बना। मान दण्ड की सूक्ष्म इकाई है परमाणु, उससे बड़ा त्रसरेणु है जो पृथ्वी की धूलि का कण है। उससे उत्तरोत्तर परिमाण हैं, वालाग्र, लिक्षा, यूका और यवोदर। ये एक दूसरे की अपेक्षा ८, ८ गुने बड़े हैं। ८ यवक का १ अंगुल, ६ अंगुल का एक पद, दो पद का एक बित्ता, दो बित्ते का एक हाथ होता है। ४ हाथ का एक धनुर्दण्ड होता है। इसी को नाड़िका युग भी कहते हैं। दो हजार धनुष की १ गव्यूति और ४ गव्यूति का एक योजन होता है।

तदनन्तर प्रजा वर्ग ने अपने रहने के लिये पुर, खेट, द्रोणिमुख, शाखा-नगर, खर्वट, द्रमी आदि का निर्माण किया। उन सब में ग्राम, गोशाला आदि की व्यवस्था करके वहाँ पृथक्-पृथक् निवास स्थान बनवाये जिसके चारों ओर ऊँची चाहरदिगरी हो, जो खाइयों से घिरा हो, जिसकी लम्बाई २ कोस और चौड़ाई उसका आठवाँ भाग हो वह पुर कहलाता है। उसके पूर्व और उत्तर में जल प्रवाह का होना उत्तम माना गया है। वहाँ से बाहर निकलने के लिये शुद्ध बाँस का बना हुआ पुल होना चाहिये। जिसकी लम्बाई चौड़ाई पुर की अपेक्षा आधी हो, वह खेट कहलाता है और जो पुर के चौथाई हिस्से के बराबर हो उसे खर्वट कहते हैं। जिसकी लम्बाई चौड़ाई पुर के आठवें हिस्से के बराबर हो वह द्रोणीमुख तथा जहाँ चाहरदिगरी और खाई नहीं है उसे खर्वट कहते हैं। जहाँ मन्त्री, सामंत तथा भोग पदार्थों की बहुलता हो उसे शाखानगर कहते हैं। जहाँ शूद्रों की बस्तियाँ हों, समृद्ध कामगर और मजदूर रहते हों, जो खेतों और बाग-बगीचों के बीच बसा हो, वह ग्राम। जहाँ कार्य विशेष से अन्य स्थानों से आकर लोग रहते हों, उसे बस्ती कहते हैं। जहाँ अधिकांश दुष्ट रहते हों, जहाँ के रहने वाले बलपूर्वक दूसरों की भूमि का अधिग्रहण कर लेते हों या जहाँ बटाई पर भूमि दी जाती हो, उसे द्रमी कहते हैं। ये लोग प्रायः राजा के प्रिय तथा अधिकार लोलुप होते हैं। जहाँ अमीर गाड़ियों पर सामान लादकर गोरस बेचते हों। गायों का झुन्ड साथ रहता हो तथा आवास सुलभ सामग्री संचित हो, उसे घोस कहते हैं।

काल गणना—सूक्ष्म मान निमेष=१८ निमेष=१ काष्ठा, ३० काष्ठा=१ कला, ३० कला=१ घटी,
२ घटी=६० कला=१ मुहूर्त्त, ६० घटी=३० मुहूर्त्त=१ दिन रात (दिवस),
१५ दिन रात=१ पक्ष, २ पक्ष=१ मास, ६ मास=दक्षिणायन, ६ मास=उत्तरायन,
दो अयन=१ वर्ष।

इस प्रकार नगर आदि का निर्माण कर घरों का निर्माण हुआ। घरों का निर्माण इस उद्देश्य से हुआ था कि सरदी, गर्मी, वर्षा, धूप तथा द्वन्द्वों से बचा जा सके। वृक्षों के झुरमुटों से प्रेरणा लेकर घरों का निर्माण किया। वृक्षों की छोटी बड़ी शाखाओं के अनुसार ही शालाएँ बनाई गई। लकड़ियों से घरों का निर्माण हुआ। फल और मधु खाकर जीवित रहना कठिन हो गया था क्योंकि वन कटने लगे थे और लकड़ियों का उपयोग करना मानव सीख गया था। वर्षा का जल भूमि पर एकत्र किया गया। स्रोतों और नदियों के अलावा पोखरों का निर्माण हुआ। ग्राम्य और आरण्य प्राकृतिक अन्न थे। ऋतुओं के अनुसार फलफूल की वृद्धि हुई। लोभ और राग के कारण संचय तथा संग्रह की भावना बढ़ी। फलस्वरूप पेड़, पौधों, खेतों तथा पोखरों पर अधिकार जमाने की प्रवृत्ति बढ़ी। आदिम सामन्तवाद का जन्म हुआ। प्राकृतिक प्रकोप से अकाल की स्थिति भी बीच में आती रही।

ब्रह्माजी ने मेरु को आधार बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। तात्पर्य यह कि पर्वतों और भूमि भागों की खोज से विविध प्रकार के अन्नों और औषधियों का संग्रह किया गया। तिल, गेहूं, जौं, धान, कंगनी, ज्वार, कोंदो, तिन्ना, उड़द, मूंग, मसूर, मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन ग्राम्योषधियों के रूप में एकत्र किये गये। यज्ञीय १४ औषधियों का निर्धारण हुआ। धान, जौं, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कंगनी, कुलथी, साँवक तिन्ना, वन्य तिल, गवेधुक, कुविन्द, मकई और वेणु यव ग्राम्य, आरण्य क्रमशः ७, ७ प्रकार की हैं। वहाँ तक प्रकृति पर व्यक्ति निर्भर रहा। जनसंख्या बढ़ने पर हाथ से श्रम करने की प्रवृत्ति का जन्म हुआ। अब जुताई तथा बुआई प्रारम्भ हुई। इस प्रकार आजीविका का प्रबन्ध हुआ। प्रजापति ने न्याय और गुण के अनुसार वर्णा-श्रम धर्म की मर्यादा स्थापित की। गुण कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था बनाई। स्वधर्म की महिमा बड़ी। श्रम और कर्म का सम्बन्ध परलोक से जोड़ा गया। ब्राह्मणत्व का सम्बन्ध ब्रह्मलोक से, क्षत्रियत्व का सम्बन्ध इन्द्रलोक से, वैश्य का सम्बन्ध मरुद्गणों से तथा सेवा कर्म परायण शूद्रों का सम्बन्ध गन्धर्वों से जोड़ा गया। गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य पूर्वक वेदाध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियों की सामाजिक प्रतिष्ठा बड़ी। वानप्रस्थी सप्तऋषियों की तरह समादृत हुए। गृहस्थ धर्म का दायित्व अधिक मानकर उन्हें प्रजापतित्व पद का सम्मान मिला। विरक्त सन्यासी तथा योगियों के लिए अमृतपद का सम्मान दिया गया। राजा तथा समाज की ओर से वर्णाश्रम धर्म का पालन अनिवार्य किया गया। धर्मशास्त्रों का निर्माण इसी परिप्रेक्ष्य में हुआ।

कहना न होगा कि आधुनिक विकास वादी सिद्धान्त की झलक पुराण के उक्त विवरण में उपलब्ध होती है। आदिम युग से लेकर पूर्ण सुसंस्कृत तथा साम्य मानव समाज का संक्षिप्त चित्र यहाँ प्रस्तुत किया है। इस प्रकरण का आधुनिक समाज शास्त्रीय दृष्टि से यदि अध्ययन किया जाय तो पुराणकार की लोक संग्रही दृष्टि का पूर्ण परिचय प्राप्त हो सकता है। पुराण की आधुनिक दृष्टि उपयोगिता वादी परिप्रेक्ष्य मे ही विकसित हुई जान पड़ती है।

सारे विवेचन को समेटते हुए अन्त में कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय पुराण की रचना वैदिक आधार पर हुई है। इस पुराण का मुख्य लक्षण चतुः प्रश्न समोपेत होना है।[1] वेद के सवनों के समान ही इसका

१. अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत् त्रिसन्ध्यं जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
चतुः प्रश्न समोपेतं पुराणं मार्कण्डसंज्ञकम्। (१३७।८-१४)
पुराणश्रवणादेव परं योगमवाप्नुयात्। इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसम्मितम्।
यः पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भुवनं हरेः (ब्रह्म० २४५।२७, २८)

त्रिकाण्डवाचन होना चाहिए। पक्षियों ने मार्कण्डेय और क्रौष्टुकि के मूल संवाद को मूल पुराण कहा है जिसका विस्तार जैमिनि के प्रश्नों के साथ हुआ। पुराण के श्रवण से सांख्य योग की प्राप्ति होती है। इतिहास वेत्ताओं को भारतीय संस्कृति का रोचक इतिवृत्त प्राप्त होता है। पुराण के अध्येता की वंश परम्परा कभी उच्छिन्न नहीं होती। जैमिनि ने पक्षियों का अभिनन्दन किया और महाभारत के प्रमुख पात्रों की प्रतीकात्मक व्याख्या सुनकर सन्देह की निवृत्ति की। मनुष्य मात्र के लिए कहा गया सर्वश्रेष्ठ धर्म इस पुराण का विषय है। भारतीय चिन्तन धाराओं के सूत्र इसमें रोचक ढ़ंग से गुम्फित किए गए हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शक्ति, महेश्वर और ब्रह्म एक ही अर्थ के वाचक हैं। इनमें जो लिंग भेद है, वह शब्दात्मक है। परमार्थतः इनमें कोई भेद नहीं है।

शक्तिर्महेश्वरो ब्रह्म त्रयस्तुल्यार्थवाचकाः स्त्री पुंनपुंसको भेदः शब्दतो न परार्थतः।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
२१-११-८२

विष्णुदत्त 'राकेश'
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्

अथ मार्कण्डेय-महापुराणम्

प्रथमोऽध्यायः

यद्योगिभिर्भवभयार्ति विनाशयोग्यमासाद्य वंदितमतीव-विविक्तचित्तैः ।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत् क्रमविलंघित भूर्भुवः स्वः ॥१॥
पायात् स वः सकलकल्मषभेददक्षः––क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः ।
श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः । सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति संगात् ॥२॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥३॥
तपःस्वाध्यायनिरतं मार्कण्डेयं महामुनिम् । व्यासशिष्यो महातेजा जैमिनिः पर्यपृच्छत ॥१
भगवन् भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना । पूर्णमस्तमलैः शुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥२
जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् । पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥३
त्रिदशानां यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा । भूषणानां च सर्वेषां यथा चूडामणिर्वरः ॥४

भगवान् विष्णु के वे चरण-सरोज-युगल, जिनकी योगियों के अति विरागी चित्तों ने, भवसागर के भय रूपी दुःखों के विनाश के योग्य मानकर, वन्दना की है और जिन्होंने वामन रूप में अवतरित होकर, क्रमशः पाताल, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष का लंघन किया, तुम्हारी रक्षा करें ॥१॥

सम्पूर्ण पापों के विनाश में चतुर, क्षीरसागर की कुक्षि में, शेष शय्या पर लेटे हुए, भगवान् विष्णु जिनकी सांसों के चलने से ऊपर उठती हुई जल कणिकाओं से भयंकर रूपधारी समुद्र जिसके सान्निध्य से नृत्य करता हुआ सा प्रतीत होता है, तुम्हारी रक्षा करें ॥२॥

मनुष्यों से श्रेष्ठ (भगवान् विष्णु) नारायण और नरों में श्रेष्ठ नर (अर्जुन) को नमस्कार करके तथा देवी सरस्वती और व्यास को नमस्कार करके ही जय (महाभारत का प्रथम रूप) का वाचन करना चाहिये ॥३॥

तप और स्वाध्याय में संलग्न, महामुनि मार्कण्डेय से व्यास के महातेजस्वी शिष्य जैमिनि मुनि ने प्रश्न किया ॥१॥

हे भगवन् ! विकार शून्य, उज्ज्वल, विविध शास्त्र समूहों से पूर्ण महात्मा व्यास ने जिस भारत (महाभारत) नामक कथा को कहा है ॥२॥

और (वह कथा) जिसमें, पूर्व पक्ष का कथन करके; सिद्धान्त पक्ष की स्थापना की गयी है, जाति आदि की पवित्रता से युक्त और सुन्दर शब्दों से सुशोभित है ॥३॥

जिस प्रकार देवताओं में विष्णु, दो पैर वाले (मनुष्यों) में ब्राह्मण, सभी प्रकार के आभूषणों में चूड़ामणि उत्तम होता है ॥४॥

यथायुधानां कुलिशमिन्द्रियाणां यथा मनः। तथेह सर्वशास्त्राणां महाभारतमुत्तमम् ॥५

अत्रार्थश्चैव धर्मश्च कामो मोक्षश्च वर्ण्यते। परस्परानुबन्धाश्च सानुबन्धाश्च ते पृथक् ॥६

धर्मशास्त्रमिदं श्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदं परम्। कामशास्त्रमिदं चाग्र्यं मोक्षशास्त्रं तथोत्तमम् ॥७

चतुराश्रमधर्माणामाचारस्थितिसाधनम्। प्रोक्तमेतत् महाभाग वेदव्यासेन धीमता ॥८

तथा तात कृतं ह्येतत् व्यासेनोदारकर्मणा। यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते ॥९

व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा। वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का मही कृता ॥१०

कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम्। कथाविस्तीर्णसलिलं कार्ष्णं वेदं महाहृदम् ॥११

तदिदं भारताख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम्। तत्त्वतो ज्ञातुकामोऽहं भगवंस्त्वामुपस्थितः ॥१२

कस्मात् मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः। वासुदेवो जगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥१३

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा। पञ्चानां महिषी कृष्णा ह्यत्र नः संशयो महान् ॥१४

और जिस प्रकार शस्त्रास्त्रों में वज्र, इन्द्रियों में मन, श्रेष्ठ होता है। उसी प्रकार इस संसार में सभी शास्त्रों में महाभारत (ग्रन्थ) उत्तम है ॥५॥

इस (महाभारत) में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय) का वर्णन किया गया है। ये अनुबन्ध (चतुष्टय) इस ग्रन्थ में क्रम से पृथक्-पृथक् निबन्धित है। ६॥

यह श्रेष्ठ धर्मशास्त्र है और परमोत्कृष्ट अर्थशास्त्र है तथा यह मुख्य कामशास्त्र है और उत्कृष्ट मोक्षशास्त्र है ॥७॥

चारों आश्रमों के (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास) धर्म और आचार के विषय में, वास्तविक ज्ञान कराने वाला, यह शास्त्र, हे महाभाग ! विद्वान् वेदव्यास ने रचा है ॥८॥

जिस प्रकार विस्तीर्ण उच्च कोटि का शास्त्र विरोधों से अभिभूत नहीं होता है, उसी प्रकार, हे तात ! उदार कर्मशील वेदव्यास ने इस शास्त्र का निर्माण किया है ॥९॥

वेद-पर्वत से अवतीर्ण, कुतर्क-तरुओं को नष्ट करने वाले, वेदव्यास के वाक्य-जलसमूह ने इस पृथ्वी को दोष शून्य बनाया है ॥१०॥

मधुर शब्दों से युक्त, राजहंसमय विस्तृत आख्यान रूपी कमलों वाला, विविध कथा युक्त विस्तृत जलमय कृष्णद्वैपायनद्वारा रचित यह ज्ञान का विशाल सरोवर है ॥११॥

श्रुतियों द्वारा अनेक प्रकार से विस्तार किये गये अर्थ वाले इस महाभारत नामक कथानक को मैं, तत्त्वतः जानने की इच्छा से, हे भगवन् ! आपके पास आया हूं ॥१२॥

जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं संचालन में कारणभूत, भगवान् विष्णु निर्गुण होते हुए भी, किस कारण मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए ? ॥१३॥

और किस कारण राजा द्रुपद की वह अकेली पुत्री कृष्णा (द्रौपदी) महाराज पाण्डु के पांचों पुत्रों की रानी हुई ? इस विषय में हमें महान् संशय है ॥१४॥

भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः। तीर्थयात्राप्रसंगेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥१५
कथं च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः। पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥१६
एतत् सर्वं विस्तरशो ममाख्यातुमिहार्हसि। भवन्तो मूढबुद्धीनामवबोधकराः सदा ॥१७
इति तस्य वचः श्रुत्वा मार्कण्डेयो महामुनिः। दशाष्टदोषरहितो वक्तुं समुपचक्रमे ॥१८

मार्कण्डेय उवाच—

क्रियाकालोऽयमस्माकं सम्प्राप्तो मुनिसत्तम। विस्तरे चापि वक्तव्ये नैषकालः प्रशस्यते ॥१९
ये तु वक्ष्यन्ति वक्ष्येऽद्य तानहं जैमिने तव। तथा च नष्टसंदेहं त्वां करिष्यन्ति पक्षिणः ॥२०
पिङ्गाक्षश्च विबोधश्च सुपुत्रः सुमुखस्तथा। द्रोणपुत्राः खगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाः शास्त्रचिन्तकाः ॥२१
वेदशास्त्रार्थविज्ञाने येषामव्याहता मतिः। विंध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्य च पृच्छ च ॥२२
एवमुक्तस्तदा तेन मार्कण्डेयेन धीमता। प्रत्युवाचर्षिशार्दूलो विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥२३

जैमिनिरुवाच—

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् खगवागिव मानुषी। यत् पक्षिणस्ते विज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम् ॥२४

और किस कारण से हल-शस्त्र वाले, महाबली बलदेव ने तीर्थ यात्रा के ब्याज से ब्रह्म-हत्या के पाप का निवारण किया ॥१५॥

और किस प्रकार द्रौपदी के वे अविवाहित पराक्रमी पुत्र महाराज पाण्डु के होते हुए भी, अनाथों के समान, मृत्यु को प्राप्त हुए ॥१६॥

सदैव मूढ़ बुद्धियों को ज्ञान कराने वाले, आप ही यह सब मुझे विस्तार से बताने में समर्थ हैं ॥१७॥

उन (महामुनि जैमिनि) के उक्त वचनों को सुनकर अट्ठारह दोषों से रहित, महामुनि मार्कण्डेय ने कहना आरम्भ किया ॥१८॥

मार्कण्डेय बोले—

हे मुनिवर ! यह हमारा नित्य कर्म का समय हो गया है और यह बात विस्तार से कहने की है इसलिए यह (समय) उपयुक्त नहीं है ॥१९॥

हे जैमिनि ! आज मैं तुम्हें उन पक्षियों को बता रहा हूं जो कि तुम्हारे सभी संदेहों का निराकरण कर देंगे ॥२०॥

पक्षियों में श्रेष्ठ, तत्त्वज्ञानी, शास्त्रचिन्तक, वे पिङ्गाक्ष, विबोध सुपुत्र एवं सुमुख पक्षी द्रोण के पुत्र हैं तथा— ॥२१॥

जिनकी वेद शास्त्रों के ज्ञान में अव्याहत (निर्बाध) बुद्धि है और जो विन्ध्य पर्वत की गुफा में रहते हैं, उनके पास जाओ और पूछो ॥२२॥

बुद्धिमान् उन महामुनि मार्कण्डेय के ऐसा कहने पर आश्चर्य से फैले नेत्रों वाले, ऋषि श्रेष्ठ जैमिनि बोले— ॥२३॥

जैमिनि बोले—

हे ब्रह्मन् ! यह महान् आश्चर्य है कि उन पक्षियों ने मानव के समान वाणी एवं अत्यन्त दुर्लभ विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया है ॥२४॥

तिर्य्यंग्योन्यां यदि भवस्तेषां ज्ञानं कुतोऽभवत् । कथं च द्रोणतनयाः प्रोच्यन्ते ते पतत्रिणः ॥२५
कश्च द्रोणः प्रविख्याता यस्य पुत्रचतुष्टयम् । जातं गुणवतां तेषां धर्मज्ञानं महात्मनाम् ॥२६

मार्कण्डेय उवाच—

श्रृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्दने पुरा । शक्रस्याप्सरसां चैव नारदस्य च संगमे ॥२७
नारदो नन्दनेऽपश्यत् पुंश्चलीगणमध्यगम् । शक्रं सुराधिराजानं तन्मुखासक्तलोचनम् ॥२८
स तेनर्षिवरिष्ठेन दृष्टमात्रः शचीपतिः । समुत्तस्थौ स्वकं चास्मै ददावासनमादरात् ॥२९
तं दृष्ट्वा बलवृत्रघ्नमुत्थितं त्रिदशाङ्गना । प्रणेमुस्ताश्च देवर्षिं विनयावनताः स्थिताः ॥३०
ताभिरभ्यर्चितः सोऽथ उपविष्टे शतक्रतौ । यथार्हं-कृतसंभाषः कथाश्चक्रे मनोरमाः ॥३१
ततः कथान्तरे शक्रस्तमुवाच महामुनिम्—

शक्र उवाच—

देह्याज्ञां नृत्यतामासां तव याभिमतेति वै ॥३२
रम्भा वा कर्कशा वाथ उर्वश्यथ तिलोत्तमा । धृताची मेनका वापि यत्र वा भवतो रुचिः ॥३३

पक्षी-योनि में यदि उनका जन्म हुआ है तो उनको उत्कृष्ट ज्ञान कैसे मिला ? और वे पक्षी किस प्रकार द्रोण-पुत्र कहे जाते हैं ॥२५॥

और वह प्रसिद्ध द्रोण कौन है जिसके वे चार पुत्र हैं और उन गुणवान् महात्माओं को धर्मज्ञान किस प्रकार हुआ ? ॥२६॥

मार्कण्डेय बोले—

प्राचीन काल में जो घटना इन्द्र, अप्सराओं और नारद मुनि की उपस्थिति में, स्वर्गलोक के नन्दन वन में हुई, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ॥२७॥

(एक बार) नारद ने गणिकाओं के समूह के मध्य बैठे हुए एवं उनके मुख पर दृष्टि गड़ाये हुए देवराज इन्द्र को नन्दन वन में देखा ॥२८॥

ऋषि श्रेष्ठ नारद को देखते ही, देवराज इन्द्र उठ खड़े हुए और उन्हें आदरपूर्वक अपना आसन दिया ॥२९॥

बल और वृत्र के हन्ता इन्द्र को उठा हुआ देखकर, उन देवाङ्गनाओं ने भी देवर्षि नारद को प्रणाम किया और विनीत मुद्रा में स्थित रहीं ॥३०॥

तत्पश्चात् देवांगनाओं ने उनकी पूजा की और इन्द्र के बैठ जाने पर, कुशल क्षेम पूछकर, उन्होंने मनोहारी बातचीत आरम्भ की ॥३१॥

पुनः बातचीत के प्रसंग में, इन्द्र ने उन महामुनि (नारद) से कहा—

इन्द्र बोले—

हे मुनि श्रेष्ठ ! इन नर्तकी अप्सराओं में से जो आप को अभिमत हो, उसे नृत्य के लिए आज्ञा दें ॥३२॥

रम्भा, कर्कशा, उर्वशी, तिलोत्तमा, घृताची, मेनका अथवा जिसमें भी आपकी रुचि हो ॥३३॥

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वाचं शक्रस्य नारदः। विचिन्त्याप्सरसः प्राह विनयावनताः स्थिताः ॥३४
युष्माकमिह सर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकाम्। आत्मानं मन्यते या तु सा नृत्यतु ममाग्रतः ॥३५
गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नाट्यस्य नास्ति वै। चार्वधिष्ठानवत् नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥३६

मार्कण्डेय उवाच—

तद्वाक्यसमकालं च एकैकास्तानतास्ततः। अहं गुणाधिका न त्वं न त्वं चान्या ब्रवीदिदम् ॥३७
तासां संभ्रममालोक्य भगवान् पाकशासनः। पृच्छ्यतां मुनिरित्याह वक्तायां वो गुणाधिकाम् ॥३८
शक्रच्छन्दानुयाताभिः पृष्टस्ताभिः स नारदः। प्रोवाच यत्तदा वाक्यं जैमिने तन्निबोध मे ॥३९
तपस्यंतं नगेन्द्रस्थं या वः क्षोभयते बलात्। दुर्वाससं मुनिश्रेष्ठं तां वो मन्ये गुणाधिकाम् ॥४०

मार्कण्डेय उवाच—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सर्वा वेपितकन्धराः। अशक्यमेतदस्माकमिति ताश्चक्रिरे कथाः ॥४१
तत्राप्सरा वपुर्नाम मुनिक्षोभणगर्विता। प्रत्युवाचानुयास्यामि यत्रासौ संस्थितो मुनिः ॥४२

देवराज के इन वचनों को सुनकर द्विज श्रेष्ठ नारद कुछ सोचकर विनीत भाव में स्थित अप्सराओं से बोले—॥३४॥

तुम में जो भी अपने को सर्वाधिक सौन्दर्य युक्त और श्रेष्ठ गुण सम्पन्न मानती हो, वह मेरे सामने नृत्य करे ॥३५॥

रूप तथा गुणों से विहीन को निश्चय ही नाट्य में सफलता नहीं मिलती। नृत्य सुन्दर अधिष्ठान वाला ही होना चाहिए, उसके अभाव में वह केवल विडम्बना मात्र होता है, नृत्य नहीं ॥३६॥

मार्कण्डेय बोले—

देवर्षि नारद के ऐसा कहते ही उनमें से एक-एक ने नत-मस्तक होकर, मैं गुणों में अधिक नहीं हूं और न तू है न तू है इस प्रकार एक दूसरे से कहा ॥३७॥

उन सबको ससम्भ्रमित देखकर, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने कहा— कि मुनि से पूछो, तुममें जो गुणाधिक है उसको वे बतायेंगे ॥३८॥

हे जैमिने! इन्द्र की इच्छा का अनुसरण करने वाली, अप्सराओं के नारद से पूछने पर, जो बात उन्होंने कही, उसको तुम समझो ॥३९॥

हिमालय पर्वत पर स्थित तप करते हुए, मुनि श्रेष्ठ दुर्वासा को तुममें से जो अप्सरा अपने सौन्दर्य बल से विचलित कर देगी, उसे मैं सर्वाधिक गुण सम्पन्न मानूंगा ॥४०॥

मार्कण्डेय बोले—

नारद मुनि के उन वचनों को सुनकर, कांपते हुए कन्धों वाली उन (अप्सराओं) ने यह बात कही कि, यह तो हमसे सम्भव नहीं है ॥४१॥

(तब) उनमें से, मुनि को विचलित करने के लिए गर्वशीला वपु नामक अप्सरा बोली कि, मैं आज ही वहाँ जाऊँगी, जहाँ पर वे मुनि तपस्या कर रहे हैं ॥४२॥

अद्य तं देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् । स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम् ॥४३
ब्रह्मा-जनार्दनो वापि यदि वा नीललोहितः । तमप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ॥४४
इत्युक्त्वा प्रजगामाथ प्रालेयाद्रिं वपुस्तदा । मुनेस्तपः प्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४५
सा पुंस्कोकिलमाधुर्या यत्रास्ते स महामुनिः । क्रोशमात्रं स्थिता तस्मादगायत वराप्सराः ॥४६
तद् गीतध्वनिमाकर्ण्य मुनिर्विस्मितमानसः । जगाम तत्र यत्रास्ते सा बालारुचिरानना ॥४७
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं मुनिः सस्तभ्यमानसम् । क्षोभणायागतां ज्ञात्वा कोपामर्षसमन्वितः ॥४८
उवाचेदं ततो वाक्यं महर्षिस्तां महातपाः ॥४९
यस्माद् दुःखार्जितस्येह तपसो विघ्नकारणात् । आगतासि मदोन्मत्ते मम दुःखाय खेचरि ॥५०
तस्मात् सुपर्णगोत्रे त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता । जन्मप्राप्स्यसि दुष्प्रज्ञे यावद्वर्षाणि षोडश ॥५१
निजरूपं परित्यज्य पक्षिणीरूपधारिणी । चत्वारस्ते च तनया जनिष्यन्तेऽधमाप्सराः ॥५२
अप्राप्य तेषु च प्रीतिं शस्त्रपूता पुनर्दिवि । वासमाप्स्यसि वक्तव्यं नोत्तरं ते कथंचन ॥५३

आज मैं, उस देहधारी मुनि को, जिसने अपने इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में किया हुआ है, कामदेव के शस्त्र से, लगाम तोड़कर कुसारथि (नियन्त्रण सामर्थ्य रहित) कर दूँगी ॥४३॥

मैं आज, ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव को भी, यदि वे इस समय आ जायें तो उन्हें भी, कामदेव के बाण से घायल अन्तःकरण वाला कर दूंगी ॥४४॥

यह कहकर वपु नामक वह अप्सरा, हिमालय पर्वत पर स्थित आश्रम में गयी, जिसमें मुनि के प्रभाव से पशु भी शान्त चित्त थे ॥४५॥

जहां पर बैठे हुए वे महामुनि (तप) कर रहे थे, उससे एक कोस दूर ही स्थित रहते हुए, पुंस कोकिल के समान मधुर कण्ठ वाली, उस श्रेष्ठ अप्सरा ने गाना आरम्भ किया ॥४६॥

उस गीत ध्वनि को सुनकर, विस्मित चित्त वाले मुनि वहाँ गये जहाँ वह सुन्दर मुख वाली बाला स्थित थी ॥४७॥

उस सर्वांग सुन्दरी (अप्सरा) को देखकर, अपने को विचलित करने के उद्देश्य से आयी हुई जानकर, मुनि ने मन को संयमित करते हुए, क्रुद्ध एवं प्रचण्ड होकर, ॥४८॥

महातपस्वी महर्षि (दुर्वासा) ने उससे कहा ॥४९॥

हे आकाशचारिणी ! अपने सौन्दर्य के मद में उन्मत्त हुई, तू अत्यन्त कष्टों से अर्जित इस तप में विघ्न करने के उद्देश्य से, मुझे सताने के लिए आयी है ॥५०॥

इसलिए हे दुर्बुद्धि ! तू मेरे क्रोध से कलुषित होकर पक्षी योनि में जन्म ग्रहण करके, सोलह वर्षों तक वहाँ निवास करेगी ॥५१॥

अपने स्वरूप को त्याग कर पक्षिणी का रूप धारण करके हे नीच अप्सरा ! तेरे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥५२॥

उन पुत्रों से प्रेम न करके, शस्त्र से पवित्र होकर, तू पुनः स्वर्ग लोक में निवास करेगी। इस विषय में तुझे कुछ नहीं कहना है ॥५३॥

इति वचनमसह्यकोपसंरक्तदृष्टिश्चलकलवलयां तां मानिनीं श्रावयित्वा ।
तरलतरतरङ्गां गां परित्यज्य विप्रः, प्रथित–गुण–गणौघां संप्रयातः खगङ्गाम् ॥५४

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे वपुशापकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ।

इस प्रकार क्रोध से लाल दृष्टि वाले, उन (दुर्वासा) मुनि ने, सुन्दर चंचल वलय वाली, उस मानिनी को, असह्य वचन सुनाकर, चंचल तरंगों वाली उस भूमिस्थ गंगा को छोड़कर, वे मुनि प्रसिद्ध गुण-समूह सम्पन्न आकाश गंगा पर चलें गये ॥५४॥

इस प्रकार यह श्री मा० म० पु० में वपुशाप कथन नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।

द्वितीयोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडो नाम पक्षिराट् । गरुडस्याभवत् पुत्रः सम्पातिरिति विश्रुतः ॥१
तस्याप्यासीत् सुतः शूरः सुपार्श्वो वायुविक्रमः । सुपार्श्वतनयः कुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः ॥२
तस्यापि तनयावास्तां कङ्कः कन्धर एव च ॥३
कङ्कः कैलाशशिखरे विद्युद्रूपेति विश्रुतम् । ददर्शाम्बुजपत्राक्षं राक्षसं धनदानुगम् ॥४
आपानासक्तममलस्रग्दामाम्बरधारिणम् । भार्यासहायमासीनं शिलापट्टेऽमले शुभे ॥५

मार्कण्डेय बोले—

अरिष्टनेमि का पुत्र, पक्षीराज गरुड़ हुआ और गरुड़ का पुत्र सम्पाति नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥१॥

उस (सम्पाति) का भी, पराक्रमी और वायु के समान शक्तिशाली, सुपार्श्व नामक पुत्र था । सुपार्श्व का पुत्र कुन्ति एवं कुन्ति का पुत्र प्रलोलुप हुआ ॥२॥

उस (प्रलोलुप) के भी कंक और कन्धर नाम के दो पुत्र हुए ॥३॥

(एक बार) कङ्क ने कैलाश पर्वत पर विद्युद्रूप नाम से प्रसिद्ध, कुबेर के सेवक, कमल के पत्ते के समान बड़े नेत्रों वाले राक्षस को देखा ॥४॥

निर्मल पुष्प मालाओं से सुशोभित वस्त्र धारण किये हुए अपनी पत्नी (मदनिका) के साथ स्वच्छ पाषाण शिला पर, मद्यपान किये हुए, ॥५॥

तद्दृष्टमात्रं कङ्केन रक्षः क्रोधसमन्वितम् । प्रोवाच कस्मादायातस्त्वमितो ह्यण्डजाधम ॥६
स्त्रीसन्निकर्षे तिष्ठन्तं कस्मान् मामुपसर्पसि । नैष धर्मः सुबुद्धीनां मिथो निष्पाद्य वस्तुषु ॥७

कङ्क उवाच—

साधारणोऽयं शैलेन्द्रो यथा तव तथा मम । अन्येषां चैव जन्तूनां ममता भवतोऽत्र का ॥८

मार्कण्डेय उवाच—

ब्रुवाणमित्थं खड्गेन कङ्कं चिच्छेद राक्षसः । क्षरत् क्षतजबीभत्सं विस्फुरन्तमचेतनम् ॥९
कङ्कं विनिहतं श्रुत्वा कन्धरः क्रोधमूर्छितः । विद्युद्रूपवधायाशु मनश्चक्रेऽण्डजेश्वर ॥१०
स गत्वा शैलशिखरं कङ्को यत्र हतः स्थितः । तस्य संकलनं चक्रे भ्रातुर्ज्येष्ठस्य खेचरः ॥
कोपामर्षविवृत्ताक्षो नागेन्द्र इव निःश्वसन् ॥११
जगामाथ स यत्रास्ते भ्रातृहातस्य राक्षसः । पक्षवातेन महता चालयन् भूधरान् वरान् ॥१२
वेगात् पयोद्जालानि विक्षिपन् क्षतजेक्षणः । क्षणात् क्षयितशत्रुः सपक्षाभ्यां क्रान्तभूधरः ॥१३

उस राक्षस को कङ्क के देखते ही वह (राक्षस) क्रोध युक्त होकर बोला—हे नीच पक्षी ! तू यहाँ क्यों आया है ? ॥६॥

स्त्री के समीप बैठे हुए, मेरी ओर क्यों चला आ रहा है ? (क्योंकि) दो के बीच होने वाले व्यवहार में पास जाना विद्वानों द्वारा कथित धर्म नहीं है।।७॥

कङ्क बोला—

यह पर्वत सार्वजनिक है इस पर घूमने का जैसा तुम्हारा अधिकार है वैसा ही मेरा और अन्य जीवों का भी है। (अतः, इसमें तुम्हारी यह ममता कैसी ? ।।८॥

मार्कण्डेय बोले—

तत्पश्चात् राक्षस ने, इस प्रकार कहते हुए उस कङ्क का सिर, तलवार से काट डाला। कटे हुए शरीर के रक्त से वीभत्स, तड़पते हुए एवं अचेत—कङ्क की मृत्यु का समाचार सुनकर (उसका भाई) कन्धर क्रोध से मूर्छित हो गया (तत्पश्चात्) उस पक्षीराज ने विद्युद्रूप को मारने का शीघ्र निश्चय कर लिया ॥९-१०॥

तत्पश्चात् जिस पर्वत पर कङ्क मरा पड़ा था उस पर्वत के शिखर पर जाकर, आकाश में विचरण करने वाले क्रोध और अमर्ष से, फटी आंखों वाले हाथी के समान दीर्घ श्वांस भरते हुए, उस कन्धर ने, बड़े भाई के अंगों को इकट्ठा किया ॥११॥

पंखों की तीव्र वायु से, विशाल पर्वतों को भी चलायमान करते हुए, वह (कन्धर) वहाँ गया, जहाँ पर उसके भाई का वध करने वाला राक्षस बैठा था ॥१२॥

रक्तिम नेत्र युक्त, मेघ समूह को वेग से तितर-बितर करते हुए क्षणमात्र में शत्रु को धराशायी करने वाले, अपने दोनों पंखों से पर्वत को आक्रान्त करने वाले (उसने) ॥१३॥

पानासक्तमतिं तत्र तं ददर्श निशाचरम् । आताम्रवक्त्रनयनं हेमपर्यङ्कमाश्रितम् ॥१४
स्रग्दामापूरितशिखं हरिचन्दनभूषितम् । केतकीपत्रगर्भाभैर्दन्तैर्घोरतराननम् ॥१५
वामोरुमाश्रितां चास्य ददर्शायतलोचनाम् । पत्नीं मदनिकां नाम पुंस्कोकिलकलस्वनाम् ॥१६
ततो रोषपरीतात्माकन्धरः कन्दरस्थितम् । तमुवाच सुदुष्टात्मन्नेहि युध्यस्व वै मया ॥१७
यस्माज्ज्येष्ठो मम भ्राता विश्रब्धो घातितस्त्वया । तस्मात्त्वां मदसंसक्तं नयिष्ये यमसादनम् ॥१८
विश्वस्तघातिनां लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् । यास्यसे निरयान् सर्वांस्तांस्त्वमद्य मया हतः ॥१९

मार्कण्डेय उवाच—

इत्येवं पतगेन्द्रेण प्रोक्तं स्त्रीसन्निधौ तदा । रक्षः क्रोधसमाविष्टं प्रत्यभाषत पक्षिणम् ॥२०
यदि ते निहतो भ्राता पौरुषं तद्धि दर्शितम् । त्वामप्यद्य हनिष्येऽहं खड्गेनानेन खेचर ॥२१
तिष्ठ क्षणं नात्र जीवन्यतगाधम यास्यसि । इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभं विमलं खड्गमाददे ॥२२
ततः पतगराजस्य यक्षाधिपभटस्य च । बभूव युद्धमतुलं यथा गरुडशक्रयोः ॥२३

मद्यपान करते हुए, लाल मुख और आँखों वाले, स्वर्ण शय्या पर बैठे हुए, केतकी के पत्र के समान आभायुक्त, दाँतों से घोर (भयंकर) मुख वाले, हरि चन्दन के लेप से भूषित, शिर तक पुष्प मालाओं से सुशोभित, उस राक्षस को देखा ॥१४-१५॥

और इसके पास बांयी जांघ पर बैठी हुई, बड़े-बड़े नेत्रों वाली नर कोयल के समान, मधुर स्वर वाली, मदनिका नाम की उसकी पत्नी को देखा ॥१६॥

तत्पश्चात्, क्रोध के आवेश से युक्त, वह कन्धर, गुफा में स्थित उस राक्षस से बोला, हे दुष्टात्मन् ! आ मेरे साथ युद्ध कर, ॥१७॥

क्योंकि तूने शान्त व सौम्य आकृति वाले, मेरे बड़े भाई का वध किया है, इसलिये मदमत्त तुझको (मैं) यमलोक पहुँचाऊँगा ॥१८॥

जिन लोकों को विश्वासघाती, स्त्री तथा बच्चों की हत्या करने वाले, प्राप्त करते हैं, उन्हीं निकृष्ट लोकों में तू, आज मेरे द्वारा मारा हुआ जायेगा ॥१९॥

मार्कण्डेय बोले —

पक्षीराज कन्धर के ऐसा कहने पर, स्त्री के पास बैठा हुआ, वह राक्षस, उस क्रोधित पक्षी से बोला— ॥२०॥

यदि तेरा भाई मारा गया है तो इसमें पराक्रम प्रदर्शन हुआ है। हे खेचर ! तुझे भी आज मैं इस तलवार से मार दूँगा ॥२१॥

हे नीच पक्षी ! जरा ठहर तो (तू आज) यहाँ से जीवित नहीं जा पायेगा। ऐसा कहकर (उस राक्षस ने) अञ्जन पुंज के समान आभा वाली, विमल तलवार को हाथ में उठाया ॥२२॥

तत्पश्चात् पक्षीराज (कन्धर) और पराक्रमी यक्षराज सेवक का, गरुड़ एवं इन्द्र के समान, अनुपम (तुमुल) युद्ध हुआ ॥२३॥

ततः स राक्षसः क्रोधात् खङ्गमाविध्य वेगवत् । चिक्षेप पतगेन्द्राय निर्वाणाङ्गारवर्चसम् ॥२४
पतगेन्द्रश्च तं खङ्गं किञ्चिदुत्प्लुत्य भूतलात् । वक्त्रेण जग्राह तदा गरुडः पन्नगं यथा ॥२५
वक्त्रपादतलैर्भङ्क्त्वा चक्रे क्षोभमथाण्डजः । तस्मिन् भग्ने ततः खङ्गे बाहुयुद्धमवर्तत ॥२६
ततः पतगराजेन वक्षस्याक्रम्य राक्षसः । हस्तपादकरैराशु शिरसा च वियोजितः ॥२७
तस्मिन्विनिहते सा स्त्री खगं शरणमभ्यगात् । किञ्चित् सञ्जातसन्त्रासा प्राह
भार्या भवामि ते ॥२८
तामादाय खगश्रेष्ठः स्वकं गृहमगात् पुनः । गत्वा स निष्कृतिं भ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् ॥२९
कन्धरस्य च सा वेश्मप्राप्येच्छारूपधारिणी । मेनकातनयासुभ्रूः सौपर्णं रूपमाददे ॥३०
तस्यां स जनयामास तार्क्षीं नाम सुतां तदा । मुनिशापाग्निविप्लुष्टवपुमप्सरसां वराम् ॥
तस्या नाम तदा चक्रे तार्क्षीमिति विहंगमः ॥३१
मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितबुद्धयः । जरितारिप्रभृतयो द्रोणान्ता द्विजसत्तमाः ॥३२
तेषां जघन्यो धर्मात्मा वेदवेदांगपारगः । उपयेमे स तां तार्क्षीं कन्धरानुमते शुभाम् ॥३३

उसके बाद उस राक्षस ने पक्षीराज के ऊपर क्रोध से वेगपूर्वक दहकते हुए अंगारों के समान कान्ति युक्त, तलवार से वार किया ॥२४॥

उस पक्षीराज ने पृथ्वी से थोड़ा सा उछलकर, तलवार को मुंह से वैसे ही पकड़ लिया, जैसे गरुड़ मुख से सर्प को पकड़ लेता है ॥२५॥

इसके बाद उस पक्षी ने क्षोभ किया और अपने मुख तथा पंजों से तलवार को तोड़कर एवं तलवार के टूटने पर उन दोनों में बाहु-युद्ध हुआ ॥२६॥

तदनन्तर, पक्षीराज कन्धर ने वक्ष से क्रोधपूर्वक आक्रमण करके, अपने हाथ पैर रूपी पंजों से शीघ्र ही राक्षस के सिर को धड़ से अलग कर दिया ॥२७॥

उसके मर जाने पर, वह स्त्री उस कन्धर पक्षी की शरण में आ गयी और कुछ डरते हुए, उसने कहा कि मैं तुम्हारी पत्नी बनती हूं ॥२८॥

विद्युद्रूप के मारने से भाई की मृत्यु का बदला लेकर, उस द्विज श्रेष्ठ कन्धर ने उस स्त्री (मदनिका) को साथ लेकर, अपने घर की ओर प्रस्थान किया ॥२९॥

सुन्दर भौंहों से युक्त, इच्छानुसार रूप धारण करने वाली, उस मेनका की पुत्री ने, पक्षीराज कन्धर के घर में जाकर, सौपर्ण (गरुड़) का रूप धारण कर लिया ॥३०॥

तब उस (मदनिका) से उस (कन्धर) ने तार्क्षी नामक पुत्री को जन्म दिया। मुनि (दुर्वासा) शापाग्नि से दग्ध शरीर वाली, श्रेष्ठ अप्सरा का ही उसने तार्क्षी नाम रखा ॥३१॥

मंदपाल के असीम बुद्धि सम्पन्न (जरितारि आदि) चार पुत्र थे। उन जरितारि आदि श्रेष्ठ पक्षियों में द्रोण सबसे छोटे थे ॥३२॥

उनमें वेद वेदांगों में पारंगत, धर्मात्मा, सबसे छोटे (द्रोण) पुत्र के साथ, कन्धर की अनुमति से शुभ लक्षणों वाली तार्क्षी का विवाह किया गया ॥३३॥

कस्यचित् त्वथ कालस्य तार्क्षी गर्भमवाप ह । सप्तपक्षाहिते गर्भे कुरुक्षेत्रं जगाम सा ॥३४
कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्तमाने सुदारुणे । भावित्वाच्चैव कार्यस्य रथमध्ये विवेश सा ॥३५
तत्रापश्यत युद्धं सा सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् । शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमं यथा देवासुरं रणम् ॥३६
तत्रापश्यत् तदा युद्धं भगदत्तकिरीटिनोः । निरंतरं शरैरासीदाकाशं शलभैरिव ॥३७
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् । तस्या भल्लमहिश्यामं त्वचं चिच्छेद जाठरीम् ॥३८
भिन्ने कोष्ठे शशाङ्काभं भूमावण्डचतुष्टयम् । आयुषः सावशेषत्वात् तूलराशाविवापतत् ॥३९
तत्पातसमकालं च सुप्रतीकाद् गजोत्तमात् । पपात महती घण्टा बाणसंछिन्नबन्धना ॥४०
समं समन्तात् प्राप्ता तु निर्भिन्नधरणीतला । छादयन्ती खमण्डानि स्थितानि पिशितोपरि ॥४१
हते च तस्मिन् नृपतौ भगदत्ते नरेश्वरे । बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥४२
वृत्ते युद्धे धर्मपुत्रे गते शान्तनवान्तिकम् । भीष्मस्य गदतोऽशेषाञ्छ्रोतुं धर्मान् महात्मनः ॥४३
घण्टागतानि तिष्ठन्ति यत्राण्डानि द्विजोत्तम । आजगाम तमुद्देशं शमीको नाम संयमी ॥४४

कुछ समय बीतने पर, तार्क्षी ने गर्भ धारण किया और गर्भ के साढ़े तीन माह बाद वह कुरुक्षेत्र गयी ॥३४॥

(जहाँ पर) कौरव-पांडवों का भयंकर युद्ध चल रहा था (दैवयोग से) घटना की अवश्यं भाविता के कारण उसने रण के मध्य में प्रवेश किया ॥३५॥

और वहाँ पर उसने बाण, शक्ति और ऋष्टियों से, देवताओं और असुरों के समान, सभी राजाओं के भयंकर युद्ध को देखा ॥३६॥

और जहाँ पर (चल रहे) बाणों से आकाश, टिड्डियों के समान घना छाया हुआ था, वहाँ पर उसने भगदत्त और अर्जुन का युद्ध देखा ॥३७॥

(तभी) अर्जुन के धनुष से टूटे हुए, भाले के समान बहुत वेग वाले, सर्प के समान श्याम वर्ण, एक बाण ने उसकी पेट की खाल को काट डाला ॥३८॥

पेट के फटने पर, आयु शेष होने के कारण, चन्द्रमा के समान आभा वाले, चार अंडे भूमि पर इस प्रकार गिरे मानो कि रुई के ढेर पर ही गिरे हों ॥३९॥

उन अंडों के गिरते के साथ ही, सुप्रतीक नामक उत्तम हाथी से बाण से कटे बन्धन वाला, बहुत बड़ा घंटा गिर पड़ा ॥४०॥

किन्तु एक साथ ही अलग हुआ वह घंटा, मांस पर पड़े हुए, पक्षी के अंडों को पूर्णतः (चारों ओर से) ढकते हुए, पृथ्वी पर गिरा ॥४१॥

उस (युद्ध) में, राजा भगदत्त के मरने पर भी, कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं में, बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा ॥४२॥

युद्ध के चलते हुए, सम्पूर्ण धर्म रहस्य को सुनने के लिए, धर्मतत्त्व का प्रवचन करते हुए, शान्तनु पुत्र, महात्मा भीष्म के पास, धर्मपुत्र (युधिष्ठर) के जाने पर, ॥४३॥

हे द्विजोत्तम ! जहाँ पर घंटे के नीचे उस (तार्क्षी) के अंडे पड़े हुए थे, उस स्थान पर संयमी शमीक नामक मुनि का आगमन हुआ ॥४४॥

स तत्र शब्दमश्रणोच्चिचीकुचीति वाशताम्। बाल्यादस्फुटवाक्यानां विज्ञानेऽपि परेसति ।।४५
अथर्षिः शिष्यसहितो घण्टामुत्पाट्य विस्मितः। अमातृपितृपक्षाणि शिशुकानि ददर्श ह ।।४६
तानि तत्र तथा भूमौ शमीको भगवान् मुनिः। दृष्ट्वा स विस्मयाविष्टः प्रोवाचानुगतान्द्विजान् ।।४७
सम्यगुक्तं द्विजाग्र्येण शुक्रेणोशनसा स्वयम्। पलायनपरं दृष्ट्वा दैत्यसैन्यं सुरार्दितम् ।।४८
न गन्तव्यं निवर्तध्वं कस्माद् व्रजत कातराः। उत्सृज्य शौर्ययशसी क्व गता न मरिष्यथ ।।४९
नश्यतो युध्यतो वापि तावद् भवति जीवितम्। यावद्धातासृजत्पूर्वं न यावन्मनसेप्सितम् ।।५०
एके म्रियन्ते स्वगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः। भुञ्जन्तोऽन्नं तथैवापः पिबन्तो निधनं गताः ।।५१
विलासिनस्तथैवान्ये कामयानानिरामयाः। अविक्षतांगाः शस्त्रैश्च प्रेतराजवशं गताः ।।५२
अन्ये तपस्यभिरता नीताः प्रेतनृपानुगैः। योगाभ्यासे रताश्चान्ये नैव प्रापुरमृत्युताम् ।।५३
शम्बराय पुरा क्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना। हृदयेऽभिहतस्तेन तथापि न मृतोऽसुरः ।।५४

वहाँ अपने शिष्य सहित ऋषि ने बाल्यावस्था के कारण अस्पष्ट वर्णों वाली, पहचानने का प्रयास करने पर भी दुर्बोध, पक्षियों के चीं-चीं इस प्रकार के शब्द को सुना ।।४५।।

तत्पश्चात् शिष्यों सहित, उस ऋषि ने घंटे को हटाकर, विस्मित होकर, मातृ-पितृ रहित, छोटे-छोटे पक्षी बच्चों को देखा ।।४६।।

वहाँ उस प्रकार से पृथ्वी पर पड़े हुए, उन (पक्षीशावकों) को देखकर, विस्मित हुए, भगवान् शमीक मुनि, पीछे आते हुए ब्राह्मणों से बोले— ।।४७।।

उशनस् गोत्री, द्विजश्रेष्ठ, शुक्र ने, देवताओं द्वारा पीड़ित राक्षस सेना को (युद्ध से) भागते हुए, देखकर स्वयं ठीक ही कहा था ।।४८।।

हे कायरो ! (तुम) क्यों जा रहे हो, लौट आओ। (तुम्हें युद्ध से) नहीं भागना चाहिए। इस शौर्य और यश को छोड़कर (ऐसा कौन सा स्थान है) जहां तुम नहीं मरोगे ? ।।४९।।

युद्ध में मरने वाले और पलायन करने वाले दोनों का उतना ही जीवन (काल) होता है, जितना कि विधाता ने पहले ही बनाया है, न कि उनका मनोवांछित ।।५०।।

(इनमें) पहले तो (युद्ध में ही) मारे जाते हैं और अपने घर पर भागे हुए, दूसरे व्यक्ति अन्न खाते और जल पीते हुए, मृत्यु को प्राप्त होते हैं ।।५१।।

उसी प्रकार निरोगता की कामना करते हुए, दूसरे विलासी (व्यक्ति) भी शस्त्रों से विक्षत न होते हुए, अंगों वाले, यमराज (मृत्यु) के वश में चले जाते हैं ।।५२।।

तपस्या करने वाले अन्य व्यक्ति भी, यमराज के सेवकों द्वारा लाये जाते हैं और योगाभ्यास में लगे हुए, अन्य किसी ने भी अमरत्व को प्राप्त नहीं किया है ।।५३।।

(और इसके अतिरिक्त) प्राक्तन काल में कुलिश पाणि (इन्द्र) ने शम्बर के लिए, वज्र फेंका और उस (वज्र) ने हृदय पर आघात किया लेकिन फिर भी वह असुर नहीं मरा ।।५४।।

तेनैव खलु वज्रेण तेनैवेन्द्रेण दानवाः । प्राप्ते काले हता दैत्यास्तत्क्षणान्निधनं गताः ॥५५
विदित्वैवं न संत्रासः कर्तव्यो विनिवर्तत । ततो निवृत्तास्ते दैत्यास्त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥५६
इति शुक्रवचः सत्यं कृतमेभिः खगोत्तमैः । ये युद्धेऽपि न संप्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥५७
क्वाण्डानां पतनं विप्राः क्व घण्टापतनं समम् । क्व च मांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ॥५८
ते के ये सर्वथा विप्र नैते सामान्यपक्षिणः । दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनो ॥५९
एवमुक्त्वा स तान्वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् । निवर्तताश्रमं यात गृहीत्वा पक्षिबालकान् ॥६०
मार्जाराखुभयं यत्र नैषामंडजजन्मनाम् । श्येनतो नकुलाद्वापि स्थाप्य तां तत्र पक्षिणः ॥६१
द्विजाः किंवातियत्नेन मार्यन्ते कर्मभिः स्वकैः । रक्ष्यन्ते चाखिला जीवा यथैते पक्षिबालकाः॥६२
तथापि यत्नः कर्तव्यो नरैः सर्वेषु कर्मसु । कुर्वन्पुरुषकारं तु वाच्यतां याति नो सताम् ॥६३

इति मुनिवर चोदितास्ततस्ते मुनितनयाः परिगृह्य पक्षिणस्तान् ।
तरुविटपसमाश्रितालिसंघं ययुरथ तापसरम्यमाश्रमं स्वम् ॥६४

और मरणकाल आने पर, उसी वज्र से, उसी इन्द्र के द्वारा (प्रहार करने पर) सभी दैत्य और दानव क्षणमात्र में मृत्यु को प्राप्त हुए ॥५५॥

इस प्रकार जानकर तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिये अतः (युद्ध के लिए) लौट आओ। इसके बाद मृत्यु जनित भय को त्यागकर वे दैत्य लौट आये ॥५६॥

इन श्रेष्ठ पक्षियों ने भी शुक्र मुनि के वचनों को सत्य ही साबित कर दिया, जो इस असाधारण युद्ध में भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए ॥५७॥

हे विप्रो ! कहां तो अण्डों का गिरना और कहां साथ ही घंटे का गिरना एवं कहां माँस, मज्जा और रक्त से पृथ्वी का आच्छादित होना ? ॥५८॥

तो ये कौन हैं ? हे विप्र ! निश्चय ही, ये सामान्य पक्षी नहीं हैं क्योंकि संसार में दैव (भाग्य) की अनुकूलता, महानुभावता की सूचक होती है ॥५९॥

ऐसा कहकर, और उन (पक्षियों) को देखकर उन्होंने (शमीक) फिर कहा—(इन) पक्षियों के बच्चों को लेकर, आश्रम को लौट जाओ ॥६०॥

जहां पर चूहे, बिल्ली, बाज या नेवले (आदि) का भय न हो, वहां पर इन पक्षियों को रखो ॥६१॥

अथवा हे ब्राह्मणो ! बहुत प्रयत्न करने से क्या (लाभ) ? (क्योंकि) इस संसार के सम्पूर्ण जीव अपने कर्मों से जीते और मरते हैं। जिस प्रकार ये पक्षियों के बच्चे (अपने कर्मों के कारण ही जीवित) बचे हैं ॥६२॥

फिर भी मनुष्यों को, सभी कर्मों में यत्न करना चाहिये क्योंकि पुरुषार्थ करने वाला व्यक्ति (कदाचित् असफल भी हो जाये तो) सज्जन व्यक्तियों द्वारा उसकी निन्दा प्राप्त नहीं होती ॥६३॥

इस प्रकार मुनिवर द्वारा प्रेरित, वे मुनि कुमार, उन पक्षियों को उठाकर, वृक्षों की शाखाओं पर जहां पक्षियों के समूह आश्रित हैं ऐसे तपस्वियों से शोभित अपने आश्रम में ले गये ॥६४॥

स चापि वन्यं मनसाभिकामितं प्रगृह्य मूलं कुसुमं फलं कुशान् ।
चकार चक्रायुधरुद्रवेधसां सुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ।।६५
अपांपतेर्गोष्पतिवित्तरक्षिणोः समीरणस्यापि तथा द्विजोत्तमः ।
धातुर्विधातुस्त्वथ वैश्वदेविकाः श्रुतिप्रयुक्ता विविधास्तु सत्क्रियाः ।।६६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे चटकोत्पत्तिकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः

और ब्राह्मण श्रेष्ठ, उन (शमीक) मुनि ने भी वन के, मनोवाञ्छित फल, पुष्प, मूल और कुशों को लेकर, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, बृहस्पति, कुबेर, वायु, धाता, विधाता और विश्वे देवों आदि का विविध श्रुति विहित सत्कार किया ।।६५-६६।।

इस प्रकार यह श्री मार्कण्येय महापुराण में चटकोत्पत्ति-कथन नामक दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

तृतीयोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

अहन्यहनि विप्रेद्र स तेषां मुनिसत्तमाः । चकाराहार पयसा तथा गुप्त्या च पोषणम् ।।१
माससमात्रेण जग्मुस्ते भानोः स्यंदनवर्त्मनि । कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्ट्वा मुनिकुमारकैः ।।२
दृष्ट्वा महीं सनगरां साम्भोनिधिसरिद्वराम् । रथचक्रप्रमाणां ते पुनाराश्रममागताः ।।३
श्रम क्लांतांतरात्मानो महात्मानो वियोनिजाः । ज्ञानं च प्रकटीभूतं तत्र तेषां प्रभावतः ।।४
ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थं वदतो धर्मनिश्चयम् । कृत्वा प्रदक्षिणं सर्वे चरणावभ्यवादयन् ।।५

मार्कण्डेय बोले—

हे विप्रेन्द्र ! उन मुनि श्रेष्ठ (शमीक) ने दिन प्रतिदिन उन पक्षियों का दूध, भोजन और गुप्ति (रक्षा साधन) से पोषण किया ।।१।।

एक मास के व्यतीत होते हुए, वे पक्षी सूर्य के रथमार्ग (आकाश) में उड़ने लगे और मुनि कुमारों के द्वारा, कौतूहलपूर्वक चंचल नेत्रों से देखे जाकर, नगरों, ग्रामों, अम्भोनिधि (समुद्र) और उत्तम नदियों से युक्त (सूर्य के) रथ चक्र प्रमाण वाली, पृथ्वी को देखकर, पुनः आश्रम में आ गये ।।२-३।।

(तत्पश्चात्) परिश्रम से थकी हुई अन्तरात्मा वाले, पक्षी योनि में उत्पन्न, महात्माओं को वहाँ उन (ऋषियों) के प्रभाव से, ज्ञान प्रकट हुआ ।।४।।

(तदनन्तर) शिष्यों के प्रति अनुकम्पा के लिये, धर्म तत्व का प्रवचन करते हुये, ऋषि (शमीक) की प्रदक्षिणा करके, उन सबने (ऋषि के) चरणों में अभिवादन किया ।।५।।

ऊचुश्च मरणाद्धोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वया मुने । आवासभक्ष्यपयसां त्वं नो दातापितागुरुः ॥६
गर्भस्थानां मृता माता पित्रा नैवापि पालिताः । त्वया नो जीवितं दत्तं शिशवो येन रक्षिताः । ७
क्षितावक्षततेजास्त्वं कृमीणामिव शुष्यताम् । गजघंटां समुत्पाट्य कृतवान्दुःखरेचनम् ॥८
कथं वर्द्धेयुरबलाः खस्थान्द्रक्ष्याम्यहं कदा । कदा भूमेर्द्रुमं प्राप्तान्द्रक्ष्ये वृक्षान् तरंगतान् ॥९
कदा मे सहजाकांतिः पांशुना नाशमेष्यति । एषां पक्षानिलोत्थेन मत्समीपविचारिणाम् ॥१०
इति चिन्तयता तात भवता प्रतिपालिताः । ते साम्प्रतं प्रवृद्धाः स्मः प्रबुद्धाः करवाम किम् ॥११
इत्यृषिर्वचनं तेषां श्रुत्वा संस्कारवत्स्फुटम् । शिष्यैः परिवृतः सर्वैः सह पुत्रेण शृङ्गिणा ॥१२
कौतूहलपरोभूत्वा रोमाञ्चपटसंवृतः । उवाच तत्त्वतो ब्रूत प्रवृत्तेः कारणं गिरः ॥१३
कस्य शापादियं प्राप्ता भवद्भिर्विक्रिया परा । रूपस्य वचसश्चैव तन्मे वक्तुमिहार्हथ ॥१४

पक्षिण ऊचुः—

विपुलस्वानिति ख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः । तस्य पुत्रद्वयं जज्ञे सुकृषस्तुम्बुरुस्तथा ॥१५

और उन्होंने कहा कि हे मुने ! घोर मृत्यु से तुमने हमारी रक्षा की है अतः आवास, दूध और अन्य भक्ष्य पदार्थ) देने वाले आप हमारे पितृवत् गुरु हैं ॥६॥

हम गर्भ में ही थे कि माता मर गयी, पिता ने भी हमारा पालन नहीं किया । तुमने हमें जीवन दिया जिससे हम शिशुओं की रक्षा हो सकी ॥७॥

पृथ्वी पर अक्षत तेजवाले, आपने हाथी के घण्टे को हटाकर, कीड़ों के समान सूखते हुए, हमारे दुःख का निवारण किया ॥८॥

निर्बल कैसे वृद्धि को प्राप्त होंगे ? आकाश स्थित (पक्षियों) को मैं कब देखूँगा ? और भूमि के वृक्षों पर स्थित तथा वृक्षों के बीच में आये हुए (पक्षियों को) कब देखूँगा ॥९।

और कब, मेरे पास विचरण करने वाले, इन पंखों की वायु से उठी हुई, धूलि से, मेरी यह स्वाभाविक कांति दूर होगी ?॥१०॥

इस प्रकार विचार करते हुये, हे तात ! आप द्वारा पाले गये, हम इस समय बड़े और प्रबुद्ध (समझदार) हो गये हैं । अतः अब हम क्या करें ?॥११॥

इस प्रकार शृङ्गी पुत्र के साथ, सभी शिष्यों से घिरे हुए, ऋषि ने उन (पक्षियों) की संस्कार वाली स्पष्ट वाणी को सुनकर ॥१२॥

रोमाञ्चित एवं कौतुहल से युक्त होकर कहा— कि अपनी वाणी के शुद्ध रूप का कारण ठीक-ठीक बताओ ॥१३॥

आपने, स्वरूप और वाणी की यह बड़ी भारी विकृति (परिवर्तन) किसके शाप से प्राप्त की है ? वह सब आप मुझे ठीक-ठीक बताइये ॥१४॥

पक्षी बोले—

प्राचीनकाल में विपुलस्वान् नाम से प्रसिद्ध मुनि श्रेष्ठ हुए । उनके सुकृष और तुम्बुरु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥१५॥

सुकृषस्य वयं पुत्राश्चत्वारः संयतात्मनः । तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तिनम्राः सदैव हि ॥१६
तपश्चरणशक्तस्य शास्यमानेन्द्रियस्य च । यथाभिमतमस्माभिस्तदा तस्योपपादितम् ॥१७
समित्पुष्पादिकं सर्वं यच्चैवाभ्यवहारिकम् । एवं तत्राथ वसतां तस्यास्माकं च कानने ॥१८
आजगाम महावर्ष्मा भग्नपक्षो जरान्वितः । आताम्रनेत्रः स्रस्तात्मा पक्षी भूत्वा सुरेश्वरः ॥१९
सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् । जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छायभवाय च ॥२०

पक्ष्युवाच—

द्विजेन्द्र मां क्षुधाविष्टं परित्रातुमिहार्हसि । भक्षणार्थी महाभाग गतिर्भव ममातुला ॥२१
विंध्यस्य शिखरे तिष्ठन्पत्रिपत्रेरितेन वै । पतितोऽस्मि महाभाग श्वसनेनातिरंहसा ॥२२
सोऽहं मोहसमाविष्टो भूमौ सप्ताहमस्मृतिः । स्थितस्तत्राष्टमेनाह्ना चेतनां प्राप्तवानहम् ॥२३
प्राप्तचेताः क्षुधाविष्टो भवन्तं शरणं गतः । भक्ष्यार्थीविगतानन्दो दूयमानेन चेतसा ॥२४
तत्कुरुष्वामलमते मत्त्राणायाचलां मतिम् । प्रयच्छ भक्ष्यं विप्रर्षे प्राणयात्राक्षमं मम ॥२५

संयत आत्मावाले (उस) सुकृष के हम चारों पुत्र हैं । विनय, आचार और भक्ति से हम सदैव ही उन ऋषि के प्रति नम्र रहते थे ॥१६॥

उस समय, तपस्या में रत, जितेन्द्रिय उनकी इच्छानुसार ही हमने सभी कार्य किये ॥१७॥

एवं उनके और हमारे, वहाँ उस कानन में (तपोवन में) रहते हुए (हम) समिधा पुष्पादि जो वस्तुयें (यज्ञ के लिए) आवश्यक थीं, (सब) जुटाते रहे ॥१८॥

एक बार इन्द्र स्वयं लाल नेत्रों से युक्त, विशाल शरीर वाले टूटे हुए पंखों से युक्त, वृद्ध और थके हुए पक्षी के रूप में ॥१९॥

हमारे शाप का कारण बनने के लिए, सत्य, शौच, क्षमा और आचार से अत्यन्त उदार मन वाले, उन मुनिवर को जानने की इच्छा से, उनके पास आये ॥२०॥

पक्षी बोले—

हे द्विजेन्द्र ! मैं भूखा हूं, आप (ही) क्षुधार्त्त मेरी रक्षा करने में समर्थ हैं अतः हे महाभाग ! आप मेरी अतुल गति बनिये ॥२१॥

विन्ध्य पर्वत के शिखर पर रहते हुए, हे महाभाग ! विशाल पक्षी के पंखों से प्रेरित तीव्र वायु के वेग से, मैं गिर पड़ा हूं ॥२२॥

(गिरने के कारण) मूर्छित मैं सात दिन तक स्मृति शून्य अवस्था में भूमि पर पड़ा रहा, आठवें दिन जब मुझे चेतना प्राप्त हुई तो भूख से व्याकुल, भोजन का इच्छुक, आनन्द रहित, दुःखी मन से मैं आपकी शरण में आ गया हूं ॥२३-२४॥

हे निर्मल मते ! मेरी रक्षा के लिए अपनी बुद्धि स्थिर कीजिये और हे ब्रह्मर्षि ! मुझे मेरे जीवन धारण में समर्थ भोजन दीजिये ॥२५॥

य एवमुक्तः प्रोवाच तमिन्द्रं पक्षिरूपिणम् । प्राणसन्धारणार्थाय दास्ये भक्ष्यं तवेप्सितम् ॥२६
इत्युक्त्वा पुनरप्येनमपृच्छत्स द्विजोत्तमः । आहारः कस्तवार्थाय उपकल्प्यो भवेन्मया ॥
स चाह नरमांसेन तृप्तिर्भवति मे परा ॥२७

ऋषिरुवाच—

कौमारं ते व्यतिक्रान्तमतीतं यौवनं च ते । वयसः परिणामस्ते वर्तते नूनमंडज ॥२८
यस्मिन्नराणां सर्वेषामशेषेच्छा निवर्तते । स कस्माद्वृद्धभावेऽपि सुनृशंसात्मको भवान् ॥२९
क्व मानुषस्य पिंशितं क्व वयश्चरमं तव । सर्वथा दुष्टभावनां प्रथमो नोपपद्यते ॥३०
अथवा किं मयैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम् । प्रतिश्रुत्य सदा देयमिति नो भावितं मनः ॥३१
इत्युक्त्वा तं स विप्रेन्द्रस्तथेति कृतनिश्चयः । शीघ्रमस्मान् समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्य च ॥३२
उवाच क्षुब्धहृदयो मुनिर्वाक्यं सुनिष्ठुरम् । विनयावनतान्सर्वान्भक्तियुक्तान् कृताञ्जलीन् ॥३३
कृतात्मानो द्विजश्रेष्ठ ऋणैर्युक्ता मया सह । जातं श्रेष्ठमपत्यं वो यूयं मम यथा द्विजाः ॥३४
गुरुः पूज्यो यदि मतो भवतां परमः पिता । ततः कुरुत मे वाक्यं निर्व्यलीकेन चेतसा ॥३५

पक्षी रूप इन्द्र के ऐसा कहने पर (सुकृष मुनि) बोले—मैं तुम्हें प्राण धारण में समर्थ, वाञ्छित भोजन दूँगा ॥२६॥

यह कहकर उस द्विजोत्तम ने पुनः उस (पक्षी से) पूछा—मैं आपके लिए किस प्रकार के भोजन की व्यवस्था करूँ ? वह (पक्षी) बोला—मनुष्य के माँस से मेरी अत्यधिक तृप्ति होगी ॥२७॥

ऋषि बोले—

हे पक्षी ! तुम्हारी कुमारावस्था बीत गयी है (साथ ही) यौवन भी व्यतीत हो गया है और यह अवश्य ही तुम्हारी वृद्धावस्था है ॥२८॥

जिस वृद्धावस्था मे मनुष्यों की सम्पूर्ण इच्छायें समाप्त हो जाती हैं, उस वृद्धावस्था में भी आप इतने निर्दय क्यों हैं ? ॥२९॥

कहाँ मनुष्य का माँस और कहां तुम्हारी यह अन्तिम अवस्था ? सत्य ही है कि दुष्ट वृत्ति वालों में प्रथम (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) धर्मभाव नहीं होता ॥३०॥

अथवा मेरे यह कहने का क्या प्रयोजन ? वचन देकर अवश्य ही पूर्ण करना चाहिये, ऐसा हमने मन में सोचा है ॥३१॥

उससे यह कहकर विपेन्द्र (सुकृष मुनि) ने उस प्रकार का निश्चय करके, शीघ्र ही हमें बुलाकर और हमारे गुणों की प्रशंसा करके, ॥३२॥

क्षुब्ध हृदय वे मुनि, विनय से अवनत, भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े हुए, हम चारों के प्रति इस प्रकार कठोर वचन बोले—॥३३॥

हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम मेरे साथ (पितृ-ऋषि-देव) ऋणों से युक्त ज्ञानी (अन्य) द्विजों के समान मेरी श्रेष्ठ सन्तान हो ॥३४॥

यदि तुम पिता को परम पूज्य मानते हो; तो मेरी कही बात का शुद्ध चित्त से पालन करो ॥३५॥

तद्वाक्यसमकालं च प्रोक्तमस्माभिरादृतैः। यद्वक्ष्यति भवांस्तद्वै कृतमेवावधार्यताम् ॥३६

ऋषिरुवाच—

मामेष शरणं प्राप्तो विहंगः क्षुत्तृषान्वितः। युष्मन्मांसेन येनास्य क्षणं तृप्तिर्भवेत वै ॥३७
तृष्णाक्षयश्च रक्तेन तथा शीघ्रं विधीयताम्। ततो वयं प्रव्यथिताः प्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः॥
कष्ट कष्टमिति प्रोच्य नैतत्कुर्मेति चाब्रुवन् ॥३८
कथं परशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकं बुधः। विनाशयेद्घातयेद्वा यथा ह्यात्मा तथा सुतः ॥३९
पितृदेवमनुष्याणां यान्युक्तानि ऋणानि वै। तान्ययाकुरुते पुत्रो न शरीरप्रदः सुतः ॥४०
तस्मान्नैतत् करिष्यामो नो चीर्णं यत्पुरातनैः। जीवन्भद्राण्यवाप्नोति जीवन्पुण्यं करोति च ॥४१
मृतस्य देहनाशश्च धर्माद्युपरतिस्तथा। आत्मानं सर्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्मविदो जनाः ॥४२
इत्थं श्रुत्वा वचोऽस्माकं मुनिः क्रोधादिव ज्वलन्। प्रोवाच पुनरप्यस्मान्निर्दहन्निव लोचनैः ॥४३
प्रतिज्ञातं वचो मह्यं यस्मान्नैतत्करिष्यथ। तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्तिर्यग्योनौ प्रयास्यथ ॥४४
एवमुक्त्वा तदा सोऽस्मांस्तं विहंगममब्रवीत्। अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वा शास्त्रतश्चौर्ध्वदैहिकम्॥४५

उनके कहने के साथ ही हमने उनसे कहा कि जो आप कहेंगे (आज्ञा देंगे) वह हमने पूरा कर दिया, ऐसा आप समझ लीजिये। (अर्थात् कहने के साथ ही आज्ञा का पालन होगा) ॥३६॥

ऋषि बोले—

भूखा प्यासा यह पक्षी मेरी शरण में आया है, जिस प्रकार तुम्हारे मांस से इसकी तृप्ति हो जाये और रक्त से इसकी प्यास दूर हो वैसा शीघ्र करो। तत्पश्चात् बहुत दुःखी होकर, भयभीत और कांपते हुए, हम, ये तो बहुत बुरा है, बहुत बुरा है, यह काम ठीक नहीं है। इस प्रकार कहते हुए ॥३७-३८॥

दूसरे के शरीर के लिए, कौन बुद्धिमान् अपने शरीर का विनाश करेगा अथवा मरवायेगा ? क्योंकि पिता और पुत्र दोनों समान कहे गये हैं ॥३९॥

पितृ, देवता और मनुष्यों के जो ऋण कहे गये हैं। उनको पुत्र चुकाता तो है किन्तु शरीर दान देने वाला ही पुत्र नहीं है ॥४०॥

इसलिए हम यह कार्य नहीं करेंगे क्योंकि प्राचीनों ने भी यह नहीं किया है। जीवित व्यक्ति ही पुण्य करता है तथा जीवित ही पुण्य (कल्याणों) को भोगता है ॥४१॥

मृत व्यक्ति देह नाश के कारण, धर्मादि कार्यों से विरक्त हो जाता है। इसीलिए धर्मतत्त्वज्ञों ने कहा है कि—अपने शरीर की सभी प्रकार से रक्षा करनी चाहिये ॥४२॥

हमारे इन वचनों को सुनकर (सुकृष) मुनि क्रोध से मानो जलते हुए (दहकते) नेत्रों से मानो हमें भस्म करते हुए, हमसे बोले—॥४३॥

मुझे दिये गये वचन का भी क्योंकि तुम सब पालन नहीं करोगे, इसलिए मेरे शाप से जलकर (तुम चारों) पक्षी योनि में जन्म लोगे ॥४४॥

इस प्रकार हम सबको शाप देकर शास्त्र के अनुसार, अपनी अन्त्येष्टि और मरने के बाद की जाने वाली (अर्घ्य तर्पणादि) क्रियाओं को करके वे उस पक्षी से बोले—॥४५॥

भक्षयस्व सुविश्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम। आहारीकृतमेतत्ते मया देहमिहात्मनः ॥४६
एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्ष्यते । यावत्पतगजात्यग्र्यस्वसत्यपरिपालनम् ॥४७
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यं प्राप्यते महत्। कर्मणान्येन वा विप्रैर्यत्सत्यपरिपालनात् ॥४८
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा सोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः। प्रत्युवाच मुनिं शक्रः पक्षिरूपधरस्तदा ॥४९
योगमास्थाय विप्रेंद्र त्यज्येदं स्वं कलेवरम्। जीवज्जन्तुं हि विप्रेन्द्र न भक्षामि कदाचन ॥५०
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा योगयुक्तो भवन्मुनिः। तं तस्य निश्चयं ज्ञात्वा शक्रोऽध्याह स्वदेहभृत् ॥५१
भो भो विप्रेन्द्र बुध्यस्व बुद्धचा बोध्यं बुधात्मक। जिज्ञासार्थं मयाऽयंते अपराधः कृतोऽनघ ॥५२
तत्क्षमस्वामलमते का चेच्छा क्रियतां तव। पालनात्सत्यवाक्यस्य प्रीतिर्मे परमात्वयि ॥५३
अद्य प्रभृति ते ज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति । तपस्यथ तथा धर्मे न ते विघ्नो भविष्यति ॥५४
इत्युक्त्वा तु गते शक्रे पिता कोपसमन्वितः। प्रणम्य शिरसास्माभिरिदमुक्तो महामुनिः ॥५५
बिभ्यतां मरणात्तात त्वमस्माकं महामते। क्षन्तुमर्हसि दीनानां जीवितप्रियता हि नः ॥५६

हे द्विजोत्तम, विश्वस्त होकर मेरे इस शरीर का भक्षण कीजिये। अपनी यह देह मैंने तुम्हारे भोजन के लिये उपलब्ध कर दी है ॥४६॥

क्योंकि ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व इसी में कहा जाता है कि उसे पक्षी के समक्ष भी, सत्य का पालन करना चाहिये ॥४७॥

सत्य का पालन करने से ब्राह्मण को जो महान् पुण्य होता है, वह उत्तम दक्षिणा वाले अनेक यज्ञों से अथवा अन्य किसी उत्तम कार्य से भी प्राप्त नहीं होता है ॥४८॥

ऋषि के इन वचनों को सुनकर, हृदय में विस्मित होकर, पक्षी रूप धारी वे इन्द्र, मुनि से बोले—॥४९॥

हे विप्रेन्द्र ! योग से अपने इस शरीर को त्याग दो क्योंकि मैं जीवित जन्तु (प्राणी) के मांस का भक्षण, कभी नहीं करता हूं ॥५०॥

उसके इन वचनों को सुनकर (सुकृष) मुनि समाधियुक्त हो गये। उसके दृढ़ निश्चय को जानकर, इन्द्र भी अपना (वास्तविक) शरीर धारण करके बोले—॥५१॥

अरे ! अरे ! विप्रराज, हे बुधात्मक ! आप अपनी बुद्धि से इस बात को समझो कि हे निष्पाप ! जिज्ञासा के लिए मैंने तुम्हारे प्रति यह अपराध किया है ॥५२॥

अतः क्षमा करें और हे अमल मते ! तुम्हारी क्या इच्छा है, जिसे मैं पूरा करूं ? क्योंकि तुम्हारे सत्य का पालन करने से मेरा तुम्हारे प्रति अत्यधिक अनुराग हो गया है ॥५३॥

आज से तुम्हें ऐन्द्र ज्ञान उत्पन्न होगा और इसके अतिरिक्त तुम्हारी तपस्या और धर्म में कभी विघ्न उत्पन्न नहीं होगा ॥५४॥

ऐसा कहकर, इन्द्र के चले जाने पर, हमने क्रोधित महामुनि पिता को, सिर से प्रणाम करके यह कहा—॥५५॥

हमको जीवन प्रिय है, इसलिए मृत्यु से डरते हुए हमको हे महामते ! आप क्षमा कर दीजिये ॥५६॥

त्वगस्थिमांससंघाते पूयशोणितपूरिते । कर्त्तव्या न रतिर्यत्र तत्रास्माकमियं रतिः ॥५७
श्रूयतां च महाभाग यथा लोको विमुह्यति । कामक्रोधादिभिर्दोषैरवशः प्रबलारिभिः ॥५८
प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणं परं महत् । चर्मभित्तिमहारोधं मांसशोणित लेपनम् ॥५९
नवद्वारं महायासं सर्वतः स्नायुवेष्टितम् । नृपश्च पुरुषस्तत्र चेतनावानवस्थितः ॥६०
मंत्रिणौ तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ । यतेते वैरनाशा तावुभावितरेतरम् ॥६१
नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छन्ति विद्विषः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्यस्तथा रिपुः ॥६२
यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यावृत्य तिष्ठति । सदा सुस्थबलश्चैव निरातंकश्च जायते ॥६३
जातानुरागो भवति शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥६४
यदा तु सर्वद्वाराणि विवृतानि स मुञ्चति । रागो नाम तदा शत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ॥६५
सर्वव्यापी महायामः पञ्चद्वारप्रवेशनः । तस्यानुमार्गं विशति तद्वै घोरं रिपुत्रयम् ॥६६
प्रविश्याथ स वै तत्र द्वारैरिन्द्रियसंज्ञकैः । रागः संश्लेषमायाति मनसा च सहेतरैः ॥६७

चर्म, अस्थि और माँस के पिण्ड, मवाद एवं रक्त से भरे हुए, जहाँ इस शरीर के प्रति आसक्ति नहीं होनी चाहिये, वहाँ उसी (शरीर) में हमारी यह आसक्ति है ॥५७॥

और हे महाभाग ! सुनिये, जिस प्रकार मनुष्य काम क्रोध रूपी प्रबल शत्रुओं के पराधीन होकर मोहित हो जाता है ॥५८॥

अस्थि रूपी खम्बों पर स्थित, प्रज्ञा रूपी प्रकोष्ठ वाला, सभी वस्तुओं को रोकने में समर्थ, चर्म रूपी दीवार से युक्त, माँस और रक्त के लेप वाला, चारों ओर से शिराओं से जकड़ा हुआ, नौ द्वार वाला यह शरीर महा आयास (कष्ट) वाला है और वहाँ पर राजा रूपी चेतनावान् पुरुष (आत्मा) अवस्थित (रहता) है ॥५९-६०॥

बुद्धि और मन ये दोनों उस राजा के विरोधी मंत्री हैं और वे दोनों एक दूसरे के वैर को दूर करने के लिए यत्न करते रहते हैं ॥६१॥

काम, क्रोध, लोभ और मोह ये चार उस राजा के अन्य शत्रु हैं और ये चारों शत्रु उसका विनाश चाहते हैं ॥६२॥

जब वह राजा अपने (नवों) द्वारों को बन्द किये रहता है तो उसकी शक्ति सुरक्षित रहती है और वह आतंक रहित बन जाता है ॥६३॥

(उस स्थिति) में वह अनुराग उत्पन्न होने पर भी शत्रुओं से अभिभूत नहीं होता ॥६४॥

और जब वह सभी द्वारों को खुला छोड़ देता है तो राग नामक शत्रु नेत्रादि द्वारों से आक्रमण कर देता है ॥६५॥

महान् शक्तिशाली, सर्वव्यापी, पंच द्वारों से प्रवेश करने वाले, उस राग नामक शत्रु के पीछे-पीछे अन्य तीन भयंकर शत्रु भी प्रविष्ट हो जाते हैं ॥६६॥

तत्पश्चात् उन द्वारों से प्रवेश करके, वह राग मन आदि अन्य विभिन्न नामों वाली इन्द्रियों से सम्पर्क स्थापित कर लेता है ॥६७॥

इन्द्रियाणि मनश्चैव वशे कृत्वा दुरासदः । द्वाराणि च वशे कृत्वा प्राकारं नाशयत्यथ ॥६८
मनस्तस्याश्रितं दृष्ट्वा बुद्धिर्नश्यति तत्क्षणात् । अमात्यरहितस्तत्र पौरवर्गोज्झितस्तथा ॥६९
रिपुभिर्लब्धविवरः स नृपो नाशमृच्छति । एवं रागस्तथा मोहो लोभः क्रोधस्तथैव च ॥७०
प्रवर्तन्ते दुरात्मानो मनुष्यस्मृतिनाशकाः । रागात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाल्लोभोऽभिजायते ॥७१
लोभाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥७२
एवं प्रनष्टबुद्धीनां रागलोभानुवर्त्तिनाम् । जीवते च स लोभानां प्रसादं कुरु सत्तम ॥७३
योऽयं शापो भगवता दत्तः स न भवेत्तथा । न तामसीं गतिं कष्टां व्रजेत्स मुनिसत्तम ॥७४

ऋषिरुवाच—

यन्मयोक्तं न तन्मिथ्या भविष्यति कदाचन । न मे वागनृतं प्राह यावदद्येति पुत्रकाः ॥७५
दैवमात्रं परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् । अकार्यं कारितो येन बलादहमचिन्तितम् ॥७६
यस्माच्च युष्माभिरहं प्रणिपत्य प्रसादितः । तस्मात्तिर्य्यक्त्वमापन्नाः परं ज्ञानमवाप्स्यथ ॥७७

उसके बाद, मन और इन्द्रियों को वश में करके वह दुर्जेय हो जाता है और तत्पश्चात् समस्त दरवाजों पर अधिकार करके, चार दिवारी को नष्ट कर देता है ॥६८॥

मन को उसके आश्रित देखकर, बुद्धि तत्क्षण नष्ट हो जाती है और मंत्रियों के अभाव में अन्य पुरवासी भी उसको छोड़ देते हैं ॥६९॥

इस प्रकार लोभ, क्रोध, मोह और राग इन (प्रबल) शत्रुओं से छिद्र (भेद) पा लेने पर, वह राजा नष्ट हो जाता है ॥७०॥

मनुष्य की स्मृति का नाश करने वाले ये दुष्टात्मा शत्रु (जब) प्रवृत्त हो जाते हैं तो राग से क्रोध, क्रोध से लोभ, लोभ से मोह और मोह से स्मृति का नाश होता है। स्मृति के नाश से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश से (मनुष्य) ही नष्ट हो जाता है ॥७१-७२॥

हे सत्प्रवर ! इस प्रकार राग और लोभ के अनुकर्त्ता, नष्ट बुद्धि, लोभ युक्त इन (अपने) चारों पुत्रों के जीवन पर कृपा कीजिये ॥७३॥

हे मुनि श्रेष्ठ ! यह शाप, जो आपने हमें दिया है, वह वैसा न हो और वह (शाप) कष्टदायक तामसी गति को प्राप्त न करे ॥७४॥

ऋषि बोले—

मैंने जो कहा है वह कभी भी असत्य नहीं होगा, क्योंकि हे पुत्रो ! मेरी वाणी ने आज तक, असत्य भाषण नहीं किया है ॥७५॥

जिसने मुझसे यह अविचरित अकार्य बलपूर्वक कराया है उस दैव को ही मैं यहाँ बड़ा मानता हूं। अनर्थक पौरुष को धिक्कार है ॥७६॥

क्योंकि चरणों में पड़कर, तुमने मुझे मनाया है (प्रसन्न किया है) इसलिए तुम पक्षी होने पर भी श्रेष्ठ ज्ञान (परम तत्त्व) को प्राप्त करोगे ॥७७॥

ज्ञानदर्शितमार्गाश्च निर्धूतक्लेशकल्मषाः । मत्प्रसादादसन्दिग्धाः परां सिद्धिमवाप्स्यथ ॥७८
एवं शप्ताः स्म भगवन्पित्रा दैववशात्पुरा । ततः कालेन महता योन्यन्तरमुपागताः ॥७९
जाताश्च रणमध्ये वै भवता परिपालिताः । वयमित्थं द्विजश्रेष्ठ खगत्वं समुपागताः ॥८०
नास्त्यसाविह संसारे यो न दिष्टेन बाध्यते । सर्वेषामेव जन्तूनां दैवाधीनं हि चेष्टितम् ॥८१

मार्कण्डेय उवाच—

इति तेषां वचः श्रुत्वा शमीको भगवान् मुनिः । प्रत्युवाच महाभागः समीपस्थायिनो द्विजान् ॥८२
पूर्वमेव मया प्रोक्तं भवतां सन्निधाविदम् । सामान्यपक्षिणो नैतेकेऽप्येते द्विजसत्तमाः ॥
ये युद्धेऽपि न संप्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥८३
ततः प्रीतिमता तेन तेऽनुज्ञाता महात्मना । जग्मुः शिखरिणां श्रेष्ठं विंध्यं द्रुमलतायुतम् ॥८४
यावदद्य स्थितास्तस्मिन्नचले धर्मपक्षिणः । तपःस्वाध्यायनिरताः समाधौ कृतनिश्चयाः ॥८५

इति मुनिवरलब्धसत्क्रियास्ते मुनितनया विहगत्वमभ्युपेताः ।
गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोये यतमनसो निवसन्ति विन्ध्यपृष्ठे ॥८६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे विन्ध्यप्राप्तिकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।

क्लेश तथा पापों के प्रक्षालनपूर्वक, ज्ञान से दिखाये गये मार्ग वाले (तुम सब) मेरी कृपा से, निःसंदेह परम सिद्धि को प्राप्त करोगे ॥७८॥

हे पुत्रो ! जब तुम (महाभारत के सम्बन्ध में) संदेह युक्त जैमिनि मुनि के प्रश्नों के (उत्तर) कहोगे, तो मेरे शाप से तुम्हारी मुक्ति होगी । यह मैंने तुम सब पर अनुग्रह कर दिया है ॥७८॥

हे भगवन् ! (इस प्रकार) प्राचीन काल में, पिता द्वारा शापित, भाग्यवश उसी समय से इस अन्य (पक्षी) योनि को प्राप्त हुए ॥७९॥

और रण के मध्य में उत्पन्न हुए, हमारा आपने पालन किया । हे द्विज श्रेष्ठ ! इस प्रकार से हम पक्षी बने ॥८०॥

वस्तुतः इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जो भाग्य से पीड़ित न किया गया हो । सब प्राणियों की सभी चेष्टाएँ भाग्याधीन होती हैं ॥८१॥

मार्कण्डेय बोले—

उनके इन वचनों को सुनकर भगवान् शमीक मुनि अपने समीप स्थित द्विजों से बोले— ॥८२॥

हे महाभाग ! मैंने आपसे पहले ही कहा था कि आपके पास में ये सामान्य पक्षी नहीं है, बल्कि ये निश्चय ही कोई श्रेष्ठ द्विज हैं । जो इस भयंकर युद्ध में भी मृत्यु को प्राप्त नहीं हुए ॥८३॥

तत्पश्चात् वे पक्षी, प्रसन्न हुए उन महात्मा से आज्ञा प्राप्त करके, वृक्ष और लताओं से युक्त, पर्वतो में श्रेष्ठ विन्ध्य पर्वत पर चले गये ॥८४॥

उस समय से लेकर आज तक वे धार्मिक पक्षी, उसी पर्वत पर समाधिस्थ होकर, तप और स्वाध्याय में लगे हुए रहते हैं ॥८५॥

इस प्रकार पक्षी योनि को प्राप्त हुए, वे मुनि कुमार, मुनिवर से सत्कार प्राप्त करके, अत्यन्त पुण्य जलों वाले मन को वश में करके, गहन विन्ध्य पर्वत के पृष्ठ पर निवास करते हैं ॥८६॥

इस प्रकार श्री मार्कंडेय महापुराण में विन्ध्य प्राप्ति कथन नामक तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुर्थोऽध्याय :

मार्कण्डेय उवाच—

एवं द्रोणतनयाः पक्षिणो ज्ञानिनोऽभवन् । वसन्ति ह्यचले विन्ध्ये तानुपास्व च पृच्छ च ॥१
इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य जैमिनिः । जगाम विन्ध्यशिखरं यत्र ते धर्मपक्षिणः ॥२
तन्नगासन्नभूतश्च शुश्राव पठतां ध्वनिम् । श्रुत्वा च विस्मयाविष्टश्चिन्तयामास जैमिनिः ॥३
स्थानसौष्ठवसम्पन्नं जितश्वासमविश्रमम् । विस्पष्टमपदोषं च पठ्यते द्विजसत्तमैः ॥४
वियोनिमपि संप्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान् । चित्रमेतदहं मन्ये न जहाति सरस्वती ॥५
बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे । त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती ॥६
इति संचिन्तयन्नेव विवेश गिरिकन्दरम् । प्रविश्य च ददर्शासौ शिलापट्टगताद्विजान् ॥७
पठतस्तान्समालोक्य मुखदोषविवर्जितान् । सोऽथ शोकेन हर्षेण सर्वानेवाभ्यभाषत ॥८
स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा जैमिनिं मां निबोधत । व्यासशिष्यमनुप्राप्तं भवतां दर्शनोत्सुकम् ॥९

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार द्रोण-पुत्र वे पक्षी ज्ञानी बने, विन्ध्याचल पर्वत पर ही रहते हैं, अतः तुम उनकी उपासना करो और पूछो ॥१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय ऋषि के वचन सुनकर, जैमिनि मुनि, विन्ध्य पर्वत के उस शिखर पर गये, जहाँ वे धार्मिक पक्षी रहते थे ॥२॥

उस पर्वत के समीप जाने पर, जैमिनि मुनि ने, वहां रहते हुए, शास्त्र पाठ करते हुए (उन पक्षियों की) ध्वनि को सुना और सुनकर आश्चर्य चकित होकर सोचा ॥३॥

ये द्विजश्रेष्ठ उच्चारण-स्थान सौष्ठव से युक्त, श्वास पर पूर्ण अधिकार किये हुए, बिना रुके दोष रहित स्पष्ट रूप से शास्त्रों का पाठ कर रहे हैं ॥४॥

पक्षी योनि में जन्म लेकर भी, इन मुनि कुमारों को सरस्वती ने नहीं छोड़ा है, यह मुझे आश्चर्य जनक प्रतीत हो रहा है ॥५॥

मित्र, बन्धुजन और घर में दूसरे जो अत्यन्त प्रिय होते हैं। वे सब मनुष्य का साथ छोड़ देते हैं। केवल सरस्वती ही मनुष्य का साथ नहीं छोड़ती ॥६॥

इस प्रकार विचारते हुए ही उन्होंने, पर्वत की कन्दरा में प्रवेश किया और प्रवेश करके, पत्थर की शिला पर बैठे हुए, उन (पिंगाक्ष, विबोध, सुमुख, सुपुत्र) पक्षियों को देखा ॥७॥

मुख दोषों से रहित, पढ़ते हुए उन सब पक्षियों को देखकर, (जैमिनि मुनि) उन सबके प्रति, शोक और हर्ष से युक्त वचन बोले— ॥८॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! आप सबका कल्याण हो। मेरा नाम जैमिनि है। मैं भगवान् व्यास का शिष्य हूं और आपके दर्शनों के लिए उत्सुक हुआ आया हूं ॥९॥

मन्युर्न खलु कर्तव्यो यत्पित्रातीव मन्युना। शप्ताः खगत्वमापन्नाः सर्वथा दिष्टमेव तत् ॥१०
स्फीतद्रव्ये कुले केचिज्जाताः किल मनस्विनः। द्रव्यनाशे द्विजेन्द्रास्ते शबरेण सुसान्त्विताः ॥११
दत्त्वा याचन्ति पुरुषा हत्वा बध्यन्ति चापरे। पातयित्वा च पात्यन्ते त एव तपसः क्षयात् १२
एतद्दृष्ट सुबहुशो विपरीतं तथा मया। भावाभावसमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलं जगत् ॥१३
इति संचिन्त्य मनसा न शोकं कर्तुमर्हथ। ज्ञानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥१४
ततस्ते जैमिनिं सर्वे पाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन्। अनामयं च पप्रच्छुः प्रणिपत्य महामुनिम् ॥१५
अथोचुः खगमाः सर्वे व्यासशिष्यं तपोनिधिम्। सुखोपविष्टं विश्रान्तं पक्षानिलहृतक्लमम् ॥१६

पक्षिण ऊचुः—

अद्य नः सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। यत्पश्यामः सुरैर्वन्द्यं तव पादाम्बुजद्वयम् ॥१७
पितृकोपाग्निरुद्भूतो यो नो देहेषु वर्त्तते। सोऽद्य शान्तिं गतो विप्र युष्मद्दर्शनवारिणा ॥१८
कच्चित्ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु। वृक्षेष्वथ लतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ॥१९

(इस विषय में) आपको क्रोध नहीं करना चाहिए कि पिता के अत्यन्त क्रोध के कारण ही हम पक्षी योनि को प्राप्त हुए, अपितु इस विषय में तो पूर्ण रूप से भाग्य ही (मूल) कारण है ॥१०॥

(भाग्य के कारण ही प्रायः ऐसा देखा जाता है कि) कुछ व्यक्ति सम्पन्न कुल में उत्पन्न होकर बड़े मनस्वी रहे, किन्तु उन्हीं को, हे द्विजश्रेष्ठ ! सम्पत्ति के नाश होने पर, शबरों से सान्त्वना प्राप्त करनी पड़ी ॥११॥

इसी प्रकार जो दाता थे वे याचक बने, अन्य जो दूसरों के हन्ता थे, उन्हें (स्वयं दूसरों के हाथों) मरना पड़ा और दूसरों को गिराने वाले, स्वयं दूसरों से गिराये गये, यह सब तप के नाश से ही होता है ॥१२॥

इस प्रकार की विरोधाभास वाली बातें मैंने बहुधा देखी हैं। यह जगत् भाव और अभाव के अच्छेदों दो (विषयों) से निरन्तर व्याकुल है ॥१३॥

मन में, इस प्रकार विचार करके, आपको शोक नहीं करना चाहिए (क्योंकि) शोक और हर्ष के वशीभूत न होना ही, ज्ञान का फल होता है ॥१४॥

इसके पश्चात् उन सबने जैमिनि मुनि की पाद्य और अर्घ्य से पूजा की और उन महामुनि को प्रणाम करके कुशल क्षेम पूछा ॥१५॥

उसके बाद, उन सभी पक्षियों ने अपने पंखों की वायु से उनकी थकान दूर की, और थकान के दूर हो जाने से, सुख पूर्वक बैठे हुए, व्यास मुनि के शिष्य, तपोनिधि जैमिनि से बोले—

पक्षी बोले—

आज हमारा जन्म सफल हो गया है। प्राण धारण सार्थक हो गया जो हमने देवताओं द्वारा भी पूज्य आपके चरण कमलों का दर्शन किया है ॥१७॥

हे विप्र ! जो पिता की क्रोधाग्नि हमारे शरीर में जल रही थी, वह आपके दर्शन रूपी जल से आज शान्त हो गयी है ॥१८॥

हे ब्रह्मन् ! आपके आश्रम के मृग और पक्षी तो कुशल हैं ? और (आश्रम के) वृक्ष और लताओं के समूहों में त्वक् (छाल) तृण, फलादि की उत्पत्ति तो ठीक हो रही है ? ॥१९॥

अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिराद्दतैः। भवता संगमो येषां तेषामकुशलं कुतः ॥२०
प्रसादं च कुरुष्वात्र ब्रूह्यागमनकारणम्। देवानामिव संसर्गो भवतोऽभ्युदयो महान्॥
केनास्मद् भाग्यगुरुणा आनीतो दृष्टिगोचरम् ॥२१

जैमिनिरुवाच —

श्रूयतां द्विजशार्दूलाः कारणं येन कन्दरम्। विन्ध्यस्येहागतो रम्ये रेवावारिकणोक्षितम्॥
संदेहान्भारते शास्त्रे तान् प्रष्टुं गतवानहम् ॥२२
मार्कण्डेयं महात्मानं पूर्वं भृगुकुलोद्वहम्। तमहं पृष्टवान्प्राप्य सन्देहान्भारतं प्रति ॥२३
स च पृष्टो मया प्राह सन्ति विन्ध्ये महाचले। द्रोणपुत्रा महात्मानस्ते वक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम् ॥२४
तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहं महागिरिम्। तच्छृणुध्वमशेषेण श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥२५

पक्षिण ऊचुः —

विषये सति वक्ष्यामो निर्विशंकः शृणुष्व तत्। कथं तन्न वदिष्यामो यदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥२६
चतुर्ष्वपि हि वेदेषु धर्मशास्त्रेषु चैव हि। समस्तेषु तथाङ्गेषु यच्चान्यद्वेदसंमितम् ॥२७
एतेषु गोचरोऽस्माकं बुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम। प्रतिज्ञां तु समावोढुं तथापि न हि शक्नुमः ॥२८

अथवा आपसे समादृत हमने, यह उचित नहीं कहा है, क्योंकि आपकी उपस्थिति में उनका अनिष्ट कैसे हो सकता है ? ॥२०॥

हे भगवन्! (हम पर) कृपा कीजिए और अपने आगमन का कारण कहिए। आपका सान्निध्य देवताओं के समान, अत्यन्त कल्याण कारक है। न जाने हमारे किस भाग्य प्राबल्य से आपके दर्शन हुए हैं ॥२१॥

जैमिनि बोले —

हे द्विजश्रेष्ठ! रेवा नदी के उड़ते हुए जल कणों से सिंचित, विन्ध्य पर्वत की इस रमणीय कन्दरा में जिस कारणा से आया हूं, उसे सुनिए। (महा) भारत शास्त्र में जो संदेह हैं, उन संदेहों के निवारण के लिए मैं— ॥२२॥

पूर्वकाल में भृगुकुल में उत्पन्न महात्मा मार्कण्डेय के पास गया और उनसे उन सन्देहों के सम्बन्धों में पूछा ॥२३॥

मेरे पूछने पर उन्होंने कहा कि विन्ध्याचल (नामक) महान् पर्वत पर महात्मा द्रोण के पुत्र हैं जो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर विस्तार से देंगे ॥२४॥

उनके वचनों से प्रेरित होकर ही मैं इस महान् पर्वत पर आया हूं। अतः आप उन प्रश्नों को पूर्ण रूप से सुनिए और सुनकर उनकी व्याख्या कीजिए ॥२५॥

पक्षी बोले—निःशंक होकर आप यह बात सुनिए। जो हमारी बुद्धि में है, उसे हम क्यों नहीं बताएँगे। विषय के उपस्थित होने पर हम (अवश्य) कहेंगे ॥२६॥

चारों वेदों, धर्मशास्त्रों और सभी वेदांगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष) तथा वेदतुल्य अन्य (शास्त्रों में), ॥२७॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इन सबमें, ज्ञान हमारी बुद्धि ने प्राप्त किया है, किन्तु फिर भी हम इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने में समर्थ नहीं हैं कि हम सभी का उत्तर देंगे ॥२८॥

तस्माद् बदस्व विश्रब्धं संदिग्धं यद्धि भारते। वक्ष्यामस्तव धर्मज्ञ न चेन्मोहो भविष्यति ॥२९

जैमिनिरुवाच—

सन्दिग्धानीह वस्तूनि भारतं प्रति यानि मे। शृणुध्वममलास्तानि श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥३०

कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दनः। वासुदेवोऽखिलाधारः सर्वकारणकारणम् ॥३१

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा। पञ्चानां महिषी कृष्णा सुमहानत्र संशयः ॥३२

भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः। तीर्थयात्राप्रसंगेन कस्माच्चक्रे हलायुधः ॥३३

कथं च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथाः। पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत् ॥३४

एतत्सर्वं कथ्यतां मे सन्दिग्धं भारतं प्रति। कृतार्थोऽहं सुखं येन गच्छेयं निजमाश्रमम् ॥३५

पक्षिण ऊचुः—

नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे। पुरुषायाप्रमेयाय शाश्वतायाव्ययाय च ॥३६

चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायागुणाय च। वरिष्ठाय गरिष्ठाय वरेण्यायामृताय च ॥३७

यस्मादणुतरं नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम्। येन विश्वमिदं व्याप्तमजेन जगदादिना ॥३८

इसलिए आप निःसंकोच होकर, जो (महाभारत) में संदिग्ध है, उसे कहिए। हे धर्मज्ञ ! यदि हममें किसी प्रकार का भ्रम न होगा तो हम उन सब का उत्तर देंगे ॥२९॥

जैमिनि ने कहा—हे निर्मल मति वालो, इस (महा) भारत में मुझे जो शंकाएँ हैं, उनको आप (कृपया) सुनिए और सुनकर उनकी व्याख्या कीजिए ॥३०॥

(प्रथम प्रश्न) किस कारण, निर्गुण होते हुए भी, सभी कारणों के कारण रूप, सम्पूर्ण जगत् के आधार जनार्दन भगवान् ने मनुष्यत्व प्राप्त किया ? ॥३१॥

(द्वितीय प्रश्न) और किस कारण राजा द्रुपद की पुत्री, द्रौपदी, अकेली होते हुए भी, पाण्डु के पांचों पुत्रों की पत्नी बनी ? इस (विषय) में हमें बड़ा भारी संशय है ? ॥३२॥

(तृतीय प्रश्न) हल रूपी अस्त्र को धारण करने वाले, महाबली बलदेव ने ब्रह्म हत्या रूपी पाप के धोने के बहाने से तीर्थ यात्रा क्यों की ? ॥३३॥

(चौथा प्रश्न) और किस कारण पाण्डवों के रहते हुए भी, द्रौपदी के अविवाहित, महारथी पुत्र, अनाथों के समान मारे गये ? ॥३४॥

(महा) भारत के प्रति मेरे इन सभी संशयों का (आप) निवारण कीजिए, जिससे आप द्वारा कृतार्थ हुआ मैं, अपने आश्रम में सुखपूर्वक प्रस्थान कर सकूं ॥३५॥

पक्षियों ने कहा—

सुरेश (इन्द्र), को, महान् प्रभाव वाले विष्णु को, अप्रमेय, अविनाशी, शाश्वत (सदा रहने वाले), तीन गुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्) से युक्त, निर्गुण, चतुर्व्यूहात्मक (विष्णु के चार रूप, शरीर पुरुष, छन्द पुरुष, वेदपुरुष, और महापुरुष) वरिष्ठ, गरिष्ठ, वरेण्य और अमर रहने वाले, उस परम पुरुष को प्रणाम करके ॥३६-३७॥

जिससे अधिक सूक्ष्म और विशाल कोई अन्य वस्तु नहीं है और जगत् के आदि कारण, अजन्मा होते हुए भी जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ॥३८॥

आविर्भाव-तिरोभाव-दृष्टादृष्टविलक्षणम् । वदन्ति यत्सृष्टमिदं तथैवान्ते च संहृतम् ॥३९
ब्रह्मणे चादिदेवाय नमस्कृत्य समाधिमा । ऋक्सामान्युद्गिरन् वक्त्रैर्यः पुनाति जगत्त्रयम् ॥४०
प्रणिपत्य तथैशानमेकबाणविनिर्जितैः । यस्यासुरगणैर्यज्ञा विलुप्यन्ते न यज्विनाम् ॥४१
प्रवक्ष्यामो मतं कृत्स्नं व्यासस्याद्भुतकर्मणः । येन भारतमुद्दिश्य धर्माद्याः प्रकटीकृताः ॥४२
आपोनारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥४३
स देवो भगवान्सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः । चतुर्द्धासंस्थितो ब्रह्मन् सगुणोनिर्गुणस्तथा ॥४४

एकामू तरनिर्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः ।
ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा ॥४५

दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा । वासुदेवाभिधानोऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ॥४६
रूपवर्णादयस्तस्य न भावाः कल्पनामयाः । अस्त्येव सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥४७

(ज्ञानी लोग) जिसके रचे इस जगत् को आवर्भाव (व्यक्त) और तिरोभाव (अव्यक्त) तथा दृष्ट (प्रत्यक्ष) और अदृष्ट (अप्रत्यक्ष) रूप से जिसे विलक्षण मानते हैं और जो अन्त में इसका संहार (प्रलय) हो जाता है, ऐसे संसार का जिसने निर्माण किया है ॥३९॥

समाधि से, ऋग्वेद, सामवेद (आदि को) अपने मुख से उद्‌गीर्ण करते हुए, जो तीनों लोकों को पवित्र करता है, उस आदि देव ब्रह्मा को नमस्कार करके, ॥४०॥

जिसके एक बाण से पूर्णतया जीते गये, असुर गणों के द्वारा, याज्ञिकों के यज्ञ विलुप्त नहीं होते हैं, ऐसे उन शिवजी को प्रणाम करके, ॥४१॥

अद्‌भुत कर्मशील उन व्यास के सिद्धान्त को हम पूर्ण रूप से बतलाएँगे, जिन्होंने (महा) भारत को लक्ष्य करके सभी धर्मादि (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का कथन किया है ॥४२॥

और जिनको मुनियों और तत्त्व दर्शियों ने (आपोनारा) इस प्रकार कहा है और वही (जल) उनका प्रथम अधिष्ठान है, इसलिए उनको नारायण कहा जाता है । ४३॥

हे ब्रह्मन् ! वही देवाधिदेव, सर्वशक्तिमान्, भगवान् नारायण, सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके, चार अवस्थाओं में स्थित हैं और उनके सगुण और निर्गुण दो रूप हैं ॥४४॥

उनमें एक मूर्ति ऐसी है जिसका निर्देश नहीं किया जा सकता । उसे विद्वान् लोग श्वेत वर्ण (सतोगुण युक्त) मानते हैं । अपने तेज की ज्वाला रूपी मालाओं से आच्छादित अंगों वाली, वही योगियों की परानिष्ठा (परमात्मा का आधार) है ॥४५॥

गुणातीत वह मूर्ति अत्यन्त दूर स्थित और समीपस्थ जाननी चाहिए । वासुदेव नाम से अभिहित, वह ममत्वहीन दृष्टि से ही देखा जा सकता है ॥४६॥

रूप, वर्ण आदि ये सब उसके वास्तविक भाव नहीं है, सब काल्पनिक है और वह सदा शुद्ध, सुप्रतिष्ठित और एक रूप वाली ही है ॥४७॥

द्वितीया पृथिवी मूर्ध्नाशेषाख्या धारयत्यधः। तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपाश्रिता।। ४८
तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालनतत्परा । सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी ।।४९
चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा । रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि ।।५०
या तृतीया हरेर्मूर्ति प्रजापालनतत्परा । सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि ।।५१
प्रादुर्भूतानसुरान्हन्ति धर्मविच्छित्तिकारिणः। पाति देवान् सतश्चान्यान् धर्मरक्षापरायणान्।।५२
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिने । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ ।।५३
भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापो निरस्य च । एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलिनीव वसुंधरा ।।५४
कृत्वा नृसिंहरूपं च हिरण्यकशिपुर्हतः। विप्रचित्तिप्रमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः ।।५५
वामनादींस्तथैवान्यान्न संख्यातुमिहोत्सहे । अवतारांश्च तस्येह माथुरः साम्प्रतं त्वयम् ।।५६

इति सा सात्त्विकी मूर्तिरवतारान् करोति वै ।
प्राद्युम्नेति च सा ख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ।।५७

दूसरी (मूर्ति) शेष नाम वाली है, जो अपने सिर से, पृथ्वी को नीचे धारण करती है। तिर्यक्त्व सम्पन्न वह मूर्ति तामसी कही गयी है ।।४८।।

और तृतीय (मूर्ति) कर्म करती हुई प्रजापालन में तत्पर है। सतोगुण सम्पन्न (वह) धर्म का संस्थापन करने वाली कही गयी है ।।४९।।

और चौथी (मूर्ति) सर्प शय्या पर आश्रित होकर जल के मध्य शयन करती है। रजोगुण सम्पन्न वही सदा सृष्टि का निर्माण करती है ।।५०।।

भगवान् परम पुरुष की जो तीसरी मूर्ति प्रजा पालन में तत्पर है, वही पृथ्वी पर धर्म की संस्थापन करती है ।।५१।।

और वह, धर्म को नष्ट करने वाले, उत्पन्न हुए असुरों का विनाश करती है, और धर्म रक्षा में संलग्न देवताओं और सज्जनों की रक्षा करती है ।।५२।।

हे जैमिने ! जब-जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तब अधर्म के नाश के लिए वह स्वयं अवतार लेती है। ५३।।

प्राचीन काल में, इसी मूर्ति ने वराह का रूप धारण करके, मुख से जल को हटाकर एक दांत से ही, कमलिनी के समान, जल से पृथ्वी को उखाड़ लिया था ।।५४।।

और नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का वध किया और विप्रचित्ति प्रमुख अन्य दानवों को भी नष्ट किया ।।५५।।

उनके वामन प्रभृति अनेक संख्यातीत अवतार हैं जिनकी गणना नहीं की जा सकती है। उनमें इस समय मथुरा में वह अवतार हुआ है ।।५६।।

इस प्रकार वह सात्त्विक मूर्ति अवतार धारण करती है और रक्षा के कार्य में लगी हुई, वह प्रद्युम्न नाम से जानी जाती है ।।५७।।

देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्यग्योनौ च संस्थिता। गृह्णाति तत्स्वभावं च वासुदेवेच्छया सदा ॥५८
इत्येतत्ते समाख्यातं कृतकृत्योऽपि यत्प्रभुः। मानुषत्वं गतो विष्णुः शृणुष्वास्योत्तरं पुनः ॥५९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे चतुर्व्यूहावतारश्चतुर्थोऽध्यायः।

देवता, मानुष अथवा तिर्यक योनि में उत्पन्न वह (मूर्ति) सदा ही उस वासुदेव की इच्छा से, उस भाव को ग्रहण करती है ॥५८॥

सब प्रकार से समर्थ होते हुए भी उस प्रभु ने, किस प्रकार मानव का रूप धारण किया, इस रहस्य को अब तुम आगे सुनो ॥५९॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में चतुर्व्यूहावतार नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।

पञ्चमोऽध्यायः

पक्षिणऊचुः—
त्वष्टृपुत्रे हृते पूर्वं ब्रह्मन्निन्द्रस्य तेजसः। ब्रह्महत्याभिभूतस्य परा हानिरजायत ॥१
तद्धर्मं प्रविवेशाथ शाक्रतेजोऽपचारतः। निस्तेजाश्चाभवच्छक्रो धर्मे तेजसि निर्गते ॥२
ततः पुत्रं हतं श्रुत्वा त्वष्टा क्रुद्धः प्रजापतिः। अवलुंच्य जटामेकामिदं वचनमब्रवीत् ॥३
अद्य पश्यन्तु मे वीर्यं त्रयो लोकाः सदेवताः। स च पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा पाकशासनः ॥४
स्व कर्माभिरतो येन मत्सुतो विनिपातितः। इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षी जटामग्नौ जुहावताम् ॥५
ततो वृत्रः समुत्तस्थौ ज्वालामालीमहासुरः। महाकायो महादंष्ट्रो भिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥६

पक्षी बोले—
हे ब्रह्मन्, इन्द्र के तेज से, पहले त्वष्टा के पुत्र के मार दिये जाने पर, ब्रह्महत्या से अभिभूत इन्द्र की बहुत बड़ी हानि हुई ॥१॥

इसके पश्चात्, इस अपचार के कारण, इन्द्र का तेज धर्म में प्रविष्ट हो गया और धर्म में तेज के प्रविष्ट हो जाने पर, इन्द्र तेजहीन हो गया ॥२॥

तत्पश्चात्, अपने पुत्र को मरा हुआ सुनकर, प्रजापति त्वष्टा, अत्यन्त क्रुद्ध होकर (अपनी) एक जटा उखाड़कर, इस प्रकार बोले—॥३॥

दुर्बुद्धि, ब्रह्महत्या करने वाला वह इन्द्र और देवताओं सहित तीनों लोक, आज मेरी शक्ति को देखें—॥४॥

अपने कार्य में संलग्न मेरे पुत्रों को जिसने मारा है—यह कहकर क्रोध से लाल नेत्रों वाले उन्होंने जटा की आहुति अग्नि में दे दी ॥५॥

उसके बाद ज्वालाएँ ही जिसकी मालाएँ हैं, इस प्रकार का विशालकाय, बड़ी-बड़ी दाढ़ों वाला, पृथक् हुए काजल के ढ़ेर के समान शरीर वाला वृत्र (नामक) महा असुर उत्पन्न हुआ ॥६॥

इन्द्रशत्रुरमेयात्मा त्वष्ट्रतेजोपबृंहितः । अहन्यहनि सोऽवर्द्धदिषुपातं महाबलः ॥७
वधाय चात्मनो दृष्ट्वा वृत्रं शक्रो महासुरम् । प्रेषयामास सप्तर्षीन् सन्धिमिच्छन् भयातुरः ॥८
सख्यं चक्रुस्ततस्तस्य वृत्रेण समयांस्तथा । ऋषयः प्रीतमनसः सर्वभूतहितेरताः ॥९
समय स्थतिमुल्लंघ्य यदा शक्रेण घातितः । वृत्रो हत्याभिभूतस्य तदा बलमशीर्यत ॥१०
तच्छक्रदेहविभ्रष्टं बलं मारुतमाविशत् । सर्वव्यापिनमव्यक्तं बलस्यैवाधिदैवतम् ॥११
अहल्यां च यदा शक्रो गौतम रूपमास्थितः । धर्षयामास देवेंद्रस्तदा रूपमहीयत ॥१२
अङ्गप्रत्यङ्गलावण्ययदतीवमनोरमम् । विहाय दुष्टं देवेंद्रं नासत्यावगमत्ततः ॥१३
धर्मेण तेजसा त्यक्तं बलहीनमरूपिणम् । ज्ञात्वा सुरेशं दैतेयास्तज्जये चक्रुरुद्यमम् ॥१४
राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणां देवेन्द्रविजिगीषवः । कुलेष्वतिबलादैत्या अजायन्त महामुने ॥१५
कस्यचित्त्वथ कालस्य धरणाभारपीडिता । जगाम मेरुशिखरं सदो यत्र दिवौकसाम् ॥१६
तेषां सा कथयामास भूरिभारावपीडिता । दनुजात्मजदैत्योत्थं खेदकारणमात्मनः ॥१७

त्वष्टा के तेज से परिवर्द्धित, महाबली, विशाल शरीर वाला, इन्द्र का वह शत्रु, बाणों के प्रहार के साथ दिन प्रतिदिन बढ़ता गया ॥७॥

महा असुर वृत्र को अपने वध के लिए उद्यत देखकर, भयातुर इन्द्र ने, सन्धि करने की इच्छा से, सप्तर्षियों को भेजा ॥८॥

सभी प्राणियों के हित में तत्पर प्रसन्न चित्त ऋषियों ने, उस समय, उस (इन्द्र) की वृत्र के साथ सशर्त मित्रता करा दी ॥९॥

सन्धि की शर्त का उल्लंघन करके इन्द्र ने जब वृत्र को मार डाला तो वृत्र की हत्या से अभिभूत उसका बल क्षीण हो गया ॥१०॥

उस इन्द्र की देह से क्षीण हुआ वह बल, शक्ति के स्वामी, अव्यक्त, सर्वव्यापी वायु में प्रविष्ट हो गया ॥११॥

और जब इन्द्र ने, गौतम का रूप धारण करके, अहल्या के सतीत्व का हरण किया, तब भी उसका रूप क्षीण हुआ ॥१२॥

उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गों का लावण्य, जो अत्यन्त मनोहर था, उस दुष्ट इन्द्र को छोड़कर, अश्विनी कुमारों में प्रविष्ट हो गया ॥१३॥

धर्म से और तेज से परित्यक्त, इन्द्र को, शक्तिहीन और रूपहीन जानकर, दैत्यों ने उस (इन्द्र) पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया ॥१४॥

हे महामुने ! तब बढ़े हुए पराक्रम वाले, राजाओं के कुलों में, इन्द्र को जीतने के इच्छुक महाबली दैत्य उत्पन्न हुए ॥१५॥

कुछ समय पश्चात् (उनके) भार से पीड़ित पृथ्वी मेरु शिखर पर गयी । जहाँ पर देवताओं का निवास था ॥१६॥

उन दैत्यों के अत्यधिक भार से पीड़ित, पृथ्वी ने दनुज के पुत्र दैत्यों से उत्पन्न अपने दुःख का कारण निवेदन किया ॥१७॥

एते भवद्भिरसुरा निहताः पृथुलौजसः । ते सर्वे मानुषे लोके जाता गेहेषु भूभृताम् ॥१८
अक्षौहिण्यो हि बहुलास्तद्भारार्त्ता व्रजाम्यधः । तथा कुरुध्वं त्रिदशा यथा शान्तिर्भवेन्मम ॥१९

पक्षिणऊचुः—

तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महीम् । प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च ॥२०
यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः । कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः ॥२१
बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत । शक्रवीर्यार्धतश्चैव जज्ञे पार्थो धनञ्जयः ॥२२
उत्पन्नौ यमजौ माद्र्यां शक्ररूपौ महाद्युती । पञ्चधा भगवानित्थमवतीर्णः शतक्रतुः ॥२३
तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात् ॥२४
शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित् । योगीश्वराः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि ॥२५
पञ्चानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितं तव । श्रूयतां बलदेवोऽपि यथा यातः सरस्वतीम् ॥२६

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे इन्द्रविक्रिया नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

जिन शक्तिशाली असुरों का आपने विनाश किया था, वे सब मृत्यु लोक में, राजाओं के घरों में उत्पन्न हो गये हैं ॥१८॥

उनकी बहुत सी विशाल अक्षौहिणी सेनाओं के भार से दुःखी, मैं नीचे को धँसी जा रही हूं । इसलिए हे देवो ! आप ऐसा कुछ उपाय कीजिए, जिससे मुझे शान्ति मिले ॥१९॥

पक्षी बोले—

तत्पश्चात्, प्रजाओं के उपकार के लिए, और पृथ्वी के भार का हरण करने के लिए, वे देवता अपने तेजस भाग से, स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए ॥२०॥

इन्द्र की देह से उत्पन्न, जिस तेज ने स्वयं इन्द्र को छोड़ा, उसी तेज से महा तेजस्वी राजा युधिष्ठिर, कुन्ती से उत्पन्न हुए ॥२१॥

पवन द्वारा मुक्त बल से, भीम का जन्म हुआ और इन्द्र के आधे वीर्य से पार्थ धनंजय (अर्जुन) का जन्म हुआ ॥२२॥

इसके पश्चात् माद्री से, इन्द्र के रूप से युक्त, अति तेजस्वी, नकुल और सहदेव युगल (जुड़वाँ) रूप में उत्पन्न हुए । इस प्रकार ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही पाँचों भागों में विभक्त होकर अवतीर्ण हुए ॥२३॥

उस (इन्द्र) की ही ऐश्वर्यशालिनी पत्नी (शची) कृष्णा (द्रौपदी) के रूप में अग्नि से उत्पन्न हुई ॥२४॥

(इस प्रकार) वह द्रौपदी, एक इन्द्र की ही पत्नी थी, अन्य किसी की नहीं । जिस प्रकार योगीजन अपने एक शरीर को ही, अनेकों शरीरों में परिवर्तित कर लेते हैं (उसी प्रकार योगीराज इन्द्र ने भी किया ॥२५॥

इस प्रकार हमने, यह पाँचों पाण्डवों की एक पत्नी सम्बन्धी बात को आप से कहा है (उसके बाद) बलदेव भी (प्रायश्चित्त करने के लिए) किस प्रकार सरस्वती पर आये, इसका भी स्पष्टीकरण सुनिये । २६॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में इन्द्रविक्रिया नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षष्ठोऽध्यायः

पक्षिणऊचुः—

रामः पार्थे परां प्रीतिं ज्ञात्वा कृष्णस्य लाङ्गली ।
चिन्तयामास बहुधा किं कृतं सुकृतं भवेत् ॥१

कृष्णेन हि विना नाहं यास्ये दुर्योधनान्तिकम् । पाण्डवान् वा समाश्रित्य कथं दुर्योधनं नृपम् ॥२
जामातरं तथा शिष्यं घातयिष्ये नरेश्वरम् । तस्मान्न पार्थं यास्यामि नापि दुर्योधनं नृपम् ॥३
तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना । कुरूणां पाण्डवानां च यावदन्ताय कल्पते ॥४
इत्यामंत्र्य हृषीकेशं पार्थदुर्योधनावपि । जगाम द्वारकां शौरिः स्व-सैन्य-परिवारितः ॥५
गत्वा द्वारवतीं रामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम् । श्वो गन्तव्येषु तीर्थेषु पपौ पानं हलायुधः ॥६
पीतपानो जगामाथ रेवतोद्यानमृद्धिमत् । हस्ते गृहीत्वा समदां रेवतीमाप्सरोपमाम् ॥७
स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययौ मत्तः पदास्खलन् । ददर्श च वनं वीरो रमणीयमनुत्तमम् ॥८
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् । पुण्यं पद्मवनोपेतं सपल्वलमहावनम् ॥९

स शृण्वन्प्रीतिजननान्बहून्मदकलान् शुभान् ।
श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान् खगमुखेरितान् ॥१०

पक्षी बोले—

कृष्ण की प्रीति अर्जुन में जानकर, बलराम ने बहुत प्रकार से विचार किया कि क्या क्रिया जाए जो कि अच्छा हो ॥१॥

कृष्ण के बिना मैं दुर्योधन के पास भी नहीं जाऊँगा और पाण्डवों का आश्रय लेकर अपने शिष्य और जामाता दुर्योधन को कैसे मारूँगा । इसलिए मैं न तो अर्जुन की ओर जाऊँगा और न ही दुर्योधन के पक्ष में रहूंगा ॥२-३॥

जब तक कौरव-पाण्डवों का अन्त नहीं होता है तब तक मैं तीर्थ में ही विहार करता रहूंगा ॥४॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण, अर्जुन और दुर्योधन से अनुज्ञा लेकर बलराम अपनी सेना सहित द्वारिका चले गये ॥५।

हृष्ट पुष्ट मनुष्यों से आकीर्ण, द्वारिका नगरी में जाकर, हल धारण करने वाले, बलराम ने जिन तीर्थों में उन्हें कल जाना था वहां जाने से पूर्व ही मद्यपान कर लिया ॥६॥

तत्पश्चात् मद्यपान किये हुए वह (बलराम) अप्सरा के समान मदमाती (अपनी पत्नी) रेवती का हाथ पकड़कर (अपने श्वसुर) रेवत के समृद्धिशाली उद्यान में गये ।७॥

स्त्री समूह के बीच में लड़खडाते पैरों से जाते हुए उस वीर ने बहुत सुन्दर वन को देखा ॥८॥

सभी ऋतुओं में प्राप्य पुष्पों से समृद्ध बन्दरों के समूह से आकुल महान् पद्मवन में, एक छोटा सा जलाशय देखा ॥९॥

(वहाँ) उन्होंने, कानों को रमणीय लगने वाले, आनन्ददायक, पक्षियों के मुख से मुखरित, अत्यन्त मधुर शुभ ध्वनि को सुनते हुए ॥१०॥

सर्वर्तु फलभाराढ्यान् सर्वर्तु कुसुमोज्ज्वलान् । अपश्यत्पादपांस्तत्र विहगैरनुनादितान् ॥११

आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् ।

आबिल्वकांस्तथा जीरान्दाडिमान् बीजपूरकान् ॥१२

पनसाँल्लकुचान्मोचान्नीपांश्चातिमनोहरान् । पारावतांश्च कङ्कोलान्नलिनानम्लवेतसान् ॥१३

भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्च महाफलान् । इंगुदान्करमर्दांश्च हरीतकविभीतकान् ॥१४

एतानन्यांश्च . सतरून्दर्शयन्यदुनन्दनः । तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥१५

चम्पकान्सप्तपर्णांश्च कर्णिकारान्समालतीन् ।

पारिजातान् कोविदारान्मन्दारान्बदराँस्तथा ॥१६

पाटलान्पुष्पितान् रम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा । सालांस्तालांस्तमालांश्च किंशुकान्वंजुलान्वरान् ॥१७

चकोरैः शातपत्रैश्च भृंगराजस्तथा शुकैः । कोकिलैः कलविंकैश्च हारीतैर्जीवजीवकैः ॥१८

प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः । श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्टितम् ॥१९

सरांसि च मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदैः पुण्डरीकैश्च तथा नीलोत्पलैः शुभैः ॥२०

कह्लारैः कमलैश्चापि आचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः ॥२१

कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च । एभिश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥२२

सभी ऋतुओं के फलों के भार से युक्त, दीप्तिमान् पुष्पों वाले, पक्षियों के मधुर कलरव सम्पन्न वृक्षों को देखा ॥११॥

जो उद्यान सुन्दर आम, आमलकी, नारियल, तेन्दुआ, बेल, जीरा, और बीजयुक्त अनार, कटहल, बडहर, केला तथा अत्यन्त मनोहर कदम्ब, कबूतरों से युक्त अशोक वृक्ष, नील के पौधे, नींबू, ॥१२-१३॥

भिलावा, आँवला और तेन्दू के बड़े-बड़े फलों वाले तथा इंगुदी, करमर्द नामक एक पौधा विशेष हरा बहेड़ा (आदि) ॥१४॥

इन सब वृक्षों तथा अन्य भी विविध प्रकार के वृक्षों को यदु पुत्र बलराम देखते हुए। साथ ही अशोक पुष्प, नागकेसर, केवड़ा, केसर, ॥१५॥

और चमेली, सप्तपर्ण, कनियार, मालती, पारिजात, कचनार मूंगा तथा बेर, ॥१६॥

और अत्यन्त रमणीय एवं फूले हुए पादर (पाटल) के पुष्पों के वृक्षों से युक्त तथा देवदार, साल, ताड़, तमाल, टेसू तथा श्रेष्ठ अशोक पुष्पों से युक्त विविध वृक्षों को वहां देखा ॥१७॥

(साथ ही) वहां चकोर, मोर, भौरों, तोतों, कोयल, चिड़िया, कबूतर, जीव जीवक, प्रियपुत्र तथा चातक आदि अन्य विविध प्रकार के पक्षियों को देखा जो कानों को अच्छे लगने वाली मधुर ध्वनि में चहचहा रहे थे ॥१८-१९॥

और मनोहर तालाबों को जो स्वच्छ जल से (लबालब) भरे हुए थे (और उन तालाबों में) कुमुद, पुण्डरीक, सुन्दर नील कमल, ॥२०॥

कल्हार और कमलों से वे पूरी तरह से युक्त थे तथा उनमें सारस चक्रवाक, जलमुर्गी, ॥२१॥

बत्तख, मेंढक, हंस, कछुए, मछलियाँ आदि विभिन्न जलचरों से वे तालाब पूर्ण थे ॥२२॥

क्रमेणेत्थं वनं शौरिर्वीक्ष्यमाणो मनोरमम्। जगामानुगतः स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥२३
स ददर्श द्विजांस्तत्र वेदवेदांगपारगान्। कौशिकान्भार्गवांश्चैव भरद्वाजान् सुगौतमान् ॥२४
विविधेषु च संभूतान् वंशेषु द्विजसत्तमान्। कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सु च ॥२५
कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कुशेषु च वृसीषु च। सूतं च तेषां मध्यस्थं कथयानं कथाः शुभाः ॥२६
पौराणिकीः सुरर्षीणामाद्यानां चरिताश्रयाः। दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥२७
मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः। पूजयन्तो हलधरमृते तं सूतवंशजम् ॥२८
ततः क्रोधसमाविष्टो हलीसूतं महाबलः। निजघान विवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः ॥२९

अध्यास्यति पदं ब्राह्मं तस्मिन्सूते निपातिते।
निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्वे वनात् कृष्णाजिनाम्बराः ॥३०

अवधूतं तथात्मानं मन्यमानो हलायुधः। चिन्तयामास सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥३१
ब्राह्मं स्थानं गतो ह्येष यत्सूतो विनिपातितः। तथाहीमे द्विजाः सर्वे मामवेक्ष्य विनिर्गताः ॥३२
शरीरस्य च मे गन्धो लोहस्येवासुखावहः। आत्मानं चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम् ॥३३

इस प्रकार मनोरम वन को क्रम से देखते हुए एवं स्त्रियों के द्वारा अनुसरण किये जाते हुए बलराम ने अति सुन्दर लतागृह में प्रवेश किया ॥२३॥

वहां उन्होंने वेद और वेदांगों में पारंगत कौशिक भारद्वाज, भार्गव, और गौतम के वंशज ब्राह्मणों को देखा ॥२४॥

वे द्विजश्रेष्ठ विभिन्न वंशों में उत्पन्न हुए थे और कथा सुनने में लीन हुए बैठे थे ॥२५॥

उनके मध्य में कल्याणकारी कथाओं को कहते हुए, सूत जी काले मृग चर्म के उत्तरीय को धारण किये कुशा के आसन पर बैठे हुए थे। जो पौराणिक देवर्षियों के चरित्र सम्बन्धी कथाओं को सुना रहे थे। (उन) ब्राह्मणों ने मद्यपान से लाल नेत्रों वाले, बलराम को देखकर, ॥२६-२७॥

यह (इस समय) नशे में हैं ऐसा विचार कर अत्यन्त शीघ्रता के साथ, उन सूतवंश सूत जी को छोड़कर, सभी विप्र बलराम के सम्मान के लिए उठ खड़े हुए ॥२८॥

तत्पश्चात्, सभी दानवों का संहार करने वाले, महाबली बलराम ने क्रोधित होकर, सूत जी को मार डाला ॥२९॥

उनके मारने पर सूत जी ब्रह्मपद को प्राप्त हुए और ऐसा कुकृत्य देखकर कृष्ण मृग-चर्म को धारण करने वाले सभी श्रोता ब्राह्मण, उस वन से चले गये ॥३०॥

नशा दूर होने पर, मैंने यह बहुत बड़ा पाप किया है, इस प्रकार सोचते हुए, बलराम ने अपने को पापी माना ॥३१॥

यह (मेरे द्वारा मारा गया) सूत तो ब्राह्मपद को पा गया और ये ब्राह्मण मुझे (ऐसी दशा में) देखकर (वन छोड़कर) चले गये ॥३२॥

इस समय मुझे, इस शरीर की गन्ध भी लोहे के समान कष्टदायक हो रही है। (इस समय) मैं अपने को ब्रह्म-हत्या करने वाले के समान कुत्सित (पापी) मानता हूं ॥३३॥

धिगमर्षं तथा मह्यमतिमानमभीरुताम् । यैराविष्टेन सुमहन्मया पापमिदं कृतम् ॥३४
तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादशवार्षिकम् । स्वकर्मख्यापनं कुर्वन् प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥३५
अथवेयं समारब्धा तीर्थयात्रा मयाधुना । एतामेव प्रयास्यामि प्रतिलोमां सरस्वतीम् ॥३६
अतो जगाम रामोऽसौ प्रतिलोमां सरस्वतीम् । ततः परं शृणुवेमं पाण्डवेयकथाश्रयम् ॥३७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे महाबलदेवब्रह्महत्याकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।

जिस प्रभाव के कारण मैंने यह महान् पाप कर दिया है उस क्रोध और अमर्यादित साहस को धिक्कार है ॥३४॥

(इस ब्रह्म हत्या से उद्भूत पाप के) नाश के लिए अपने (निकृष्ट) कार्य का कथन करते हुए, मैं बारह वर्षों तक प्रायश्चित करूँगा ॥३५॥

(उसके बाद, बलराम बोले) मैं आज से ही यह (प्रायश्चित रूप) तीर्थ यात्रा प्रारम्भ करता हूं। इसके लिए मैं सर्वप्रथम सरस्वती पर प्रतिलोम (ऊपर की ओर) जाऊँगा ॥३६॥

अतः बलराम प्रतिलोम (ऊपर प्रवाह के निर्गम की ओर) सरस्वती पर गये। उसके पश्चात् (अब आप) पाण्डवों से सम्बन्धित कथा सुनिये ॥३७॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराण में बलदेव ब्रह्म हत्या कथन नामक छठा अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तमोऽध्यायः

धर्मपक्षिण ऊचुः—

हरिश्चन्द्रेति राजर्षिरासीत् त्रेतायुगे पुरा । धर्मात्मा पृथिवीपालः प्रोल्लसत् कीर्तिरुत्तमः ॥१
न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम् । नाधर्मरुचयः पौरास्तस्मिन्शासति पार्थिवे ॥२
बभूवुर्न तथोन्मत्ता धनवीर्यतपोमदैः । नाजायन्त स्त्रियश्चैव काश्चिदप्राप्तयौवनाः ॥३
स कदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन्मृगम् । शुश्राव शब्दमसकृत् त्रायस्वेति च योषिताम् ॥४

धर्मपक्षी बोले—

प्राचीन काल में त्रेता युग में, उत्तम कीर्ति वाले बड़े धर्मात्मा, प्रजा का पालन करने वाले, राजा हरिश्चन्द्र हुए ॥१॥

उन राजा के शासन काल में, लोगों को सूखा अथवा व्याधि आदि से अकाल मृत्यु का ग्रास नहीं होना पड़ता था और न ही नगरवासी अधर्म में प्रवृत्ति रखते थे ॥२॥

(उनके राज्य में) न तो (कोई व्यक्ति) धन, पराक्रम अथवा तप आदि के अहंकार से उन्मत्त हुआ और न ही अप्राप्त यौवना कन्या ने सन्तानोत्पत्ति की ॥३॥

विशाल भुजाओं वाले उस राजा ने, कभी किसी हिरण (हरिन) का (शिकार के लिए) पीछा करते हुए, 'बचाओ', 'बचाओ' इस प्रकार अनेक बार स्त्रियों का शब्द सुना ॥४॥

स विहाय मृगं राजा माभैषीरित्यभाषत । मयि शासति दुर्मेधाः कोऽयमन्यायवृत्तिमान् ।।५
तत्क्रन्दितानुसारी च सर्वारम्भविघातकृत् । एतस्मिन्नन्तरे रौद्रो विघ्नराट् समचिन्तयत् ।।६
विश्वामित्रोऽयमतुलं तप आस्थाय वीर्यवान् । प्रागसिद्धा भवादीनां विद्याः साधयति व्रती ।।७
साध्यमानाः क्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना । ता वै भयार्त्ताः क्रन्दन्ति कथं कार्यमिदं मया ।।८
तेजस्वी कौशिकश्रेष्ठो वयमस्य सुदुर्बलाः । क्रोशन्त्येतास्तथा भीता दुष्पारं प्रतिभाति मे ।।९
अथवायं नृपः प्राप्तो माभैरिति वदन्मुहुः । इममेव प्रविश्याशु साधयिष्ये यथेप्सितम् ।।१०
इति संचिन्त्य रौद्रेण विघ्नराजेन वै ततः । तेनाविष्टो नृपः कोपादिदं वचनमब्रवीत् ।।११
कोऽयं बध्नाति वस्त्रान्ते पावकं पापकृन्नरः । बलोष्णतेजसा दीप्ते मयि पत्यावुपस्थिते ।।१२
सोऽद्य मत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः । शरैर्विभिन्नसर्वांगो दीर्घनिद्रां प्रवेक्ष्यति ।।१३
विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धः श्रुत्वा तन्नृपतेर्वचः । क्रुद्धे चर्षिवरे तस्मिन्नेशुर्विद्याः क्षणेन ताः ।।१४
स चापि राजा तं दृष्ट्वा विश्वामित्रं तपोनिधिम् । भीतः प्रावेपतात्यर्थं सहसाश्वत्थपर्णवत् ।।१५

राजा मृग को छोड़कर, 'मत डरो' इस प्रकार कहते हुए, मेरे शासन करते हुए, अन्यायी वृत्ति वाला यह दुष्ट बुद्धि कौन है ? ।।५।।

इसी बीच में सभी (कार्यों) के आरम्भ में विघ्न उत्पन्न करने वाले और उस क्रन्दन का अनुसरण करने वाले रौद्र रूपधारी विघ्नराज ने सोचा— ।।६।।

ये तो शक्तिशाली एवं व्रती विश्वामित्र अतुल तप का आचरण करके पूर्व असिद्ध विद्याओं को सिद्ध कर रहे हैं ।।७।।

क्षमा, मौन और संयमी चित्त से इसके द्वारा, सिद्ध की जाती हुई वे विद्याएँ ही क्रन्दन कर रही हैं तो इस कार्य को मैं कैसे करूँ ? ।।८।।

विश्वामित्र मुनि श्रेष्ठ और तेजस्वी हैं और मैं अत्यन्त दुर्बल हूं । इस कारण चिल्लाती हुई, इन विद्याओं की रक्षा का कार्य, मुझे तो अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है ।।९।।

अथवा यह राजा (हरिश्चन्द्र) 'डरो मत' 'डरो मत' ऐसा बार-बार कहता हुआ यहाँ उपस्थित हुआ है अतः इसमें प्रवेश करके मैं शीघ्र ही अपने वाञ्छित को सिद्ध कर लूँगा ।।१०।।

तत्पश्चात् रौद्र रूपधारी विघ्नराज ने इस प्रकार सोचकर क्रोध युक्त होकर राजा (हरिश्चन्द्र) के भीतर प्रवेश कर लिया । उसके पश्चात् क्रोध युक्त होकर राजा (हरिश्चन्द्र) ने ये शब्द कहे ।।११।।

बलशाली, प्रदीप्त तेज से दीप्तिमान, मेरे राजा होते हुए भी, यह कौन पापी अपने वस्त्र के छोर में अग्नि को बाँध रहा है ? ।।१२।।

आज मेरे धनुष से निकले हुए, विभिन्न दिशाओं की ओर जाते हुए, दीप्तिमान बाणों से, छिन्न-भिन्न हुए अंगों वाला, यह कौन पापी गहन निद्रा (मृत्यु) के वशीभूत होना चाहता है ? ।।१३।।

राजा (हरिश्चन्द्र) के उन वचनों को सुनकर, मुनि विश्वामित्र क्रोधित हो गये । उन ऋषिवर के क्रुद्ध होने पर, वे विद्याएँ क्षण भर में ही विलुप्त हो गयीं ।।१४।।

राजा हरिश्चन्द्र भी, तपोनिधि उन विश्वामित्र को देखकर, भय से पीपल के पत्ते के समान काँपने लगे ।।१५।।

स दुरात्मन्निति यदा मुनिस्तिष्ठेति चाब्रवीत् । ततः स राजा विनयात्प्रणिपत्याभ्यभाषत ।।१६
भगवन्नेष धर्मो मे नापराधो मम प्रभो। न क्रोद्धमर्हसि मुने निजधर्मरतस्य मे ।।१७
दातव्यं रक्षितव्यं च धर्मज्ञेन महीक्षिता । चापं चोद्यम्य योद्धव्यं धर्मशास्त्रानुसारतः ।।१८

विश्वामित्र उवाच—

दातव्यं कस्य के रक्ष्याः कैर्योद्धव्यं च ते नृप । क्षिप्रमेतत् समाचक्ष्व यद्यधर्मभयं तव ।।१९

हरिश्चन्द्र उवाच—

दातव्यं विप्र मुख्येभ्यो ये चान्ये कृशवृत्तयः। रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्त्तव्यं परिपन्थिभिः।।२०

विश्वामित्र उवाच —

यदि राजा भवान् सम्यग्राजधर्ममवेक्षते । निर्वेष्टुकामो विप्रोऽहं दीयतामिष्टदक्षिणा ।।२१

पक्षिण ऊचुः—

एतद्राजा वचः श्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना । पुनर्जातमिवात्मानं मेने प्राह च कौशिकम् ।।२२
उच्यतां भगवन् यत्ते दातव्यमविशङ्कितम्। दत्तमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ।।२३

हे दुरात्मन् ! जरा ठहर तो, मुनि (विश्वामित्र) ने इस प्रकार कहा, तो उसके बाद वह राजा हरिश्चन्द्र (मुनि के चरणों पर) गिरकर, विनय पूर्वक बोले— ।।१६।।

हे भगवन् ! यह तो मेरा राजधर्म है, अपराध नहीं, प्रभो, अपने कर्त्तव्य में लगे हुए, मेरे ऊपर आपको क्रोध नहीं करना चाहिए ।।१७।।

धर्मज्ञ राजा को दान देना चाहिये और (प्रजा) की रक्षा करनी चाहिये तथा धनुष उठाकर धर्मशास्त्र का अनुसरण करते हुए (आततायी) से युद्ध करना चाहिये ।।१८।।

विश्वामित्र बोले—

यदि तुम्हें अधर्म का भय है, तो किसे देना चाहिये, किसकी रक्षा करनी चाहिये और (तुम्हें) किन के साथ युद्ध करना चाहिये ? यह (सब) शीघ्र कहो ।।१९।।

हरिश्चन्द्र बोले—

श्रेष्ठ ब्राह्मणों तथा अन्य निर्धनों को (दान) देना चाहिए और जो दीन हैं उन्हें भी देना चाहिए । भयभीतों की रक्षा करनी चाहिये और शत्रुओं के साथ सदैव युद्ध करना चाहिये ।।२०।।

विश्वामित्र बोले

हे राजन् ! यदि आप राजधर्म को भलीभांति जानते हैं तो मैं निर्लिप्त इच्छाओं वाला ब्राह्मण हूं (मुझे) अभिलषित दक्षिणा दो ।।२१।।

पक्षी बोले

मुनि के इन वचनों को सुनकर प्रसन्न मन वाले राजा (हरिश्चन्द्र) अपने को पुनर्जीवित के समान मानते हुए विश्वामित्र से बोले— ।।२२।।

हे भगवन् ! आप निःसंकोच होकर जो भी देना है, उसे कहिये । यदि कोई अति दुर्लभ वस्तु भी हो उसे भी आप दिया ही समझिये ।।२३।।

हिरण्यं वा सुवर्णं वा पुत्रः पुत्री-कलेवरम् । प्राणा राज्यं पुरं लक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः ॥२४

विश्वामित्र उवाच—

राजन् प्रतिगृहीतोऽयं यस्ते दत्तः प्रतिग्रहः । प्रयच्छ प्रथमं तावद्दक्षिणां राजसूयिकीम् ॥२५

राजोवाच—

ब्रह्मंस्तामपि दास्यामि दक्षिणां भवतो ह्यहम् । व्रियतां द्विजशार्दूल यस्तवेष्टः प्रतिग्रहः ॥२६

विश्वामित्र उवाच—

ससागरां धरामेतां सभूभृद्ग्रामपत्तनाम् । राज्यं च सकलं वीररथाश्वगजसंकुलम् ॥२७
कोष्ठागारं च कोशं च यच्चान्यद्विद्यते तव । बिना भार्यां च पुत्रं च शरीरं च तवानघ ॥२८
धर्मं च सर्वधर्मज्ञ यो यान्तमनुगच्छति । बहुना वा किमुक्तेन सर्वमेतत् प्रदीयताम् ॥२९

पक्षिण ऊचुः—

प्रहृष्टेनैव मनसा सोऽविकारमुखो नृपः । तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह कृताञ्जलिः ॥३०

विश्वामित्र उवाच—

सर्वस्वं यदि मे दत्तं राज्यमुर्वी बलं धनम् । प्रभुत्वं कस्य राजर्षे राज्यस्थे तापसे मयि ॥३१

स्वर्ण, आभूषण, पुत्र या पुत्री का शरीर अथवा मेरे प्राण, राज्य, नगर या राजलक्ष्मी जो भी आपको अभिप्सित हो, सभी (वस्तुएँ आपके सामने हैं) ॥२४॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजन् ! यह दान जो तुमने दिया है, मैंने स्वीकार कर लिया है । अब तुम प्रथम तो राजसूय सम्बन्धी दक्षिणा (मुझे) दो ॥२५॥

राजा बोले—

हे ब्रह्मन् ! वह दक्षिणा भी मैं आपको दूँगा । हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! पहले जो आपको दान रूप में अभिलषित हो माँगिए ॥२६॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजन् ! ग्राम, नगरों सहित, सागरों से युक्त, यह भूमि, घोड़े, हाथी और रथ सहित सेना वाले राज्य को, कोषागार तथा उसमें स्थित कोष, पत्नी, पुत्र, तुम्हारे शरीर और धर्म को छोड़कर जो कि जाने वाले के साथ जाता है, जो भी अन्य वस्तुएँ तुम्हारे पास हैं—हे धर्मज्ञ, बहुत कहने से क्या लाभ ? ये सभी वस्तुएँ दो ॥२७-२८-२९॥

पक्षी बोले—

ऋषि के उन वचनों को सुनकर, निर्विकार मुख एवं प्रसन्न मन से राजा ने कहा जैसा आप कहते हैं वैसा ही हो ॥३०॥

विश्वामित्र बोले—

सैन्य बल, धन, पृथ्वी, राज्य यदि तुमने मुझे दे दिया है तो हे राजर्षि ! इस राज्य में अब किसका प्रभुत्व होगा ? ॥३१॥

हरिश्चन्द्र उवाच—

यस्मिन्नपि मया काले ब्रह्मन् दत्ता वसुन्धरा। तस्मिन्नपि भवान् स्वामी किमुताद्य महीपतिः ॥३२

विश्वामित्र उवाच—

यदि राजंस्त्वया दत्ता मम सर्वा वसुन्धरा। यत्र मे विषये स्वाम्यं तस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि ॥३३

श्रोणीसूत्रादि सकलं मुक्त्वा भूषणसंग्रहम्। तरुवल्कलमाबध्य सह पत्न्या सुतेन च ॥३४

पक्षिण ऊचुः—

तथेति चोक्त्वा कृत्वा च राजा गन्तुं प्रचक्रमे। स्व पत्न्या शैव्यया सार्धं बालकेनात्मजेन च ॥३५

व्रजतः स ततो रुद्धा पन्थानं प्राह तं नृपम्। क्व यास्यसीत्यदत्त्वा मे दक्षिणां राजसूयिकीम् ॥३६

हरिश्चन्द्र उवाच—

भगवन् राज्यमेतत्ते दत्तं निहतकण्टकम्। अवशिष्टमिदं ब्रह्मन्नद्य देहत्रयं मम ॥३७

विश्वामित्र उवाच—

तथापि खलु दातव्या त्वया मे यज्ञदक्षिणा। विशेषतो ब्राह्मणानां हन्त्यदत्तं प्रतिश्रुतम् ॥३८

यावत्तोषो राजसूये ब्राह्मणानां भवेन्नृप। तावदेव तु दातव्या दक्षिणा राजसूयिकी ॥३९

हरिश्चन्द्र बोले—

हे ब्रह्मन् ! यह पृथ्वी मैंने जिस समय आपको दी है, उसी समय से आप (इस पृथ्वी के) स्वामी हो गये हैं, केवल आज से ही नहीं ॥३२॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजन् ! यदि आपने मुझे समस्त पृथ्वी दे दी है तो जिस राज्य पर (प्रदेश पर) मेरा अधिकार है, उसके विषय में मैं स्वामी हूं, तुम निकल जाओ ॥३३॥

करधनी आदि इन सम्पूर्ण आभूषणों को छोड़कर, वृक्ष की छाल बांधकर अपने पुत्र और पत्नी के साथ (तुम निकल जाओ) ॥३४॥

पक्षी बोले—

'ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर राजा ने अपने बालक पुत्र और पत्नी शैव्या के साथ (राज्य से बाहर) जाने का उपक्रम किया ॥३५॥

तत्पश्चात् विश्वामित्र ने जाते हुए उस (राजा) के मार्ग को रोककर कहा—राजसूय सम्बन्धी मेरी दक्षिणा को बिना दिये ही तुम कहाँ जा रहे हो ? ॥३६॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भगवन् ! निष्कण्टक यह राज्य, मैंने आपको दे दिया है। हे ब्रह्मन् ! इन तीनों शरीरों को (छोड़कर) आज मेरे पास कुछ शेष नहीं बचा है ॥३७॥

विश्वामित्र बोले—

तो भी तुम्हें मेरी यज्ञ दक्षिणा निश्चय ही देनी होगी। विशेष रूप से ब्राह्मणों को वचन देकर भी, न देने वाला व्यक्ति नष्ट हो जाता है ॥३८॥

हे राजन् ! इसलिए राजसूय (यज्ञ) में जितनी दक्षिणा से ब्राह्मण संतुष्ट हो. राजसूय सम्बन्धी उतनी ही दक्षिणा (ब्राह्मणों को अवश्य) देनी चाहिये ॥३९॥

प्रतिश्रुत्य च दातव्यं योद्धव्यं चाततायिभिः। रक्षितव्यास्तथा चार्त्तास्त्वयैव प्राक् प्रतिश्रुतम् ।४०

हरिश्चन्द्र उवाच —

भगवन् साम्प्रतं नास्ति दास्ये कालक्रमेण ते। प्रसादं कुरु विप्रर्षे सद्भावमनुचिन्त्य च ।।४१

विश्वामित्र उवाच—

किं प्रमाणो मया कालः प्रतीक्ष्यस्ते जनाधिप। शीघ्रमाचक्ष्व शापाग्निरन्यथा त्वां प्रधक्ष्यति ।।४२

हरिश्चन्द्र उवाच—

मासेन तव विप्रर्षे प्रदास्ये दक्षिणाधनम्। साम्प्रतं नास्ति मे वित्तमनुज्ञां दातुमर्हसि ।।४३

विश्वामित्र उवाच—

गच्छ गच्छ नृपश्रेष्ठ स्वधर्ममनुपालय। शिवश्च तेऽध्वा भवतु मासन्तु परिपन्थिनः ।।४४

पक्षिण ऊचुः—

अनुज्ञातः स गच्छेति जगाम वसुधाधिपः। पद्भ्यामनुचिता गन्तुमन्वगच्छत तं प्रिया ।।४५

तं सभार्यं नृपश्रेष्ठं निर्यान्तं ससुतं पुरात्। दृष्ट्वा प्रचुक्रुशः पौरा राज्ञश्चैवानुयायिनः ।।४६

हा नाथ किं जहास्यस्मान्नित्यार्त्ति-परिपीडितान्। त्वं धर्मतत्परो राजन् पौरानुग्रहकृत्तथा ।।४७

तुमने ही पहले कहा था कि वचन देकर अवश्य देना चाहिये। आततायियों के साथ युद्ध करना चाहिये और दुखियों की रक्षा करनी चाहिये ।।४०।।

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भगवन्! इस समय तो नहीं है आपको कुछ समय के बाद दे दूँगा। हे विप्रर्षि! मेरे साथ सद्भाव रखते हुए (आप) मेरे ऊपर कृपा कीजिये ।।४१।।

विश्वामित्र बोले—

हे राजन्! मैं कितने समय तक (दक्षिणा के लिए) प्रतीक्षा करूँ? (उस समय को) शीघ्र कहो (अन्यथा) शाप की आग तुम्हें भस्म कर देगी ।।४२।।

हरिश्चन्द्र बोले—

हे विप्रर्षे! एक महीने में मैं आपको दक्षिणा सम्बन्धी धन दे दूँगा। मेरे पास इस समय धन नहीं है। अतः आप मुझे अनुमति प्रदान करने की कृपा करें ।।४३।।

विश्वामित्र बोले—

हे नृपश्रेष्ठ! जाओ, जाओ अपने कर्त्तव्य का पालन करो। तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो, उसमें कोई शत्रु न हो ।।४४।।

पक्षी बोले—

'जाओ' इस प्रकार आज्ञा प्राप्त करके प्रिया (शैव्या) के द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ, वह राजा पैदल ही चला गया ।।४५।।

पत्नी और पुत्र सहित नृपश्रेष्ठ (हरिश्चन्द्र) को नगर से जाते हुए देखकर, राजा के अनुयायी, नगरवासी क्रन्दन करने लगे।

हा स्वामी! दुःखी और पीड़ित हमें सदैव के लिए क्यों छोड़ रहे हो? हे राजन्! आप धर्म का पालन करने वाले एवं नगरवासियों पर दयालु हैं।

नयास्मानपि राजर्षे यदि धर्ममवेक्षसे । मुहूर्त्तं तिष्ठ राजेन्द्र भवतो मुखपङ्कजम् ॥४८
पिबामो नेत्रभ्रमरैः कदा द्रक्ष्यामहे पुनः । यस्य प्रयातस्य पुरो यान्ति पृष्ठे च पार्थिवाः ॥४६

तस्यानुयाति भार्येयं गृहीत्वा बालकं सुतम् ।
यस्य भृत्याः प्रयातस्य यान्त्यग्रे कुञ्जरस्थिताः ॥५०

स एष पद्भ्यां राजेन्द्रो हरिश्चन्द्रोऽद्य गच्छति । हा राजन् सुकुमार ते सुभ्रु-सुत्वचमुन्नसम् ॥५१
पथि पांसु परिक्लिष्टं मुखं कीदृग् भविष्यति । तिष्ठ तिष्ठ नृपश्रेष्ठ स्वधर्ममनुपालय ॥५२
आनृशंस्यं परोधर्मः क्षत्रियाणां विशेषतः । किं दारैः किं सुतैर्नाथ धनैर्धान्यैरथापि वा ॥५३
सर्वमेतत् परित्यज्यच्छायाभूता वयं तव । हा नाथ हा महाराज हा स्वामिन्किं जहासि नः ॥५४
यत्र त्वं तत्र हि वयं तत्सुखं यत्र वै भवान् । नगरं तद्भवान् यत्र स स्वर्गो यत्र नो नृपः ॥५५
इति पौरवचः श्रुत्वा राजा शोकपरिप्लुतः । अतिष्ठत् स तदा मार्गे तेषामेवानुकम्पया ॥५६

विश्वामित्रोऽपि तं दृष्ट्वा पौरवाक्याकुली कृतम् ।
रोषामर्षविवृत्ताक्षः समागम्य वचोऽब्रवीत् ॥५७

हे राजर्षि ! यदि आप धर्म का विचार करते हैं, तो हमें भी साथ ले चलिये । हे राजेन्द्र ! क्षणभर के लिए ठहर जाईये । अपने नेत्र भ्रमरों से आपके मुख कमल का (कुछ क्षण के लिए हम) पान कर लें । पुनः (न जाने) कब आपके दर्शन करेंगे ।

जिस राजा हरिश्चन्द्र के चलने पर आगे और पीछे राजा लोग चलते थे । उसी का अनुगमन बालक को पकड़े हुए उसकी यह पत्नी कर रही है । जिसके चलने पर हाथी पर बैठकर उसके भृत्य आगे-आगे चलते थे । वही राजा हरिश्चन्द्र आज पैदल जा रहा है ।

हा राजन् ! सुन्दर भौंहों वाला, मुलायम त्वचा वाला, सुकुमार (आपका) मुख, मार्ग की धूल से लिप्त होकर कैसा हो जायेगा ?

हे नृपश्रेष्ठ ! रुको, रुको, अपने राजधर्म का पालन करो । करुणा ही परम धर्म है, विशेषतः क्षत्रियों के लिए ।

पत्नी, पुत्र, धन, धान्य इन सबका क्या होगा ? इनको त्याग कर हम आपकी छाया के समान (आपका) अनुगमन करेंगे । हे नाथ ! हे महाराज ! हे स्वामी ! आप हमें क्यों छोड़ रहे हैं ?

जहां आप रहेंगे हम भी निश्चय ही वहीं रहेंगे (क्योंकि) हमारे लिए वहीं सुख है, जहां आप हैं । वहीं (हमारे लिए) नगर है (और) वहीं हमारे लिए स्वर्ग है, जहाँ हमारे राजा हैं ॥४६-५५॥

नगरवासियों के इन वचनों को सुनकर राजा शोक से व्याकुल हो गये (और) उनके ऊपर कृपा करके वे उस समय उसी मार्ग में बैठ गये ॥५६॥

विश्वामित्र भी, नगरवासियों के वचनों से उनको व्याकुल देखकर, क्रोध और आवेग से बड़ी-बड़ी आँखें किये हुए (वहाँ) आकर (इस प्रकार) वचन बोले— ॥५७॥

धिक् त्वां दुष्टसमाचारमनृतं जिह्मभाषिणम्। मम राज्यं च दत्त्वा यः पुनः प्राक्रष्टुमिच्छसि ।।५८
इत्युक्तः परुषं तेन गच्छामीति सवेपथुः। ब्रुवन्नेवं ययौ शीघ्रमाकर्षन् दयितां करे ।।५९
कर्षतस्तां ततो भार्यां सुकुमारीं श्रमातुराम्। सहसा दण्डकाष्ठेन ताडयामास कौशिकः ।।६०

तां तथा ताडितां दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
गच्छामीत्याह दुःखार्तो नान्यत् किञ्चिदुदाहरत् ।।६१
अथ विश्वे तदा देवाः पञ्च प्राहुः कृपालवः।
विश्वामित्रः सुपायोऽयं लोकान् कान् समवाप्स्यति ।।६२

येनायं यज्वनां श्रेष्ठः स्वाराज्यादवरोपितः। कस्य वा श्रद्धया पूतं सूतं सोमं महाध्वरे ।।
पीत्वा वयं प्रयास्यामो मुदं मन्त्रपुरः सरम् ।।६३

पक्षिण ऊचुः—

इति तेषां वचः श्रुत्वा कौशिकोऽतिरुषन्वितः। शशाप तान् मनुष्यत्वं सर्वे यूयमवाप्स्यथ ।।६४
प्रसादितश्च तैः प्राह पुनरेव महामुनिः। मानुषत्वेऽपि भवतां भवित्री नैव सन्ततिः ।।६५
न दारसंग्रहश्चैव भविता न च मत्सरः। कामक्रोधविनिर्मुक्ता भविष्यथ सुराः पुनः ।।६६
ततोऽवतेरूरशैः स्वैर्देवास्ते कुरु वेश्मनि। द्रौपदीगर्भसम्भूताः पञ्च वै पाण्डुनन्दनाः ।।६७

दुष्ट आचरण करने वाले, असत्यवादी, कुटिल भाषण करने वाले, तुझे धिक्कार है। मुझे राज्य दान देकर भी पुनः हस्तगत करना चाहता है ? ।।५८।।

विश्वामित्र के द्वारा इस प्रकार कठोर वचन कहे जाने पर 'जाता हूं' इस प्रकार कहते हुए (हरिश्चन्द्र) कांपते शरीर से पत्नी को हाथ से शीघ्र खींचते हुए, वह चल दिया ।।५९।।

तत्पश्चात् खींची जाती हुई, परिश्रम से थकी, सुकुमारी उस पत्नी शैव्या को, विश्वामित्र ने सहसा लकड़ी के डण्डे से प्रहार किया ।।६०।।

उसको इस प्रकार पीटी जाती हुई देखकर दुःख से पीड़ित होकर, राजा हरिश्चन्द्र ने जाता हूं (केवल) इतना ही कहा, और एक शब्द भी मुख से नहीं निकाला ।।६१।।

तत्पश्चात् कृपालु पांच विश्वे देव बोले—अति पापी यह विश्वामित्र किन लोकों को प्राप्त करेगा। जिसने यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ इस राजा को अपने राज्य से च्युत कर दिया है। अब हम किसके महान् यज्ञ में, मंत्र सहित, श्रद्धा से निचोड़े गये, पवित्र सोम को पीकर, प्रसन्नता को प्राप्त करेंगे ।।६२-६३।।

पक्षी बोले—

विश्वे देवों के उन वचनों को सुनकर, अत्यन्त रुष्ट होकर, विश्वामित्र ने उन सब को शाप दिया कि तुम सब मनुष्यत्व को प्राप्त करोगे ।।६४।।

उसके बाद उनके प्रसन्न किये जाने पर महामुनि (विश्वामित्र) फिर बोले—मनुष्यत्व के प्राप्त होने पर भी तुम्हारी सन्तान नहीं होगी ।।६५।।

और न ही तुम्हारा विवाह होगा। काम, क्रोध एवं ईर्ष्या से रहित रहते हुए, पुनः देवत्व को प्राप्त करोगे ।।६६।

इस प्रकार स्वर्ग के वे देवता ही अपने अंश से कुरुगृह में अवतरित हुए और द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न हुए वही पांचों (विश्वे देव) पाण्डु-पुत्र बने ।।६७।।

एतस्म त् कारणात् पञ्च-पाण्डवेया-महारथाः । न दारसंग्रहं प्राप्ताः शापात्तस्य महामुनेः ।।६८
एतत्ते सर्वमाख्यातं पाण्डवेय कथाश्रयम् । प्रश्नं चतुष्टयं गीतं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।६९

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे द्रौपदेयोत्पत्ति कथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

इस कारण महा पराक्रमी पाण्डवों के इन पांचों पुत्रों का उन्हीं महामुनि विश्वामित्र के शाप के कारण विवाह नहीं हुआ । ६८।।

इस प्रकार हमने आपके चौथे प्रश्न से सम्बद्ध पाण्डव पुत्रों की कथा को भी पूर्ण रूप से कह दिया । क्या और भी सुनने की आपकी इच्छा है ? ।।६९।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में द्रौपदेयोत्पत्ति वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टमोध्याय

जैमिनिरुवाच—

भवद्भिरिदमाख्यातं यथा प्रश्नमनुक्रमात् । महत् कौतूहलं मेऽस्ति हरिश्चन्द्रकथां प्रति ।।१
अहो महात्मना तेन प्राप्तं कृच्छ्रमनुत्तमम् । कच्चित् सुखमनुप्राप्तं तादृगेव द्विजोत्तमाः ।।२

पक्षिण ऊचुः—

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा स राजा प्रययौ शनैः । शैव्ययाऽनुगतो दुःखीभार्यया बालपुत्रया ।।३
स गत्वा वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम् । मैषा मनुष्यभोग्येति शूलपाणेः परिग्रहः ।।४
जगाम पद्भ्यां दुःखार्त्तः सह पत्न्यानुकूलया । पुरीं प्रविश्य ददर्श विश्वामित्रमुपस्थितम् ।।५

जैमिनि बोले—

आपने यह मेरे प्रश्नों की क्रम से व्याख्या की, (इसमें) हरिश्चन्द्र की कथा के सम्बन्ध में मुझे बड़ी जिज्ञासा है ।।१।।

उन श्रेष्ठ महात्मा (राजा हरिश्चन्द्र) ने उस प्रकार से महान् कष्ट पाते हुए हे द्विजश्रेष्ठ ! कभी सुख प्राप्त किया ? ।।२।।

पक्षी बोले—

विश्वामित्र के वचनों को सुनकर, दुःखी पत्नी शैव्या और बालक पुत्र से अनुसरण किये जाते हुए, वह राजा (हरिश्चन्द्र) धीरे-धीरे चल दिया ।।३।।

पृथ्वी का पालन करने वाला, वह राजा (हरिश्चन्द्र) दिव्य वाराणसी नगरी में जाकर, यह मनुष्यों के भोग्य नहीं है क्योंकि शूलपाणि (शिवजी) की रचना है यह विचार कर राजा हरिश्चन्द्र—।।४।।

अनुकूल पत्नी के साथ दुःख से व्याकुल, पैदल ही (वाराणसी) गया और नगरी में प्रवेश करने पर (वहां) उसने विश्वामित्र को उपस्थित देखा ।।५।।

तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत् । प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम् ॥६
इमे प्राणाः सुतश्चायमियं पत्नी मुने मम । येन ते कृत्यमस्त्याशु तद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम् ॥७
यद्वान्यत् कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥८

विश्वामित्र उवाच—

पूर्णः स मासो राजर्षे दीयतां मम दक्षिणा । राजसूयनिमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि ॥६

हरिश्चन्द्र उवाच—

ब्रह्मन्नद्यैव सम्पूर्णो मासोऽम्लानतपोधन । तिष्ठत्येतद्दिनार्धंयत्तत् प्रतीक्षस्व मा चिरम् ॥१०

विश्वामित्र उवाच—

एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः । शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रदास्यसि ॥११

पक्षिण ऊचुः —

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो राजा चाचिंतयत्तदा । कथमस्मै प्रदास्यामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥१२
कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थः साम्प्रतं मम । प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे नाहं यायामधः कथम् ॥१३
किमु प्राणान् विमुञ्चामि का दिशं याम्यकिञ्चनः ।
यदि नाशं गमिष्यामि अप्रदाय प्रतिश्रुतम् ॥१४

उस मुनि को आया देखकर, राजा हरिश्चन्द्र विनय से अवनत हो गये और हाथ जोड़कर बोले—॥६॥

हे मुने ! यह मेरी पत्नी, यह पुत्र और ये मेरे प्राण हैं । जिससे भी आपका कार्य अत्यन्त शीघ्र हो । हे आर्य ! उसी को उत्तम अर्घ्य के रूप में ग्रहण कीजिये ॥७॥

अथवा हमारे लिए अन्य जो भी कार्य हो उसके लिए आप आज्ञा दीजिए ॥८॥

विश्वामित्र बोले—

हे राजर्षि ! क्या तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण है ? एक महीना पूरा हो चुका है । राजसूय सम्बन्धी मेरी वह दक्षिणा दो ॥६॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे तेजस्वी ! तपोधन ब्रह्मन्, वह मास आज ही पूर्ण हुआ है, इसलिए जो यह आधा दिन अभी शेष है केवल तब तक प्रतीक्षा कीजिए, अधिक समय तक नहीं ॥१०॥

विश्वामित्र बोले—

हे महाराज ! ऐसा ही हो, मैं फिर आऊँगा । यदि आज (दक्षिणा) नहीं दोगे (तो) तुम्हें शाप दे दूँगा ॥११॥

पक्षी बोले—

यह कहकर ब्राह्मण (विश्वामित्र) चले गये (उनके चले जाने पर) राजा ने सोचा— जिसका मैंने वचन दिया है वह दक्षिणा, इनको मैं कैसे दूँगा ? ॥१२॥

इस समय मुझे कहाँ से धन प्राप्त हो ? (ऐसे धनवान्) घनिष्ट मित्र भी कहाँ हैं ? प्रतिग्रह मेरे लिए अनुचित है (फिर) कैसे करूँ जिससे मेरी अधोगति न हो ॥१३॥

अथवा प्राणों को त्याग दूँ । अकिञ्चन मैं किस दिशा में जाऊँ ? यदि वचन को पूरा किये बिना (दक्षिणा दिये बिना ही) मैं मर जाऊँगा ॥१४॥

ब्रह्मस्वहृत्कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः। अथवा प्रेष्ययतां यास्ये वरमेवात्मविक्रयः ॥१५
पक्षिण ऊचुः—
राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम्। प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा ॥१६
त्यज चिन्तां महाराज स्वसत्यमनुपालय। श्मशानवद् वर्जनीयो नरः सत्यबहिष्कृतः ॥१७
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु। यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यपरिपालनम् ॥१८
अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः। भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् ॥१९
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्। तारणायानृतं तद्वत् पातनायाकृतात्मनाम् ॥२०
सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयं च पार्थिवः। कृतिर्नाम च्युतः स्वर्गादसत्यवचनात् सकृत् ॥२१
राजन् जातमपत्यं मे इत्युक्त्वा प्ररुरोद ह। बाष्पाम्बुप्लुतनेत्रां तामुवाचेदं महीपतिः ॥२२
हरिश्चन्द्र उवाच—
विमुञ्च भद्रे संतापमयं तिष्ठति बालकः। उच्यतां वक्तुकामासि यद्वा त्वं गजगामिनि ॥२३
पत्न्युवाच—
राजन् जातमपत्यं मे सतां पुत्रफलाः स्त्रियः। स मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम् ॥२४

तो ब्राह्मण के धन का हरण करने वाला मैं अघमाधम एवं पापी कीड़ा बनूँगा अथवा आत्म विक्रय कर दासता स्वीकार करना ही श्रेष्ठ है ॥१५॥

पक्षी बोले—

व्याकुल और दीन, अधोमुख राजा को सोचते हुए देखकर उनकी पत्नी (शैव्या) आँसुओं से युक्त, गद्गद् वाणी से बोली—॥१६॥

हे महाराज! चिन्ता छोड़िये, अपने सत्य का पालन कीजिये। सत्य का बहिष्कार करने वाला व्यक्ति, श्मशान के समान त्याज्य होता है ॥१७॥

हे पुरुषव्याघ्र! अपने सत्य का पालन जैसा (धर्म) है (विद्वान् लोग) मनुष्य का उससे बढ़कर कोई अन्य धर्म नहीं बताते हैं ॥१८॥

जिस (व्यक्ति) के वचन असत्य हैं, उसके अग्निहोत्र, वेदों का अध्ययन, दानादि समस्त पुण्य कर्म व्यर्थ हो जाते हैं ॥१९॥

धर्मशास्त्रों में विद्वानों ने, सत्य को उत्तम बताया है (उनके अनुसार) जिस प्रकार सत्य (भवसागर) से) तारने में समर्थ है, उसी प्रकार असत्य भी व्यक्ति का पतन करने में समर्थ है।२०॥

सात अश्वमेघ यज्ञों से, राजसूय यज्ञ करने वाला राजा भी, एक बार असत्य वचन कहने से स्वर्ग से गिरकर, कृति (नामक नरक) को प्राप्त हो जाता है ॥२१॥

हे राजन्! 'मेरे द्वारा उत्पन्न इस पुत्र को' इतना कहकर ही (शैव्या) फूट-फूटकर रो पड़ी। आंसुओं से भीगे हुए नेत्रों वाली (शैव्या) को राजा ने यह कहा—॥२२॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे भद्रे! संताप छोड़ो, यह बालक बैठा हुआ है। हे गजगामिनि! जो कुछ भी तुम कहना चाहती हो, वह कहो ॥२३॥

पत्नी बोली—

हे राजन्! मैंने एक सन्तान उत्पन्न की है और सज्जनों ने पुत्र को स्त्री का फल कहा है (अतः आप) मुझे धन से बेचकर ब्राह्मण (विश्वामित्र) की दक्षिणा दे दीजिए ॥२४॥

पक्षिण ऊचुः—

एतद् वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः। प्रतिलभ्य च संज्ञां स विललापातिदुःखितः ।।२५
महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि माम्। किं तव स्मितसँल्लापाः मम पापस्य विस्मृताः ।।२६
हा हा कथं त्वया शक्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते। दुर्वाच्यमेतद् वचनं कर्तुं शक्नोम्यहं कथम् ।।२७
इत्युक्त्वा स नरश्रेष्ठो धिग्धिगित्यसकृद् ब्रुवन्। निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ।।२८
शयानं भुवि तं दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रं महीपतिम्। उवाचेदं सकरुणं राजपत्नी सुदुःखिता ।।२९

पत्न्युवाच—

हा महाराज कस्येदमपध्यानमुपस्थितम्। यत्त्वं निपतितो भूमौ राङ्कवास्तरणोचितः ।।३०
येन कोटयग्रशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम्। स एष पृथिवीनाथो भूमौ स्वपिति मे पतिः ।।३१
हा कष्टं किं तवानेन कृतं देव महीक्षिता। यदिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयं नीतः पापामिमां दशाम् ।।३२
इत्युक्त्वा सापि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह। भर्तृदुःखमहाभारेणासह्येन निपीडिता ।।३३
तौ तथा पतितौ भूमावनाथौ पितरौ शिशुः। दृष्ट्वात्यंतक्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः ।।३४

पक्षी बोले—

(शैव्या के) इन वचनों को सुनकर राजा मूर्छित हो गया (और कुछ देर बाद) चेतना प्राप्त करके, अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगा ।।२५।।

हे भद्रे ! यह महान् दुःख की बात है कि तुम मुझे ऐसा कह रही हो, क्या मुझ पापी को तुम्हारी मधुर मुस्कान और संलाप विस्मृत हो गये हैं ? ।।२६।।

हे शुचि स्मिते ! (पवित्र मुस्कान वाली) तुम मुझ से इन वचनों को कैसे कह सकीं ? ये वचन अकथनीय हैं मैं इन्हें किस प्रकार पूरा कर सकता हूं ।।२७।।

यह कहकर वह नरश्रेष्ठ, धिक्कार है, धिक्कार है, इस प्रकार अनेक बार कहते हुए, मूर्छित होकर पृथ्वी तल पर गिर पड़ा ।।२८।।

महाराज हरिश्चन्द्र को (मूर्छित अवस्था में) पृथ्वी पर पड़े हुए देखकर राजपत्नी (शैव्या) अत्यन्त दुःखित होकर करुणापूर्ण स्वर में इस प्रकार बोली—।।२९।।

पत्नी बोली—

हा महाराज ! किस कारण से यह अनिष्ट उत्पन्न हो गया है। जो कि जिसके लिए हरिण के रोमों की शय्या ही एक मात्र बिस्तर है, वही आप भूमि पर पड़े हैं ।।३०।।

जिन्होंने करोड़ों से भी अधिक की संख्या में ब्राह्मणों को धन बांट दिया है, वही पृथ्वी पति मेरे स्वामी (आज) भूमि पर पड़े सो रहे हैं ।।३१।।

हा देव ! इन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो इन्द्र और विष्णु के समान इनको इस पापियों जैसी अवस्था को पहुंचा दिया है ।।३२।।

यह कहकर सुनितम्बिनी वह (शैव्या) भी पति के असह्य दुःख से पीड़ित हो मूर्छित होकर गिर पड़ी ।।३३।।

बालक (रोहिताश्व) उन दोनों अनाथ माता पिता को उस प्रकार भूमि पर पड़े हुए देखकर भूख से अत्यन्त पीड़ित हुआ, दुःखित होकर इस प्रकार बोला—।।३४।।

तात तात ददस्वान्नमम्बाम्ब भोजनं दद। क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रं शुष्यते तथा ॥३५

पक्षिणऊचुः—

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः। कालकल्पइव क्रुद्धो धनं संमार्गितुं तदा॥
दृष्ट्वा तु तं हरिश्चन्द्रः पतितो भुवि मूर्च्छतः ॥३६
स वारिणा समभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत्। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र तां ददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥३७
ऋणं धारयतो दुःखमहन्यहनि वर्द्धते। आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा ॥३८
अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च। पुनर्मोहं समापेदे स च क्रोधं ययौ मुनिः ॥३९
स समाश्वास्य राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः। दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धर्ममवेक्षसे॥४०
सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी। सत्यं चोक्तं परोधर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः॥४१
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलयाधृतम्। अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥४२
अथवा किं ममैतेन साम्ना प्रोक्तेन कारणम्। अनार्ये पाप संकल्पे क्रूरे चानृतवादिनि ॥४३
त्वयि राज्ञि प्रभवति सद्भावः श्रूयतामयम्। अद्य मे दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि॥४४
अस्ताचलं प्रयातेऽर्के शप्स्यामि त्वां ततो ध्रुवम्। इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः॥४५

हे तात! तात मुझे अन्न दो। हे मां! मां मुझे भोजन दो। मुझे बहुत भूख लगी है मेरी जीभ का आगे का भाग सूख रहा है ॥३५॥

पक्षी बोले—

इसी बीच महा तपस्वी मुनि विश्वामित्र धन लेने के लिए आये। जो साक्षात् काल के समान क्रोधी थे। उस हरिश्चन्द्र को पृथ्वी पर मूर्छित पड़ा हुआ देखकर, ॥३६॥

और जल छिड़ककर राजा से ये वचन बोले— हे राजन्! उठो! उठो और मेरी वह वाञ्छित कथित दक्षिणा दो ॥३७॥

क्योंकि ऋण को धारण करने वाले का दुःख दिन प्रतिदिन बढ़ता है। तब हिम के समान शीतल जल से सिञ्चित होकर राजा ने चेतना प्राप्त की और विश्वामित्र को देखकर, पुनः मूर्छित हो गया (यह देखकर) मुनि (विश्वामित्र) क्रुद्ध हो गये ॥३८-३९॥

राजा को पुनः सचेत करके, द्विजश्रेष्ठ (विश्वामित्र) राजा से ये वचन बोले— (हे राजन्) यदि तुम धर्म का ध्यान करते हो, तो मुझे वह दक्षिणा दो ॥४०॥

क्योंकि सत्य के बल से ही सूर्य चमकता है और सत्य के बल से ही पृथ्वी टिकी हुई है, स्वर्ग भी सत्य से ही प्रतिष्ठित है, सत्य को ही परम धर्म कहा गया है ॥४१॥

सहस्रों अश्वमेध और सत्य को यदि तराजू पर रखा जाए तो सैंकड़ों अश्वमेधों से सत्य ही विशिष्ट होगा ॥४२॥

अथवा अनार्य, पापी, क्रूर विचारों वाले, मिथ्यावादी, से मुझे इस प्रकार साम (शान्त) वचन कहने का क्या प्रयोजन? ॥४३॥

हे राजन्! तुममें यदि सद्भाव है तो इस बात को सुनो। हे राजन्! यदि तुम मेरी दक्षिणा आज नहीं दोगे तो मैं निश्चय ही सूर्यास्त होने पर तुमको शाप दे दूंगा। यह कहकर वे विप्र चले गये। उन वचनों को सुनकर, राजा भय से व्याकुल हो गया ॥४४-४५॥

कान्दिग्भूतोऽधनो निःस्वो नृशंसधनिनार्दितः। भार्यास्य भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम ॥४६
मा शापानलनिर्दग्धः पञ्चत्वमुपयास्यसि। स तया चोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः ॥४७
प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं तव निर्घृणः। नृशंसैरपि यत्कर्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम् ॥४८
यदि मे शक्यते वाणी वक्तुमीदृक् सुदुर्वचः। एवमुक्त्वा ततो भार्यां गत्वा नगरमातुरः ॥
बाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततो वचनमब्रवीत् ॥४९

राजोवाचः—

भो भो नागरिकाः सर्वे श्रृणुध्वं वचनं मम। किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः ॥५०
राक्षसो वातिकठिनस्ततः पापतरोऽपि वा। विक्रेतुं दयितां प्राप्तो यो न प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥५१
यदि वः कस्यचित् कार्यं दास्या प्राणेष्टया मम। स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्सन्धारयाम्यहम् ॥५२

पक्षिणऊचुः—

अथ वृद्धो द्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम्। समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः ॥५३
अस्ति मे वित्तमस्तोकं सुकुमारी च मे प्रिया। गृहकर्म न शक्नोति कर्त्तुमस्मात् प्रयच्छ मे ॥५४
कर्मण्यता-वयो-रूपशीलानां तव योषितः। अनुरूपमिदं वित्तं गृह्णाणार्पय मेऽबलाम् ॥५५

नृशंस, धनवान् व्यक्तियों के द्वारा, निर्धनों की कैसी दशा की जाती है। उस (राजा हरिश्चन्द्र) की पत्नी शैव्या बोली, हे राजन्! मेरी बात मानिये ॥४६॥

शापाग्नि से दग्ध होकर आप पञ्चतत्व को प्राप्त न हों। इस प्रकार पत्नी द्वारा बार-बार प्रबोधित करने पर वह (राजा) ॥४७॥

बोला—हे भद्रे! यह मैं पापी तुम्हारा विक्रय कर रहा हूं, अत्यन्त नृशंस व्यक्ति भी जो कार्य करने में समर्थ नहीं होते हैं, वही कार्य मैं कर रहा हूं ॥४८॥

यदि मेरी वाणी इस प्रकार के दुर्वचनों को कहने में समर्थ हो जाती है। इस प्रकार पत्नी से कहकर अत्यन्त दुःखी वह नगर में जाकर, अश्रुओं से रुँधे हुए कण्ठ से, ये वचन बोला—॥४९॥

राजा बोला -

हे नागरिकों! आप सब मेरे वचनों को सुनिये। क्या पूछते हो कि मैं कौन हूं? (तो सुनिये) मैं नृशंस और अमानव हूं ॥५०॥

अथवा अत्यन्त कठोर राक्षस हूं अथवा उससे भी अधिक पापी भी। मैं अपनी पत्नी को बेचने आया हूं फिर भी मैं अपने प्राणों को नहीं छोड़ सक रहा हूं ॥५१॥

यदि आप में से किसी व्यक्ति को मेरी प्राण प्रिया को दासी बनाने की आवश्यकता हो तो वह व्यक्ति शीघ्र बोले, जब तक कि मैं अपने प्राणों को धारण किये हुए हूं ॥५२॥

पक्षी बोले—

तत्पश्चात् कोई वृद्ध ब्राह्मण आकर राजा से बोला—मैं धन देकर खरीद रहा हूं यह दासी मुझे समर्पित करो ॥५३॥

मेरे पास धन पर्याप्त है, मेरी प्रिया अत्यन्त सुकुमारी है। जो गृह कार्य करने में समर्थ नहीं है। इसलिए इस (दासी) को मुझे दे दो ॥५४॥

तुम्हारी स्त्री की कार्य कुशलता, अवस्था, रूप एवं शील के अनुरूप यह धन लेकर, इस स्त्री को मुझे अर्पित करो ॥५५॥

एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः। व्यदीर्य्यत मनो दुःखान्नचैनं किञ्चिदब्रवीत् ॥५६
ततः स विप्रो नृपतेर्वल्कलान्ते दृढं धनम्। बद्धा केशेष्वथादाय नृपपत्नीमकर्षयत् ॥५७
रुरोद रोहितास्योऽपि दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम्। हस्तेन वस्त्रामाकर्षन् काकपक्षधरः शिशुः॥५८
मुञ्चार्य मुञ्च तावन्मां यावत्पश्याम्यहं शिशुम्। दुर्लभं दर्शनं तात पुनरस्य भविष्यति ॥५९
पश्यैहि वत्स मामेवं मातरं दास्यतां गताम्। मां मा स्प्राक्षी राजपुत्र अस्पृश्याहं तवाधुना ॥६०
ततः स बालः सहसा दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम्। समभ्यधावदम्बेति रुदन्नस्राविलेक्षणः॥६१
तमागतं द्विजः क्रोधाद् बालमभ्याहनत् पदा। वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैवामुंच तं मातरम् ॥६२

राजपत्न्युवाच—

प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणोष्वेमं च बालकम्। क्रीतापि नाहं भवतो विनैनं कार्य्यसाधिका ॥६३
इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादसुमुखो भव। मां संयोजय बालेन वत्सेनेव पयस्विनीम् ॥६४

ब्राह्मण उवाच—

गृह्यतां वित्तमेतत्तो दीयतां बालको मम। स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम् ॥
शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमूल्यं तथापरैः ॥६५

ब्राह्मण के ऐसा कहने पर दुःख से हृदय विदीर्ण हो गया किन्तु राजा हरिश्चन्द्र कुछ नहीं बोले ॥५६॥

तत्पश्चात् राजा के वल्कल के एक कोने में धन को दृढ़तापूर्वक बांधकर, उस ब्राह्मण ने राजपत्नी (शैव्या) को, केशों से पकड़कर खींचा—॥५७॥

माता को खींचते हुए देखकर, काकपक्षधर (सिर के बालों के बीच में बनी मांग) को धारण करने वाला शिशु रोहिताश्व भी हाथ से माता का वस्त्र खींचते हुए, रोने लगा ॥५८॥

छोड़ो आर्य छोड़ो, जब तक मैं अपने पुत्र को देख लूं तब के लिए मुझे छोड़ दीजिए (क्योंकि) हे तात! फिर इसका दर्शन दुर्लभ हो जायेगा ॥५९॥

हे पुत्र! आओ, दास्यभाव को प्राप्त अपनी माता को देखो। हे राजपुत्र! अब मेरा स्पर्श मत करो क्योंकि अब मैं तुम्हारे स्पर्श के योग्य नहीं हूं ॥६०॥

तत्पश्चात् वह बालक, सहसा खींची जाती हुई, माता को देखकर, अश्रुओं से भीगे हुए नेत्रों से, हे अम्ब! इस प्रकार कहकर, रोता हुआ, शैव्या के पीछे दौड़ा ॥६१॥

तब उस ब्राह्मण ने, आते हुए उस बालक को पैर से ठोंकर मारी। परन्तु फिर भी उस बालक ने हे मां! इस प्रकार कहते हुए माता को नहीं छोड़ा ॥६२॥

राजपत्नी बोली—

हे मेरे स्वामी! (मालिक) कृपा कीजिये और इस बालक को भी खरीद लीजिये (क्योंकि) इसके बिना खरीदी गयी भी मैं आपके कार्यों को पूरा नहीं कर सकूंगी ॥६३॥

हे सुमुख! इस प्रकार तुच्छ भाग्य वाली मुझ पर, आप कृपा कीजिये और गाय के बछड़े के समान इस बालक को मुझसे संयुक्त कीजिए ॥६४॥

ब्राह्मण बोला—

तुम यह धन लो और यह बालक (भी) मुझे दो (क्योंकि) धर्मशास्त्रज्ञों ने भी स्त्री और पुरुष दोनों का वेतन सौ, सहस्र, लाख या कुछ लोगों ने एक करोड़ बताया है ॥६५॥

पक्षिण ऊचुः—

तथैव तस्य तद्वित्तं बद्धोत्तरपटे ततः। प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत् ॥६६
नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्य्यापुत्रौ स पार्थिवः।
विललाप सुदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः ॥६७
यां न वायुर्न चादित्यो नेन्दुर्न च पृथग्जनः। दृष्टवन्तः पुरा पत्नीं सेयंदासीत्वमागता ॥६८
सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकरांगुलिः। संप्राप्तो विक्रयं बालो धिङ् मामस्तु सुदुर्मतिम् ॥६९
हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयैः।
दैवाधीनां दशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि यथापि धिक् ॥७०

पक्षिण ऊचुः—

एवं विलपतो राज्ञः स विप्रोऽन्तरधीयत। वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादाय त्वरान्वितः ॥७१
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो नृपं वित्तमयाचत। तस्मै समर्पयामास हरिश्चन्द्रोऽपि तद्धनम् ॥७२
तद्वित्तं स्तोकमालोक्य दारविक्रयसम्भवम्। शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥७३
क्षत्रबन्धो ममेमां त्वं सदृशीं यज्ञदक्षिणाम्। मन्यसे यदि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे बलं परम् ॥७४

पक्षी बोले—

तत्पश्चात् (राजा ने) बालक को बेचकर प्राप्त हुए, उस धन को भी, दुपट्टे में बाँधकर (ब्राह्मण ने) बालक को भी माता के साथ बांध दिया ॥६६॥

पत्नी और पुत्र दोनों को ले जाते हुए देखकर वह राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखी होकर लम्बे-लम्बे उष्ण निश्वांस भरते हुए, बार-बार विलाप करने लगा ॥६७॥

मेरी जिस पत्नी को पहले कभी, वायु, सूर्य, चन्द्रमा अथवा अन्य कोई हीन व्यक्ति देख भी न सका, वही आज दास्यभाव को प्राप्त हो गयी है ॥६८॥

सुकुमार अंगुली युक्त हाथों वाला, यह मेरा सूर्य वंश में उत्पन्न बालक भी विक्रय को प्राप्त हुआ है। मुझ दुर्मति को धिक्कार है ॥६९॥

हा प्रिये ! हा शिशो ! हा वत्स ! अपनी दुर्नीतियों से मैं अनार्य भाग्य के कारण इस दशा में पहुंच गया हूँ। (किन्तु) फिर भी मरा नहीं हूँ मुझे धिक्कार है ॥७०॥

पक्षी बोले—

राजा के इस प्रकार विलाप करते हुए ही उन दोनों को लेकर वह ब्राह्मण ऊँचे वृक्षों तथा घरों के कारण आंखों से ओझल हो गया ॥७१॥

तत्पश्चात् विश्वामित्र ने आकर राजा से धन की माँग की। हरिश्चन्द्र ने भी वह धन उनको समर्पित कर दिया ॥७२॥

पत्नी के विक्रय से प्राप्त उस थोड़े से धन को देखकर, शोक से अभिभूत हुए, राजा से क्रुद्ध विश्वामित्र बोले— ॥७३॥

तपसोऽत्र सुतप्तस्य ब्राह्मणस्यामलस्य च । मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च ॥७५

राजोवाच—

अन्यां दास्यामि भगवन् कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।
साम्प्रतं नास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥७६

विश्वामित्र उवाच—

चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप। एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया ॥७७

पक्षिण ऊचुः—

तमेवमुक्त्वा राजेन्द्रं निष्ठिरं निर्घृणं वचः । तदादाय धनं तूर्णं कुपितः कौशिको ययौ ॥७८

विश्वामित्रे गते राजा भयशोकादि मध्यगः। स्वविक्रयं विनिश्चित्य प्रोवाचोच्चैरधो मुखः ॥७९

वित्तक्रीतेन यो ह्यर्थी मया प्रेष्येण मानवः। स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्तपति भास्करः ॥८०

अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चण्डालरूपधृक् । दुर्गंधो विकृतो रूक्षः श्मश्रुलो दंतुरो घृणी ॥८१

कृष्णो लम्बोदरः पिङ्गरूक्षाक्षः परुषाक्षरः । गृहीत पक्षिपुन्जश्च शवमाल्यैरलंकृतः ॥८२

हे ! नीच, यदि तुम मुझको इतनी सी यज्ञ दक्षिणा के योग्य मानते हो तो तुम शीघ्र ही मेरे महान् बल को देखो ॥७४॥

तपस्या से भली प्रकार तपे हुए, निर्मल ब्राह्मण के अध्ययन के उग्र और शुद्ध मेरे प्रभाव को देखो ॥७५॥

राजा ने कहा—

हे ! भगवन् कुछ समय प्रतीक्षा कीजिए और भी दूँगा, इस समय (मेरे पास) धन नहीं है। मैंने पत्नी, पुत्र दोनों बेच दिये हैं ॥७६॥

विश्वामित्र बोले —

हे नराधिप ! दिवस का यह चौथा भाग शेष है; इतने तक ही मैं प्रतीक्षा करूँगा, इससे अधिक के लिए तुम न कहना ॥७७॥

पक्षी बोले —

इस प्रकार निष्ठुर, निर्घृण वचन राजा से कहकर, उस धन को लेकर, क्रुद्ध हुए विश्वामित्र शीघ्र ही चले गये ॥७८॥

विश्वामित्र के जाने पर भय और शोक में डूबा हुआ राजा अपने विक्रय का दृढ़ निश्चय करके, नीचा मुँह करके उच्च स्वर से बोला— ॥७९॥

जो व्यक्ति मुझे सेवा वृत्ति के लिए, धन देकर खरीदना चाहता है, वह जब तक सूर्य चमक रहा है, तब तक शीघ्र ही बोले ॥८०॥

तत्पश्चात्धर्म— दुर्गन्धयुक्त, विकृत, रूखी दाढ़ी से युक्त, दाँतों को आगे की ओर निकाले हुए; घृणित, चाण्डाल का स्वरूप धारण करके शीघ्र ही आ पहुंचा ॥८१॥

जो, काले शरीर वाला, लम्बे पेट वाला, लाल नेत्रों वाला, कठोर वचन बोलने वाला, पक्षी को हाथ में पकड़े हुए, शव की मालाओं से सजा हुआ ॥८२॥

कपालहस्तो दीर्घास्यो भैरवोऽतिवदन् मुहुः। श्वगणाभिवृत्तो घोरो यष्टिहस्तो निराकृतिः ॥८३

चण्डाल उवाच—

अहमर्थी त्वया शीघ्रं कथयस्वात्मवेतनम्। स्तोकेन बहुना वापि येन वै लभ्यते भवान् ॥८४

पक्षिण ऊचुः—

तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टि सुनिष्ठुरम्। वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः ॥८५

चण्डाल उवाच—

चण्डालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति पुरोत्तमे। विख्यातो वध्यवधको मृतकम्बलहारकः ॥८६

हरिश्चन्द्र उवाच—

नाहं चण्डालदासत्वमिच्छेयं सुविगर्हितम्। वरं शापाग्निना दग्धो न चण्डालवशं गतः ॥८७

पक्षिण ऊचुः—

तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः। कोपामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम् ॥८८

विश्वामित्र उवाच—

चण्डालोऽयमनल्पं ते दातुं वित्तमुपस्थितः। कस्मान्न दीयते मह्यमशेषायज्ञदक्षिणा ॥८९

कपाल हाथ में लिए, लम्बे मुँह वाला भयंकर और बार-बार बहुत बोलता हुआ, कुत्तों के समूह से घिरा हुआ, घृणित रूप वाला, बुरी आकृतिवाला एवं हाथ में लाठी लिए हुए था ॥८३॥

चाण्डाल बोला—

मैं तुम्हें खरीदना चाहता हूं, तुम शीघ्र ही अपना वेतन बताओ थोड़ा अथवा अधिक जितने से भी तुम्हारा सौदा हो जाय ॥८४॥

पक्षी बोले—

उस प्रकार के अदर्शनीय क्रूर दृष्टि वाले उस निष्ठुर और दुःशील (चाण्डाल) को देखकर राजा ने पूछा, 'तुम कौन हो ?' ॥८५॥

चाण्डाल ने कहा—

इस नगर में 'प्रवीर' नाम से प्रसिद्ध वध्य का वध करने वाला, मरे हुए व्यक्ति का कफन (कम्बल) लेने वाला, मैं चाण्डाल हूं ॥८६॥

हरिश्चन्द्र बोले—

मैं अत्यन्त घृणित चाण्डाल का दास बनना नहीं चाहता। चाण्डाल के अधीन बनने से तो शापाग्नि से जल जाना अधिक अच्छा है ॥८७॥

पक्षी बोले—

उसके ऐसा कहते हुए ही, क्रोधावेग से खुली हुई आँखों वाले, तपोनिधि विश्वामित्र आ पहुंचे और राजा से बोले— ॥८८॥

विश्वामित्र बोले—

यह चाण्डाल तुम्हें अधिक धन देने के लिये उपस्थित हुआ है, तो फिर तुम मेरी शेष यज्ञ दक्षिणा क्यों नहीं देते हो ? ॥८९॥

हरिश्चन्द्र उवाच—
भगवन् सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिकः। कथं चण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामुकः ॥९०
विश्वामित्र उवाच—
यदि चण्डालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम। न प्रदास्यसि कालेन शप्स्यामि त्वामसंशयम् ॥९१
पक्षिण ऊचुः—
हरिश्चन्द्रस्ततो राजा चिन्तावस्थितजीवितः। प्रसीदेति वदन् पादावृषेर्जग्राह विह्वलः ॥९२

दासोऽस्म्यार्त्तोऽस्मि भीतोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः।
कुरु प्रसादं विप्रर्षे कष्टश्चण्डालसङ्करः ॥९३

भवेयं वित्तशेषेण सर्वकर्मकरो वशः। तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः ॥९४
विश्वामित्र उवाच—
यदि प्रेष्यो मम भवांश्चण्डालाय ततो मया। दासभावमनुप्राप्तो दत्तो वित्तार्बुदेन वै ॥९५
हरिश्चन्द्र उवाच—
यद्यसौ शक्यते विप्रः कौशिकः परितोषितुम्। ततो गृहाण मामद्य दासत्वँ ते करोम्यहम् ॥९६

हरिश्चन्द्र बोले—

हे! भगवन् मैं अपने को सूर्य कुल में उत्पन्न जानते हुए, धन की कामना से, हे कौशिक! चाण्डाल के दासत्व को किस प्रकार स्वीकार करूँ ॥९०॥

विश्वामित्र बोले—

यदि अपने को बेचकर चाण्डाल के धन को तुम समय पर मुझे नहीं देते हो, तो मैं निःसंदेह तुम्हें शाप दे दूँगा। ९१॥

पक्षी बोले —

तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र ने चिन्ता से बेचैन होकर, कृपया प्रसन्न हो जाइये, इस प्रकार कहते हुए, विह्वल होकर ऋषि के चरणों को पकड़ लिया ॥९२॥

हे भगवन्! मैं तो दुःखी और भयभीत हुआ आपका दास हूं, साथ ही आपका विशेष रूप से सेवक हूं। हे विप्रर्षे! मेरे ऊपर कृपा कीजिए, चाण्डाल का दासत्व अत्यन्त कष्टकारी है ॥९३॥

हे मुनि शार्दूल! इस शेष धन के कारण, मैं आपके अधीन रहते हुए सभी कार्य आपकी इच्छानुसार करूँगा और मैं आपका सेवक रहूंगा ॥९४॥

विश्वामित्र बोले —

यदि तुम मेरे सेवक हो तो मैंने तुम्हें दस करोड़ में चाण्डाल को दे दिया है, तुम इसके दासत्व को प्राप्त हो गये हो ॥९४॥

हरिश्चन्द्र बोले —

यदि ब्राह्मण विश्वामित्र (अभिप्सित मुद्रा से) संतुष्ट हो सकते हैं, तो तुम मुझे खरीद लो। मैं आज से तुम्हारा दासत्व करूँगा ॥९६॥

चण्डाल उवाच—

शतयोजनविस्तीर्णां नानाग्रामैरलंकृताम् । भूमिं रक्षामयीं कृत्वा दास्येऽहं कौशिकं प्रति ॥९७

पक्षिण ऊचुः—

एवमुक्ते तदा तेन श्वपाको हृष्टमानसः । विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा, बद्ध्वा नरेश्वरम् ॥९८
दण्डप्रहार संभ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम् । इष्टबन्धुवियोगार्तमनयन् निजपक्वणम् ॥९९
हरिश्चन्द्रस्ततो राजा वसंश्चण्डालपक्वणे । प्रातर्मध्याह्नसमये सायं चैतदगायत ॥१००

बालां दीनमुखीं दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः ।
मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोचयिष्यति नौ नृपः ॥१०१

उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तमतोऽधिकम् । न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति पापतरं कृतम् ॥१०२
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः । प्राप्ता चण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा ॥१०३
एवं स निवसन्नित्यं सस्मार दयितं सुतम् । भार्यां चात्मसमाविष्टां हृतसर्वस्व आतुरः ॥१०४
कस्यचित्त्वथ कालस्य मृतचैलापहारकः । हरिश्चन्द्रोऽभवद् राजा श्मशाने तद्वशानुगः ॥१०५
चण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारिणा । शवागमनमन्विच्छन्निहतिष्टन् दिवानिशम् ॥१०६

चाण्डाल ने कहा—

बहुत से ग्रामों से अलंकृत, सौ योजन (तक) फैली हुई, भूमि को सुरक्षित बनाकर मैं विश्वामित्र को सौंपता हूं ॥९७॥

पक्षी बोले —

राजा के ऐसा कहने पर, प्रसन्न मन वाले चाण्डाल ने, विश्वामित्र को वह धन देकर और राजा को बाँधकर, डण्डे के प्रहार से हड़बड़ाये हुए अति व्याकुल मन वाले, अपने प्रियजनों के वियोग से दुःखी (राजा को) अपने घर ले गया ।.९८-९९॥

इसके पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र चाण्डाल के घर निवास करने लगे और प्रातः मध्याह्न और सायंकाल बार-बार यह सोचने लगे—'दीनमुखी बाला दीनमुख बालक को सामने देखकर दुःखी मन से मुझे स्मरण करती होगी और इस प्रकार सोचती होगी कि राजा धन उपार्जन करके उससे भी अधिक धन ब्राह्मण को देकर हम दोनों को छुड़ाएँगे' (परन्तु) वह मृगशावकाक्षी (मृग शिशु के समान आंखों वाली) यह नहीं जानती कि मैंने और भी बड़ा पाप किया है ॥१००-१०२॥

राज्यनाश, मित्र त्याग, पत्नी और पुत्र का विक्रय और यह मैंने चाण्डालता प्राप्त की है। अरे, यह तो दुःखों की परम्परा है ॥१०३॥

नित्य वहाँ निवास करते हुए अपना सर्वस्व खोकर दु.खी हृदय से अपने प्रिय पुत्र और मन में बसी पत्नी को स्मरण करने लगे ॥१०४॥

किसी समय हरिश्चन्द्र मृतक का कफन ग्रहण करते हुए, चाण्डाल के अधीन उसका अनुसरण करते हुए, श्मशान के ही राजा हो गये ॥१०५॥

मृतक का कफन लेने वाले चाण्डाल ने आदेश दिया—"दिन और रात यहाँ श्मशान में रहते (रहो और) हुए मृतक की खोज करो ॥१०६॥

इदं राज्ञेऽपि देयञ्च षड्भागं तु शवं प्रति ।
त्रयस्तु मम भागाः स्युर्द्वौ भागौ तव वेतनम् ।।१०७

इति प्रतिसमादिष्टो जगाम शवमन्दिरम् । दिशं तु दक्षिणां यत्र वाराणस्यां स्थितं तदा ।।१०८
श्मशानं घोरसंनादं शिवाशतसमाकुलम् । शवमौलिसमाकीर्णं दुर्गन्धबहुधूमकम् ।।१०९
पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसंकुलम् । महागणमहाभूतरवकोलाहलायुतम् ।।
गृध्रगोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम् ।।११०
अस्थिसंघातसंकीर्णं महादुर्गन्धसंकुलम् ।।१११
नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् । हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे ।।११२
हा पते भगिनि मातर्हा मातुल पितामह । मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बान्धव ।।११३
इत्येवं वदतां यत्र ध्वनिः संश्रूयते महान् । यत्र नेत्रैरनिमिषैः शवा भयमिवाविशन् ।।११४
निमीलितैश्च नयनैर्बंधुर्चितापथे स्थितः । ज्वलन्मांसवसामेदश्छमच्छमितसंकुलम् ।।११५
अर्द्धदग्धाः शवाः श्यामा विकसद्दन्तपंक्तयः ।
हसन्त्येवाग्निमध्यस्थाः कायस्येयं दशात्विति ।।११६

शव से गृहीत कर में से छटा भाग राजा को देना हैं और तीन भाग मेरे होंगे तथा (शेष) दो भाग तुम्हारा वेतन होगा ।।१०७।।

इस प्रकार आदेश प्राप्त कर (राजा हरिश्चन्द्र) वाराणसी की दक्षिण दिशा में स्थित श्मशान गृह में चले गये ।।१०८।।

(और जो) श्मशान सैंकड़ों गिदड़ियों के भयंकर नाद से आवृत्त, शवों की खोपड़ियों से समाकीर्ण, दुर्गन्धित-गहन धुएँ से युक्त—।।१०९।।

भूत, पिशाच, वेताल, डाकिनी और यक्षादि से संकुल (भरा) महागुणों और महाभूतों के कोलाहल की ध्वनि से युक्त, गिद्ध, गीदड़ और कुत्तों के समूह से घिरा हुआ एवं हड्डियों के समूहों से घिरा अति दुर्गन्ध से भरा, ।।११०-१११।।

तथा मरे हुए व्यक्ति के बहुत से बंधुओं के भयंकर रोदन के कोलाहल से युक्त, हाय पुत्र, हाय मित्र, हे बन्धु, हाय भाई, हे बेटा, हाय मेरी प्यारी आज मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी हो ।।११२।।

हा स्वामी, हाय भगिनी, हाय माता, हा मामा, हा दादा, हा नाना, हाय पिता, हाय पौत्र, तुम हमें छोड़कर कहाँ चले गये हो, आओ ।।११३।।

इस प्रकार कहते हुए (लोगों) की जहाँ ऊँची ध्वनि सुनाई पड़ रही है जहाँ मृतक निरन्तर खुले नेत्रों से भय का संचार कर रहे थे। कहीं कोई आँखे बन्द करके अपने बन्धु की चिन्ता में लीन था ।११४।।

कहीं जलते हुए मांस, मज्जा और चर्बी के 'छम', 'छम' शब्द से युक्त था और कहीं आधे जले हुए शव काले पड़ गये थे तथा खुले हुए मुंह से दाँतों की कतारें दिखायीं दे रही थीं। शरीर की यह दशा है, आग में पड़े हुए शव मानो हँस रहे हैं ।।११५-११६।।

अग्नेश्चटचटाशब्दो वयसामस्थिपंक्तिषु । बान्धवा क्रन्दशब्दश्च पुल्कसेषु प्रहर्षजः ॥११७
गायतां भूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम् । श्रूयते सुमहान् घोरः कल्पान्त इव निस्वनः ॥११८
महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसंकुलम् । तदुत्थभस्मकूटैश्च वृतं सास्थिभिरुन्नतैः ॥११९
नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपसंकुलम् । अनेकशब्दबहुलं श्मशानं नरकायते ॥१२०

सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतैर्निनादितं भीषणरावगह्वरम् ।
भयं भयस्याप्युपसंजनैर्भृशं श्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥१२१

स राजा तत्र संप्राप्तो दुःखितः शोचनोद्यतः ।
हा भृत्या मंत्रिणो विप्राः क्व तद्राज्यं विधे गतम् ॥१२२
हा शैव्ये पुत्र हा बाल मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम् ।
विश्वामित्रस्य दोषेण गताः कुत्रापि ते मम ॥१२३

इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चण्डालोक्तं पुनः पुनः । मलिनो रूक्षसर्वांगः केशवान्गन्धवान्ध्वजी ॥१२४
लगुडीकालकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः । अस्मिञ्शवइदं मूल्यं प्राप्तं प्राप्स्यामि चाप्युत ॥१२५
इदं मम इदं राज्ञे मुख्यचण्डालकेत्विदम् । इति धावन् दिशो राजा जीवन्योन्यन्तरं गतः ॥१२६
जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः । चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥१२७

अग्नि का 'चट चट' शब्द तथा हड्डियों के ऊपर (काक आदि) पक्षियों का शब्द, बन्धुओं के रोने का शब्द और चाण्डालों का आह्लाद की ध्वनि और कहीं भूत, वेताल, पिशाच और राक्षसों के गाने का ऊँचा शोर ऐसा लग रहा था कि मानो प्रलय काल की भयंकर ध्वनि हो ॥११७-११८॥

कहीं राखों के ढेर बड़े भैंसों के गोबर तथा गायों के गोबर के ढेर दिखायी देते थे और उन राखों एवं अस्थियों के ऊँचे ढेर से वह युक्त था ॥११९॥

कहीं गह्वरस्थ शृंगालियों के अमंगलकारी भीषण शब्दों से (श्मशान) निनादित था। स्वयं भय को भी भय उत्पन्न करने वाले रोने-चिल्लाने की ध्वनि से श्मशान अति दारुण प्रतीत हो रहा था ॥१२०-१२१॥

(इस प्रकार के श्मशान में) आये हुए राजा हरिश्चन्द्र दुःखित होकर सोचने लगे कि हाय, विधाता मेरे नौकर, मंत्री और ब्राह्मणों से युक्त वह राज्य कहाँ गया ? ॥१२२॥

हाय शैव्या, हाय मेरे बालक पुत्र, विश्वामित्र के दोष के कारण मुझ अभागे को छोड़कर, तुम सब मेरे आत्मीय कहाँ चले गये ? ॥१२३॥

इस प्रकार चाण्डाल की कही बात को बार-बार सोचते हुए मलिन वेष, रूक्ष देह, सर्वाङ्ग में केश, दुर्गन्ध युक्त तथा ध्वजा तथा लाठी लेकर इधर उधर घूमते हुए यम के रूप में प्रतीत हो रहे थे और सोचते थे इस शव का इतना मूल्य मिला इतना और मिलेगा ॥१२४-१२५॥

यह मेरा हुआ यह राजा का और मुख्य चाण्डाल का इतना—इस प्रकार सोचते-सोचते इधर-उधर घूमते तो ऐसा प्रतीत होता कि राजा ने जीते हुए ही दूसरी योनि (प्रेत योनि) प्राप्त कर ली है ॥१२६॥

जीर्ण वस्त्र में गाँठ लगाकर उन्होंने कन्था पहन रक्खी थी तथा मुख बाहु-पेट और दोनों चरणों में चिता भस्म का लेप कर रक्खा था ॥१२७॥

नाना मेदोवसामज्जा लिप्तपाण्यंगुलिः श्वसन् । नानाशवौदनकृताहार तृप्तिपरायणः ॥१२८
तदीय माल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डनः । न रात्रौ न दिवा शेते हा हेति प्रवदन्मुहुः ॥१२९
एवं द्वादशमासास्तु नीताः शतसमोपमाः । स कदाचिन्नृपश्रेष्ठः श्रान्तो बन्धुवियोगवान् ॥१३०
निद्राभिभूतो रूक्षाङ्गो निश्चेष्टः सुप्त एव च । तत्रापि शयनीये स दृष्टवानद्भुतं महत् ॥१३१
श्मशानाभ्याशयोगेन दैवस्य बलवत्तया । अन्यदेहेन दत्त्वा तु गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥१३२
तदा द्वादशवर्षाणि दुःखदानात्तु निष्कृतिः । आत्मानं स ददर्शाथ पुल्कसीगर्भसम्भवम् ॥१३३
तत्रस्थश्चाप्यसौ राजा सोऽचिन्तयदिदं तदा । इतो निष्क्रान्तमात्रो हि दानधर्मं करोम्यहम् ॥१३४
अनन्तरं स जातस्तु तदा पुल्कसबालकः । श्मशानमृतसंस्कारकरणेषु सदोद्यतः ॥१३५
प्राप्ते तु सप्तमे वर्षे श्मशानेऽथ मृतोद्विजः । आनीतो बन्धुभिर्दृष्टस्तेन तत्राधनो गुणी ॥१३६

मूल्यार्थिना तु तेनापि परिभूतास्तु ब्राह्मणाः ।
ऊचुस्ते ब्राह्मणास्तत्र विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ॥१३७

पापिष्ठमशुभं कर्म कुरु त्वं पापकारक । हरिश्चन्द्रः पुरा राजा विश्वामित्रेण पुल्कसः ॥१३८

शव की बहुत सी मेदा, बसा और मज्जा से हाथ की अंगुलियाँ लीपकर सांस लेते हुए, विभिन्न मुर्दों के पिण्ड से प्राप्त चावलों को खाकर तृप्ति प्राप्त करने वाले ॥१२८॥

मुर्दों की माला को ही अपने मस्तक पर धारण करके, शोभित मुख वाले बार-बार, हा-हा, इस प्रकार चिल्लाते हुए (राजा हरिश्चन्द्र) दिन-रात सोते नहीं थे ॥१२९॥

इस प्रकार सौ वर्षों के समान उन्होंने बारह मास बिताये। फिर किसी दिन श्रेष्ठ राजा (हरिश्चन्द्र) बन्धु वियोग श्रान्त हो गये (थक गये) ॥१३०॥

रूखी देह वाले क्रिया शून्य होकर निद्रा के वशीभूत होकर सो गये। उस अवस्था में सोते हुए, उन्होंने अद्भुत स्वप्न देखा ॥१३१॥

श्मशान के पास होने के कारण या भाग्य के अत्यन्त बलवान् होने से उन्होंने देखा कि "अन्य देह धारण करके गुरु दक्षिणा देकर, ॥१३२।

बारह वर्षों तक दुःख भोगने के पश्चात् छुटकारा होगा। (फिर उन्होंने देखा) कि वे स्वयं चाण्डाली के गर्भ में वास कर रहे हैं। वहाँ (चाण्डाली के गर्भ में) भी राजा ने यह सोचा कि यहाँ से (गर्भ से) निकलते ही मैं धन दान और धर्म करूँगा ॥१३३-१३४॥

इसके पश्चात् वे चाण्डाल बालक के रूप में उत्पन्न हुए और श्मशान में मृतक संस्कार करने में सदा उद्यत रहते हैं ॥१३५॥

(जबकि वे चाण्डाल बालक के रूप में) सात वर्ष के ही हुए थे, उसी समय एक मरे हुए ब्राह्मण को उसके बन्धु लोग श्मशान में ले आये। उसने देखा कि गुणी ब्राह्मण धनहीन है ॥१३६॥

शुल्क की मांग करने वाले उससे वे ब्राह्मण तिरस्कृत हुए। तब उन ब्राह्मणों ने विश्वामित्र के (अशुभ) कार्य के सम्बन्ध में बताया ॥१३७॥

हे पाप कर्म करने वाले! पाप युक्त अशुभ कर्म तुम करो। पहले (जन्म में) तुम राजा हरिश्चन्द्र थे। विश्वामित्र ने तुम्हें चाण्डाल बनाया ॥१३८॥

कृतः पुण्यविनाशेन ब्राह्मणस्वापनाशनात् । यदा न क्षमते तेषां तैः स शप्तो रुषा तदा ।।१३९
गच्छत्वं नरकं घोरमधुनैव नराधम । इत्युक्त मात्रे वचने स्वप्नस्थः स नृपस्तदा ।।१४०
अपश्यद्यमदूतान् वै पाशहस्तान् भयावहान् । तैः संगृह्मीतमात्मानं नीयमानं तदा बलात् ।।१४१
पश्यति स्म भृशं खिन्नो हा मातः पितरश्च मे । एवं वादी स नरके तैलद्रोण्यां निपातितः ।।१४२
क्रकचैः पाट्यमानस्तु क्षुरधाराभिरप्यधः । अन्धे तमसि दुःखार्त्तः पूयशोणितभोजनः ।।१४३
सप्तवर्षमृतात्मानं पुल्कसत्वे ददर्श ह । दिनं दिनं तु नरके दह्यते पच्यतेऽन्यतः ।।१४४
खिद्यते क्षोभ्यतेऽन्यत्र मार्यते पाट्यतेऽन्यतः । क्षार्यते दीप्यतेऽन्यत्र शीतवाताहतोऽन्यतः ।।१४५
एकदिनं वर्षशतप्रमाणं नरकेऽभवत् । तथा वर्षशतं तत्र श्रावितं नरके भटैः ।।१४६

ततो निपातितो भूमौ विष्ठाशी श्वा व्यजायत ।
वान्ताशी शीतदग्दश्च मासमात्रे मृतोऽपि सः ।।१४७

अथापश्यत् खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुम् । छागं बिडालं कङ्कं च गामविं पक्षिणं कृमिम् ।।१४८

पुण्यों के विनाश से ब्रह्मवर्चस्व् के नष्ट हो जाने से (उन्होंने ऐसा किया) (जब बिना मूल्य दिये) वे दाह करने में समर्थ नहीं हुए तो उन्होंने क्रोध से उसे शाप दिया ।।१३९।।

हे नराधम ! तुम अभी घोर नरक को प्राप्त करो । (ब्राह्मणों के) इस प्रकार के वचन कहते ही, स्वप्न में स्थित उस राजा ने, ।।१४०।।

हाथ में पाश (जाल) धारण किये हुए, भयंकर यमदूतों को देखा और उनके द्वारा पकड़कर, अपने को, बलपूर्वक ले जात हुए (देखा) ।।१४१।।

तब वह अति खिन्न होकर (बोला) 'हाय माता हाय पिता' आज मेरी (यह दशा) इस प्रकार कहते हुए उसको तेल के कड़ाहे में डाल दिया ।।१४२।।

तेज धार वाले आरों से चीरे जाते हुए (उस) दुःखी को रक्त और पीव का भोजन कराया तथा गाढ़ान्धकार में डाल दिया ।।१४३।।

इस प्रकार सात वर्षों तक अपनी मृत आत्मा को चाण्डालत्व में देखा, प्रतिदिन नरक में जलाये जाते हुए तथा पेले जाते हुए अपने को देखा ।।१४४।।

(वहीं) एक ओर दुःखी और क्षुभित किया जा रहा था और दूसरी ओर मारा और फाड़ा जा रहा था । एक ओर खार में डाला जाता, जलाया जाता, कभी शीत तथा वायु से आहृत होता ।।१४५।।

(इस प्रकार राजा का) नरक में एक दिन सौ वर्षों के समान बीतता था । इस प्रकार दुःख भोगते हुए नरक के रक्षकों ने सुनाया कि सौ वर्ष बीत गये हैं ।।१४६।।

इसके पश्चात् (यमदूतों ने) भूमि पर गिरा दिया । वहाँ उसने विष्ठा (टट्टी) खाने वाले कुत्ते के रूप में जन्म लिया । फिर वमन खाते हुए अति शीत से व्याकुल होकर एक मास में वह मर भी गया ।।१४७।।

फिर उसने देखा कि उसने गधे की योनि में जन्म लिया है, अनन्तर क्रमशः हाथी, बन्दर, छाग (बकरा), बिडाल, काक, गौ (बैल), भेड़, पक्षी, कृमि, ।।१४८।।

मत्स्यं कूर्मं वराहं च श्वाविधं कुक्कुटं शुकम् । शारिकां स्थावरांश्चैव सर्पमन्यांश्च देहिनः ॥१४९
दिवसे दिवसे जन्म प्राणिनः प्राणिनस्तदा । अपश्यद्दुःखसन्तप्तो दिनं वर्षशतं तथा ॥१५०
एवं वर्षशतं पूर्णं गतं तत्र कुयोनिषु । अपश्यच्च कदाचित् स राजा तत्स्वकुलोद्भवम् ॥१५१
तत्र स्थितस्य तस्यापि राज्यं द्यूतेन हारितम् । भार्य्या हृता च पुत्रश्च स चैकाकी वनं गतः ॥१५२
तत्रापश्यत स सिंहं वै व्यादितास्यं भयावहम् । विभक्षयिषु मायां तं शरभेण समन्वितम् ॥१५३
पुनश्च भक्षितः सोऽपि भार्यां शोचितुमुद्यतः ।
हा शैव्ये क्व गतास्यद्य मामिहापास्य दुःखितम् ॥१५४
अपश्यत्पुनरेवापि भार्यां स्वां हतपुत्रकाम् । त्रायस्व त्वं हरिश्चन्द्र किं द्यूतेन तव प्रभो ॥१५५
पुत्रस्ते शोच्यतां प्राप्तो भार्य्यया शैव्यया सह । स नापश्यत्पुनरपि धावमानः पुनः पुनः ॥१५६
अथापश्यत्पुनरपि स्वर्गस्थः स नराधिपः । नीयते मुक्तकेशी सा दीना विवसना बलात् ॥१५७
हा हा वाक्यं प्रमुञ्चन्ती त्रायस्वेत्यसकृत्स्वना । अथापश्यत्पुनस्तत्र धर्मराजस्य शासनात् ॥१५८
आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्था आगच्छेह नराधिप । विश्वामित्रेण विज्ञप्तो यमो राजंस्तवार्थतः ॥१५९

मत्स्य, कछुआ, सुअर, मृग, कुक्कुट, तोता, मैना, स्थावर (वृक्षादि), सर्प आदि नाना प्रकार के देहधारियों में दिन प्रतिदिन जन्म लेता रहा। इस प्रकार अति दुःखी होकर एक दिन को भी सौ वर्ष के समान समझने लगा ॥१४९॥

इस प्रकार विविध प्रकार की कुयोनियों में जन्म लेते-लेते एक सौ वर्ष बीत गये। (फिर) उस राजा ने देखा कि वह मानो कभी अपने ही वंश में उत्पन्न होकर (राजा बना है) ॥१५०-१५१॥

वहाँ उसने राज्य को भी, जुए में हरा दिया (साथ ही) अपने पुत्र और पत्नी को भी हरा दिया और स्वयं अकेला वन में चला गया ॥१५२॥

वहाँ उसने उस विशाल आयालों से युक्त, मुंह फाड़े हुए खाने के इच्छुक भयावह शेर को शरभ के साथ देखा ॥१५३॥

सिंह के द्वारा खाये जाने पर 'हे शैव्या दुःखी मुझको छोड़कर आज तुम कहाँ जाती हो' इस प्रकार ज्यों ही पत्नी की चिन्ता करने लगे ॥१५४॥

त्यों ही उन्होंने मृत पुत्र वाली अपनी पत्नी (शैव्या) को (इस प्रकार कहते हुए) देखा- हे स्वामी! हरिश्चन्द्र, बचाओ, जुए से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ॥१५५॥

तुम्हारा (यह) पुत्र, पत्नी शैव्या के साथ शोचनीय दशा को प्राप्त हो गया है। बार-बार इधर-उधर दौड़ते हुए भी उन्होंने (अपने पत्नी व पुत्र को) फिर नहीं देखा ॥१५६॥

तत्पश्चात् पुनः स्वर्ग में स्थित उस राजा ने खुले बालों वाली अपनी पत्नी को दीन अवस्था में, वस्त्र-हीन बलपूर्वक ले जायी जाती हुई देखी ॥१५७॥

'हाय, हाय' इस प्रकार उच्चारण करती हुई 'बचाओ, बचाओ' इस प्रकार बार-बार चिल्ला रही है। इसके पश्चात् वहाँ उन्होंने देखा कि यमराज के आदेश से (यमदूत) ॥१५८॥

'हे राजन्! यहाँ आओ' इस प्रकार उच्च स्वर में बोल रहे हैं। विश्वामित्र ने यमराज को हे राजन्! तुम्हारे निमित्त सूचना दी है ॥१५९॥

इत्युक्त्वा सर्पपाशैस्तु नीयते बलवद्विभुः। श्राद्धदेवेन कथितं विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ।।१६०
तत्रापि तस्य विकृतिर्नाधिर्मोत्था व्यवर्द्धत। एताः सर्वा दशास्तस्य याः स्वप्ने सम्प्रदर्शिताः।।१६१
सर्वास्तास्तेन सम्मुक्ता यावद्वर्षाणि द्वादश। अतीते द्वादशे वर्षे नीयमानो भटैर्बलात् ।।१६२
यमं सोऽपश्यदाकारादुवाच च नराधिपम्। विश्वामित्रस्य कोपोऽयं दुर्निवार्यो महात्मनः ।।१६३
पुत्रस्य ते मृत्युमपि प्रदास्यति स कौशिकः। गच्छ त्वं मानुषं लोकं दुःखशेषं च भुंक्ष्वे वै ।।
गतस्य तत्र राजेन्द्र श्रेयस्तव भविष्यति ।।१६४
व्यतीते द्वादशे वर्षे दुःखस्यान्ते नराधिपः। अन्तरिक्षाच्च पतितो यमदूतैः प्रणोदितः ।।१६५
पतितो यमलोकाच्च विबुद्धो भयसंभ्रमात्। अहो कष्टमिति ध्यात्वा क्षते क्षारावसेचनम्।।१६६
स्वप्ने दुःखं महद्दृष्टं यस्यान्तो नोपलभ्यते।
स्वप्ने दृष्टं मया यत्तु किन्तु मे द्वादशीः समाः ।।१६७
गतेत्यपृच्छत् तत्रस्थान् पुल्कसांस्तु ससंभ्रमात्। नेत्यूचुः केचित् तत्रस्था एवमेवापरेऽब्रुवन्।।१६८
श्रुत्वा दुःखी तदा राजा देवाञ्शरणमीयिवान्।
स्वस्ति कुर्वन्तु मे देवाः शैव्याया बालकस्य च ।।१६९

ऐसा कहकर (यम के अनुचर) बलपूर्वक सर्पपाश से बाँधकर राजा को ले जा रहे हैं। (और देखा कि) यमराज ने विश्वामित्र के कार्य का वर्णन किया है ।।१६०।।

वहाँ भी उनका अधर्म जनित कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। ये सब उनकी वे दशाएँ है जो स्वप्न में दिखायी दी थीं ।।१६१।।

वे सभी दशायें उन्होंने (राजा हरिश्चन्द्र ने) बारह वर्षों तक भोगीं। बारह वर्ष बीत जाने पर, यमदूतों के द्वारा, बलपूर्वक ले आने पर, ।।१६२।

(वहाँ) उन्होंने यमराज को देखा (उन्हें देखकर) यमराज अपने मुख से राजा से बोले— 'यह महात्मा विश्वामित्र के दुर्निवार्य क्रोध का परिणाम है' ।।१६३।।

वह विश्वामित्र तुम्हारे पुत्र को भी मृत्यु प्रदान करेगा। (अतः इस समय तुम) मनुष्य लोक में जाओ और शेष दुःखों को भोगो। हे राजेन्द्र! वहाँ जाने पर तुम्हारा कल्याण होगा।' ।।१६४।।

राजा (हरिश्चन्द्र) बारह वर्ष बीतने पर दुःखों का अन्त हो जायेगा (यमराज के ऐसा कहने पर) यमदूतों ने प्रेरित कर अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर जीवित करके गिरा दिया ।।१६५।।

यमलोक से गिरकर भय और हड़बडाहट से (वे) जाग गये और सोचने लगे कि घाव पर नमक पड़ने के समान यह तो बड़ा कष्ट आ पड़ा ।।१६६।।

बारह वर्षों तक स्वप्न में मैंने जो दुःख देखा है, उसका कहीं अन्त नहीं है। मैंने जो स्वप्न में देखा तो क्या बारह वर्ष बीत गये हैं ।।१६७।।

(तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र ने) वहाँ पर स्थित अन्य चाण्डालों से, हड़बड़ाहट के साथ पूछा— (क्या बारह वर्ष का समय) बीत गया है? वहाँ पर स्थित (चाण्डालों) ने कहा कि, नहीं तो और इसी प्रकार औरों ने भी कहा ।।१६८।

तब (उन चाण्डालों की बात को) सुनकर, राजा (हरिश्चन्द्र) दुःखी होकर, देवताओं की शरण में गये (और बोले) कि मेरे पुत्र और शैव्या का देवता कल्याण करें ।।१६९।।

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे । परावराय शुद्धाय पुराणायाव्ययाय च ॥१७०
नमो बृहस्पते तुभ्यं नमस्ते वासवाय च । एवमुक्त्वा स राजा तु युक्तः पुल्कसकर्मणि ॥१७१
शवानां मूल्यकरणे पुनर्नष्टस्मृतिर्यथा । मलिनो जटिलः कृष्णो लगुडीविह्वलो नृपः ॥१७२
नैव पुत्रो न भार्य्या तु तस्य वै स्मृतिगोचरे । नष्टोत्साहो राज्यनाशाच्छ्मशाने निवसंस्तदा ॥१७३
अथाजगाम स्वसुतं मृतमादाय लापिनी । भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम् ॥१७४
हा वत्स हा पुत्र शिशो इत्थं वै वदती मुहुः । कृशा विवर्णा विमनाः पांसुध्वस्तशिरोरुहा ॥१७५

राजपत्न्युवाच—

हा राजन्नद्य बालं त्वं पश्यसीमं महीतले । रममाणं पुरा दृष्टं दष्टंपुष्टाहिना मृतम् ॥१७६
तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः । जगाम त्वरितोऽत्रेति भविता मृतकम्बलः ॥१७७
स तां रोरूयतीं भार्यां नाभ्यजानात् तु पार्थिवः । चिरप्रवाससन्तप्तां पुनर्जातामिवाबलाम् ॥१७८
सापि तं चारुकेशान्तं पुरा दृष्ट्वा जटालकम् । नाभ्यजानान्नृपसुता शुष्कवृक्षोपमं नृपम् ॥१७९

महान् धर्म को नमस्कार है । विधाता स्वरूप कृष्ण को नमस्कार है । जो सबसे श्रेष्ठ, पवित्र और अव्यय (है, उन) पुराण पुरुष को नमस्कार है ॥१७०॥

हे बृहस्पति ! तुमको नमस्कार है और इन्द्र को नमस्कार है, यह कहकर वह राजा (हरिश्चन्द्र) चाण्डाल कर्म में लग गये ॥१७१॥

काले मलिन शरीर वाले, जटाधारी, बेचैन डण्डा हाथ में धारण किये राजा मानो स्वप्न की याद ही न रही हो, इस प्रकार, मुर्दों के कर आदि के संग्रहण में पुनः लग गये ॥१७२॥

राज्य के नाश से, नष्ट हुए उत्साह वाले, उन (राजा) को, उस समय श्मशान में रहते हुए, न तो अपनी पत्नी का ही स्मरण रहा और न पुत्र का ही ॥१७३॥

तत्पश्चात् राजा (हरिश्चन्द्र) की पत्नी (शैव्या) सर्प के काटने से अपने मरे हुए पुत्र को लेकर, प्रलाप करती हुई (श्मशान पर) आयी ॥१७४॥

अत्यन्त दुबली-पतली, कान्ति रहित मुख वाली, दुःख और धूल से सने हुए सिर वाली, हाय पुत्र ! हा वत्स ! हाय बेटे ! इस प्रकार बार-बार कहती हुई ॥१७५॥

राजपत्नी बोली—

हाय राजन् ! पहले कभी जिस (बालक) को आपने प्रसन्न खेलते हुए देखा था, बहुत बड़े सर्प के द्वारा काटने से मरे हुए (उसी) इस बालक को, क्या आप आज पृथ्वी पर पड़े हुए देख रहे हैं ? ॥१७६॥

वह राजा उसके द्वारा किये गये उस बिलाप को सुनकर, यहाँ से कफन प्राप्त होगा, इस प्रकार विचार करके शीघ्रता से गया ॥१७७॥

चिरकाल के प्रवास से संतप्त, रोती हुई उस पत्नी (शैव्या) को राजा ने नहीं पहचाना, मानो वह अबला पुनः पैदा हुई हो ॥१७८॥

पहले सुन्दर केश वाले उनको, (इस समय) जटाओं से युक्त देखकर, सूखे हुए पेड़ के समान, उस राजा को राजपुत्री (शैव्या) ने नहीं पहचाना ॥१७९॥

सोऽपि कृष्णपटे बालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम् । नरेन्द्र लक्षणोपेतं चिन्तामाप नरेश्वरः ॥१८०

तस्यास्यं चन्द्रबिम्बाभं सुभ्रुरम्यं समुन्नसम् ।
नीलाः केशाः कुंचिताश्च समादीर्घास्तरंगिताः ॥१८१

राजीवनेत्रयुगलो बिम्बोष्ठपुटसंवृतः । चतुर्दंष्ट्रश्चतुः किष्कुर्दीर्घास्यो दीर्घबाहुकः ॥१८२

चतुर्लेखः करोमत्स्ययवयुक् चैकपर्वतः । शिरालुपादो गम्भीरः सूक्ष्मत्वक् त्रिवलीधरः ॥१८३

अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः । जातो नीतः कृतान्तेन कामप्याशां दुरात्मना ॥१८४

एवं दृष्ट्वा हितं बालं मातुरुत्सङ्गशायिनम् ।
स्मृतिमभ्यागतो बालो रोहितास्योऽब्जलोचनः ॥१८५

सोऽप्येतामेव मे वत्सो वयोऽवस्थामुपागतः । नीतो यदि न घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम् ॥१८६

राजपत्न्युवाच—

हा वत्स कस्य पापस्य अपध्यानादिदं महत् । दुःखमापतितं घोरं यस्यान्तो नोपलभ्यते ॥१८७

हा नाथ राजन् भवता मामनाश्वास्य दुःखिताम् ।
क्वापि सन्तिष्ठता स्थाने विश्रब्धं स्थीयते कथम् ॥१८८

काले वस्त्र में लिपटे हुए, सर्प के विष से पीड़ित, राज लक्षणों से युक्त, उस बालक को देखकर, राजा (हरिश्चन्द्र) विचार करने लगे ॥१८०॥

उन्नत नासिका से युक्त, सुन्दर भौंहों वाला इसका मुख, चन्द्रबिम्ब के समान है और इसके केश काले, लम्बे और घुंघराले हैं ॥१८१॥

लम्बी भुजाओं वाला, लम्बे मुख वाला (यह बालक) कमल के समान नेत्र युगल से युक्त, बिम्बाफल के समान दोनों ओष्ठ वाला है, चार दाढ़ें चार किष्कु (चार बालिस्त का) (बारह अंगुली का नाप) दीर्घ मुख वाला और बड़े-बड़ी भुजाओं वाला तथा चार (प्रमुख) रेखाओं से युक्त हाथ वाला है। जो मत्स्य, जौ और एक पर्वत की रेखा से युक्त हैं। गम्भीर रेखाओं से युक्त चरण हैं और उदर पतली त्वचा तथा तीन रेखाओं से युक्त हैं ॥१८२-१८३॥

अरे ! अत्यन्त कष्ट है कि न जाने किस राजा के कुल में उत्पन्न हुआ इस शिशु की न जाने किस आशा को लेकर दुरात्मा यमराज ने ऐसी दशा कर दी है (इसे मार दिया है) ॥८४॥

इस प्रकार माता की गोद में पड़े हुए उस मरे बालक को देखकर (राजा को) कमल के समान नेत्रों वाले अपने पुत्र रोहिताश्व की स्मृति आ गयी ॥१८५॥

भयंकर यमराज ने उसको यदि अपने वश में न किया होगा तो वह मेरा बेटा (रोहिताश्व) भी इसी अवस्था में पहुंच गया होगा ॥१८६॥

राजपत्नी बोली—

हे वत्स ! किस पाप और अनिष्ट की चिन्ता के कारण, यह महान् दुःख आ पड़ा है, जिसकी कहीं तक भी सान्त्वना नहीं है ॥१८७॥

हा स्वामी राजन् ! इस दुःखियां को न देखकर निश्चित होकर किस प्रकार आप कहीं बैठे हैं ॥१८८॥

राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः। हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधेन कृतं त्वया ॥१८९
इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्वस्थानतश्च्युतः। प्रत्यभिज्ञाय दयितां पुत्रं च निधनं गतम् ॥१९०
कैषा नामगृहे युक्ता मम योषिद्वरा भवेत्। बालश्च समृतः कः स्यादिति राजा विचारयन् ॥१९१
कष्टं शैव्येयमेषा हि स बालोऽयमितीरयन्। रुरोद दुःखसन्तप्तो मूर्च्छामभिजगाम च ॥१९२
सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम्। मूर्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले ॥१९३
चेतः संप्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम्। विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारातिपीडितौ ॥१९४

राजोवाच—

हा वत्स सुकुमारं ते स्वक्षिभ्रूनासिकालकम्। पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते ॥१९५
तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम्। उपगुह्य वदिष्ये कं वत्स वत्सेति सौहृदात् ॥१९६
कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना। ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति ॥१९७
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतो मनो हृदयनन्दनः। मया कुपित्रा हा वत्स विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥१९८

राज्य का नाश, मित्रों का त्याग, पत्नी और पुत्र का विक्रय, हे विधाता! तुमने राजा हरिश्चन्द्र के लिए (अकरणीय) क्या नहीं किया? ॥१८९॥

उस स्त्री के इन वचनों को सुनकर पत्नी को पहचान कर और अपने पुत्र की मृत्यु जानकर राजा अपने स्थान से हट गये ॥१९०॥

यह स्त्री कौन है जो मेरा नाम ले रही है? मेरी पत्नी (शैव्या) है? और मरा हुआ बालक कौन हो सकता है? ऐसा राजा विचारने लगे ॥१९१॥

अरे महान् कष्ट है, यह तो मेरी (पत्नी) शैव्या है और यह (मेरा) पुत्र है, इस प्रकार कहते हुए, दुःख से संतप्त हुए राजा रोने लगे और बाद में मूर्छित हो गये ॥१९२॥

वह (शैव्या) भी ऐसी अवस्था में पड़े उस (राजा) को पहचान कर मूर्छित होकर निश्चेष्ट भूमि पर गिर पड़ी ॥१९३॥

राजा बोले—

(इसके बाद) महाराजा हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्या एक साथ चेतना प्राप्त करके, शोक के भार से पीड़ित होकर, अत्यन्त सन्तप्त हृदय से दोनों विलाप करने लगे ॥१९४॥

हा पुत्र! तुम्हारे सुन्दर नेत्रों, भौंहों, नासिका तथा अलकों वाले सुकुमार मुख को देखते हुए मेरा हृदय क्यों नहीं फट रहा है ॥१९५॥

मधुर (ध्वनि में) 'तात', 'तात' इस प्रकार बोलते हुए और स्वयं पास में आये हुए को आलिंगन करके, वत्स, वत्स इस प्रकार वात्सल्य से किसको पुकारूँगा? ॥१९६॥

घुटनों से लगी पृथ्वी की भूरे रंग की धूल से (अब कौन) मेरे उत्तरीय (दुपट्टे) तथा गोद और अंग कैसे मलिन होंगे ॥१९७॥

अपने अंग, प्रत्यङ्गों से उत्पन्न मन और हृदय को आनन्दित करने वाले (तुमको) हाय बेटा! मुझ कुपिता ने तुम्हें वस्तु के समान बेच दिया ॥१९८॥

हृत्वा राज्यमशेषं मे सबान्धवधनं महत् । दैवाहिना नृशंसेन दष्टो मे तनयस्ततः ॥१९९
अहं दैवाहि दष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम् । निरीक्षन्नपि घोरेण विषेणान्धीकृतोऽधुना ॥२००
एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः। परिष्वज्य च निष्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह ॥२०१

राजपत्न्युवाच—

अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते । विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः ॥२०२
तथास्य नासिका तुङ्गा अग्रतोऽधोमुखंगता । दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्त्तेर्महात्मनः ॥२०३
श्मशानमागतः कस्मादद्यैष स नरेश्वरः । अपहाय पुत्रशोकं सापश्यत् पतितं पतिम् ॥२०४
प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृ पुत्राधिपीडिता। वीक्षन्ती सा ततोऽपश्यद् भर्तृ दण्डं जुगुप्सितम् ॥२०५
श्वपाकाहमतो मोहं जगामायतलोचना । प्राप्य चेतश्च शनकैः सगद्गदमभाषत ॥२०६
धिक् त्वां दैवात्यकरुणं निर्मर्यादंजुगुप्सितम् । येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥२०७
राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम् । प्रापयित्वापि नो मुक्तश्चण्डालोऽयं कृतो नृपः ॥२०८

बन्धुओं सहित सम्पूर्ण धन और मेरे सम्पूर्ण राज्य को हरकर (दैव दुर्भाग्य) रूपी नृशंस सर्प ने, मेरे (इस) पुत्र को भी डस लिया है ॥१९९॥

और मैं दैव रूपी सर्प से काटे गये पुत्र के मुख कमल को देखता हुआ भी (उसके) भयंकर विष से इस समय अंधा नहीं बनाया गया हूँ ॥२००॥

ऐसा कहकर आँसुओं से गद्गद् होकर (राजा) बालक (रोहिताश्व) को लेकर, उसका आलिंगन करके; मूर्छा से निष्चेष्ट होकर (भूमि) पर गिर पड़े ॥२०१॥

राजपत्नी बोली—

स्वर से प्रतीत हो रहा है कि ये वे ही पुरुष व्याघ्र हैं। (ये) वे ही विद्वज्जनों के मन के चन्द्र हरिश्चन्द्र ही प्रतीत हो रहे हैं, इसमें संदेह नहीं है ॥२०२॥

जैसे कि इनकी ऊँची नासिका मुख से नीचे को गयी है और दाँत कली के समान हैं, जो इस महापुरुष की कीर्ति का कथन कर रहे हैं ॥२०३॥

यह, वह राजा (हरिश्चन्द्र) आज श्मशान में किस कारण से आ गये हैं ? पुत्र शोक को भूलकर उस शैब्या ने (भूमि पर) पड़े हुए पति को देखा ॥२०४॥

प्रसन्न, विस्मित, दीन पति और पुत्र के दुःख से पीड़ित (पृथ्वी पर पड़े हुए राजा को) देखती हुई, उस (शैब्या) ने वहाँ पड़े हुए, राजा के घृणित डण्डे को देखा ॥२०५॥

'मैं चाण्डाली हुई' ऐसा सोचकर दीर्घ नेत्रों वाली (रानी) मूर्छित हो गयी। चेतना आने पर गद्गद् स्वर से कहने लगी ॥२०६॥

अत्यन्त कठोर, निर्मर्यादित, घृणित हे दैव ! तुम्हें धिक्कार है। जो कि (तुमने) अमर कीर्ति वाले इस राजा को चाण्डाल बना दिया है ॥२०७॥

राज्यनाश, बन्धुओं का त्याग, पत्नी और पुत्र का विक्रय, कराके भी तुमने नहीं छोड़ा (और) इस राजा को चाण्डाल बना दिया ॥२०८॥

हा राजन् जातसन्तापामित्थं मां धरणीतलात् । उन्थाप्य नाद्य पर्यङ्कमारोहेति किमुच्यते ॥२०९
नाद्य पश्यामि तेच्छत्रं शृङ्गारमथवा पुनः । चामरं व्यजनं चापि कोऽयं विधिविपर्ययः ॥२१०
यस्याग्रे व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः । स्वोत्तरीयैरकुर्वन्त नीरजस्कं महीतलम् ॥२११
सोऽयं कपालसंलग्न-घटीघटनिरन्तरे । मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्गूढकेशे सुदारुणे ॥२१२
वशानिष्यन्दसंशुष्कमहीपुटकमण्डिते । भस्माङ्गाराद्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥२१३
गृध्रगोमयुनादार्त्तनष्टक्षुद्रविहंगमे । चिताधूमायतिरुचा नीलीकृतदिगन्तरे ॥२१४
कुणपास्वादनमुदा सम्प्रहृष्टनिशाचरे । चरत्यमेध्ये राजेन्द्रः श्मशाने दुःखपीडितः ॥२१५
एवमुक्त्वा समाश्लिष्य कण्ठं राज्ञो नृपात्मजा । कष्टशोकशताधारा विललापार्त्तया गिरा ॥२१६

राजपत्न्युवाच—

राजन् स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन् मन्यते भवान् । तत् कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम २१७
यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता । तथैव विप्र देवादिपूजने पालने भुवः ॥२१८

हे राजन् ! शोक से संतप्त हुई, इस प्रकार (पृथ्वी पर बैठी हुई) मुझको पृथ्वी से उठाकर, आपके द्वारा आज, 'पलंग पर बैठो' इस प्रकार क्यों नहीं कहा जा रहा है ? ॥२०९॥

यह कैसा भाग्य का फेर ! कि मैं आज आपके छत्र, चामर रूपी पंखा आदि कोई भी (राजोचित) श्रृंगार नहीं देख रही हूं ॥२१०॥

जिस के आगे-आगे पहले मृत्य बने राजा लोग चलते थे और वे (राजा लोग) अपने दुपट्टों से भूमि की धूल साफ करते थे ॥२११॥

जहाँ मृतकों के कपोलों से भरे घट और घटिकाओं से (सभी दिशाएँ) पूर्ण हैं। मृतकों के निर्माल्य सूत्र के भीतर बहुत से केश पड़े रहने से जो अति दारुण बन गया है ॥२१२॥

चर्बी के बिखरने से (जहाँ की) सूखी भूमि रूप दोना मंडित है और आधे जले हुए हड्डियों तथा मेदा के भयंकर ढेरों से भीषण ॥२१३॥

जहाँ गिद्ध और गीदड़ की ध्वनि से डरकर छोटे-छोटे पक्षी भाग गये हैं और जहाँ पर चिता से उठते धुँए ने दिशाओं को अपनी कान्ति से नीला कर दिया है ॥२१४॥

जहाँ (शव के) माँस खाने से निशाचर गण, आनन्दित और प्रसन्न हैं, इस प्रकार के श्मशान में दुःख से पीड़ित राजा हरिश्चन्द्र विचरण कर रहे हैं ॥२१५॥

यह कहकर, वह राजपुत्री (शैव्या) राजा के गले से लिपटकर कष्ट और शतशः शोक का आधार बनकर आर्त शब्दों से विलाप करने लगी ॥२१६॥

राजपत्नी बोली—

(मैं जो यह देख रही हूं) हे राजन् ! क्या यह स्वप्न है अथवा सत्य ? हे महाभाग ! आप बताइए, क्योंकि इस विषय में मेरा मन भ्रमित हो रहा है ॥२१७॥

यदि यह सब कुछ सत्य है तो हे धर्मज्ञ ! (इस समय) धर्म की तो सहायता नहीं है तथा देवता और ब्राह्मण के पूजन में भी फल नहीं और पृथ्वी के पालन का भी क्या फल है ? ॥२१८॥

नास्ति धर्मः कुतः सत्यमार्जवं चानृशंसता । यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः ॥२१९

इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं स गद्गदम् ।
कथयामास तन्वंग्या यथा प्राप्ता श्वपाकता ॥२२०

रुदित्वा सापि सुचिरं निःश्वस्योष्णं च दुःखिता । स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥२२१

श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले । मृतस्य पुत्रस्य तदा जिह्वया लेलिहन् मुखम् ॥२२२

राजोवाच—

यमस्य शिक्षां याचावः कृपणौ पुत्रगर्द्धिनौ (गृद्धनौ) ।
तस्माच्छीघ्रं व्रजावोऽद्य पुत्रो यत्र प्रियो गतः ॥२२३

प्रिये न रोचये दीर्घ कालं क्लेशमुपासितुम् । नात्मायत्तश्च तन्वङ्गि पश्य मे मन्दभाग्यताम् ॥२२४

चण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि । चण्डालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि ॥२२५

नरके च पतिष्यामि कीटकः कृमिभोजनः । वैतरण्यां महापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले ॥२२६

असिपत्रवने प्राप्यच्छेदं प्राप्स्यामि दारुणम् । तापं प्राप्स्यामि वा प्राप्य महारौरवरौरवौ ॥२२७

वस्तुत धर्म (नामक कोई वस्तु) नहीं है । सत्यता, सरलता और सदयता की तो बात ही नहीं, क्योंकि परम धर्म का पालन करने पर भी आप राज्य से च्युत कर दिये गये हैं ॥२१९॥

इस प्रकार उस (शैव्या) के वचनों को सुनकर (राजा) लम्बा सांस लेकर, गद्गद् वाणी (रुँधे हुए गले) से उस तनु शरीर वाली (शैव्या) से, चाण्डालत्व किस प्रकार प्राप्त हुआ इसको कहने लगे ॥२२०॥

वह (शैव्या) भी (राजा के कथन को सुनकर) लम्बी-लम्बी सांस लेती हुई, दुःखी, बहुत समय तक रोकर भयभीत होते हुए पुत्र मरण की घटना जैसी घटी थी (राजा से) सब निवेदन कर दी ॥२२१॥

तत्पश्चात् राजा उन वचनों को सुनकर भूमि पर गिर पड़े । पुनः मरे हुए पुत्र के मुख को जीभ से चाटने लगे ॥२२२॥

राजा बोला —

'हम दोनों कृपण पुत्र के लोभी यमराज से भिक्षा माँगे ।' इसलिए हम दोनों शीघ्र ही, आज ही वहाँ पर चलते हैं, जहाँ हमारा प्रिय पुत्र गया है ॥२२३॥

हे प्रिये ! अधिक देर तक (पुत्र वियोग का) क्लेश सहन करना (मुझे) अच्छा नहीं लग रहा है । हे तन्वङ्गि ! मेरे दुर्भाग्य को देखो कि मैं आज स्वाधीन भी नहीं हूं ॥२२४॥

चाण्डाल की आज्ञा के बिना यदि मैं अग्नि में प्रवेश करता हूं तो मैं अगले जन्म में भी चाण्डाल की दासता को ही प्राप्त करूँगा ॥२२५॥

और नरक में कीड़ों का भक्ष्य बनूंगा तथा अति चर्बी, मवाद, खून तथा स्नायुओं की कीचड़ वाली वैतरणी में गिरूँगा ॥२२६॥

अथवा तलवार के वन में गिरकर अत्यन्त दारुण शरीर के छेदन को प्राप्त करूँगा अथवा रौरव और महारौरव नरक को प्राप्त (मैं) दुःसह ताप में जलाया जाऊँगा ॥२२७॥

मग्नस्य दुःखजलधौ पारः प्राणवियोजनम् । एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥२२८
मम दैवाम्बुवेगेन मग्नः सोऽपि बलीयसा । कथं प्राणान् विमुञ्चामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः ॥२२९
अथवा नार्तिना क्लिष्टो नरः पापमवेक्षते । तिर्यक्त्वे नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा ॥२३०
वैतरण्यां कुतस्तादृग् यादृशं पुत्रविप्लवे । सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने ॥२३१
निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं कुकृतं मम । अनुज्ञाता च गच्छ त्वं विप्र-वेश्म शुचिस्मिते ॥२३२
मम वाक्यं च तन्वङ्गि निबोधादृतमानसा । यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥२३३
परत्र सङ्गमो भूयात् पुत्रेण सह च त्वया । इह लोके कुतस्त्वेतद् भविष्यति ममेङ्गितम् ॥२३४
त्वया सह मम श्रेयो गमनं पुत्रमार्गणे । यन्मया हसता किञ्चिद् रहस्ये वा शुचिस्मिते ॥२३५
अश्लीलमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम याचतः । राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स ते द्विजः ॥
सर्वयत्नेन ते तोष्यः स्वामी दैवतवच्छुभे ॥२३६

राजपत्न्युवाच—

अहमप्यत्र राजर्षे दीप्यमाने हुताशने । दुःखभारासहाद्यैव सह यास्यामि वै त्वया ॥२३७

दुःख रूपी समुद्र में डूबते हुए के लिए पार उतरने का एक मात्र उपाय प्राणों का त्याग ही है क्योंकि एक ही बालक जो कि हमारे वंश को चलाने वाला था ॥२२८॥

मेरे दुर्भाग्य रूपी तेज जल के वेग से वह भी डुबा दिया गया है। दुर्गतियुक्त मैं, पराधीन होने से, प्राण त्याग भी कैसे करूं ? ॥२२९॥

अथवा अत्यन्त दुःखी व्यक्ति पाप (पुण्य) का विचार नहीं करता है। तिर्यक् योनि में भी वैसा दुःख नहीं होता और न ही तलवारों के वन में, ॥२३०॥

अथवा (मांस मज्जा आदि से परिपूर्ण) वैतरणी में भी वैसा दुःख कहाँ होता है जैसा कि पुत्र के मरने पर होता है। इसलिए मैं पुत्र के शरीर से प्रदीप्त अग्नि में, ॥२३१॥

हे तन्वंगि ! प्रवेश करूँगा। अतः तुम मुझे इस दुष्कर्म के लिए क्षमा कर देना। हे पवित्र स्मित वाली तुम मेरी आज्ञा से उस ब्राह्मण के घर चली जाओ ॥२३२॥

हे तन्वङ्गि ! मैं जो कहता हूं उसे आदर युक्त मन से सुनो। यदि मैंने दान दिया है, यदि हवन किया है, यदि गुरुओं को सन्तुष्ट किया है, तो पुत्र और तुम्हारे साथ परलोक में मिलन होगा। अब इस लोक में तो मेरे अभिलषित के सिद्ध होने की सम्भावना नहीं है ॥२३३-२३४॥

तुम्हारे साथ (रहने की अपेक्षा) मेरा पुत्र के मार्ग में जाना श्रेयस्कर है। हे शुचिस्मिते ! मैंने जो कभी परिहास में अथवा एकान्त में, ॥२३५॥

अश्लील शब्द कह दिये हों, उन सबके लिए मैं याचना करता हूं, मुझे क्षमा कर देना। उस ब्राह्मण (के पास रहते हुए) तुमको, मैं राजपत्नी हूं इस प्रकार से गर्व नहीं करना चाहिये। हे कल्याणी ! उस ब्राह्मण स्वामी को तुम्हें देवता के समान, सब प्रकार के यत्नों से सन्तुष्ट रखना चाहिये ॥२३५॥

राजपत्नी बोली—

हे राजर्षे ! मैं भी यहीं पर जलती हुई अग्नि में प्रवेश करके) इस असह्य दुःख के भार से (पीड़ित होकर) आज ही तुम्हारे साथ जाऊँगी ॥२३७॥

सह स्वर्गं च नरकं सहैवावां हि भुंक्ष्वहे । श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ।।२३८

पक्षिण ऊचुः—

ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयंस्वकम् । भार्यया सहितश्चासौ बद्धाञ्जलिपुटस्तदा ।।२३९

चिन्तयन् परमात्मानमीशं नारायणं हरिम् । हृत्कोटरगुहासीनं वासुदेवं सुरेश्वरम् ।।२४०

अनादिनिधनं ब्रह्म कृष्णं पीताम्बरं शुभम् । तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः ।।२४१

धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः । आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते भो भो राजन्शृणु प्रभो ।।२४२

अयं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान् स्वयम् ।
साध्याश्च विश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः ।।२४३

नागाः सिद्धाः सगन्धर्वा रुद्राश्चैव तथाश्विनौ । एते चान्ये च बहवो विश्वामित्रस्तथैव च ।।
विश्वत्रयेण यो मित्रं कर्त्तुं वै नाशकत् पुरा ।।२४४

विश्वामित्रस्तुते मैत्रीमिष्टं चाहर्तुमिच्छति । आरुरोह ततः प्राप्तो धर्मः शक्रोऽथ गाधिर्जः ।।२४५

धर्मउवाच—

मा राजन् साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः । तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः ।।२४६

स्वर्ग अथवा नरक, हम दोनों साथ ही भोगेंगे। (रानी के वचनों को) सुनकर, राजा बोले—हे पतिव्रते ! ऐसा ही हो ।।२३८।।

पक्षी बोले—

तत्पश्चात् राजा ने चिता तैयार करके, पुत्र के शरीर को उस (चिता) पर रखा। तब पत्नी सहित वह राजा हाथ जोड़कर ।।२ ९।।

परम पिता परमेश्वर, जगदीश, नारायण, हरि का (स्मरण) चिंतन करते हुए, अपने हृदय की कोठरी रूपी गुफा में स्थित वासुदेव और इन्द्र को, ।।२४०।।

अनादि, निधन ब्रह्म तथा पीत वस्त्र धारण करने वाले कृष्ण का स्मरण करते हुए ही इन्द्र सहित सभी देवता, ।।२४१।।

धर्म को आगे करके शीघ्रता के साथ (वहाँ) आ गये और आकर वे सब बोले—हे ! राजन्, सुनो ।।२४२।।

ये साक्षात् पितामह, ये साक्षात् धर्म और ये स्वयं भगवान् और साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण, चारण सहित सब लोकपाल, ।।२४३।।

नाग, सिद्ध, गन्धर्वों के साथ रुद्र और अश्विनी युगल तथा ये अन्य देवता और जो तीनों विश्वों (लोकों) के साथ पहले मित्रता नहीं कर सके, वे विश्वामित्र भी आये हैं—।।२४४।।

विश्वामित्र तुमसे मित्रता एवं तुम्हारा इष्ट करना चाहते हैं। इसके पश्चात् धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र खड़े हुए ? ।।२४५।।

धर्म बोले—

हे राजन् ! तुम्हें दुःसाहस नहीं करना चाहिये, यह मैं साक्षात् धर्म तुम्हारे सत्य, सहनशीलता और इन्द्रिय निग्रह आदि गुणों से संतुष्ट होकर तुम्हारे पास आ गया हूँ ।।२४६।।

इन्द्र उवाच —

हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ।
त्वया सभार्या पुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः ॥२४७
आरोह त्रिदिवं राजन् भार्यापुत्रसमन्वितः । सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥२४८

पक्षिण ऊचुः—

ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् । इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतः प्रभुः ॥२४९
पुष्पवर्षं च सुमहद्देवदुन्दुभिनिस्वनम् । ततस्ततो वर्तमाने समाजे देवसंकुले ॥२५०
समुत्तस्थौ ततः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः । सुकुमारतनुः सुस्थः प्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥२५१
ततो राजाहरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं क्षणात् । सभार्य्यः सुश्रियायुक्तो दिव्यमाल्याम्बरान्वितः॥२५२
स्वस्थः सम्पूर्णहृदयो मुदापरमया युतः । बभूव तत् क्षणादिन्द्रो भूयश्चैनमभाषत ॥२५३
सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च प्राप्स्यसे सद्गतिं पराम् । समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलैः ॥२५४

हरिश्चन्द्र उवाच—

देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन वै । अगत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्येऽहं सुरालयम् ॥२५५

इन्द्र बोले—

हे महाराज हरिश्चन्द्र ! यह मैं इन्द्र तुम्हारे पास आ गया हूं । तुमने अपने पुत्र व पत्नी के साथ सभी सनातन लोकों को जीत लिया है ॥२४७॥

जो अन्य लोगों के लिए दुष्प्राप्य है, वह स्वर्ग तुमने अपने कार्यों से जीत लिया है अतः हे राजन् ! तुम (अपनी) पत्नी एवं पुत्र के साथ स्वर्ग के लिए आरोहण करो। ॥२४८॥

पक्षी बोले—

तत्पश्चात् चिता स्थान पर आये इन्द्र ने आकाश से मृत्यु का विनाश करने वाले अमृत की वर्षा की ॥२४९॥

उसके बाद देवताओं समेत, इन सभी व्यक्तियों के ऊपर देवताओं ने महान् दुंदुभि घोष किया और पुष्प वर्षा की ।।२५०॥

तदनन्तर उन महात्मा राजा के सुकुमार तनु, स्वस्थ तथा प्रसन्न इन्द्रिय एवं मन वाले वे पुत्र उठ खड़े हुए ॥२५१॥

तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र ने पुत्र का आलिङ्गन किया और अपनी पत्नी के साथ सुन्दर शोभा से युक्त तथा दिव्य माला एवं वस्त्रों को धारण किया ॥२५२॥

और परम प्रसन्नता से युक्त होकर स्वस्थ हो गये । तदनन्तर इन्द्र ने उनसे कहा—॥२५३॥

हे महाभाग ! अपने श्रेष्ठ कर्मों के फल से तुम अपने पुत्र और पत्नि के साथ परम सगद्ति प्राप्त करोगे ॥२५४॥

हरिश्चन्द्र बोले—

हे ! देवराज, स्वामी चाण्डाल से आज्ञा लिये बिना तथा अपनी स्थिति से ऋण शोधन किये बिना मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा ॥२५५॥

धर्म उवाच—

तवैनं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया। आत्मा श्वपाकतां नीतो दर्शितं तच्च चापलम् ।।२५६

इन्द्र उवाच—

प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि। तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम् ।।२५७

हरिश्चन्द्र उवाच—

देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चैतन्निबोध मे। प्रसादसुमुखं यत् त्वां ब्रवीमि प्रश्रयान्वितः ।।२५८

मच्छोकमग्नमनसः कोसलानगरे जनाः। तिष्ठन्ति तानपोह्याद्य कथं यास्याम्यहं दिवम् ।।२५९

ब्रह्महत्या गुरोर्घातो गोवधः स्त्रीवधस्तथा। तुल्यमेभिर्महापापं भक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ।।२६०

भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतः सुखम्। नेह नामुत्र पश्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज ।।२६१

यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वरः। ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह ।।२६२

इन्द्र उवाच—

बहूनि पुण्यं पापानि तेषां भिन्नानि वै पृथक्। कथं संघातभोग्यं त्वं भूयः स्वर्गमवाप्स्यसि ।।२६३

धर्मराज बोले—

तुम्हारे इस होने वाले दुःख को अपनी इस माया से जानकर, मैंने स्वयं चाण्डाल (रूप को) धारण किया और उस चपलता को दिखा दिया ।।२५६।।

इन्द्र बोले—

पृथ्वी के समस्त मनुष्यों द्वारा, जिस परम स्थान की (सदैव) अभिलाषा की जाती हैं। पुण्य करने वाले मनुष्यों के उस स्थान पर हे! हरिश्चन्द्र तुम आरोहण करो ।।२५७।।

हरिश्चन्द्र बोले—

हे देवराज! आपको नमस्कार है। आप कृपया मेरी इस बात को (ध्यान पूर्वक) सुनिये। जो कि मैं प्रसन्नता से युक्त वाले तुम्हें विनीत भाव से कह रहा हूं ।।२५८।।

कौशलनगर के सभी मनुष्य मेरे (वियोग के) दुःख से संतप्त मन हैं। अतः उनको (संतप्त अवस्था में) पृथ्वी पर छोड़कर मैं स्वर्ग के लिए कैसे प्रस्थान करूं ।।२५९।।

जिस प्रकार ब्राह्मण हत्या, गुरु का घात, गोहत्या और स्त्री का वध महापाप कहे गये हैं, उसी के समान भक्त का त्याग भी (महान् पाप) कहा गया है ।।२६०।।

(साथ ही जो व्यक्ति) अत्याज्य, निर्दोष, और भजन परायण, भक्त का त्याग करता है (वह व्यक्ति) इस लोक और परलोक दोनों में सुख प्राप्त नहीं कर सकता है अतः हे इन्द्र! आप स्वर्ग को लौट जाइये ।।२६१।।

हे देवराज इन्द्र! यदि वे सब (नागरिक) साथ स्वर्ग जा सकें तो मैं भी जाऊंगा अन्यथा (मैं) उनके साथ नरक में ही रहूंगा ।।२६२।।

इन्द्र बोले—

उन सबके बहुत से पुण्य और पाप अलग-अलग हैं (इसलिए) उन सबके साथ तुम किस प्रकार स्वर्ग जा सकते हो? ।।२६३।।

हरिश्चन्द्र उवाच—

शक्र भुङ्क्ते नृपो राज्यं प्रभावेण कुटुम्बिनाम्। यजते च महायज्ञैः कर्मपौर्तं करोति च ॥२६४
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम्। उपकर्तॄन् न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया ॥२६५
तस्माद् यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम्। दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः ॥२६६
बहुकालोपभोग्यं हि फलं यन्मम कर्मणः। तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत् प्रसादतः ॥२६७

पक्षिण ऊचुः—

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः। प्रसन्नचेताधर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः ॥२६८
गत्वा सुनगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमायुतम्। हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः ॥२६९
आगच्छन्तु जनः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम्। धर्मप्रसादात् सम्प्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु ॥२७०
विमानकोटिसम्बद्धं स्वर्गलोकान् महीतलम्। गत्वा योध्याजनं प्राह दिवमारुह्यतामिति ॥२७१
तदिन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीत्या तस्य च भूपतेः। आनीय रोहिताश्वञ्च विश्वामित्रो महातपाः ॥२७२

हरिश्चन्द्र बोले—

है इन्द्र! कुटुम्बियों, परिवारों के सहयोग से ही राजा बड़े-बड़े यज्ञ करता है एवं अन्य कर्मों का सम्पादन करता है ॥२६४॥

वे सब (पुण्य) कार्य मैंने उन्हीं के प्रभाव और सहयोग से ही किये हैं। मैं स्वर्ग के लालच में उन उपकारी बन्धुओं को कदापि न छोड़ूँगा ॥२६५॥

इसलिए हे देवराज! जो भी मेरे जप, यज्ञ दानादि सत्कर्म हैं, वे सब केवल मेरे न होकर, मेरी समस्त प्रजा के भी हों ॥२६६॥

(हे! देवेन्द्र) जिन अपने सुकर्मों से मैं (स्वर्ग का भोग) बहुत समय तक कर सकता हूं, आपकी कृपा से यह फ़ल भले ही एक ही दिन भोगूँ, परन्तु अपनी समस्त प्रजा के साथ ही भोगूँ ॥२६७॥

पक्षी बोले—

'ऐसा ही होगा,' इस प्रकार कहकर तीनों भुवनों के स्वामी इन्द्र धर्म और गाधि के पुत्र विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२६८॥

पुनः हरिश्चन्द्र तथा सब देवताओं के साथ, चारों वर्णों युक्त उस नगर में शीघ्र जाकर देवराज इन्द्र बोले— ॥२६९॥

हे मनुष्यों! आओ, तुम सब दुर्लभ स्वर्ग लोक में शीघ्र आओ। तुम सबने (अपने राजा हरिश्चन्द्र के) धर्म के पुण्य से, इसे प्राप्त कर लिया है ॥२७०॥

उस समय स्वर्ग लोक से करोड़ों विमान पृथ्वी तल पर आये। (इन्द्र) अयोध्या के नागरिकों से बोले—स्वर्ग लोक को चलो ॥२७१॥

इन्द्र के उन वचनों को सुनकर, महा तपस्वी मुनि विश्वामित्र उन राजा से प्रसन्न होकर, रोहिताश्व को ले जाकर, ॥२७२॥

अयोध्याख्ये पुरे रम्ये सोऽभ्यषिञ्चन् नृपात्मजम् ।
देवैश्च मुनिभिः सिद्धैरभिषिच्य नराधिपः ।।२७३
राज्ञा सह तदा सर्वे हृष्टपुष्टसुहृज्जनाः । सपुत्रभृत्यदारास्ते दिवमारुरुहुर्जनाः ।।२७४
पदे पदे विमानात् ते विमानमगमन् नराः । तदा संभूतहर्षोऽसौ हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः ।।२७५
सम्प्राप्य भूतिमतुलां विमानैः स महीपतिः । आसाञ्चक्रे पुराकारे वप्रप्राकारसंवृते ।।२७६
ततस्तस्यर्द्धिमालोक्य श्लोकं तत्रोशना जगौ । दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।।२७७
शुक्र उवाच—
हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति । यश्चैतच्छृणुयाद् भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः ।।२७८
तेन वेदाः पुराणानि सर्वे मंत्राः सुसंग्रहाः । घुष्टाः स्युः पुष्करे तीर्थे प्रयागे सिन्धु सागरे ।।२७९
देवागारे कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां विशेषतः । विषुवद्ग्रहणे चैव यत्फलं जपतो लभेत् ।।२८०
तत्फलं द्विगुणं चैव संयतात्मा शृणोति यः । श्रुत्वा तु पूजयेद् भक्त्या पुराणज्ञं द्विजोत्तमम् ।।२८१
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च तथैवान्नेन जैमिने । येनैवं यत्कृतं पुण्यं तच्छक्यं न मयोदितुम् ।।२८२

रमणीय अयोध्या नगरी में, देवताओं, मुनियों और सिद्ध पुरुषों के द्वारा, राजपुत्र रोहिताश्व का राज्याभिषेक करके उसे राजा बनाया ।।२७३।।

तत्पश्चात् सभी नागरिक प्रसन्न मन से राजा के साथ अपने पुत्र स्त्री तथा भृत्यों को साथ लेकर स्वर्ग लोक गये ।।२७४।।

वे मनुष्य पद-पद पर एक विमान से दूसरे विमान पर गये। (उन्हें स्वर्ग जाते देखकर) राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए ।।२७५।।

इस प्रकार असंख्य विमानों को प्राप्त करके, वह राजा प्राचीर तथा भित्ति से घिरे नगर के आकार वाले (स्वर्ग में) पहुंच गये ।।२७६।।

तत्पश्चात् (राजा हरिश्चन्द्र की) समृद्धि (तपस्या) को देखकर सर्वशास्त्रों के ज्ञाता दैत्य गुरु शुक्राचार्य ने उनकी कीर्ति को इस प्रकार गाया ।।२७७।।

शुक्र बोले—

हरिश्चन्द्र के समान कोई राजा न तो हुआ है और न ही होगा। अतः जो व्यक्ति (हरिश्चन्द्र की) इस कथा का निरन्तर भक्ति से श्रवण करता है ।।२७८।।

(वह) वेद, पुराण और सभी तन्त्रों के संग्रह के फल को प्राप्त करेगा, पुष्कर तीर्थ में, प्रयाग में, अथवा गंगा सागर में, ।।२७९।।

देव मंदिर में अथवा कुरुक्षेत्र में और वाराणसी में विशेष रूप से मेष राशि के सूर्य ग्रहण के समय, जपने से जो फल प्राप्त होना है ।।२८०।।

जो संयत आत्मा होकर, इस (हरिश्चन्दोपाख्यान) को सुनता है और इसे सुनकर पुराण विद् विद्वान् ब्राह्मण की भक्ति से पूजा करता है। वह उस (जप) के फल से दुगना (पुण्य) प्राप्त करता है ।।२८१।।

हे जैमिनि ! उन्होंने गाय, पृथ्वी, स्वर्ग, वस्त्र तथा अन्न आदि के दान से इतना पुण्य प्राप्त किया, मैं उन सबको कहने में समर्थ नहीं हूं ।।२८२।।

अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत् । यदागतो हरिश्चन्द्रः पुरीं चेन्द्रत्वमाप्तवान् ।।२८३

पक्षिण ऊचुः—

एतत् ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रविचेष्टितम् । यः शृणोति सुदुःखार्त्तः स सुखं महदाप्नुयात् ।।२८४

स्वर्गार्थी प्राप्नुयात् स्वर्गं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।
भार्यार्थी प्राप्नुयाद् भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ।।२८५

अतः परं कथाशेषः श्रूयतां मुनिसत्तम । विपाको राजसूयस्य पृथिवीक्षयकारणम् ।।
तद्विपाकनिमित्तञ्च युद्धमाडिबकं महत् ।।२८६

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नामाष्टमोऽध्यायः ।

अरे ! उनकी सहनशीलता का ही यह प्रसाद है और उनके महान् दान का ही यह प्रतिफल है कि राजा हरिश्चन्द्र अपने नगरवासियों के साथ स्वर्ग को गये और उन्होंने इन्द्रत्व प्राप्त किया ।।२८३।।

पक्षी बोले—

यह सब जो हरिश्चन्द्र ने किया, मैंने तुम से सब कुछ कह दिया है। जो भी दुःखी व्यक्ति इस (आख्यान) को सुनता है, वह अति सुख प्राप्त करता है ।।२८४।।

स्वर्ग का इच्छुक स्वर्ग प्राप्त करता है, पुत्र का अभिलाषी पुत्र प्राप्त करता है, पत्नी की इच्छा करने वाला पत्नी प्राप्त करता है और राज्य का इच्छुक राज्य प्राप्त करता है ।।२८५।।

अतः हे मुनियों में श्रेष्ठ ! इससे आगे की शेष कथा सुनिये। उनके राजसूय का फल ही (उनकी) पृथ्वी के नाश का एक मात्र कारण हुआ। उनके राजसूय के फल के कारण ही, बगुले और सारस का महान् युद्ध हुआ ।।२८६।।

इस प्रकार मा० म० पुर० में हरिश्चन्द्रोपाख्यान वर्णन नामक आठवां अध्याय समाप्त हुआ।

नवमोऽध्यायः

पक्षिण ऊचुः—

राज्यच्युते हरिश्चन्द्रे गते च त्रिदशालयम् । निश्चक्राम महातेजा जलवासात् पुरोहितः ।।१
वसिष्ठो द्वादशाब्दान्ते गंगापर्युषितो मुनिः । शुश्राव च समस्तं तु विश्वामित्रविचेष्टितम् ।।२

पक्षी बोले—

हरिश्चन्द्र के राज्य से अलग होने और स्वर्गादि जाने के पश्चात् उनके महान् तेजस्वी पुरोहित (वसिष्ठ अपनी तपस्या समाप्त करके) जल से बाहर निकले ।।१।।

मुनि वसिष्ठ ने बारह वर्षों तक गंगा के जल में खड़े होकर तपस्या करने के पश्चात् (बाहर आने पर) विश्वामित्र के द्वारा की गयी समस्त घटनाओं को सुना ।।२।।

हरिश्चन्द्रस्य नाशञ्च राज्ञश्चोदारकर्मणः। चण्डालसंप्रयोगञ्च भार्यातनयविक्रयम् ।।३
स श्रुत्वा सुमहाभागः प्रीतिमानवनीपतौ। चकार कोपं तेजस्वी– विश्वामित्रमृषिं प्रति ।।४

वसिष्ठ उवाच —

मम पुत्रशतं तेन विश्वामित्रेण घातितम्। तत्रापि नाभवत् क्रोधस्तादृशो यादृशोऽद्य मे ।।५
श्रुत्वा नराधिपमिमं स्वराज्यादवरोपितम्। महात्मानं महाभागं देवब्राह्मणपूजकम् ।।६
यस्मात् स सत्यवाक् छान्तः शत्रावपि विमत्सरः। अनागाश्चैव धर्मात्मा अप्रमत्तो मदाश्रयः ।।७
सपत्नीभृत्यपुत्रस्तु प्रापितोऽन्यां दशां नृपः। स राज्यात् च्यावितोऽनेन बहुशश्च खिलीकृतः ।।८
तस्माद् दुरात्मा ब्रह्मद्विड् यज्विनामवरोपकः। मच्छापोपहतो मूढः स बकत्वमवाप्स्यति ।।९

पक्षिण ऊचुः—

श्रुत्वा शापं महातेजा विश्वामित्रोऽपि कौशिकः। त्वमप्याडिभंवस्वेति प्रतिशापमयच्छत ।।१०
अन्योऽन्यशापात् तौ प्राप्तौ तिर्यक्त्वं परमद्युती।
वसिष्ठः स महातेजा विश्वामित्रश्च कौशिकः।। ११
अन्यजातिसमायोगं गतावप्यमितौजसौ। युयुधातेऽतिसंरब्धौ महाबलपराक्रमौ ।।१२

उदार कर्म वाले राजा हरिश्चन्द्र के राज्य का नाश, चाण्डालत्व प्राप्ति तथा पत्नी और पुत्र के विक्रय को, ।।३।।

उन महाभाग तेजस्वी वसिष्ठ ने अपने प्रिय राजा हरिश्चन्द्र के प्रति (इस सबको) सुनकर विश्वामित्र मुनि के प्रति क्रोध किया ।।४।।

वसिष्ठ बोले —

मेरे सौ पुत्रों को विश्वामित्र ने मार डाला, तब भी मुझे इतना क्रोध नहीं आया, जितना कि देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करने वाले, महान् आत्मा इन (राजा हरिश्चन्द्र) को राज्य से च्युत किया गया सुनकर, आज आया है ।।५–६।।

क्योंकि वह सत्य वक्ता, शान्त, शत्रु से भी द्वेष न करने वाला, धर्मात्मा, निर्दोष, अप्रमत्त, प्रसन्न (वदन) वह (राजा) ।।७।।

पत्नी, पुत्र एवं सेवकों सहित, निम्न दशा को प्राप्त हो गया है। उसे राज्य से च्युत करके (उस विश्वामित्र ने) अनेक प्रकार से परेशान किया है ।।८।।

इसलिए वह दुष्ट आत्मा, ब्राह्मणों से द्वेष करने वाला, याज्ञिकों का उन्मूलन करने वाला, मूर्ख (विश्वामित्र) मेरे शाप से अभिभूत होकर बगुला बनेगा ।।९।।

पक्षी बोले —

कुशिक गोत्र के महा तेजस्वी विश्वामित्र ने वसिष्ठ के शाप को सुनकर, 'तुम भी सारस हो जाओ' इस प्रकार से प्रतिशाप दे दिया ।।१०।।

(इस प्रकार) परस्पर एक दूसरे के शाप से वे दोनों महा तेजस्वी वसिष्ठ और कौशिक विश्वामित्र पक्षी योनि को प्राप्त हुए ।।११।।

दूसरी जाति का संयोग प्राप्त करके भी अत्यन्त तेजस्वी होते हुए भी महान् बलशाली और पराक्रमी (वे दोनों) अत्यधिक उत्तेजित होकर युद्ध करने लगे ।।१२।।

योजनानां सहस्रे द्वे प्रमाणेनाडिरुच्छ्रितः। षण्णवत्यधिकं ब्रह्म सहस्रत्रितयं बकः ॥१३
तौ तु पक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ। प्रहरन्तौ भयं तीव्रप्रजानां चक्रतुस्तदा ॥१४
विधूय पक्षाणि बको रक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत्। आडिं सोऽप्युन्नतग्रीवो बकं पद्भ्यामताडयत् ॥१५
तयोः पक्षानिलापास्ताः प्रपेतुर्गिरयो भुवि। गिरिप्रपाताभिहता चकम्पे च वसुन्धरा ॥१६
क्ष्मा कम्पमाना जलधीनुद्वृत्ताम्बूंश्चकार च। ननाम चैकपार्श्वेन पातालगमनोन्मुखी ॥१७

केचिद् गिरिनिपातेन केचिदम्भोधिवारिणा।
केचिन्-महीसंचलनात् प्रययुः प्राणिनः क्षयम् ॥१८

इति सर्वं परित्रस्तं हा हा भूतमचेतनम्। जगदासीत् सुसम्भ्रन्तं पर्यस्तक्षितिमण्डलम् ॥१९

हा वत्स हा कान्त शिशो प्रयाह्येषोऽस्मि संस्थितः।
हा प्रिये कान्त शैलोऽय पतत्याशु पलायताम् ॥२०

इत्याकुलीकृते लोके सन्त्रासविमुखे तदा। सुरैः परिवृतः सर्वैराजगाम पितामहः ॥२१

प्रत्युवाच च विश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ।
युद्धं वां विरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यं व्रजन्तु च ॥२२

पुनः सारस ने दो सहस्र योजन वाले आकार (शरीर) को धारण किया और बगुला भी तीन हजार छयानवें योजन (आकार वाला हो गया) ॥१३॥

तब उन दोनों ने परस्पर एक दूसरे पर पंख और शक्तिशाली पंजों से प्रहार करते हुए, प्रजाओं में भयंकर भय उत्पन्न किया ॥१४॥

लाल-लाल नेत्रों वाले, बगुले ने, अपने पंखों को फड़फड़ाकर (सारस के ऊपर) आक्रमण किया और लम्बी गर्दन वाले उस सारस ने भी बगुले पर अपने पंजों से प्रहार किया ॥१५॥

उनके (बगुले और सारस) विशाल पंखों की वायु से पर्वत (भी) पृथ्वी पर गिरने लगे और (विशाल) पर्वतों के गिरने से, आहत (पीड़ित) हुई पृथ्वी भी काँपने लगी ॥१६॥

पृथ्वी के काँपने से (सातों) समुद्रों का जल भी ऊँचे-ऊँचे तक उछलने लगा (इस स्थिति में) पृथ्वी एक ओर को झुकने के कारण पाताल में गिरने को हो गयी ॥१७॥

(इस भयंकर युद्ध के समय) कुछ प्राणी तो पर्वतों के टूट जाने से और कुछ समुद्र के जल से और कुछ पृथ्वी के कम्पन होने से नष्ट हो गये ॥१८॥

इस प्रकार (उस युद्ध से) सभी प्राणी अत्यधिक त्रस्त (व्याकुल) हो गये और सभी में हाहाकार मच गया। (युद्ध) की चपेट में सम्पूर्ण जगत्, वायुमंडल और आकाश सभी अत्यन्त भयभीत थे अथवा वायुमण्डल और आकाश में फैले हुए इस युद्ध से सम्पूर्ण संसार अत्यन्त भयभीत था ॥१९॥

हा वत्स ! हा कान्त ! हाय पुत्र ! यहाँ आओ, मैं यहाँ हूं हाय प्रिये ! हाय कान्त ! यह पर्वत गिर रहा है, शीघ्र दौड़ो ॥२०॥

इस प्रकार संसार के त्रस्त एवं व्याकुल होने पर, सभी देवताओं से घिरे हुए पितामह वहाँ पधारें ॥२१॥

अति क्रुद्ध (उन दोनों विश्वामित्र और वसिष्ठ) से विश्वेश्वर ने (ब्रह्माजी ने) कहा आप दोनों युद्ध से विरत हो जाइये। जिससे ये सभी लोक अपनी सामान्य स्थिति को प्राप्त करें ॥२२॥

श्रृण्वन्तावपि तौ वाक्यं ब्राह्मणोऽव्यक्त जन्मनः। कोपामर्षसमाविष्टौ युयुधाते न तस्थतुः ॥२३
ततः पितामहो देवस्तं दृष्ट्वा लोकसंक्षयम्। तयोश्च हितमन्विच्छंस्तिर्यग्भावमपानुदत् ॥२४
ततस्तौ पूर्वदेहस्थौ प्राह देवः प्रजापतिः। व्युदस्ते तामसे भावे वसिष्ठ-कौशिकर्षभौ ॥२५
जहि वत्स वसिष्ठ त्वं त्व च कौशिकसत्तम। तामसं भावमाश्रित्य ईदृग्युद्धं चिकीर्षितम् ॥२६
राजसूयविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः। युवयोर्विग्रहश्चायं पृथिवी-क्षयकारकः ॥२७
न चापि कौशिकश्रेष्ठस्तस्य राज्ञोऽपराध्यति। स्वर्गप्राप्तिकरो ब्रह्मन्नुपकारपदे स्थितः ॥२८
तपो विघ्नस्य कर्तारौ कामक्रोधवशं गतौ। परित्यज्यत भद्रं वो ब्राह्मं हि प्रचुरं बलम् ॥२९
एवमुक्तौ ततस्तेन लज्जितौ तावभावपि। क्षमयामासतुः प्रीत्या परिष्वज्य परस्परम् ॥३०
ततः सुरैर्वन्द्यमानो ब्रह्मा लोकं निजं ययौ।
वसिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानं कौशिकोऽपि स्वमाश्रमम् ॥३१
एतदाडिवकं युद्धं हरिश्चन्द्रकथां तथा। कथयिष्यन्ति ये मर्त्याः सम्यक् श्रोष्यति चैव ये ॥३२
तथा पापापनोदन्तु श्रुतं ह्येव करिष्यति। न चैव विघ्नकार्याणि भविष्यन्ति कदाचन ॥३३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे आडिबकमहायुद्धकथनं नाम नवमोऽध्यायः।

अव्यक्त, अजन्मा ब्रह्मा के उन वचनों को सुनकर भी क्रोध और आवेग से युक्त, उन दोनों ने युद्ध बन्द नहीं किया ॥२३॥

तत्पश्चात् पितामह ब्रह्मा ने, संसार के इस सर्वनाश को देखकर और उन दोनों का हित चाहते हुए उनके तिर्यक्त्व (पक्षियोनि) को दूर कर दिया ॥२४॥

तत्पश्चात् उन दोनों के पूर्व देह प्राप्त कर लेने पर और तामस भाव के दूर हो जाने पर प्रजापति ब्रह्मदेव ने वसिष्ठ और विश्वामित्र से कहा ॥२५॥

हे पुत्र ! वसिष्ठ और कुशिक वंशियों में श्रेष्ठ विश्वामित्र ! तुम दोनों तामस भाव को अपनाकर वाञ्छित इस प्रकार के युद्ध को छोड़ दो ॥२६॥

यह राजा हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ का ही फल है। तुम दोनों का यह युद्ध सम्पूर्ण पृथ्वी को नष्ट करने वाला है ॥१७॥

श्रेष्ठ मुनि विश्वामित्र ने उस राजा का कोई अपराध नहीं किया है। हे ब्रह्मन् ! क्योंकि उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति कराकर उनका महान् उपकार किया है ॥२८॥

काम और क्रोध के वशीभूत होकर तुमने तप में विघ्न डाला है। इसलिये उसे छोड़ दो। तुम्हारा कल्याण होगा। ब्राह्म बल ही बहुत बड़ा होता है ॥२९॥

ब्रह्मा के ऐसा कहने पर उन दोनों ने एक दूसरे को क्षमा करके, प्रेम पूर्वक परस्पर आलिंगन किया ॥३०॥

तत्पश्चात् देवताओं के द्वारा स्तुति किये जाते हुये ब्रह्मा अपने अपने (ब्रह्मलोक) में चले गये और वसिष्ठ भी अपने स्थान को तथा विश्वामित्र ने भी अपने आश्रम को प्रस्थान किया ॥३१॥

यह बगुला और सारस के युद्ध तथा राजा हरिश्चन्द्र की कथा को, जो मनुष्य भली प्रकार सुनते और कहते हैं। ॥३२॥

सुनने मात्र से ही (ये दोनों कथायें) उनके पापों को दूर कर देंगी। (ऐसा करने वाले व्यक्ति को) कभी भी विघ्न बाधित नही करेंगे ॥३३॥

इस प्रकार मा० म० पु० में आडिबक युद्ध वर्णन नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ।

दशमोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच—

संशयं द्विजशार्दूलाः प्रब्रूत मम पृच्छतः । आविर्भावतिरोभावौ भूतानां यत्र संस्थितौ ॥१
कथं संजायते जन्तुः कथं वा स विवर्धते । कथं वोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः ॥२
निष्क्रान्तिमुदरात् प्राप्य कथं वा वृद्धिमृच्छति । उत्क्रान्तिकाले च कथंचिद् भावेन वियुज्यते ॥३
कृत्स्नो मृतस्तथाश्नाति उभे सुकृतदुष्कृते । कथं ते च तथा तस्य फलं सम्पादयन्त्युत ॥४
कथं न जीर्यते तत्र पिण्डीकृत इवाशये । स्त्रीकोष्ठे यत्र जीर्यन्ते भुक्तवानि सुगुरूण्यपि ॥५
भक्ष्याणि तत्र नो जन्तुर्जीर्य्यते कथमल्पकः । कथं भोक्ता स सर्वस्य कर्मणः सुकृतस्य वै ॥६
एतन् मे ब्रूत सकलं संदेहोक्तिविवर्जितम् । तदेतत् परमं गुह्यं यत्र मुह्यन्ति जन्तवः ॥७

पक्षिण ऊचुः—

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयाऽस्मासु निवेशितः । दुर्भाव्यः सर्वभूतानां भावाभावसमाश्रितः ॥८
तं श्रृणुष्व महाभाग यथा प्राह पितुः पुरा । पुत्रः परमधर्मात्मा सुमतिर्नाम नामतः ॥९

जैमिनि बोले—

हे पक्षी श्रेष्ठ ! मेरे संदेहों का आप निवारण कर दीजिए कि प्राणियों का आविर्भाव और तिरोभाव किस प्रकार होता है ? ॥१॥

प्राणी कैसे उत्पन्न होता है और कैसे बढ़ता है ? अंगों से पीड़ित पेट में कैसे रहता है ? ॥२॥

पेट से निकल कर कैसे बढ़ता है ? और मृत्यु के समय किस प्रकार वह शरीर से वियुक्त हो जाता है ? ॥३॥

(जब) यह मर जाता है (तो) सुकर्म और दुष्कर्म दोनों कैसे भोगता है ? और वे सुकृत और दुष्कृत किस प्रकार से उसे फल देते हैं ॥४॥

स्त्री के पेट में जहाँ पर खायी हुई, बड़ी-बड़ी वस्तुएँ भी नष्ट हो जाती हैं । पिण्डी के समान उसी पेट में रहता हुआ यह छोटा सा जीव नष्ट क्यों नहीं होता है और वहाँ कैसे यह सम्पूण सुकृत का भोक्ता बनता है ॥५॥

वहाँ अत्यल्प वह जीव किस प्रकार जीवित रहता है और (इस प्रकार) अपने सभी सुकर्मों के (फलों को) वह कैसे भोगता है ? ॥६॥

(आप कृपा करके) मेरे संदेहों को दूर करते हुए यह सब मुझे बताइये । वस्तुतः यह परम गहन विषय हैं (क्योंकि) इसमें सभी प्राणी भ्रमित होते हैं ॥७॥

पक्षी बोले—

तुमने इतने जटिल प्रश्न का भार हमारे ऊपर डाल दिया है । भाव और अभाव से सम्बद्ध (तुम्हारा यह प्रश्न वस्तुतः) सभी प्राणियों की समझ से परे की वस्तु है । ॥८ ।

हे श्रीमान् ! प्राचीन काल में, परम धर्मात्मा, सुमति, नामक पुत्र ने अपने पिता से कहा, वही मुझसे सुनिये ॥९॥

ब्राह्मणो भार्गव. कश्चित् सुतमाह महामतिः । कृतोपनयनं शान्तं सुमतिं जडरूपिणम् ॥१०
वेदानधीत्य सुमते यथानुक्रममादितः । गुरुशुश्रूषणे व्यग्रो भैक्षान्नकृत भोजनः ॥११
ततो गार्हस्थ्यमास्थाय चेष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् । इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथा वनं ततः ॥१२
वनस्थश्च ततो वत्स परिव्राड् निष्परिग्रहः । एवमाप्स्यसि तद् ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ॥१३

पक्षिण ऊचुः—

इत्येवमुक्तो बहुशो जडत्वान्नाह किञ्चन । पिताऽपि तं सुबहुशः प्राह प्रीत्या पुनः पुनः ॥१४
इति पित्रा सुतस्नेहात् प्रलोभि मधुराक्षरम् । स चोद्यमानो बहुशः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥१५
तातैतद् बहुशोऽभ्यस्तं यत् त्वयाऽद्योपदिश्यते ।
तथैवान्यानि शास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च ॥१६
जन्मनामयुतं साग्रं मम स्मृतिपथं गतम् । उत्पन्नज्ञानबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम् ॥
निर्वेदाः परितोषाश्च क्षयवृद्ध्युदये रताः ॥१७
शत्रुमित्रकलत्राणां वियोगाः सङ्गमास्तथा । मातरो विविधा दृष्टाः पितरो विविधास्तथा ॥१८

भृगु वंश के किसी विद्वान ब्राह्मण ने उपनयन संस्कार सम्पन्न (ऊपर से) मूर्ख प्रतीत होने वाले सुमति (नामक) पुत्र से कहा ॥१०॥

हे सुमते ! वेदों का आरम्भ से अन्त तक क्रम पूर्वक अध्ययन करके, भिक्षा से प्राप्त अन्न खाकर, गुरु की सेवा में संलग्न रहते हुए ।११॥

इसके पश्चात् गृहस्थ (आश्रम) में रहकर, उत्तम यज्ञों का अनुष्ठान करके, अभीष्ट पुत्र उत्पन्न करो। तत्पश्चात् वन का आश्रय लो ॥१२॥

तत्पश्चात् हे ! वत्स, वन में रहते हुए इन्द्रिय निग्रही सन्यासी (जीवन) व्यतीत करो। इस प्रकार (आचरण करने से) ब्रह्म पद को प्राप्त करोगे, जहाँ जाकर किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है ॥१३॥

पक्षी बोले—

(पिता के द्वारा) इस प्रकार अनेक बार कहने पर भी (उस सुमति ने) मूर्खता के कारण कुछ नहीं कहा और पिता ने भी उसे प्रेम पूर्वक बार-बार (इसी प्रकार) कहा (समझाया) ॥१४॥

इस प्रकार पिता के द्वारा स्नेह युक्त, मधुर वाणी से अनेक प्रकार प्रेरित किया जाता हुआ वह पुत्र किंचिद् मुस्कुराते हुए, इस प्रकार बोला — ॥१५॥

हे तात् ! तुम जो उपदेश मुझे आज दे रहे हो; यह सब मैंने अनेक बार अनुभव किया है। उसी के समान अन्य शास्त्रों में भी जो-जो (ब्रह्मपद प्राप्ति हेतु) विविध कलाओं का वर्णन किया है (उन सबका मैंने अनेक बार अभ्यास किया है. ॥१६॥

मुझे दस हजार पूर्व जन्मों की कथाओं का स्मरण हैं। मुझे तत्व ज्ञान उत्पन्न हो गया है। अतः मुझे वेदों से क्या प्रयोजन है ? (उन जन्मों से समस्त भोगों से) संतुष्ट होकर सभी (भोग्य सामग्री) नाशवान् हैं, इस प्रकार की बुद्धि के उत्पन्न होने पर (भोगों से) विरक्ति में लीन रहा ॥१७॥

पत्नी शत्रु, मित्रों का संयोग और वियोग हुआ विविध माताओं और विभिन्न पिताओं को देखा ॥१८॥

अनुभूतानि सौख्यानि दुःखानि च सहस्रशः। बांधवा बहवः प्राप्ताः पितरश्च पृथग्विधाः ॥१९

विण्मूत्रपिच्छिले स्त्रीणां तथा कोष्ठे मयोषितम्।
पीडाश्च सुभृशंप्राप्ता रोगाणाञ्च सहस्रशः ॥२०

गर्भदुःखान्यनेकानि बालत्वे यौवने तथा। वृद्धतायां तथाप्तानि तानि सर्वाणि संस्मरे ॥२१
ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां शूद्राणाञ्चापि योनिषु। पुनश्च पशुकीटानां मृगाणामथ पक्षिणाम् ॥२२
तथैव राजभृत्यानां राज्ञांञ्चाहक्शालिनाम्। समुत्पन्नोऽस्मि गेहेषु तथैव तव वेश्मनि ॥२३
भृत्यतां दासतां चैव गतोऽस्मि बहुशो नृणाम्। स्वामित्वमीश्वरत्वं च दरिद्रत्वं तथा गतः ॥२४
हतं मया हतश्चान्यैर्हतं मे घातित तथा। दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥२५
पितृमातृ सुहृद्भ्रातृकलत्रादि कृतेन च। तुष्टोऽसकृत् तथा दैन्यमश्रुधौताननो गतः ॥२६
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमता तात सङ्कटे। ज्ञानमेतन्मया प्राप्तं मोक्षसम्प्राप्ति कारकम् ॥२७

विज्ञाते यत्र सर्वोऽयमृग्यजुः—सामसंहितः।
क्रियाकलापो विगुणो न सम्यक् प्रतिभाति मे ॥२८

(उन जन्मों में) सहस्रों सुखों और दुःखों का अनुभव किया। बहुत से बन्धुओं और विविध प्रकार के पिताओं को प्राप्त किया ॥१९॥

स्त्रियों के मूत्र और चिप-चिपे पदार्थ युक्त पेट रूपी कोष्ठ में (भी) मैंने निवास किया और सैकड़ों रोगों की अत्यधिक पीड़ा को सहस्रों बार सहन किया ॥२०॥

इस प्रकार गर्भ में बचपन, यौवन काल और वृद्धावस्था में अनेक दुःखों को सहन किया। वे सब दुःख मुझे याद हैं ॥२१॥

(मैंने जिस प्रकार) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र योनियों में पशु कीट, मृग एवं पक्षी योनियों में (भी जन्म लिया)। ॥२२॥

वैसे ही राजाओं के और नौकरों के घरों में एवं योद्धा राजाओं के घरों में उत्पन्न हुआ, उसी प्रकार तुम्हारे घर में भी जन्म लिया है ॥२३॥

मैं बहुत से व्यक्तियों का नौकर और दास बना हूं (मैंने पूर्व जन्मों में) स्वामित्व, ईश्वरत्व और दारिद्र्य सभी दशाओं का अनुभव किया है ॥२४॥

(मैंने) अनेक बार (दूसरों को) मारा, दूसरों से मारा गया और अपने घातियों का वध किया। (कभी) मुझे अन्य (व्यक्तियों) ने दिया और (अनेक बार) मैंने दूसरों को दिया ॥२५॥

माता, पिता, मित्र, भाई, स्त्री आदि से अनेक बार संतुष्ट किया गया (इन सबके वियोग में) अनेक बार दीन होकर अश्रुओं से मुख धोया है (अर्थात् दीन होकर रोया हूं) ॥२६॥

इस प्रकार इस संसार चक्र में घूमते हुए, हे तात! मैंने मोक्ष प्रदान करने वाला, यह ज्ञान प्राप्त कर लिया है ॥२७॥

(तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेने पर) ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से अनुमत यह (सांसारिक) क्रिया कलाप मुझे उचित प्रतीत नहीं हो रहा है ॥२८॥

तस्मादुत्पन्नबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम् । गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरीहस्य सदात्मनः ॥२९
षटप्रकारक्रिया-दुःख-सुख-हर्ष-रसैश्च यत् । गुणैश्च वर्जितं ब्रह्म तत् प्राप्स्यामि पर पदम् ॥३०
रस-हर्ष-भयोद्वेग-क्रोधामर्ष-जवागुरा (जरातुराम्) ॥
विज्ञाता नृ-मृगग्राहि संधपाशशताकुला ॥३१
तस्माद्यास्याम्यहं तात त्यक्त्वेमां दुःखसततिम् । त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किं पापफलसन्निभम् ॥३२

पक्षिण ऊचुः—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हर्ष-विस्मय-गद्गदम् । पिता प्राह महाभागः स्वसुतं हृष्टमानसः ॥३३

पितोवाच :

किमेतद्वदसे वत्स कुतस्ते ज्ञानसम्भवः । केन ते जडता पूर्वमिदानीं च प्रबुद्धता ॥३४
किन्नु शापविकारोऽयं मुनिदेवकृतस्तव । यत् ते ज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् । ३५

पुत्र उवाच :

शृणु तात यथावृत्तं ममेदं सुखदुःखदम् । यश्चाहमासमन्यस्मिन् जन्मन्यस्मत् परन्तु यत् ॥३६
अहमासं पुरा विप्रो न्यस्तात्मा परमात्मनि । आत्मविद्याविचारेषु परां निष्ठामुपागतः ॥३७

इसलिए अब तत्त्व बोध होने पर मुझे वेदों से क्या प्रयोजन रह गया है ? मैं अकृष्ट ज्ञान से तृप्त हो चुका हूं और अब कोई इच्छा नहीं रही है ॥२९॥

सुख, दुःख, हर्ष, आनन्द षड् (रस) और विभिन्न प्रकार के गुण आदि जो छः प्रकार की क्रियाएँ कही गयी हैं उन सबसे रहित, ब्रह्म के परम पद को, मैं प्राप्त करूँगा ॥३०॥

(षड्) रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध और अमर्ष का जाल मनुष्य रूपी मृगों को पकड़ने वालों के सैकड़ों पाशों (बन्धनों) से युक्त है ॥३१॥

इसलिए हे तात ! मैं वेदत्रयी के अध्ययन से उत्पन्न धर्म अधर्म से समृद्ध और शुद्ध पाप फल के सदृश इस दुःख समुदाय को छोड़कर जाऊँगा ॥३२॥

पक्षी बोले—

उस (सुमति) के उन वचनों को सुनकर, प्रसन्नता और विस्मय से गद्गद् होकर, भाग्यशाली, प्रसन्न चित्त, पिता ने अपने पुत्र से कहा—॥३३॥

पिता बोले—

हे वत्स ! तुम यह क्या कह रहो हो ? तुम्हें यह ज्ञान कहाँ से पैदा हो गया ? तुमको पहले किसने जड़ बुद्धि कर दिया था और इस समय यह विद्वता (किसने प्रदान की) ॥३४॥

क्या यह किसी देवता या मुनि के शाप का विकार था कि तुम्हारा वह तिरोभूत ज्ञान इस समय आविर्भूत हो गया है ॥३५॥

पुत्र बोला—

हे तात ! मेरे सुख और दुःख प्रदान करने वाले, इस वृत्तान्त को सुनिये । मैं इससे पूर्व जन्म में क्या था और इसके पश्चात् जो कुछ होना है ॥३६॥

मैं प्राचीन काल में आत्मज्ञानी परम विचारवान्, परमात्मानिष्ठ ब्राह्मण था जो आत्मविद्या सम्बन्धी विचारों में परमनिष्ठ था ॥३७॥

सततं योगयुक्तस्य सतताभ्याससङ्गमात्। सत्संयोगात् स्व-स्व भावाद्विचारविधिशोधनात् ॥३८
तस्मिन्नेव परा प्रीतिर्ममासीद्युंजतः सदा। आचार्यं तां च संप्राप्तः शिष्यसन्देहहृत्तमः ॥३९
ततः कालेन महता ऐकान्तिकमुपागतः। अज्ञानाकृष्ट सद्भावो यिपन्नश्च प्रमादतः ॥४०
उत्क्रान्तिकालादारभ्य स्मृतिलोपो न मेऽभवत्। यावदब्दं गतं चैव जन्मनां स्मृतिमागतम् ॥४१
पूर्वाभ्यासेन तेनैव सोऽहं तात जितेन्द्रियः। यतिष्यामि तथा कर्तुं न भविष्ये यथा पुनः ॥४२
ज्ञानदानफलं ह्येतद्यज्जातिस्मरणं मम। न ह्येतत् प्राप्यते तात त्रयीधर्माश्रितैर्नरैः ॥४३
सोऽहं पूर्वाश्रमादेव निष्ठाधर्ममुपाश्रितः। एकान्तित्वमुपागम्य यतिष्याम्यात्ममो क्षणे ॥४४
तद् ब्रूहि त्व महाभाग यत् ते सांशयिकं हृदि। एतावतापि ते प्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥४५

पक्षिण ऊचुः—

पिता प्राह ततः पुत्रं श्रद्दधत् तस्य तद् वचः। भवता यद् वयं पृष्टाः संसारग्रहणाश्रयम् ॥४६

पुत्र उवाच

श्रृणु तात यथा तत्त्वमनुभूतं मयाऽसकृत्। संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्य न विद्यते ॥४७

वहाँ पर निरन्तर योग से संयुक्त होकर, निरन्तर अभ्यास करते हुए, सज्जनों की संगति, अपने स्वभाव, एवं विचार विधि के परिशोधन से, ॥३८॥

उस समय सदा योग में संलग्न रहने के कारण उसी (परमात्मा) के प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो गया। मैंने आचार्यत्व प्राप्त कर लिया और भली प्रकार शिष्यों के संदेहों को दूर करने लगा ॥३९॥

इसके पश्चात् अति दीर्घ काल के अनन्तर मैं ऐकान्तिक भाव से रहने लगा। (उस समय ऐसा हुआ) कि मैं अज्ञान से प्रभावित हो गया एवं प्रमाद से मेरे सद्भाव विपन्नता को प्राप्त हो गये ॥४०॥

प्रलय काल से लेकर आज तक मेरी स्मृति का लोप नहीं हुआ है। (इधर) गत एक वर्ष से पुनः पूर्व जन्मों की स्मृति हो आयी है ॥४१॥

इसलिए हे तात! मैं जितेन्द्रिय होकर, उन्हीं पूर्व (जन्मों) के अभ्यास से ही, वैसा करने का प्रयास करूँगा कि पुनः जन्म ग्रहण न करूँ ॥४२॥

हे तात! यह जो स्मृति मैंने (पूर्व जन्मों के) संचित ज्ञान और दान से प्राप्त कर ली है, वह स्मृति वेदत्रयी सम्मत धर्म का पालन करने वाले, व्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥४३॥

इसलिए मैं प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम से ही धर्म का निष्ठापूर्वक पालन करूँगा और एकान्त स्थान पर जाकर अपने मोक्ष के लिए प्रयास करूँगा ॥४४॥

इसलिए हे! श्रीमन्, जो कुछ भी तुम्हारे हृदय में संदेह हो उसको कहो। जिससे कि (तुम्हारे हृदय में) इतनी प्रीति उत्पन्न करके मैं ऋण रहित हो सकूं ॥ ५॥

पक्षी बोले—

तत्पश्चात् उस (पुत्र के) उन वचनों को सुनकर पुत्र के प्रति श्रद्धा रखते हुए पिता बोले—तुमने जो हमसे संसार में जन्म प्राप्त करने के सम्बन्ध में पूछा है ॥४६॥

पुत्र बोला—

हे तात! सुनिये, जो तत्त्व मैंने अनेकों बार अनुभव किया है जिसके कारण इस संसार चक्र की अनश्वर स्थिति है ॥४७॥

सोऽहं वदामि ते सर्वं तवैवानुज्ञयापितः। उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥४८

ऊष्मा-प्रकुपितः काये तीव्र-वायु-समीरितः।
भिनत्ति मर्मस्थानानि दीप्यमानो निरिन्धनः ॥४९

उदानी नाम पवनस्ततश्चोर्ध्वं प्रवर्तते। भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥५०

ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा। दत्ताः स तस्य आह्लादमापदि प्रतिपद्यते ॥५१

अन्नानि येन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा। सोऽपि तृप्तिमवाप्नोति विनाप्यन्नेन वै तदा ॥५२

येनानृतानि नोक्तानि प्रीतिभेदः कृतो न च।
आस्तिकः श्रद्दधानश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥५३

देव-ब्राह्मण-पूजायां ये रता नोऽनसूयवः।शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराः सुखमृत्यवः ॥५४

यो न कामान्न संरम्भान्न द्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत्। यथोक्तकारी सौम्यश्च स सुखं मृत्युमृच्छति ॥५५

अवारिदायिनो दाहं क्षुधाञ्चानन्नदायिनः।
प्राप्नुवन्ति नराः काले तस्मिन् मृत्यावुपस्थिते ॥५६

शीतं जयन्ति धनदाः तापं चन्दनदायिनः। प्राणघ्नीं वेदना कष्टां ये चानुद्वेगकारिणः ॥५७

हे पिता, आपकी आज्ञा से वह सब, मैं तुमको कहता हूं। (जिस तत्त्व को) प्रलय काल से न तो किसी ने कहा है और न ही (आगे कभी) कहेगा ॥४८॥

तीव्र वायु के वेग से वृद्धि को प्राप्त, उष्मा शरीर के मर्म स्थानों को वेधती है जो इन्धन के अभाव में भी प्रज्वलित है ॥४९॥

तत्पश्चात् उदान नामक वायु ऊपर की ओर प्रवृत्त होता है। जल से भक्ष्य भुक्त पदार्थों की अधोगति का निरोध करता है ॥५०॥

तत्पश्चात् जो (व्यक्ति) अन्न, जल और रस (सोमादि) का दान करते हैं तब विपत्ति में भी वह (दान) उनको प्रसन्नता प्रदान करता है ॥५१॥

जिसने श्रद्धा से पवित्र चित्त से अन्नादि का दान किया है वह भी उस समय विना अन्न के ही तृप्ति को प्राप्त करते हैं ॥५२॥

जो व्यक्ति असत्य को नहीं बोलता है और स्नेह व्यवहार में भेदभाव नहीं करता है जो आस्तिक और श्रद्धावान् है वह सुख पूर्वक मृत्युप्राप्त करता है ॥५३॥

जो मनुष्य देवताओं और ब्राह्मणों की, ईर्ष्या रहित होकर पूजा करते हैं। उज्जवल कीर्ति, लज्जाशील, दानशील वे व्यक्ति भी सुखपूर्वक मृत्यु को प्राप्त करते हैं ॥५४॥

जो (व्यक्ति) कामवश, उत्तेजनावश अथवा द्वेष कारण धर्म का त्याग नहीं करते हैं वे (व्यक्ति) भी वचन प्रतिपालक और सौम्य हैं। वे भी सुखकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं ॥५५॥

(प्यासे व्यक्ति को) जल न देने वाले और तपन, भूखे को अन्न न देने वाले व्यक्ति क्षुधा (भूख) को मृत्यु के आने पर प्राप्त करते हैं ॥५६॥

धन दान करने वाले व्यक्ति (मृत्यु के पश्चात्) शीत पर विजय प्राप्त करते हैं तथा चन्दन दान करने वाले (वहाँ) ताप (उष्णता) पर विजय पाते हैं, और जो उद्वेगकारी नहीं होते, वे प्राणों का हनन करने वाली वेदना को भी सहन करने में समर्थ होते हैं ॥५७॥

मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महद्भयम् । वेदनाभिरुदग्राभिः प्रपीड्यन्तेऽधमा नराः ॥५८
कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्ति वै । ते मोहमृत्यवः सर्वे तथाऽन्ये वेदनिन्दकाः ॥५९
विभीषणाः पूतिगन्धाः कूटमुद्गरपाणयः । आगच्छन्ति दुरात्मानो यमस्य पुरुषास्तदा ॥६०
प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः । क्रन्दन्त्यविरतं सोऽथ भ्रातृमातृसुतानथ ॥६१

सास्य वागस्फुटा तात एकवर्णा विभाव्यते ।
दृष्टिश्च भ्राम्यते त्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम् ॥६२

ऊर्ध्वश्वासान्वितः सोऽथ दृष्टिभङ्गसमन्वितः । ततः सवेदनाविष्टस्तच्छरीरं विमुञ्चति ॥६३
वाटवग्रसारी तद्रूपं देहमन्यत् प्रपद्यते । तत् कर्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भवम् ॥

तत् प्रमाणवयोऽवस्था-संस्थानैः प्राग् भवं यथा ॥६४

ततो दूतो यमस्याशु पाशैर्बध्नाति दारुणैः । दण्डप्रहारसंभ्रान्तं कर्षते दक्षिणां दिशम् ॥६५
कुश-कण्टक-बल्मीक-शंकु-पाषाणकर्कशे । तथा प्रदीप्तज्वलने क्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ॥६६
प्रदीप्तादित्यतप्ते च दह्यमाने तदंशुभिः । कृष्यते यमदूतैश्च शिवासन्नाद भीषणैः ॥६७

मोह और अज्ञान प्रदान करने वाले (वहाँ पर) महान् भय प्राप्त करते हैं और ऐसे अधम व्यक्ति तीव्र वेदना से (वहाँ) पीड़ित किये जाते हैं ॥५८॥

झूठी गवाही देने वाले, असत्य बोलने वाले, असत्य (अनुचित) शिक्षा देने वाले और वेद की निन्दा करने वाले सभी (व्यक्ति) अत्यन्त कष्टकारक मृत्यु को प्राप्त करते हैं ॥५९॥

जब यमराज के भयंकर दुर्गन्ध युक्त हाथ में गदा लिये हुए, कठोर आत्मा वाले (निष्करुण) दूत आते हैं ॥६०।

(तो ऐसे व्यक्ति) उनको रास्ते में देखकर ही, काँपने लगते हैं, अपने भाई, माता, पुत्र आदि को (पुकार कर) निरन्तर चिल्लाते हैं ॥६१॥

हे तात ! (उस समय) उनकी वाणी से केवल एक शब्द ही सुनायी पड़ता है (तब उनकी) भय के कारण दृष्टि भ्रमित हो जाती है और (लम्बे-लम्बे) उच्छ्वासों से मुँह सूखने लगता है ॥६२॥

इस प्रकार उर्ध्वश्वासों से युक्त भ्रमित दृष्टि वाला (वह व्यक्ति) अत्यन्त कष्ट कारक वेदना से पीडित होकर उस शरीर को छोड़ता है ॥६३॥

तत्पश्चात् उसका वह स्वरूप और शरीर वायु तथा अन्य (पृथ्वी आदि) में विलीन हो जाता है। (मृत्यु के पश्चात् होने वाली) कर्मों से उत्पन्न यातना को सहन करने के लिए, माता पिता नहीं होते हैं उनके शरीर के प्रमाण, वय, अवस्था और आकार से जैसा कि पूर्व में था, वे यमदूत उसको शीघ्र ही कठोर बंधनों में बाँधते हैं और उस भयभीत पर डंडे से प्रहार करते हुए, दणिक्ष दिशा की ओर घसीटते हैं ॥६४॥६५॥

इस प्रकार, कुशाओं, कांटों, बाँबियों और कठोर शंखों तथा पत्थरों (पर घसीटते हुए वे (यमदूत) ॥६६॥

अपनी किरणों से, दीप्तिमान् आदित्य के द्वारा जिस (लोक) को अत्यन्त जलाया जा रहा है (वहाँ पर) अशुभ भयंकर शब्द करते हुए, यमदूतों के द्वारा (पापियों को) घसीटा जाता है— ॥६७॥

विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणः शिवाशतैः । प्रयाति दारुणे मार्गे पापकर्मा यमक्षयम् ।।६८
छत्रोपानत् प्रदातारो ये च वस्त्रप्रदा नराः । ते यान्ति मनुजा मार्गं तं सुखेन तथान्नदाः ।।६९
विमानैः सोज्ज्वलैर्यान्ति भूमिदानप्रदा नराः । एवं क्लेशाननुभवन्नवशः पापपीडितः ।।
नीयते द्वादशाहेन धर्मराजपुरं नरः ।।७०
कलेवरे दह्यमाने महान्तं दाहमृच्छति । ताड्यमाने तथैवार्तिं छिद्यमाने च दारुणाम् ।।७१
क्लिद्यमाने चिरतरं जन्तुर्दुःखमवाप्नुते । स्वेन कर्मविपाकेन देहान्तरगतोऽपि सन् ।।७२
तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह । यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते ।।७३
तैलाभ्यङ्गो बान्धवानानामङ्ग संवाहनं च यत् ।
तेन चाप्यायते जन्तुर्यच्चाश्नन्ति स्वबान्धवाः ।।७४
भूमौ स्वपद्भिर्नात्यर्थं क्लेशमाप्नोति बान्धवैः ।
दानं ददद्भिश्च तथा जन्तुराप्याय्यते मृतः ।।७५
नीयमानः स्वकं गेहं द्वादशाहं स पश्यति । उपभुक्ते तथा दत्तं तोयपिण्डादिकं भुवि ।।७६
द्वादशाहात् परं घोरमावासं भीषणाकृतिम् । याम्यं पश्यत्यथो जन्तुः कृष्यमाणः पुरंततः ।।७७

और सैंकड़ों भयंकर गीदड़ों के द्वारा बुरी तरह से घसीटकर खाये जाते हुए, पापी लोग यमदूतों के द्वारा यम के निवास में भेज दिये जाते हैं ।।६८।।

और जो व्यक्ति वस्त्र, छत्र, अन्न और जूतों आदि का दान करते हैं वे व्यक्ति उस मार्ग पर सुख पूर्वक जाते हैं। भूमिदान करने वाले व्यक्ति दीप्तिमान् विमानों से (स्वर्ग) को जाते हैं और वह (व्यक्ति) जो इस प्रकार के क्लेशों को पराधीन होकर सहन करता है और अपने पाप से ही पीडित होता है (वह) बारह दिनों के पश्चात् धर्मराज के दरबार में ले जाया जाता है ।।६९।।७०।।

(प्राणी अपने-अपने कर्मों के फलस्वरूप) शरीर के जलाये जाने पर बहुत तेज जलन का अनुभव करता है और मारने एवं छेदे जाने पर अति दारुण व्यथा को पाता है ।।७१।।

अपने कर्मों के फल के परिणाम स्वरूप दूसरा शरीर प्राप्त कर लेने पर भी प्राणी बहुत समय तक गलाये जाने पर दुःख प्राप्त करता है ।।७२।।

उनके वे बन्धु जो तिलों के साथ जल और पिण्डदान देते हैं उन्हीं को वे (वहाँ पर) खाते हैं ।।७३।।

बंधुजनों की तेल की मालिश एवं शरीर का दबाना (संवाहन) एवं बन्धुजन जो खाते हैं; इन सबसे वह प्राणी तृप्त होता है ।।७४।।

अपने बान्धवों के साथ भूमि पर सोते हुए भी अत्यन्त क्लेश का अनुभव नहीं करता है। दान देते हुओं के साथ मरने वाला प्राणी सुख प्राप्त करता है ।।७५।।

अपने घर पर ले जाया जाता हुआ, बारह दिनों तक वह देखता है और पृथ्वी पर अपने बन्धुओं द्वारा दिये गये जल और पिण्डादि का उपभोग करता है ।।७६।।

बारह दिनों के बाद भीषण आकृति वाले यम के निवास को देखता है, जहाँ वह अपने आपको (यमदूतों द्वारा) घसीटे जाते हुए देखता है ।।७७।।

गतमात्रोऽतिरक्ताक्षं भिन्नाञ्जनचयप्रभम् । मृत्युकालान्तकादीनां मध्ये पश्यति वै यमम् ।।७८
दंष्ट्राकरालवदनं भ्रुकुटीदारुणाकृतिम् । विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतं व्याधिशतैः प्रभुम् ।।७९
दण्डासक्तं महाबाहुं पाशहस्तं सुभैरवम् । तन्निर्दिष्टां ततो याति गतिं जन्तुः शुभाशुभाम् ।।८०
रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृती नरः । ब्रह्मघ्नो हत्यया दष्टो गोघ्नश्च पितृघातकः ।।८१
क्षेत्रदारापहारी च सीमा-निक्षेपहारकः । गुरुपत्न्यभिगामी च कन्यागामी तथैव च ।।८२
तस्य स्वरूपं गदतो रौरवस्य निशामय । योजनानां सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणतः ।।
जानुमात्रप्रमाणश्च ततः श्वभ्रः सुदुस्तरः ।।८३
तत्राङ्गारचयोपेतं कृत च धरणीसमम् । जाज्वल्यमानस्तीव्रेण तापिताङ्गार भूमिना ।।८४
तन्मध्ये पापकर्माणं विमुञ्चन्ति यमानुगाः । स दह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तत्र धावति ।।८५
पदे-पदे च पादोऽस्य शीर्यते जीर्यते पुनः । अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासं च गच्छति ।।८६
एवं सहस्रमुत्तीर्णो योजनानां विमुच्यते । ततोऽन्यत् पापशुद्ध्यर्थं तादृङ् निरयमृच्छति ।।८७

वहाँ जाकर (वह) अत्यन्त लाल आँखों वाले, काजल के ढेर की प्रभा के समान काले, मृत्यु काल आदि के मध्य में बैठे हुए, यमराज को देखता है ।।७८।।

(जो यमराज) भंयकर दाढ़ों से युक्त, टेढ़ी भृकुटी वाला, कठोर आकृति वाला, विकृत, भंयकर और टेढे मेढ़े मुख वाला, सैंकड़ों व्याधियों से घिरा हुआ ।।७९।।

उनके पास में ही डण्डा हाथ में लिए, पाश (बंधन) धारण करने वाले, विशाल भुजाओं वाले भैरव को देखा। जीव इसके द्वारा निर्दिष्ट शुभ अथवा अशुभ गति को प्राप्त करता है ।।८०।।

असत्य बोलने वाला, झूठी गवाही देने वाला व्यक्ति, रौरव (नरक) में जाता हैं। ब्राह्मण को मारने वाला, हत्या का दोषी गौ और पिता की हत्या वाला (किसी के) खेत का अपहरण करने वाला, किसी की पत्नी का अपहरण करने वाला, खेत की सीमा एवं किसी की धरोहर का अपहरण करने वाला, गुरु पत्नी तथा कन्या का गमन करने वाला (ये सब) रौरव नरक को प्राप्त करते हैं ।८१।।८२।।

(अब) मैं उस रौरव नरक के स्वरूप का वर्णन कर रहा हूं, तुम सुनो—वहं रौरव नरक दो हजार योजन विस्तार वाला है, जहाँ पर घुटनों तक गहरा, अति दुस्तर गड्ढा है— ।।८३।।

वहाँ पर पृथ्वी के समान अंगारों के समूह को एकत्र किया गया है। इस प्रकार वहाँ की भूमि अंगारों की प्रज्वलित अग्नि से तप्त रहती है ।।८४।।

उस (पृथ्वी) के बीच में पाप कर्म करने वाले, व्यक्ति को यमराज के अनुचर छोड़ देते हैं और वहाँ वह पापी अग्नि से जलता हुआ, इधर-उधर भागता है ।।८५।।

(अग्नि के ऊपर)बार-बार पैर रखने से, उनके पैर, जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं और वहाँ पर इस प्रकार से वह दिन रात पैदल चलता है ।।८६।।

इस प्रकार सहस्रों योजन चलने पर वह (पापी) मुक्त होता है । तत्पश्चात् अन्य प्रकार के पाप की शुद्धि के लिए (वह) उसी प्रकार के अन्य नरक को प्राप्त करता है ।।८७।।

ततः सर्वेषु निस्तीर्णः पापी तिर्यक्त्वमश्नुते । कृमिकीटपतङ्गेषु श्वापदे मशकादिषु ॥८८
गत्वा गजद्रुमाद्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च । अन्यासु चैव पापासु दुःखदासु च योनिषु ॥८९
मानुष्यं प्राप्य कुब्जो वा कुत्सितो वा मनोऽपि वा । चण्डाल-पुल्कसाद्यासु नरो योनिषु जायते ॥९०
अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः । ततश्चारोहणीं जातिं शूद्रवैश्यनृपादिकाम् ॥९१
विप्रदेवेन्द्रताञ्चापि कदाचिदवरोहणीम् । एवन्तु पापकर्माणो नरकेषु पतन्त्यधः ॥९२
यथा पुण्यकृतो यान्ति तन्मे निगदतः शृणु । ते यमेन विनिर्दिष्टां यान्ति पुण्यां गतिं नराः ॥९३
प्रगीतगन्धर्वगणैः प्रनृत्ताप्सरसां गणे । हार-नूपुर-माधुर्य्य-शोभितान्युत्तमानि च ॥९४

प्रयान्त्याशु-विमानानि नाना-दिव्य-स्रगुज्जयलाः ।
तस्माच्च प्रच्युता राज्ञामन्येषां च महात्मनाम् ॥९५
जायन्ते च कुले तत्र सद्वृत्तपरिपालका ।
भोगान् सम्प्राप्नुवन्त्यांग्र्यांस्ततो यान्त्यूर्ध्वमन्यथा ॥९६

तब उन सब (दशाओं) से पार उतरने पर पापी व्यक्ति पक्षी योनि को प्राप्त करता है। पुनः कृमि, पतंगा, पशु (और) मच्छर आदि की योनि में जन्म लेता है ॥८८॥

और हाथी, वृक्ष, गाय तथा अश्वादि की (योनि में) जाकर इसके अतिरिक्त भी अन्य पापियों की, परम दुःखदायक योनियों में (पापी व्यक्ति जन्म ग्रहण करता है) ॥८९॥

(और इस बीच) मनुष्य योनि में भी (वह अपने पाप कर्म के कारण) कुबड़ा अथवा बौना या कुत्सित (घृणित) कार्य करने वाला बनता है और चाण्डाल अथवा भंगी की मनुष्य योनि में जन्म ग्रहण करता है ॥९०॥

और अपने अवशिष्ट पापों किंवा पुण्यों से युक्त (वह व्यक्ति मृत्युलोक में भी नीचे से ऊपर की जाति) शूद्र, वैश्य अथवा राजा आदि की जाति को प्राप्त करता है ॥९१॥

(यम लोक से) नीचे की दशा में आने पर (व्यक्ति) कभी-कभी ब्राह्मण, देवेन्द्रत्व को भी प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार से पापी लोग नरक से नीचे (मृत्यु लोक में) जन्म करते हैं ॥९२॥

पुण्य कर्मा (व्यक्ति) किन (लोकों अथवा अवस्था) को प्राप्त करते हैं अब मैं उसको कहता हूं आप सुनिये। यमराज के द्वारा निर्दिष्ट वे व्यक्ति पुण्य गति को प्राप्त करते हैं ॥९३॥

जहाँ गन्धर्वों के समूह (हर समय) मधुर गान करते रहते हैं और हार, नूपुरों से शोभित अत्यन्त सुन्दर अप्सराएँ नाचती रहती हैं ॥९४॥

जहाँ पर हर समय नाना प्रकार की दिव्य मालाओं से देदीप्यमान विमान शीघ्रता से जाते रहते हैं (वह स्वर्ग) उस (स्वर्ग) से पतित (प्रच्युत) व्यक्ति राजाओं के एवं अन्य महात्माओं के कुल में उत्पन्न होते हैं जहाँ पर वे सदाचार का पालन करते हैं। वहां के उत्तम प्रकार के भोगों को प्राप्त करते हैं और उससे भी ऊपर (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं ॥९५-९६॥

अवरोहणीञ्च सम्प्राप्य पूर्ववद् यान्ति मानवाः । एतत्ते सर्वमाख्यातं यथा जन्तुर्विपद्यते ॥
अतः शृणुष्व विप्रर्षे यथा गर्भं प्रपद्यते ॥९७॥

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे पिता पुत्र संवादे मृत्युदशावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ।

निम्न गति को प्राप्त करके व्यक्ति पूर्व कथित (नरकादि) को प्राप्त करते हैं । हे ! विप्रर्षि, यह मैंने, सब प्राणी किस प्रकार अपने कर्मों के फलों को भोगता है, बताया है । इसके पश्चात् प्राणी गर्भ में कैसे जन्म ग्रहण करता है, कहता हूं आप (ध्यान पूर्वक) सुनिये ।

इस प्रकार मा० म० पु० में पिता-पुत्र-संवाद में मृत्यु दशा वर्णन दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकादशोऽध्यायः

पुत्र उवाच—

निषेकं मानवस्त्रीणां बीजं प्रोक्तं रजस्यथ । विमुक्तमात्रो नरकात् स्वर्गाद् वापि प्रपद्यते ॥१
तेनाभिभूतं तत् स्थैर्यं याति बीजद्वयं पितः । कललत्वं बुद्बुदत्वं ततः पेशित्वमेव च ॥२
पेश्यास्तथा यथा बीजादंकुरादिसमुद्भवः । अङ्गानां च तथोत्पत्तिः पञ्चानामनुभागशः ॥३
उपाङ्गान्यगुलीनेत्रनासास्य श्रवणानि च । प्ररोहं यान्ति चाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्यो नखादिकम् ॥४
त्वचि रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम् । समं समृद्धिमायाति तेनैवोद्भवकोशकः ॥५
नारिकेलफलं यद् वत्स कोशं वृद्धिमृच्छति । तद्वत् प्रयात्यसौ वृद्धिं स कोशोऽधोमुखः स्थितः ॥६

पुत्र बोला—

मनुष्य का बीज (वीर्य) जब स्त्री के परिपक्व रज से संयोग करता है तो स्वर्ग अथवा नरक के गिरे हुए प्राणी जन्म लेते हैं ॥१॥

हे पिता ! उससे अभिभूत होकर वे दोनों बीज स्थिरता को प्राप्त होते हैं । पहली अवस्था कलकल की है और दूसरी बुद्बुद् की तीसरी पेशियाँ बनने की । बच्चे के जन्म की प्रारम्भिक अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं ॥२॥

यह मांस पिण्ड वस्तुतः बहुत छोटा होता है बीज में जिस प्रकार अंकुर छिपा होता है उसी प्रकार उस पेषि में मनुष्य अणु.रूप में होता है । पञ्च तत्त्वों से युक्त उसी से (मनुष्य के) शरीर के विभिन्न अंगों की उत्पत्ति होती है ॥३॥

(उसी पेषि से) उत्पन्न शरीर के अंगों से उपांग जैसे नेत्र, अंगुली, नाक, कान उत्पन्न होते हैं ठीक उसी प्रकार अंगुली आदि से नाखून आदि उत्पन्न होते हैं ॥४॥

तत्पश्चात् (शरीर के अंगों में) त्वचा, रोम (बाल) उत्पन्न होते हैं । एक कोश से उत्पन्न ये सब चीजें समान रूप से वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥५॥

जिस प्रकार नारियल का फल, एक कोश से ही क्रमशः वृद्धि को प्राप्त करता है उसी प्रकार, वह कोश अधोमुख (नीचे को ओर मुख किये) हुए वृद्धि को प्राप्त करता है ॥६॥

तले तु जानुपार्श्वाभ्यां करौ न्यस्य स वर्द्धते । अंगुष्ठौ चोपरि न्यस्तौ जान्वोरग्रे तथांगुली ।।७
जानुपृष्ठे तथा नेत्रे जानुमध्ये च नासिका । स्फिचौ पार्ष्णिद्वयस्थे च बाहुजंघे बहिः स्थिते: ।।८
एवं वृद्धि क्रमाद्याति जन्तुः स्त्रीगर्भसंस्थितः । अन्यसत्त्वोदरे जन्तोर्यथारूपं तथा स्थितिः ।।९
काठिन्यमग्निना याति भुक्तपीतेन जीवति । पुण्यापुण्याश्रयमयी स्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ।।१०
नाडी चाप्यायनी नाम नाभ्यां तस्या निबध्यते । स्त्रीणां तथान्त्र शुषिरे सा निबद्धोपजायते ।।११
क्रामन्ति भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे यथा । तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैति वै ।।१२
स्मृतिं तत्र प्रयान्त्यस्य बह्वयः संसारभूमयः । ततो निर्वेदमायाति पीड्यमान इतस्ततः ।।१३
पुनर्नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात् । तथा तथा यतिष्यामि गर्भं नाप्स्याम्यहं यथा ।।१४
इति चिन्तयते स्मृत्वा जन्मदुःखशतानि वै । यानि पूर्वानुभूतानि दैवभूतानि यानि वै ।।१५
ततः कालक्रमाज्जन्तुः परिवर्तत्यधोमुखः । नवमे दशमे वापि मासि सञ्जायते ततः । १६
निष्क्राम्यमाणो वातेनप्राजापत्येन पीड्यते । निष्क्राम्यते च विलपन् हृदि दुःख-निपीडितः ।।१७

दोनों घुटनों के मूल के किनारों के ऊपर दोनों हाथों को रखकर अंगूठों को ऊपर और घुटनों के आगे अंगुलियों को रखकर (उदरस्थ वह जीव) वृद्धि प्राप्त करता है ।।७।।

घुटनों के पृष्ठ भाग में नेत्र, मध्य भाग में नाक नितम्ब पर दोनों एड़ियों को रखकर, अपनी भुजाओं को दोनों जाँघों के बाहर रखकर, ।।८।।

इस प्रकार, स्त्री के गर्भ में स्थित वह जीव (प्राणी) क्रम से वृद्धि को प्राप्त करता है । इसी प्रकार अन्य प्राणियों के पेट में भी, जैसा उनका रूप होता है, वैसी ही (उनकी) स्थिति होती है ।।९।।

(उदर की) अग्नि से इस (शरीर) में कठिनता आती है और माता द्वारा खाये और पिये को ही खा पीकर वह जीता है । इस प्रकार अपने पाप (और) पुण्य के आधार पर ही (प्राणी की) उदर में स्थिति रहती है ।।१०।।

(स्त्री की) आयनी नामक नाड़ी उस (शिशु) की नाभि से सम्बद्ध रहती है तथा स्त्रियों की आँत में वह बंधी रहती है और इस प्रकार वृद्धि प्राप्त करती है ।।११।।

जिस प्रकार से स्त्रियों द्वारा खाया, पिया (अन्न जलादि) उनके पेट में जाता है उसी प्रकार स्त्री को देह से उदरस्थ जीव भोजन प्राप्त करके वृद्धि को प्राप्त होता है ।।१२।।

(उस समग्र जीव को) अपने पूर्व जन्मों की बहुत सी बातें स्मरण आती रहती है (लेकिन उदर में रहते हुए इधर उधर से पीड़ा का अनुभव करते हुए, वह निर्वेद (वैराग्य) को प्राप्त होता है ।।१३।।

(और सोचता है) इस पेट से यदि मैं एक बार बाहर निकल जाऊँ तो पुनः इस प्रकार के पाप कर्म नहीं करूंगा और वैसे-वैसे कर्म करूंगा जिससे (मैं) पुनः गर्भ को प्राप्त न करूँ ।।१४।।

इस प्रकार से अपने पूर्व जन्म के अनुभूत सैकड़ों दुःखों को स्मरण करके जो भाग्य के परिणाम स्वरूप उसको भोगने पड़े (वह जीव) सोचता रहता है. ।।१५।।

तत्पश्चात् वह जीव काल क्रम से अधोमुख होकर, नवें अथवा दसवें मास में उत्पन्न हो जाता है ।।१६।।

(उदर से) निकलते हुए (वह जीव) सर्जनात्मक वायु के द्वारा पीड़ित किया जाता है, हृदय में अत्यन्त दुःख का अनुभव करके रोता हुआ, बाहर निकलता है ।।१७।।

निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते । प्राप्नोति चेतनां चासौ वायुस्पर्शसमन्वितः ॥१८
ततस्तं वैष्णवी माया समास्कन्दति मोहिनी । तया विमोहितात्माऽसौ ज्ञानभ्रंशमवाप्नुते ॥१९
भ्रष्टज्ञानोबालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते । ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि ॥२०
पुनश्च मरणं तद्वज्जन्म चाप्नोति मानवः । ततः संसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यते घटियन्त्रवत् ॥२१
कदाचित् स्वर्गमाप्नोति कदाचिन्निरयं नरः । निरयं चैव स्वर्गं च कदाचिच्च मृतोऽश्नुते ॥२२
कदाचिदत्रैव पुनर्जातः स्वं कर्मसोऽश्नुते । कदाचिद् भुक्तकर्मा च मृतः स्वल्पेन गच्छति ॥२३
कदाचिदल्पैश्च ततो जायतेऽत्र शुभाशुभैः । स्वर्लोके नरके वापिभुक्तप्रायो द्विजोत्तम ॥२४
नरकेषु महद्दुःखमेतद्यत् स्वर्गवासिनः । दृश्यन्ते तात मोदन्ते पात्यमानाश्च नारकाः ॥२५
स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः । प्रभृत्यहं पातिष्यामीत्येतन्मनसि वर्तते ॥२६
नरकाश्चैव संप्रेक्ष्य महद्दुःखमवाप्यते । एतां गतिमहं गन्तेत्यहर्निशमनिर्वृतः ॥२७
गर्भवासे महद्दुःखं जायमानस्य योनितः । जातस्य बालभावे च वृद्धत्वे दुःखमेव च ॥२८

उदर से निकलकर असह्य मूर्छा को प्राप्त हो जाता है पुनः (वायुमण्डल की) वायु का स्पर्श करके चेतना प्राप्त करता है ॥१८॥

उसके बाद उसके ऊपर वैष्णवी मोहिनी माया आक्रमण करती है (प्रभावित करती है) उसके द्वारा भ्रमित वह (जीव) पूर्व जन्म के ज्ञान से रहित हो जाता है ॥१९॥

ज्ञान से रहित, वह जीव बाद में बाल भाव को प्राप्त होता है। उसके बाद कुमारावस्था यौवन और वृद्धावस्था को क्रमशः प्राप्त करता है ॥२०॥

तत्पश्चात् मनुष्य मृत्यु (को प्राप्त करके) पूर्ववत् जन्म लेता है। इसी प्रकार से (वह) इस संसार चक्र में रहट के समान घूमता रहता है ॥२१॥

मनुष्य इस प्रकार कभी स्वर्ग कभी नरक प्राप्त करता है और कभी स्वर्ग, नरक को प्राप्त करते हुए मृत्युलोक को प्राप्त करता है। २२॥

कभी (मनुष्य) यहीं (मृत्युलोक में) जन्म लेकर, अपने कर्मों के फलों को भोगता है और कभी उन कर्मों का भोग करके अल्पकाल में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है ॥२३॥

हे द्विजोत्तम ! कभी अपने स्वल्प शुभ और अशुभ कर्मों को स्वर्ग या नरक में भोगकर प्रायः शीघ्र ही यहाँ (मृत्युलोक में) पैदा होता है ॥२४॥

हे तात ! नरक में स्थित (गिरे हुए) मनुष्यों को नरकों में महान् दुःख यह है कि यदि हम स्वर्ग वासी होते तो वहाँ का सुखमय जीवन देखते और आनन्द प्राप्त करते ॥२५॥

और स्वर्ग में भी (वहाँ के निवासियों को) महान् दुःख है क्योंकि यहाँ आने के समय से लेकर मैं (पुण्यों के फल समाप्त होने पर पुनः मृत्युलोक अथवा नरक में) गिरूँगा (यह विचार) उनके मन में रहता है ॥२६॥

नारकीय (मनुष्यों) को देखकर (वह) अत्यधिक दुःख का अनुभव करता है मैं भी इसी दशा को प्राप्त करूँगा, इस प्रकार वह दिन रात सोचता रहता है ॥२७॥

किसी भी योनि में जन्म लेने से, गर्भ में निवास के समय महान् दुःख होता है, उत्पन्न होने पर बचपन से बुढ़ापे तक दुःख ही दुःख है ॥२८॥

कामेर्ष्या-क्रोधसम्बन्धं यौवनं चातिदुःसहम् । दुःखप्राया वृद्धता च मरणे दुःखमुत्तमम् ।।२९
कृष्यमाणश्च याम्यैश्च नरकेषु च पात्यतः । पुनश्च गर्भो जन्माथ मरणं नरकस्तथा ।।३०
एवं संसारचक्रेऽस्मिञ्जन्तवो घटियन्त्रवत् । भ्राम्यन्ते प्राक्तनैर्बन्धैर्बद्धा बध्यन्ति चासकृत् ।।३१
नास्ति तात सुखं किञ्चिदत्र दुःखशताकुले । तस्मान्मोक्षाय यतता कथं सेव्या मया त्रयी ।।३२

इति श्री मार्कण्डेय महापुराणे पितापुत्रसंवादे गर्भस्थितिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ।

ईर्ष्या, काम और क्रोध के सम्बन्ध के कारण यौवन तो अत्यन्त दुःसह्य है । वार्द्धक भाव के दुःखों से तो मरने का दुःख ही श्रेष्ठ है ।।२९।।

पुनः यमराज के सेवकों द्वारा विभिन्न नरकों में, खींचकर, गिराये गये, पुनः गर्भ में जन्म और फिर मरण और (उसके बाद) नरक ।।३०।।

इस प्रकार जीव इस संसार चक्र में घटियन्त्र (रहट) के समान प्रकृति के बंधनों में बंधकर घूमते रहते हैं और अनेकों बार (इन बंधनों में बंधते हैं ।।३१।।

इस प्रकार हे ! तात, सैंकड़ों दुःखों से युक्त इस संसार में किञ्चित् भी सुख नहीं है । इसलिए मोक्ष के लिए प्रयत्न करता हुआ मैं इस वेदत्रयी का आचरण कैसे करू ँ ।।३२।।

इस प्रकार मा० म० पु० में पिता पुत्र के संवाद में जन्म-स्थिति संसार दुःख वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

द्वादशोऽध्यायः

पितोवाचः—

साधु वत्स त्वया ख्यातं संसारगहनं परम् । ज्ञानप्रदानसंभूतं समाश्रित्य महाफलम् ।।१
तत्र ते नारकाः सर्वे यथा वै रौरवस्तथा । वर्णितास्तान् समाचक्ष्व विस्तरेण महामते ।।२

पुत्र उवाचः—

रौरवस्ते समाख्यातः प्रथमं नरको मयो । महारौरवसंज्ञं तु शृणुष्ण नरकं पितः ।।३

पिता बोले—

बहुत ठीक वत्स ! तुमने संसार के परम गहन तत्त्व का व्याख्यान किया (तुम्हारे द्वारा) दिये गये इस ज्ञान से, महान् फल की प्राप्ति होगी ।।१।।

हे महामते ! जिन रौरव आदि नरकों का तुमने कथन किया है उन सब नरकों को पुनः विस्तार पूर्वक कहो ।।२।।

पुत्र बोला—

हे पिताजी ! मैंने पहले आपके सामने रौरवनरक का वर्णन किया । अब आप मनुष्यों को कँपाने वाले महारौरव नामक नरक का वर्णन सुनिये ।।३।।

अगम्यागमने ये च अभक्ष्यभक्षणे रताः। मित्रद्रोहकराश्चैव स्वामिविश्रंभघातकाः ॥४
प.दाररताश्चैव स्वदारपरिर्वाजिनः । मार्गभङ्गकरा ये च तडागारामभेदकाः ॥५
एतेऽन्ये च दुराचारा दह्यन्ते तत्र किंकरैः। योजनानां सहस्राणि सप्तपञ्च समन्ततः ॥
यत्र ताम्रमयीभूमिरधस्तस्याहुताशनः ॥६
तत् तापतप्ता सासर्वा प्रोद्यद् विद्युत् समप्रभा। विभात्यतिमहारौद्रा दर्शनस्पर्शनादिषु ॥७
तस्यां बद्धः कराभ्यां च पद्भ्यां चैव यमानुगैः।
मुच्यते पापकृन्मध्ये लुण्ठ्यमानः स गच्छति ॥८
काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा। भक्ष्यमाणस्तथा गृध्रैर्द्रुतं मार्गे विकृष्यते ॥९
दह्यमानः पितर्मातर्भ्रातस्तातेति चाकुलः। वदत्यसकृदुद्विग्नो न शान्तिमधिगच्छति ॥१०
एवं तस्मान्नरैर्मोक्षो ह्यतिक्रान्तैरवाप्यते। वर्षायुतायुतैः पापं यैः कृतं दुष्टबुद्धिभिः ॥११
तथान्यस्तु तमो नाम सोऽतिशीतः स्वभावतः। महारौरववद् दीर्घस्तथातितमसावृतः ॥१२
गोवधश्च कृतो येन भ्रातृणां ात एव च। अबलाबालघाती च नीयते शीतसंकरे ॥१३

(उस नरक में) व्यभिचार (अथवा वह स्त्री जिसके साथ मैथुन करना उचित न हो) करने वाले अभक्ष्य (न खाने योग्य) वस्तुओं के भक्षण में लगें हुए मित्र से द्रोह करने वाले, स्वामी के साथ विश्वासघात करने वाले ॥४॥

अपनी पत्नी को छोड़कर अन्य की स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाले; मार्गों को नष्ट करने वाले; तालाबों और आराम गृहों को विनष्ट करने वाले और (अन्य प्रकार के) बुरे आचरण करने वाले (व्यक्ति) वहाँ (यमराज) के सेवकों द्वारा (अग्नि में) जलाये जाते हैं। पाँच सात हजार योजनों तक (वह नरक) चारों ओर फैला हुआ है। वहाँ की भूमि (हर समय) अग्नि के जलते रहने से ताँबे के रंग की हो गयी है। ॥५-६॥

उस चन्द्रमा के समान आभा वाले अग्नि के ताप से अत्यन्त तपे हुए (वहाँ से) उठाये गये (उन मनुष्यों का दर्शन और स्पर्श आदि अत्यधिक भयंकर प्रतीत होता है ॥७॥

पापी के हाथ पैरों को बाँधकर, यमराज के अनुचर (वहाँ) छोड़ देते हैं और उसके बीच में वह घिसटता चलता है ॥८॥

(और वहाँ) कौवों, बगुलों, भेड़ियों, उल्लुओं, बिच्छू तथा मच्छरों द्वारा खाया जाता हुआ; गिद्धों के द्वारा मार्ग में शीघ्रतापूर्वक खींचा जाता है ॥९॥

जलते हुए (वह) हे पिता! हे माता! हे भाई! हे तात! इस प्रकार से अत्यन्त व्याकुल एवं उद्विग्न होकर निरन्तर चिल्लाता रहता है (और) शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता ॥१०॥

इस प्रकार पापों को करने वाले दुष्ट बुद्धि मनुष्य सैकड़ों वर्षों तक (इस महा रौरव) नरक को पार करके ही मोक्ष प्राप्त करते हैं ॥११॥

इसके अतिरिक्त तमस् (नामक) नरक भी होता है जो प्रकृति से बहुत शीतल होता है, वह भी महा रौरव के समान विशाल और अंधकार युक्त होता है ॥१२॥

जो (व्यक्ति) गाय का और भाईयों का वध करता है और अबलाओं एवं बालकों की हत्या करता है इस शीतयुक्त नरक में ले जाया जाता है ॥१३॥

शीतार्तास्तत्र धावन्ति नरास्तमसि दारुणे । परस्परं समासाद्य परिरभ्याश्रयन्ति च ॥१४
दन्तास्तेषां च भज्यन्ते शीतार्ति-परिकाम्पिताः। क्षुत्-तृष्णा-प्रबलास्तत्र तथैवान्येऽप्युपद्रवाः ॥१५
हिमखण्डवहो वायुर्भिनत्त्यस्थीनि दारुणः। मज्जासृग्गोलितं तस्मदश्नुवन्ति क्षुधान्विताः ॥१६
लेलिह्यमाना भ्राम्यन्ते परस्परसमागमे । एवं तत्रापि सुमहान् क्लेशस्तमसि मानवैः ॥१७
प्राप्यते ब्राह्मश्रेष्ठ यावद्दुष्कृतसंक्षयः । निकृन्तन इति ख्यातस्ततोऽन्यो नरकोत्तमः ॥१८
तस्मिन् कुलालचक्राणि भ्राम्यन्त्यविरतं पितः । अदृष्टं दृष्टवद् ब्रूयादश्रुतं श्रुतमेव च ॥१९
एकाक्षरं गुरुं यस्तु दुराचारो न मन्यते । न शृणोति गुरोर्वाक्यं शास्त्रवाक्यं तथैव च ॥२०
एते पापा दुराचारास्तत्र तैर्यमपूरुषैः । तेष्वारोप्य निकृत्यन्ते कालसूत्रेणमानवाः ॥२१
यमानुगांगुलिस्थेन आपादतलमस्तकम् । न चैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम ॥२२
छिन्नानि तेषां शतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्ति च । एवं वर्षसहस्राणि छिद्यन्ते पापकर्मिणः ॥२३
तावद् यावदशेषं वै तत् पापं हि क्षयं गतम् । अप्रतिष्ठं च नरकं शृणुष्व गदतो मम ॥२४

वहाँ पर गहन अंधकार में शीत से व्याकुल होकर मनुष्य (इधर-उधर) दौड़ते हैं तथा शीत के कारण एक दूसरे से लिपट कर रहते हैं ॥१४॥

शीत से अत्यधिक पीड़ित होने के कारण वहाँ उनके दाँत किटकिटाने लगते हैं (इसके अतिरिक्त) वहाँ भूख प्यास आदि अन्य भी प्रबल उपद्रव है ॥१५॥

बर्फीली कठोर हवायें (वहाँ पर) अस्थियों का भेदन करने को तत्पर रहती हैं। क्षुधा से पीड़ित होकर (वहाँ पर लोग, टपकती हुई मज्जा और रक्तादि को खाते हैं ॥१६॥

एक दूसरे से लिपटकर (परस्पर शरीर) चाटते हुए घूमते रहते हैं। उस प्रकार मनुष्य को उस तम (नामक नरक) में भी महान् कष्ट होता है ॥१७॥

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! नरकों में भी महान् एक निकृन्तन नाम का नरक है इसमें भी जब तक उनके पापकर्म नष्ट नहीं हो जाते वास करना पड़ता है ॥१८॥

हे पिता वहाँ पर कुलाल ! चक्र, निरन्तर घूमते रहते हैं। (जो व्यक्ति) अदृष्ट (बिना देखे हुए) को देखे हुए के समान कहता है बिना सुने हुए के समान (असत्य) कहता है ॥१९॥

और जो दुराचारी एकाक्षर (ओम्) को गुरु नहीं मानता है, शास्त्र तथा गुरु के वाक्यों को नहीं सुनता है ॥२०॥

ऐसे पापी (और) दुराचारी व्यक्ति यमदूतों के द्वारा कुलाल चक्र पर चढ़ाकर उस निकृन्तन नरक में, काल सूत्र से काटे जाते हैं ॥२१॥

हे द्विज श्रेष्ठ ! यमराज के अनुचरों के द्वारा पैरों से लेकर मस्तक तक अंगुली रखने से भी उनके प्राण नहीं निकलते हैं ॥२२॥

(वहाँ पर) उनका (शरीर सैकड़ों टुकड़ों में छिन्न-भिन्न हो जाता है और फिर एक हो जाता है। इस प्रकार से पापकर्म करने वाले (व्यक्ति) सहस्रों वर्षों तक खण्ड-खण्ड होते रहते हैं ॥२३॥

जब तक कि उनके समस्त पाप नष्ट नहीं हो जाते हैं (उनकी इसी प्रकार नरक में दुर्दशा होती रहती हैं) तत्पश्चात् मेरे द्वारा अप्रतिष्ठ नामक नरक को सुनिये ॥२४॥

यत्रस्थैर्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते । स्वधर्मरतविप्रा विघ्नं यस्तु समाचरेत् ॥२५
स बद्धैर्दारुणैः पाशैर्नीयते चक्रसंकरैः । ताःयेव तत्र चक्राणि घटियंत्राणि चान्यतः । २६
दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्मकृतां नृणाम् । चक्रेष्वारोपिताः केचिद् भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः ॥२७
यावद्वर्षसहस्राणि न तेषां स्थितिरन्तरा । घटीयन्त्रेषु चैवान्यो बद्धस्तोये यथा घटी ॥२८
भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुदगिरन्तः पुनः पुनः । अन्त्रैर्मुखे विनिष्क्रान्तैर्नेत्रैर्ग्रावलम्बिभिः ॥२९
दुःखानि ते प्राप्नुवन्ति यान्यसह्यानि जन्तुभिः । असि-पत्रवनं नाम नरकं शृणु चापरम् ॥३०
योजनानां सहस्रं यो ज्वलदग्न्यास्तृतावनिः । ब्रह्मचारिव्रतानां च तपसां विघ्नमाचरेत् ॥३१
असि पत्र वनं यान्ति ये सदोद्वेग कारिणः । तप्ताः सूर्य करैश्चण्डैर्यत्रातीव सुदारुणैः ॥३२
प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः । तन्मध्ये च वनं रम्यं स्निग्धपत्रं विभाव्यते ॥३३
पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम । श्वानश्च तत्र सबलाः स्वनन्त्ययुतशोऽभितः ॥३४
महावक्त्रा महादंष्ट्रा व्याघ्रा इव भयानकाः । ततस्तद् वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः ॥३५

जिसमें दारकीम (मनुष्य असह्य कष्टों का अनुभव करते हैं। (जो व्यक्ति) अपने धर्म का पालन करते हुए अपने कर्त्तव्य में संलग्न ब्राह्मणों का विघ्न उपस्थित करते हैं ॥२५॥

वे व्यक्ति) कठोर पाश के बंधनों में बंधकर, चक्रों के समूहों में ले जाये जाते हैं। वहाँ पर चक्र घटि यन्त्र के समान घूमते रहते हैं) ॥२६॥

दुःखों के कारण भूत, पाप कर्म करने वाले व्यक्तियों को उन चक्रों से बाँध दिया जाता है (चक्रों से बंधकर) कुछ व्यक्ति घूमने लगते हैं ॥२७॥

(वे चक्र) सहस्रों वर्षों के बाद भी नहीं रुकते हैं। जिस प्रकार घटि-यन्त्र में बंधी हुई घटिका (बार-बार) जल में जाती है। उसी प्रकार उससे बंधा हुआ व्यक्ति बार-बार जल में आता जाता रहता है ॥२८॥

(चक्र में) घूमते हुए, मनुष्य बार-बार रक्त की उल्टी करते रहते हैं। मुंह से आँतें (बाहर) निकल आतीं हैं और आगे निकले नेत्रों को छूती रहती हैं ॥२९।

इस प्रकार वे पापी प्राणी (अप्रतिष्ठ नरक में) असह्य दु.खों को प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात् अन्य असिपत्र नरक का (वृतान्त) सुनो ॥ ०।

(जहाँ पर) सैकड़ों योजन तक पृथ्वी पर प्रज्वलित अग्नि फैली हुई है। (जो व्यक्ति) ब्रह्मचारियों और तपस्वियों के (कार्यों में) विघ्न (उपस्थित) करता है ।३१।

और आतंक उत्पन्न करने वाले (पापी) सदैव असिपत्र नरक में जाते हैं। अति कष्ट देने वाली सूर्य की प्रचण्ड किरणों से अत्यन्त तप्त रहते हैं ॥३२।)

वहाँ पर सदैव नरकवासी प्राणी गिरा दिये जाते हैं। उसके बीच में रमणीय, स्निग्ध पत्तों वाला वन सुशोभित रहता है ॥३३॥

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! वहाँ पत्ते तलवार की धार के समान तीक्ष्ण होते हैं और सैकड़ों बलशाली कुत्ते वहाँ पर गुर्राते रहते हैं ॥३४॥

बड़े-बड़े मुख एवं बड़ी-बड़ी दाढ़ों वाले वे कुत्ते) व्याघ्र के समान भयानक होते हैं। तत्पश्चात् अपने सामने उस वन की शीतल छाया को देखकर, ॥३५॥

प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तृट्ताप परिपीडिताः । हा मातर्हा तात इति क्रन्दन्तोऽतीवदुःखिताः ।।३६
दह्यमानाङ्घ्रियुगला धरणीस्थेन वह्निना । तेषां गतानां तत्रासिपत्रपाती समीरणः ।।३७
प्रवाति तेन पात्यन्ते तेषां खड्गास्तथोपरि । ततः पतन्ति ते भूमौ ज्वलत् पावक-संचये ।।३८
लेलिह्यमाने चातीव व्याप्ताशेषमहीतले । सारमेयास्ततः शीघ्रं शातयन्ति शरीरतः ।।३९
तेषामङ्गानि रुदतां त्वचश्चातीवभीषणाः । असिपत्रवनं तात मयैतत् कीर्तितं तव ।।४०
अतः परं भीमतरं तप्तकुम्भं निबोध मे । समन्ततस्तप्तकुम्भा वह्निज्वालासमावृताः ।।४१
ज्वलदग्निचयोद् तप्तास्तैलायश्चूर्णपूरिताः । तेषु दुष्कृतकर्माणो याम्यैः क्षिप्तास्त्वधोमुखाः ।।४२

दूषयेद् धर्मशास्त्राणि ये चान्ये तीर्थदूषकाः ।
भुक्तभोगां तु यो नारीमिष्यमाणां प्रियां शुभाम् ।।४३

अदुष्टामपि दोषेण त्यजते मूढचेतनः । ते समानीय पच्यन्ते लोहकुम्भेषु शीघ्रतः ।।४४

क्वाथ्यन्ते विस्फुटद्गात्रा ज्वलन् मज्जाजलाविलाः ।
स्फुटत् कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमाना विभीषणैः ।।४५

हा मात ! हा तात ! इस प्रकार क्रन्दन करते हुए, अत्यन्त दुःखी प्यास की तपन से अत्यधिक पीड़ित होकर, हे माता ! हे पिता ! पुकारते हुए अति दुःखी होते हैं ।३६।।

और पृथ्वी पर स्थित अग्नि से जलते हुए दोनों पैरों से (वहाँ जाते हैं) उनके वहाँ जाने पर तलवार के समान तीक्ष्ण पत्तियाँ वायु से (उनके ऊपर) गिरती हैं ।।३७।।

हवा से गिरी हुई वे पत्तियाँ, उनके ऊपर तलवार के समान गिरती हैं । (उनके गिरने से) वे (पापी) भूमि पर, जलती हुई अग्नि के समूह पर गिर पड़ते हैं ।।३८।।

और पीड़ा से उस समस्त भूमण्डल पर लोट पोट होते हुए (उनको) (वे ही भयंकर) कुत्ते शीघ्र ही शरीर से काटते हैं ।।३९।।

अत्यन्त भयंकर वे कुत्ते) रोते हुए (उन पापियों) के अंगों और त्वचा को (काटते हैं) हे ! तात, यह असि पत्र वन (नामका) नरक मैंने तुम्हें बताया है ।।४०।।

इसके बाद उससे भी भयंकर तप्त कुम्भ नामक नरक को मुझसे जानो । जहाँ पर तपे हुए, अग्नि की ज्वालाओं से युक्त घड़े होते हैं ।।४१।।

प्रज्वलित अग्नि के समूह से पकाये गये तेल को भरे हुए लोहे के चूर्ण में उन बुरे कर्म करने वाले, पापियों को यम के दूत नीचे को मुख करके डाल देते हैं ।।४२।।

जो धर्मशास्त्रों एवं तीर्थों की निन्दा करते हैं और जो अपनी प्रिया शुभ लक्षणों वाली नारी का भोग करके बिना किसी दोष के मूर्खता वश त्याग देते हैं । वे (व्यक्ति) लोहे के घड़ों में लाकर डाल दिये जाते हैं (और) पकाये जाते हैं ।।४३।।४४।।

उनका शरीर (उसमें) फट जाता है और उबलता है । उनकी मांस, मज्जा जलती है और उनका कपाल फट जाता है नेत्र और हड्डियाँ भयंकर रूप से नष्ट हो जाती हैं ।।४५।।

गृध्रैरुत्पाट्य मुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव वेगितैः । पुनः सिमसिमायन्ते तैलेनैक्यं व्रज यन्ति च ॥४६
द्रवीभूतैः शिरोगात्रस्नायुमांसत्वग स्थिभिः । ततो याम्यैर्भटैराशु दर्वीघट्टनघट्टिताः ॥४७
कृतावर्ते महातैले मथ्यन्ते पापकर्मिणः । एष ते विस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भौ मया पितः ॥४८

इति श्री मार्कण्डेय महापुराणे पितापुत्रसंवादे महारौरवादि नरकाख्यान कथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।

(उसके बाद) गिद्ध उनके शरीर को वेग पूर्वक फाड़ डालते हैं और छोड़ देते हैं। तत्पश्चात् पसीज कर के तेल से एकाकार हो जाते हैं ॥४६॥

उसके शरीर के सभी अंग सिर, स्नायु, मांस, त्वचा आदि द्रव रूप धारण कर लेते हैं। इसके पश्चात् यम के दूत शीघ्र ही चमचों से घोट देते हैं। इस प्रकार घूमते हुए चक्राकार तेल के कुण्ड में वे पापी मथे जाते हैं। यह मैंने विस्तार से तप्त कुम्भ (नरक) का वर्णन तुम्हारे समक्ष किया है ॥४७॥४८॥

इस प्रकार मा० म० पु० में पिता-पुत्र-संवाद में महा रौरव आदि नरकों
॥ का आख्यान कथन नामक बारहवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

पुत्र उवाच—

अहं वैश्यकुले जातो जन्मन्यस्मात्तु सप्तमे । समतीते गवां रोधं निपाने कृतवान् पुरा ॥१
विपाकात् कर्मणस्तस्य नरकं भृशदारुणम् । सम्प्राप्तोऽग्निशिखा घोरमयोमुखखगाकुलम् ॥२
यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवबाहोद्भूतकर्दमम् । विकृष्यमाण दुष्कर्मि तन्निपातरवाकुलम् ॥३
पात्यमानस्य मे तत्र साग्रं वर्षशतं गतम् । महातापार्तितप्तस्य तृष्णादाहान्वितस्य च ॥४
तत्राह्लादकरः सद्यः पवनः सुखशीतलः । करम्भबालुकाकुम्भमध्यस्थे वै समागतः ॥५

पुत्र बोला —

बहुत प्राचीन काल में मैंने इस जन्म से पूर्व, सातवें जन्म में, एक वैश्य कुल में जन्म लिया और जल पीने के लिए जाती हुई गायों को रोका ॥१॥

उस अत्यन्त कठोर कर्म के फलस्वरूप मैंने अग्नि शिखाओं से युक्त तीक्ष्ण लोहे के मुख वाले पक्षियों से आकुल नरक को प्राप्त किया ॥२॥

जहाँ पर कुकर्मियों को खून के बहने से उत्पन्न कीचड़ में यन्त्रों से पीड़ित करते हुए, खींचा जा रहा था और वह उस (कीचड़) में गिरने के शब्द से युक्त था ॥३॥

अग्नि के भयंकर ताप से ताप, जलने के कारण प्यास से पीड़ित मुझे वहाँ गिरे हुए सौ वर्ष बीत गये ॥४॥

(तो एक बार) मानो कीचड़ और बालु का मय जल कुम्भों के बीच से, आनन्ददायक, सुख देने वाला शी तल, हवा का झोंका आया ॥५॥

अकस्मादेव भो तात नररत्नं समागतम् । तत् सम्पर्कादशेषाणां नाभवद्यातनानृणाम् ।।
मम चापि यथा स्वर्गे स्वर्गिणां निर्वृतिः परा ।।६
किमेतदिति चाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणैः । दृष्टमस्माभिरासन्नं नररत्नमनुत्तमम् ।।७
याम्यश्च पुरुषो घोरो दण्डहस्तोल्लसत् प्रभः । पुरतो दशर्यन् मार्गमित एहीति च ब्रुवन् ।।८
ततस्ते जन्तवः सर्वे मत्वा तद्दर्शनात् सुखम् । ऊचुः प्राञ्जलयो भूपं क्षणमात्रं स्थितो भव ।।९
त्वद्गात्रसंगीपवनो ह्यस्माकं सुखकारकः । ततोऽसौ नरकाभ्याशे उपविष्टः कृपान्वितः ।।१०
पुरुष स तदा दृष्ट्वा यातनाशतसंकुलम् । नरकं प्राह तं याम्यं किङ्करं कृपयान्वितः ।।११
पुरुष उवाच—
भो याम्यपुरुषाचक्ष्व किं मया दुष्कृतं कृतम् । येनेदं यातनाभीमं प्राप्तोऽस्मि नरकं परम् ।।१२
विपश्चिदिति विख्यातो जनकानामहं कुले । जातो विदेहविषये सम्यङ् मनुजपालकः ।।१३
चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मस्थं कृत्वा संरक्षितं मया । धर्मतो धर्मकल्पेन मनुनाऽत्र यथा पुरा ।।१४
यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्मतः पालिता मही । नोत्सृष्टश्चैव संग्रामो नातिथिर्विमुखी गतः ।।१५

उन (झोके) के सम्पर्क से हम सब वहाँ स्थित मनुष्यों को (पूर्व) यातना का अनुभव न हुआ। मैंने भी जिस प्रकार स्वर्ग में स्वर्गवासियों को परम शान्ति प्राप्त होती है (वैसी शान्ति अनुभव की) ।।६।।

यह क्या है ? इस संसार विस्मय से फैले नेत्रों से प्रसन्नता (का अनुभव करते हुए) हमने, अपने पास एक उत्तम नर रूपी रत्न को देखा ।।७।।

(जिनको) वज्र के समान आभा वाले, दण्ड को हाथ में धारण किये, भंयकर यमदूत, आगे (नरक का) मार्ग दिखाते हुए, आइये इस प्रकार कह रहे थे ।।८।।

तब वे नारकीय प्राणी उन्हों के दर्शनों से (हमको) इस सुख की प्राप्ति हुई है, ऐसा मानकर राजा से हाथ जोड़कर बोले— हे ! पुण्यात्मा, यहाँ क्षण मात्र के लिए और ठहर जाइये ।।९।।

आपके शरीर से स्पर्श किया हुआ वायु हमारे लिए सुख प्रदान करने वाला है। तत्पश्चात् वह कृपालु (राजा) उनके (नारकीयों) समीप में ही बैठ गया ।।१०।।

तत्पश्चात् उस सैंकड़ों यातनाओं से संकुल नरक को देखकर वह पुरुष (राजा) के कृपालु सेवक से बोला ।।११।।

पुरुष बोला—

हे ! यम सेवक पुरुष (कृपया) बताइये कि मैंने ऐसा क्या दुष्कर्म किया, जिसके कारण मुझे यातनाओं से भंयकर यह नरक (देखने को) मिला है ।।१२।।

विदेह के राजा जनक के कुल में उत्पन्न होकर मैं, विपश्चित् नाम से प्रसिद्ध, प्रजा जनों का भली भाँति पालन करता था ।।१३।।

अपने-अपने धर्म का पालन करने वाले चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) की मैंने भली प्रकार धैर्य पूर्वक रक्षा की, जिस प्रकार धर्मावतार मनु ने प्राचीन काल में रक्षा की थी ।।१४।।

मैंने (अपने जीवन में) बहुत से यज्ञ किये और धर्म पूर्वक पृथ्वी का पालन किया। कभी संग्राम से पलायन नहीं किया और नहीं अतिथि कभी घर से विमुख हुआ ।।१५।।

पितृदेवर्षिभृत्याश्च न चापचरिता मया। महातापार्तितप्तस्य तृष्णादाहार्दितस्य च ।।१६
सर्वस्य जीवभूतस्य कृतं त्राणं सदा मया। कृता स्पृहा च न मया परस्त्री विभवादिषु ।।।१७
पर्वकालेषु पितरस्तिथिकालेषु देवताः। पुरुषं स्वयमायान्ति निपानमिव धेनवः ।।१८
यतस्ते विमुखा यान्ति निःस्वस्य गृहमेधिनः। तस्मादिष्टश्च पूर्तश्च धर्मौ द्वावपि नश्यतः ।।१९
पितृनिश्वासविध्वस्तं सप्तजन्मार्जितं धनम्। त्रिजन्मप्रभवं देवो निश्वासो हन्त्यसंशयम् ।।२०
तस्माद् दैवे च पित्र्ये च नित्यमेव हितोऽभवम्। सोऽहं कथमिमं प्राप्तो नरकं भृशदारुणम् ।।२१

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे पितापुत्रसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः।

पितर, देवता, ऋषि और भृत्यों के साथ मैंने कभी दुर्व्यवहार नहीं किया। महा ताप की वेदना से तप्त और तृष्णा के दाह से पीड़ित सम्पूर्ण जीवधारियों की मैंने सदा रक्षा की। परस्त्री तथा परधन की (मैंने) कभी इच्छा नहीं की ।।१६-१७।।

पर्वों (अमावस्या, पूर्णमासी आदि) के समय पितर लोग तथा (उचित) तिथियों में देवता लोग, जल पीने के लिए जल-कुण्ड पर आयी धेनुओं के समान (याजक) पुरुष के पास स्वयं उपस्थित होते थे ।।१८।।

जिस निर्धन गृहस्थ के घर से वे (पितर, देवता, अतिथि आदि) लौट जाते हैं उस के इष्ट और पूर्त (यज्ञ विशेष) दोनों ही धर्म नष्ट हो जाते हैं ।।१९।।

निःसंदेह पितरों के निःश्वांस से सात जन्मों का अर्जित (पुण्य) धन नष्ट हो जाता है और देवों के निःश्वांस से तीन जन्मों का उत्पन्न किया हुआ (पुण्य) नष्ट हो जाता है ।।२०।।

इसलिए मैं हमेशा देवों तथा पितरों के हित साधन में सावधान रहा तो फिर मैंने इस अत्यन्त कठोर नरक को क्यों प्राप्त किया है ?।।२१।।

इस प्रकार मा० म० पु० में पिता-पुत्र-संवाद में सुमति नामक पुत्र का नरक गमन का क्लेश वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्दशोऽध्यायः

पुत्र उवाच—

इति पृष्टस्तदा तेन शृण्वतां नो महात्मना। उवाच पुरुषो याम्यो घोरोऽपि प्रश्रितं वचः ।।१

यमकिङ्कर उवाच—

महाराज यथाऽऽत्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः। किन्तु स्वल्पं कृतं पापं भवता स्मारयामि तत् ।।२

पुत्र बोला—

हमारे सुनते हुए उस महापुरुष के द्वारा ऐसा पूछने पर भयंकर यमदूत ने भी नम्र शब्दों में उत्तर दिया ।।१।।

यमदूत बोला—

हे राजन्! जैसा कि आपने कहा है, इसमें किञ्चित् भी संदेह नहीं है, किन्तु आपने एक छोटा सा पाप किया था उसकी मैं याद दिलाता हूं ।।२।।

वैदर्भी तव या पत्नी पीवरी नाम नामतः । ऋतुमत्या ऋतुर्वन्ध्यस्त्वया तस्याः कृतः पुरा ।।३
सुशोभनायां कैकेय्यामासक्तेन ततो भवान् । ऋतुव्यतिक्रमात् प्राप्तो नरकं घोरमीदृशम् ।।४
होमकाले यथा वह्निराज्यपातमवेक्षते । ऋतौ प्रजापतिस्तद्वद् बीजपातमवेक्षते ।।५
यस्तमुल्लंघ्य धर्मात्मा कामेष्वासक्तिमान् भवेत् ।
स तु पित्र्याद्ऋणात् पापमवाप्य नरकं पतेत् ।।६
एतावदेव ते पापं नान्यत् किञ्चन विद्यते । तथेह्यागच्छ पुण्यानामुपभोगाय पार्थिव ।।
एतच्छ्रुत्वा तु राजर्षिः कृपयाजनकोऽब्रवीत् ।।७

राजोवाच—

यास्यामि देवानुचर यत्र त्वं मां नयिष्यसि । किञ्चित् पृच्छामि तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ।।८
वज्रतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः । पुनः पुनश्च नेत्राणि तद्वदेषां भवन्ति हि ।।९
किं कर्म कृतवन्तश्च कथयैतज्जुगुप्सितम् । हरन्त्येषां तथा जिह्वां जायमानां पुनर्नवाम् ।।१०
करपत्रेण पाटचन्ते कस्मादेतेऽतिदुःखिताः । करम्भवालुकास्थाश्च तथैते क्वाथ तैलगाः ।।११

विदर्भराज की पुत्री, पीवरी नामक जो आपकी पत्नी थी, प्राचीन काल में (एक बार) आपने उसके ऋतुमती होने पर ऋतुदान नहीं दिया था। (उसको ऋतुबन्ध्य किया था) ।।३।।

उस समय, आप, अत्यन्त सुन्दर केकय राजा की पुत्री में आसक्त थे अतः इस ऋतु के व्यतिक्रम में आपको यह भयंकर नरक प्राप्त हुआ है ।।४।।

यज्ञ के समय, जिस प्रकार अग्नि घृताहुति की अपेक्षा करती है उसी प्रकार ऋतुकाल में प्रजापति बीज (वीर्याधान) की प्रतीक्षा करती है ।।५।।

जो धर्मात्मा इस क्रम का उल्लंघन करके, कामासक्त होता है, वह पितृऋण के कारण, पाप को प्राप्त करके, नरक में गिरता है ।।६।।

आपका केवल इतना ही पाप था, अन्य (किसी प्रकार का भी पाप) नहीं था। इसलिए हे राजन् ! अब आइये (अपने) पुण्य कर्मों के उपभोग के लिए (पुण्य लोक) में चलिये।

यह सुनकर जनक वंश में उत्पन्न वह राजर्षि नम्रता पूर्वक बोला—।।७।।

राजा बोला—

हे ! देवताओं के सेवक, तुम जहाँ मुझे ले जाओगे मैं वहीं जाऊँगा। (किन्तु) मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूं (उसका) यथोचित उत्तर देने में तुम समर्थ हो ।।८।।

वज्र के समान चोंच वाले, ये कौवे लोगों के नेत्रों का नाश कर रहे हैं और वे नेत्र बार-बार उत्पन्न हो रहे हैं ।।९।।

और बताओ इन्होंने क्या ऐसा घृणित कार्य किया है कि कौए इनकी जीभ का नाश कर रहे हैं और वह बार बार पुनः उत्पन्न हो रही हैं ।।१०।।

अत्यधिक पीड़ित इनको किस कारण आरे से चीरा जा रहा है ? (और ये अन्य मनुष्य) कीचड़ में और (गर्म) वालू पर तथा पकते तेल में (क्यों डाले जा रहे हैं ?) ।।११।।

अयोमुखैः खगैश्चैव कृष्यन्ते किं विधा वद । विश्लिष्टदेहबन्धार्ति-महारावविराविणः ॥१२
अयश्चञ्चुनिपातेन सर्वाङ्गक्षतविक्षताः । किमेतेऽनिष्टकर्तारस्तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः ॥१३
एताश्चान्याश्च दृश्यन्ते यातनाः पापकर्मिणाम् । येन कर्मविपाकेन तन्ममोद्देशतो वद ॥१४

यमकिङ्कर उवाच—

यन्मां पृच्छसि भूपाल पापकर्मफलोदयम् । तत् तेऽहं संप्रवक्ष्यामि संक्षेपेण यथातथम् ॥१५
पुण्यापुण्ये हि पुरुषः पर्यायेण समश्नुते । भुञ्जतश्च क्षयं याति पापंपुण्यमथापि वा ॥१६
न तु भोगादृते पुण्यं पापं वा कर्ममानवः । परित्यजति भोगाच्च पुण्यापुण्ये निबोध मे ॥१७
दुर्भिक्षादेव दुर्भिक्षं क्लेशात् क्लेशं भयाद्भयम् । मृतेभ्यः प्रमृतायान्ति दरिद्राः पापकर्मिणः ॥१८

गतिं नानाविधां यान्ति जन्तवः कर्मबन्धनात् ।
उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात् स्वर्गं सुखात् सुखम् ॥१९

श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च धनदाः शुभ कारिणः । व्याघ्रकुञ्जरदुर्गाणि सर्पचौरभयानि तु ॥२०
हताः पापेन गच्छन्ति पापिनः किमतः परम् । सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः ॥२१

लोह मुखी ये पक्षी (इन मनुष्यों को) इस प्रकार क्यों खींच रहे हैं ? जिससे पीड़ा युक्त आवाज करते हुए, इन दुःखियों के शरीर के बन्धनों को विच्छिन्न करके, ॥१२॥

(अपनी) लोहे की चोंच से (ये पक्षी) इन पीड़ितों के सभी अंगों को क्षत विक्षत क्यों कर रहे हैं ? अनिष्ट कार्यों के करने वाले ये व्यक्ति, दिन रात, क्यों पीड़ित किये जा रहे हैं ॥१३॥

जिन कर्मों के फलस्वरूप, इन अन्य पापियों की (विविध प्रकार की) ये जो यातनाएँ दिखायी पड़ रही हैं। वह सब तुम कृपया कारण सहित कहो ॥१४॥

यमदूत बोला—

हे राजन् ! जिन पाप कर्मों के फल को, आप मुझसे पूछ रहे हैं वह सब मैं आपसे, यथा योग्य संक्षेप में कहूंगा ॥१५॥

मनुष्य पुण्य और पाप को क्रम से भोगता है । पाप अथवा पुण्य केवल भोग करने से ही क्षय को प्राप्त होता है ॥१६॥

मनुष्य का कोई भी कर्म पाप अथवा पुण्य भोग के बिना क्षीण नहीं होता है । पुण्य अथवा पाप का भोग करने से शीघ्र ही क्षय हो जाता है। इसे (आप) मेरे द्वारा जान लीजिये ॥१७॥

दरिद्र, पाप कर्मी (मनुष्य) दुर्भिक्ष से दुर्भिक्ष को, कष्ट से कष्ट को, भय से भय को, मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करते हैं ॥१८॥

(इस प्रकार) प्राणी की नाना प्रकार की गति, कर्म बन्धनों के कारण होती है (प्राणी) उत्सव से उत्सव को, स्वर्ग से स्वर्ग को, सुख से सुख को प्राप्त करते हैं ॥१९॥

और अधिक क्या कहें, श्रद्धालु, उदार, धनदाता और शुभ कर्म करने वाले व्यक्ति अपने पुण्यों से सुख प्राप्त करते हैं तथा पापी लोग अपने पाप के कारण व्याघ्र, हाथी, सर्प, चोर, विपत्ति, भयादि से भी मारे जाते हैं।

(पुण्यात्मा) सदैव सुगन्धित माला, श्रेष्ठ वस्त्र, उत्तम विमान, आसन और भोजन (आदि प्राप्त करते हैं) ॥२०-२१॥

स्तूयमानाः सदा यान्ति पुण्यैः पुण्याटवीष्वपि । अनेकशतसाहस्रजन्मसंचयसंचितम् ।।२२
पुण्यापुण्यं नृणां तद्वत् सुखदुःखाङ्कुरोद्भवम् । यथा बीजं हि भूपाल पयांसि समवेक्षते ।।२३
पुण्यापुण्ये तथा कालदेशान्यकर्मकारकम् । स्वल्पं पापं कृतं पुंसां देशकालोपपादितम् ।।२४
पादन्यासकृतं दुःखं कण्टकोत्थं प्रयच्छति । तत् प्रभूततरं स्थूल-शंकु-कीलकसम्भवम् ।। २५
दुःखं यच्छति तद्वच्च शिरोरोगादि दुःसहम् । अपथ्याशनशीतोष्ण-श्रमतापादिकारकम् ।।२६
तथान्योन्यमपेक्षते पापानि फलसङ्गमे । एवं महान्ति पापानि दीर्घरोगादिकाः क्रियाः ।।२७
तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रातिबन्धनादि फलाय वै । स्वल्पं पुण्यं शुभं गन्धं हेलया सम्प्रयच्छति ।।२८
स्पर्शं वाप्यथवा शब्दं रसं रूपमथापि वा । चिराद्गुरुतरं तद्वन्महान्तमपि कालजम् ।।२९
एवञ्च सुखदुःखानि पुण्यापुण्योद्भवानि वै । भुञ्जानोऽनेक-संसारसम्भवानीह तिष्ठति ।।३०
जातिदेशावरुद्धानि ज्ञानाज्ञानफलानि च । तिष्ठन्ति तत्र पृक्तानि लिङ्गमात्रेण चात्मनि ।।३१
कर्मणा मनसा वाचा न कदाचित् क्वचिन्नरः । अकुर्वन् पापकं कर्म पुण्यं वाप्यवतिष्ठते ।।३२

और स्तुति किये जाते हुए, अपने पुण्यों से सदैव पुण्य अटवी को जाते हैं ।।२२।।

मनुष्यों के हजारों जन्मों के पुण्य और पापों के सञ्चय से ही सुख अथवा दुःख रूपी अंकुर उत्पन्न होता है । हे भूपाल ! जिस प्रकार बीज जल के प्राप्त होने पर ही अंकुरित होता है ।।२३।।

उसी प्रकार पाप अथवा पुण्य, समय अथवा स्थान के औचित्य पर ही फलदायक होता है। मनुष्य द्वारा किया गया स्वल्प पुण्य अथवा पाप भी, उचित समय और स्थान पर ही फलीभूत होता है ।।२४।।

(पापों के फलस्वरूप व्यक्ति) बहुत से नुकीले कांटों, कीलों और मोटे-मोटे शंकुओं आदि के ऊपर से पैरों को रखते हुए अत्यन्त दुःख सहन करते हुए जाता है ।।२५।।

उसी प्रकार (विभिन्न पाप) शिरोवेदनादि दुःसह्य रोग, अपथ्य भोजन, शीत और उष्ण परिश्रम और ताप आदि उत्पन्न करने वाले, दुःखों को देते हैं ।।२६।।

उसी प्रकार फल प्राप्ति के समय (विभिन्न) पाप एक दूसरे (पाप की) अपेक्षा करते हैं । इसी प्रकार से दीर्घकाल तक किसी रोगादि का होना भी किसी महान् पाप का (ही फल होता) है ।।२७।।

उसी प्रकार शस्त्र (छेदन), अग्नि (आदि से जलना और कष्टकारक बन्धनादि पाप के फलों से ही होता है । कोई छोटा सा पुण्य सुगन्धित गन्ध,

मधुर शब्द, स्पर्श, रूप अथवा मधुर रस को खेल खेल में ही प्रदान कर देता है । (कहने का तात्पर्य यह है कि हम जीवन में मन को सुख प्रदान करने वाले. जो शब्द, रूप, रस आदि का अनुभव करते हैं, वे सब पुण्य कर्मों से ही मिलता है ।।२८-२९।।

इस प्रकार से सुख और दुःख निश्चित ही पाप और पुण्यों से ही उत्पन्न होते हैं । अनेक जन्मों के सञ्चित उन कर्मों को भोगता हुआ, यह सम्पूर्ण संसार स्थित है ।।३०।।

जाति एवं देश के कारण अवरुद्ध ज्ञान और अज्ञान के फल प्राणी की आत्मा में सूक्ष्म रूप से सम्पृक्त होकर बने रहते हैं ।।३१।।

कहीं पर भी कोई व्यक्ति कभी भी कर्म, मन और वचन से पाप अथवा पुण्य कर्म न करता हुआ नहीं रहता है ।।३२।।

यद्यत् प्राप्नोति पुरुषः सुखं दुःखमथापि वा । प्रभूतमथवा स्वल्पं विक्रियाकारि चेतसः ।।३३
तावता तस्य पुण्यं वा पापं वाप्यथ चेतरत् ।।३४
उपभोगात् क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम् । एवमेते महापापं यातनाभिरहर्निशम् ।।३५
क्षपयन्ति नरा घोरं नरकान्तविवर्तिनः । तथैव राजन् पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैः सह ।।३६
गन्धर्व-सिद्धाप्सरसां गीताद्यैरुपभुञ्जते । देवत्वे मानुषत्वे च तिर्यक्त्वे च शुभाशुभम् ।।३७
पुण्यपापोद्भवं भुंक्ते सुखदुःखोपलक्षणम् । यत् त्वं पृच्छसि मां राजन् यातनाः पापकर्मिणाम् ।।३८
केन केनेति पापेन तत् ते वक्ष्याम्यशेषतः । दुष्टेन चक्षुषा दृष्टाः परदारा नराधमैः ।।३९
मानसेन च दुष्टेन परद्रव्यं च सस्पृहैः । वज्रतुण्डाः खगास्तेषां हरन्त्येते विलोचने ।।४०
पुनः पुनश्च संभूतिरक्ष्णोरेषां भवत्यथ । यावतोऽक्षिनिमेषास्तु पापमेभिर्नृभिः कृतम् ।।४१
तावद्वर्षसहस्राणि नेत्रार्तिं प्राप्नुवन्त्युत । असच्छास्त्रोपदेशास्तु यैर्दत्ता यैश्च मन्त्रिताः ।।४२
सम्यग्दृष्टेर्विनाशाय रिपूणामपि मानवैः । यैः शास्त्रमन्यथा प्रोक्तं यैरसद्वागुदाहृता ।।४३

और जो-जो सुख अथवा दुःख व्यक्ति पाता है । थोड़ी अथवा अधिक क्रिया करने वाला, ।।३३।।

उन सभी (क्रियाओं के फलस्वरूप) वह पाप अथवा पुण्य अवश्य प्राप्त करता है ।।३४।।

जिस प्रकार भोजन, खाने पर ही क्षय हो जाता है ठीक उसी प्रकार (ये पाप अथवा पुण्य) उपभोग से ही नष्ट होते हैं । इसी कारण ये महा पापी यहाँ पर दिन रात यातनाओं से पीड़ित किये जाते हैं ।।३५।।

(जिस प्रकार पापी) मनुष्य इस भयंकर नरक में भेजे जाते हैं, हे राजन् ! उसी प्रकार पुण्यात्मा देवताओं के साथ स्वर्ग लोक में भेजे जाते हैं) ।।३६।।

(वहाँ पर वे व्यक्ति) गन्धर्वों, सिद्धों और अप्सराओं के गीत आदि (मनोरंजन साधनों) का उपयोग करते हैं । इस प्रकार (जीव) शुभ और अशुभ कर्मों का देवता अथवा मनुष्य (योनि में) या पक्षी (योनि में) फल भोगता है ।।३७।।

हे राजन् ! आपने जो मुझसे इन पापियों की यातनाओं का कारण पूछा था (उसका यही उत्तर है) कि अपने पाप अथवा पुण्यों के फलस्वरूप ही, ये व्यक्ति सुख अथवा दुःख भोगते हैं ।।३८।।

अब मैं, किन-किन पापों के फलस्वरूप (ये इस प्रकार के कष्ट पा रहे हैं) उन्हें सम्पूर्ण रूप से कहता हूं । जो नराधम दूसरों की स्त्री को बुरी दृष्टि से देखता है ।।३९।।

और बुरी नियत से, दूसरे के धन को अभिलाषापूर्वक देखता है, उन्हीं (इन पापियों) के नेत्रों को, वज्र के समान चोंच वाले ये पक्षी निकाल रहे हैं, ।।४०।।

और बार-बार इनकी आंखे पैदा हो रही हैं । आंखों के पलक झपकने जितनी संख्या में इन व्यक्तियों ने पाप किया ।।४१।।

उतने हजार वर्षों तक (ये पापी) नेत्रों की पीड़ा को प्राप्त करेंगे । जो असत् शास्त्रों का उपदेश करता है अथवा देने की सलाह देता है ।।४२।।

(और जिन) मनुष्यों के द्वारा शत्रु की भी उचित दृष्टि के विनाश के लिए, शास्त्रों का अन्यथा प्रकार से उपदेश किया जाता है अथवा असत्य वाणी से उदाहृत किया जाता है ।।४३।।

वेद-देव-द्विजातीनां गुरोर्निन्दा च यैः कृता । हरन्ति तेषां जिह्वाश्च जायमानाः पुनः पुनः ।।४४
तावतो वत्सरानेते वज्रतुण्डाः सुदारुणाः । मित्रभेदं तथा पित्रा पुत्रस्य स्वजनस्य च ।।४५
यज्वोपाध्याययोर्मात्रा सुतस्य सहचारिणः । भार्यापत्योश्च ये केचिद् भेदंचक्रुर्नराधमाः ।।
त इमे पश्य पाट्यन्ते परपत्रेण पार्थिवः ।।४६
परोपतापका ये च ये चाह्लादनिषेधकाः । तालवृन्तानिलस्थान चन्दनो शीरहारिणः ।।४७
प्राणान्तिकं ददुस्तापमदुष्टानाञ्च येऽधमाः । करम्भवालुकासंस्थास्त इमे पापभागिनः ।।४८
भुङ्क्ते श्राद्धं तु योऽन्यस्य नरोऽन्येन निमन्त्रितः । दैवेवाप्यथवा पैत्र्ये स द्विधाकृष्यते खगैः ।४९
मर्माणि यस्तु साधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति । तमिमे तुदमानास्तु खगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ।।५०
यः करोति च पैशुन्यमन्यवागन्यथा मतिः । पाटचते हि द्विधा जिह्वा तस्येत्थं निशितैः क्षुरैः ।।५१
मातापित्रोर्गुरुणां च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः । त इमे पूयविण्मूत्रगर्ते मज्जन्त्यधोमुखाः ।।५२
देवताऽतिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च । अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति तद्वत् पित्राग्निपक्षिषु ।।५३
दुष्टास्ते पूयनिर्यास-भुजः सूचीमुखास्तु ते । जायन्ते गिरिवर्ष्माणः पश्यैते यादृशा नराः ।।५४
एकपङ्क्त्या तु ये विप्रमथवेतरवर्णजम् । विषमं भोजयन्तीह विड्भुजस्त इमे यथा ।।५५

और जो (व्यक्ति) वेदों, देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुओं की निन्दा करते हैं, उन्हीं (व्यक्तियों) की बार-बार उत्पन्न होती हुई जिह्वा को ये लोहे की चोंच वाले कठोर पक्षी निकालते हैं ।।४४।।

हे राजन् ! पिता, पुत्र, बन्धु, मित्र, याज्ञिक, गुरु और पुत्र के मित्रों पत्नी और पति इनमें से किसी में भी, जो नीच व्यक्ति भेद-भाव उत्पन्न करते हैं । वहीं देखो आरे से चीरे जा रहे हैं ।।४५-४६।।

जो व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों को कष्ट देने वाले, दूसरों के आनन्द में बाधा उत्पन्न करने वाले, ताड़पत्र (पंखे) की हवा एवं चन्दन और उशीर का हरण करने वाले और जो नीच सज्जन पुरुषों को प्राण हारक कष्ट देते रहे हैं । वही ये पापी कीचड़ और बालू पर स्थित है ।।४७-४८।।

और जो व्यक्ति, किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा निमन्त्रित होने पर भी, अन्य व्यक्ति के श्राद्ध को खाता है वह देवता का हो या पितरों का, वह व्यक्ति इन पक्षियों के द्वारा दो बार खींचा जाता है ।।४९।।

जो असत् वाणी से साधुओं के मर्म स्थल को वेधता है, उनको ये पक्षी अनवरत पीड़ित कर रहे हैं । जो व्यक्ति अन्यथा वाणी और बुद्धि से (अन्यों की) चुगली करता है, उसकी जीभ को इन तीक्ष्ण क्षुरों से दो भागों में फाड़ा जा रहा है ।।५०-५१।।

और जो उद्धत व्यक्ति माता, पिता और गुरु की अवज्ञा करते हैं और क्रोधित होते हैं । वे इस मवाद, मल, मूत्र के गड्ढों में नीचे को मुख करके डुबाये जा रहे हैं ।।५२।।

देवता, अतिथि, प्राणियों, सेवकों और मेहमानों एवं उसी के समान पितरों, अग्नि और पक्षियों को खिलाये बिना जो खाते हैं— ।।५३।।

उन दुष्टों को सूई के समान मुख वाले, पक्षी, पीप आदि से निकाल कर खाते हैं । देखिये, ये व्यक्ति पर्वत के समान स्थूलकाय हो गये हैं । एक पंक्ति में बिठाकर जो ब्राह्मण अथवा अन्य वर्णों के व्यक्ति विषम भोजन कराते हैं । यहाँ पर वहीं मल भक्षण कर रहे हैं ।।५४-५५।।

एकसार्थप्रयातं ये निःस्वमर्थार्थिनं नरम्। अपास्य स्वान्नमश्नन्ति त इमे श्लेष्यभोजिनः ।।५६
गोब्राह्मणाग्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर। तेषामेतेऽग्निकुण्डेषु प्रज्वलत्स्वाहिताः कराः ।।५७
सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः। तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तोवह्निः समिध्यते ।।५८
गावोऽग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठभ्राता पिता स्वसा।
जामयो गुरवो वृद्धायैः स्पृष्टास्तु पदा नृभिः ।।५९
बद्धांध्रयस्ते निगडैर्लोहैरग्निप्रतापितैः। अंगारराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानु-दाहिनः ।।६०
पायसं कृसरं छागं देवान्नानि च यानि वै। भुक्तानि यैरसंस्कृत्य तेषां नेत्राणि पापिनाम् ।।६१
निपातितानां भूपृष्ठे उद्वृत्ताक्षि निरीक्षताम्। सन्दंशैः पश्य कृष्यन्ते नरैर्याम्यैर्मुखात् ततः ।।६२
गुरुदेवद्विजातीनां वेदानां च नराधमैः। निंदा निशामिता यैश्च पापानामभिनंदताम् ।।६३
तेषामयोमयान् कीलानग्निवर्णान् पुनः पुनः। कर्णेषू पूरयन्त्येते याम्या विलपतामपि ।।६४
यैः प्रयादेव-विप्रौको-देवालयसभाः शुभाः।
भङ्क्त्वा विध्वंसमानीताः क्रोधलोभानूवर्त्तिभिः ।।६५
तेषामेतैः शितैः शस्त्रैर्मुहुर्विलपतां त्वचः। पृथक् कुर्वन्ति वै याम्याः शरीरादतिदारुणाः ।।६६

जो लोग एक समुदाय में साथ-साथ आये हुए अर्थार्थी मनुष्य को निर्धन जानकर छोड़ देते हैं और अपना अन्न खाते हैं वे ही यहाँ थूक और खँखार खाते हैं ।।५६।।

नरेश्वर, जिन लोगों ने झूठे हाथों से गौ, ब्राह्मण और अग्नियों का स्पर्श किया है, वे ही यहाँ पर प्रज्वलित अग्नि के कुण्ड में जल रहे हैं ।।५७।।

जो अपवित्र कामी, सूर्य, चन्द्रमा और तारों को देखता है। उस व्यक्ति के नेत्रों में यमदूत अग्नि डाल कर बेध रहे हैं ।।५८।।

गाय, अग्नि, माता, ब्राह्मण, बड़े भाई, पिता, बहिन, जामाता, गुरु, वृद्धा (आदि) को जो व्यक्ति पैर से स्पर्श करते हैं ।।५९।।

वही यहाँ पर पैरों में लोहे की बेड़ियाँ बाँधकर घुटनों तक अंगारों के बीच में खड़े करके, प्रज्वलित अग्नि से जलाये जा रहे हैं ।।६०।।

विशिष्ट अन्न की खीर, विशिष्ठ अन्न तथा बकरा आदि (जो) देवताओं के अन्न हैं, (उनको) जो असंस्कार युक्त व्यक्ति खाते हैं, उन पापियों के नेत्र, निकालकर, देखिये, पृथ्वी पर गिरा दिये गये हैं। देखिये, उन मनुष्यों को यम सेवक मुख से काटकर, खींच रहे हैं ।।६१–६२।।

गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदों की जो नीच व्यक्ति निन्दा करते हैं तथा पापियों की प्रशंसा करते हैं ।।६३।।

उनके कानों में ये यम किंकर, रोने पर भी लाल की गयी लोहे की कीलों को घुसेड़ रहे हैं ।।६४।।

जो व्यक्ति क्रोध (अथवा) लोभ के वशवर्ती होकर प्याऊ और देवता, ब्राह्मण के निवास एवं देवालयों को तोड़कर नष्ट कर डालते हैं ।।६५।।

बार-बार विलपते हुए, उनके शरीर से अत्यन्त पैने हथियारों से कठोर यमदूत, (उनकी) खाल को अलग कर रहे हैं ।।६६।।

गोब्राह्मणार्कमार्गांस्तु येऽवमेहन्ति मानवाः । तेषामेता निकृष्यन्ते गुदेनांत्राणि वायसैः ।।६७
दत्त्वा कन्यां य एकस्मै द्वितीयाय प्रयच्छति । स त्वेवं नैकधा छिन्नः क्षारनद्यां प्रवाह्यते ।।६८
स्वपोषणपरो यस्तु परित्यजति मानवः । पुत्रभृत्यकलत्रादि बन्धुवर्गमकिंचनम् ।।६९
दुर्भिक्षे संभ्रमे वापि सोऽप्येवं यमकिंकरैः । उत्कृत्य दत्तानि मुखे स्वमांसान्यश्नुते क्षुधा ।।७०
शरणागतान् यस्त्यजति लोभादुत्कोचजीविकः । सोऽप्येवं यंत्रपीडाभिः पीड्यते यमकिंकरैः ।।७१
सुकृतं ये प्रयच्छन्ति यावज्जन्मकृतं नराः । ते पिष्यन्ते शिलापेषैर्यथैते पापकर्मिणः ।।७२
न्यासापहारिणो बद्धाः सर्वगात्रेषु बन्धनैः । कृमि-वृश्चिक-काकोलैर्भुज्यन्तेऽहर्निशं नराः ।।७३
दिवामैथुनिनः पापाः परदारभुजश्च ये । तथैव कण्टकैस्तीक्ष्णैरायसैः पश्य शाल्मलिम् ।।७४

आरोपिता विभिन्नांगाः प्रभूतासृक्स्रवाविलाः ।
मूषायामपि पश्यैतान् ध्मायमानान् यमानुगैः ।।७५
पुरुषैः पुरुषव्याघ्रपरदारावमर्शिनः ।।७६

उपाध्यायमधः कृत्वा स्तब्धो योऽध्ययनं नरः । गृह्णाति शिल्पमथवा सोऽप्येवं शिरसा शिलाम् ।।७७
बिभ्रत् क्लेशमवाप्नोति जनमार्गेऽतिपीडितः । क्षुत्क्षामोऽहर्निशं भारपीडाव्यथितमस्तकः ।।७८

जो मनुष्य गो, ब्राह्मण तथा सूर्य की ओर मुख करके मलमूत्र का त्याग करते हैं, उनकी आँतों को कौए गुदा मार्ग से खींचते हैं ।।६७।।

जो व्यक्ति एक व्यक्ति को कन्या देकर फिर दूसरे के साथ उसका विवाह करता है । उसके शरीर में बहुत से घाव करके खारी नदी में बहाया जा रहा है ।।६८।।

जो मनुष्य दुर्भिक्ष अथवा संकट काल में अपने पुत्र, भृत्य, पत्नी आदि तथा बन्धु वर्ग को अकिंचन जान कर भी त्याग देता है । और केवल अपना पेट पालने में लगा रहता है, उसको भी यमराज के दूत भूख लगने पर उसके मुख में उसके ही शरीर का मांस नोंचकर डाल देते हैं और वही उसका भोज्य होता है ।।६९–७०।।

घूस पर निर्वाह करने वाला, लोभ के कारण, शरण में आए हुए व्यक्तियों को त्याग देता है, वह भी यमदूतों के द्वारा विभिन्न यन्त्रों की पीड़ा से पीड़ित किये जाते हैं ।।७१।।

जो व्यक्ति अपने द्वारा किये गये अनुष्ठानादि से प्राप्त पुण्य को मूल्य लेकर बेचते हैं, सम्पूर्ण जीवन यही कार्य करते हैं । वे पाप कर्मी भी यहाँ चक्की पीसते हैं ।।७२।।

जो व्यक्ति गिरवी रखे गये आभूषण का अपहरण करते हे उनका समस्त शरीर बाँध दिया गया है और दिन रात कीड़े, साँप और बिच्छू (उन्हें) खाते हैं ।।७३।।

और जो पापी दिन में मैथुन करते हैं और परस्त्री के साथ संभोग करते हैं, वे, लोहे के तीक्ष्ण काँटों से युक्त, सेमर के वृक्ष को देखो, इस पर चढ़ाये गये हैं, (उनके) अंग कटे हुए हैं, जहाँ से अत्यधिक पीव, रक्त आदि बह रहा है और मूषा (यन्त्र विशेष) पर डाले गये इन पापियों को देखो, यम के सेवक जिनका निरन्तर ध्यान रखते हैं ।।७४–७५।।

हे पुरुष व्याघ्र ! परस्त्री के साथ संभोग करने वाले इन पुरुषों को भी देखो ।।७६।।

जो व्यक्ति पढ़ाने वाले को नीचे बैठाकर, स्वयं ऊपर बैठकर अध्ययन करता है अथवा शिल्प ग्रहण करता है (वह) अपने सिर पर शिला को धारण करके जन-मार्ग पर अति क्लेश पाता है । और दिन रात भूख प्यास से पीड़ित होकर, भार की पीड़ा से, पीड़ित मस्तक वाला रहता है ।।७७-७८।।

मुत्र-श्लेष्म-पुरीषाणि यै रुत्सृष्टानि वारिणि । त इमे श्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धं नरकं गतः ।।७९
परस्परं च मांसानि भक्षयन्ति क्षुधान्विताः ।।८०
भुक्तं नातिथ्यविधिना पूर्वमेभिः परस्परम् ।
अपविद्धास्तु यैर्वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः ।।
त इमे शैलश्रृंगाग्रात् पात्यन्तेऽधः पुनः पुनः ।।८१
पुनर्भू पतयो जीर्णा यावज्जीवन्ति ये नराः । इमे कृमित्वमापन्ना भक्ष्यन्तेऽत्रपिपीलिकैः ।।८२
नीचप्रतिग्रहाद् दानाद्याजनान्नित्यसेवनात् । पाषाणमध्य कीटत्वं नरः सततमश्नुते ।।८३
पश्यतो भृत्यवर्गस्य मित्रस्याप्यतिथेस्तथा । एको मिष्ठान्नभुग् भुङक्ते ज्वलदंगारसंचयम् ।।८४
वृकैर्भयंकरैः पृष्ठं नित्यमस्योपभुज्यते । पृष्ठमांसं नृपैतेन यतो लोकस्य भक्षितम् ।।८५
अन्धोऽथ बधिरो मूको भ्राम्यतेऽत्र क्षुधातुरः । अकृतज्ञोऽधमः पुंसामुपकारिषु वर्त्तते ।।८६
अयं कृतघ्नो मित्राणामपकारि-सुदुर्मतिः । तप्तकुम्भे निपतितो विलपन् याति शोषणम् ।।८७
करम्भ-बालूकां तस्मात् ततो यन्त्रावपीडनम् । असिपत्र वनं तस्मात् करपत्रेण पाटनम् ।।८८
कालसूत्रे तथाच्छेदमनेकाश्चैव यातनाः । प्राप्य निष्कृतिमेतस्मान्न वेद्मि कथमेष्यति ।।८९

और जो मूर्ख व्यक्ति जल में मूत्र (करते हैं) अथवा थूकते हैं । वे ही यहाँ पर थूक और मलमूत्र से दुर्गन्धित नरक में पड़े हुए हैं । और ये यहाँ पर भूख से पीड़ित होकर एक दूसरे का मांस खा रहे हैं ।।७९–८०।।

इन्होंने पूर्व जन्म में अतिथियों के भोजन किये बिना ही भोजन किया था । और जिन्होंने आहिताग्नि (अग्निहोत्री) होकर भी वेदों और अग्नियों का तिरस्कार किया है, वे ये, पर्वत की चोटी से बार-बार गिराये जा रहे हैं ।।८१।।

जो लोग दूसरी बार ब्याही जाने वाली स्त्री के पति होकर जीवन बिता चुके हैं, वे इस समय यहाँ कीड़े बने हैं और चींटियों से खाये जा रहे हैं ।।८२।।

निकृष्ट प्रकार का उपहार लेने यजन, करने एवं सेवन करने से, मनुष्य पत्थर के बीच का कीड़ा बनता है ।।८३।।

जो व्यक्ति अपने सेवकों, मित्रों और अतिथियों के देखते हुए ही अकेला मिष्ठान्न खाता है, वह यहाँ नरक में जलती हुई अग्नि के ढेर को खाता है ।।८४।।

हे राजन् ! इसने लोगों की पीठ का माँस खाया है (पीठ पीछे सबकी बुराई की है) इसलिए भयंकर भेड़िये प्रतिदिन इसका मांस खा रहे हैं ।।८५।।

और जो नीच, उपकारी व्यक्तियों के प्रति अकृतज्ञ के समान व्यवहार करता है, वह यहाँ अंधा, बहरा, गूंगा होकर भूख से व्याकुल घूम रहा है ।।८६।।

इस अति दुर्मति कृतघ्न मनुष्य ने अपने मित्रों की बुराई की है, इसलिए यह तप्त कुम्भ नरक में पड़ा हुआ विलाप कर रहा है । इसके पश्चात् तपायी हुई बालू में भूना जायेगा और चक्की में पीसा जायेगा । इसके बाद इसे असिपत्र वन नामक नरक में यातना दी जायेगी फिर आरे से चीरा जायेगा । इसके पश्चात् कालसूत्र से काटा जायेगा एवं और भी बहुत सी यातनायें दी जायेंगी । (इस पर भी मित्रों के साथ विश्वासघात करने के पाप से) मैं नहीं जानता कि किस प्रकार इसका छुटकारा होगा ।।८७-८९।।

श्राद्धे संगतिनो विप्राः समुपेत्य परस्पम् । दुष्टा हि निःसृतं फेनं सर्वाङ्गेभ्यः पिबन्ति वै ।।९०
सुवर्णस्तेयी विप्रघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
अधश्चोर्ध्वं च दीप्ताग्नौ दह्यमानाः समन्ततः ।।
तिष्ठन्त्यब्दसहस्राणि सुबहुनि ततः पुनः ।।९१
जायन्ते मानवाः कुष्ठक्षयरोगादि चिन्हिताः । मृताः पुनश्च नरकं पुनजाताश्च तादृशम् ।।९२
व्याधिमृच्छन्ति कल्पान्तपरिमाणं नराधिप ।।९३
गोघ्नो न्यूनतरं याति नरकेऽथ त्रिजन्मनि । तथोपपातकानाञ्च सर्वेषामिति निश्चयः ।।९४
नरकप्रच्युता यान्ति यैर्यैर्विहितपातकैः । प्रयान्ति योनिजातानि तन्मे निगदतः शृणु ।।९५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे पितापुत्रसंवादे यमकिङ्करसंवादे ।। स्वकृतकर्ममुक्ति कथनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।

जो ब्राह्मण एक दूसरे से मिलकर सदा श्राद्धान्न भोजन करने में ही आसक्त रहते हैं; उन्हें दुष्ट सर्पों के सर्वाङ्ग से निकला फेन पीना पड़ता है ।।९०।।

स्वर्ण की चोरी करने वाले, ब्रह्म हत्या करने वाले, मद्य पीने वाले तथा गुरुपत्नी गामी—ये चारों प्रकार के महापापी नीचे और ऊपर धधकती हुई आग के बीच में झोंक कर सब ओर से जलाये जाते हैं । इस अवस्था में उन्हें कई हजार वर्षों तक रहना पड़ता है ।।९१।।

तदन्तर वे मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं तथा कुष्ठ एवं यक्ष्मा आदि रोगों से युक्त रहते हैं । वे मरने के पश्चात् पुनः नरक में जाते हैं और पुनः उसी प्रकार नरक से लौटने पर रोग युक्त होकर जन्म ग्रहण करते हैं । इस प्रकार कल्प के अन्त तक उनके आवागमन का यह चक्र चलता रहता है ।।९२-९३।।

गाय की हत्या करने वाला व्यक्ति कम से कम तीन जन्मों तक नरक में आता है । उसी प्रकार से अन्य भी सभी पापी नरक में आते रहते हैं । यह निश्चित है (इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ।।९४।।

पाप कर्म करने वाले ये प्राणी (इस) नरक से गिर कर जिन-जिन योनियों में जन्म लेते हैं । उनको भी मैं कहता हूं, सुनो ।।९५।।

इस प्रकार मा० म० पु० में पिता-पुत्र संवाद में, यमदूत के संवाद में अपने कर्म के भोग कथन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चदशोऽध्याय:

यमकिङ्कर उवाच—

पतितात्प्रतिगृह्याथ खरयोनिं व्रजेद् द्विजः । नरकात् प्रतिमुक्तस्तु कृमिः पतितयाजकः ॥१

उपाध्यायव्यलीकं तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः ।
तज्जायां मनसा वाचा तद्द्रव्यं वापि कामयेत् ॥२

गर्दभो जायते जन्तुः पित्रोश्चाप्यवमानकः । मातापितरावाक्रुश्य सारिका सम्प्रजायते ॥३

भ्रातुः पत्न्यवमन्ता च कपोतत्वं प्रपद्यते । तावेव पीडयित्वा तु कच्छपत्वं प्रपद्यते ॥४

भर्तृ पिण्डमुपाश्नन् यस्तदिष्टं न निषेवते । सोऽपि मोहसमापन्नो जायते वानरो मृतः ॥५

न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः । असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः ॥६

विश्वासहन्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते ।
धान्यं यवांस्तिलान् माषान् कुलत्थान् सर्षपांश्चणान् ॥७
कलायान् कलमान् मुद्गान् गोधूमानतसीस्तथा ।
सस्यान्यन्यानि वा हृत्वा मोहाज्जन्तुरचेतनः ॥८

सञ्जायते महावक्त्रो मूषिको बभ्रुसन्निभः । परदाराभिमर्शात् तु वृको घोरोऽभिजायते ॥९

यमदूत बोला—

दुष्ट, पथ भ्रष्ट व्यक्ति से (दानादि) स्वीकार करने वाला ब्राह्मण खच्चर की योनि में गिरता है और दुष्ट याजक नरक से गिरकर, कीट योनि को प्राप्त करता है ॥१॥

जो ब्राह्मण अपने गुरु से असत्य वचन बोलता है और उसकी पत्नी अथवा धनादि की अभिलाषा करता है। वह कुत्ता बनता है ॥२॥

जो प्राणी माता पिता का अपमान करता है वह गर्दभ योनि में पैदा होता है और माता पिता के ऊपर क्रोध करने वाला (व्यक्ति) मैना (सारिका) बनता है ॥३॥

जो भाई अथवा पत्नि का अपमान करता है वह कबूतर की योनि में जन्म लेता है और इन्हीं (भाई और पत्नी) दोनों को पीड़ित करने वाला कछुवा बनता है ॥४॥

स्वामी का भोजन खाता हुआ भी जो (व्यक्ति) उसकी इच्छानुकूल कार्य नहीं करता है मोह से युक्त वह भी मरने पर बन्दर योनि में उत्पन्न होता है ॥५॥

धरोहर का हरण करने वाला नरक से गिरकर कीड़ा बनता है और ईर्ष्या करने वाला व्यक्ति नरक से मुक्त होकर राक्षस बनता है ॥६॥

विश्वासघाती व्यक्ति मछली की योनि में उत्पन्न होता है। धान, जौ, तिल, उड़द, कुलत्थ, सरसों और चनों को ॥७॥

मटर, चावल, लोबिया, गेहूं और अलसी को अथवा अन्य प्रकार के अन्न को, जो मूर्ख व्यक्ति मोह वश चुराता है ॥८॥

(तो वह) गंजे सिर वाला (भूरे रंग का), विशाल मुख वाला, चूहा होता है। पर स्त्री गमन करने से भयंकर भेड़िया बनता है ॥९॥

श्वा श्रृगालो बको गृध्रो व्यालः कङ्कस्तथा क्रमात् ।
भ्रातृभार्य्यां च दुर्बुद्धिर्यो धर्षयति पापकृत् ।।१०
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति स चापि नरकाच्च्युतः ।
सखि भार्य्यां गुरोर्भार्य्यां राजभार्य्यां च पापकृत् ।।११
प्रधर्षयित्वा कामात्मा सूकरो जायते नरः । यज्ञदान विवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्क्रमिः ।।१२
पुनर्दाता तु कन्यायाः क्रमिरेवोपजायते । देवता-पितृ-विप्राणामदत्त्वा योऽन्नमश्नुते ।।१३
प्रमुक्तो नरकात् सोऽपि वायसः सम्प्रजायते । ज्येष्ठं पितृसमं वापि भ्रातरं योऽवमन्यते ।।१४
नरकात् सोऽपि विभ्रष्टः क्रौंचयोनौ प्रजायते । शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा क्रमियोनौ प्रजायते ।।१५
तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तः कीटको भवेत् । सूकरः क्रमिको मद्गुश्चण्डालश्च प्रजायते ।।१६
अकृतज्ञोऽधमः पुंसां विमुक्तो नरकान्नरः । कृतघ्नः क्रमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा ।।१७
मत्स्यस्तु वायसः कूर्मः पुक्कसो जायते ततः ।
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः संजायते खरः ।।
क्रमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते ।।१८
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः । तत्राप्यस्ति विशेषो वै भोजनस्य श्रृणुष्वतम् ।।१९
हृत्वा दुग्धं तु मार्जारो जायते नरकाच्च्युतः ।।२०

और जो दुर्बुद्धि पापी भाई की पत्नि के साथ दुराचार करता है। वह क्रम से कुत्ता, गीदड़, बगुला, गिद्ध, सर्प और कंक बनता है ।।१०।।

और जो (व्यक्ति) मित्र की पत्नि, गुरु पत्नी और राज पत्नी के साथ दुराचार करता है वह नरक से गिरकर भी नर कोयल बनता है ।।११।।

जो कामी और पापी, मित्र की पत्नी, गुरु की पत्नी, राजा की पत्नी के साथ बलात्कार करता है वह मनुष्य सुअर बनता है। यज्ञ, दान एवं विवाह कार्य में विघ्न करने वाला व्यक्ति कीड़ा बनता है ।।१२।।

कन्या को पुनः किसी को देने वाला भी कीड़ा होता है। और जो देवताओं, पितरों और ब्राह्मणों को दिये (खिलाये) बिना भोजन करता है ।।१३।।

वह भी नरक से गिरकर कौए की योनि में उत्पन्न होता है और जो पिता के समान अपने बड़े भाई का अपमान करता है ।।१४।।

वह भी नरक से गिरकर क्रौंच पक्षी की योनि में उत्पन्न होता है। शूद्र और ब्राह्मण स्त्री के साथ रमण करने वाला (व्यक्ति भी कीट योनि में उत्पन्न होता है और उसमें सन्तान उत्पन्न करके लकड़ी का कीड़ा बनता है तथा सुअर और क्रमि तथा चाण्डाल बनता है ।।१५–१६।।

मनुष्यों में अकृतज्ञ और नीच आत्मा वाला व्यक्ति नरक से गिरकर कीट, पतंगा और बिच्छू, ।।१७।।

मछली, कौआ, कछुआ आदि नीच योनियों मे उत्पन्न होता है। शस्त्र रहित व्यक्ति को मारकर व्यक्ति खच्चर बनता है। स्त्री की हत्या करने वाला एवं बालक को मारने वाला क्रमि बनता है ।।१८।।

भोजन को चुराने वाला व्यक्ति मक्खी (की योनि, में जन्म लेता है। वहाँ भी जो (भोजनादि) चुराने का वैशिष्ट्य है, उसे भी पृथक्-पृथक् सुनो ।।१९।।

दूध चुराने वाला व्यक्ति नरक से गिरकर बिलाव की योनि में जन्म लेता है ।।२०।।

तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नं हृत्वा तु मूषकः । घृतं हृत्वा तु नकुलः काको मद्गुरजामिषम् ।।२१
मत्स्यमांसापहृत् काकः श्येनो मेषाऽमिषापहृत् । चिरीवाकस्त्वपहृते लवणे दध्नि वा कृमिः ।।२२
चोरयित्वा पयश्चापि बलाका संप्रजायते । यस्तु चोरयते तैलं तैलपायी स जायते ।।२३
मधुहृत्वा नरो दंशोऽपूपं हृत्वा पिपीलिका । चोरयित्वा हविष्यान्नं जायते गृहगोधिका ।।२४
आसवं चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुयात् । अयो हृत्वा तु पापात्मा वायसः संप्रजायते ।।२५
पत्रे कांस्येऽपि हारीतः कपोतो रौप्यभाजने । हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते ।।२६
कौशेयं चोरयित्वा तु चक्रवाकत्वमृच्छति । कोशकारश्च कौशेये हृते वस्त्रेऽभिजायते ।।२७
दुकूलेशार्ङ्गकः पापो हृते चैवांशुके शुकः । ऋक्षश्चैवाविकं हृत्वा वस्त्रं क्षौमं च जायते ।।२८
कार्पासिके हृते क्रौंचो वन्हेर्हृर्तबकः खरः । मयूरो वर्णकान् हृत्वा पत्रशाकं च जायते ।।२९

जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रापहृन्नरः ।
छुच्छुंदरी शुभान् गंधान् वासो हृत्वा शशो भवेत् ।।३०

तिल व चूर्ण मिश्रित अन्न को चुराने से मूषक बनता है और घी को चुराकर नेवला, कौआ और विशेष प्रकार की मछली बनता है ।।२१।।

मछली का मांस चुराने वाला कौआ और बकरे का मांस चुराने वाला बाज, नमक के चुराने पर झिंगुर और दही चुराने पर कीड़ा बनता है ।।२२।।

दूध चुराने पर भी बगुला (योनि में) उत्पन्न होता है और जो (व्यक्ति) तेल की चोरी करता है वह बर्रं (योनि) में उत्पन्न होता है ।।२३।।

शहद चुराने पर व्यक्ति डाँस (और) मालपुआ चुराने पर चींटी (बनता है), हविष्यान्न को चुराकर (व्यक्ति) घर के बैल (की योनि) में जन्म लेता है ।।२४।।

आसव (काढ़ा) की चोरी करके तित्तर योनि को प्राप्त करता है और पापात्मा (व्यक्ति) लोहे को चुरा करके कौआ योनि में उत्पन्न होता है ।।२५।।

कांसे अथवा चांदी के पात्र को चुराने वाला भी कबूतर और स्वर्ण पात्र चुराकर (व्यक्ति) कृमि योनि में उत्पन्न होता है ।।२६।।

रेशमी वस्त्र को चुराकर चक्रवात बनता है और अन्य वस्त्र चुराने पर रेशमी वस्त्र का कीड़ा बनता है ।।२७।।

और दुकूल के चुराने पर (वह) पापी भौंरा बनता है एवं अंशुक चुराने पर तोता होता है । भेड़ की ऊन से निर्मित ऊनी वस्त्र को चुराकर व्यक्ति रीछ बनता है ।२८।।

कपास निर्मित वस्त्र के चुराने पर क्रौंच पक्षी, अग्नि के रंग का वस्त्र चुराने पर बगुला और हरे वस्त्रों को चुराकर मोर की योनि में उत्पन्न होता है ।।२९।।

लाल वस्त्र को चुराने वाला व्यक्ति चकोर की योनि में जाता है और शुभ (वस्त्रों) को चुराने पर, छुछुन्दर तथा सुगन्धित वस्त्र चुराने पर खरगोश होता है ।।३०।।

खञ्जः पलालहरणे काष्टहृद् घुणकीटकः । पुष्पापहृद् दरिद्रस्तु पंगुर्यानापहृन्नरः ॥३१
शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः । भूमिहृन्नरकान् गत्वा रौरवादीन् सुदारुणान् ॥३२
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सार तरुतां क्रमात् । प्राप्य क्षीणाल्पपापस्तु नरो भवति वै ततः ॥३३
वृषस्य वृषणौ छित्त्वा षण्ढत्वं प्राप्नुयान्नरः । परिहृत्य तथा भूयो जन्मनामेकविंशति ॥३४
कृमिः कीटः पतंगो वा पक्षीतोयचरो मृगः । गोत्वं च प्राप्य चाण्डालपुल्कसादि जुगुप्सितम् ॥३५
पंग्वंधो बधिरः कुण्ठीयक्ष्मणा च प्रपीडितः । मुखरोगाक्षिरोगैश्च गुदरोगैश्च बाध्यते ॥३६
अपस्मारी च भवति शूद्रत्वं च स गच्छति । एष एव क्रमौ दृष्टो गोसुवर्णादि हारिणाम् ॥३७
विद्यापहारिणां चैव निष्क्रयभ्रंशिनां गुरोः । जायामन्यस्य पारक्यां पुरुषः प्रतिपादयेत् ॥३८
प्राप्नोति षंढतां मूठो यातनाभ्यः परिच्युतः । यः करोति नरो होममसमिद्धे हुताशने ॥३९
सोऽजीर्णघनदुःखार्तो मन्दाग्निरभिजायते । परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मोपघट्टनम् ॥४०
नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वं च परदारोपसेवनम् । पर स्व हरणाशा च देवतानां च कुत्सनम् ॥४१

पुवाल के चुराने पर खंजन (पक्षी) और लकड़ी (चुराने पर) घुण का कीड़ा, पुष्प चुराने वाला व्यक्ति दरिद्र और वाहन चुराने वाला मगरमच्छ बनता है ॥३१॥

शाक (अथवा फल) चुराने वाला (व्यक्ति) एक प्रकार का हारित नामक कबूतर और जल चुराने वाला व्यक्ति चातक बनता है । भूमि छीनने वाला व्यक्ति अत्यन्त कठोर रौरव आदि नरकों में जाकर, ॥३२॥

क्रम से तिनके, बेल, लता, झाड़ी और वृक्ष की छाल आदि वृक्षत्व को प्राप्त कर, पापों के (भोगने से) नष्ट होने पर. पुनः मनुष्य योनि में उत्पन्न होता है ॥३३॥

बैल के अण्ड कोषों को छेदने पर व्यक्ति सांड की योनि में जन्म लेता है और फिर (वृषण विमर्द-नानन्तर) उसको चुराने पर इक्कीस जन्म ग्रहण करता है ॥३४॥

(इस प्रकार मनुष्य अपने पाप कर्मों के कारण, कृमि, कीट, पतंग, पक्षी, जलचर और पशु अथवा गाय, चाण्डाल, नीच और घृणित योनियों में जन्म लेता है ॥२५॥

(अथवा फिर मनुष्य योनि में ही) अंधा, लंगड़ा, बहरा, कोढ़ी, यक्ष्मा आदि रोगों से पीड़ित अथवा मुख रोग, गुदा रोग, नेत्र रोगों से प्रपीड़ित होता है ॥३६॥

अथवा फिर मिरगी का रोगी होता है । इस प्रकार वह शूद्रता को प्राप्त होता है । प्रायः यही क्रम गो, स्वर्ण आदि चुराने वालों में भी देखा जाता है ॥३७॥

(इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति) बिना सेवा किये, वञ्चना करके गुरु से विद्या का हरण करता है और दूसरे की स्त्री में शत्रुता का व्यवहार करता है, वह पुरुष, ॥३८॥

नरक में गिरकर मूर्खत्व, नपुंसकत्व आदि यातनाओं को पाता हैं और जो व्यक्ति वैभव सम्पन्न होने पर भी अप्रज्वलित अग्नि में हवन करता है वह, ॥३९॥

(मृत्युलोक में) अजीर्ण, व्याधि और मन्दाग्नि आदि रोगों से दुःखी ही उत्पन्न होता है और दूसरे की निन्दा कृतघ्नता एवं दूसरे के मर्म का भेदन करने वाला, ॥४०॥

कठोर और घृणित कार्य करने वाला, परस्त्रीगमन करने वाला, दूसरे के धन के हरण की अभिलाषा वाला और देवताओं को गाली आदि बुरे वचन प्रयोग करने वाला, ॥४१॥

निकृत्या वंचना नृणां कार्पण्यं च नृणां वधः। यानि च प्रतिषिद्धानि तद्वृत्तिं च प्रशंसताम् ॥४२
उपलक्षणानि जानियान्मुक्तानां नरकादनु। दयाभूतेषु सद्वादः परलोकं प्रतिक्रिया ॥४३
सत्याभूतहिता चोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम्। गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधु-संगमः ॥४४
सत्क्रियाऽभ्यसनं मैत्रीं च तद्बुध्येत पण्डितः। अन्यानि चैव सद्धर्मक्रिया भूतानि यानि च ॥४५
स्वर्गच्युतानां लिंगानि पुरुषाणामपापिनाम्। एतदुद्देशतो राजन् भवतां कथितं मया ॥४६
स्व-कर्म-फल भोक्तृणां पुण्याणां पापिनां तथा ॥४७
तदेह्यन्यत्र गच्छामो दृष्टं सर्वं त्वयाऽधुना। त्वया च दृष्टो नरकस्तदेह्यन्यत्र गम्यताम् ॥४८

पुत्र उवाच—

ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजा गन्तुमुद्यतः। ततश्च सर्वैरुत्कृष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः ॥४९
प्रसादं कुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम्। त्वदंगसंगी पवनो मनो ह्लादयते हि नः ॥५०
परितापं च गात्रेषु पीडां बाधां च कृत्स्नशः। अपहन्ति नरव्याघ्र कृपां कुरु महीपते ॥५१

मनुष्यों को ठगना आदि नीच कर्म करने वाला, कंजूस एवं मनुष्यों की हत्या करने वाला तथा प्रतिषिद्ध कर्मों का प्रशंसक, ॥४२॥

नरक से आये हुए इन सब मनुष्यों के सम्बन्ध में आपको उपरोक्त कष्टों अथवा योनियों के उपलक्षण जान लेने चाहियें। इसके अतिरिक्त सभी प्राणियों पर दया करने वाले, सत्य वक्ता पारलौकिक अनुष्ठाता, ॥४३॥

वेद प्रमाण स्वीकर्त्ता, सभी प्राणियों के हित में सत्य वचन कहने वाले, गुरुओं, देवताओं, ऋषियों सिद्ध पुरुषों की पूजा करने वाले, साधु पुरुषों की संगति करने वाले, ॥४४॥

आगन्तुकों का सत्कर्त्ता, मित्रवत् व्यवहार करने का अभ्यासी और अन्य भी जो उत्तम धार्मिक क्रियाएँ हैं उनका कर्त्ता व्यक्ति को पंडित (पुण्यात्मा) मानना चाहिये ॥४५॥

हे राजन्! इस प्रकार के प्राणी स्वर्ग से गिरकर (श्रेष्ठ) पुरुष योनि में जन्म लेते हैं। इस प्रकार यह कहते हुए मैंने सभी बातें आपसे कह दीं ॥४६॥

अपने कर्मों के फलों को भोगने वाले, पापी और पुण्यात्माओं से सम्बद्ध यह सब कहने योग्य मैंने आपसे कह डाला है ॥४७।

तो आइये, आपने सब कुछ देख लिया है, अब आप अन्यत्र चलिये। यह आपने नरक देख लिया है। अतः अब आप आइये अन्यत्र चलिये ॥४८॥

पुत्र बोला—

तत्पश्चात् उस (यमदूत) को आगे करके, वह राजा (ज्योंही) जाने के लिए उद्यत हुए तभी नरक में यातना भोग रहे वे सब प्राणी चिल्लाने लगे ॥४९॥

हे! राजन्, कृपा करिये, यहाँ थोड़ी देर और ठहर जाइये क्योंकि आपके अंगों का स्पर्श करके आने वाली वायु, हमारे मन को सुख पहुंचा रही है ॥५०॥

यह वायु सम्पूर्ण शरीर में हो रही पीड़ा और संताप तथा बाधा का हरण कर रही है। हे नरों में व्याघ्र के समान राजन्! हमारे ऊपर दया कीजिये ॥५१॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यं पुरुषं ततः । पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति ॥५२
किं मया कर्म तत्पुण्यं मर्त्यलोके महत् कृतम् । आह्लाददायिनी व्युष्टिर्यस्येयं तदुदीरय ॥५३

याम्य उवाच –

पितृ-देवातिथिप्रेष्य शिष्टेनान्नेन ते तनुः । पुष्टिमभ्यागता यस्मात् तद्गतं च मनो यतः ॥५४
ततस्त्वद्गात्रसंसर्गीपवनो ह्लाददायकः । पापकर्मकृतो राजन् यातना न प्रबाधते ॥५५
अश्वमेधादयो यज्ञास्त्वयेष्टा विधिवद्यतः । ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यन्त्रशस्त्राग्निवायसाः ॥५६
पीडनच्छेद-दाहादिमहादुःखस्य हेतवः । मृदुत्वमागता राजन्स्तेजसोपहतास्तव ॥५७

राजोवाच—

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत् सुखं प्राप्यते नरैः । यदार्त्त-जन्तु-निर्वाण-दानोत्थमिति मे मतिः ॥५८
यदि मत्सन्निधावेतान्यातना न प्रबाधते । ततो भद्रमुखाऽत्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः ॥५९

यमपुरुष उवाच—

एहि राजेन्द्र गच्छामि निजपुण्यसमार्जितान् । भुंक्ष्वभोगांस्तु भुज्यं तु यातनाः पापकर्मिणः ॥६०

उनके इन वचनों को सुनकर, राजा ने यमदूत से पूछा— मेरे यहाँ रहने से इनको किस प्रकार सुख मिल रहा है ॥५२॥

मैंने मृत्युलोक में ऐसा क्या महान् पुण्य कर्म किया है, जिस कारण यह मेरी दृष्टि उनको प्रसन्नता प्रदान करने वाली हो रही है, कृपया वह (कारण) कहिए ॥५३॥

यमदूत बोला—

हे राजन् ! आपका शरीर देवताओं, पितरों और भृत्य जनों से बचे हुए अन्न से पुष्ट हुआ है और आपका मन भी उन सबकी सेवा में लगा रहा है ॥५४॥

इसलिए आपके शरीर को स्पर्श करके बहने वाली वायु नारकीय जीवों को प्रसन्नता प्रदान करने वाली हो रही है। इसी कारण हे राजन् ! इनको यह नरक की यातना पीड़ित नहीं कर रही है ॥५५॥

क्योंकि आपने अश्वमेधादि यज्ञों को विधिपूर्वक किया है। इसी कारण आपके दर्शनों से ही, यमराज के (यहाँ पीड़ित करने वाले) यन्त्र, शस्त्र, अग्नि और सूची मुख पक्षी जो पहले महान् पीड़ादायक थे, पीड़न, छेदन एवं दाहादि के विषय में, आपके तेज से प्रभावित होकर, हे राजन् ! मृदुता को प्राप्त हो गये हैं ॥५६–५७॥

राजा बोले—

मेरे विचार में, जो सुख, दुःखी व्यक्तियों को शान्ति प्रदान करने से प्राप्त होता है, वह सुख मनुष्य न तो स्वर्गलोक में ही और न ब्रह्मलोक में ही प्राप्त करता है ॥५८॥

यदि मेरे सामीप्य में इन (नारकीय प्राणियों) को यातना पीड़ित नहीं कर रही है तो हे भद्र मुख ! मैं सूखे काष्ठ के समान अचल होकर यहीं रहूंगा ॥५९॥

यमदूत बोला—

हे राजेन्द्र ! आइये, इन यातना भोगने वाले पापकर्मियों को छोड़कर, अपने पुण्यों से प्राप्त किये हुए, स्वर्ग के भोगों का भोग कीजिए। अब मैं स्वर्गलोक की ओर जाता हूं ॥६०॥

राजोवाच—

तस्मान्न तावद्यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः ।
मत् सन्निधानात् सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ।।६१
धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् । यो नार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ।।६२
यज्ञदान तपांसीह परत्र च न भूतये । भवन्ति तस्य यस्यार्त्तपरित्राणे न मानसम् ।।६३
नरस्य यस्य कठिनं मनो बालातुरादिषु । वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं, राक्षसो हि सः ।।६४
एषां मत् सन्निकर्षात् तु यद्यग्निपरितापजम् । तथोग्रगंधजं वापि दुःखं नरकसम्भवम् ।।६५
क्षुतिपपासोद्भवं दुःखं यच्च मूर्छाप्रदं महत् । विनाशमेति तद्भद्र मन्ये स्वर्गसुखात् परम् ।।६६
प्राप्स्यन्ते ते यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ।
किं वा प्राप्तं मया न स्यात् तस्मात् त्वं व्रज माचिरम् ।।६७

याम्य उवाच—

एष धर्मश्च शक्रश्च त्वां नेतुं समुपागतौ ।
अवश्यमस्माद् गन्तव्यं तस्मात् पार्थिव गम्यताम् ।।६८

राजा बोले—

मैं स्वर्ग में तब तक नहीं जा सकता हूं जब तक ये नारकीय प्राणी यहाँ पर दुःखी हैं क्योंकि मेरे सामीप्य से इन नारकीय प्राणियों को सुख प्राप्त हो रहा है ।।६१।।

अरे ! उस मनुष्य के जीवन को निश्चय ही धिक्कार है जो शत्रु पक्ष के भी, शरण में आये हुए दुःखी व्यक्ति के दुःख को दूर करके अनुगृहीत नहीं करता है ।।६२।।

जिस व्यक्ति का चित्त, आर्त्त की रक्षा के लिए उत्साहित नहीं होता उसके द्वारा किये गये, यज्ञ, दान और तप इस लोक अथवा परलोक में कहीं भी कल्याणकारक नहीं होते हैं ।।६३।।

जिस व्यक्ति का चित्त बालक, वृद्ध और दुःखियों के प्रति कठोर होता है, मेरे मत में वह (व्यक्ति) निश्चय ही मनुष्य नहीं राक्षस है ।।६४।।

संताप उत्पन्न करने वाली, दुर्गन्ध वहन करने वाली जो नरक की अग्नि, इनको मेरे, सामीप्य के कारण (पीड़ित नहीं कर रही है) ।।६५।।

इसके अतिरिक्त इनको मूर्छा प्रदान करने वाली भूख और प्यास का दुःख भी समाप्त हो गया है । हे भद्र ! मैं इस सबको स्वर्ग से भी अधिक सुखकर मानता हूं । मेरे कष्ट पाने से यदि (यहाँ के) बहुत से दुःखी व्यक्ति सुख का अनुभव करेंगे तो भला मैं वह सुख उनको क्यों न प्राप्त कराऊँ । अतः आप देर न करें और स्वर्ग चले जायें ।।६६-६७।।

यमदूत बोला—

(देखिये,) ये धर्मराज और देवराज इन्द्र आपको स्वर्ग के लिए, लेने आ गये हैं । हे राजन् ! अब आपको जाना ही होगा, इसलिये स्वर्ग चलिये ।।६८।।

धर्म उवाच—

नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वया सम्यगुपासितः । विमानमेतदारुह्य मा विलम्बस्व गम्यताम् ।।६९

राजोवाच—

नरके मानवा धर्म पीड्यमानाः सहस्रशः । त्राहीत्यमी चक्रंदन्ति मामतो न व्रजाम्हम् ।।७०

इन्द्र उवाच—

कर्मणा नरकप्राप्तिरेषां पापिष्ठ कर्मणाम् । स्वर्गस्त्वयापि गन्तव्यो नृप पुण्येन कर्मणा ।।७१

राजोवाच—

यदि जानासि धर्म त्वं त्वं वा देवशतक्रतो । मम यावत् प्रमाणं तु शुभं तद्वक्तुमर्हथः ।।७२

धर्म उवाच—

आब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा वा दिवितारकाः ।
यथा वा वर्षतो धारा गंगायां सिकता यथा ।।७३

असंख्येया महाराजन् नाना योनिषु जन्तवः । तथा तवापि पुण्यस्य संख्या नैवोपपद्यते ।।७४
अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुर्वतः । तदेव शतसाहस्रसंख्या नीतं त्वया नृप ।।७५
तद्गच्छ त्वं नृप श्रेष्ठ तद् भोक्तुममरालयम् । एते तु नरके पापं क्षपयन्तु स्वकर्मजम् ।।७६

धर्मराज बोले —

हे राजन् ! मैं आपको आदर सहित स्वर्ग चलने के लिए आया हूं । अतः आप देर न करते हुए (शीघ्र ही) इस विमान पर चढ़कर, स्वर्ग के लिए चलिये ।।६९।।

राजा बोला—

हे धर्मराज ! यहां नरक में सैंकड़ों मनुष्य पीड़ित हो रहे हैं, 'बचाओ', 'बचाओ' इस प्रकार ये सभी दुःखी प्राणी, मुझे पुकार रहे हैं, इसलिए मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा ।।७०।।

इन्द्र बोले—

इन पापियों को इनके पापपूर्ण कर्मों के कारण ही नरक मिला है और हे राजन् ! आपके पुण्य कर्मों के कारण ही आपको स्वर्ग मिला है । अतः आपको स्वर्ग चलना चाहिये ।।७१।।

राजा बोला—

हे धर्मराज ! आप और हे शची पति, इन्द्र ! आप मेरे जितने भी शुभ कर्म हैं, यदि जानते हैं तो कृपा करके उन सबको कहिंगे ।।७२।।

धर्मराज बोले—

हे राजन् ! जितने समुद्र के भीतर जल बिन्दु हैं अथवा आकाश में जितने तारे हैं अथवा वर्षाकाल में जितनी धाराओं में वर्षा होती है अथवा गंगा में जितने सिकता कण हैं ।।७३।।

अथवा जिस प्रकार नाना योनियों में असंख्य प्राणी हैं उसी प्रकार तुम्हारे पुण्यों की गणना भी सम्भव नहीं है ।७४।।

और साथ ही आज इन नारकीय प्राणियों पर दया करते हुए, आपके सभी पुण्य पुनः सौ हजार की संख्या वाले हो गये हैं ।।७५।।

अतः हे नृप श्रेष्ठ ! उन अपने पुण्यों को भोगने के लिए आप स्वर्गलोक चलिए । ये पापी भी अपने कर्मों के कारण ही, वहां नरक में पड़े हुए हैं ।।७६।।

राजोवाच--

कथं स्पृहां करिप्यन्ति मत्सम्पर्काय मानवाः । यदि मत्संनिधावेषामुत्कर्षो नोपपद्यते ।।७७

तस्माद्यत् सुकृतं किञ्चिन्ममास्ति त्रिदशाधिप ।
मुच्यन्तां तेन नरकात् पापिनो यातनागताः ।।७८

इन्द्र उवाच--

एवमूर्ध्वतरं स्थानं त्वया प्राप्तं महीपते । एतांस्तु नरकात् पश्य विमुक्तान् पापकर्मिणः ।।७९

पुत्र उवाच—

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः । विमानं चाधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ।।८०
अहं चान्ये च ये तत्र यातनाभ्यः परिच्युताः । स्वकर्मफलनिर्दिष्टं ततो योन्यन्तरं गताः ।।८१
एवमेते समाख्याता नरका द्विजसत्तम । येन येन च पापेन यां यां योनिमुपैति वै ।।८२
तत् तत् सर्वं समाख्यातं यथा दृष्टं मया पुरा । पुरानुभवजं ज्ञानमवाप्य कथितं तव ।।
अतः परं महाभाग किमन्यत् कथयामि ते ।।८३

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे पिता पुत्र संवादे नरकस्योद्धार वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ।

राजा बोला—

मनुष्य मेरे सम्पर्क के लिए किस प्रकार स्पृहा करेंगे । यदि इन (नारकीय) मनुष्यों को मेरे सम्पर्क से अधिक सुख नहीं मिलता ।।७७।।

हे देवों के राजा ! इसलिए जो भी मेरे कुछ पुण्य कर्म है, उन (पुण्य कर्मों) से इन यातना सहन करने वाले पापियों को नरक से मुक्त कर दीजिये ।।७८।।

इन्द्र बोले—

हे महीमते ! ऐसा करके तो आपने और भी उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है । (अतः तुम) इन पापियों को भी नरक से विमुक्त हुआ देखो ।।७९।।

पुत्र बोला—

तत्पश्चात् उस राजा के ऊपर पुष्प वृष्टि हुई और स्वयं भगवान् इस राजा को विमान पर बैठा कर स्वर्ग लोक ले गये ।।८०।।

और (उसके बाद) वहां (नरक) की यातनाओं से छूटकारा पाकर मैं और अन्य (नारकीय प्राणी) अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में चले गये ।।८१।।

हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार मैंने इन (विभिन्न) नरकों का कथन किया और मनुष्य जिन-जिन पापों के करने से विभिन्न योनियों में जन्म लेते हैं ।।८२।।

वह सब जैसा मैंने (स्वयं) प्राचीन काल (पूर्व जन्मों) में देखा वैसा ही कथन कर दिया है । इस प्रकार मैंने अपने पूर्व जन्मों के अनुभव से प्राप्त ज्ञान को आपसे कह दिया हैं । हे महाभाग ! इसके आगे और क्या मैं तुम्हें बताऊँ ।।८३।।

इस प्रकार मा० म० पु० में पिता पुत्र संवाद में नरकोद्धार वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षोडशोऽध्यायः

पितोवाच—

कथितं मे त्वया वत्स संसारस्य व्यवस्थितम् । स्वरूपमपि देहस्य घटीयन्त्रवदव्ययम् ।।१
तदेवमेतदखिलं ममावगतमीदृशम् । किं मया वद कर्त्तव्यमेवमस्मिन् व्यवस्थिते ।।२

पुत्र उवाच—

यदि मद्वचनं तात श्रद्धास्यविशंकितः । तत्परित्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थमना भव ।।३
तमनुष्ठाय विधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् । आत्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहः ।।४
एकान्तशीलो वश्यात्मा भव भिक्षुरतंद्रितः । तत्र योग-परो भूत्वा बाह्य स्पर्श-विवर्जितः ।।५
ततः प्राप्स्यसि तं योगं दुःख-संयोग भेषजम् । मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसंज्ञितम् ।।
तत्संयोगान्नते योगो भूयो भूतैर्भविष्यति ।।६

पितोवाच—

वत्स योगं ममाचक्ष्व मुक्तिहेतुमतः परम् । येन भूतैः पुनर्भूतो नेदृग्दुःखमवाप्नुयाम् ।।
यत्रासक्तिपरस्यात्मा मम संसारबन्धनैः ।।७

पिता बोले —

हे वत्स ! घटी यन्त्र के समान (गति वाले) कभी समाप्त न होने वाले, अत्यन्त निकृष्ट (प्रकृति) वाले, इस संसार के और देह के अव्यय स्वरूप और व्यवस्था को, तुमने मुझसे कहा ।।१।।

इस प्रकार के (स्वरूप वाले) इस संसार को मैंने पूर्ण रूप से जान लिया है। अब मुझे बताओ कि इस प्रकार की स्थिति में मुझे क्या करना चाहिये ।।२।।

पुत्र बोला —

हे तात ! यदि आप मेरे वचनों पर शंकारहित होकर आस्था रखते हैं तो (इस) गृहस्थ जीवन को त्यागकर वानप्रस्थ जीवन में मन लगाइये ।।३।।

तो उस आचरण पद्धति को विधिवत् करके और अग्नि परिग्रह को छोड़कर, अपनी आत्मा में आत्मा को प्रतिष्ठापित करते हुए, द्वन्द्व रहित और परिग्रह रहित होकर ।।४।।

एकान्त वासी, आत्म निग्रही, आलस्य रहित, भिक्षु बनिये। और उसी स्थिति में योग का आश्रय लेकर, बाह्य स्पर्शादि सुखों का परित्याग कर दीजिये ।।५।।

तत्पश्चात् आप उस उपमा रहित, नाम रहित, अकथनीय, दुःख के संयोग की एक मात्र औषधि, मुक्ति के एक मात्र उपाय, उस योग को प्राप्त कर लेंगे। (और) उस योग के संयोग से आपका पुनः (इस मृत्युलोक में) अथवा इस मनुष्य योनि में जन्म नहीं होगा ।।६।।

पिता बोले—

हे वत्स ! इसके पश्चात् तुम मुझे उस उत्कृष्ट योग को बताओ जो मुक्ति का हेतु है और जिससे कि संसार में आसक्त मैं पुनर्जन्मादि इस प्रकार के दुःखों को प्राप्त न करूँ ।।७।।

नेति योगमयोगोऽपि तं योगमधुना वद । संसारादित्यतापार्ति विप्लुष्यद्देहिमानसम् ।।८
ब्रह्मज्ञानाम्बुशीतेन सिञ्च मां वाक्यवारिणा ।।९
अविधाक्रुच्छ्रसर्पेण दष्टं तद्विषपीडितम् । स्ववाक्यामृतदानेन मां जीवय पुनर्मृतम् ।।१०
पुत्र-दार-गृह-क्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् । मां मोचयेष्ट सद्भाव विज्ञानोद्घाटनैस्त्वरन् ।।११

पुत्र उवाच —

श्रृणु तात यथा योगो दत्तात्रेयेण धीमता । अलर्काय पुरा प्रोक्तः सम्यक् पृष्टेन विस्तरात् ।।१२

पितोवाच —

दत्तात्रेयस्सुतः कस्य कथं वा योगमुक्तवान् । कश्चालर्को महाभागो यो योगं परिपृष्टवान् ।।१३

पुत्र उवाच —

कौशिको ब्राह्मणः कश्चित् प्रतिष्ठानेऽभवत् पुरे ।
सोऽन्यजन्मकृतैः पापैः कुष्ठरोगातुरोऽभवत् ।।१४
तं तथा व्याधितं भार्या पतिं देवमिवार्चयत् । पादाभ्यङ्गाङ्ग संवाहस्नानाच्छादनभोजनैः ।।१५
श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेन च ।।१६

अयोग प्रतीत होने वाले उस 'नेति योग' को मुझे बताओ जहाँ संसार रूपी आदित्य के ताप से दुःखी झुलसे हुए शरीर और मन वाले मुझको तुम ब्रह्म ज्ञान रूपी शीतल जल युक्त अपने वाक्य रूपी वारि से सींचो ।।८-९।।

अविद्या रूपी कष्टदायक सर्प के द्वारा काटे गये और उसके विष से पीड़ित हुए। अपने अमृत रूपी वाक्यों के दान से, मरे हुए मुझको फिर से जिलाओ ।।१०।।

पुत्र, पत्नी, घर और खेत आदि की ममता रूपी बेड़ियों से दुःखी, मुझको, अभिलषित श्रेष्ठ भाव के, ज्ञान के उद्घाटन द्वारा, शीघ्र छुड़ाओ ।।११।।

पुत्र बोला—

हे तात ! सुनिये, जिस योग को प्राचीन काल में विद्वान् दत्तात्रेय ने विधिपूर्वक पूछे जाने पर, विस्तार से, मदालसा के पुत्र अलर्क के लिए कहा ।।१२।।

पिता बोले —

(हे वत्स !) दत्तात्रेय किसके पुत्र थे और उन्होंने योग की व्याख्या क्यों की और अलर्क कौन महानुभाव थे, जिन्होंने (दत्तात्रेय से) योग पूछा ।।१३।।

पुत्र बोला—

प्राचीन काल में गोदावरी पर स्थित प्रतिष्ठान नामक नगर में कोई कौशिक नामक ब्राह्मण हुआ, वह अपने पूर्व जन्म के पापों के कारण से कुष्ट रोग से पीड़ित हुआ ।।१४।।

उस प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त पति की उसकी पत्नी ने देवता के समान पूजा की। पैरों की मालिश, दबाना, स्नान कराना, वस्त्र पहनाना, भोजन, बलगम, मल, मूत्र, रक्त प्रवाह का प्रक्षालन ।।१५-१६।।

रहस्येवोपचारेण प्रियसंभाषणेन च । सततं पूज्यमानोऽपि तयातीवविनीतया ।।१७
अतितीव्रप्रकोपत्वान्निर्भर्त्सयति दारुणः । तथापि प्रणता साध्वी तममन्यत दैवतम् ।।१८
तं तयाप्यतिबीभत्सं सर्वश्रेष्ठममन्यत । अचङ्क्रमणशीलोऽपि स कदाचिद् द्विजोत्तमः ।।१९
प्राह भार्यां नयस्वेति त्वं मां तस्या निवेशनम् ।
या सा वेश्या मया दृष्टा राजमार्गे गृहेसता ।।२०
तां मे प्रापय धर्मज्ञे सैव मे हृदि वर्त्तते । दृष्टा सूर्योदये बाला रात्रिश्चेयमुपागता ।।२१
दर्शनानंतरं सा मे हृदयान्नापसर्पति । यदि सा चारुसर्वाङ्गी पीनश्रोणिपयोधरा ।।
नोपगूहति तन्वंगी तन्मां द्रक्ष्यसि वै मृतम् ।।२२
वामः कामो मनुष्याणां बहुभिः प्राप्य चेतसः । ममाऽशक्तिश्च गमने संकुलं प्रतिभाति मे ।।२३
तत् तदा वचनं श्रुत्वा भर्त्तुः कामातुरस्य सा ।
तत् पत्नी व्याकुला जाता महाभागा पतिव्रता ।।२४
गाढं परिकरं बद्धा शुल्कमादाय चाधिकम् । स्कन्धे भर्त्तारमारोप्य जगाम मृदुगामिनी ।।२५
निशि मेघावृते व्योम्नि चलद्विद्युच्च दृश्यते । राजमार्गे प्रियं भर्तुश्चिकीर्षंती द्विजांगना ।।२६

और एकान्त में सेवा एवं प्रिय संभाषण से अति विनीत (उस पत्नी के द्वारा) निरन्तर पूजित होने पर भी उसका पति अति क्रोधी होने के कारण उसको कठोरता पूर्वक झिड़कता रहता था। फिर भी वह विनीत एवं साध्वी उसको देवता ही मानती थी ।।१७-१८।।

फिर भी उस अत्यन्त घृणित पति को वह सर्व श्रेष्ठ मानती थी। एक समय चलने-फिरने में असमर्थ बने उस द्विजश्रेष्ठ ने अपनी पत्नी से कहा मुझको तुम उस (वेश्या के घर ले चलो। जिसको कभी मैंने राजमार्ग के घर में देखा था।।१९-२०।।

मुझे तुम वहीं पहुंचा दो। हे धर्मज्ञे ! वही मेरे हृदय में बसी हुई है। उस स्त्री को मैंने सूर्योदय के समय देखा था और अब रात्रि आ गयी है ।।२१।।

लेकिन दर्शन के बाद से लेकर वह (वेश्या) मेरे हृदय से नहीं जा पा रही है। यदि सभी सुन्दर अंगों वाली, सुनितम्बिनी और पीन पयोधरा वह तन्वङ्गी मेरा आलिगन नहीं करती है तो तुम मुझे निश्चय ही मरा देखोगी ।।२२।।

मनुष्य के लिए कामदेव प्रायः टेढ़ा होता है। उस वेश्या को बहुत लोग चाहते हैं और मुझमें उसके पास तक जाने की शक्ति नहीं है, इसलिए आज मुझे बड़ा संकट प्रतीत होता है ।२३।।

अपने कामातुर पति का यह वचन सुनकर उस परमसौभाग्यशालिनी पतिव्रता व्याकुल हुई पत्नी ने अपनी कमर खूब कस ली और अधिक शुल्क लेकर, पति को अपने कंधे पर चढ़ाकर धीरे-धीरे (वेश्या के घर की ओर, चली ।।२४-२५।।

आकाश में बादल छाये हुए थे, रात्रि में जाते हुए चंचल विद्युत ही (उसका) मार्ग प्रदर्शन कर रही थी। इस प्रकार वह ब्राह्मण पत्नी अपने पति की इच्छा को (प्रिय को) पूरा करने की इच्छुक राजमार्ग (पर जा रही थी ।।२६।।

पथिशूले तदा प्रोतमचोरं चोरशङ्कया । माण्डव्यमतिदुःखार्तमंधकारे च स द्विजः ॥२७
पत्नीस्कंधसमारूढश्चालयामास कौशिकः । वामांगेनाथ संक्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह ॥२८
येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितो वृथा । इत्थं कष्टमनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः ॥२९
सूर्योदयेऽवशः प्राणैर्वियोक्ष्यति न संशयः । भास्करालोकनादेव स विनाशमवाप्स्यति ॥३०
तस्य भार्या ततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम् । प्रोवाच व्यथिता सूर्यो नैवोदयमुपेष्यति ॥३१
ततः सूर्योदयाभावादभवत् संतता निशा । बहून्यहः प्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः ॥३२

निः स्वाध्याय वषट्कारंस्वधास्वाहाविवर्जितम् ।
कथं नु खल्विदं सर्वं न गच्छेत् संक्षयं जगत् ॥३३

अहोरात्रव्यवस्थाया विना मासर्तुसंक्षयः । तत्संक्षयान्न त्वयने ज्ञायेते दक्षिणोत्तरे ॥३४
विना चायनविज्ञानं कालः संवत्सरः कुतः । पतिव्रताया वचनान्नोद्गच्छति दिवाकरः ॥३५
सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकाः क्रियाः । अग्नेर्विहरणं चैव क्रत्वभावश्च लक्ष्यते ॥३६

न कालेन विना चेष्टिर्न च यज्ञादिकाः क्रियाः ॥३७
नश्यंति सर्वभूतानि तमोभूते चराचरे ॥३८

मार्ग में शूली पर, चोर न होते हुए भी, वस्त्र की चोरी की आशंका से, घोर अंधकार में, अत्यन्त दुःखी, माढ़व्य नामक ब्राह्मण को, शूली पर लटकाया हुआ था ॥२७॥

पत्नी के कंधे पर बैठे हुए, उस (कोढ़ी ब्राह्मण) कौशिक के पैर लगने से (उसकी शूली) हिल गयी (अतः उससे उत्पन्न पीड़ा के कारण) क्रोधित होकर माण्डव्य ने उससे कहा—॥२८॥

जिस (व्यक्ति) ने इस प्रकार (लटके) हुए, कष्टकारी दशा को प्राप्त, दुःखित मुझको पैर से हिलाया है वह पापात्मा नीच ॥२९॥

सूर्योदय के साथ प्राणों से वियुक्त हो जायेगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। सूर्य को देखते ही वह विनाश को प्राप्त हो जायेगा ॥३०॥

उसकी वह (पतिव्रता) पत्नी इस अति दारुण शाप को सुनकर व्यथित होकर बोली– 'अब सूर्य का उदय ही नहीं होगा' ॥३१॥

तत्पश्चात् सूर्योदय के अभाव में, निरन्तर रात्रि ही रहने लगी। बहुत दिनों के बीतने पर, देवता भयभीत होकर ब्रह्माजी के पास गये ॥३२॥

स्वाध्याय, वषट् युक्त आहुतियों, हवनादि से रहित होकर कहीं यह संसार क्षय को प्राप्त न हो जाय ॥३३॥

रात्रि और दिन की व्यवस्था के अभाव में महीने भी नष्ट हो गये हैं और उनके अभाव में दक्षिणायण और उत्तरायण का भी ज्ञान नहीं होगा ॥३४॥

अयन का ज्ञान हुए बिना वर्ष कैसे हो सकता है और वर्ष के बिना काल का ज्ञान कैसे हो सकता है। (जब) पतिव्रता के वचन से सूर्य का उदय ही नहीं होगा ॥३५॥

उसके बिना स्नान, दान आदि क्रियाएं बन्द हो गयीं। अग्निहोत्र एवं यज्ञ का अभाव दृष्टिगोचर होने लगा है। और काल आदि के ज्ञान के बिना इष्टि आदि याज्ञिक क्रियाएं कैसे सम्भव हैं। इस अन्धकार के व्याप्त होने से सभी जड़ और चेतन प्राणी नष्ट हो जायेंगे ॥३६-३८॥

नैवाप्यायनमस्माकं बिना होमेन जायते । वयमाप्यायिता मर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः ।।३९
वृष्टचादिनानुगृह्णीमो मर्त्यान् सस्याभिवृद्धये ।
निष्पादिता स्वौषधीषु मर्त्या यज्ञैर्यजन्ति नः ।।४०
एवं वयं प्रयच्छामः कामान् यज्ञादिपूजिताः ।
अधो हि वर्षाम वयं मर्त्याश्चोर्ध्वं प्रवर्षिणः ।।४१
तोयवर्षेण हि वयं हविर्वर्षेण मानवाः । येऽस्माकं न प्रयच्छन्ति नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ।।४२
ऋतुभागं दुरात्मानः स्वयं वाश्नन्ति लोलुपाः । विनाशाय वयं तेषां तोयसूर्याग्निमारुताः ।।४३
क्षितिं च संदूषयामः पापानामपकारिणाम् । दुष्टतोयादिदोषेण तेषां दुष्कृतकर्मणाम् ।।
उपसर्गाः प्रवर्त्तंते मरणाय सुदारुणाः ।।४४
ये त्वस्मान् प्रीणयित्वा तु भुञ्जते शेषमात्मना ।
तेषां पुण्यतमान् ल्लोकान् वितरामो महात्मनाम् ।।४५
तन्नास्ति सर्वमेतद्धि न चोपायव्यवस्थितम् । कथं नु दिनसंगः स्यादन्योन्यमवदन् सुराः ।।४६
तेषामेव समेतानां यज्ञव्युच्छित्ति–शंकिनाम् । देवानां वचनं श्रुत्वा प्राह देवः प्रजापतिः ।।४७
तेजः परं तेजसैव तपसा च तपस्तथा । प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्वं वचनं मम ।।४८

न ही यज्ञादि के बिना हमारी तृप्ति हो सकेगी। मनुष्यों के यज्ञों के यथोचित भाग से संतुष्ट हम ।।३९।।

मनुष्यों को धन धान्य की समृद्धि के लिए, वर्षा आदि से अनुगृहीत करते हैं। औषधियों के उत्पन्न होने पर मनुष्य श्रेष्ठ सामग्रियों से युक्त, यज्ञादि का यजन करते हैं ।।४०।।

इस प्रकार यज्ञादि से पूजित हुए हम उनको अभिलषित वस्तुएं प्रदान करते हैं। इस प्रकार मनुष्यों के उर्ध्ववर्षण से हम (उनके लिए) पृथ्वी पर वर्षा करते हैं ।।४१।।

क्योंकि मनुष्यों की हविवर्षण के कारण ही हम मनुष्यों के लिए जल की वर्षा करते हैं। अतः जो हमें नित्य नैमित्तिक क्रियाएं प्रदान नहीं करते हैं ।।४२।।

और दुरात्मा, लालची वे) स्वयं ही याज्ञिक भाग को खा जाते हैं। हम उन अपकारियों के विनाश के लिए, जल, सूर्य, अग्नि और वायु तथा आकाश को दूषित करते हैं। और दूषित जल आदि के कारण उन दुष्कर्मियों को अनेक प्रकार के भयंकर रोग हो जाते हैं। जिससे उनकी मृत्यु हो जाती है ।।४३-४४।।

जो लोग हमें तृप्त करके यज्ञ के अवशिष्ट भाग को खाते हैं हम उन महात्माओं को पुण्य लोक प्रदान करते हैं ।।४५।।

इसलिए यह सब अव्यवस्था न हो इसका उपाय नहीं है। दिन, रात पुनः ठीक प्रकार कैसे हों, इस प्रकार देवता लोग आपस में बात करने लगे ।।४६।।

यज्ञ की विच्छिन्नता की आशंका से एकत्र हुए, शंकालु देवताओं के वचनों को सुनकर ब्रह्म देव ने कहा—।।४७।।

तेज का तेज से और तप का तप से ही शमन किया जाता है। अतः हे देवताओं मेरे वचनों को ध्यान पूर्वक सुनो ।।४८।।

पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः ।।४९
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्त्यानां भवतां तथा । तस्मात् पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम् ।।
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया ।।५०

पुत्र उवाच—

तैः सा प्रसादिता गत्वा प्राहेष्टं व्रियतामिति । अयाचन्त दिनं देवा भवत्विति यथा पुरा ।।५१

अनुसूयोवाच —

पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथंत्विति ।।५२
सम्मान्य तां तथा साध्वीं तथा प्रेष्यान्यहं सुराः । यथा पुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते ।।
यथा च तस्याः स पतिर्न शापान्नाशमेष्यति ।।५३

पुत्र उवाच—

एवमुक्त्वा सुरांस्तस्या गत्वा सा मन्दिरं शुभा ।।५४
उवाच कुशल पृष्टा धर्मं भर्तुस्तथात्मनः । कच्चिन्नंदसि कल्याणि स्वभर्तुः सुखदायिनी ।।५५
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसे ह्यधिकं पतिम् ।
भर्तुः शुश्रूषणादेव मया प्राप्तं महत् फलम् ।।५६

पतिव्रता के माहात्म्य के कारण सूर्य उदय नहीं हो रहा है ।।४९।।

और उस (सूर्य) के उदय न होने से आप लोगों की और मनुष्यों की हानि हो रही है। अतः (आप सब) जाकर अत्रि मुनि की पतिव्रता पत्नी अनुसूया को, सूर्य के उदय कराने के लिए प्रसन्न करो ।।५०।।

पुत्र बोला—

(तत्पश्चात्) उन सब (देवताओं) से प्रसन्न होकर वह अनुसूया बोली कि अभिलषित माँगिये—तब उन्होंने प्रार्थना की कि "रात दिन पहले के समान होने लगें" ।।५१।।

अनुसूया बोली —

पतिव्रता स्त्री का माहात्म्य कभी भी कम न हो ।।५२।।

तथापि हे देवताओ ! साध्वी नारी का सम्मान करो मैं भी पतिव्रता को समझाऊंगी, जिससे पुनः रात दिन की व्यवस्था उत्पन्न हो जाए ।

और (वैसा) करूंगी जिससे उसका पति भी शाप के कारण मृत्यु को प्राप्त न हो ।।५३।।

पुत्र बोला—

देवताओं को ऐसा कहकर, वह कल्याणी अनुसूया उस ब्राह्मणी के घर पर गयी ।।५४।।

और उसके धर्म और पति के कुशल क्षेम का प्रश्न करते हुए बोली कि—हे कल्याणी ! अपनी पति की सेवा करने वाली, क्या तुम आनन्द से हो ? ।।५५।।

क्या अपने पति को सब देवताओं से बढ़कर मानती हो ? (अनुसूया के इन वचनों को सुनकर वह बोली—) पति की सेवा से ही मैंने महान् फल प्राप्त किया है ।।५६।।

सर्वकामफलावाप्तिः पत्युः शुश्रूषणात् स्त्रियाः । ऋणानि मनुष्येण साध्वि देयानि सर्वदा ।।५७
तथात्मवर्णधर्मेण कर्तव्यो धनसञ्चयः । प्राप्तश्चार्थस्तथा पात्रे विनियोज्यो विधानतः ।।५८
सत्यार्जवतपोदानदयायुक्तो भवेत् तदा । क्रिया च शास्त्रनिर्दिष्टा रागद्वेषविवर्जिता ।।५९
कर्त्तव्याहरहः श्रद्धा-पुरस्कारेण शक्तितः । स्वजातिविहितानेवं लोकान् प्राप्नोति मानवः ।।६०
क्लेशेन महता साध्वि प्राजापत्यादिकान् क्रमात् । स्त्रियश्चैवं समस्तस्य नरैर्दुःखार्जितस्य वै ।।६१
पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यः पतिशुश्रूषयैव हि । नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम् ।।
भर्तुः शुश्रूषयैवै ता लोकानिष्टाञ्जयन्ति हि ।।६२
तस्मात् साध्वि महाभागे पतिशुश्रूषणं प्रति । त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्त्ता परा गतिः ।।६३
यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताऽभ्यर्चनं सत्क्रियाञ्च ।
तस्यार्द्धं वै केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ।।६४

पुत्र उवाच--

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिपूज्य तदादरात् । प्रत्युवाचात्रिपत्नी तामनसूयामिदं वचः ।।६५

स्त्री को सभी इच्छाओं के फल की प्राप्ति पति की सेवा से ही सद्यः होती है । हे साध्वि ! मनुष्य को पांच ऋण सदैव अवश्य देने चाहियें ।।५७।।

इसलिए अपने वर्ण और धर्म के अनुसार ही धन का सञ्चय करना चाहिए । धन प्राप्त करने के पश्चात् विधि वंक उसको सुपात्र में व्यय करना चाहिए ।।५८।।

इसके अतिरिक्त सदैव सत्यता, ऋजुता, तप. दान और दया से युक्त होना चाहिये । और (मनुष्य की) क्रियाएं भी शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट राग द्वेष से रहित होनी चाहियें ।।५९।।

प्रतिदिन यथा शक्ति श्रद्धा सहित (व्यवहार) करना चाहिए । इस प्रकार अपनी जाति द्वारा विहित आचरण करते हुए व्यक्ति उत्तम लोक प्राप्त करता है ।।६०।।

हे साध्वि ! इस प्रकार महान् क्लेश उठाने पर प्राजापत्य आदि लोकों की प्राप्ति होती है । परन्तु स्त्रियाँ केवल पति की सेवा करने से ही पुरुषों के दुःख सहकर उपार्जित किये हुए पुण्य का आधा भाग प्राप्त कर लेती है ।।६१।।

स्त्रियों के लिए न यज्ञ का, न श्राद्ध का और न उपवास का पृथक् विधान किया गया है । वे पति सेवा मात्र से ही इष्ट लोकों को जीत लेती हैं (प्राप्त कर लेती हैं) ।।६२।।

इसलिये हे महाभागे ! पति सेवा में सदैव अपनी बुद्धि (को स्थिर) रखो क्योंकि पति ही नारी की परम गति है ।।६३।।

पति जो कुछ भी, देवता, पितर तथा अतिथियों का सत्कारपूर्वक पूजन से अर्जित करता है उस (सब) के आधे भाग को नारी केवल अनन्य भाव से पति की सेवा करके प्राप्त कर लेती है ।।६४।।

पुत्र बोला—

उस (अनुसूया) के उन वचनों को सुनकर, पश्चात् पति की आदरपूर्वक पूजा करके, वह ब्राह्मणी अत्रि की पत्नी अनुसूया से इस प्रकार के वचन बोली—।।६५।।

धन्याऽस्म्यनुगृहीताऽस्मि देवैश्चाप्यवलोकिता । यन्मे प्रकृति कल्याणि श्रद्धां वर्धयसे पुनः ॥६६
जानाम्येतन्न नारीणां कच्चित् पतिसमा गतिः । तत्प्रीतिश्चोपकाराय इह लोके परत्र च ॥६७
पतिप्रसादादिह च प्रेत्य चैव यशस्विनी । नारीसुखमवाप्नोति नार्या भर्ता हि दैवतम् ॥६८
सा त्वं ब्रूहि महाभागे प्राप्ताया मम मन्दिरम् ।
आर्यायाः किन्नु कर्त्तव्यं मयाऽऽर्येणाऽपि वा शुभे ॥६९

अनुसूयोवाच -

एते देवाः सहेन्द्रेण मामुपागम्य दुःखिताः । तद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तंनिरूपणाः ॥७०
याचन्तेऽहर्निशा संस्थां यथावदविखंडिताम् । अहंतदर्थमायाता शृणु च तद्वचो मम ॥ ७१
दिनाभावात् समस्तानामभावो यागकर्मणाम् । तदभावात् सुराः पुष्टिं नोपयान्ति तपस्विनि ॥७२
अह्नश्चैव समुच्छेदादुच्छेदः सर्वकर्मणामू । तदुच्छेदादनावृष्टया जगदुच्छेदमेष्यति ॥७३
तत्त्वमिच्चसि चेदेतत् जगदुद्धर्त्तमापदः । प्रसीद साध्वि चोकानां पूर्ववद् वर्त्ततां रविः ॥७४

बाह्मण्युवाच—

माण्डव्येन महाभागे शप्तो भर्त्ता ममेश्वरः । सूर्योदय विनाशं त्वं प्राप्स्यसीत्यति मन्युना ॥७५

हे कल्याणि ! मैं धन्य हूं, अनुगृहीत हूं, देवताओं को भी मैंने देख लिया है और साथ ही (आप) मेरे स्वभाव में पति के प्रति श्रद्धा बढ़ा रही हैं ॥६६॥

मैं जानती हूं कि पति सेवा के अतिरिक्त नारी के लिए अन्य सद्गति क्या होगी ? क्योंकि उसके प्रति प्रेम ही नारी को इह लांक और परलोक में उत्तम फल दायक होता है ॥६७॥

हे यशस्विनि ! स्त्री पति को सेवा से, प्रसन्न करके, उसकी कृपा से ही सुख प्राप्त करती है । वस्तुतः नारी के लिए पति ही देवता है ॥६८॥

हे महाभागे ! वही (सब कुछ) आपने मेरे घर आकर उपदेश किया है । हे कल्याणी ! आर्य किंवा आर्या के लिए कहिए मेरे योग्य क्या सेवा है ? ॥६९॥

अनुसूया बोली—

इन्द्र सहित इन सब देवताओं ने दुःखित होकर, मेरे पास आकर बताया कि तुम्हारे वचनों के प्रभाव से, उत्तम कर्मों के निमित्तरूप रात्रि और दिन नहीं हो रहे हैं ॥७०॥

(और इस समय तुमसे) पुनः दिन और रात की अविखण्डित व्यवस्था की पूर्व के समान स्थिति की याचना कर रहे हैं । मैं इन सबके लिए ही आयी हूं । तुम मेरे वचनों को ध्यानपूर्वक सुनो ॥७१॥

क्योंकि दिन के अभाव में समस्त यज्ञ कर्मों का अवसान हो गया है और उन (यज्ञादि) के अभाव में हे तपस्विनि ! देवता पुष्टि को प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥७२॥

क्योंकि दिनों के उच्छेद से ही समस्त कर्मों का उच्छेद हो गया है और कर्मों (यज्ञादि के उच्छेद से अनावृष्टि होगी, और (अनावृष्टि से) सम्पूर्ण जगत् ही विनष्ट हो जायेगा ॥७३॥

यदि तुम चाहती हो कि यह संसार इस विपत्ति से उबर जाए तो हे साध्वि ! तुम प्रसन्न होओ और सूर्य को पूर्ववत् लोकों में विचरण करने दो ॥७४॥

ब्राह्मणी बोली —

हे महाभागे ! माण्डव्य ने अति क्रुद्ध होकर मेरे ईश्वर रूपी पति को शाप दिया कि "तुम सूर्योदय होते ही मृत्यु को प्राप्त करोगे" ॥७५॥

अनुसूयोवाच—

यदि ते रोचते भद्रे ततस्तद्वचनादहम् । करोमिपूर्ववद् देहं भर्त्तारं वचनात् तव ।।७६
मयापि सर्वथा स्त्रीणां माहात्म्यं वरवर्णिनि। पतिव्रतानामाराध्यमिति सम्मानयामि ते ।।७७

पुत्र उवाच—

तथेत्युक्ते तथा सूर्यमाजुहाव तपस्विनी । अनसूयार्घ्यमुद्यम्य दशरात्रे तदा निशि ।।७८
ततो विवस्वान् भगवान् फुल्लपद्मारुणाकृतिः । शैलाधिराजमुदयमारुरोहोरुमण्डलः ।।७९
समनन्तरमेवास्या भर्त्ता प्राणैर्व्ययुज्यत । पपात च महीपृष्ठे पतन्तं जगृहे च सा ।। ८०

अनुसूयोवाच —

न विषादस्त्वया भद्रे कर्तव्यः पश्यमेबलम् । पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किंचिरेण मे ।।८१
यथा भर्तृ समं नान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् । रूपतः शीलतो बुद्ध्या वाङ्माधुर्यादिभूषणैः ।।८२
तेन सत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तः पुनर्युवा । प्राप्तोऽनुजीवितं भार्या सहायः शरदां शतम् ।।८३
यथा भर्तृ समं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् । तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः ।।८४
कर्मणा, मनसा वाचा भर्तु राराधनं प्रति । यथा ममोद्यमो नित्यं तथायं जीवनाद् द्विजः ।।८५

अनुसूया बोली—

हे भद्रे ! यदि तुमको अच्छा लगे तो मैं अपने वचनों से तुम्हारे पति के शरीर को पूर्ववत् कर दूंगी ।।७६।।

हे वरवर्णिनि ! मैंने भी पतिव्रता स्त्रियों के माहात्म्य की सदैव प्रशंसा की है और उसे आराध्य माना है। इसलिये मैं तुम्हारा सम्मान करती हूं ।।७७।।

पुत्र बोला—

'वैसा ही हो' ऐसा कहने पर, उस तपस्विनी ने सूर्य का आह्वान किया। तत्पश्चात् अनुसूया ने दस रातों की एक रात्रि में सूर्योदय होने के लिए अर्घ्य दिया ।।७८।।

तत्पश्चात् विस्तरित मण्डल युक्त, प्रफुल्लित और लाल कमल के समान अरुण आभा वाले, सूर्य भगवान् हिमालय से उदित हुए ।।७९।।

इसके साथ ही इस (ब्राह्मणी के पति के भी प्राण निकल गये और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा, गिरते हुए उस ब्राह्मण को उस (ब्राह्मणी) ने संभाला (पकड़ लिया) ।।८०।।

अनुसूया बोली—

हे कल्याणि ! तुमको दुःख नहीं करना चाहिए और मेरे बल को देखो जिसे मैंने पति की चिरकालिक सेवा से ही प्राप्त किया है ।।८१।।

यदि मैंने कभी किसी अन्य पुरुष को पति के समान न देखा हो और अपने रूप, शील, बुद्धि, वाणी तथा मृदुता आदि भूषणों से (सदैव पति की सेवा की हो) ।।८२।।

तो उस सत्य (के प्रभाव) से यह ब्राह्मण व्याधि रहित होकर पुनः युवावस्था को प्राप्त करके, जीवित होकर, अपनी पत्नी के साथ सौ वर्षों तक जीवित रहे ।।८३।।

यदि मैंने पति के तुल्य किसी अन्य देवता को (स्वीकार) न किया हो तो उस सत्य (के प्रभाव) से यह ब्राह्मण जीवित हो जाए ।।८४।।

और यदि मैंने मन, वचन और कर्म से पति की आराधना की हो, और मेरा नित्य परिश्रम भी पति की सेवा में ही रहा हो, तो यह ब्राह्मण जीवित हो जाए ।।८५।।

पुत्र उवाच—

ततो विप्रः समुत्तस्थौ व्याधिमुक्तः पुनर्युवा । स्वभाभिर्भासयन् वेश्म वृंदारक इवाजरः ॥८६

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानि सस्वनुः । लेभिरे च मुदं देवा अनसूयामथाब्रुवन् ॥८७

देवा ऊचुः—

वरं वृणीष्व कल्याणि देवकार्यं महत् कृतम् । आदित्योदयसद्भावाद वरं वरय सुव्रते ॥
त्वया यस्मात् ततो देवा वरदास्ते तपस्विनि ॥८८

अनुसूयोवाच—

यदि देवाः प्रसन्ना मे पितामहपुरोगमाः । वरदा वरयोग्या च यद्यहं भवतां मता ॥८९

तद्यांतु मम पुत्रत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । योगं च प्राप्नुयां भर्तृसहिता क्लेशमुक्तये ॥९०

पुत्र उवाच—

एवमस्त्विति देवास्तां ब्रह्मविष्णुशिवादयः । उक्त्वा जग्मुर्यथा न्यायमनुमान्य तपस्विनीम् ॥९१

ततः काले बहुतिथे द्वितीयो ब्रह्मणः सुतः । स्वभार्यां भगवानत्रिरनसूयामपश्यत ॥९२

ऋतुस्नातां सुचार्वंगीं लोभनीयोत्तमाकृतिम् । सकामो मनसा भेजे स मुनिस्तामनिन्दिताम् ॥९३

तस्याभिपश्यतस्तां तु विकारो योऽभ्यजायत । तमपोवाह पवनस्तिर्यगूर्ध्वं च वेगवान् ॥९४

पुत्र बोला—

तत्पश्चात् वह ब्राह्मण पुनः युवावस्था को प्राप्त कर निरोग होकर उठ खड़ा हुआ। वह अपने शरीर की कान्ति से देवराज इन्द्र के समान प्रतीत हो रहा था ॥८६॥

इसके बाद देवताओं ने प्रसन्न होकर, आकाश से पुष्प वर्षा की तथा मंगल वाद्य बजाए और बोले—॥८७॥

देवता बोले—

हे कल्याणि ! तुमने देवताओं का महान् कार्य किया है अतः वर माँगो । हे सुव्रते ! इस आदित्य (सूर्य) के उदय के सद्भाव से तुम वर मांगो । इसी कारण हे देवी हम देवता लोग तुमको वरदान देना चाहते हैं ॥८८॥

अनुसूया बोली—

यदि पितामह पुरस्सर देवता मुझ पर प्रसन्न हैं और मैं आपके मत में योग्य हूं तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर मेरे पुत्रत्व को प्राप्त करें और पति सहित क्लेश की मुक्ति के लिए, मैं योग को प्राप्त करूं ॥८९-९०॥

पुत्र बोला—

(तत्पश्चात्) ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, उसको 'ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर तथा अन्य प्रकार से भी उस तपस्विनी अनुसूया का सम्मान करके, अपने-अपने धाम को चले गये ॥९१॥

तत्पश्चात् बहुत समय के बाद, वर्षा ऋतु में ब्रह्मा के द्वितीय पुत्र, भगवान् अत्रि ने, अपनी पत्नी अनसूया को (प्रेम पूर्वक) देखा ॥९२॥

पुष्पवती, सुन्दर अंगों वाली लोभनीय आकृति वाली, प्रशंसनीय उसको देखकर, मुनि काम के वशीभूत हो गये ॥९३॥

उसको उस प्रकार की दृष्टि से देखते हुए (मुनि के मन में) जो विकार उत्पन्न हुआ उससे ही तिरछी और उर्ध्व गति वाला वेगवान् वायु बहने लगा ॥९४॥

ब्रह्मरूपं च शुक्लाभं पतमानं समन्ततः। सोमरूपं रजोरूपं दिशस्तं जगृहुर्दश ।।९५
स सोमो मानसो जज्ञे तस्यामत्रेः प्रजापते। पुत्रः समस्ततत्त्वानामायुराधार एव च ।।९६
तुष्टेन विष्णुना जज्ञे दत्तात्रेयो महात्मना। स्वशरीरात् समुत्पन्नः सत्त्वोद्रिक्तो द्विजोत्तमः ।।९७
दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनसूयास्तनं पपौ। विष्णुरेवावतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेः सुतोऽभवत् ।।९८
सप्ताहात् प्रच्युतो मातुरुदरात् कुपितो यतः। हैहयेन्द्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ।।९९
दृष्ट्वात्रौ कुपितः सद्यो दग्धुकामः स हैहयम्। गर्भवासमहायास दुःखामर्ष-समन्वितः ।।१००
दुर्वासास्तमसायुक्तो रुद्रांशः सोऽभ्यजायत। इति पुत्रत्रयं तस्या जज्ञे ब्रह्मेशवैष्णवम् ।।१०१
सोमो ब्रह्माभवद् विष्णुर्दत्तात्रेयोऽभ्यजायत। दुर्वासाः शंकरो जज्ञे वरदानाद् दिवौकसाम् ।।१०२
सोमः स्वरश्मिभिः शीतैर्वीरुदौषधिमानवान्। आप्याययन् सदा स्वर्गे वर्त्तते स प्रजापतिः ।।१०३
दत्तात्रेयः प्रजाः पाति दुष्टदैत्यनिबर्हणात्। शिष्टानुग्रहकृद्योगी ज्ञेयश्चांशः स वैष्णवः ।।१०४

और श्वेत आभा वाले, गिरते हुए, सोम रूप में रजो रूप से युक्त ब्रह्म रूप (तत्त्व) को दसों दिशाओं ने ग्रहण कर लिया ।।९ ।।

इस प्रकार वह चन्द्रमा उस (अनसूया) में (उत्पन्न) प्रजापति अत्रि का मानस पुत्र हुआ, जो समस्त प्राणियों की आयु का आधार था ।।९६।।

भगवान् विष्णु ने, अपने शरीर के सत्त्वोद्रेक से उत्पन्न कर ब्राह्मण श्रेष्ठ महात्मा दत्तात्रेय को उत्पन्न किया ।।९७।।

जो बाद में 'दत्तात्रेय' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ इस प्रकार विष्णु के अंश से उत्पन्न, अनसूया का स्तन पान करते हुए, अत्रि का द्वितीय पुत्र हुआ। विष्णु ही अवतीर्ण होकर अत्रि के द्वितीय पुत्र बने ।।९८।।

अभिमानी हैहयराज द्वारा (आश्रम में) आकर अपराध किये जाने पर ये (दुर्वासा) क्रुद्ध होकर एक सप्ताह में ही माता के गर्भ से निकल आये थे ।।९९।।

क्रुद्ध हुए अत्रि पुत्र दुर्वासा हैहय राज को शीघ्र ही जलाकर भस्म करने को इच्छुक हुए। इस प्रकार गर्भ में निवास के महान् कष्टकारी दुःखों से क्रोध युक्त ।।१००।।

दुर्वासा, रुद्र के तामस अंश से उत्पन्न हुए। इस प्रकार उसने ब्रह्मा, विष्णु और शिव के (अंशों से) तीन पुत्रों को जन्म दिया ।।१०१।।

जिनमें सोम (चन्द्रमा) ब्रह्मा के, दत्तात्रेय विष्णु के और दुर्वासा शंकर के अंशों से देवताओं के वरदान स्वरूप उत्पन्न हुए ।।१०२।।

इनमें चन्द्रमा प्रजापति अपनी शीतल किरणों से वृक्षों औषधियों तथा मनुष्यों को तृप्त करता हुआ, सदैव स्वर्ग में ही रहता है ।।१०३।।

(और) दत्तात्रेय दुष्ट दैत्यों के अन्यायों से प्रजाओं की रक्षा करते हैं। विष्णु के अंश से उत्पन्न, वह योगी और सज्जनों पर अनुकम्पा करने वाले जाने जाते हैं ।।१०४।।

निर्दहत्यवमंतारं दुर्वासाभगवानजः । रौद्रभावं समाश्रित्य दङ्मनोवाग्भिरुद्धतः ॥१०५
सोमत्वं भगवानत्रिः पुनश्चक्रे प्रजापतिः । दत्तात्रेयोऽपि विषयान् योगस्थो बुभुजे हरिः ॥१०६
दुर्वासाः पितरं त्यक्त्वा मातरं चोत्तमं व्रतम् । उन्मत्ताख्यं समाश्रित्य परिबभ्राम मेदिनीम् ॥१०७
मुनिपुत्रवृतः योगी दत्तात्रेयोऽप्यसङ्गिताम् । अभीप्समानः सरसि निममज्ज चिरं विभुः ॥१०८
तथापि तं महात्मानमतीव-प्रियदर्शनम् । तत्यजुर्न कुमारास्ते सरसस्तीरसंश्रयाः ॥१०९
दिव्ये वर्षशते पूर्णे यदा तेनत्यजन्ति तम् । तत् प्रीत्या सरसस्तीरं सर्वे मुनिकुमारकाः ॥११०
ततो दिव्यांबरधरां सुरूपां सुनितम्बिनीम् । नारीमादाय कल्याणीमुत्ततार जलान्मुनिः ॥१११
स्त्रीसन्निकर्षिणं ह्येते परित्यक्ष्यंति मामिति । मुनिपुत्रास्ततो योगेस्थास्यतीति विचिन्तयन् ॥११२
तथापि ते मुनिसुता न त्यजन्ति यदा मुनिम् । ततः सह तया नार्या मद्यपानमथाकरोत् ॥११३
सुरापानरतं तेन सभार्यं तत्यजुस्ततः । गीतवाद्यादि वनिताभोगसंसर्गदूषितम् ॥११४
मन्यमाना महात्मानं तया सह बहिष्क्रियम् ॥११५

शिष्य मनुष्यों पर अनुग्रह करने वाले उस योगी को विष्णु का अंश समझना चाहिए। अज (जन्म रहित) भगवान् दुर्वासा अपमान करने वालों को (क्रोध से) जला डालते हैं। रौद्र भाव का आश्रय लेकर वे दृष्टि, मन एवं वाणी से बहुत उद्धत हैं ॥१०५॥

पुनः भगवान् अत्रि ने ब्रह्मा के अंश से सोम को (उत्पन्न) किया और विष्णु (के अंश से उत्पन्न) दत्तात्रेय भी योगी होकर, विषयों को (निर्लिप्त होकर) भोगता था ॥१०६॥

और दुर्वासा ने अपने माता-पिता को त्याग कर उन्मत्त (नामक) उत्तम व्रत का आचरण करते हुए पृथ्वी का परिभ्रमण किया ॥१०७॥

योगी दत्तात्रेय के, विषयों का संग करते हुए भी निर्लिप्त रहते हैं, इस वृत्तांत को सुनकर (एक बार) कुछ मुनि कुमार, उनके पास आये। (उस समय) वे चिरकाल के लिए भगवान् का ध्यान करने के लिए जल समाधि लेना चाह रहे थे ॥१०८॥

फिर भी उन प्रिय दर्शन वाले महात्मा (दत्तात्रेय) को तालाब के तट पर आये हुए, उन मुनि कुमारों ने नहीं छोड़ा ॥१०९॥

दिव्य सौ वर्षों के बीत जाने पर भी जब उनसे, उनको छुटकारा न मिला और वे सभी मुनि कुमार उसी तालाब के किनारे प्रसन्नतापूर्वक (रहने लगे) ॥११०॥

तो वे मुनि दिव्य वस्त्रों को धारण किये हुए, अत्यन्त सुन्दर, श्रेष्ठ नितम्बिनी, कल्याण करने वाली नारी को लेकर (समाधि के लिए) जल से बाहर आये ॥१११॥

यदि ये मुनि कुमार, मुझको स्त्री सन्निकर्ष के कारण छोड़ देते हैं तो मैं योगस्थ हो जाऊँगा। यह सोचते हुए (उन्होंने स्त्री का साथ किया) ॥११२॥

लेकिन फिर भी जब उन मुनि कुमारों ने उन योगी दत्तात्रेय को नहीं छोड़ा, तो दत्तात्रेय ने उस नारी के साथ मद्यपान करना प्रारम्भ किया ॥११३॥

तत्पश्चात् पत्नी सहित उनको सुरापान में रत देखकर स्त्री, गीत, वाद्यादि के भोग से दूषित मानते हुए, पत्नी के साथ निकृष्ट कार्य करते हुए उन महात्माओं को उन मुनि कुमारों ने छोड़ दिया ॥११४-११५॥

नावाप दोषं योगीशो वारुणीं स पिबन्नपि । अन्तावसायि-वेश्मान्तर्मातरिश्वा वसन्निव ॥११६

सुरां पिबन् सपत्नीकस्तपस्तेपे स योगवित् ।
योगीश्वरश्चिन्त्यमानो योगिभिर्मुक्तिकांक्षिभिः ॥११७
कस्यचित् त्वथ कालस्य कार्त्तवीर्योऽर्जुनो वली ।
कृतवीर्ये दिवंयाते मन्त्रिभिः स पुरोहितैः ॥११८
पौरैश्चात्माभिषेकार्थं समाहूतो ब्रवीदिदम् ।
नांहं राज्यं करिष्यामि मन्त्रिणो नरकोत्तरम् ॥११९

यदर्थं गृह्यते शुल्कं तदनिष्पादयन् वृथा । पण्यानां द्वादशं भागं भूपालाय वणिग्-जनाः ॥१२०
दत्त्वात्मरक्षिभिर्मार्गे रक्षितो याति दस्युतः । गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागं च कृषीवलाः ॥१२१
दत्त्वान्यद् भूभुजे दद्युर्यदि भागं ततोऽधिकम् । पण्यादीनामशेषाणां वणिजो गृह्णतस्ततः ॥१२२
इष्टापूर्त्तं विनाशाय तद्राज्ञश्चौरकर्मिणः । यदन्यैः पाल्यते लोकस्तद्वृत्त्येतरसंश्रितः ॥१२३
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चैव साधनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते ॥१२४
वापी-कूप-तडागानि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥१२५

वस्तुतः वे योगिराज नारी के साथ शराब पीते हुए भी उसके दोष से चाण्डाल के घर में स्थित वायु के समान दूषित नहीं हुए ॥११६॥

इस प्रकार योग ज्ञानी (दत्तात्रेय) मुक्ति के आकांक्षी योगियों के द्वारा चिन्तन किये जाते हुए, वह योगीश्वर पत्नी सहित सुरापान करते हुए, तप करते रहे ॥११७॥

तत्पश्चात् किसी समय महाबली कीर्तवीर्य अर्जुन (अपने पिता) कृत वीर्य के स्वर्ग चले जाने पर मंत्रियों, पुरोहितों तथा नगरवासियों के द्वारा अभिषेक के लिए उसे बुलाये जाने पर उसने ऐसा कहा— हे मंत्रियो ! मैं इस नरकोत्तर (नरक के समान) स्वरूप इस राज्य को नहीं करूंगा ॥११८-११९॥

जिस उद्देश्य से प्रजा से कर लिया जाता है यदि उसकी पूर्ति न की जाए तो उसको राज्य के द्वारा लेना व्यर्थ है। वैश्य अपनी आय का बारहवां भाग इसलिये देते हैं कि वे मार्ग में लुटेरों द्वारा लूटे न जायें। राजकीय अर्थ रक्षकों द्वारा वे व्यापार के लिए यात्रा कर सकें। ग्वाले घी, तक्र आदि का और किसान अपनी उपज का छटा भाग इसी उद्देश्य से देते हैं ॥१२०-१२१॥

जो राजा वैश्यों से उनकी सम्पूर्ण आय का अधिकांश भाग ले लेता हैं वह चोर है। यदि राजा को कर देकर भी प्रजा को (अपनी रक्षा के लिए) अन्य उपाय करना पड़ता है ॥१२२॥

तो वह राजा चोर है, इससे उसके इष्ट और पूर्त कर्मों का नाश होता है और यदि राजा के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्तियों से उसकी रक्षा हो तो कर लेने वाले राजा को निश्चय ही नरक जाना पड़ता हैं ॥१२३॥

अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदों का अनुष्ठान और वैश्व देवों का आतिथ्य इन सबको इष्ट कर्म कहा जाता है ॥१२४॥

झील, कुएँ, तालाब, और देव मंदिरों का निर्माण तथा याचकों को अन्नदान इत्यादि कर्मों को पूर्त कहा जाता है ॥१२५॥

गृह्णतो बलिषड्भागं नृपतेर्नरको ध्रुवम् । निरूपितमिदं राज्ञः पूर्वैः रक्षण वेतनः ।।
अरक्षंश्चोरतश्चोरस्तद्धनं नृपतेर्भवेत् ।।१२६
तस्माद्यदि तपस्तप्त्वा प्राप्तो योगित्वमीप्सितम् । भुवः पालनसामर्थ्ययुक्त एको महीपतिः।।१२७
पृथिव्यामस्त्रभृन्नाद्याप्यहमेवर्द्धिसंयुतः ।।१२८
ततो भविष्ये नात्मानं करिष्ये पापभागिनम् ।
तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा मन्त्रिमध्यस्थितोऽब्रवीत् ।।१२९
गर्गो नाम महाबुद्धिर्मुनिर्भूप वयोऽतिगः ।।१३०
यद्येवं कर्तुकामस्त्वं राज्यं सम्यक् प्रशासितुम् । ततः शृणुष्व मे वाक्यं कुरुष्व च नृपात्मज ।।१३१
भवत्या तु कृपयाविष्टस्तं तोषयितुमर्हति । दत्तात्रेयं महात्मानं सह्य-द्रोणी-कृताश्रमम् ।।
तमाराधय भूपाल पाति यो भुवन त्रयम् ।।१३२
योगयुक्तं महात्मानं सर्वत्र समदर्शिनम् । विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णं धरणीतले ।।१३३
यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान् पदमात्मनः । हृतं दुरात्मभिर्दैत्यैर्जघान च दितेः सुतान् ।।१३४

अर्जुन उवाच—

कथमाराधितो देवैर्दत्तात्रेयः प्रतापवान् । कथं वापहृतं दैत्यैरिन्द्रत्वं प्राप वासवः ।।१३५

महर्षियों ने प्रजा की आय के छटे भाग को प्रजा की रक्षा के लिए राजा का वेतन नियत किया है। इसलिए राजा यदि चोरों से प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता तो उसे पाप होता है ।।१२६।।

यदि मैं तपस्या करके अभीप्सित योग शक्ति प्राप्त कर लूं पृथ्वी पर मेरे समान दूसरा कोई शस्त्र-धारी न रहे और यदि मैं अपूर्व ऋद्धि सम्पन्न हो जाऊँ, तभी मैं पृथ्वी के पालन की शक्ति से युक्त एक मात्र राजा हो सकता हूं ।।१२७-१२८।।

यदि मैं इन सब शक्तियों से सम्पन्न हो जाऊँगा तभी मैं अपने दायित्व का पूर्ण निर्वाह कर सकने के कारण पाप का भागी नहीं बनूँगा ।

उन (राजा) के इस निश्चय को जानकर मध्य में स्थित मुख्यमंत्री गर्ग नामक वयोवृद्ध बुद्धिमान् मुनि बोले—।।१२९-१३०।।

यदि आप राज्य का भली प्रकार पालन करने के लिए, ऐसा (शक्ति सम्पन्न) होना चाहते हैं तो हे राजन् ! मेरे वचनों को ध्यानपूर्वक सुनकर कार्य रूप में परिणत कीजिये ।।१३१।।

आप उन (दत्तात्रेय) को भक्ति द्वारा प्रसन्न करके, उनकी कृपा प्राप्त करने में समर्थ हैं। अतः आपको सह्य पर्वत पर आश्रम में स्थित महात्मा दत्तात्रेय की, जो तीनों भुवनों की रक्षा करते हैं, आराधना करनी चाहिये ।।१३२।।

जो (दत्तात्रेय) योगशक्ति से सम्पन्न, समदर्शन हैं तथा विष्णु के अंश से इस पृथ्वी तल पर जगत् के उद्धार के लिए अवतीर्ण हुए हैं ।।१३३।।

जिनकी आराधना करके दुरात्मा दैत्यों के द्वारा छीनी गयी अपनी पदवी को, सहस्र नेत्रों वाले देवराज इन्द्र ने दिति के पुत्रों को मारकर पुनः प्राप्त कर ली थी ।।१३४।।

अर्जुन बोले —

देवताओं ने प्रतापवान् दत्तात्रेय की किस प्रकार आराधना की और इन्द्र ने अपहृत हुआ अपना इन्द्रत्व किस प्रकार प्राप्त किया ? ।।१३५।।

गर्ग उवाच—

दैत्यानां देवतानां च युद्धमासीत् सुदारुणम् । दैत्यानामीश्वरे जम्भे देवानाञ्च शचीपतौ ॥१३६
तेषां तु युध्यमानानां दिव्यः संवत्सरो गतः । ततो देवाः पराभूता दैत्या विजयिनोऽभवन् ॥१३७
विप्रचित्तिमुखैर्देवा दानवैस्ते पराजिताः । पलायनकृतोत्साहा निरुत्माहा द्विषज्जये ॥१३८
बृहस्पतिमुपागम्य दैत्यसैन्यवधेप्सवः । अमन्त्रयन्त सहिताबालखिल्यैः सहर्षिभिः ॥१३९

बृहस्पतिरुवाच—

दत्तात्रेयं महाभागमत्रेः पुत्रं तपोधनम् । विकृताचरणं भक्त्या संतोषयितुमर्हथ ॥१४०
स वो दैत्यविनाशाय वरदो दास्यते वरम् । ततो हनिष्यथ सुराः सहितान् दैत्यदानवान् ॥१४१

गर्गउवाच —

हन्तुं शक्ता न संदेहो दत्तात्रेय प्रसादतः । इत्युक्तास्ते तदा जग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमं सुराः ॥१४२
ददृशुश्च महात्मानं क्षान्तं लक्ष्म्या समन्वितम् । उद्गीयमानं गन्धर्वैः सुरापानरतं मुनिम् ॥१४३
ते तस्य गत्वा प्रणतिं चक्रुः सर्वार्थसाधनीम् । भक्त्या तस्योपजह्रुश्च मद्यपस्य सुरादिकम् ॥१४४

गर्ग मुनि बोले —

देवताओं और असुरों का अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ, जिसमें दैत्यों का सेनापति जम्भ था और देवताओं का शचीपति इन्द्र ॥१३६॥

उन (देव और दैत्यों) में युद्ध होते-होते दिव्य संवत्सर भी व्यतीत हो गया। तत्पश्चात् देवता पराजित हुए तथा दैत्य विजयी हो गये ॥१३७॥

विप्रचित्ति प्रमुख दैत्यों से वे देवता पराजित हो गये। शत्रुओं की विजय हो जाने पर, निरुत्साहित होकर भागने को उद्यत हुए ।।१३८॥

दैत्यों की सेना के वध करने के इच्छुक (उन देवताओं ने) बालखिल्यादि के साथ बृहस्पति के पास जाकर मन्त्रणा की ॥१३९॥

बृहस्पति बोले—

अत्रि के पुत्र, तपोधनी, महात्मा दत्तात्रेय को जो (आजकल) विकृत आचरण कर रहे हैं, भक्ति द्वारा संतुष्ट करो ॥१४०॥

हे सुरगण ! वर देने वाले वही दैत्यों के नाश के लिए (उत्तम) वर देंगे, तभी तुम दैत्य और दानवों को एक साथ मार सकोगे ॥१४१॥

गर्ग बोले—

दत्तात्रेय की कृपा से आप लोग दैत्यों को मारने में समर्थ होंगे ऐसा कहे जाने पर वे सभी देवता दत्तात्रेय के आश्रम पर गये ॥१४२॥

'और वहाँ जाकर उन्होंने) मद्यपान करते हुए, लक्ष्मी सहित शांत (आकृति वाले) महात्मा दत्तात्रेय मुनि को देखा। गन्धर्व लोग जिनकी स्तुति कर रहे थे ॥१४३॥

उन्होंने उनके समीप जाकर, सभी प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली प्रणति की और मद्यपान करने वाले उनके लिए देवताओं ने भक्ति पूर्वक सुरा आदि भेंट रूप में दी ॥१४४॥

तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति यान्तं यान्ति दिवौकसः। आराधयामासुरधः स्थितास्तिष्ठन्तमासने ।।१४५
स प्राह देवान्प्रणतान् दत्तात्रेयः किमिष्यते । मत्तो भवद्भिर्येनेयं शुश्रूषा क्रियते मम ।।१४६

देवा ऊचुः—

दानवैर्मुनिशार्दूल जम्भाद्यैर्भूर्भुवादिकम्। हृतं त्रैलोक्यमाक्रम्य ऋतुभागाश्च कृत्स्नशः ।।१४७
तद् वधे कुरु बुद्धिं त्वं परित्राणाय नोऽनघ। त्वत्प्रसादादभीप्सामः पुनः प्राप्तं त्रिविष्टपम् ।।१४८

दत्तात्रेय उवाच—

मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टो न चैवाहं जितेन्द्रियः। कथमिच्छथ मत्तोऽपि देवाः शत्रुपराभवम् ।।१४९

देवा ऊचुः—

अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तव विद्यते । विद्याक्षालन-शुद्धान्त-र्निविष्ट ज्ञानदीधिते ।।१५०

दत्तात्रेय उवाचः—

सत्यमेतत् सुरा विद्या ममास्ति समदर्शिनः। अस्यास्तु योषितः संगादहमुच्छिष्टतां गतः ।।१५१
स्त्रीसंभोगोऽतिदुःखाय सातत्येनोपसेवितः । एवमुक्तास्ततो देवाः पुनर्वचनमब्रुवन् ।।१५२

जब वे खड़े होते थे तो देवता लोग खड़े हो जाते, उनके चलने पर चलते, उनके आसन पर बैठने पर नीचे (भूमि पर) बैठ जाते—इस प्रकार उन्होंने उनकी (दत्तात्रेय की) आराधना की ।।१४५।।

प्रणाम से विनम्र उन देवताओं से दत्तात्रेय ने कहा कि आप मुझसे क्या चाहते हैं ? जिसके लिए आप मेरी सेवा कर रहे हैं ।।१४६।।

देवता बोले—

हे मुनि श्रेष्ठ ! जम्भ प्रभृति दानवों ने आक्रमण करके भू आदि तीनों लोकों का हरण कर लिया है (जीत लिए हैं) ऋतु भाग (यज्ञ भाग) भी सम्पूर्ण रूप से नष्ट कर दिये हैं ।।१४७।।

हे पुण्यात्मा ! आप हमारी रक्षा के लिए, उनका वध करने का विचार कीजिये। हम आपकी कृपा से पुनः स्वर्ग प्राप्त करना चाहते हैं ।।१४८।।

दत्तात्रेय बोले—

मैं तो मद्यपान करने वाला उच्छिष्ट हूं और न ही मैं जितेन्द्रिय हूं। अतः हे देवताओं ! आप मुझसे भी शत्रुओं के पराभव की इच्छा कैसे करते हैं ? ।।१४९।।

देवता बोले—

हे जगन्नाथ ! आप पाप रहित हैं और न ही आप (विषयों में) लिप्त होते हैं। विद्या रूपी प्रक्षालन (धोने का पानी) से शुद्ध हुए अन्तः करण में ज्ञान की किरणों का सन्निवेश (स्थापना) किया है। उससे आप प्रकाशित हैं ।।१५०।।

दत्तात्रेय बोले—

हे देवो ! यह सत्य है कि मुझ समदर्शी के पास ज्ञान है। किन्तु इस स्त्री के संग से मैं उच्छिष्ट हो चुका हूं ।।१५१।।

निरन्तर सेवन किया गया स्त्री संभोग अति दुःख का कारण होता है। उनके ऐसा कहने पर, देवताओं ने पुनः उनसे कहा— ।।१५२।।

देवा ऊचुः—
अनघेयं मुनिश्रेष्ठ जगन्माता न दुष्यति । या सा विद्या तव विभो सर्वज्ञस्य हृदि स्थिता ।।१५३
यथांशुमाला सूर्यस्य द्विजचण्डालसंगिनी । न दुष्यति जगन्नाथ तथेयं वरवर्णिनी ।।१५४
गर्ग उवाच—
एवमुक्तस्ततो देवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीदिदम् । प्रहस्य त्रिदशान् सर्वान् यद्येतद् भवतां मतम् ।।१५५
तदाहूयासुरान् सर्वान् युद्धाय सुरसत्तमाः । इहानयत मद्दृष्टिगोचरं मा विलम्बताम् ।।१५६
मद्दृष्टिपातहुतभुक् प्रक्षीणबलतेजसः । येन नाशमशेषास्ते प्रयान्ति मम दर्शनात् ।।१५७
गर्ग उवाच—
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा देवैर्दैत्या महाबलाः । आहवाय समाहूता जग्मुर्देवगणाश्रमम् ।।१५८
ते हन्यमाना दैतेयैर्देवाः सर्वे भयातुराः । दत्तात्रेयाश्रमं जग्मुः समस्ताः शरणार्थिनः ।।१५९
तमेव विविशुर्दैत्याः कालयन्तो दिवौकसः । ददृशुस्तं महात्मानं दत्तात्रेयं मदालसम् ।।१६०
वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतः शुभाम् ।
भार्यां चास्य सुचार्वंगीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ।।१६१
नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् । सुदतीं मधुराभाषां सर्वयोषिद्गुणैर्युताम् ।।१६२

देवता बोले—

हे मुनि श्रेष्ठ ! ये (पत्नी) पवित्र हैं क्योंकि ये तो जगन्माता हैं जो (कभी) दूषित नहीं होतीं। और हे सर्वव्यापिन्, सर्वज्ञ ! आपके हृदय में जो विद्या स्थित है वह) ।।१५३।।

जिस प्रकार सूर्य की किरणें ब्राह्मण और चाण्डाल के संसर्ग में रहने पर भी दूषित नहीं होती हैं। हे जगन्नाथ ! उसी प्रकार आपकी यह सुन्दर नारी (लक्ष्मी) वरवर्णिनी हैं। जो दूषित नहीं होती हैं ।।१५४।।

गर्ग मुनि बोले—

देवताओं के ऐसा कहने पर मुनि दत्तात्रेय सभी देवताओं के प्रति हंसकर इस प्रकार बोले—कि हे देवताओं ! यदि आपका ऐसा विचार है तो ।।१५५।।

हे श्रेष्ठ देवताओं ! सभी असुरों को युद्ध के लिए बुलाकर यहाँ मेरी दृष्टि के समक्ष करो। विलम्ब मत करो ।।१५६।।

हे देवताओ ! मेरी दृष्टिपात रूप अग्नि से बल और तेज से क्षीण होकर मेरे देखने से वे सब नाश को प्राप्त हो जायेंगे ।।१५७।।

गर्ग बोले—

उनके, उन वचनों को सुनकर, देवताओं के द्वारा वे महाबली दैत्य युद्ध के लिए बुलाये गये। युद्ध के के लिए बुलाये जाने पर वे दैत्य देवताओं के आश्रम पर गये ।।१५८।।

दैत्यों के द्वारा मारे जाते हुए शरण के इच्छुक वे सभी देवता, भयातुर होकर दत्तात्रेय के आश्रम में गये ।।१५९।।

देवताओं के लिए काल के समान (देव संहार करते हुए) वे दैत्य भी उसी आश्रम में प्रविष्ट हो गये। और मद से अलस अर्थात् मदमत्त उन महात्मा दत्तात्रेय को देखा ।।१६०।।

और बांये भाग में बैठी हुई, सुन्दर अंगों वाली, चन्द्रमा के समान आभा से युक्त मुखवाली, सम्पूर्ण जगत् की कल्याण भूता, नील कमल के समान आभायुक्त नयनों वाली, पीन स्तन और पीन नितम्बों वाली, मधुर बोलने वाली, सुन्दर दाँतों वाली, सभी स्त्री गुण सम्पन्न, उनकी पत्नी लक्ष्मी को देखा ।।१६१-१६२।।

दृष्ट्वाग्रतस्तदा दैत्याः साभिलाषमनोभवाः । न शेकुरुद्धता दैत्या मनसा वोढुमातुराः ॥१६३

त्यक्त्वा देवान् स्त्रियं तां तु हर्तुकामा हतौजसः ।
प्रेरितास्तेन पापेन ह्यासक्तास्ते ततोऽब्रुवन् ॥१६४

स्त्रीरत्नमेतत् त्रैलोक्यसारं नो यदि वै भवेत् । कृतकृत्यास्ततः सर्वे इति नो भावितं मनः ॥१६५

तस्मात् सर्वे समुत्क्षिप्य शिबिकायां सुरार्दनाः ।
आरोप्य स्वमधिष्ठानं नयाम इति निश्चिताः ॥१६६

गर्ग उवाच—

सानुरागास्ततस्ते तु मुनेरन्तिकमागमन् । तस्य तां योषितं साध्वीं समुत्क्षिप्य स्मरातुराः ॥१६७

शिविकायां समारोप्य सहिता दैत्यदानवाः ।
शिरःसु शिबिकां कृत्वा स्वस्थानाभिमुखा ययुः ॥१६८

दत्तात्रेयस्तथा देवान् विहस्येदमथाब्रवीत् । दिष्ट्या च हन्त दैत्यानामेषा लक्ष्मीः शिरोगता ॥
सप्तस्थानान्यविक्रम्य लयमन्यमुपेष्यति ॥१६९

देवा ऊचुः—

कथयस्व जगन्नाथ केषु स्थानेष्ववस्थिता । पुरुषस्य फलं किं वा प्रयच्छत्यथ नश्यति ॥१७०

उसको अपने सामने देखकर वे दैत्य कामदेव की अभिलाषा से युक्त हो गये । जिनको वे उद्धत दैत्य मन से सहन करने (रोकने) में समर्थ न हो सके ॥१६३॥

देवताओं को छोड़कर उस स्त्री को हरने के इच्छुक, (नष्ट तेज वाले) उस पाप से आसक्त एवं प्रेरित होकर उन्होंने कहा — ॥१६४॥

(यह स्त्री) तीनों लोकों की सारभूत, स्त्री रत्न है। यह (यदि हमें प्राप्त हो जाए) तो हम सब कृतकृत्य हो जायेंगे । ऐसा हमारे मन में है (अर्थात् हमारे मन में ऐसी कामना है) ॥१६५॥

इसलिए देवों को पीड़ित करने वाले उन दैत्यों ने ऐसा निश्चय किया कि हम सब लोग (इस स्त्री को) उठाकर (अपनी) पालकी में बिठाकर अपने निवास स्थान को ले जायेंगे ॥१६६॥

गर्ग बोले—

तत्पश्चात् कामदेव से पीड़ित अनुराग युक्त होकर, उन्होंने मुनि के समीप आकर उनकी उस साध्वी स्त्री को उठाकर ॥१६७॥

वे दैत्य और दानव पालकी में बिठाकर अपने सिर के ऊपर पालकी को उठाकर अपने (निवास) स्थान की ओर चल दिये ॥१६८॥

तत्पश्चात् दत्तात्रेय मुनि देवताओं से हंसकर यह बोले—हे देवताओं ! तुम्हारे भाग्य से दैत्यों के सिर पर बैठी हुई यह लक्ष्मी सात स्थानों का अतिक्रमण करके अन्य का विनाश करायेगी ॥१६९॥

देवता बोले —

हे जगन्नाथ ! किन-किन स्थानों पर स्थित रहती हुई (यह लक्ष्मी) मनुष्य को अच्छा फल प्रदान करती है अथवा विनाश करती है ? ॥१७०॥

दत्तात्रेय उवाच—

नृणां पादस्थिता लक्ष्मीर्निलयं संप्रयच्छति। सक्थ्नोश्च संस्थिता वस्त्रं रत्नं नानाविधं वसु ।।१७१
कलत्रदा गुह्यसंस्था क्रोडस्था पत्यदायिनी । मनोरथान् पूरयति पुरुषाणां हृदि स्थिता ।।१७२
लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतां श्रेष्ठा कण्ठस्था कण्ठभूषणम् ।
अभीष्टबन्धुदारैश्च तथा श्लेषं प्रवासिभिः ।।१७३
मृष्टान्नं वाक्यलावण्यमाज्ञामवितथां तथा । मुखस्थिता कवित्वं च यच्छत्युदधि-संभवा ।।१७४
शिरोगता संत्यजति ततोऽन्यं याति चाश्रयम् ।
सेयं शिरोगता दैत्यान् परित्यजति साम्प्रतम् ।।१७५
प्रगृह्यास्त्राणि वध्यन्तां तस्मादेते सुरारयः । न भेतव्यं भृशं त्वेते मया निस्तेजसः कृताः ।।१७६
परदारावमर्शाच्च दग्धपुण्याहतौजसः । तस्मादेतेऽभिहन्यन्तां भवद्भिरविशंकितैः ।।१७७

गर्ग उवाच —

ततस्ते विविधैरस्त्रैर्वध्यमानाः सुरारयः ।
शिरः सुलक्ष्म्यात्याक्रान्ता विनेशुरिति नः श्रुतम् ।।१७८
लक्ष्मीश्चोत्पत्य सम्प्राप्ता दत्तात्रेयं महामुनिम् । स्तूयमाना सुरैः सेन्द्रैर्दैत्यनाशान्मुदान्वितैः ।।१७९

दत्तात्रेय बोले—

मनुष्यों के पैरों में रहती हुई और जंघा पर स्थित लक्ष्मी, वस्त्र, रत्न, और नाना प्रकार का धन प्रदान करती है ।।१७१।।

गुह्य (गुप्त) स्थान में रक्खी गयी लक्ष्मी कलत्र (स्त्री) प्रदायिनी, गोद में स्थित सन्तति दायिनी एवं मनुष्यों के हृदय में स्थित लक्ष्मी सब प्रकार के मनोरथों को पूर्ण करती है ।।१७२।।

श्रेष्ठ लक्ष्मी कण्ठ स्थान में स्थित होकर, धनवान् को कण्ठभूषण प्राप्त होता है तथा प्रवासी प्रिय बन्धु और स्त्री के साथ आलिंगन प्राप्त होता है ।।१७३।।

और समुद्र से उत्पन्न यह, मुख में स्थित होकर मधुर अन्न, ललित वाक्य, सफल आज्ञा तथा कवित्व प्रदान करती है ।।१७४।।

सिर पर रखी हुई यह त्याग देती है और अन्य स्थानों को चली जाती है। वही यह दैत्यों के सिर पर बैठी हुई अब उनको त्याग देगी ।।१७५।।

इसलिए इन देवताओं के शत्रुओं को शस्त्र ग्रहण करके मार डालो। भयभीत नहीं होना चाहिये (क्योंकि) मैंने इनको निस्तेज कर दिया ।।१७६।।

परस्त्री के अवमर्श (संसर्ग) से इन सबके पुण्यों का क्षय हो गया है और इनका बल भी नष्ट हो गया है। इसलिए आप सब शंका रहित होकर इन्हें मार डालिये ।।१७७।।

गर्ग बोले—

तत्पश्चात् विविध प्रकार के अस्त्रों से मारे जाते हुए वे असुर श्रेष्ठ लक्ष्मी के सिर पर आक्रान्त होने के कारण विनाश को प्राप्त हो गये, ऐसा हमने सुना है ।।१७८।।

और दैत्यों के विनाश से आनन्दित हुए, इन्द्र सहित देवताओं द्वारा स्तुति की जाती हुई वह लक्ष्मी, उड़कर महामुनि दत्तात्रेय के पास आ गयी ।।१७९।।

प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं महामुनिम् । जयकृष्ण जगन्नाथ दैत्यान्तक हर प्रभो ।।१८०
नारायणाच्युतानन्त वासुदेवाक्षयाजर । त्वत्प्रसादात् सुखं लक्ष्मी राज्यं सम्पज्जनार्दन ।।
शार्ङ्गधन्वंश्चक्रपाणे भक्तानां नित्यवत्सल ।।१८१
इति स्तुत्वा नाकपृष्ठं यथा पूर्वं गताः सुराः ।।१८२
तथा त्वमपि राजेन्द्र यदीच्छसि यथेप्सितम् । प्राप्तमैश्वर्यमतुलं तूर्णमाराधयस्व तम् ।।१८३

इति श्रीमार्कण्डेय-महापुराणे दत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ।

तत्पश्चात् देवताओं ने महामुनि दत्तात्रेय को प्रणाम करके हे कृष्ण ! जगन्नाथ ! हे दैत्यान्तक ! हे प्रभो ! हे अनन्त ! हे अच्युत ! हे नारायण ! हे अक्षय, अजर, वासुदेव ! हे शार्ङ्गधनु ! हे जनार्दन ! हे चक्रपाणे ! हे नित्य भक्त वत्सल ! आपकी कृपा से हमने सुखपूर्वक सम्पत्ति युक्त राज्य को प्राप्त कर लिया है ।।१८०–१८१।।

इस प्रकार स्तुति करके वे देवता पहले के समान स्वर्ग लोक को चले गये ।।१८२।।

इस प्रकार तुम भी हे राजेन्द्र ! यदि इच्छानुसार फल प्राप्त करना चाहते हो एवं अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए उन (दत्तात्रेय मुनि) की शीघ्र आराधना करो ।।१८३।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में दत्तात्रेय महात्म्य वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

सप्तदशोऽध्यायः

पुत्र उवाच--

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा कार्त्तवीर्यो नरेश्वरः । दत्तात्रेयाश्रमं गत्वा तं भक्त्या समपूजयत् ।।१
पादसंवाहनाद्येन अर्घ्याद्याहरणेन च । स्रक्चंदनादिगन्धाम्बुफलाद्यानयनेनच ।।२
तथान्नसाधनैस्तस्य उच्छिष्टापोहनेन च । परितुष्टो मुनिर्भूपं तमुवाच तथैव सः ।।३
यथैवोक्ताः पुरा देवा मद्यभोज्यादिकुत्सनम् ।
स्त्री चेयं मम पार्श्वस्थेत्येतद् भोगाच्च कुत्सितः ।।४

पुत्र बोला—

ऋषि के इन वचनों को सुनकर राजा कार्त्तवीर्य ने, दत्तात्रेय के आश्रम में जाकर, भक्तिपूर्वक भली प्रकार उनकी पूजा की ।।१।।

सुगन्धित जल, फल, माला, चन्दन, अर्घ्य आदि लाने से, चरण दबाने से तथा अन्न आदि साधनों से उनका बचा हुआ जूठा खाने से, मुनि राजा पर प्रसन्न हो गये । वे उनसे उसी प्रकार बोले— ।।२।।३।।

जैसे कि मद्य भोज्य आदि कुत्सित दुर्व्यसनों की बात पहले देवताओं से कही थी । यह स्त्री मेरे पास में रहती है तो इन सबके भोग से मैं कुत्सित हूं ।।४।।

सदैवाहं न मामेवमुपरोद्धुं त्वमर्हसि । अशक्तमुपकाराय शक्तमाराधयस्व भोः ।।५

पुत्र उवाच—

तेनैवमुक्तो मुनिना स्मृत्वा गर्गवचश्च तत् । प्रत्युवाच प्रणम्यैनं कार्त्तवीर्यस्ततोऽर्जुनः ।।६

अर्जुन उवाच—

देवस्त्वं हि पुराणो यः स्वां मायां समुपाश्रितः ।।७

अनघस्त्वं तथैवेयं देवी सर्वभवारणिः । इत्युक्तः प्रीतिमान् देवो भूयस्तं प्रत्युवाच ह ।।८

कार्त्तवीर्यं महावीर्यं वशीकृतमहीतलम् । वरं वृणीष्व गुह्यं मे त्वया नाम यदीरितम् ।।९

तेन तुष्टिः परा जाता त्वय्यद्य मम पार्थिवः । ये च मां पूजयिष्यन्ति गन्धमाल्यादिभिर्नराः ।।१०

मांस-मद्योपहारैश्च मृष्टान्नैश्चात्मसम्मतैः । लक्ष्म्या समेतं गीतैश्च ब्राह्मणानां तथार्च्चनैः ।।११

वाद्यैर्मनोरमैर्वीणावेणुशंखादिभिस्तथा । तेषामहं परां पुष्टिं पुत्र-दार-धनादिकीम् ।।१२

प्रदास्याम्यवधूतश्च हनिष्याम्यवमन्यताम् । स त्वं वरय भद्रं मे वरं यं मनसेच्छसि ।।१३

प्रसाद सुमुखस्तेऽहं गुह्यनाम प्रकीर्त्तनात् ।।१४

कार्त्तवीर्य उवाच—

यदि देव प्रसन्नस्त्वं तत् प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम् । यथा प्रजां पालयेयं न चाधर्ममवाप्नुयाम् ।।१५

तुम मुझको इस प्रकार रोकने में समर्थ नहीं हो (तुम्हारे द्वारा अवरोध उचित नहीं है) अपने उपकार के लिए अशक्त (असमर्थ) मेरे जैसे को छोड़कर समर्थ व्यक्ति की आराधना करो ।।५।।

पुत्र बोला—

उन मुनि के द्वारा इस प्रकार कहने पर, गर्ग मुनि के वचनों का स्मरण करके, कार्त्तवीर्य अर्जुन ने इन को प्रणाम करके कहा ।।६।।

अर्जुन बोला—

हे देव ! आप तो निश्चय ही पुराण पुरुष हैं जो अपनी माया में सुस्थित हैं ।।७।।

आप जिस प्रकार पाप रहित हैं वैसे ही यह देवी भी समस्त संसार की अरणि हैं । ऐसा कहने पर, प्रसन्न हुए वे देव (दत्तात्रेय) पुनः उस, ।।८।।

महा शक्तिशाली, सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने आधीन करने वाले कार्तवीर्य से कहने लगे—तुमने जो मेरे सम्बन्ध में गुह्य बात कही है । उससे मुझे आज परम तुष्टि मिली है । इसलिए तुम मुझसे वर माँगो । और जो मनुष्य सुगन्धित माला आदि से लक्ष्मी समेत मेरी पूजा करेंगे ।।९-१०।।

मांस, मदिरा और मिष्ठान्न आदि अपने रुचिकर उपहारों से, गीतों से, और ब्राह्मणों की पूजा के द्वारा, वीणा, वेणु शंखादि मनोरम (सुन्दर) वाद्यों से लक्ष्मी सहित (मेरी पूजा करेंगे) उनको अवधूत रूप में पत्नी पुत्र और धन आदि से युक्त परम पुष्टि प्रदान करूँगा । और अपमान करने वालों का संहार करूँगा । तुम मुझसे अपना मनोवाञ्छित कल्याणकारी वर माँग लो । ११-१३

तुम्हारे द्वारा गुह्य नाम के प्रकीर्तन से मैं तुमसे प्रसन्न वदन हूं ।।१४।।

कार्तवीर्य बोले—

हे देव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो (मुझे ऐसी) उत्तम ऋद्धि प्रदान कीजिये जिससे मैं प्रजा का पालन करूँ और कभी भी अधर्म न करूँ ।।१५।।

परानुस्मरणं ज्ञानमप्रतिद्वन्द्वतां रणे । सहस्रमाप्तुमिच्छामि बाहूनां लघुतागुणम् ॥
असङ्गागतयः सन्तु शैलाकाशाम्बुभूमिषु ॥१६
पातालेषु च सर्वेषु वधश्चाप्यधिकान्नरात् । तथोन्मार्गप्रवृत्तस्य सन्तु सन्मार्गदेशिकाः ॥१७
सन्तु मेऽतिथयः श्लाघ्या वित्तदाने तथाक्षये । अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे ममानुस्मरणेन च ॥
त्वयि भक्तिश्चदेवास्तु नित्यमव्यभिचारिणी ॥१८

दत्तात्रेय उवाच—

य एते कीर्तिताः सर्वे तान् वत्स समवाप्स्यसि । मत्प्रसादात् प्रभविता चक्रवर्तित्वमैश्वरम् ॥१९

पुत्र उवाच—

प्रणिपत्य ततस्तस्मै दत्तात्रेयाय सोऽर्जुनः । आनीय प्रकृतीः सम्यगभिषेकमगृह्णत ॥२०
आगताश्चापि गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः । ऋषयश्च वसिष्ठाद्या मेर्वाद्याः पर्वतास्तथा ॥२१
गंगाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रारत्नसम्भवाः । प्लक्षाद्याश्च तथा वृक्षा देवा वै वासवादयः ॥२२
वासकिप्रमुखानागा अभिषेकार्थमागताः । तार्क्ष्याद्याः पक्षिणश्चैव पौरा जानपदास्तथा ॥२३
सम्भाराः सम्भृताः सर्वे दत्तात्रेयप्रसादतः ॥२४
अथ संज्वाल्यतैर्वह्निं देवैर्ब्रह्मादिभिः सह । नारायणेनाभिषिक्तो दत्तात्रेयस्वरूपिणा ॥२५

पर (ब्रह्म का) अनुकरण (पुनः पुनः स्मरण) का मान बना रहे । और रण में मेरा कोई दूसरा प्रतिद्वन्द्वी न हो । मैं लघु गुण (भार) वाले, सहस्र बाहुओं को प्राप्त करने का इच्छुक हूं तथा मेरी पर्वत, आकाश, जल, पृथ्वी और पाताल आदि में अव्याहत गति हो । और वध भी अपने से अधिक बलवान् पुरुष से ही हो एवं कुमार्ग में प्रवृत्त होने पर सन्मार्ग दिखाने वाले हों । और अक्षय वित्त वाले मेरे प्रसंशित, अतिथि हों और मेरे राष्ट्र में आपके स्मरण से धन धान्य कभी नष्ट न हो और हे देव ! मुझमें तुम्हारे प्रति नित्य और अव्यभिचारी भक्ति हो ॥१६-१८॥

दत्तात्रेय बोले—

ये जो (वरदान) तुमने कहे हैं उन सबको हे वत्स ! तुम अवश्य ही प्राप्त करोगे । इसके अतिरिक्त) मेरी अनुकम्पा के प्रभाव से तुम चक्रवर्ती ऐश्वर्य को (प्राप्त करोगे) ॥१९॥

पुत्र बोला—

तत्पश्चात् उस अर्जुन ने उन दत्तात्रेय को प्रणाम करके अपने राज्य में आकर, प्रजाजनों को बुलाकर अच्छी प्रकार से (विधिवत्) अपना अभिषेक करवाया ॥२०॥

और दत्तात्रेय की कृपा से उसके अभिषेक के लिए गन्धर्व, अप्सराओं के समूह, पर्वत और आकाश स्थित वसिष्ठ आदि ऋषि, गंगा आदि सभी सरिताएँ और रत्न उत्पन्न करने वाले समुद्र, पलाश आदि वृक्ष और इन्द्र आदि देवता तथा वासुकि आदि प्रमुख नाग तार्क्ष्य (गरुड़) आदि पक्षी एवं नगर तथा जनपद वासी सम्भार और सम्भृत आदि सभी दत्तात्रेय के प्रभाव से, उनके अभिषेक के लिए आये एवं सभी प्रकार की सामग्री दत्तात्रेय मुनि की कृपा से जुट गयी ॥ १-२४॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि देवताओं ने अग्नि प्रज्वलित करके दत्तात्रेय रूपी नारायण ने राजा का अभिषेक किया ॥२५॥

समुद्रैश्च नदीभिश्च ऋषिभिश्चाभिषेचितः ॥२६
आघोषयामास तदा स्थितो राज्ये स हैहयः। दत्तात्रेयात् परामृद्धिमवाप्वातिबलान्वितः ॥२७
अद्य प्रभृति यः शस्त्रं मामृतेऽन्यो ग्रहीष्यति। हन्तव्यः स मया दस्युः परहिंसा रतोऽपि वा ॥२८
इत्याज्ञप्तेन तद्राज्ये कश्चिदायुधभृन्नरः । तमृते पुरुषव्याघ्रं बभूवोरू-पराक्रमम् ॥२९
स एव ग्रामपालोऽभूत् पशुपालः स एव च । क्षेत्रपालः स एवासीद् द्वितीयो न च रक्षिता ॥
तपस्विनां पालयिता सार्थपालश्च सोऽभवत् ॥३०
दस्युव्यालाग्निशस्त्रारिभयेष्वब्धौ निमज्जताम् । अन्यासु चैव मग्नानामापत्सु परवीरहा ॥३१
स एव संस्मृतः सद्यः समुद्धर्त्ताऽभवन्नृणाम् ॥३२
अनष्टद्रव्यता चासीत् तस्मिञ्छासति पार्थिवे । तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ॥३३
तपश्च तप्तुं सुमहत्संग्रामे वाति चेष्टितम् । तस्यर्द्धिमहिमानं च दृष्ट्वा प्राहांगिरा मुनिः ॥३४
न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः । यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा संग्रामे चातिचेष्टितैः ॥३५
दत्तात्रेयाद दिने यस्मिन् सम्प्राप्तर्द्धिर्नरेश्वरः ।
तस्मिंस्तस्मिन्दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत् ॥३६

और समुद्रों, नदियों तथा ऋषियों ने उसका अभिषेक किया ॥२६॥

(इस प्रकार) दत्तात्रेय से परमोत्कृष्ट ऋद्धि को प्राप्त करके वह हैहय अत्यन्त बलशाली हो गया, और राज्य (सिंहासन) पर बैठकर उसने घोषणा की—कि आज से मेरे अतिरिक्त अन्य जो कोई शस्त्र ग्रहण करेगा अथवा दूसरे की हत्या करने में जो लगा है वह दस्यु मेरे द्वारा मारा जायेगा ॥२७-२८॥

इस प्रकार आज्ञा देने पर उस राज्य में प्रशस्त पराक्रम वाले उस पुरुष व्याघ्र के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति हथियार धारी नहीं हुआ ॥२९॥

इस प्रकार वही ग्रामपाल, वही पशुपाल और वही क्षेत्रपाल भी था। (उसके अतिरिक्त) अन्य कोई रक्षा करने वाला नहीं था और तपस्वियों का पालन करने वाला एवं सार्थपाल वही था ॥३०॥

डाकुओं, सर्पों, अग्नि और शत्रु भय में और डूबने वालों तथा अन्य बहुत सी विपत्तियों में (रक्षक) तथा शत्रु वीरों को मारने वाला वही मनुष्यों को विपत्तियों से शीघ्र उद्धार करने वाले के रूप में स्मरण किया जाता था ॥ १-३२॥

उस राजा के शासन काल में धन की अनश्वरता थी। प्रचुर दक्षिणाओं से समाप्त होने वाले बहुत से यज्ञों का उसने सम्पादन किया ॥३३॥

बहुत कठोर तप करने में और युद्धों में उसकी चेष्टाओं को देखकर एवं उसकी अति मानव ऋद्धि को देखकर अंगिरा मुनि ने कहा—यज्ञों, दानों, तपों और संग्रामों में अति चेष्टा के द्वारा निश्चय ही कार्तवीय के समान राजा नहीं होगा ॥३४-३५॥

राजा ने जिस दिन से दत्तात्रेय से ऋद्धि प्राप्त की, उस दिन से ही वह प्रतिदिन दत्तात्रेय के लिए यज्ञ करता था ॥३६॥

तथैव च प्रजाः सर्वास्तस्मिन्नहनि भूपते । तस्यर्द्धि परमां दृष्ट्वा यागं चक्रुः समाधिना ।।३७
इत्येतत्तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः । विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्य महात्मनः ।।३८
प्रादुर्भावः पुराणेषु कथ्यते शार्ङ्गधन्वनः । अनन्तस्याप्रमेयस्य शंखचक्रगदाभृतः ।।३९
एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः । स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोऽचिराद् भवेत् ।।
सदैव वैष्णवानां च भक्त्याऽहं सुलभोऽस्मि भोः ।।४०
पत्रपुष्पफलेनाहं पूजितो मोक्षदोऽस्मि वै । इत्येवं यस्य वै वाचस्तं कथं नाश्रयेज्जनः ।।४१
अधर्मस्य विनाशाय धर्माधारार्थमेव च । अनादिनिधनो देवः करोति स्थितिपालनम् ।।४२
तथैव जन्म चाख्यातमालर्कं कथयामि ते । यथा च योगः कथितो दत्तात्रेयेण तस्य वैं ।।
पितृभक्तस्य राजर्षेरलर्कस्य महात्मनः ।।४३

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे दत्तात्रेयोपाख्यानं नामसप्तदशोऽध्यायः।

और उसी दिन से, उस राजा की परम ऋद्धि को देखकर उसकी विद्वान् प्रजा ने, समाहित चित्त से यज्ञ किये ।।३७।।

यह सब विष्णु के अवतार, चराचर के गुरु ,अनन्त व शक्ति सम्पन्न उन विद्वान् महात्मा दत्तात्रेय का माहात्म्य था । पुराणों में शार्ङ्ग धनुष वाले के प्रादुर्भाव का वर्णन किया गया है जो अनन्त है, अप्रमेय है और शंख, चक्र तथा गदा को धारण करने वाला है ।।३८-३९।।

जो मानव इसके परम रूप का चिन्तन करता है, वह सुखी रहता है और शीघ्र ही इस संसार (रूपी समुद्र) से पार हो जाता है। अरे ! मैं सदैव ही वैष्णवों के लिए भक्ति से सुलभ हूं ।।४०।।

फल, फूल और पत्र आदि से पूजित मैं निश्चय ही मोक्ष प्रदान करता हूं। जिसकी इस प्रकार की वाणी हो उसका मेरे (जैसा) मनुष्य क्यों आश्रय नहीं लेगा ।।४१।।

अधर्म के विनाश के लिए और धर्म के आधार के लिए आदि और अन्त रहित वह देव संसार की स्थिति और पालन करता है ।।४२।।

(अब) मैं तुम्हें अलर्क का जन्माख्यान उसी प्रकार कहता हूं जैसे कि योगी दत्तात्रेय ने, उस पितृ-भक्त राजर्षि महात्मा अलर्क को योग का उपदेश किया ।।४३।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में दत्तात्रेयोपाख्यान नामक सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टादशोऽध्यायः

पुत्र उवाच—

प्रागबभूव महावीर्यः शत्रुजिन्नाम पार्थिवः । तुतोष यस्य यज्ञेषु सोमावाप्त्या पुरन्दरः ॥१

तस्यात्मजो महावीर्यो बभूवारि-विदारणः । नाम्ना ऋतध्वजः ख्यातः सर्वलक्षणसंयुतः ॥२

बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशुक्राश्विनां समः । स समानवयो बुद्धि-सत्त्व-विक्रमचेष्टितैः ॥३

नृपपुत्रो नृपसुतैर्नित्यमास्ते समावृतः । कदाचिच्छास्त्रसद्भावविवेककृतनिश्चयः ॥४

कदाचित् काव्यसंलाप-गीत-नाटक सम्भवैः । तथैवाक्षविनोदैश्च शस्त्रास्त्रविनयेषु च ॥५

योग्यानि युद्धनागाश्वस्यन्दनाभ्यासतत्परः । रेमे नृपेन्द्रपुत्रोऽसौ नरेन्द्रतनयैर्वृतः ॥६

यथैव हिं दिवा तद्वद्रात्रावपि मुदायुतः । तेषां तु क्रीडतां तत्र द्विजभूपविशां सुताः ॥७

समानवयसः प्रीत्या रन्तुमायान्त्यनेकशः । कस्यचित् त्वथ कालस्य नागलोकान्महीतलम् ॥

कुमारावागतौ नागौ पुत्रावश्वतरस्य तु ॥८

ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नौ तरुणौ प्रियदर्शनौ ॥९

तौ तैर्नृपसुतैः सार्द्धं तथैवान्यैर्द्विजात्मजैः । विनोदैर्विविधैस्तत्र तस्थतुः प्रीतिसंयुतौ ॥१०

पुत्र बोला—

प्राचीन काल के शत्रुजित् नामक महा पराक्रमी राजा हुआ जिसके यज्ञों में सोम प्राप्त करने से, इन्द्र प्रसन्न हुए थे ॥१॥

उसका शत्रुओं को नष्ट करने वाला, महा बलशाली, सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न ऋतध्वज नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ ॥२॥

बुद्धि, पराक्रम और लावण्य में क्रमशः बृहस्पति, शुक्र और अश्विनि देवों के समान, अपने बराबर आयु वालों में बुद्धि सत्त्व और पराक्रम दिखाते हुए, ॥३॥

राजा का वह पुत्र नित्य ही राजकुमारों से घिरा रहता था। वह कभी शास्त्रों के सद्भाव के विवेक से (कर्तव्य का) निश्चय करता ॥४॥

कभी काव्य, संगीत और नाटकादि की चर्चा से और शस्त्रास्त्रादि के विनोद हेतु योग्य पुरुषों के साथ मल्लयुद्ध में ॥५॥

तथा कभी हाथी रथ एवं अश्व आदि के युद्ध के अभ्यास में तत्पर रहता हुआ ही वह राजा का पुत्र राजकुमारों से घिरे हुए आनन्दित होता था ॥६॥

जिस प्रकार दिन में उसी प्रकार रात्रि में भी प्रसन्न रहते हुए, उन ब्राह्मणों, राजाओं एवं वैश्यों के बीच रहते हुए, खेलते हुए, ॥७॥

समान आयु वाले, प्रेम के साथ अनेक बार खेलने के लिए आते थे। इसके पश्चात् किसी समय नागलोक से पृथ्वी पर (नागलोक के राजा) अश्वतर के दो पुत्र आये ॥८॥

वे दोनों ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए थे, तरुण और प्रिय दर्शन (सुन्दर) थे ॥९॥

वे दोनों राजकुमार ब्राह्मण पुत्रों तथा अन्य (कुलीन युवकों) के साथ विविध प्रकार के विनोद करते हुए प्रीतिपूर्वक वहाँ ठहरे ॥१०॥

सर्वे च ते नृपसुतास्ते च ब्रह्मविशांसुताः। नागराजात्मजौ तौ च स्नानसंवाहनादिकाम् ॥११
वस्त्रगन्धान्नसंयुक्तां चक्रुर्भोगभुजिक्रियाम्। अहन्यहन्यनुप्राप्ते तौ च नागकुमारकौ ॥१२
आजग्मतुर्मुदायुक्तौ प्रीत्या सूनोर्महीपतेः। स च ताभ्यां नृपसुतः परं निर्वाणमाप्तवान् ॥१३
विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेव च ॥१४
विना ताभ्यां न बुभुजे न सस्नौ न पपौ मधु। न रेमे च न जग्राह शास्त्राण्यात्यगुणर्द्धये ॥१५
रसातले च तौ रात्रिं विना तेन महात्मना। निःश्वासपरमौ नीत्वा जग्मतुस्तं दिने दिने ॥१६
मर्त्यलोके परा प्रीतिर्भवतो केन पुत्रकौ। सहेति च पप्रच्छ पिता तावुभौ नागदारकौ ॥१७
दृष्टयोरत्र पाताले बहूनि दिवसानि मे। दिवारजन्यामेवोभौ पश्यामि प्रियदर्शनौ ॥१८

जड उवाच —

इति पित्रा स्वयं पृष्टौ प्रणिपत्य कृताञ्जली। प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेः सुतौ ॥१९

पुत्रावूचतुः—

पुत्रः शत्रुजितस्तात नाम्नाख्यातऋतध्वजः। रूपवानार्जवोपेतः शूरो मानी प्रियंवदः॥
अनावृत कथो वाग्मी विद्वान् मैत्रो गुणाकरः ॥२०
मान्य-मानयिता धीमान् ह्रीमान् विनयभूषणः। तस्योपचार संप्रीतिसंभोगापहृतं मनः ॥२१

वे सभी राजकुमार और ब्रह्मकुमार, वैश्य कुमार और नागराज के वे दोनों पुत्र (सभी एक साथ) स्नान और संवाहन (यानारोहण) एवं भोजन, वस्त्र, गन्धानुलेपन और अन्नादि विविध भोग क्रियाओं को करते थे। इस प्रकार वे दोनों नाग कुमार दिन प्रतिदिन ॥११-१२॥

महीपति के पुत्र (ऋतध्वज के प्रेम से आनन्दित हुए (एवं वहाँ) प्रतिदिन आने लगे। उन दोनों नाग-कुमारों के सान्निध्य से राजपुत्र को अत्यधिक शान्ति प्राप्त हुई ॥१३॥

एवं विविध प्रकार के विनोदों, हास्यों तथा वार्तालापों से वह राजपुत्र उन दोनों के साथ परम आनन्द प्राप्त करता था ॥१४॥

उनके बिना वह (राजकुमार) न स्नान करता था और न खाता था, न मधुपान करता था और न ही रमण करता था। न ही आत्म वर्द्धन के लिए शास्त्रों को ग्रहण (अध्ययन) करता था ॥१५॥

रसातल में वे दोनों उस महापुरुष (ऋतध्वज) के बिना श्वासें भरते-भरते (रात्रि) बिताते थे और दिन होते ही पुनः उस राजकुमार के पास पहुंच जाते थे ॥१६॥

इस प्रकार कुछ समय बीतने पर नागराज अश्वतर ने एक दिन दोनों पुत्रों से पूछा—'हे पुत्रो! मनुष्य लोक में तुम्हारा किसके साथ प्रगाढ़ प्रेम है? बहुत दिन हो गये हैं (तब से) दिन में तुम पाताल में दिखायी नहीं देते हो। तुम दोनों को मैं केवल रात्रि में ही यहाँ देखता हूं ॥१७-१८॥

जड़ बोला—

पिता के द्वारा इस प्रकार पूछने पर वे दोनों नागराज के पुत्र प्रणाम करके, हाथ जोड़कर बोले— ॥१९॥

पुत्र बोले —

हे तात! शत्रुजित् (राजा का) ऋतध्वज नाम का पुत्र है, जो रूपवान्, सरलता से युक्त, शूरवीर, स्वाभिमानी, प्रिय भाषी, प्रसिद्ध, यशस्वी, वाग्मी, विद्वान्, मित्रतायुक्त, गुण सम्पन्न, मान्य का सम्मान करने वाला, धीमान्, लज्जावान् और विनय से विभूषित (है) उसके उपचार, प्रेम एवं संस्कार द्वारा हमारा मन हर लिया गया है — ॥२०-२१॥

नागलोकेऽन्यलोके वा न रतिं विन्दते पितः । तद्वियोगेन नौ तात निशा पातालशीतला ।।
परितापाय तत्सङ्गश्चाह्लादाय रविर्दिवा ।।२२

पितोवाच —

पुत्रः पुण्यवतो धन्यः स यस्यैवं भवद्विधैः । परोक्षस्यापि गुणिभिः क्रियते गुण-कीर्त्तणम् ।।२३
सन्ति शास्त्रविदोऽशीलाः सन्ति मूर्खा सुशीलिनः ।
शास्त्रशीले समं मन्ये यस्मिन् धन्यतरं तु तम् ।।२४
यस्य मित्रगुणान् मित्राण्यमित्राश्च पराक्रमम् । कथयन्ति सदा सत्सु पुत्रवांस्तेन वै पिता ।।२५
तस्योपकारिणः कच्चिद्भवद्भ्यामभिवाञ्छितम् ।
किञ्चिन्निष्पादितं वत्सौ परितोषाय चेतसः ।।२६
स धन्यो जीवितं तस्य जन्म सुजन्मनः । यस्यार्थिनो न विमुखा मित्रार्थे न च दुर्बलः ।।२७
मद्गृहे यत्सुवर्णादिरत्नवाहनमासनम् । यद्वान्यत् प्रीतये तस्य तद्देयमविशंकया ।।२८
धिक् तस्य जीवितं पुंसो मित्राणामपकारिणः । प्रतिरूपमकुर्वन् यो जीवामीत्यवगच्छति ।।२९
उपकारं सुहृद्वर्गेष्वपकारं च शत्रुषु । नृ-मेघो वर्षति प्राज्ञास्तस्येच्छन्ति सदोन्नतिम् ।।३०

हे पिता ! नागलोक अथवा अन्य लोक में हमें आनन्द प्राप्त नहीं होता । इसलिए हे तात ! उसके वियोग से हम दोनों को पाताल में शीतल रात्रि भी तप्त प्रतीत होती है और उनके साथ रवि भी दिन में आह्लाद प्रदान करने वाला होता है ।।२२।।

पिता बोले —

हे पुत्र ! पुण्यवान् का वह पुत्र धन्य है । जिसकी तुम जैसे परोक्ष होते हुए भी इस प्रकार गुणों की प्रशंसा कर रहे हो ।।२३।।

(इस संसार में) शास्त्रों के ज्ञाता अशील होते हैं और मूर्ख भी अच्छे सदाचारी होते हैं । लेकिन मैं तो शास्त्र और शील जिसमें दोनों समान हैं, उसको अधिक धन्य मानता हूं ।।२४।।

जिसके मित्रता के गुणों को मित्र और पराक्रम को शत्रु सदैव सज्जनों से कहते हैं । इस प्रकार के उस पुत्र से ही पिता वस्तुतः पुत्रवान् होता है ।।२५।।

हे पुत्रो ! उस उपकारी का तुम दोनों ने उसके मन को प्रसन्न करने के लिए क्या कभी कुछ उपकार किया है अथवा कुछ सोचा है ।।२६।।

क्योंकि वह धन्य है और उसका जीवन वस्तुतः जीवन है । जिसके पास से याचक विमुख नहीं होते और जो मित्र के लिए कभी दुर्बल नहीं होता ।।२७।।

मेरे घर जो स्वर्ण आदि तथा रत्न, वाहन और आसन हैं और भी जो उसकी प्रसन्नता के लिए हो, तुम निःशंक होकर उसे दे दो ।।२८।।

मित्रों का अपकार करने वाले उस व्यक्ति के जीवन को धिक्कार है जो उपकारी के प्रति उपकार न करते हुए भी यह मानता है कि मैं जीवित हूं ।।२९।।

जो मनुष्य रूपी मेघ मित्र वर्ग के प्रति उपकार करते हुए तथा शत्रुओं के प्रति अपकार करते हुए वर्षा करता है । विद्वान् लोग सदैव उसकी उन्नति चाहते हैं ।।३०।।

पुत्रावूचतुः—

किं तस्य कृतकृत्यस्य कर्तुं शक्यते केनचित् । यस्य सर्वार्थिनो गेहे सर्वकामैः सदार्चिताः ॥३१

यानि रत्नानि तद्गेहे पाताले तानि नः कुतः । वाहनासनयानानि भूषणान्यम्बरानि च ॥३२

विज्ञानं यच्च तत्रास्ति तदन्यत्र न विद्यते ॥३३

प्रज्ञानामप्यसौ तात सर्वसंदेहहृत्तमः । एवं तस्यास्ति कर्त्तव्यमसाध्यं तच्च नो मतम् ॥

हिरण्यगर्भगोविन्दशर्वादीनां वराद्दते ॥३४

पितोवाच—

तथापि श्रोतुमिच्छामि तस्य यत्कार्यमुत्तमम् ।

असाध्यमथवा साध्यं किं चासाध्यं विपश्चिताम् ॥३५

देवत्वममरेशत्वं तत् पूज्यत्वं च मानवाः । प्रयान्ति वाञ्छितं चान्यद् दृढं ये व्यवसायिनः ॥३६

नाविज्ञातं न चागम्यं नाप्राप्यं दिवि चेह वा । उद्यतानां मनुष्यानां यतचित्तेंद्रियात्मनाम् ॥३७

योजनानां सहस्राणि याति गच्छन् पिपीलिकः । अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥३८

क्व भूतलं क्व च ध्रौव्यं स्थानं यत्प्राप्तवान् ध्रुवः । उत्तानपादनृपतेः पुत्रः सद्भूमिगोचरः ॥३९

पुत्र बोले—

हम कृत कृत्य उसका किस वस्तु से क्या (उपकार) कर सकते हैं, जिसके घर पर सभी याचक, उनकी सभी इच्छाएँ पूर्ण करके सदैव पूजे जाते हैं ॥३१॥

और उसके घर में जो रत्न हैं पाताल में हमारे पास भी कहाँ हैं ? इसके अतिरिक्त जो वाहन, आसन, यान, आभूषण, वस्त्र और श्रेष्ठ ज्ञान वहाँ पर है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है ॥३२-३३॥

हे तात ! वह विद्वानों के संशयों को दूर करने में कुशल है। बस उसका एक ही कार्य करने योग्य है। परन्तु हमारे विचार से वह कार्य असाध्य है। हिरण्यगर्भ, गोविन्द या शिव आदि देवों के वर के अतिरिक्त (किसी अन्य के लिए शक्य नहीं है) ॥३४॥

पिता बोले—

फिर भी मैं उसके उस उत्तम कार्य को सुनना चाहता हूं। साध्य अथवा असाध्य जो कुछ हो। विद्वानों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं है ॥३५॥

जो मनुष्य दृढ़तर उद्योगी होते हैं वे देवत्व, इन्द्रत्व या उससे भी (अधिक) पूज्यभाव को प्राप्त कर लेते हैं। दृढ़ व्यवसायी मनुष्य अपने मनोवाञ्छित को प्राप्त कर (ही) लेता है ॥३६॥

जिन्होंने मन, इन्द्रिय और आत्मा को वश में कर लिया है, ऐसे उद्योगी मनुष्यों के लिए, यहाँ अथवा स्वर्ग में, कुछ भी अविज्ञात, अगम्य अथवा अप्राप्य नहीं रहता ॥३७॥

चलती (यत्न करती) हुई चींटी सहस्रों योजन चली जाती है और न चलता हुआ गरुड़ एक पैर भी नहीं जा पाता है ॥३८॥

कहाँ भूतल और कहाँ वह ध्रुव का स्थान ? जिसे भूमि पर रहते हुए भी उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव ने प्राप्त किया ॥३९॥

तत्कथ्यतां महाभागौ कार्यं वान्येन पुत्रकौ । सः भूपालसुतः साधुर्येनानृण्यं लभेत वाम् ॥४०

पुत्रावूचबुः—

तेनाख्यातमिदं तात पूर्ववृत्तं महात्मना । कौमारके यथा तस्य वृत्तं सद्वृत्तशालिनः ॥४१

तस्य शत्रुजितं तात पूर्वं कश्चिद् द्विजोत्तमः । गालवोऽभ्यागमद्धीमान् गृहीत्वा तुरगोत्तमम् ॥४२

प्रत्युवाच च राजानं समुपेत्याश्रमं मम । कोऽपि दैत्याधमो राजन् विध्वंसयति पापकृत् ॥४३

तत्तद् रूपं समास्थाय सिंहेभवनचारिणाम् । अन्येषां चातिकायानामहर्निशमकारणात् ॥४४

समाधि-ध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्य च । तथा करोति विघ्नानि यथा नेच्छामि पार्थिव ॥४५

दग्धुं कोपाग्निना सद्यः समर्थास्तं वयं न तु । दुःखार्जितस्य तपसोऽव्ययमिच्छामि पार्थिवः ॥४६

एकदा तु मया राजन्नतिनिर्विण्णचेतसा । तत् क्लेशितेन निःश्वासो निरीक्ष्याम्वरमुज्झितः ॥४७

ततोऽम्बरतलात् सद्यः पतितोऽयं तुरंगमः । वाक् चाशरीरिणी प्राह नरनाथ श्रृणुष्व तत् ॥४८

अश्रान्तः सकलं भूमेर्वलयं तुरगोत्तमः । समर्थः क्रान्तुमर्केण तवायं प्रतिपादितः ॥४९

इसलिए हे महाभाग ! जिस कार्य से वह राजपुत्र तुम दोनों के प्रति ऋण राहित्य को प्राप्त करे, वह कहो ॥४०॥

पुत्र बोले—

हे तात ! उस सदाचारी महात्मा की कौमार अवस्था में जो कभी घटा था, उस पूर्व वृत्तान्त को (उसने) हमें सुनाया था ॥४१॥

हे तात ! प्राचीन काल में कोई गालव नामक द्विज श्रेष्ठ विद्वान् उत्तम घोड़े को लेकर, उसके पिता शत्रुजित् के पास आया ॥४२॥

और राजा से बोला—हे राजन् ! कोई पापी नीच दैत्य मेरे आश्रम पर आकर, विध्वंस कर रहा है ॥४३॥

और वह सिंह, हाथी और अन्य वनचारियों के तथा अन्य बड़े शरीरधारी प्राणियों के रूपों को दिन रात अकारण ही धारण करके, ॥४४॥

हे राजन् ! समाधि, ध्यान और मौन व्रत में लगे हुए मेरे प्रति उस प्रकार के विघ्न (उपस्थित) करता है, जिन्हें मैं नहीं चाहता हूं ॥४ ॥

हे राजन् ! हम उसे अपनी कोपाग्नि से शीघ्र ही (यद्यपि) नष्ट करने में समर्थ हैं (तो भी) हम उसके लिए दुःख से अर्जित अपने तप को नष्ट करना नहीं चाहते हैं ॥४६॥

एक बार हे राजन् ! अत्यन्त दुःखी हृदय से उसके दिये क्लेश से दुःखी होकर आकाश की ओर देखकर (मैंने) दीर्घ निःश्वास छोड़ा (तो) ॥४७॥

शीघ्र ही आकाश से यह घोड़ा गिरा । और अशरीरी वाणी ने (जो) कहा -हे राजन् ! तुम उसे सुनो ॥४८॥

क्योंकि यह उत्तम घोड़ा समस्त भूमंडल को बिना थके ही सूर्य के समान पार करने में समर्थ है, वह तुम्हें प्रदान किया जा रहा है ॥४९॥

पातालाम्बरतोयेषु नास्य प्रतिहतागतिः। समस्तदिक्षुव्रजतो न भङ्गः पर्वतेष्वपि ॥५०
यतो भूवलयं सर्वमश्रान्तोऽयं चरिष्यति। ततः कुवलयो नाम्ना ख्यातिं लोके प्रयास्यति ॥५१
क्लिश्यत्यहर्निशं पापो यश्च त्वां दानवाधमः। तमप्येनं समारुह्य द्विजश्रेष्ठ हनिष्यति ॥५२
शत्रुजिन्नाम भूपालस्तस्य पुत्र ऋतध्वजः। प्राप्यैतदश्वरत्नं च ख्यातिमेतेन यास्यति ॥५३
सोऽहं त्वामनुसंप्राप्तस्तपसो विघ्नकारिणम्। तं निवारय भूपाल भागभाङ्नृपतिर्यतः ॥५४
तदेतदश्वरत्नं ते मया भूप निवेदितम्। पुत्रमाज्ञापय तथा यथा धर्मो न लुप्येत ॥५५
स तस्य वचनाद् राजा तं वै पुत्रमृतध्वजम्। तदश्वरत्नमारोप्य कृतकौतुकमङ्गलम् ॥५६
अप्रैषयत धर्मात्मा गालवेन समं तदा। स्वमाश्रमपदं सोऽपि तमादाय ययौ मुनिः ॥५७

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे पिता पुत्र संवादे मदालसोपाख्याने कुवलयाश्वीय वर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः

इसकी आकाश, पाताल और जल में अव्याहत गति है। समस्त दिशाओं में विचरते हुए, इसकी गति पर्वत पर भी भङ्ग नहीं होगी ॥५०॥

क्योंकि यह समस्त भूमण्डल पर अविश्रान्त ही विचरण करेगा। इसलिए यह संसार में कुवलय इस नाम से ख्याति प्राप्त करेगा ॥५१॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! जो पापी, नीच दानव तुमको दिन रात पीड़ित कर रहा है, उसको भी इस पर चढ़कर पैराशत्रुजित् नामक (एक) राजा है, उसका पुत्र ऋतध्वज मारेगा तथा इस अश्व रत्न को प्राप्त करके इससे प्रसिद्धि को प्राप्त होगा ॥५२-५३॥

वही मैं तपस्वी तुम्हारे पास आया हूं अतः हे भूपाल ! उन विघ्न करने वालों का उच्छेद करो क्योंकि राजा (छटे) भाग का भोगी होता है ॥५४॥

तो हे राजन् ! यह अश्व रत्न मैं आपको प्रदान कर रहा हूं। अतः आप अपने पुत्र को ऐसी आज्ञा दीजिये। जिससे धर्म का लोप न हो ॥५५॥

उसके वचनों से उस राजा ने ऋतध्वज पुत्र को, उस अश्व रत्न के ऊपर बैठाकर और कौतुक मंगलादि (कृत्य) करके ॥५६॥

धर्मात्मा गालव के साथ भेजा और वे मुनि भी उसको लेकर अपने आश्रम स्थान को गये ॥५७॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में पिता पुत्र संवाद में मदालसोपाख्यान में कुवलय अश्व प्राप्ति वर्णन नामक अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकोनविंशोऽध्यायः

पितोवाच—

गालवेन समं गत्वा नृपपुत्रेण तेन यत् । कृतं तत् कथ्यतां पुत्रौ विचित्रायुधयोधिना ॥१

पुत्रावूचतुः—

स गालवाश्रमे रम्ये तिष्ठन् भूपालनन्दनः । सर्वविघ्नोपशमनं चकार ब्रह्मवादिनाम् ॥२
वीरः कुवलयाश्वं तं वसन्तं गालवाश्रमे । मदावलेपोपहतो नाजानाद् दानवाधमः ॥३
ततस्तं गालवं विप्रं संध्योपासनतत्परम् । शौकरं रूपमास्थाय प्रधर्षयितुमागमत् ॥४
मुनिशिष्यैरथोत्कुष्टे शीघ्रमारुह्य तं हयम् । अन्वधावद्वराहं तं नृपपुत्रः शरासनी ॥५
आजघान च बाणेन चन्द्रार्धाकारवर्चसा । आकृष्य बलवच्चापं चारुचित्रोपशोभितम् ॥६
नाराचाभिहतः शीघ्रमात्मत्राणपरो मृगः । गिरिपादपसंबाधा सोऽत्यक्रामन् महाटवीम् ॥७
तमन्वधावद् वेगेन तुरगोऽसौ मनोजवः । चोदितो राजपुत्रेण पितुरादेशकारिणा ॥८
अतिक्रम्याथ वेगेन योजनानि सहस्रशः । धरण्यां विवृते गर्ते निपपात लघुक्रमः ॥९
तस्यानन्तरमेवाथ स चाश्वी नृपतेः सुतः । निपपात महागर्ते तिमिरौघसमावृते ॥१०

पिता बोले —

विचित्र आयुधों से युद्ध करने वाले, गालव के साथ गये उस राजपुत्र ने जो किया हे पुत्रों! तुम वह सुनाओ ॥१॥

पुत्र बोले—

उस राजपुत्र ने गालव मुनि के रमणीय आश्रम में रहते हुए, ब्रह्म वादियों से सभी विघ्नों को शान्त किया ॥२॥

गालव के आश्रम में रहते हुए, कुवलय नामक उस अश्व को अहंकार के कारण, उस दानवाधम ने नहीं जाना ॥३॥

तत्पश्चात् (वह दानवाधम) सुअर का रूप धारण करके संध्योपासना में लगे हुए, उस गालव नामक ब्राह्मण को धर्षित करने के लिए (नीचा दिखाने के लिए) आया ॥४॥

तत्पश्चात् मुनि के शिष्यों के द्वारा शोर मचाने पर, उस घोड़े पर शीघ्र चढ़कर, धनुष बाण धारण किये उस राजपुत्र ने उस वराह का पीछा किया ॥५॥

और सुन्दर चित्रकारी से सुशोभित धनुष को बलपूर्वक खींचकर चमकते हुए अर्ध चन्द्राकार बाण से उस पर प्रहार किया ॥६॥

अपनी रक्षा में तत्पर (वह) शीघ्र ही पर्वत वृक्षों आदि बाधाओं से युक्त महाटवी को लाँघ गया ॥७॥

उसके पीछे मन के समान वेग वाले घोड़े को वेगपूर्वक दौड़ाते हुए, पिता के आदेश का पालन करने वाले राजपुत्र से प्रेरित उस अश्व ने उसका पीछा किया ॥८॥

उसके बाद वेग से दौड़ता हुआ सैकड़ों योजन पार कर के पृथ्वी में हुए एक छोटे से छेद में गिर पड़ा (घुस गया) ॥९॥

उसके बाद ही घोड़े पर चढ़ा हुआ वह राजपुत्र गहन अंधकार से घिरे हुए महान् गड्ढे में गिर पड़ा ॥१०॥

ततो नादृश्यत मृगः स तस्मिन् राजसूनुना। प्रकाशं च स पातालमपश्यत् तत्र चार्चिषा ॥११
ततोऽपश्यत् स सौवर्णं प्रासादशतसंकुलम्। पुरन्दरपुरप्रख्यं पुरं प्राकार शोभितम् ॥१२
तत्प्रविश्य स नापश्यत् तत्र कंचिन्नरं पुरे। भ्रमता च ततो दृष्टा तत्र योषित्त्वरान्विता ॥१३
सा पृष्टा तेन तन्वंगी प्रस्थिता क्वेति कस्य वा।
नोवाच किंचित् प्रासादमारुरोह च भामिनी ॥१४
सोऽप्यश्वमेकतो बद्ध्वा तामेवानुससार वै। विस्मयोत्फुल्लनयनो निःशंको नृपतेः सुतः ॥१५
ततोऽपश्यत् सुविस्तीर्णे पर्यंके सर्वकाञ्चने। निषण्णां कन्यकामेकां कामयुवतां रतिं यथा ॥१६
विस्पष्टेन्दुमुखीं सुभ्रूपीनश्रोणिपयोधराम्। बिम्बाधरौष्ठीं तन्वंगीं नीलोत्पलविलोचनाम् ॥१७
रक्ततुङ्गनखीं श्यामां मृदुताम्रकराङ्‌घ्रिकाम्। करभोरुं सुदशनां नीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ॥१८
तां दृष्ट्वा चारु सर्वांगीमनंगांगलतामिव। सोऽमन्यत् पार्थिव सुतस्तां रसातलदेवताम् ॥१९
सा च दृष्ट्वैव तं बाला नीलकुञ्चितमूर्धजम्। पीनोरःस्कंधबाहुं तममंस्त मदनं शुभा ॥२०
उत्तस्थौ च शुभाचारा चित्तक्षोभमवाप सा। लज्जा-विस्मय-दैन्यानां सद्यस्तन्वी वशं गता ॥२१

तदनन्तर उस राजा के पुत्र को वहाँ पर वह पशु (सुअर) दिखाई नहीं दिया, उसके बाद वहाँ घूमते हुए उसने पाताल और प्रकाश को देखा ॥११॥

पुनः उसने स्वर्ण निर्मित सैंकड़ों महलों को देखा। वह नगर इन्द्र की नगरी के समान प्राकार से युक्त था ॥१२॥

और उसमें प्रवेश करके, उसने उस नगर में किसी भी पुरुष को नहीं देखा। उसके बाद उसने वहां घूमते हुए, शीघ्रता से जाती हुई एक स्त्री को देखा ॥१३॥

जाती हुई उस तन्वङ्गी से उसने पूछा—कि वह किसकी (पुत्री) है और कहाँ जा रही है। लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया और बिना बोले ही वह महल पर चढ़ गयी ॥१४॥

उसने भी घोड़े को एक ओर बाँधकर उसका अनुसरण किया। उसके बाद विस्मय से उत्फुल्ल नयनों से युक्त उस राजपुत्र ने पूर्ण रूप से कंचन निर्मित विस्तीर्ण पलंग पर बैठी हुई, काम से युक्त जैसे रति हो, इस प्रकार की एक कन्या को देखा ॥१५-१६॥

जो साक्षात् चन्द्रमुखी, सुन्दर भौंहों वाली, स्थूल नितम्ब और स्तनों से युक्त, बिम्बाफल के समान अधरोष्ठों वाली, कोमल अंगों से युक्त और नील कमल के समान नेत्रों वाली ॥१७॥

बड़े बड़े रक्त वर्ण के नखों से युक्त, श्यामा, कोमल और ताम्र वर्ण के हाथ और पैरों वाली, करभ के समान उरुओं से युक्त, सुन्दर दाँतों वाली, काले और पतले स्थिर अलकों से युक्त, ॥१८॥

कामदेव के अंगों की लता के समान, सर्वाङ्ग सुन्दरी उसको देखकर, उस राजकुमार ने उसको रसातल की देवी समझा ॥१९॥

और उस बाला ने भी, घुंघराले बालों वाले एवं विशाल वक्षस्थल, कंधे और बाहुओं वाले, उसको देखकर साक्षात् कामदेव ही माना ॥२०॥

तब वह शुभाचरणवती, कृशाङ्गी (कामजनित) चित्त में क्षोभ के कारण सहसा उठी और उसी समय लज्जा, विनय तथा दीनता के वशीभूत हो गयी ॥२१॥

कोऽयं देवोऽथ यक्षो नु गन्धर्वो वोरगोऽपि वा। विद्याधरो वा सम्प्राप्तः कृतपुण्यापतिर्नरः ।।२२
एवं विचिन्त्य बहुधा निःश्वस्य च महीतले । उपविश्य तदा भेजे सा मूर्छां मदिरेक्षणा ।।२३
सोऽपि कामशराघातमवाप्य नृपतेः सुतः । तां समाश्वासयामास न भेतव्यमिति ब्रुवन् ।।२४
सा च स्त्री या तदा दृष्टा पूर्वं तेन महात्मना । तालवृन्तमुपादाय पर्यवीजयदाकुला ।।२५
समाश्वस्ता तदा पृष्टा तेन सम्मोहकारणम् ।
किञ्चिल्लज्जान्विता बाला तस्यै सख्यै न्यवेदयत् ।।२६
सा चास्मै कथयामास नृपपुत्राय विस्तरात् । मोहस्य कारणं सर्वं तद्दर्शनसमुद्भवम् ।।
यथा तया समाख्यातं तद्वृत्तान्तं च भामिनी ।।२७

सख्युवाच —

विश्वावसुरिति ख्यातो दिविगन्धर्वराट् प्रभो । तस्येयमात्मजा सुभ्रूर्नाम्नाख्याता मदालसा ।।२८
वज्रकेतोः सुतश्चोग्रो दानवोऽरिविदारणः । पातालकेतुर्विख्यातः पातालान्तरसंश्रयः ।।२९
तेनेयमुद्यानगता कृत्वा मायां तमोमयीम् । अपहृत्य समानीता बालेयं दुष्टवुद्धिना ।।३०
आगामिन्यां त्रसोदश्यामुद्वक्ष्यति किलासुरः ।।३१

अरे ! यह कौन आया ? देव है ? यक्ष है ? अथवा गन्धर्व है या उरग है ? अथवा विद्याधर है ? या कोई पुण्यवान् नर है ? ।।२२।।

इस प्रकार बहुत तरह से सोचकर बार-बार श्वांस भरते हुए, पृथ्वी पर बैठकर, उसके बाद वह कमललोचना मूर्छित हो गयी ।।२३।।

राजा के उस पुत्र ने भी 'डरना नहीं चाहिये' ऐसा कहते हुए उसे (नारी को) आश्वस्त किया और स्वयं भी कामदेव के बाणों से आहत हुआ ।।२४।।

और वह स्त्री भी जो उस महानुभाव ने पहले देखी थी, व्याकुल होकर, ताल का पत्ता लेकर डुलाने लगी ।।२५।।

जब वह आश्वस्त हो गयी तो उस बाला ने कुछ लज्जित होकर अपनी सखी से निवेदन किया (अर्थात् उत्तर देने के लिए संकेत किया) ।।२६।।

(इसके पश्चात्) जिस प्रकार से उस कन्या ने उस सखी से अपना वृत्तान्त (पहले) कहा था वह उस सखी ने इस राजा के पुत्र से विस्तार पूर्वक कहा—और (बताया कि) आपका दर्शन ही इस मोह का सब कुछ कारण है ।।२७।।

सखी बोली—

हे प्रभो ! स्वर्ग में विश्वावसु इस नाम से प्रसिद्ध गन्धर्वराज हुए, उनकी यह मदालसा नाम से प्रसिद्ध सुन्दर भौंहों वाली पुत्री है ।।२८।।

वज्रकेतु का पुत्र शत्रु विदारक, उग्र, पाताल में रहने वाला, पातालकेतु इस नाम से विख्यात है ।।२९।।

तमोमयी माया फैलाकर, उद्यान में विचरण कर रही इसका उस दुष्टवुद्धि ने अपहरण किया और यहाँ (पाताल में) ले आया । निश्चय ही वह असुर आगामिनी त्रयोदशी को इसके साथ विवाह करेगा ।।३०-३१।।

स तु नार्हति चार्वंगीं शूद्रो वेदश्रुतिं यथा। अतीते च दिने बालां चात्मव्यापादनोद्यताम् ॥३२
सुरभिः प्राह नायं त्वां प्राप्स्यते दानवाधमः। मर्त्यलोकमनुप्राप्तं य एनं भेत्स्यते शरैः ॥३३
स ते भर्ता महाभागे ह्यचिरेण भविष्यति। अहं त्वस्याः सखी नाम्ना कुण्डलेति मनस्विनी ॥३४
सुता विन्ध्यवतः पत्नी वीरपुष्करमालिनः। हते भर्त्तरि शुम्भेन तीर्थात् तीर्थमनुव्रता ॥
चरामि दिव्यया गत्या परलोकार्थमुद्यता ॥३५
पातालकेतुर्दुष्टात्मा वाराहं वपुरास्थितः। केनापि विद्धो बाणेन मुनीनां त्राणकारणे ॥३६
तथाहं तत्त्वतोऽन्विष्य त्वरिताऽहमिहागता ॥३७
सत्यमेव स केनापि ताडितो दौष्टचमाचरन्। इयं च मूर्छामगमद् येन तत्कारणं शृणु ॥३८
त्वयि प्रीतिमती बाला दर्शनादेव मानद। देवपुत्रोपमे चारुवाक्यरूपादिशालिनि ॥३९
भार्या चान्यस्य विहिता येन विद्धः स दानवः। एतस्मात् कारणान्मोहं महान्तमियमागता ॥४०
यावज्जीवं च तन्वंगी दुःखमेवोपभोक्ष्यति। त्वय्यस्या हृदयं रागि भर्त्ता चान्यो भविष्यति ॥४१
यावज्जीवमतो दुःखं सुरभ्या नान्यथा वचः। अहं त्वस्याः प्रभो प्रीत्या दुःखिताऽत्र समागता ॥४२

किन्तु वह असुर इस सुन्दर अंगों वाली के लिए, उसी प्रकार अयोग्य है जिस प्रकार शूद्र वेद को सुनने के अयोग्य होता है। ३२॥

कल जिस समय यह बाला आत्मघात करने के लिए उद्यत हुई तो (उसी समय) सुरभि ने कहा—'यह अधम दानव तुझको प्राप्त नहीं कर सकेगा।

मनुष्य लोक में गये हुए इस राक्षस को जो बाण से वेध देगा। हे भाग्यशालिनी! वह शीघ्र तेरा पति होगा।' और मनस्विनी मैं तो कुण्डला इस नाम वाली इसकी सखी हूं ॥३३-३४॥

विन्ध्यवान् की पुत्री और वीर पुष्कर माली की पत्नी हूं। शुम्भ के द्वारा पति के मारे जाने पर पर-लोक प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील (मैं) दिव्य गति से, एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ पर घूमते हुए, विचरण करती हूं ॥३५॥

मुनियों की रक्षा के कार्य में संलग्न किसी ने, वराह का शरीर धारण किये हुए (उस) दुष्टात्मा पाताल केतु को बाण से घायल कर दिया है। इसलिए मैं वस्तु स्थिति को जानकर, यहाँ पर शीघ्र आयी हूं ॥३६-३७॥

दुष्टता का आचरण करता हुआ वह निश्चय ही किसी के द्वारा ताड़ित किया गया है और यह (मदालसा कन्या) जिस (कारण) से मूर्छित हुई है, उस कारण को भी सुनो ॥३८॥

हे मनस्वी! सुन्दर वाक्य और गुणवती यह बाला देवपुत्र तुल्य आपके दर्शनों से ही अनुराग युक्त हो गयी है ॥३९॥

किन्तु जिस मनुष्य ने इस दानव को विद्ध किया है उसके अतिरिक्त (यह) किसी दूसरे की भार्या नहीं हो सकती, इसी कारण यह अत्यन्त मोह को प्राप्त हुई है ॥४०॥

(क्योंकि) इस कोमलाङ्गी को यावज्जीवन दुःख ही भोगना पड़ेगा। तुम्हारे प्रति इसका हृदय अनुराग युक्त है और पति कोई और होगा क्योंकि सुरभि का वचन झूठा नहीं हो सकता। अतः जीवन पर्यन्त इसको तो दुःख ही उठाना पड़ेगा। हे प्रभु! मैं तो इसके प्रेम के कारण दुःखी होकर यहाँ आयी हूं ॥४१-४२॥

यतो विशेषो नैवास्ति स्वसखीनिजदेहयोः । यद्येषाभिमतं वीरपतिमाप्नोति शोभना ॥४३
ततस्त्वहं तपः कुर्यां निर्व्यलीकेन चेतसा । त्वं तु को वा किमर्थं वा सम्प्राप्तोऽत्र महामते ॥४४
देवो दैत्योऽनुगंधर्वः पन्नगः किन्नरोऽपि वा । न ह्यत्र मानुषगतिर्न चेदङ्मानुषीगतिः ॥
तत्त्वमाख्याहि कोऽसि त्वं यथैवावितथं मया ॥४५

कुवलयाश्व उवाच—

यन्मां पृच्छसि धर्मज्ञे कस्त्वं किं वा समागतः ॥४६
तच्छृणुष्वामलप्रज्ञे कथयाम्यादितस्तव । राज्ञः शत्रुजितः पुत्रः पित्रा सम्प्रेषितः शुभे ॥४७
मुनिरक्षणमुद्दिश्य गालवाश्रममागतः । कुर्वतो मम रक्षां च मुनीनां धर्मचारिणाम् ॥४८
विघ्नार्थमागतः कोऽपि शौकरं वपुरास्थितः । मया स विद्धो बाणेन चन्द्रार्द्धाकारवर्चसा ॥४९
अपक्रान्तोऽतिवेगेन तमस्म्यनुगतो हयी । पपात सहसा गर्त्ते सक्रोधोऽश्वश्च मामकः ॥५०
सोऽहमश्वं समारुढस्तमस्येकः परिभ्रमन् । प्रकाशमासादितवान् दृष्ट्वा च भवती मया ॥५१
पृष्टा च न च मे किञ्चिद् भवत्या दत्तमुत्तरम् । त्वां चैवानुप्रविष्टोऽहमिमं प्रासादमुत्तमम् ॥५२
इत्येतत् कथितं सत्यं न देवोऽहं न दानवः । न पन्नगो न गन्धर्वः किन्नरो वा शुचिस्मिते ॥५३

क्योंकि मेरे शरीर और मेरी सखी के शरीर में अन्तर नहीं है, यदि यह सुन्दरी अपने अभिमत वीर पति को प्राप्त कर लेती है। तो मैं निश्चित मन से तपस्या करूँ। तो, तुम कौन हो ? हे महामते ! किसलिए यहाँ आये हो ? ॥४३-४४॥

तुम कोई देव हो ? दैत्य हो ? या कोई गन्धर्व हो ? पन्नग हो ? या किन्नर हो ? यहाँ कोई मनुष्य नहीं आ सकता क्योंकि मानवी गति ऐसी होती ही नहीं। जिस प्रकार मैंने तुमसे अपना वृत्तान्त यथार्थ सुनाया है, उसी प्रकार तुम भी ठीक-ठीक बताओ कि तुम कौन हो ? ॥४५॥

कुवलयाश्व ने कहा—

हे धर्म को जानने वाली ! 'तुम कौन हो और किसलिए यहाँ आये हो ?' यह जो तुमने पूछा है ॥४६॥

तो हे निर्मल मति वाली ! सुनो, मैं तुम्हें आरम्भ से ही सुनाता हूं। हे शुभे ! मैं राजा शत्रुजित् का पुत्र हूं। मुनियों की रक्षा करने के उद्देश्य से पिता ने मुझे भेजा। मैं गालव मुनि के आश्रम में आया। धर्माचरण करने वाले मुनियों की मैं रक्षा करता था कि—सुअर के शरीर को धारण करके कोई (राक्षस) विघ्न करने के लिए आया। पुनः वह चमकते हुए अर्द्धचन्द्राकार बाण से मेरे द्वारा बींध दिया गया ॥४७-४९॥

अत्यन्त वेग से भागते हुए, उसका मैंने घोड़े पर चढ़कर पीछा किया। सहसा वह एक गड्ढे में गिर पड़ा और क्रोधित मेरा घोड़ा भी (उसी गड्ढे में घुस गया) ॥५०॥

अश्व पर चढ़े हुए, अंधेरे में अकेले घूमते हुए मैंने अकस्मात् प्रकाश पाया और मैंने तुम्हें देखा ॥५१॥

जब मैंने आपसे पूछा तो तुमने मुझे कोई उत्तर नहीं दिया। तुम्हारे पीछे-पीछे ही मैं इस उत्तम महल में प्रविष्ट हुआ ॥५२॥

इस प्रकार मैंने यह सत्य कह दिया है। न मैं कोई देव हूं और न दानव हूं। हे शुचि स्मिते ! न पन्नग हूं, न कोई गन्धर्व हूं और न किन्नर ही हूं ॥५३॥

समस्ताः पूज्यपक्षा वै देवाद्या मम कुण्डले । मनुष्योऽस्मि विशंका ते न कर्त्तव्यात्र कर्हिचित् ॥५४

पुत्रावूचतुः—

ततः प्रहृष्टा सा कन्या सखी वदनमुत्तमम् । लज्जाजडं वीक्षमाणा किञ्चिन्नोवाच भामिनी ॥५५
तत्सखी पुनरप्येनां प्रहृष्टा प्रत्युवाच ह । यथावत् कथितं तेन सुरभ्या वचनानुगम् ॥५६

कुण्डलोवाच—

वीर सत्यमसंदिग्धं भवताभिहितं वचः । नान्यत्र हृदयं ह्यस्या दृष्ट्वा स्थैर्यं प्रयास्यति ॥५७
चन्द्रमेवाधिका कान्तिः समुपेति रविं प्रभा । भूतिर्धन्यं धृतिर्धीरं क्षान्तिरभ्येति चोत्तमम् ॥५८
त्वयैव विद्धोऽसंदिग्धं स पापो दानवाधमः । सुरभिः सा गवां माता कथं मिथ्या वदिष्यति ॥५९
तद् धन्येयं सभाग्या च त्वत सम्बन्धमवेत्य वै । कुरुष्व वीर यत्कार्यं विधिनैव समाहितम् ॥६०

पुत्रावूचतुः—

परवानहमित्याह राजपुत्रः सदा पितुः । सा च तं चिन्तयामास तुम्बुरुं तत् कुले गुरुम् ॥६१
स चापि तत्क्षणात्प्राप्तो निगृहीत समित्कुशः । मदालसायाः संप्रीत्या कुण्डलागौरवेण च ॥६२

हे कुण्डला ! द्युलोक के सभी देवता मेरे पूज्य हैं । मैं मनुष्य हूं । यहां इस सम्बन्ध में तुम्हें किसी प्रकार की कोई अन्य शंका नहीं करनी चाहिये ॥५४॥

पुत्र बोले—

तत्पश्चात् प्रसन्न हुई वह कन्या अपनी सखी के लज्जा के कारण मानो जड़ हुई (उसके) उत्तम (सुन्दर) मुख को देखती रही कुछ बोली नहीं ॥५५॥

इसके पश्चात् प्रसन्न हुई वह सखी पुनः अपनी सखी से बोली– सुरभि का वचन (पूर्ण) करने में तत्पर इन्होंने ठीक ही कहा है ॥५६॥

कुण्डला बोली—

हे वीर ! तुमने जो कहा वह सब सत्य और असदिग्ध है क्योंकि अन्यत्र इसका हृदय, देखकर ही इतनी स्थिरता को प्राप्त नहीं कर सकता ॥५७॥

अधिक कान्ति चन्द्र को ही प्राप्त होती है, प्रभा सूर्य को ही प्राँप्त होती है । ऐश्वर्य धन्य पुरुष को ही प्राप्त होता है, धृति धीर पुरुष को और क्षान्ति उत्तम को ही प्राप्त होती है ॥५८॥

नि.सन्देह वह नीच पापी दानव तुम्हारे द्वारा ही विद्ध हुआ है । वह गोमाता सुरभि मिथ्या कैसे बोलेगी ? ॥५९॥

तुम्हारे साथ सम्बन्ध प्राप्त करके यह सखी धन्य और भाग्यवती हुई है । हे वीर ! जो करणीय है, वह तुम करो, उसका आयोजन तो विधि (भाग्य) ने ही कर दिया है ॥६०॥

पुत्र बोले—

तत्पश्चात् राजपुत्र ने कहा कि मैं सदैव पिता के अधीन हूं (पिता का आज्ञाकारी हूं) पुनः उस (सखी) ने उसके कुलगुरु तुम्बुरू का चिन्तन किया ॥६१॥

मदालसा की प्रसन्नता और कुंडलों के गौरव से, समिधा और कुशादि (मंगल सामग्री) लिए हुए वे भी उसी क्षण आ गये ॥६२॥

प्रज्वाल्य पावकं हुत्वा मन्त्रवित्कृतमंगलाम् । वैवाहिके विधौ कन्यां प्रतिपाद्य यथागतम् ॥
जगाम तपसे धीमान् स्वमाश्रमपदं ततः ॥६३
सा चाह तां सखीबालां कृतार्थाऽस्मि वरानने। संयुक्ताममुना दृष्ट्वा त्वामहं रूपशालिनीम् ॥६४
तपस्तप्स्येऽहमतुलं निर्व्यलीकेन चेतसा । तीर्थाम्बुधौतपापा च भवित्री नेदृशी यथा ॥६५
तं चाह राजपुत्रं सा प्रश्रयोपनतं वचः । गन्तुकामा निजसखीस्नेहविक्लवभाषिणी ॥६६

कुण्डलोवाच--

पुंभिरप्य मितप्रज्ञे नोपदेशो भवद्विधे । दातव्यः किमुत स्त्रीभिरतो नोपदिशामि ते ॥६७
किं त्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेन चेतसा ।
त्वया विश्रम्भिता चास्मि स्मारयाम्यरिसूदन ॥६८
भर्त्तव्या रक्षितव्या च भार्या हि पतिना सदा ॥६९
धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्या भर्त्तुः सहायिनी । या च भार्या च भर्त्ता च परस्परमनुव्रतौ ॥७०
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगतम् । कथं भार्यामृते धर्ममर्थं वा पुरुषः प्रभो ॥७१
प्राप्नोति काममर्थं वा तस्यां त्रितयमाहितम् । तथैव भर्त्तारमृते भार्या धर्मादि साधने ॥७२
न समर्था त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यं समुपाश्रितः । देवता-पितृ-भृत्यानामतिथीनां च पूजनम् ॥७३

मन्त्रवित् (तुम्बुरू) ने अग्नि जलाकर, हवन करके, उस (मदालसा) के मांगलिक कार्य करके, वैवाहिक विधि से कन्या का ऋतध्वज को) दान करके पुनः जैसे आये थे वैसे ही, वे बुद्धिमान् तप करने के लिए अपने आश्रम को चले गये ॥६३॥

और उस सखी ने उस बाला (मदालसा) से कहा—कि हे सुमुखी, रूपराशि ! तुमको रस (राजकुमार) से संयुक्त हुई देखकर मैं तो कृतार्थ हो गयी हूं । अब निश्चिन्त मन से अतुल तप करूँगी । और विविध तीर्थों के जल में पापों को धोऊँगी जिससे पुनः इस प्रकार की (विधवा) न होऊँ ॥६४-६५॥

और तब तप के लिए जाने की इच्छुक वह अपनी सखी के स्नेह से व्याकुल वचन युक्त, शिष्टता से अवनत हुई उस राजपुत्र से बोली—॥६६॥

कुण्डला बोली—

हे अपरिमित बुद्धिशालिन् ! प्राज्ञ पुरुष को भी तुम्हारे समान पुरुष को उपदेश नहीं देना चाहिए। फिर स्त्री का तो कहना ही क्या ? अतः मैं तुम्हें उपदेश नहीं देती हूं ॥६७॥

किन्तु कृश मध्यभाग वाली इस (मदालसा) के स्नेह से मेरा मन आकृष्ट हो गया है और तुम्हारे द्वारा आश्वस्त होने के कारण तुमको स्मरण दिलाती हूं । पति को सदैव पत्नी की रक्षा और पालन करना चाहिए ॥६८-६९॥

क्योंकि धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि में भार्या पति की सहायिका होती है । भार्या और भर्त्ता दोनों ही जब परस्परानुवर्ती होते हैं, तभी धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की संगति (समन्वय) होती है । जिस प्रकार भार्या के बिना पुरुष धर्म और अर्थ को प्राप्त नहीं कर सकता है, उसी प्रकार भार्या भी पति के बिना धर्मादि साधन में समर्थ नहीं होती क्योंकि यह त्रिवर्ग दाम्पत्य के आश्रित रहता है । देवता, पितर, भृत्य और अतिथियों का पूजन, ॥७०-७३॥

न पुंभिः शक्यते कर्त्तुमृते भार्यां नृपात्मज । प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम् ।।७४
क्षयमेति विना भार्यां कुभार्यां संग्रहेऽपि वा । कामस्तु तस्य नैवास्ति प्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ।।७५
दम्पत्योः सह धर्मेण त्रयी धर्ममवाप्नुयात् । पुत्राणां योनिरन्या वै नान्यतो भार्यया बिना ।।
पितॄन् पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीनपि ।।७६
पूजाभिरमरांस्तद्वत् साध्वीं भार्यां नरोऽवति ।
स्त्रियाश्चापि विना भर्त्रा धर्मकामार्थसन्ततिः ।।७७
नैव तस्मात् त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यमधिगच्छति । एतन्मयोक्तं युवयोर्गमिष्यामि यथेप्सितम् ।।७८
वर्धत्वमनया सार्द्धं धनपुत्रसुखायुषा ।।७९

पुत्रावूचतुः—

इत्युक्त्वा संपरिष्वज्य स्वसखीं तं नमस्य च । जगाम दिव्यया गत्या यथाऽभिप्रेतमात्मनः ।।
सोऽपि शत्रुजितः पुत्र स्तामारोप्य तुरंगमम् ।।८०
निर्गंतुकामः पातालाद् विज्ञातो दनुसम्भवैः । ततस्तैः सहसोत्क्रुष्टं ह्रियते ह्रियते त्विति ।।८१
कन्यारत्नं यदानीतं दिवः पातालकेतुना । ततः परिघनिस्त्रिंश-गदा-शूल-शरायुधम् ।।८२
दानवानां बलं प्राप्तं सह पातालकेतुना ।।८३

हे राजपुत्र ! पत्नी के बिना पुरुषों से किया जाना सम्भव नहीं है । यदि किसी प्रकार मनुष्यों से अर्थ प्राप्त कर भी लिया जाय और अपने घर में ले आया भी जाय ।।७४।।

तो बिना भार्या (सुगृहिणी) के वह नष्ट हो जाता है । (इसी प्रकार) कुभार्या के होने पर भी नष्ट हो जाता है । भार्या के न होने पर काम की सिद्धि तो होती ही नहीं, यह तो प्रत्यक्ष ही प्रतीत होता है ।।७५।।

स्त्री और पुरुष दोनों ही (दम्पती) यदि समान धर्म का अवलम्बन करें तो त्रयी धर्म (धर्म, अर्थ और काम) को प्राप्त करने में समर्थ हो सकते हैं । पुत्रोत्पत्ति भार्या के बिना और किसी प्रकार सम्भव नहीं होती । पुत्रों से पितरों को, अन्नादि साधनों से अतिथियों को, ।।७६।।

और पूजा से अमर (देवताओं) को (मनुष्य) प्रसन्न करने में समर्थ होता है । उसी प्रकार मनुष्य साध्वी भार्या को प्राप्त करके प्रसन्न होता है । पति के बिना स्त्री के भी धर्म, अर्थ और काम का विस्तार, ।।७७।।

नहीं होता । क्योंकि यह त्रिवर्ग दोनों के ही (दाम्पत्य में ही) आश्रित है । यह तुम दोनों से मैंने कहा । अब मैं यथाभिलषित स्थान में चली जाऊँगी । इसके साथ रहते हुए तुम धन, पुत्र, सुख और आयु के साथ वृद्धि को प्राप्त करो ।।७८-७९।।

पुत्र बोले—

यह कहकर, उस अपनी सखी का आलिंगन करके और उसको (राजकुमार को) नमस्कार करके स्वाभीप्सित स्थान को दिव्य गति से चली गयी । और वह शत्रुजित् का पुत्र भी उसको (मदालसा को) घोड़े पर चढ़ाकर, ।।८०।।

पाताल से निकलना ही चाहता था कि दानवों ने जान लिया, और वे सहसा जोर-जोर से चीखने लगे 'पातालकेतु स्वर्ग से जिस कन्या को लाया था, उसका हरण किया जा रहा है, हरण किया जा रहा है ।" इसके पश्चात् दानव सेना पातालकेतु के साथ परिघ, खड्ग, गदा, शूल और धनुष बाण लेकर, ।।८१-८३।।

तिष्ठ तिष्ठेति जल्पन्तस्ते तदा दानवोत्तमाः । शरवर्षैस्तथा शूलैर्ववर्षुर्नृपनन्दनम् ।।८४
स तु शत्रुजितः पुत्रस्ततस्तान् प्रति वीर्यवान् । चिच्छेद शरजालेन प्रहसन्निव लीलया ।।८५
क्षणेन पाताल-तलमसि-शक्त्यृष्टि-सायकैः । छिन्नैः संछन्नमत्यर्थमृतध्वजशरोत्करैः ।।
ततोऽस्त्रं त्वाष्ट्रमादाय चिक्षेप प्रतिदानवान् ।।८६
तेन ते दानवाः सर्वे सह पातालकेतुना । ज्वालामालातितीव्रेण स्फुटदस्थिचयास्तदा ।।८७
निर्दग्धाः कापिलं तेजः समासाद्येव सागराः । ततः स राजपुत्रोऽश्वी निहत्यासुरसत्तमान् ।।८८
स्त्रीरत्नेन समं तेन समागच्छत् पितुः पुरम् । प्रणिपत्य च तत् सर्वं स तु पित्रे न्यवेदयत् ।।८९
पातालगमनं चैव कुण्डलायाश्च दर्शनम् । तद्वन्मदालसा-प्राप्तिं दानवैश्चापि सङ्गरम् ।।९०
वधश्च तेषामस्त्रेण पुनरागमनं तथा । इति श्रुत्वा पिता तस्य चरितं चारुचेतसः ।। ९१
प्रीतिमान भवच्चैनं परिष्वज्याह चात्मजम् । सत्पुत्रेण त्वया पुत्र तारितोऽहं महात्मना ।।९२
भयेभ्यो मुनयस्त्राता येन सद्धर्मचारिणा । मत्पूर्वैः ख्यातिमानीतं मया विस्तरितं पुनः ।।९३
पराक्रमवता वीर त्वया तद्बहुलीकृतम् ।।९४

अरे, ठहरो, ठहरो, इस प्रकार कहते हुए, महादानवों ने बाणों एवं भालों की राजकुमार के ऊपर वर्षा की ।।८४।।

और उस अत्यन्त पराक्रमी, शत्रुजित् के पुत्र ने उन अस्त्रों को अपने बाणों के जाल से खेल-खेल में हंसते हुए काट दिया ।।८५।।

तब ऋतध्वज के बाणों से छिन्न भिन्न असि, शक्ति, ऋष्टि और बाणों से क्षण भर में ही पाताल तल परिपूर्ण हो गया और ऋतध्वज ने बहुत बाण छोड़े और छिन्न भिन्न कर दिये इसके पश्चात् (राजकुमार ने) त्वाष्ट्र अस्त्र ग्रहण करके दानवों पर चलाया ।।८६।।

तब उस ज्वाला माला युक्त भयंकर अस्त्र ने पातालकेतु सहित दानवों की अस्थियों को तोड़ डाला ।।८७।।

और वे क्षण भर में ही कपिल मुनि के तेज से सगर के पुत्रों के समान भस्म हो गये। उसके पश्चात् वह राजकुमार श्रेष्ठ, असुरों को मारकर स्त्री रत्न के साथ घोड़े पर चढ़कर पिता के नगर में आ गया और पिता को प्रणाम करके समस्त वृत्तान्त पिता से निवेदन किया ।।८८-८९।।

पाताल में जाना, कुंडला का दर्शन और उसी प्रकार मदालसा की प्राप्ति और दानवों के साथ युद्ध को भी, ।।९०।।

और अस्त्र से उनका वध, फिर लौटना (इत्यादि सब कुछ उसने अपने पिता से निवेदन किया) और पिता तब चारुचेता पुत्र का चरित इस प्रकार सुनकर, ।।९१।।

अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्र को आलिंगन करके कहने लगे हे पुत्र ! तुम महान् हो और सत्पुत्र हो, तुमने मुझे तार दिया ।।९२।।

जिसने श्रेष्ठ धर्म का आचरण करते हुए, भय से मुनियों की रक्षा की । मेरे पूर्व पुरुषों ने जो ख्याति अर्जित की थी मैंने उसका पुनः विस्तार किया ।।९३।।

हे पराक्रमी वीर ! तुमने उसको बहुत अधिक विस्तरित किया है ।।९४।।

यदुपात्तं यशः पित्रा धनं वीर्यमथापि वा । तन्न ह्रापयते यस्तु स नरो मध्यमः स्मृतः ॥९५
तद्वीर्यादधिकं यस्तु पुनरन्यत् स्वशक्तितः । निष्पादयति तं प्राज्ञा वदन्ति नरमुत्तमम् ॥९६
यः पित्रा समुपात्तानि धनवीर्ययशांसि वै । न्यूनतां नयति प्राज्ञास्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥९७
तन्मया ब्राह्मण-त्राणं कृतमासीद्यथा त्वया । पाताल गमनं यच्च यच्चासुर विनाशनम् ॥
एतदभ्यधिकं वत्स तेन त्वं पुरुषोत्तमः ॥९८
तद्धन्योऽस्म्यथवा न त्वमहमेव गुणाधिकः । त्वां पुत्रमीदृशं प्राप्य श्लाघ्यं पुण्यवतामपि ॥९९
न सत् पुत्रकृतां प्रीतिमन्यः प्राप्नोति मानवः । पुत्रेण नातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः ॥१००
धिक् तस्य जन्म यः पित्रा लोके विज्ञायते नरः ।
यत्पुत्रात् ख्यातिमभ्येति तस्य जन्म सुजन्मनः ॥१०१
आत्मना ज्ञायते धन्यो मध्यः पितृपितामहैः । मातृपक्षेण मात्रा च ख्यातिं याति नराधमः ॥१०२
तत्पुत्र धनवीर्यैस्त्वं विवर्धस्व सुखेन च । गन्धर्वतनया चेयं मा वियुज्यतु वै त्वया ॥१०३
इति पित्रा बहुविधं प्रियमुक्त्वा पुनः पुनः । परिष्वज्य स्वमावासं सभार्यः स विसर्जितः ॥१०४

पिता द्वारा उपार्जित यश, धन अथवा पराक्रम को जो घटाता नहीं है (उसको बनाये रखता है), वह व्यक्ति मध्यम कहलाता है ॥९५॥

और जो अपनी शक्ति से पिता के वीर्य (पराक्रम) आदि से अधिक पराक्रम आदि का सम्पादन करता है । विद्वान् लोग उसको उत्तम मनुष्य कहते हैं ॥९६॥

जो पिता के धन, वीर्य और यश को (अपनी अकर्मण्यता अथवा विपरीत कर्म से) घटाता है बुद्धिमान लोग उसे अधम मनुष्य कहते हैं ॥९८॥

जिस प्रकार तुमने किया मैंने भी (भय से) ब्राह्मणों की रक्षा की थी । पाताल में जाना और असुरों का विनाश, यह (मेरे कार्य से) अधिक है । इसलिए हे पुत्र ! तुम पुरुषोत्तम हो ॥९८॥

तो मैं धन्य हूं अथवा तुम, नहीं मैं ही गुणों से अधिक हूं । तुमको (तुम्हारे जैसे पुत्र को) प्राप्त कर, पुण्यवानों में भी मैं श्लाघनीय हूं ॥९९॥

सत्पुत्रों द्वारा की गयी प्रीति को कोई अन्य पुरुष प्राप्त नहीं कर सकता । (केवल वही प्राप्त कर सकता है) जिसे अपनी प्रतिभा, दान और विक्रम से पुत्र ने पीछे छोड़ दिया हो ॥१००॥

उस मनुष्य के जन्म को धिक्कार है जो इस संसार में अपने पिता से जाना जाता है, और जो अपने पुत्र से ख्यात होता है उसका जन्म प्रशंसनीय है ॥१०१॥

अपनी योग्यता से ख्यात होने वाला व्यक्ति धन्य है, पिता या पितामह से ख्यात होने वाला, मध्यम, तथा माता अथवा मातृपक्ष से होने वाला मनुष्य अधम कहा जाता है ॥१०२॥

इसलिए हे पुत्र ! धन, पराक्रम (और इनसे जनित) सुख से (सुखपूर्वक अपने वीर्य (पराक्रम) की और धन की वृद्धि करो और इस गन्धर्व पुत्री को तुम्हें निश्चय ही कभी भी अलग नहीं करना चाहिए तुम वृद्धि प्राप्त करते रहो । यह (तुम्हारी पत्नी) गन्धर्व पुत्री है । इसका कभी तुमसे वियोग न हो ॥१०३॥

इस प्रकार पिता ने बार-बार बहुत प्रकार से मधुर बातें कहकर और आलिंगन करके, उसे अपने निवास स्थान की ओर पत्नी सहित भेज दिया ॥१०४॥

स तया भार्यया सार्धं रेमै तत्र पितुः पुरे । अन्येषु च तथोद्यानवन-पर्वत-सानुषु ।।१०५
श्वश्रु-श्वशुरयोः पादौ प्रणिपत्य च सा शुभा । प्रातः प्रातस्ततस्तस्य प्रणिपत्य सुमध्यमा ।।१०६
इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे कुवलयाश्वीये मदालसापरिणय वर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ।

और उसने उस पत्नी के साथ अपने पिता की नगरी में आनन्द प्राप्त किया और उद्यान, वन तथा पर्वतों की चोटियों और अन्य स्थलों पर भी विहार किया ।।१०५।।

अपनी सास-ससुर के चरणों में प्रणाम करके सुन्दर कटिवाली वह कल्याणी, प्रतिदिन प्रातःकाल उस ऋतुध्वज को प्रणाम करती थी ।।१०६।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डय महापुराण में कुवलयाश्वीय प्रकरणान्तर्गत मदालसा परिणयन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

विंशोऽध्यायः

पुत्रावूचतुः—

ततः काले वहुतिथे गते राजा पुनः सुतम् । प्राह गच्छाशु विप्राणां त्राणाय चर मेदिनीम् ।।१
अश्वमेतं समारुह्य प्रातः प्रातर्दिने-दिने । आबाधा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्या सदैव हि ।।२
दुर्वृत्ताः सन्ति शतशो दानवाः पापबुद्धयः । तेभ्यो न स्याद्यथा बाधा मुनीनां त्वं तथा कुरु ।।३
स तथोक्तस्तदा पित्रा तथा चक्रे नृपात्मजः । परिक्रम्य महीं कृत्स्नां ववंदे चरणौ पितुः ।।४
अहन्यहनि सम्प्राप्ते पूर्वाह्णे नृपनन्दनः । ततश्च शेषं दिवसं तया रेमे सुमध्यया ।।५
एकदा तु चरन् सोऽथ ददर्श यमुना-तटे । पातालकेतोरनुजं तालकेतुं कृताश्रमम् ।।६

पुत्र बोले—

तत्पश्चात् बहुत समय बीतने पर, राजा ने पुनः पुत्र से कहा—'शीघ्र ब्राह्मणों की रक्षार्थ जाओ और पृथ्वी पर विचरण करो' ।।१।।

'इस अश्व पर चढ़कर प्रतिदिन प्रातः सदैव विपत्ति ग्रस्तब्राह्मणों को खोजना चाहिए ।।२।।

दुष्ट आचरण करने वाले सेंकड़ों पापबुद्धि वाले दानव हैं, अतः तुम ऐसा करो जिससे उन मुनियों को राक्षसों से बाधा न हो" ।।३।।

तत्पश्चात् उस राजकुमार ने, जैसा पिता ने कहा, वैसा ही किया, और सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा करके, पिता के चरणों की वन्दना की ।।४।।

इस प्रकार वह राजकुमार प्रतिदिन प्रातःकाल (पूर्वाह्न में) लौट आता था । उसके पश्चात् शेष दिन में उस सुन्दर मध्य भाग वाली (मदालसा) के साथ रमण करता था ।।५।।

एक बार, विचरण करते हुए, यमुना के तट पर उसने पातालकेतु के छोटे भाई तालकेतु को आश्रम बनाये हुए देखा ।।६।।

मायावी-दानवः सोऽथ मुनिरूपं समाश्रितः । स प्राह राजपुत्रं तं पर्ववैरमनुस्मरन् ॥७
राजपुत्र ब्रवीमि त्वां तत्कुरुष्व यदीच्छसि । न च ते प्रार्थनाभंगः कार्यः सत्यप्रतिश्रव ॥८
यक्ष्ये यज्ञेन धर्माय कर्त्तव्याश्च मयेष्टयः । चिन्तये तत्र कर्त्तव्या नास्ति मे दक्षिणा यतः ॥९
ततः प्रयच्छ मे वीर दक्षिणार्थे स्वभूषणम् । यदेतत् कण्ठलग्नं ते रक्ष चेमं ममाश्रमम् ॥१०
यावदन्तर्जले देवं वरुणं यादसां पतिम् । वैदिकैर्वारुणैर्मन्त्रैः प्रजानां पुष्टिहेतुकैः ॥११
अभिष्टूय त्वरायुक्तः समभ्येमीति वादिनम् । तं प्रणम्य ततः प्रादात् स तस्मै कण्ठभूषणम् ॥१२
प्राह चैनं भवान् यातु निर्व्यलीकेन चेतसा । स्थास्यामि तावदत्रैव तवाश्रमसमीपतः ॥१३
तवादेशान्महाभाग यावदागमनं तव । न तेऽत्र कश्चिदाबाधां करिष्यति मयि स्थिते ॥१४
विश्रब्धस्त्वं ब्रह्मन् कुरुष्व च मनोगतम् । एतदुक्त स्ततस्तेन स ममज्ज नदीजले ॥
अरक्षत् सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम् ॥१५
गत्वा जलाशयात् तस्मात् तालकेतुश्च तत्पुरम् । मदालसायाः प्रत्यक्षमन्येषां चैतदुक्तवान् ॥१६
वीरः कुवलयाश्वोऽसौ ममाश्रम समीपतः । केनापि दुष्टदैत्येन कुर्वन् रक्षां तपस्विनाम् ॥१७

तत्पश्चात् मुनि का रूप धारण करके उस मायावी दानव ने पूर्व का वैर स्मरण करके राजपुत्र से कहा — ॥७॥

हे राजपुत्र ! मैं तुझसे कहता हूं, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो करो । हे सत्यप्रतिज्ञ ! तुम्हें मेरी प्रार्थना अस्वीकृत नहीं करनी चाहिए ॥८॥

मैं धर्म के लिए यज्ञ करूंगा । विविध प्रकार की इष्टियां भी करनी हैं । किन्तु मेरे पास उसमें देने योग्य दक्षिणा नहीं है, इसलिए मैं चिन्तित हूं ॥९॥

इसलिए, हे वीर ! अपना यह आभूषण जो तुमने, कंठ में पहना हुआ है, मुझे दक्षिणा के लिए दे दो और (तब तक) मेरे इस आश्रम की रक्षा करो, ॥१०॥

जब तक मैं प्रजाओं की समृद्धि के लिए उपयुक्त वेद के वरुण देवता के मन्त्रों से, जल के स्वामी वरुण देवता की जल के भीतर-स्तुति करके, मैं अभी शीघ्र आ रहा हूं' इस प्रकार कहते हुए उसको (तालकेतु को) प्रणाम करके उसने अपना वह आभूषण कण्ठ से उतार कर उसे दे दिया ॥११–१२॥

और उसे प्रणाम करके कहा 'आप निश्चिन्त मन से जाइए । मैं तब तक यहीं आपके आश्रम के समीप में रहूंगा' ॥१३॥

'हे महाभाग ! आपके आदेश से, जब तक आपका आगमन होता है,आपको यहाँ पर मेरे यहाँ स्थित रहने पर कोई बाधा नहीं देगा ॥१४॥

हे ब्रह्मन् ! आप विश्रब्ध होकर अभिलषितकार्य कीजिए' उस राजपुत्र के ऐसा कहने पर वह नदी के जल में प्रवेश कर गया । उस (राजकुमार) ने भी माया से रचित उसके आश्रम की रक्षा की ॥१५॥

और तालकेतु ने नदी के जलाशय से निकल कर और (राजकुमार के) नगर में जाकर, मदालसा के सामने, दूसरों से इस प्रकार कहा, 'वह कुवलयाश्ववीर मेरे आश्रम के पास में ही वीर कुवलय और वह अश्व किसी दैत्य से तपस्वियों की रक्षा करते हुए ॥१६–१७॥

युध्यमानो यथाशक्ति निघ्नन्ब्रह्मद्विषो युधि ॥१८
मायामाश्रित्य पापेन भिन्नः शूलेन वक्षसि । म्रियमाणेन तेनेदं दत्तं मे कण्ठभूषणम् ॥१९
प्रापितश्चाग्निसंयोगं शोकार्त्तैः स तु तापसैः । कृतार्तह्लेषाशब्दो वै त्रस्तः साश्रुविलोचनः ॥
नीतः सोऽश्वश्च तेनैव दानवेन दुरात्मना ॥२०
एतन्मया नृशंसेन दृष्टं दुष्कृतकारिणा । यदत्रान्तरं कृत्यं कुरुष्वोत्तरकालिकम् ॥२१
हृदयाश्वामनं चैतद् गृह्यतां कण्ठभूषणम् ॥२२
नास्माकं हि सुवर्णेन कृत्यमस्ति तपस्विनाम् ।
इत्युक्त्वोत्सृज्य तद् भूमौ स जगाम यथागतम् ॥२३
निपपात जनः सोऽथ शोकार्त्तो मूर्छयातुरः ॥२४
क्षणेन चेतनां प्राप्य सर्वास्ता नृपयोषितः । राजपत्न्यश्च राजा च विलेपुरतिदुःखिताः ॥२५
मदालसा तु तद्दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम् । तत्याज सुप्रियान् प्राणाञ्श्रुत्वा विनिहतं प्रियम् ॥
ततः पुरे महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत् ॥२६
यथैव तस्य नृपतेः स्वगृहे समवर्तते । राजा च तां मृतां दृष्ट्वा बिना भर्त्रा मदालसाम् ॥२७
प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृश्य स्वस्थमानसः । न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ॥२८

और युद्ध करते हुए, ब्राह्मणों के शत्रु (दैत्यों को) यथाशक्ति मारते हुए ॥१८॥

माया का आश्रय लेकर किसी पापी (राक्षस) के द्वारा, भाले से वक्षःस्थल को विदीर्ण कर दिया गया। मरते हुए उसने मुझे यह कण्ठ भूषण दिया। १९॥

उसका शोक सन्तप्त तपस्वियों ने अग्निसंयोग कराया (दाह संस्कार किया) दुःख से ऐसा शब्द हुए अश्रुसिक्त आंखों वाले उस अश्व को भी वह दुरात्मा राक्षस (अपने साथ) ले गया ॥२०॥

यह सब कुछ दुष्ट कर्म करने वाला मैं नृशंस भाव से देखता रहा। इस सम्बन्ध में जो उत्तरकालिक कृत्य है, उसे आप कीजिए ॥२१॥

और हृदय के आश्वासन के लिए इस कण्ठ भूषण को ग्रहण कीजिए ॥२२॥

क्योंकि हम तपस्वियों को स्वर्ण से कोई कार्य नहीं होता है। यह कहकर और भूमि पर उस आभूषण को रखकर वह जैसे आया था वैसे ही चला गया ॥२३॥

तत्पश्चात् शोक से दुःखी मूर्छित होकर लोग पृथ्वी पर गिर पड़े ॥२४॥

क्षण भर के पश्चात् चेतना प्राप्त करके, वे सब राजस्त्रियां और राजा (सभी) अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे और मदालसा ने तो उसके कण्ठहार को देखकर और प्रिय को मरा हुआ सुनकर (अपने प्रिय प्राणों को त्याग दिया। उसके पश्चात् नगर में नगरवासियों के घरों में वैसा ही महान् क्रन्दन हुआ ॥२५-२६॥

जैसा कि उस राजा के अपने घर में हुआ था और राजा ने मदालसा को पति के बिना मरी हुई देखकर ॥२७॥

स्वस्थ मन होकर कुछ सोचकर, सभी लोगों से कहा—आपका और अपना जब मैं इस प्रकार से रोना देखता हूं तो सोचता हूं कि वस्तुतः हमें रोना नहीं चाहिए ॥२८॥

सर्वेषामेव संचिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम् ।
किं नु शोचाभि तनयं किन्नु शोचाम्यहं स्नुषाम् ।।२९
विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मन्येऽशोच्यावुभावपि । मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद् द्विजरक्षणतत्परः ।।३०
प्राप्तो मेऽद्य सुतो मृत्युं कथं शोच्यः स धीमताम् ।।३१
अवश्यं याति यद्देहं तद् द्विजानां कृते यदि । मम पुत्रेण संत्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत् ।।
इयं च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्तर्येवमनुव्रता ।।३२
कथन्नु शोच्या, नारीणां भर्तृ रन्यन्नदैवतम् । अस्माकं बान्धवानां च तथान्येषां दयावताम् ।।
शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी ।।३३
यातु भर्तुर्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी । भर्तारमनुयातेयं न शोच्याऽतो विपश्चिताम् ।।३४
ताः शोच्या या वियोगिन्यः न शोच्या या मृता सह ।।३५
कष्टभ्रान्त्या न गच्छन्ति, कष्टदाः स्युः कुलात्मनोः । भर्तुर्वियोगरत्वनया नानुभूतः कृतज्ञया ।।३६
दातारं सर्वसौख्यानामिह चामुत्र चोभयोः। लोकयोः का हिं भर्त्तारं नारी मन्येतमानुषम् ।।३७
नासौ शोच्यो न चैवेह नायं तज्जननी न च । त्यजता ब्राह्मणार्थाय प्राणान् सर्वे स्म तारिताः।।३८

सभी सम्बन्धों की अनित्यता को सोचकर (हमें नहीं रोना चाहिए) क्या मैं पुत्र का शोक करूँ अथवा पुत्रवधू का ।।२९।।

विचार करने पर मैं तो दोनों को ही कृतकृत्य और शोक न करने योग्य मानता हूं। मेरी सेवा में संलग्न, मेरे वचनों से ही ब्राह्मणों की रक्षा में लगे हुए ।।३०।।

आज मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हुआ है। बुद्धिमानों के लिए वह क्यों शोक करने योग्य है ? ।।३१।।

जो शरीर अवश्य ही जाता है, उसको यदि मेरे पुत्र ने ब्राह्मणों के लिए त्याग दिया है तब तो वह निश्चय ही अभ्युदय प्रदान करने वाला है। और, उत्तम कुल में उत्पन्न पति का इस प्रकार अनुकरण करने वाली यह ।।३२।।

शोच्य कैसे है ? क्योंकि नारियों का पति के अतिरिक्त कोई देवता नहीं होता है। हमारे बन्धु तथा अन्य दयालु व्यक्तियों के लिए, यदि यह इस प्रकार पति वियुक्त हो गयी तो यह शोच्या क्यों है ? ।।३३।।

जिस पत्नी ने अपने पति के वध को सुनकर, उसी क्षण, पति का अनुकरण किया। अतः वह बुद्धिमानों के लिए शोच्य नहीं है ।।३४।।

वस्तुतः वह स्त्री शोच्य है जो पति की वियोगिनी है। वह शोच्य नहीं है जो अपने पति के साथ मर गयी ।।३५।।

कुलाङ्गना कष्ट और भ्रान्ति (मूर्छा आदि से) कष्टप्रद मृत्यु को प्राप्त नहीं होती है और न ही कष्ट देनें वाली होती है। और इस कृतज्ञ ने तो पति के वियोग का भी अनुभव नहीं किया ।।३६।।

इस संसार में और परलोक – दोनों लोकों में सब प्रकार के सुखों को देने वाले मनुष्य को कौन स्त्री पति माने (अर्थात् पति ही दोनों लोकों में वस्तुतः सुख प्रदान करता है) ।।३७।।

न तो वह (कुवलयाश्व) शोक के योग्य है और न यह (मदालसा) और न उसकी न यह माता शोक के योग्य है। क्योंकि ब्राह्मणों के लिए अपने प्राणों को त्यागते हुए उसने हम सब का उद्धार कर दिया हैं ।।३८।।

विप्राणां मम धर्मस्य गतः स तु महापतिः । आनृण्यमर्द्धभुक्तस्य त्यागाद्‌ देहस्य मे सुतः ॥३९
मातुः सतीत्वं मद्वंशवैमल्यं शौर्यमात्मनः । संग्रामे संत्यजन् प्राणान् सोऽविन्दद्द्विजरक्षणात् ॥४०

पुत्रावूचतुः—

ततः कुवलयाश्वस्य माता भर्तुरन्तरम् । श्रुत्वा पुत्रवधं तादृक् प्राह हृष्टा तु तं पतिम् ॥४१

मातोवाच—

न मे मात्रा न मे स्वस्रा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी । श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हतं पुत्रं यथा मया ॥४२
शोचतां बान्धवानां ये निःश्वसन्तोऽतिदुःखिताः ।
म्रियन्ते व्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथा प्रजा ॥४३
संग्रामे युध्यमाना येऽभीता गोद्विज रक्षणे । क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यन्ते त एव भुविमानवाः ॥४४
अर्थिनां मित्रवर्गस्य विद्विषां च पराङ्मुखः । यो न याति पिता तेन पुत्री माता च वीरसूः॥ ४५
गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्यं भजते तदा । यदारिविजयी वा स्यात् संग्रामे वा हतः सुतः ॥४६

पुत्रावूचतुः -

ततः स राजा संस्कारं पुत्रपत्नीमलंभयत् । निर्गम्य च बहिः स्नातो ददौ पुत्राय चोदकम् ॥४७

किन्तु, वह महामति मेरा पुत्र तो अर्द्धमुक्त देह का त्याग करने से ब्राह्मणों के धर्म के प्रति उऋण हो गया है ॥३९॥

ब्राह्मणों की रक्षा के लिए संग्राम में प्राण त्यागते हुए उसने (अपनी) माता के सतीत्व को, मेरे निर्मल वंश को और अपने शौर्य को प्रशंसित कराया है ॥४०॥

पुत्र बोला—

उसके पश्चात् कुवलयाश्व की माता इस प्रकार अपने पुत्र और उसकी पत्नी मदालसा की मृत्यु का समाचार सुनकर अपने पति से प्रसन्नतापूर्वक बोली, ॥४१॥

माता बोली—

हे राजन् ! मुनियों की रक्षा में (लगे) पुत्र की मृत्यु सुनकर जैसी मुझे प्रसन्नता प्राप्त हुई है वैसी प्रसन्नता न तो मेरी माता को मिली और न मेरी बहन को मिल सकी ॥४२॥

जो (व्यक्ति) शोक मग्न बन्धु-बान्धवों के समक्ष रोग से पीड़ित एवं दुःखी होकर लम्बी सांसें खींचते हुए प्राण त्यागते हैं। उनकी माता का सन्तानवती होना व्यर्थ है ॥४३॥

जो मनुष्य गौ और ब्राह्मणों की रक्षा में तत्पर हो रणभूमि में निर्भय भाव से युद्ध करते हुए शस्त्रों से आहत होकर, मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे ही इस पृथ्वी पर सच्चे अर्थों में मानव हैं ॥४४॥

जो याचकों, मित्रों और शत्रुओं से कभी पराङ्मुख नहीं होता। उसी से पिता वस्तुतः पुत्रवान् होता है और माता वीर जननी कहलाती है ॥४५॥

स्त्री (माता) अपने पुत्रजन्य कष्ट को उस समय सफल मानती है जब वह पुत्र शत्रु विजयी होता है अथवा युद्ध में वीरगति को प्राप्त होता है ॥४६॥

पुत्र बोले—

तत्पश्चात् उस राजा ने अपने पुत्र और उसकी पत्नी का अन्तिम संस्कार किया और बाहर निकलकर स्नान करके पुत्र को तर्पण किया ॥४७॥

तालकेतुश्च निर्गम्य तथैव यमुनाजलात् । राजपुत्रमुवाचेदं प्रणयात् मधुरं वचः ।।४८
गच्छ भूपालपुत्र त्वं कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया । वाञ्छितं तु कृतं कार्यं त्वय्यत्राविचले स्थिते ।।४९
वारुणं यज्ञकार्यं च जलेशस्य महात्मनः । तन्मया साधितं सर्वं यन्ममासीदभीप्सितम् ।।५०
प्रणिपत्य स तं प्रायाद् राजपुत्रः पुरं पितुः । समारुह्य तमेवाश्वं सुपर्णानिलविक्रमम् ।।५१

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे कुवलयाश्वीये मदालसा प्राण वियोग वर्णनं नाम विशोऽध्यायः

और तालकेतु उसी प्रकार जमुना के जल से निकलकर, राजपुत्र से प्रसन्नता पूर्वक इस प्रकार मधुर वचन बोला—।।४८।।

हे भूपाल पुत्र ! अब तुम जाओ । मुझे तुमने कृतार्थ कर दिया है । तुम्हारे यहाँ पर अचल रूप से स्थित होने पर मैंने अपना मनोवाञ्छित कार्य कर लिया है ।।४९।।

जल देवता महात्मा वरुण सम्बन्धी यज्ञ कार्य जो जल में ही प्रशंसनीय माना जाता है, मेरा चिर अभिलषित था, उसको मैंने पूर्ण कर लिया है ।।५०।।

उसके पश्चात् राजपुत्र ने उस (मुनि रूप धारी तालकेतु) को प्रणाम करके, गरुड़ और वायु के समान वेग वाले उस अश्व पर पिता के नगर के लिए प्रस्थान किया ।।५१।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में कुवलयाश्वीय प्रकरण में मदालसा प्राण वियोग वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकविंशोऽध्यायः

पुत्रावूचतुः—

स राजपुत्रः सम्प्राप्य वेगादात्मपुरं ततः । पित्रोर्ववन्दिषु पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् ।।१
स ददर्श जनमुद्विग्नमप्रहृष्टमुखं पुरम् । पुनश्च विस्मिताकारं प्रहृष्टवदनं ततः ।।२
अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ट्या दिष्टचेति वादिनम् । परिष्वजन्तमन्योऽन्यमतिकौतूहलान्वितम् ।।३
स राजपुत्रो मित्रं तु उत्फुल्लनयनं शुभम् । आलिलिंग तदा काले सौहृदेन परेण च ।।४

पुत्र बोले—

तत्पश्चात् उस राजपुत्र ने अपने नगर में आकर माता और पिता के चरणों की वन्दना करने और मदालसा को देखने की इच्छा की ।।१।।

उसने नागरिकों के दुःखित और उद्विग्न मुखों को देखा और पुनः (उसके देखे जाने पर) आश्चर्य चकित उनको ही प्रसन्न देखा ।।२।।

और प्रफुल्लित नेत्रों वाले, 'अहो भाग्य है' 'अहो भाग्य है' इस प्रकार कहते हुए, अत्यन्त कौतुहल से युक्त होकर उसने एक दूसरे का आलिंगन करते हुये, दूसरे व्यक्तियों को देखा ।।३।।

उस राजपुत्र ने प्रफुल्ल नेत्रों वाले मित्रों एवं अन्य बन्धुओं का आलिगन किया ।।४।।

ततः पौरास्तदालोक्य दिष्ट्येति वादिनः । चिरञ्जीवोरुकल्याण हतास्ते परिपंथिनः ।।५
पित्रोः प्रह्लादय मनस्तथाऽस्माकमकण्टकम् । इत्येवं वादिभिः पौरैः पुरः पृष्ठे च संवृतः ।।६
तत्क्षणप्रभवानन्दः प्रविवेश पितुर्गृहम् । पिता च तं परिष्वज्य माता चान्ये च बान्धवाः ।।७
चिरञ्जीवोरुकल्याण ददौ चास्मै तदाशिषः । प्रणिपत्य ततः सोऽथ किमेतदिति विस्मितः ।।८
पप्रच्छ पितरं चाथ सोऽस्मै सर्वं तदुक्तवान् । स भार्यां तां मृतां श्रुत्वा हृदयेष्टां मदालसाम् ।।९

पितरौ च पुरो दृष्ट्वा लज्जाशोकविमध्यगः ।
चिन्तयामास सा बाला मां श्रुत्वा निधनं गतम् ।।१०

तत्याज जीवितं साध्वी धिङ् मां निष्ठुरमानसम् । नृशंसोऽहमनार्योऽहं बिना तां मृगलोचनाम् ।।११
मत्कृते निधनं प्राप्तां यज्जीवाम्यति निर्घृणः । पुनः स चिन्तयामास परिसंस्तभ्य मानसम् ।।१२

मोहोद्गममपास्यैवं निःश्वस्यच्छ्वस्य चातुरः ।
मृतेति सा मन्निमित्तं त्यजामि यदि जीवितम् ।।१३

किं मयोपकृतं तस्याः श्लाघ्यमेतत्तु योषिताम् । यदि रोदिमि वा दीनं हा प्रियेति वदन् मुहुः ।।१४

इसके पश्चात् नगरवासी उसको देखकर, 'अहो भाग्य' 'अहो भाग्य' इस प्रकार कहते हुये बोले, चिरंजीवी होकर प्रभूत कल्याणों को प्राप्त करो और तुम्हारे शत्रु नष्ट हो जायें ।।५।।

और अपने पिता के मन को आह्लाद प्रदान करो तथा हमारे लिये निष्कण्टक बनो।' इस प्रकार कहते हुये नगरवासियों के द्वारा आगे और पीछे से घेर लिया गया ।।६।।

उस समय उसने आनन्दातिरेक से युक्त होकर अपने पिता के भवन में प्रवेश किया। माता-पिता एवं बन्धुओं ने उसका आलिंगन करके ।।७।।

'चिरंजीवी होओ और प्रथित कल्याणों को प्राप्त करो' उस समय इस प्रकार आशीर्वाद दिया। उसके पश्चात् उसने प्रणाम करके, 'यह सब क्या है ?' इस प्रकार विस्मित होकर ।।८।।

अपने पिता से पूछा, और उसके पिता ने सब कुछ विस्तार से बताया। उसने हृदय प्रिया अपनी पत्नी मदालसा को मर गयी है ऐसा सुनकर, ।।९।।

और पिता को सामने देखकर, लज्जा और शोक से विह्वल होकर उसने सोचा, मेरी मृत्यु को सुनकर, ।।१०।।

उस सती साध्वी ने मेरे लिए) अपना जीवन त्याग दिया। परन्तु मुझ कठोर-हृदय को धिक्कार है। मैं अत्यन्त निर्घृण हूं, जिसने मेरे लिए अपना शरीर त्याग दिया, मैं उस मृगनयनी के बिना भी जीवित हूं। फिर उसने स्वस्थ चित्त होकर सोचा ।।११-१२।।

फिर उस प्रकार उत्पन्न हुए मोह को त्याग कर, दुःखी मन से बार-बार निःश्वास भरते हुए (विचारने लगा) 'वह मेरे कारण मर गयी है। यदि मैं भी इसी प्रकार जीवन त्याग देता हूं तो ।।१३।।

मैं उसका क्या उपकार करूंगा ? यह तो स्त्रियों के लिए ही श्लाघ्य होता है, और यदि मैं 'हा प्रिये' इस प्रकार बार-बार कहते हुए रोता हूं, ।।१४।।

तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नो वयं हि पुरुषाः किल । अथ शोकजडो दीनोऽसृजाहीनोऽबलान्वितः ॥१५
विपक्षस्य भविष्यामि ततः परिभवास्पदम् । मयारि शातनं कार्यं राज्ञः शुश्रूषणं पितुः ॥१६
जीवितं तस्य चायत्तं संत्याज्यं तत् कथ मया ।
किन्त्वत्र मन्ये कर्त्तव्यस्त्यागो भोगस्य योषितः ॥१७
स चापि नोपकाराय तन्वंग्याः किन्तु सर्वथा । मया नृशंस्यं कर्त्तव्यं नापकार्युपकारि वा ॥
या मदर्थेऽत्यजत् प्राणांस्तदर्थेऽल्पमिदं मम ॥१८

पुत्रावूचतुः—
इति कृत्वा मतिं सोऽथ निस्पाद्यौदकदानिकम् ॥१९
क्रियाश्चानन्तरं कृत्वा प्रत्युवाच ऋतध्वजः । यदि सा मम तन्वङ्गी न स्याद् भार्या मदालसा ॥२०
अस्मिन् जन्मनि नान्या मे भवित्री सहचारिणी । तामृते मृगशावाक्षीं गन्धर्वतनयामहम् ॥२१
न भोक्ष्ये योषितं काञ्चिदिति सत्यं मयोदितम् ।
सद्धर्मचारिणीं पत्नीं तां मुक्त्वा गजगामिनीम् ॥२२
काञ्चिन्नान्यां करिष्यामीत्येतत्सत्यं मयोदितम् ।
एवं सर्वान् परित्यज्य स्त्रीभोगांस्तात सर्वदा ॥२३

तो भी यह मेरे लिए प्रशंसनीय नहीं है. क्योंकि मैं पुरुष हूं, और पुरुषों को यह शोभा नहीं देता। उसके बाद शोक संतप्त, दीन, निर्बल और रक्तहीन हो जाऊँगा ॥१५॥

और तत्पश्चात् शत्रु पक्ष के परिभव (अपमान और परतन्त्रता) को प्राप्त हो जाऊँगा। मेरा कार्य माता-पिता की सेवा और शत्रुओं का उच्छेद करना है, ॥१६॥

यदि मैं जीवित रहूंगा, तब तो वे मेरे अधीन हैं, और प्राण त्यागने पर वे मेरे द्वारा किस प्रकार परास्त किये जायेंगे। किन्तु मुझे इस सम्बन्ध में अन्य किसी भी स्त्री के उपभोग का त्याग कर देना चाहिए ॥१७॥

किन्तु वह (अन्य स्त्री के उपभोग का त्याग) भी वस्तुतः उस तन्वङ्गी के उपकार के लिए नहीं होगा, अपितु मुझ नृशंस के द्वारा, जिसने मेरे लिए प्राणों को त्याग दिया है, उसके लिए यह कुछ भी उपकार्य और उपकारी नहीं है, अपितु यह तो अत्यल्प है।' ॥१८॥

पुत्र ने कहा—

तत्पश्चात् यह विचार करके उसने जलीय क्रियाएँ (तर्पण आदि) तथा दानादि क्रियाओं को निष्पन्न करके, ॥१९॥

और क्रिया करने के पश्चात् ऋतध्वज ने कहा, 'यदि वह तन्वङ्गी मदालसा, मेरी पत्नी नहीं होती है ॥२०॥

गन्धर्व पुत्री उस मृगनयनी के बिना कोई अन्य स्त्री इस जन्म में मेरी सहधर्मचारिणी नहीं होगी।

मैं किसी अन्य स्त्री का भोग नहीं करूँगा। यह मैंने सत्य ही कहा है। उत्तम धर्म का आचरण करने वाली, गजगामिनी उस पत्नी को छोड़कर किसी अन्य को पत्नी नहीं बनाऊँगा, यह मैंने यथार्थ में कह दिया है। हे तात् ! इस प्रकार सभी स्त्री भोगों को त्याग कर वह हमेशा—॥२१-२३॥

क्रीडन्नास्ते समं तुल्यैर्वयस्यैः शीलसम्पदा । एतत्तस्य परं कार्यं तात तत्केन शक्यते ॥
कर्तुमत्यन्तदुष्प्राप्यमीश्वरैः किमुतेतरैः ॥२४

जड उवाच —

इति वाक्यं ततो श्रुत्वा विमर्शमगमत् पिता ॥२५
विमृष्य चाह तौ पुत्रौ नागराट् प्रहसन्निव । यद्यशक्यमिति ज्ञात्वा न करिष्यन्ति मानवाः ॥२६
कर्मण्युद्यममुद्योग हान्याहानिस्ततः परम् । आरभेत नरः कर्म स्वपौरुषमहापयन् ॥२७
निष्पत्तिः कर्मणां दैवे पौरुषे च व्यवस्थिता । तस्मादहं तथा यत्नं करिष्ये पुत्र कार्यतः ॥
तपश्चर्यां समास्थाय यथैतत् साध्यतेऽचिरात् ॥२८

पुत्र उवाच—

एवमुक्त्वा स नागेन्द्रः प्लक्षावतरणं गिरेः । तीर्थं हिमवतो गत्वा तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥२९
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिस्तत्र देवीं सरस्वतीम् । तन्मनानियताहारो भूत्वा त्रिषवणाप्लुतः ॥३०

अश्वतर उवाच —

जगद्धात्रीमहं देवीमारिराधयिषुः शुभाम् । स्तोष्ये प्रणम्य शिरसा ब्रह्मयोनिंसरस्वतीम् ॥३१
सदसद्देवि यत्किञ्चिन्मोक्षवच्चार्थवत् पदम् । तत सर्वं त्वय्यसंयोगं योगवद्देवि संस्थितम् ॥३२

समान वयस् वाले मित्रों के साथ सदाचार पूर्वक खेलता रहता था। हे तात् ! उसका यह परमोत्कृष्ट कार्य था। वैसा कार्य सामर्थ्यशाली, अथवा अन्यों द्वारा किया जाना अत्यन्त कठिन है। कौन कर सकता है ? ॥२४॥

जड़ बोला—

उन दोनों पुत्रों के इस प्रकार वचन सुनकर, उनके पिता ध्यानमग्न हो गये ॥२५॥

और सोचकर, नागराज मानो हँसते हुए से, उन दोनों पुत्रों से बोले– 'यह कार्य अशक्य है, ऐसा सोचकर या सुनकर मनुष्य कार्य नहीं करते हैं ॥२६॥

कार्य में प्रथम उद्योग और उद्यम को मुख्य मानना चाहिए और उसके पश्चात् हानि अथवा लाभ को मानना चाहिए।' (ऐसा सोचकर) मनुष्य को निरालस्य होकर कार्य करना चाहिए ॥२७॥

इस प्रकार दैव और पौरुष से व्यवस्थित कार्यों की सफलता असंदिग्ध होती है। इसलिए हे पुत्र ! मैं तुम्हारे कार्य के लिए वैसा प्रयत्न करूँगा जिससे तपस्या का आश्रय लेकर, यह कार्य अचिरमेव पूर्ण हो जायेगा ॥२८॥

पुत्र ने कहा—

यों कहकर नागराज हिमालय पर्वत के प्लक्षावतरण तीर्थ पर जाकर दुश्चर तप करने लगे। वे तीनों समय स्नान करते और नियमित आहार पर रहते हुए उत्तम वाणी से सरस्वती की स्तुति करने लगे ॥२९-३०॥

मैं जगत् को धारण करने वाली, कल्याणरूपिणी देवी की आराधना करने की इच्छा से, ब्रह्म-योनि सरस्वती को सिर से प्रणाम करके स्तुति करता हूँ। हे सदसद्देवी ! जो कुछ भी मोक्ष के समान और अर्थ के समान पद है, वह सब हे देवी ! तुम्हारे संयोग से योग के समान स्थित है ॥३१-३२॥

त्वमक्षरं परं देवि, यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अक्षरं परमं देवि संस्थितं परमाणुवत् ।।३३
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वञ्चैतत् क्षरात्मकम् । दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः ।।३४
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः । ॐकाराक्षरसंस्थानं यत्तु देवि स्थिरास्थिरम् ।।३५
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च । त्रयो लोकास्त्रयोवेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ।।३६
त्रीणि ज्योतींषि वर्गाश्च त्रयो धर्मागमास्तथा । त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो दोषास्तथाश्रमाः ।।३७
त्रयकालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः । एतन्मात्रात्रयं देवि तव रूपं सरस्वति ।।३८
विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः ।।३९
सोमसंस्था हविः संस्थाः पाकसंस्थाश्च सप्त याः ।
ता स्त्वदुच्चारणाद् देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः ।।४०
अनिर्देश्यं तथा चान्यदर्द्धमात्राश्रितं परम् । अविकार्य-क्षयं परिणाम विवर्जितम् ।।४१
तवैव च परं रूपं यन्न शक्यं मयेरितुम् । न चास्येन न वा जिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ।।
इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्रार्कौ ज्योतिरेव च ।।४२
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् । सांख्य-वेदान्त-वेदोक्तं बहु-शाखा स्थिरीकृतम् ।।४३

हे देवी ! तुम अक्षर हो, जिसमें यह (समस्त ब्रह्माण्ड) प्रतिष्ठित है। हे देवि ! जो अक्षर है वह परमाणु की तरह स्थित है ।।३३।।

परम ब्रह्म अक्षर है और यह समस्त जगत् क्षरात्मक है। जिस प्रकार अग्नि अरणियों में और परमाणु गुण आकाश में स्थित है, ।।३४।।

उसी प्रकार यह सम्पूर्ण ब्रह्ममय जगत् आप में स्थित है और हे देवि ! ओंकार अक्षर जो स्थिर और अस्थिर सम्पूर्ण जगत् का संस्थान है ।।३५।।

और उसमें जो तीन मात्राएँ हैं, वे सब हे देवि ! आपके तीनों लोक, तीनों देवता, त्रिविधा और तीनों प्रकार की अग्नियाँ ।।३६।।

और तीनों ज्योति, तीनों वर्ण तथा तीनों धर्म आदि एवं तीनों शब्द, तीनों गुण, तीनों दोष तथा तीनों आश्रम, ।।३७।।

तीनोंकाल, तीनों अवस्थाएँ और पितर दिन और रात्रि आदि ये सब तीनों मात्राएँ हे देवि सरस्वती ! आपका ही रूप है ।।३८।।

आप ब्रह्मा की बनायी हुई सभी दिखाई देने वाली वस्तुओं में आद्य (प्रथम) और सनातन हैं ।।३९।।

हे देवि, आपके उच्चारण से ही ब्रह्मवादियों द्वारा सोम संस्था, हवि संस्था और पाक संस्था आदि सातों संस्थाएँ वितरित की जाती हैं, ।।४०।।

उक्त तीन मात्राओं से परे जो अर्द्ध मात्रा के आश्रित बिन्दु है, उसका वाणी द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता। वह अविकारी, अक्षय, दिव्य तथा परिणाम शून्य है। देवि, वह तुम्हारा ही स्वरूप है, जिसका वर्णन मेरे द्वारा असम्भव है। मुख, जीभ, तालु और ओष्ठ आदि किसी भी स्थान से उसका उच्चारण नहीं हो सकता। इन्द्र, वसु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि भी वही है। वही सम्पूर्ण जगत का निवास स्थान जगत् स्वरूप, जगत का ईश्वर एवं परमेश्वर है। सांख्य, वेदान्त और वेदों में उसी का प्रतिपादन हुआ है। अनेकों शाखाओं में उसी के स्वरूप का निश्चय किया गया है ।।४१-४३।।

अनादिमध्यनिधनं सदसन्नसदेव तु । एकंत्वनेकमप्येकं भव भेद समाश्रितम् ॥४४
अनाख्यं षड्गुणाख्यं च वर्गाख्यं त्रिगुणाश्रयम् । नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभाविकं परम् ॥४५
सुखासुखमहत् सौख्यरूपं तव विभाव्यते । एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत् ॥
अद्वैतावस्थितं ब्रह्मयच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥४६

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये, ये वा स्थूला ये च सूक्ष्माऽतिसूक्ष्मा: ।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा, तेषां तेषां त्वत्त एवोपलब्धि: ॥४७
यच्चामूर्त्तं यच्च मूर्त्तं समस्तं यद्वा भूतेष्वेकमेकञ्च किञ्चित् ।
यद्दिव्येऽस्ति क्ष्मातले खेऽन्यतो वा त्वत्सम्बन्धं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ॥४८

जड उवाच—

एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वासरस्वती । प्रत्युवाच महात्मनं नागमश्वतरं तत: ॥४९

सरस्वत्युवाच —

वरं ते कम्बलभ्रात: प्रयच्छाम्युरगाधिप । तदुच्यतां प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्त्तते ॥५०

अश्वतर उवाच—

साहाय्यं देवि देहि त्वं पूर्वं कम्बलमेव मे । समस्तस्वरसम्बन्धमुभयो: सम्प्रयच्छ च ।५१

वह आदि, अन्त से रहित है तथा सत्-असत् से विलक्षण होता हुआ भी एक है और एक होकर भी जगत् के भेदों का आश्रय लेकर अनेक है ॥४४॥

वह नाम-रूप से रहित है । छः वर्ग तथा तीन गुण भी उसी के आश्रित हैं । वह एक ही परमशक्तिमान् तत्त्व है जो नाना प्रकार की शक्ति रखने वाले जीवों में शक्ति का संचार करता रहता है ॥४५॥

सुख, दुःख तथा महासौख्य सब उसी अर्द्धमात्रारूप तुरीय पद के स्वरूप हैं । इस प्रकार तीनों मात्राओं से अतीत का जो तुरीय धाम रूप ब्रह्म है, वह तुम्हीं में अभिव्यक्त होता है । हे देवि ! इस प्रकार सकल, निष्कल, अद्वैतनिष्ठ तथा द्वैतनिष्ठ जो ब्रह्म है, वह भी तुम से व्याप्त है ॥४६॥

जो पदार्थ नित्य हैं, जो विनाशशील हैं, जो स्थूल हैं तथा जो सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, जो इस पृथ्वी पर, अन्तरिक्ष में, या और किसी स्थान में देखे जाते हैं, उन सब की उपलब्धि तुम्हीं में होती है ॥४७॥

मूर्त, अमूर्त, समस्त भूत अथवा एक एक भूत जो कुछ भी द्युलोक, पृथ्वी, आकाश या अन्य स्थान में उपलब्ध होता है, वह सब तुम्हारे ही स्वर और व्यञ्जनों से सम्बद्ध है ॥४८॥

जड़ बोला –

तब इस प्रकार स्तुत विष्णु की जिह्वा रूप सरस्वती देवी महात्मा अश्वतर नागराज से बोली ॥४९॥

सरस्वती ने कहा –

हे नागराज ! तुमको और तुम्हारे भाई कम्बल को मैं वर देती हूं । इसलिए जो तुम्हारे मन में इच्छा हो, कहो, वह मैं दूंगा ॥५०॥

अश्वतर बोला—

हे देवि ! पहले तो तुम कम्बल को ही मुझे मेरे सहायक रूप में दो, और दोनों को ही समस्त स्वरों से सम्बन्ध (मूर्च्छादि ज्ञान) प्रदान करो ॥५१॥

सरस्वत्युवाच—

सप्तस्वराग्रामरागाः सप्त पन्नगसत्तम । गीतकानि च सप्तैव तावतीश्चापि मूर्च्छनाः ॥५२
तालाश्चैकोनपञ्चाशत् तथा ग्रामत्रयं च यत् । एतत्सर्वं भवान् गाता कम्बलश्च तथानघ ॥५३
ज्ञास्यसे मत्प्रसादेन भुजगेन्द्र परं तथा । चतुर्विधं पदं तालं त्रिः प्रकारं लयत्रयम् ॥५४
यतित्रयं तथा तोद्यं मया दत्तं चतुर्विधम् । एतद् भवान् मत्प्रसादात् पन्नगेन्द्रापरं च यत् ॥५५
अस्यान्तर्गतमायत्तं स्वरव्यञ्जनसम्मितम् । तदशेषं मया दत्तं भवतः कम्बलस्य च ॥५६
तथा नान्यस्य भूर्लोके पाताले चापि पन्नग । प्रणेतारौ भवन्तौ च सर्वस्यास्य भविष्यतः ॥
पाताले देवलोके च भूर्लोके चैव पन्नगौ ॥५७

जड उवाच—

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सर्वजिह्वा-सरस्वती । जगामादर्शनं सद्यो नागस्य कमलेक्षणा ॥५८
तयोश्च तद्यथा वृत्तं भ्रात्रोः सर्वमजायत ॥५९
विज्ञानमुभयोरग्र्यं पदताल स्वरादिकम् । ततः कैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम् ॥६०
गीतकैः सप्तभिर्नागौ तन्त्रीलयसमन्वितौ । आरिराधयिषुर्देवमनङ्गाङ्गहरं हरम् ॥६१
प्रचक्रतुः परं यत्नमुभौ संहतवाक्कलौ । प्रातर्निशायां मध्याह्ने संध्ययोश्चापि तत्परौ ॥६२

सरस्वती ने कहा—

हे पन्नगश्रेष्ठ ! सातों स्वर, सातों ग्राम सौर सातों रागों से युक्त गीत और उनकी सातों मूर्छनाएँ ॥५२॥

और उनंचास ताल और जो तीन ग्राम हैं, हे निष्पाप, यह सब तुम और कम्बल गाने वाले हो जाओगे ॥५३॥

हे भुजगेन्द्र ! मेरी कृपा से यह सब तुम जान जाओगे, और इसके अतिरिक्त चार प्रकार के पद और तीन प्रकार की ताल तथा तीन प्रकार की लय ॥५४॥

और तीन प्रकार की यति तथा चार प्रकार का काल और जो दूसरी बातें इस विषय के अन्तर्गत आती हैं. स्वर और व्यञ्जनों से युक्त, हे पन्नगेन्द्र ! वे सब मैंने तुम्हें और कम्बल को दे दिया है ॥५५-५६॥

हे पन्नग ! भू लोक और पाताल लोक में किसी छन्द का इस प्रकार का ज्ञान नहीं होगा। इस ज्ञान के, पाताल लोक, भूलोक और देव लोक में केवल तुम दोनों ही प्रणेता माने जाओगे ॥५७॥

जड़ बोला—

इस प्रकार कहकर तब सबकी जिह्वा रूपी कमल के समान नेत्रों वाली वह सरस्वती देवी शीघ्र ही उन नागों के (सामने से) अन्तर्धान हो गयी तत्पश्चात् उन दोनों भाइयों में जैसा कहा गया था वैसा सब कुछ उत्पन्न हो गया ॥५८-५९॥

और उन दोनों को पदताल और स्वरादि में उच्च कोटि का ज्ञान हो गया। उसके बाद कैलाश पर्वत की चोटी पर रहने वाले कामदेव का हरण करने वाले, भगवान् ! शिव की, उन दोनों नागों ने तीन प्रकार की लय से युक्त सात प्रकार के गीतों से, आराधना करने की इच्छा की ॥६०-६१॥

उसके बाद प्रातः, मध्याह्न, संध्या और रात्रि काल में भी आराधना में लगे हुए उन दोनों ने संयत मधुर वाणी से अत्यधिक यत्नपूर्वक आराधना की ॥६२॥

ततः कालेन महता स्तूयमानो वृषध्वजः । तुतोष गीतकैस्तौ च प्राह संगृह्यतां वरः ॥६३
ततः प्रणम्याश्वतरः कम्बलेन समं तदा । विज्ञापयन्महादेवं शितिकण्ठमुमापतिम् ॥६४
यदि नौ भगवन् प्रीतो देव देव त्रिलोचन । ततो यथाभिलषितं वरमेनं प्रयच्छ नौ ॥६५
मृता कुवलयाश्वस्य पत्नी देव मदालसा । तेनैव वयसा सद्यो दुहितृत्वं प्रयातु मे ॥६६
जातिस्मरा यथा पूर्वं तद्वत् कान्तिसमन्विता । योगिनी योगमाता च जायतां वचनात् तव ॥६७

ईश्वर उवाच —

यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठ सर्वमेतद् भविष्यति । मत्प्रसादादसंदिग्धं शृणु चेदं भुजंगम ॥६८
श्राद्धावसाने प्राशनीथा मध्यमं पिण्डमात्मना । कामं चेमामनुध्यायन् कुरु त्वं पितृपूजनम् ॥६९
तत्क्षण.देव सा सुभ्रूर्भवतो मध्यमात् फणात् । समुत्पत्स्यति कल्याणी तथा रूपा यथा मृता ॥७०
स्वयमेवोपभुञ्जस्व ततः सर्वं भविष्यति । उत्पत्स्यते ततः सा तु सत्यं वै मध्यमात् फणात् ॥७१
एतच्छ्रुत्वा ततस्तौ तु प्रणिपत्य महेश्वरम् । रसातलमनुप्राप्तौ परितोष-समन्वितौ ॥७२
तथा च कृतवाञ्छ्राद्धं स नागः कम्बलानुजः । पिण्डञ्च मध्यमं तद्वद्यथावदुपभुक्तवान् ॥७३

तत्पश्चात् तब से अत्यधिक स्तुति किये जाते हुए, नादिया की ध्वजा वाले (शिव) उन दोनों के गीतों से प्रसन्न हुए और बोले वर मांगो ॥६३॥

उसके बाद अश्वतर ने कम्बल के साथ प्रणाम करके नीलकण्ठ उमापति महादेव से निवेदन किया ॥६४॥

हे देवों के देव, महादेव ! यदि आप हम दोनों पर प्रसन्न हैं, तो हम दोनों को यह अभिलषित वर दीजिये कि ॥६५॥

हे देव ! कुवलयाश्व की पत्नी मदालसा मर गयी हैं वह उसी आयु से युक्त, शीघ्र ही मुझे पुत्री के के रूप में प्राप्त होवें ॥६६॥

जिसे अपने पूर्व जन्म का वृत्तांत याद हो। पहले ही जैसी उसकी कान्ति हो, (उसी के समान सहनशीलता से युक्त) योगिनी और योग माता (योगविद्या की जननी) आपके वचनों से उत्पन्न होवें ॥६७॥

ईश्वर बोले —

हे पन्नग श्रेष्ठ ! जैसा (तुमने) कहा है, यह सब मेरी कृपा से निःसदेह वैसा ही होगा ॥६८॥

श्राद्ध समाप्त करने के बाद तुम्हें अपने मध्यम पिण्ड का भक्षण करना चाहिये और इस (मदालसा) का ध्यान करते हुए तुम पितृ-पूजन करो ॥६९॥

उस क्षण ही सुन्दर भौंहों वाली कल्याणी वह (मदालसा) तुम्हारे मध्यम फण से उसी रूप से युक्त उत्पन्न हो जायेगी जैसी मरी थी ॥७०॥

(तुमको वह पिण्ड) स्वयं ही खाना चाहिये। उसके बाद ही ऐसा सब कुछ होगा। तदन्तर वह निश्चय ही तुम्हारे मध्यम फण से उत्पन्न होगी ॥७१॥

उसके बाद यह सुनकर संतुष्टि से युक्त वे दोनों शिव को प्रणाम करके, पाताल में चले गये ॥७२॥

और कम्बल के छोटे भाई उस नाग (अश्वतर) ने उस प्रकार से (श्राद्ध) किया और मध्यम पिण्ड का उसी प्रकार भक्षण किया जैसा कि शिव ने कहा था ॥७३॥

उपभुक्ते ततः पिण्डे तस्य सा तनु मध्यमा। जज्ञे निःश्वसतः सद्यस्तद्रूपा मध्यमात् फणात् ॥७४
न चापि कथयामास कस्यचित् स भुजंगमः। अन्तर्गृहे तां सुदतीं स्त्रीभिर्गुप्तामधारयत् ॥७५
तौ चानुदिनमागत्य पुत्रौ नागपतेः सुखम्। ऋतध्वजेन सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव ॥७६
एकदा तु स तौ प्राह नागराजो मुदान्वितः। तन्मया पूर्वमुक्तं तु क्रियते किं न तत्तथा ॥७७
स राजपुत्रो युवयोरुपकारी ममान्तिकम्। किन्नु नानीयते वत्सावुपकाराय मानदः ॥७८
एवमुक्तौ पुनस्तेन पुत्रौ स्नेहवता तु तौ। गत्वा तस्य पुरं सख्यू रेमाते तेन धीमता ॥७६
ततः कुवलयाश्वं तं कृत्वा किञ्चित् कथान्तरम्। अब्रूतां प्रणिपातेन स्व-गृहागमनं प्रति ॥८०
तावाह नृपपुत्रोऽसौ नन्विदं भवतोर्गृहम्। धन-वाहन-वस्त्रादि यन्मदीयं तदेव वाम् ॥८१
यस्य वां वाञ्छितं दातुं धनं रत्नमथापि वा। तद्दीयतां द्विजसुतौ यदि वां प्रणयो मयि ॥८२
एतावताहं दैवेन वंचितोऽस्मि दुरात्मना। यद् भवद्भ्यां ममत्वं नो मदीये क्रियतां गृहे ॥८३
यदि वा मे प्रियं कार्यमनुग्राह्योऽस्मि वा यदि। तद्धने मम गेहे च ममत्वमनुकल्प्यताम् ॥८४

तत्पश्चात् पिण्ड के खाने पर कृश कमर वाली, वैसे ही सौन्दर्य से युक्त, निःश्वाँस भरते हुए (मदालसा उसके मध्यम फण से उत्पन्न हुई ॥७४॥

और उस नाग ने भी किसी से (इस बात को) नहीं कहा और उस सुन्दर दाँतों वाली को अन्य स्त्रियों के साथ घर के अन्दर गुप्त रूप से रखा ॥७५॥

और नागराज के वे दोनों पुत्र ऋतध्वज के साथ, प्रतिदिन आकर देवताओं के समान सुखपूर्वक खेलते थे ॥७६॥

एक बार प्रसन्न मन वह अश्वतर नाग उन दोनों (पुत्रों) से बोला 'वह जो मैंने तुमसे पहले कहा था, तुम उसको उस प्रकार से क्यों नहीं करते हो' ॥७७॥

तुम दोनों के उपकारी एवं सम्मान देने वाले, उस राजपुत्र को तुम मेरे पास उपकार के लिए क्यों नहीं ले आते हो ? ॥७८॥

स्नेह करने वाले उस पिता द्वारा उन दोनों पुत्रों को इस प्रकार कहने पर (वे दोनों) उस मित्र के नगर में जाकर उस धीमान् (ऋतध्वज) को साथ लिए खेलने लगे ॥७६॥

उसके बाद उस कुवलयाश्व से कुछ अन्य प्रकार की बातें करके, विनयपूर्वक उन दोनों ने अपने घर पर चलने के लिए कहा ॥८०॥

राजपुत्र ने उन दोनों (नाग) पुत्रों से कहा 'यह भी तो आपका ही घर है और (यहाँ) धन, वाहन, वस्त्र आदि जो कुछ मेरा है, वह सब आप दोनों का भी है ॥८१॥

आप दोनों जो धन अथवा रत्न जो कुछ भी किसी को देना चाहते हो, यदि आपका मुझ पर प्रेम है तो वह आप दीजिए ॥८२॥

और यदि आप दोनों मेरे घर में ममत्व (अपनापन) नहीं करते हो तो इसके लिए भी मैं दुरात्मन्, देव द्वारा वंचित किया गया हूं ॥८३॥

और यदि आप दोनों मुझको मेरे प्रिय कार्य द्वारा अनुग्रहीत करते हो तो मेरे धन और घर में ममत्व (की कल्पना) करो ॥८४॥

युवयोर्यन्मदीयं तन्मामकं युवयोः स्वकम् । एतत् सर्वं विजानीया सखा प्राणो बहिश्चरः ।।८५
पुनर्नैवं विभिन्नार्थं वक्तव्यं द्विज सत्तमौ । मत् प्रसादपरौ प्रीत्या शापितौ हृदयेन मे ।।८६
ततः स्नेहार्द्रवदनौ तावुभौ नागनन्दनौ । ऊचतुर्नृपतेः पुत्रं किञ्चित् प्रणयकोपितम् ।।८७
ऋतध्वज न संदेहो यथैवाह भवानिदम् । तथैव चास्मन्मनसि नात्र चिन्त्यमतोऽन्यथा ।।८८
किन्त्वावयोः समं पित्रा प्रोक्तमेतन्महात्मना । द्रष्टुं कुवलयाश्वं तमिच्छामीति पुनः पुनः ।।८९
ततः कुवलयाश्वोऽथ समुत्थाय वरासनात् । यथाह तातेति वदन् प्रणाममकरोद् भुवि ।।९०

कुवलयाश्व उवाच —

धन्योऽहमतिपुण्योऽहं कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया । यत् तातो मामभिद्रष्टुं करोति प्रवणं मनः ।।९१
तदुत्तिष्ठत गच्छाम ताताज्ञां क्षणमप्यहम् । नातिक्रन्तुमिहेच्छामि पद्भ्यां तस्य शपाम्यहम् ।।९२

जड उवाच —

एवमुक्त्वा ययौ सोऽथ सह ताभ्यां नृपात्मजः । प्राप्तश्च गौमतीं पुण्यां निर्गम्य नगराद्बहिः ।।९३
तन्मध्येन ययुस्ते वै नागेन्द्रनृपनन्दनाः । मेने च राजपुत्रोऽसौ पारे तस्यास्तयोर्गृहम् ।।९४

जो आप दोनों का है वह मेरा है और जो मेरा है वह आपका अपना है । आपको यह सब भली प्रकार जानना चाहिये, क्योंकि मित्र वस्तुतः बाहर विचरण करने वाला प्राण होता है ।।८५।।

इसलिए, हे द्विजोत्तमो ! फिर कभी इस प्रकार की भिन्नता की बात आपको नहीं करनी चाहिये । इसके लिए आप दोनों को मेरी हृदय से शपथ है, अतः आप दोनों मेरे ऊपर प्रीतिपूर्वक प्रसन्न होइए ।।८६।।

तत्पश्चात् स्नेह से सिक्त वदन, वे दोनों नागपुत्र, कुछ प्रणय कुपित राजा के पुत्र (ऋतध्वज) से बोले — ।।८७।।

हे ! ऋतध्वज, इसमें किञ्चित् भी सदेह नहीं है जैसा कि तुमने यह कहा है, हमारे मन में भी वैसा ही है, इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ।।८८।।

किन्तु हमारे पूज्य पिता हम दोनों से यह बार-बार कहते हैं कि मैं उस कुवलयाश्व को देखना चाहता हूं ।।८९।।

उसके बाद वह कुवलयाश्व अपने उत्तम आसन से उठकर, 'जैसा तात कहते हैं,' इस प्रकार कहते हुए पृथ्वी पर झुककर प्रणाम किया ।।९०।।

कुवलयाश्व बोला —

'मैं धन्य हूं, मैं अत्यन्त पुण्यवान् हूं । अन्य कौन मेरे समान (भाग्यशाली) है, जो कि स्वयं पिता (नागराज) मुझे देखने के लिए उत्सुक चित्त वाले हुए हैं ।।९१।।

इसलिए उठ खड़े होओ, हम चलते हैं, मैं पिता की इस आज्ञा का इस समय एक क्षण के लिए भी उल्लंघन नहीं करना चाहता हूं,' यह मैं उनके दोनों चरणों की शपथ पूर्वक कहता हूं ।।९२।।

जड़ बोला—

यह कहकर वह राजपुत्र उन दोनों (नाग पुत्रों) के साथ, चल दिया और नगर से बाहर निकलकर वे पुण्य शालिनी गोमती पर पहुँचे ।।९३ ।

वे नागराज पुत्र तथा राजपुत्र (कुवलयाश्व) उस (गोमती) के बीच से चलने लगे एवं उस राजपुत्र ने विचार किया कि उस (गोमती) के पार ही उनका घर है ।।९४।।

ततश्चाकृष्य पातालं ताभ्यां नीतो नृपात्मजः । पाताले ददृशे चोभौ स पन्नग कुमारकौ ॥९५
फणामणिकृतो द्योतौ व्यक्तौ स्वस्तिक लक्षणौ ।
विलोक्य तौ सुरूपाङ्गौ विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥९६
विहस्य चाब्रवीत् प्रेम्णा साधु भो द्विजसत्तमौ । कथयाम सतुस्तौ च पितरं पन्नगेश्वरम् ॥९७
शान्तमश्वतरं नागं माननीयं दिवौकसाम् । रमणीयं ततोऽपश्यत् पातालं स नृपात्मजः ॥९८
कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् । तथैव नागकन्याभिः क्रीडन्तीभिरितस्ततः ॥९९
चारुकुण्डलहाराभिस्ताराभिर्गगनं यथा । गीतशब्दैस्तथान्यत्र वीणावेणुस्वरानुगैः ॥१००
मृदङ्ग-पणवातोद्यहारि-वेश्म-शताकुलम् । वीक्षमाणः स पातालं ययौ शत्रुजितः सुतः ॥१०१
सह ताभ्यामभीष्टाभ्यां पन्नगाभ्यामरिन्दमः । ततः प्रविश्य ते सर्वे नागराज निवेशनम् ॥१०२
ददृशुस्तं महात्मानमुरगाधिपतिं स्थितम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं मणिकुण्डलभूषणम् ॥१०३
स्वच्छमुक्ताफललताहारि-हारोपशोभितम् । केयूरिणं महाभागमासने सर्व-काञ्चने ॥१०४
मणि-विद्रुम-वैडूर्यजालान्तरित रूपके । स ताभ्यां दर्शितेस्तस्य तातोऽस्माकमसाविति ॥१०५

तत्पश्चात् वे दोनों उस राजपुत्र को खींच कर पाताल में ले गये । पाताल में उसने फण में स्थित मणि से द्युतिमान् एवं व्यक्त हुए स्वस्ति लक्षण से युक्त, उन दोनों नागपुत्रों को देखा तथा उस स्वरूप वाले उन को देखकर विस्मय से विस्फरित नेत्रों वाले, उसने, ॥९५-९६॥

हंसकर उन दोनों द्विजोत्तमों को प्रेम से साधुवाद दिया उन दोनों के पिता नागराज से (आगमन का वृत्तांत) सुनाया ॥९७॥

उसके बाद उस राजकुमार ने रमणीय पाताल को और वहाँ देवताओं के मान्य, शान्त अश्वतर को देखा ॥९८॥

तथा कुमारों, तरुणों, वृद्धों और सर्पों से सुशोभित, इधर उधर क्रीड़ा करती हुई, नाग कन्याओं से रमणीय पाताल को देखा ॥९९॥

जो सुन्दर कुण्डल और हारों से उसी प्रकार सुशोभित थीं, जिस प्रकार आकाश तारों से सुशोभित होता है और जो वीणा वेणु आदि के स्वरों से युक्त संगीत की ध्वनि से युक्त था ॥१००॥

मृदंग, पणव एवं आतोद्य के शब्द से युक्त, सैंकड़ों घरों के समूहों को. देखते हुए, शत्रुओं का दमन करने वाला वह शत्रुजित् का पुत्र, अपने प्रिय उन दोनों नागपुत्रों के साथ, पाताल में गया । उसके बाद उन सबने नागराज के महल में प्रवेश किया ॥१०१-१०२॥

और वहाँ पर दिव्य माल्य धारण किये हुए, मणिमय कुण्डलों से भूषित, निर्मल मोतियों की अवलि से निर्मित हार से शोभित. केयूर धारण किये हुए, पूर्ण रूप से स्वर्ण निर्मित आसन पर बैठे हुए, नागों के अधिपति उन महात्मा अश्वतर को देखा ॥१०३-१०४॥

मणि, मूँगा, नीलम मणियों की किरणों के जाल में ढके हुए स्वरूप वाले, केयूर धारण किये हुए, स्वर्ण निर्मित आसन पर बैठे हुए एवं उन दोनों पुत्रों द्वारा 'ये हमारे पिताजी हैं' (यह) कहकर दिखाया गया ॥१०५॥

वीरः कुवलयाश्वोऽयं पित्रे चासौ निवेदितः । ततो ननाम चरणौ नागेन्द्रस्य ऋतध्वजः ॥१०६
समुत्थाप्य बलाद् गाढं स नागः परिषस्वजे । मूर्ध्नि चैवमुपाघ्राय चिरं जीवेत्युवाच ह ॥१०७
निहतामित्रवर्गश्च पित्रोः शुश्रूषणं कुरु । वत्स धन्यस्य कथ्यन्ते परोक्षस्यापि ते गुणाः ॥१०८
भवतो मम पुत्राभ्यामाभ्यां ये मे निवेदिताः । तदेतैरेव वर्द्धेथा मनोवाक्कायचेष्टितैः ॥१०९
जीवितं गुणिनः श्लाघ्यं जीवन्नपि मृतोऽगुणी ।
गुणवान् निर्वृतिं पित्रोः शत्रूणां हृदये ज्वरम् ॥११०
करोत्यात्महितं कुर्वन् विश्वासं च महाजने । देवताः पितरो विप्रा मित्रार्थिविभवादयः ॥१११
बान्धवाश्च तथेच्छन्ति जीवितं गुणिनश्चिरम् । परवाद निवृत्तानां दुर्गतेषु दयावताम् ॥
गुणिनां सफलं जन्म संश्रितानां विपद्गतैः ॥११२

पुत्र उवाच—

एवमुक्त्वा स तं वीरं पुत्राविदमथाब्रवीत् । पूजां कुवलयाश्वस्य कर्तुकामो भुजंगमः ॥११३
स्नानादिकक्रमं कृत्वा सर्वमेव यथाक्रमम् ॥११४
मधुपानादि संभोगमाहारं च यथेप्सितम् । ततः कुवलयाश्वेन हृदयोत्सवभूतया ॥११५
कथया स्वल्पकं कालं स्थास्यामो हृष्टचेतसः । अनुमेने च तं मौनीवचः शत्रुजितः सुतः ॥११६
तथा चकार च पतिः पन्नगानामुदारधीः ॥११७

और 'यही वह वीर कुवलयाश्व है' ऐसा कहकर उसका पिता से परिचय कराया । उसके बाद ऋत-ध्वज ने नागराज के चरणों में प्रणाम किया ॥१०६॥

उसके बाद उन नागराज ने, उसको उठाकर बलपूर्वक प्रगाढ़ आलिंगन किया । और सिर सूंघकर चिरंजीवी होवो' ऐसा कहा ॥१०७॥

तथा शत्रु वर्ग का संहार करके, पिता की सेवा करो । बेटा ! तुम धन्य हो, परोक्ष में भी तुम्हारे गुणों का (मेरे ये दोनों पुत्र) वर्णन करते रहे हैं । इसलिए इन, मन वाणी और शरीर की चेष्टाओं से भी तुम वृद्धि को प्राप्त होते रहो ॥१०८-१०९॥

गुणी पुरुष का ही जीवन प्रशंसा के योग्य है । गुणहीन व्यक्ति जीवित रहते हुए भी, मरा हुआ होता है । गुणवान् माता पिता को शान्ति देने वाला और शत्रुओं के हृदय का ज्वार होता है ॥११०॥

वह आत्महित करता हुआ, महाजनों में विश्वास प्राप्त कर लेता है । देवता, पितर, ब्राह्मण, मित्र, याचक और विभव आदि तथा बन्धुजन गुणवान् का चिरकाल तक जीवित रहना चाहते हैं (उसकी दीर्घायु की कामना करते हैं) गुणवान् व्यक्ति परिवादों (दूसरे की निंदा से दूर रहकर) निवृत्त दुखियों पर दया युक्त, विपद् ग्रस्तों के आश्रय गुणवानों का जन्म सफल होता है ॥१११-११२॥

पुत्र बोला—

उस वीर से ऐसा कहकर, कुवलयाश्व की पूजा करने के इच्छुक नागराज ने अपने दोनों पुत्रों से कहा ॥११३॥

'(हम लोग) स्नानादि क्रियाएँ यथोचित प्रकार से करके मधुपान आदि का उपभोग एवं वाञ्छित आहार आदि करके इसके पश्चात् आनन्दित मन से कुछ समय कुवलयाश्व के साथ बैठेंगे ।' शत्रुजित् के पुत्र (कुवलयाश्व) ने भी मौन रूप से उसका अनुमोदन किया । इसके पश्चात् उदार बुद्धि वाले पन्नगराज ने तदनुरूप कार्य किया ॥११४-११७॥

समेत्य तैरात्मजभूपनंदनैर्महोरगाणामधिपः स सत्यवाक् ।
मुदायुतोऽन्नानि मधूनि चात्मवान् यथोपजोषं बुभुजे स भोगभाक् ॥११८

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे कुवलयाश्वीये पाताल प्रवेशोनाम एकविंशोऽध्यायः ॥

उसके बाद सत्यवादी, नागों के अधिपति ने, राजकुमार और अपने पुत्रों के साथ, प्रसन्नता प्रदान करने वाले, अन्न, मधु और अन्य उपयुक्त पदार्थों का इच्छानुसार भोग किया ॥११८॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में कुवलयाश्वीय में पाताल प्रवेश नामक इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

द्वाविंशोऽध्यायः

पुत्र उवाच—

कृताहारं महात्मानमधिपं पवनाशिनाम् । उपासाञ्चक्रिरे पुत्रौ भूपालतनयस्तथा ॥१
कथाभिरनुरूपाभिः प्रहृष्टात्मा भुजंगमः । प्रीतिं संजनयामास पुत्र-सख्युरुवाच ह ॥२
तव भद्र सुखं ब्रूहि गेहमभ्यागतस्य यत् । कर्तव्यमुत्सृजा शंकां पितरीव सुतो मयि ॥३
हिरण्यं वा सुवर्णं वा वस्त्रं वाहनमासनम् । यद्वाभिमतमत्यर्थं दुर्लभं तद् वृणुष्व माम् ॥४

कुवलयाश्व उवाच—

भवत् प्रसादाद् भगवन् सुवर्णादि गृहे मम । पितुरस्ति ममाद्यापि न किञ्चित् कार्यमीदृशैः ॥५
ताते वर्षसहस्रायुः शासती मां वसुन्धराम् । तथैव त्वयि पातालं न मे याच्ञोन्मुखं मनः ॥६

पुत्र बोला—

वायु का भक्षण करने वाले, सर्पों के स्वामी नागराज के भोजन कर लेने के बाद, राजकुमार और वे दोनों नागपुत्र उनके पास बैठे ॥१॥

अनुरूप कथाओं से प्रसन्न आत्मा वाला वह नागराज पुत्रों के मित्र को प्रसन्न करते हुए बोला ॥२॥

जिस प्रकार पुत्र पिता से शंका रहित होकर बातें करता है, उसी प्रकार मेरे घर में आये हुए, तुम्हारा मैं क्या कल्याण करूँ उसको निःशंक होकर सुखपूर्वक कहो ॥३॥

स्वर्ण, हिरण्य अथवा वस्त्र, वाहन या आसन किंवा जो अति दुर्लभ भी तुमको अभिलषित हो, वह मुझसे तुम लो ॥४॥

कुवलयाश्व बोला—

भगवन् ! आपकी कृपा से स्वर्ण आदि मेरे (पिता के) घर में हैं। ऐसी वस्तुओं से मुझे कोई प्रयोजन नहीं ॥५॥

सहस्रों वर्षों की आयु वाले मेरे पिता ने इस पृथ्वी पर शासन किया और उसी प्रकार आपने भी पाताल में शासन किया किन्तु आज तक मेरा मन कुछ माँगने को नहीं हुआ ॥६॥

ते सुभाग्याः सुपुण्याश्च येषां पितरि जीवति । तृणं कोटि समं वित्तं तारुण्यं वित्तकोटिषु ।।७
मित्राणि तुल्यशिष्टानि तद्वद् देहमनामयम् । जनेवाध्रियते वित्तं यौवनं किन्तु नास्ति मे ।।८
असत्यर्थे नृणां याच्ञाप्रवणं जायते मनः । सत्यशेषे कथं याच्ञां मम जिह्वा करिष्यति ।।९

यैर्न चिन्त्यं धनं किञ्चिन्मम गेहेऽस्ति नास्ति वा ।
पितृ-बाहु-तरुच्छायां संश्रिताः सुखिनो हि ते ।।१०
ये तु बाल्यात् प्रभृत्येव विना पित्रा कुटुम्बिनः ।
तान् सुखस्वादविभ्रंशान् मन्ये धात्रैव वञ्चितान् ।।११

तद्वयं तत्प्रसादेन धन रत्नादि सञ्चयम् । पितृभक्ताः प्रयच्छामः कामतो नित्यमर्थिनाम् ।।१२
तत् सर्वमिह संप्राप्तं यदंघ्रियुगलं तव । मच्चूडामणिना घृष्टं यच्चांगस्पर्शमाप्तवान् ।।१३

पुत्र उवाच—

इत्येवं प्रश्रितं वाक्यमुक्तः पन्नगसत्तमः । प्राह राजसुतं प्रीत्या पुत्रयोरूपकारिणम् ।।१४
यदि रत्नसुवर्णादि मत्तोऽवाप्तुं न ते मनः । यदन्यन्मनसः प्रीत्यै ब्रूहि तत् ते ददाम्यहम् ।।१५

वे परम भाग्यशाली और पुण्यवान् हैं, जिनके पिता जीवित हैं और जो युवावस्था में करोड़ों की संख्या वाले धन को भी तृण के समान मानते हैं ।।७।।

जिस प्रकार मेरे मित्र समान शिष्टाचार सम्पन्न है, उसी प्रकार मेरी देह भी नीरोग है । मनुष्य में वित्त और यौवन की लालसा होती हैं । किन्तु मुझे कोई कामना नहीं है ।।८।।

मनुष्यों के मन की असत्य विषयों में (प्रायः) लालसा होती हैं । वस्तुतः सम्पूर्ण वस्तुएँ सुलभ रहते मेरी जिह्वा याचना क्यों करेगी ।।९।।

जो पिता की बाहुरूपी तरुओं की छाया के आश्रित हैं वे ही वस्तुतः सुखी हैं, जिन्हें न कोई धनादि की चिन्ता है कि मेरे घर में है अथवा नहीं ।।१०।।

जो कुटुम्बी व्यक्ति अपने बाल्य काल से लेकर ही बिना पिता वाले हैं, उनको मैं सुखों के स्वाद से रहित एवं विधाता द्वारा वंचित मानता हूं ।।११।।

इसलिए पितृ भक्त मैं, उन (पिता) की कृपा से एकत्र किये हुए धन और रत्नों के समूह को याचकों को इच्छानुसार नित्य ही वितरित करता हूं ।।१२।।

मैंने अब वह सब कुछ प्राप्त कर लिया है जबकि मेरे चूडामणि ने आपके दोनों चरणों का स्पर्श कर लिया है ।।१३।।

पुत्र बोला—

इस प्रकार विनीत शब्दों के कहने पर नाग श्रेष्ठ, पुत्रों के उपकारी, उस राजकुमार से प्रीति पूर्वक बोला ।।१४।।

यदि तुम्हारा मन रत्न और सुवर्ण आदि मुझसे प्राप्त नहीं करना चाहता, तो मन को अच्छी लगने वाली, अन्य कोई वस्तु कहो, वह मैं तुमको दूंगा ।।१५।।

कुवलयाश्व उवाच —

भगवंस्त्वत् प्रसादेन प्रार्थितस्य गृहे मम । सर्वमस्ति विशेषेण सम्प्राप्तं तव दर्शनात् ॥१६
कृतकृत्योऽस्मि चैतेन सफलं जीवितं मम । यदंगसंश्लेषमितस्तव देवस्व मानुषः ॥१७
ममोत्तमाङ्गं त्वत्पादरजसा यदिहास्पदम् । कृतं तेनैव न प्राप्तं किं मया पन्नगेश्वर ॥१८
यदि त्ववश्यं दातव्यो वरो मे मनसेप्सितः । तत्पुण्यकर्मसंस्कारो हृदयान्मा व्यपैतु मे ॥१९
सुवर्ण-मणि-रत्नादि वाहनं गृहमासनम् । स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्च चारुमाल्यानुलेपनम् ॥२०
एते च विविधा भोगा गीतवाद्यादिकंच यत् । सर्वमेतन्मम मतं फलं पुण्य-वनस्पतेः ॥२१
तस्मान्नरेण तन्मूलं सेके यत्नः कृतात्मना । कर्त्तव्यः पुण्यसक्तानां न किञ्चिद् भुवि दुर्लभम् ॥२२

अश्वतर उवाच

एवं भविष्यति प्राज्ञ तव धर्माश्रिता मतिः । सत्यं चैतत् फलं सर्वं धर्मस्योक्तं यथा त्वया ॥२३
तथाप्यवश्यं मद्गेहमागतेन त्वयाधुना । ग्राह्यं यन्मानुषे लोके दुष्प्रापं भवतो मतम् ॥२४

पुत्र उवाच —

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स तदा नृपनन्दनः । मुखावलोकनं चक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयोः ॥२५

कुवलयाश्व बोला—

हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरे घर पर प्रार्थनीय सब कुछ हैं विशेष रूप से आपके दर्शन प्राप्त करके तो मैं कृत्तकृत्य हो गया हूं, इससे तो मेरा जीवन सफल हो गया है कि आप जैसे देवता का मनुष्य होते हुए भी मुझको अंगश्लेष प्राप्त हुआ है ॥१६-१७॥

हे पन्नगेश्वर ! यदि आपके चरणों की रज़ ने मेरे मस्तक पर स्थान पाप्त किया है, तो फिर मैंने ही क्या प्राप्त नहीं किया ॥१८॥

और यदि आप अवश्य ही मेरा मनोवाञ्छित वर प्रदान करना चाहते हैं, तो मेरे हृदय से कभी पुण्य कर्मों का संस्कार न निकले ॥१९॥

मेरे विचार में तो, स्वर्ण, मणि, रत्न, वाहन, गृह, आसन, स्त्रियां, अन्न, पान, पुत्रादि और सुन्दर माल्यानुलेपन तथा गीत वाद्य आदि विविध प्रकार के जो भोग हैं, सभी कुछ पुण्य रूपी वनस्पति वृक्ष के ही फ़ल हैं ॥२०-२१॥

अतः मनुष्य को उस पुण्य वृक्ष की जड़ों को यत्न पूर्वक सींचना चाहिये । पुण्यशील व्यक्तियों के लिए इस पृथ्वी पर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥२२॥

अश्वतर बोला—

हे प्राज्ञ ! ऐसा ही होगा । तुम्हारी बुद्धि धर्म में लगी रहेंगी । निश्चय ही यह सब कुछ धर्म का ही फल है, जैसा कि तुमने कहा है ॥२३॥

फिर भी मेरे घर पर आये हुए तुमको आज अवश्य ही जो मनुष्य लोक में दुष्प्राप्य है, उसको ग्रहण करना चाहिये ॥२४॥

पुत्र बोला—

उसके उन वचनों को सुनकर उस राजकुमार (ऋतध्वज) ने नागराज के पुत्रों के मुख की ओर देखा ॥२५॥

ततस्तौ प्रणिपत्योभौ राजपुत्रस्य यन्मतम् । तत्पितुः सकलं वीरौ कथयामासतुः स्फुटम् ॥२६
तातास्य पत्नी दयिता श्रुत्वेमं विनिपातितम् । अत्यजद्दयिता प्राणान् विप्रलब्धा दुरात्मना ॥२७
केनापि कृतवैरेण दानवेन कुबुद्धिना । गन्धर्वराजस्य सुता नाम्ना ख्याता मदालसा ॥२८
कृतज्ञोऽयं ततस्तात प्रतिज्ञां कृतवानिमाम् । नान्या भार्या भवित्री मे वर्जयित्वा मदालसाम् ॥२९
द्रष्टुं तां चारुसर्वाङ्गीमयं वीरो ऋतध्वजः । तात वाञ्छति यद्येतत् क्रियते तत् कृतं भवेत् ॥३०

अश्वतर उवाच—

भूतैर्वियोगिनो योगस्तादृशैरेव तादृशः । कथमेतद् बिना स्वप्नं मायां वा शम्बरोदिताम् ॥३१

पुत्र उवाच—

प्रणिपत्य भुजंगेशं पुत्रः शत्रुजितस्ततः । प्रत्युवाच महात्मानं प्रेमलज्जासमन्वितः ॥३२
मायामयी मप्यधुना मम तातो मदालसाम् । यदि दर्शयते मन्ये परं कृतमनुग्रहम् ॥३३

अश्वतर उवाच—

तस्मात् पश्येह वत्स त्वं मायां चेद्द्रष्टुमिच्छसि ।
अनुग्राह्यो भवान् गेहे बालोऽप्यभ्यागतो गुरुः ॥३४

उसके बाद उन दोनों ने प्रणाम करके, राजपुत्र का जो मत (अभिप्राय) था, वह सब उन्होंने पिता से स्पष्ट रूप से कह दिया ॥२६॥

हे तात ! किसी दुरात्मा के द्वारा ठगे जाने पर, इनकी प्यारी पत्नी ने, इनके मरण के समाचार को सुनकर, अपने प्राणों को त्याग दिया । उस दुष्ट बुद्धि दानव ने यह कार्य किसी पूर्व बैर के कारण किया । इसकी पत्नी गन्धर्वराज की पुत्री मदालसा नाम से प्रसिद्ध थी ॥२७-२८॥

हे तात ! उसके प्रति कृतज्ञ इसने, इसके बाद यह प्रतिज्ञा की कि मदालसा को छोड़कर अन्य कोई भी स्त्री मेरी पत्नी नहीं होगी ॥२९॥

अतः हे तात ! यह वीर ऋतध्वज सर्व सुन्दर अंगों वाली उस मदालसा को देखना चाहता है, यदि यह किया जा सकें तो, इसका यथार्थ उपकार होगा ॥३०॥

अश्वतर बोला—

पञ्चभूतात्मक शरीर के वियुक्त होने पर उसका (पञ्चभूतों से वियुक्त हुए प्राणों का) यदि पुनः उन पञ्चभूतों के साथ वैसा ही संयोग, स्वप्न या शंकर की रची माया के बिना सम्भव नहीं है ॥३१॥

पुत्र बोला—

उसके पश्चात् शत्रुजित् के पुत्र ने महात्मा नागराज को प्रणाम करके, लज्जा से युक्त (होकर) इस प्रकार कहा— ॥३२॥

यदि तात, इस समय मेरी मायामयी मदालसा को भी दिखा देते हैं, तो मैं अपने प्रति आपका अत्युपकार मानूँगा ॥३३॥

अश्वतर बोला—

हे वत्स ! यदि तुम मायामयी मदालसा को ही देखना चाहते हो तो तुम अनुग्रह के पात्र हो । यद्यपि तुम यहाँ पुत्र रूप में आये हो, किन्तु अतिथि होने के कारण, गुरु तुल्य माननीय हो ॥३४॥

पुत्र उवाच—

आनयामास नागेन्द्रो गृहे गुप्तां मदालसाम् । दर्शयामास च तदा राजपुत्राय तां शुभाम् ॥३५

तेषां सम्मोहनार्थाय जजल्प च ततः स्फुटम् । सेयं न वेति ते भार्या राजपुत्र मदालसा ॥३६

जड उवाच—

स दृष्ट्वा तां तदा तन्वीं तत्क्षणाद् विगतत्रपः । प्रियेति तामभिमुखं ययौ वाचमुदीरयन् ॥

निवारयामास स च तं नागः सोऽश्वतरस्त्वरन् ॥३७

अश्वतर उवाच—

मायेयं पुत्र मास्प्राक्षीः प्रागेव कथितं तव ॥३८

अन्तर्द्धानमुपैत्याशु माया संस्पर्शनादिभिः । ततः पपात मेदिन्यां स तु मूर्छा परिप्लुतः ॥३९

हा प्रियेति वदन् सोऽथ चिन्तयामास भामिनीम् । मोहो ममायं नो वेति नालं प्रत्ययवानहम् ॥४०

अहो ममेत्यहं चेति बलं प्रत्यययोर्महत् । येनाहं पातनोऽरीणां बिना शस्त्रेण पातितः ॥४१

ममेति दर्शिताऽनेन मिथ्या मायेति विस्फुटम् । वाय्वम्बुतेजसां भूमेराकाशस्य च चेष्टया ॥४२

पुत्र उवाच—

ततः कुवलयाश्वं स सम.श्वास्य भुजंगमः । कथयामास तत् सर्वं मृत संजीवनादिकम् ॥४३

पुत्र बोला—

उसके बाद वह नागराज घर में छिपायी गयी, मदालसा को लाये और उस कल्याणी (मदालसा) को, राजपुत्र को दिखाया ॥३५॥

उसके बाद उन सबको मोहित करने के लिए, अस्पष्ट रूप से मंत्रोच्चारण किया और पूछा, हे राजपुत्र ! यही वह तुम्हारी पत्नी मदालसा है अथवा नहीं ॥३६॥

जड़ बोला—

तब कृश अंगों वाली उसको देखकर, उस समय वह (राजपुत्र) लज्जा त्याग कर हे प्रिये ! इस प्रकार कहते हुए उसके सामने पहुँच गया और उस नागराज अश्वतर ने शीघ्र ही उस (राजपुत्र) को रोका और कहा— ॥३७॥

हे पुत्र ! यह माया है, इसे स्पर्श नहीं करना चाहिये, यह मैंने तुमको पहले ही कहा है ॥३८॥

क्योंकि माया स्पर्शादि से शीघ्र ही अन्तर्धान हो जाती है । उसके बाद (ये वचन सुनकर) वह ऋतध्वज मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥३९॥

हाय प्रिये ! इस प्रकार कहते हुए, उसने अपनी पत्नी का । क्या यह मेरा मोह है, अथवा कुछ और, यह मैं विश्वास पूर्वक नहीं जानता हूं ॥४०॥

अरे ! यह मेरी ही है, मुझे यह दृढ़ विश्वास है, जिस नारी के द्वारा मैं बिना शस्त्र के ही गिरा दिया गया हूं, वह यह मेरी ही है, यह मुझे पूर्ण विश्वास है ॥४१॥

अथवा इन्होंने मुझको मिथ्या माया ही प्रत्यक्ष रूप से दिखायी है अथवा वायु, जल, तेज, आकाश या भूमि की कोई चेष्टा है ॥४२॥

पुत्र बोला—

उसके बाद उस नागराज ने उस कुवलयाश्व को आश्वस्त करके वह सब कुछ बताया कि मरने के पश्चात् उसको किस प्रकार जीवित किया ॥४३॥

ततः प्रहृष्टः प्रतिलभ्यकां तां प्रणम्य नागं निजमाजगाम ।
संस्तूयमानश्च पुरं तमश्वमारुह्य संचिन्तितमभ्युपेतम् ॥४४
शृणुयाद् भक्तिपूर्वं यो नैरन्तर्येण मानवः । वेदघोषफलं तेन प्राप्तं वैभुर्विदुर्लभम् ॥४५
सम्प्राप्नोति सुखं नित्यं सर्वकामसमन्वितः । लोके च दुर्लभं तस्य नास्ति किञ्चिन्न विद्यते ॥४६
इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे मदालसोपाख्याने पुनर्मदालसां प्राप्य पातालान्निर्गमो नाम द्वाविंशोऽध्यायः।

उसके बाद, पत्नी को प्राप्त करके प्रसन्न हुए; उसने नागराज को प्रणाम करके, स्मरण करते ही उपस्थित हुए उस अश्व पर चढ़कर, संस्तुत होते हुए, अपने नगर को प्रस्थान किया ।।४४।।

जो मनुष्य (इस कथा को) निरन्तर भक्तिपूर्वक, सुनता है, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ वेद पाठ के फल को प्राप्त करता है ।४५।।

और सभी इच्छाओं की प्राप्ति करके, नित्य सुख को प्राप्त करता है, इस संसार में उसके लिए ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो दुर्लभ हो ।।४६।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मदालसाख्यान में पुनः मदालसा प्राप्ति एवं पाताल से निर्गमन नामक बाइसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रयोविंशोऽध्यायः

पुत्र उवाच—

आगम्य स्वपुरं सोऽथ पित्रोः सर्वमशेषतः । कथयामास तन्वंगी यथा प्राप्ता पुनर्मृता ॥१
ननाम सापि चरणौ श्वश्रूश्वशुरयोः शुभा । स्वजनं च यथा पूर्वं वन्दनाश्लेषणादिभिः ॥२
पूजयामास तन्वंगी यथा न्यायं यथा वयः । ततो महोत्सवो जज्ञे पौराणां तत्र वै पुरे ॥३
ऋतुध्वजश्च सुचिरं तया रेमे समध्यया । निर्झरेषु शैलानां निम्नगा पुलिनेषु च ॥४
काननेषु च रम्येषु वनेषूपवनेषु च । पुण्यक्षयं वाञ्छमाना साऽपि कामोपभोगतः ॥५

पुत्र बोला—

उसके बाद उसने अपने नगर में आकर, मरी हुई उस तन्वंगी मदालसा को जिस प्रकार पुनः प्राप्त किया वह सब पूर्ण रूप से अपने माता पिता से कह दिया ॥१॥

और उस कल्याणी ने भी अपने सास और ससुर के चरणों में नमस्कार किया और उचित रीति और आयु के अनुसार स्वजनों की यथा योग्य वन्दना और आलिंगन द्वारा पूजा की। उसके बाद उस नगर में सभी नगरवासियों ने महोत्सव किया ॥२-३॥

और ऋतध्वज ने उस सुन्दर मध्य भाग वाली के साथ निर्झरों, पर्वतों और नदियों के तटों पर चिरकाल तक रमण किया ॥४॥

काननों में, रमणीय वनों और उपवनों में कामोपभोग से पुण्य के क्षय को चाहती हुई (उसने) ॥५॥

सह तेनातिकान्तासु रेमे रम्यासु भूमिषु । ततः कालेन महता शत्रुजित् स नराधिपः ।।६
सम्यक् प्रशास्य वसुधां कालधर्ममुपेयिवान् । ततः पौरा महात्मानं पुत्रं तस्य ऋतध्वजम् ।।७
अभ्यषिञ्चन्त राजानमुदाराचारचेष्टितम् । सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।।८
मदालसायाः संजज्ञे पुत्रः प्रथमजस्ततः । तस्य चक्रे पिता नाम विक्रान्त इति धीमतः ।।९
तुतुषुस्तेन वै भृत्या जहास च मदालसा । सा वै मदालसा पुत्रं बालमुत्तानशायिनम् ।।
उल्लापनच्छलेनाह रुदमानमविस्वरम् ।।१०

शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नामकृतं च ते कल्पनयाधुनैव ।
पञ्चात्मकं देहमिदं न तेऽस्ति नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ।।११
न वा भवान् रोदिति वै स्वजन्माशुद्धो यमासाद्य महीसमूहम् ।
विकल्प्यमानो विविधैर्गुणार्थैर्गुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु ।।१२
भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः ।
अन्नाम्बुपानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः ।।१३

उस (ऋतध्वज) के साथ अत्यन्त सुन्दर भूमियों में रमण किया । उसके बहुत समय के बाद, मनुष्यों के स्वामी उस शत्रुजित् ने भी । ६।।

पृथ्वी का भली प्रकार पालन करते हुए, काल धर्म (मृत्यु) को प्राप्त किया । उसके अनन्तर नगर वासियों ने उस ।।७।।

उदार आचरण वाले, महात्मा ऋतध्वज का राज्याभिषेक किया । उसने भी अपने औरस पुत्रों के समान, प्रजा का भली प्रकार पालन करते हुए, (समय व्यतीत किया) ।।८।।

उसके पश्चात् मदालसा ने प्रथम पुत्र को जन्म दिया । उस बुद्धिमान् (पुत्र) का पिता ने विक्रांत नाम रखा ।।९।।

उसके जन्म लेने से सेवकगण बहुत प्रसन्न हुए और मदालसा भी प्रफुल्लित हुई । पैर फैला कर सोये हुए उस शिशु को देखकर, अस्फुट स्वर से रोदन करते हुए उस शिशु-पुत्र को देखकर मदालसा बोली— ।।१०।।

अरे पुत्र ! तुम तो शुद्ध हो तुम्हारा कोई नाम नहीं हैं, इस समय कल्पना से ही तुम्हारा नाम रखा गया है । पञ्चभूतों से निर्मित यह शरीर न तो तुम्हारा है और न ही तुम इसके हो । अतः किस कारण रो रहे हो ? अथवा तुमको इस पृथ्वी समूह पर, शुद्ध जन्म प्राप्त करके नहीं रोना चाहिये । सभी भौतिक इन्द्रियों में विभिन्न गुणों के विषय और गुणों की कल्पना करते हुए, जिस प्रकार अति दुर्बल भूत समूह, भूत की सहायता से, अन्न और जलादि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।।११-१२।।

उसी प्रकार यह पुरुष अन्न जल आदि के दान से वृद्धि को प्राप्त करता है । उसी प्रकार परम दुर्बल प्राणी भी बढ़ते हैं । इस विषय में तुम्हारी न तो वृद्धि है और न कोई हानि है ।।१३।।

त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिस्तस्मिन् स्वदेहे मूढ़तां मा व्रजेथाः ।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कञ्चुकस्ते पिनद्धः ॥१४
तातेति किञ्चित् तनयेति किञ्चिदम्बेति किञ्चिद् दयितेति किंचित् ।
ममेति किञ्चिन्न ममेति किञ्चिद् भौतं हि संघं बहुधालपेथाः ॥१५
दुःखानि दुःखोपगमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढ़चेताः ।
तान्येव दुःखानि पुनः सुखानि जानाति विद्वानविमूढचेताः ॥१६
हासोऽस्थि संदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलं यत् कलुषं वसायाः ।
कुचादिपीनं पिशितं घनं तत् स्थानं रतेः किं नरको न योषित् ॥१७
यानं क्षितौ यानगतश्च देहो देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः ॥१८
ममत्वमुर्व्यां न तथा यथा स्वे देहेऽतिमात्रं च विमूढ़तैषा ॥१९
त्यज धर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज । उभे सत्यानृते त्यक्त्वा येन त्यजसि तत् त्यज ॥२०

जड उवाच—

वर्धमानं सुतं सा तु राजपत्नी दिने दिने । तमुल्लापादिना बोधमनयन्निर्मलात्मकम् ॥२१
यथा यथा बलं लेभे यथा लेभे मतिं पितः । तथा तथात्मबोधं च सोऽवापन्मातृभाषितैः ॥२२

तुम अपने इस शरीर रूपी आवरण से ढके हुए हो, अतः इसके जीर्ण हो जाने पर, इस शरीर में तुम मोह न करना। शुभ और अशुभ कर्मों से, मदादि से युक्त मूढ़ चेता पुरुष, इस देह रूपी कंचुक के ढके हुए, किसी को तात, किसी को पुत्र, किसी को माता और किसी को स्त्री, किसी को यह मेरा नहीं है, इस प्रकार पच भूतों के समूह को लक्ष्य करके, कहता है ॥१४-१५॥

मूढ़ चेता पुरुष दुःखों को दुःखों के शमन के लिए और भोगों को सुख का हेतु मानते हैं और मूढ़ चित्त वाला मनुष्य उन्हीं दुःखों को फिर सुखों का कारण मानता है ॥१६॥

जिसके हंसते हुए हड्डियां दिखायी देती है, अत्यन्त उज्ज्वल प्रतीत होने वाले नेत्रों में जो चर्बी की कलुषता है और कुच आदि का पीनत्व भी मांस की गहनता ही तो है और उसी स्थान पर मनुष्य की रति होती हैं। क्या स्त्री साक्षात् नरक नहीं है ॥१७॥

पृथ्वी पर यान, और यान में स्थित शरीर और शरीर में भी अन्य पुरुष निवास करता है ॥१८॥

जिस प्रकार का ममत्व शरीर के प्रति है, उस प्रकार का ममत्व पृथ्वी में नहीं है। यह मनुष्य की अत्यधिक मूढ़ता है। क्योंकि शरीर पृथिवी का ही सूक्ष्म अंश ही तो है ॥१९॥

धर्म, अधर्म, सत्य और असत्य दोनों का त्याग करो, सत्य और असत्य दोनों को त्यागकर, जिसके लिए त्यागते हो उसे भी त्याग दो ॥२०॥

जड़ बोला—

इस प्रकार बढ़ते हुए पुत्र को राजपत्नी मदालसा प्रतिदिन रोने पर बहलाने के बहाने निर्मल ज्ञान प्रदान करती थीं ॥२१॥

इस प्रकार जैसे-जैसे उसने पिता से बल और बुद्धि प्राप्त की, उसी प्रकार माता के उपदेशों से उसने, आत्मज्ञान प्राप्त किया ॥२२॥

इत्थं तया स तनयो जन्मप्रभृति बोधितः। चकार न मतिं प्राज्ञो गार्हस्थ्यं प्रति निर्ममः ॥२३
द्वितीयोऽस्याः सुतो जज्ञे तस्य नामाकरोत् पिता । सुबाहुरयमित्युक्ते सा जहास मदालसा ॥२४
तमप्येवं यथा पूर्वं बालमुल्लापवादिनी । प्राह बाल्यात् स च प्राप तथा बोधं महामतिः ॥२५
तृतीयं तनयं जातं तं राजा शत्रुमर्दनम् । यदाह तेन सा सुभ्रूर्जहासाति चिरं पुनः ॥२६

तथैव सोऽपि तन्वंग्या बालत्वादेव बोधितः ।
क्रियाश्चकार निष्कामानकिञ्चित् फलकारणम् ॥२७

चतुर्थस्य सुतस्याथ चिकीर्षुर्नाम भूपतिः । ददर्श तां शुभाचारामीषद्धासां मदालसाम् ॥२८
तामाह राजा हसतीं किञ्चित् कौतूहलान्वितः। क्रियमानेऽसकृन्नाम्नि कथ्यतां हास्यकारणम् ॥२९
विक्रान्तश्च सुबाहुश्च यथाऽन्यः शत्रुमर्दनः । शोभनानीति नामानि तानि मन्ये कृतानि वै ॥३०
योग्यानि क्षत्रबन्धूनां शौर्याटोपयुतानि च । असन्त्येतानि वै भद्रे यदि ते मनसि स्थितम् ॥

तदस्य क्रियतां नाम चतुर्थस्य सुतस्य मे ॥३१

मदालसोवाच—

मयाज्ञा भवतः कार्या महाराज यथात्थ माम् । तथा नाम करिष्यामि चतुर्थस्य सुतस्य ते ॥३२

इस प्रकार जन्म से ही उस मदालसा माता के द्वारा उपदिष्ट वह ज्ञानवान् पुत्र गृहस्थ धर्म के प्रति निस्पृह बुद्धि हो गया ॥२३॥

(कुछ काल पश्चात्) इस मदालसा ने दूसरे पुत्र को जन्म दिया । पिता ने उसका नाम सुबाहु रखा । यह सुबाहु है, ऐसा कहने पर मदालसा हंस पड़ी ॥२४॥

पहले के समान, उस पुत्र को भी आत्मबोध कराने वाली उस मदालसा ने उपदेश दिया और उस महामति (पुत्र) ने भी बचपन से ही उस प्रकार का उच्च आत्म ज्ञानप्राप्त कर लिया ॥२५॥

(उसके बाद) उस राजा ने, उत्पन्न तीसरे पुत्र का नाम शत्रुमर्दन रखा । जब राजा ने पुत्र को शत्रुमर्दन कहा तो सुन्दर भौंहों वाली वह मदालसा बहुत समय तक हंसती रही ॥२६॥

उसको भी उस तन्वंगी ने बाल्यकाल से ही आत्मज्ञान का बोध कराया । वह सांसारिक क्रियाओं को निष्काम भाव से करता था । उसकी प्रवृत्ति में कहीं फल कारण नहीं होता था ॥२७॥

इसके पश्चात् चौथे पुत्र का नामकरण करने के इच्छुक, भूपति ने, शुद्ध आचरण वाली, स्मित हास्य युक्त उस मदालसा की ओर देखा ॥२८॥

किञ्चिद् कौतूहल से युक्त राजा ने, हंसती हुई उस मदालसा से कहा—'पुत्रों के नामकरण करते हुए बार-बार हंसने का कारण कहो' ॥२९॥

जिस प्रकार विक्रांत, सुबाहु, शत्रुमर्दन आदि अन्य पुत्रों के उत्तम नाम हैं, ऐसा मानकर ही मैंने उनके नाम रखे थे ॥३०॥

क्योंकि क्षत्रियों के नाम शौर्य और दर्प (स्वाभिमान) से युक्त ही उचित होते हैं । हे भद्रे ! यदि यदि तुम्हारे मन में यह बात है कि ये नाम उचित नहीं है । तो इस चौथे पुत्र का नामकरण तुम्हीं करो ॥३१॥

मदालसा बोली—

हे महाराज ! जैसा आपने कहा है मुझे आपकी आज्ञा का पालन करना चाहिये । इसलिए मैं आपके (इस) चतुर्थ पुत्र का नामकरण करूंगी ॥३२॥

अलर्क इति धर्मज्ञः ख्यातिं लोके गमिष्यति । कनीयानेष ते पुत्रो मतिमांश्च भविष्यति ॥३३

पुत्र उवाच—

तच्छ्रुत्वा नाम पुत्रस्य कृतं मात्रा महीपतिः ॥३४

अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत् । भवत्या यदिदं नाम मत्पुत्रस्य कृतं शुभे ॥३५

किमीदृशमसम्बद्धमर्थः कोऽस्य मदालसे । कल्पनेयं महाराज कृता सा व्यावहारिकी ॥३६

मदालसोवाच—

त्वत्कृतानां तथा नाम्ना श्रृणु भूप निरर्थताम् ।
वदन्ति पुरुषाः प्राज्ञा व्यापिनं पुरुषं सतः ॥३७

क्रान्तिश्च गतिरुद्दिष्टा देशाद्द देशान्तरं तु या । सर्वगो न प्रयातीह व्यापी देहेश्वरो यतः ॥३८

ततो विक्रान्त संज्ञेयं मता मम निरर्थिका । सुबाहुरिति या संज्ञा कृताऽन्यस्य सुतस्य ते ॥३९

निरर्था साप्यमूर्त्तस्य पुरुषस्य महीपते ॥४०

पुत्रस्य यत् कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्दनः । मन्ये तच्चाप्यसम्बद्धं श्रृणु वाप्यत्र कारणम् ॥

एक एव शरीरेषु सर्वेषु पुरुषो यदा ॥४१

तदास्य राजन् कः शत्रुः को वा मित्रमिहेष्यते । भूतैर्भूतानि मर्द्यन्ते अमूर्त्तो मर्द्यते कथम् ॥४२

यह पुत्र 'अलर्क' इस नाम से धर्मो का ज्ञाता होकर संसार में ख्याति प्राप्त करेगा । और आपका सबसे छोटा यह पुत्र सर्वाधिक बुद्धिमान् होगा ॥३३॥

पुत्र बोला—

उसके बाद माता के द्वारा दिये गये, पुत्र के 'अलर्क' इस असम्बद्ध नाम को सुनकर, राजा हँस कर इस प्रकार बोले—हे कल्याणि ! यदि तुमने मेरे पुत्र का यह नामकरण किया है ॥३४-३५॥

तो हे मदालसे ! इस पुत्र के इस असम्बद्ध नामका क्या अर्थ है ? मदालसा बोली—हे महाराज ! नाम तो व्यवहार के लिए केवल कल्पना मात्र है ॥३६॥

हे राजन् ! आपके द्वारा किये गये उस प्रकार के नामों की भी, आप निरर्थकता सुन लीजिये । विद्वान् पुरुष शरीर में स्थित आत्मा को व्यापक कहते हैं ।.३७॥

और जो क्रान्ति है वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना रूप गति कही गयी है और क्योंकि आत्मा सर्वगत और सर्व व्यापी होने से शरीर का एक मात्र स्वामी है, वह कहीं जाता नहीं है ॥३८॥

इसलिए इस विक्रान्त नाम को मैं निरर्थक मानती हूं और अन्य पुत्र का आपने जो सुबाहु यह नाम रखा है— ॥३९॥

हे ! महीपते, वह नाम भी आत्मा के अमूर्त होने से निरर्थक ही है ॥४०॥

और तीसरे पुत्र का जो अरिमर्दन् नाम रखा है उसे भी मैं असम्बद्ध ही मानती हूं अथवा उसके भी (निरर्थकता के) कारण को सुन लीजिये जबकि सभी शरीरों में एक ही पुरुष है ॥४१॥

तब हे राजन् ! इसका इस संसार में कौन शत्रु और कौन मित्र होगा । भूतों के द्वारा भूतों का ही मर्दन होता है । अमूर्त आत्मा का मर्दन कैसे हो सकता है ? ॥४२॥

क्रोधादिनां पृथग्भावात् कल्पनेयं निरर्थिका: । यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते ।।४३
नाम्नि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यं भवतो मतम् । एवमुक्तस्तया साधु महिष्या स महीपतिः ।।४४
तथेत्याह महाबुद्धिर्दयितां तथ्यवादिनीम् । तं चापि सा सुतं सुभ्रूर्यथा पूर्वसुतांस्तथा ।।४५
प्राहावबोधजननं तामुवाच स पार्थिवः । करोषि किमिदं मूढे ममाभावाय सन्ततेः ।।४६
दुष्टावबोधदानेन यथा पूर्वसुतेषु मे । यदि ते मत्प्रियं कार्यमनुग्राह्यं वचो मम ।।४७
तदेनं तनयं मार्गे प्रवृत्तेः सन्नियोजय । कर्ममार्गः समुच्छेदं नैव देवि गमिष्यति ।।४८
पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैव साध्वि भविष्यति । पितरो देवलोकास्थास्तथा तिर्यक्त्वमागताः ।।४९
तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गेषु ये स्थिताः । स-पुण्यानसपुण्यांश्च क्षुत्क्षामाँस्तृटपरिप्लुतान् ।।५०
पिण्डोदकप्रदानेन नरः कर्मण्यवस्थितः । सदाप्यायते सुभ्रूस्तद्वद् देवातिथीनपि ।।५१
देवैर्मनुष्यैः पितृभिः प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः । वयोभिः क्रमिभिः कीटैर्नर एवोपजीव्यते ।।५२
तस्मात् तन्वंगि मे पुत्रं यत्कार्यं क्षत्रयोनिभिः । ऐहिकामुष्मिकायालं तत्कर्म प्रतिपादय ।।५३

और क्रोध आदि भावों के भी आत्मा से पृथक् होने से आप द्वारा की गयी, इस नाम की यह कल्पना भी निरर्थक ही है। यदि लोकाचार के लिए ही असत् नाम की कल्पना की जाती है— ।।४३।।

तो मेरे द्वारा रखे गये अलर्क नाम में आपके मत में निरर्थकता कैसे हो सकती है ? तथ्य युक्त बात कहने वाली उस रानी के इस प्रकार उचित बात कहने पर महाबुद्धिमान् उस राजा ने पत्नी से कहा कि—ठीक है, और सुन्दर भौंहों वाली उसने भी उस पुत्र का उसी प्रकार पालन करना प्रारम्भ किया जैसा पहले पुत्रों का किया था (उस पुत्र को भी पहले पुत्रों के समान आत्मज्ञान का उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया) ।।४४–४५।।

आत्मज्ञान का उपदेश करती हुई उस मदालसा से राजा ने कहा—कि हे मूढ़े ! यह तुम क्या करती हो। इस प्रकार तो मेरी सन्तति का ही अभाव हो जायेगा (आगे तत्त्वज्ञानी पुत्रों से वंश परम्परा छिन्न हो जायेगी ।।४६।।

जिस प्रकार मेरे पहले पुत्रों को दुर्बोध देने से (तुमने) भाव रहित कर दिया (उसी प्रकार मेरी इस संतति को भी इस प्रकार भावरहित क्यों कर रही हो ?) यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहती हो तो, मेरी बात मानो, ।।४७।।

(और) इस पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग में लगाओ क्योंकि हे देवी ! (ऐसा करने पर) कर्म मार्ग का समुच्छेद नहीं होगा ।।४८।।

और हे साध्वी ! (ऐसा करने से) पितृ पिण्ड की निवृत्ति (लोप) भी नहीं होगी। अतः तिर्यक् योनि को प्राप्त, देवलोक में स्थित पितर गण अन्य प्राणियों के समान मनुष्य योनि और अन्य प्राणियों की योनि में, पुण्यों, अपुण्यों से युक्त होकर भूख और प्यास से पीड़ित (पितरों का) सांसारिक कर्मों में स्थित मनुष्य पिण्डोदक दान करने से, हे सुभ्रू ! जिस प्रकार पूजन करता है, उसी प्रकार अन्य देवताओं और अतिथियों का भी यथा योग्य पूजन करता है ।।४९–५१।।

क्योंकि देवता, मनुष्य, पितर, प्रेत, भूत, गुह्यक (यक्ष) पक्षी, कृमि, कीट, ये सब मनुष्य के आश्रय में ही जीवित रहते हैं ।।५२।।

इसलिए हे तन्वंगी ! मेरे पुत्रों को जो कार्य क्षत्रिय योनि में, इस लोक और परलोक में उत्तम फल देने वाला हो, उसी कार्य का प्रतिपादन (उपदेश) करो ।।५३।।

तेनैवमुक्ता सा साध्वी वरनारीमदालसा । अलर्कं नाम तनयं प्रोवाचोल्लाप वादिनी ।।५४
पुत्र वर्द्धस्व मे भर्त्तुर्मनो नन्दय कर्मभिः । ऐहिकामुष्मिकफलं तत्सम्यक् परिपालय ।।
मित्राणामुपकाराय दुर्हृदां नाशनाय च ।।५५
धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयितासि पुत्र ।
तत्पालनादिन्द्र समोपभोग्यं धर्म्मं फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम् ।।५६
धरामरान् पर्वसु तर्पयेथाः समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथाः मनः परस्त्रीषु निवर्त्तयेथाः ।।५७
सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथास्तद्धयानतोऽन्तः षडरीञ्जयेथाः ।
मायां प्रबोधेन निवारयेथा ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः ।।५८
अर्थागमाय क्षितिपाञ्जयेथा यशोऽर्ज्जनायार्थमपि व्ययेथाः ।
परापवादश्रवणाद् विभेथा विपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथा ।।५९
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमन्नैर्द्विजान् प्रीणय संश्रितांश्च ।
स्त्रियश्च कामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारींस्तोषयितासि वीर ।।६०
बालो मनोनन्दय बान्धवानां गुरोस्तथाज्ञा करणैः कुमारः ।
स्त्रीणां युवा सत्कुलभूषणानां वृद्धो वने वत्स वनेचराणाम् ।।६१

उस (ऋतध्वज) के द्वारा इस प्रकार कही गयी वह साध्वी स्त्रियों में श्रेष्ठ, उल्लापवादिनी मदालसा अलर्क नामक पुत्र से बोली—।।५४।।

पुत्र, वृद्धि को प्राप्त करो, और उत्तम कर्मों के द्वारा मेरे पति के मन को प्रसन्न करो, मित्रों का उपकार और दुष्ट चेता पुरुषों के नाश के लिए, इस लोक और परलोक के कर्म फलों का सम्यक् प्रकार से पालन करो ।।५५।।

हे पुत्र ! तुम धन्य हो, क्योंकि तुम शत्रु रहित, धन धान्य युक्त वसुन्धरा का चिरकाल तक पालन करोगे । उसके पालन करने से इन्द्र के समान उपभोग्य कर्मफल और अमरत्व को प्राप्त करोगे ।।५६।।

तुम प्रत्येक पर्व पर ब्राह्मणों को तर्पण (संतुष्ट) करो और बन्धुजनों की अभिलाषाओं की पूर्ति करो । परहित का हृदय में चिन्तन करो और परस्त्री की ओर से अपने मन को रोको ।।५७।।

सदैव मुरारि (भगवान्) का हृदय में चिंतन करो और उस का ध्यान करते हुए, अन्तःकरण के (कामादि) छहों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो । ज्ञान के द्वारा माया का निवारण करो और विश्व की अनित्यता का सदैव चिंतन करो ।।५८।।

अर्थ प्राप्ति के लिए राजाओं पर विजय प्राप्त करो और यश प्राप्ति के लिए धन का व्यय करो । दूसरे की निन्दा के श्रवण से डरो, मनुष्यों का विपत्ति रूपी समुद्र से उद्धार करो।।५९।।

हे वीर ! देवताओं, (विद्वान्) ब्राह्मणों और आश्रितों को अनेकों यज्ञों से और निरन्तर दान से प्रसन्न करो । स्त्रियों को उत्तम भोगों से और युद्धों से शत्रुओं का संतुष्ट करो ।।६०।।

हे वत्स ! बाल्यकाल में बन्धुओं के तथा कुमारावस्था में आज्ञापालन से बड़ों के, युवावस्था में स्त्रियों के और वृद्धावस्था में उत्तम कुल के भूषणं वनवासियों के मन को प्रसन्न करो ।।६१।।

राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान् निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गो-विप्रार्थे वत्स मृत्युं भजेथाः ॥६२

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे पुत्राय प्रवृत्तिमार्गानुशासनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।

राज्य करते हुए. सुहृदों (मित्रों) को आनन्दित करो। हे वत्स ! यज्ञों द्वारा साधुओं की रक्षा करते हुए, यजन करो। युद्ध के मध्य में दुष्टों और शत्रुओं को मारते हुए, गौ और ब्राह्मणों की रक्षा करते हुए, परलोक गमन करो ॥६२॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय पुराण में पुत्र के लिए प्रवृत्ति मार्गानुशासन नामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्विंशोऽध्यायः

पुत्र उवाच—

एवमुल्लाप्यमानस्तु स तु मात्रा दिने दिने । ववृधे वयसा बालो बुद्धया चालर्क-संज्ञितः ॥१
स कौमारकमासाद्य ऋतध्वजसुतस्तदा । कृतोपनयनः प्राज्ञः प्रणिपत्याह मातरम् ॥२
मया यदम्ब कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै । सुखाय वद तत्सर्वं प्रश्रयावनतस्य मे ॥३
ममार्थं चैव धर्मार्थं प्रजानां चैव यद्धितम् । श्रेयसे यच्च तत्सर्वं प्रजारंजनमादितः ॥४

मदालसोवाच—

वत्स राज्याभिषिक्तेन प्रजारञ्जनमादितः । कर्त्तव्यमविरोधेन स्वधर्मस्य महीभृताम् ॥५
व्यसनानि परित्यज्य सत्यमूलहराणि वै । आत्मा रिपुभ्यः संरक्ष्यो बहिर्मंत्र विनिर्गमात् ॥६

पुत्र बोला—

इस प्रकार प्रतिदिन माता द्वारा खिलाने के बहाने उपदेश दिया जाता हुआ, अलर्क नाम का वह बालक बुद्धि तथा अवस्था में दिनोदिन बढ़ने लगा ॥१॥

उसके बाद ऋतध्वज का पुत्र कौमारावस्था को प्राप्त हुआ, उपनयन संस्कार किये जाने पर, वह बुद्धिमान् (अलर्क) माता को प्रणाम करके बोला— ॥२॥

हे माता ! मुझे इहलोक और परलोक के सुख के लिए, जो कर्म करना चाहिये, वह सब विनयावनत मुझको कहो ॥३॥

मेरे लिए धर्म और अर्थ तथा प्रजा के लिए जो हितकारी हो। जो सभी का कल्याण करने वाला हो तथा प्रजा का अनुरंजन करने वाला हो, वह सब मुझसे कहो ॥४॥

मदालसा ने कहा—

हे वत्स ! राज्याभिषेक होने पर बिना विरोध के प्रजारंजन करना राजा का प्रथम कर्त्तव्य है। यही उसका अपना धर्म है ॥५॥

सत्य के आधार का हरण करने वाले, व्यसनों का त्याग करके मंत्र के प्रकट होने से, शत्रुओं से रक्षा करनी चाहिए ॥६॥

दुष्टादुष्टांश्च जानीयादमात्यानरिदोषतः । अष्टधा नाशमाप्नोति सुचक्रात् स्यन्दनाद्यथा ।।७
तथा राजाप्यसंदिग्धं बहिर्मन्त्रविनिर्गमात् । चरैश्चरास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः ।।८
विश्वासो न तु कर्तव्यो राज्ञा मित्राप्तबन्धुषु । कार्ययोगादमित्रेषु विश्वसीत् नराधिपः ।।९
स्थान-वृद्धि-क्षय-ज्ञेन षाड्गुण्यविदितात्मना । भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्तिना ।।१०
प्रागात्ममन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता । ज्ञेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः ।।११
यस्त्वेतानविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते । सोऽजितात्मा जितामात्यः शत्रुवर्गेण बाध्यते ।।१२
तस्मात् कामादायः पूर्वं जेयाः पुत्र महीभृता । तज्जये हि जयो राज्ञो राजा नश्यति तैर्जितः ।।१३
कामः क्रोधश्च लोभश्च मदोमानस्तथैव च । हर्षश्च शत्रवो ह्येते नाशाय कुमहीभृताम् ।।१४
कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डुं निपातितम् । निवर्त्तयेत् तथा क्रोधादनुह्लादं हतात्मजम् ।।१५
हतमैलं तथा लोभान्मदाद्वेनं द्विजैर्हतम् । मानादनायुषः पुत्रं हतं हर्षात् पुरञ्जयम् ।।१६
एभिर्जितैर्जितं सर्वं मरुत्तेन महात्मना । स्मृत्वा विवर्जयेदेतान् षड्दोषांश्च महीपतिः ।।१७

शत्रु दोषों को जानकर दुष्ट और सज्जन मंत्रियों को पहचानना चाहिए। मंत्रियों को शत्रुओं के सम्पर्क से बचाना चाहिए। (अन्यथा) सुन्दर पहियों वाले रथ से गिरने के समान राजा का पतन भी आठ प्रकार का होता है। गुप्त मंत्रणा के बाहर निकलने से राजा का आठ प्रकार से नाश होता है। गुप्तचरों के द्वारा शत्रुओं के गुप्तचरों को प्रयत्नपूर्वक खोजना चाहिए ।।७-८।।

और राजा को अपने मित्र आप्त पुरुष और बन्धुओं पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए। किन्तु कार्यौचित्य होने पर राजा शत्रुओं पर भी विश्वास कर सकता है ।।९।।

और राजा को स्थान, क्षय, वृद्धि का ज्ञाता, संधि, विग्रह आदि छहों गुणों को जानने वाला होना चाहिए तथा उसे काम के वशवर्ती नहीं होना चाहिए ।।१०।।

राजा को पहले अपने को मंत्रियों को पुनः भृत्यों को और तदनन्तर नगरवासियों को जान (वश में कर) लेना चाहिए फिर उसके बाद ही शत्रु के साथ विरोध करना चाहिए ।।११।।

जो राजा इन सबको जीते बिना ही शत्रुओं को जीतने की इच्छा करता है। अजितात्मा राजा अमात्यों से वंचित होकर शत्रुओं के वशीभूत होता है ।।१२।।

इसलिए हे पुत्र ! राजा को कामादि शत्रुओं पर पहले विजय करनी चाहिए। उनके ऊपर विजय करने वाला निश्चय ही विजय प्राप्त करता है, अन्यथा उनसे पराजित राजा नष्ट हो जाता है ।।१३।।

काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष ये सब दुष्ट राजाओं के शत्रु नाश के लिए हैं ।।१४।।

काम में प्रसक्त नष्ट हुए पाण्डु को स्मरण करके, (एवं) उसी प्रकार क्रोध के कारण अनुह्लाद को, पुत्र से वंचित रह जाना पड़ा (तो काम और क्रोध को वंश में करना चाहिए) ।।१५।।

और उसी प्रकार लोभ से ऐल (पुरुरवा) मारा गया और मद के कारण वेन ब्राह्मणों के द्वारा मारा गया तथा मान के कारण अनायु के पुत्र (बाली) की मृत्यु हुई और हर्ष के कारण पुरञ्जय का विनाश हुआ ।।१६।।

किन्तु महात्मा मरुत्त ने इन सब को जीतकर सम्पूर्ण विश्व को जीत लिया। अतः राजा को इन सब बातों का स्मरण करके इन षड् दोषों का परित्याग करना चाहिए ।।१७।।

काक-कोकिल-भृङ्गाणां बक-व्याल-शिखण्डिनाम् । हंस-कुक्कुट-लोहानां शिक्षेतचरितं नृपः ॥१८
कौशिकस्य क्रियां कुर्याद्विपक्षे मनुजेश्वरः । चेष्टां पिपीलिकानां च काले भूपः प्रदर्शयेत् ॥१६
ज्ञेयाग्निविस्फुलिंगानां बीजचेष्टा च शाल्मलेः । चन्द्रसूर्यस्वरूपं च नीत्यर्थे पृथिवीक्षिता ॥२०
बंधकी-पद्म-शरभ-शूलिका-गुर्विणीस्तनात् । एवं साम्ना च भेदेन प्रदानेन च पार्थिवः ॥२१
दण्डेन च प्रकुर्वीत नीत्यर्थं पृथिवीक्षिता । प्राज्ञा नृपेण वा देया तथा चण्डाल-योषितः ॥२२
शक्रार्कयमसोमानां तद्वद्वायोर्महीपतिः । रूपाणि पञ्चकुर्वीत महीपालन-कर्मणि ॥२३
यथेन्द्रश्चतुरोमासान् तोयोत्सर्गेण भूतलम् । आप्याययेत तथा लोकान् परिचारैर्महीपतिः ॥२४
मासानष्टौ यथा सूर्यस्तोयं हरति रश्मिभिः । सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिना नृपः ॥२५
यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति । तथा प्रियाप्रिये राजा दुष्टादुष्टे समो भवेत् ॥२६
पूर्णेन्दुमालोक्य यथा प्रीतिमाञ्जायते नरः । एवं यत्र प्रजाः सर्वा निर्वृतास्तच्छशिव्रतम् ॥२७
मारुतः सर्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा । एवं चरेन्नृपश्चारैः पौरामात्यारिबन्धुषु ॥२८

काक, कोकिल, भ्रमर, बक, सर्प, मोर, हंस, मुर्गा और लौह राजा को इन सबके आचरण से शिक्षा लेनी चाहिए ॥१८॥

राजा को शत्रुओं के प्रति उल्लू के समान व्यवहार करना चाहिए और समय आने पर राजा को चींटीं के समान (संचयन) क्रिया का प्रदर्शन करना चाहिए ॥१६॥

राजा को अग्नि की चिंगारी के समान ज्ञाता और शाल्मकी के वृक्ष के बीज के समान चेष्टा वाला, और चन्द्र, सूर्य के समान अर्थ की ओर दृष्टि ले जाने वाला होना चाहिए ॥ ०॥

वैश्या, कमल, शरभ, शूलिका, पीन स्तनी और वरांगना इन सबसे राजा शिक्षा ग्रहण करें और और साम, दाम, दण्ड और भेद से नीतिपूर्वक पृथिवी का पालन करे। जिस प्रकार चाण्डाल स्त्री की बुद्धि (सभी कार्यों में रत रहती है) उसी प्रकार राजा को भी अपनी बुद्धि का प्रयोग करना चाहिए ॥२१-२२॥

राजा, इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्रमा और वायु के समान पृथ्वी पालन रूप कर्म को पाँच प्रकार से करे ॥२३॥

जिस प्रकार इन्द्र चार महिनों तक जल के उत्सर्ग से लोकों को तृप्त करता है, उसी प्रकार राजा भी अर्थादि के दान से सबको प्रसन्न करे ॥२४॥

जिस प्रकार सूर्य आठ महीनों तक (अपनी) किरणों के द्वारा जल सोखता है। उसी प्रकार राजा प्रजा से सूक्ष्म कर ग्रहण करे ॥२५॥

जिस प्रकार यमराज समय (काल) आने पर प्रिय और द्वेषी दोनों को ही ले जाता है, उसी प्रकार राजा को भी प्रिय, अप्रिय, दुष्ट और सज्जन में सम दृष्टि रखनी चाहिए ॥२६॥

पूर्ण चन्द्रमा को देखकर जिस प्रकार मनुष्य प्रसन्न होता है। इस प्रकार जिससे सम्पूर्ण प्रजा शान्ति प्राप्त करे। (राजा को इसका पालन करना चाहिए) यही शशि व्रत है ॥२७॥

जिस प्रकार वायु सभी प्राणियों में गूढ़ रहकर विचरण करता है उसी प्रकार राजा को गुप्तचरों के द्वारा नगरवासियों, आमात्यों, शत्रुओं और बंधुओं में गुप्त रीति से विचरण करना चाहिए ॥२८॥

न लोभार्थैर्न कामार्थैर्नार्थार्थैर्यस्य मानसम् । पदार्थैः कृष्यते धर्मात् स राजा स्वर्गमृच्छति ।।२९
उत्पथग्राहिणो मूढान् स्वधर्माच्चलितान् नरान् । यः करोति निजे धर्मे स राजा स्वर्गमृच्छति ।।३०
वर्णधर्मा न सीदन्ति यस्य राष्ट्रे तथाश्रमाः । राज्ञस्तस्य सुखं तात परत्रेह च शाश्वतम् ।।३१
एतद् राज्ञः परं कृत्यं तथैतद्वृद्धिकारणम् । स्वधर्मे स्थापनं नृणां चाल्यते न कुबुद्धिभिः ।।३२
पालनेनैव भूतानां कृतकृत्यो महीपतिः । सम्यक् पालयिता भागं धर्मस्याप्नोति वै यतः ।।३३
एवमाचरते राजा चातुर्वर्ण्यस्य रक्षणम् । स सुखी विहरत्येष शक्रस्यैति स लोकताम् ।।३४

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे मदालसाख्याने पुत्राय नृपनीतिविषये
राज्यतन्त्रानुशासन वर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।

जिसका मन लोभ, काम, अर्थ तथा अन्यों से आकृष्ट नहीं होता, वह राजा धर्म का पालन करने से स्वर्ग प्राप्त करता है ।।२९।।

जो (राजा) स्वधर्म से विचलित कुमार्गगामी व्यक्तियों को स्वधर्म में नियोजित करता है वह राजा स्वर्ग प्राप्त करता है ।।३०।।

हे पुत्र ! जिसके राष्ट्र में, वर्ण, वर्णाश्रम और धर्म विनष्ट नहीं होते हैं उस राजा को इहलोक और परलोक में शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है ।।३१।।

यही राजा का परम कर्त्तव्य है, यही वृद्धि का कारण है । जो राजा अपने धर्म में स्थित रहते हुए, दुष्टबुद्धि व्यक्तियों द्वारा चालित नहीं होता, वही राजा प्राणियों के पालन से कृतकृत्य होता है क्योंकि प्रजा का उचित प्रकार से पालन करता हुआ, राजा ही धर्म भाग को प्राप्त करता है ।।३२-३३।।

(तथा) जो र जा चारों वर्णों की रक्षा करता है (एवं) इस प्रकार आचरण करता है, वह इस लोक में सुख पूर्वक विहार करता हुआ, अन्त में इन्द्र लोक को प्राप्त करता है ।।३४।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मदालसाख्यान में पुत्र के लिए नृप-नीति विषय में राजतन्त्रानुशासन, वर्णन नामक चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चविंशोऽध्यायः

पुत्र उवाच—

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा सोऽलर्को मातरं पुनः । पप्रच्छ वर्णधर्मांश्च धर्मान्ये चाश्रमेषु च ।।१

अलर्क उवाच—

कथितोऽयं महाभागे राजतन्त्राश्रितस्त्वया । मम, धर्मोऽहमिच्छामि श्रोतुं वर्णाश्रमात्मकम् ।।२

पुत्र बोला—

माता के उन वचनों को सुनकर उस अलर्क ने फिर माता से वर्ण-धर्म तथा आश्रय धर्म के विषय में पूछा ।।१।।

अलर्क ने कहा—

हे महाभागे ! यह तुमने राजधर्म का तो कथन कर दिया है । अब मैं वर्णाश्रम धर्म को सुनने का इच्छुक हूं ।।२।।

मदालसोवाच —

दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्य त्रिधोदितः । धर्मो नान्यश्चतुर्थोऽस्ति धर्मस्तस्यापदं विना ॥३

याजनाध्यापने शुद्धस्तथा पुत्र-प्रतिग्रहः । एतत् सम्यक् समाख्यातं त्रितयं चास्य जीविका ॥४

दानमध्ययनं यज्ञाः क्षत्रियस्याप्ययं त्रिधा । धर्मः प्रोक्तः क्षिते रक्षा शस्त्राजीवश्च जीविका ॥५

दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैव सः । वाणिज्यं पाशुपाल्यं च कृषिश्चैषास्य जीविका ॥६

दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा-द्विजातीनां त्रिधा मया । व्याख्यातः शूद्रधर्मोऽपि, जीविका कारुकर्मजा ॥७

तद्वद् द्विजातिशुश्रूषा पोषणं क्रयविक्रयैः । वर्णधर्मास्त्विमे प्रोक्ताः श्रूयतामाश्रमाश्रयाः ॥८

स्ववर्णधर्मात् संसिद्धिं नरः प्राप्नोति न च्युतः । प्रयाति नरकं प्रेत्य प्रतिषिद्धनिषेवणात् ॥९

यावत् तु नोपनयनं क्रियते वै द्विजन्मनः । कामचेष्टोक्तिभक्षस्तु तावद् भवति पुत्रक ॥ १०

कृतोपनयनः सम्यग् ब्रह्मचारी गुरोर्गृहे । वसेत तत्र धर्मोऽस्य कथ्यते तन्निबोधमे ॥११

स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा । गुरोर्निवेद्य तच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वदा ॥१२

मदालसा बोली—

ब्राह्मण के दान, अध्ययन और यज्ञ तीन प्रकार के कर्म कहे गये हैं। आपत्तिकाल के बिना उसका अन्य कोई चौथा धर्म नहीं है ॥३॥

शुद्ध चित्त होकर यजन व अध्यापन और पवित्र प्रतिग्रह यही तीनों कर्म भली प्रकार इसकी जीविका का साधन कहे गये हैं ॥४॥

क्षत्रिय के भी दान, अध्ययन और यज्ञ ये तीनों ही धर्म कहे गये हैं। पृथ्वी पालन शस्त्राभ्यास उसकी जीविका के साधन हैं ॥५॥

वैश्यों के भी दान, अध्ययन और यज्ञ ये तीनों ही कर्त्तव्य हैं और वाणिज्य, पशुपालन तथा कृषि इसकी जीविका के साधन हैं ॥६॥

शूद्र के दान, यज्ञ और तीनों जातियों की सेवा ये तीनों धर्म मैंने कहे वह जीविकोपार्जन कारु कर्म से करता है ॥७॥

उसी के समान ब्राह्मणादि द्विजातियों की सेवा और पशुपालन और क्रय विक्रय आदि कारु कर्म जीविकोपार्जन के साधन हैं। इस प्रकार ये मैंने वर्ण धर्मों की व्याख्या की। अब तुम आश्रम से सम्बद्ध धर्मों को सुनो ॥८॥

मनुष्य अपने वर्ण के अनुसार धर्म पालन से ही, सिद्धियों को प्राप्त करता है। च्युत होकर नहीं। प्रतिषिद्ध कर्मों का सेवन करने से मनुष्य मृत्यु के बाद नरक में जाता है ॥९॥

और हे पुत्र ! जब तक द्विजन्मियों का उपनयन संस्कार नहीं हो जाता, तब तक वे इच्छानुसार व्यवहार, आहार और आलापादि में प्रवृत्त हो सकते हैं ॥१०॥

गुरु के घर पर भली प्रकार से उपनयन संस्कार किये गये ब्रह्मचारी को वहीं निवास करना चाहिए और वहा रहते हुए, इसके जो कर्त्तव्य हैं, उन्हें मैं बता रही हूं तुम उनको सुनो ॥११॥

स्वाध्याय, अग्नि सेवा (पूजा हवनादि) स्नान और भिक्षाटन करके प्रारम्भ में गुरु को समर्पित करके फिर उनकी आज्ञा से ही स्वयं सदैव भोजनादि करना चाहिए ॥१२॥

गुरोः कर्मणि सोद्योगः सम्यक् प्रीत्युपपादकः। तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्यमानसः ।।१३
एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात्। अनुज्ञातो वरान् दत्त्वा दक्षिणां गुरवे ततः ।।१४
गार्हस्थ्याश्रमकामस्तु गृहस्थाश्रममावसेत्। वानप्रस्थाश्रमं वापि चतुर्थं वेच्छयात्मनः ।।१५
तथैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात्। गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतं विना ।।१६
शुश्रूषुर्निरभीमानो ब्रह्मचर्याश्रमं वसेत्। उपावृतस्ततस्तस्माद् गृहस्थाश्रमकाम्यया ।। १७
ततोऽसमानर्षिकुलां तुल्यां भार्यामरोगिणीम्। उद्वहेन्न्यायतोऽव्यङ्गां गृहस्थाश्रमकारणात् ।।१८
स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथींस्तथा।
सम्यक् सम्प्रीणयेद् भक्त्या पोषयेच्चाश्रितांस्तथा ।।१९
भृत्यात्मजान्जामयोऽथ दीनार्थिपतितानपि। यथाशक्त्यान्नदानेन वयांसि पशवस्तथा ।।२०
एष धर्मो गृहस्थस्य ऋतावभिगमस्तथा। पञ्चयज्ञ विधानं तु यथाशक्ति न हापयेत् ।।२१
पितृ-देवातिथि-ज्ञातिभुक्तशेषं स्वयं नरः। भुञ्जीत च समं भृत्यैर्यथा विभवमात्मनः ।।२२
एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थस्याश्रमो मया। वानप्रस्थस्य धर्मं ते कथयाम्यवधार्यताम् ।।२३

गुरू के कार्यों में भली प्रकार प्रीतिपूर्वक उद्योग करना चाहिए और उनके द्वारा बुलाये जाने पर अनन्य चित्त होकर अध्ययन करना चाहिए ।।१३।।

एक, दो अथवा सभी वेदों को गुरु मुख से सुनकर गुरु से आज्ञा प्राप्त करने के बाद, गुरु को उत्तम गुरु दक्षिणा देकर ।।१४।।

इसके पश्चात् गृहस्थ आश्रम के इच्छुक (उस ब्रह्मचारी) को गृहस्थ आश्रम में निवास करना चाहिए अथवा अपनी इच्छा से वानप्रस्थ अथवा चतुर्थ आश्रम में भी निवास कर सकता है ।।१५।।

अथवा उसी प्रकार वह द्विज, गुरु के घर में भी एकनिष्ठा प्राप्त करे और गुरु के अभाव में उसके पुत्र और पुत्र के बिना उसके शिष्य में एकनिष्ठा प्राप्त करे।।१६।।

सेवा परायण और अभिमान रहित होकर ब्रह्मचर्य आश्रम में निवास करे। उसके बाद गृहस्थ आश्रम की इच्छा से गुरु के घर से लौटकर ।।१७।।

गृहस्थाश्रम में प्रवेश की इच्छा होने पर, असमान कुल, गोत्र सम्पन्न, रोग रहित, समान कन्या से, जो हीनाङ्ग न हो, गृहस्थ बनने के लिए, विवाह करना चाहिए ।।१८।।

और अपने कर्मों से धन प्राप्त करके, पितर, देवता और अतिथियों को उचित प्रकार भक्ति पूर्वक प्रसन्न करें तथा आश्रितों का पालन पोषण करें ।।१९।।

भृत्यों, पुत्रों, बन्धुओं, अन्धों, दीनों, याचकों और पतितों, पशु पक्षियों को भी अपनी शक्ति के अनुसार अन्नादि के दान से पालन करना चाहिए ।।२०।।

ऋतुकाल में स्त्री प्रसंग और यथाशक्ति पंचयज्ञ का विधान भी नहीं छोड़ना चाहिए। यही गृहस्थ का धर्म है ।।२१।।

गृहस्थी मनुष्य को अतिथि, देवता, पितर और जाति बन्धुओं के खाने के पश्चात् शेष बचे हुए भोजन को अपने धन के अनुरूप भृत्यों के साथ स्वयं खाना चाहिए ।।२२।।

ये मैंने गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्य संक्षेप में तुमसे कहे अब मैं तुमसे वानप्रस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों को बताती हूं। तुम ध्यानपूर्वक सुनो ।।२३।।

अपत्यसंततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम् । वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणात् ।।२४
तत्रारण्योपभोगश्च तपोभिश्चात्मकर्षणम् । भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रियाः ।।२५
होमस्त्रिषवणं स्नानं जटावल्कलधारणम् । मौनादिकरणं चैव वन्यस्नेहनिषेवणम् ।।२६
इत्येष पापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः । वानप्रस्थाश्रमस्तस्मात् भिक्षोस्तु चरमो परः ।।२७
चतुर्थस्य स्वरूपं तु श्रूयतामाश्रमस्य यत् । यश्च धर्मोऽस्य धर्मज्ञैः प्रोक्तस्तात महात्मभिः ।।२८
सर्व-संग-परित्यागो ब्रह्मचर्यमकोपता । जितेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन् वसतिश्चिरम् ।।२९
अनारम्भस्तथाहारे भिक्षान्नं चैककालिकम्। आत्मज्ञानावबोधञ्च तथा चात्मावलोकनम् ।।३०
चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मो मयाऽयं ते निवेदितः । सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणां च मे श्रृणु ।।३१
सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा । अनृशंस्यमकार्पण्यं संतोषश्चाष्टमो गुणः ।।३२
एते संक्षेपतः प्रोक्ता धर्मा वर्णाश्रमेषु च । एतेषु नित्य-धर्मेषु नित्यं तिष्ठेत् समन्ततः ।।३३
स याति ब्रह्मलोकं हि यावदिन्द्राश्चतुर्दश। यश्चोल्लंघ्य स्वकं धर्मं स्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ।।३४

विद्वान् पुरुष संतान की पूर्णता और अपने शरीर की अवनति को देखकर, आत्मशुद्धि के लिए, वानप्रस्थ आश्रम में प्रस्थान करे ।।२४।।

वहां भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, अतिथि, देवता और पितरों की पूजनादि क्रियाओं को सम्पन्न करते हुए अरण्य के फलमूल आदि का उपभोग तथा आत्मोन्नति करे ।।२५।।

हवन, त्रिकाल स्नान, जटा वल्कलादि का धारण करना, मौन आदि का आचरण, वन्य प्राणियों के साथ स्नेहपूर्वक आचरण करते हुए, करे ।।२६।।

इस प्रकार पाप शोधन और आत्मा का उपकार करते हुए, वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे । उसके बाद भिक्षु नामक अगला उत्कृष्ट आश्रम है ।।२७।।

हे पुत्र ! उस चतुर्थ आश्रम के उस स्वरूप को तुम सुनो, जो धर्म, इसके धर्मज्ञों और महात्माओं द्वारा कहा गया है ।।२८।।

सभी प्रकार के संग (प्रसंगादि) का त्याग, ब्रह्मचर्य का पालन और क्रोध राहित्य, जितेन्द्रियत्व और एक स्थान पर बहुत समय तक न रहना ।।२९।।

कर्म का विसर्जन और भोजन में केवल एक समय भिक्षा का अन्न, आत्मज्ञान का बोध तथा आत्म दर्शन इत्यादि ।।३०।।

यह मैंने चतुर्थ आश्रम का धर्म तुमसे निवेदन कर दिया है । अब मैं तुमसे अन्य वर्णों और आश्रमों के सामान्य कर्त्तव्यों को कहती हूं, तुम इन्हें सुनो ।।३१।।

सत्य, पवित्रता, अनसूया, अहिंसा, क्षमा, उदारता, अकृपणता और संतोष आठ गुण सभी वर्णाश्रमों में साधारण धर्म कहे गये हैं । इन नित्य धर्मों में जो व्यक्ति नित्य समान रूप से रहता है ।।३२-३३।।

वह ब्रह्मलोक में जाता है और जब तक निवास करता है, तब तक चौदहों इन्द्रों का (पतन नहीं हो जाता) और जो (व्यक्ति) वर्णाश्रम संज्ञक अपने धर्मों का उल्लंघन करके ।।३४।।

नरोऽन्यथा प्रवर्त्तेत स दण्डयो भूभृतो भवेत्। ये च स्वधर्मसंत्यागात् पापं कुर्वन्ति मानवा ॥३५
उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तं प्रयात्यधः। तस्माद् राज्ञा प्रयत्नेन सर्वे वर्णाः स्वधर्मतः ॥३६
प्रवर्त्तन्तेऽन्यथा दण्डयाः स्थाप्याश्चैव स्वकर्मसु ॥३७

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे मदालसानुशासने वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।

अन्यथा आचरण करता है। राजा को उसे दण्ड देना चाहिए और जो मनुष्य अपने धर्म का त्याग करके पाप करते हैं। उनकी उपेक्षा करने वाला राजा अपने इष्ट और पूर्त कर्मों का विनाश करता हुआ. अधः पतित होता है ॥३५॥

इसलिए राजा के प्रयत्न से सभी वर्ण अपने धर्म में प्रवृत्त रहें और अन्यथा आचरण करने वालों को दण्डित करे तथा उनको अपने कर्मों में पुनः प्रवृत्त करे ॥३६-३७॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में मदालसानुशासन में
वर्णाश्रमधर्म वर्णन नामक पच्चीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

षड्विंशतितमोऽध्यायः

अलर्क उवाच—

यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुवर्त्तता। बन्धश्च स्यादकरणे क्रियायां यस्य चोच्छ्रितिः ॥१
उपकाराय यन्नृणां यच्च वर्ज्यं गृहे सताम्। यथा च क्रियते तन्मे यथावत् पृच्छते वद ॥२

मदालसोवाच—

वत्स गार्हस्थ्यमास्थाय नरः सर्वमिदं जगत्। पुष्णाति तेन लोकांस्च स जयत्यभिवांछितान् ॥३
पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा। कृमिकीटपतंगाश्च वयांसि पशवोऽसुराः ॥४
गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति च। मुखं चास्य निरीक्षन्ते अपि नो दास्यतीति वै ॥५

अलर्क ने कहा—

गृहस्थाश्रमस्थ पुरुष का क्या कर्तव्य है, जिसका अनुष्ठान न करने से बन्धन और करने से मोक्ष होता है ॥१॥

गृहस्थों के उपकार के लिए जो वर्जनीय है, वह मैं समस्त विषय पूछता हूं, उसको तुम यथार्थ रूप में बताओ ॥२॥

मदालसा बोली—

हे वत्स ! गृहस्थ आश्रम में स्थित होकर, मनुष्य इस सम्पूर्ण जगत का पालन करता है और उससे पुरुष मनोवाञ्छित लोकों को प्राप्त करता है ॥३॥

पितर, मुनि, देवता, भूत, और मनुष्य, कृमि, कीट तथा पतंग, पशु, पक्षी और असुर सब गृहस्थ आश्रम से ही जीवन निर्वाह करते हैं, उससे ही वे तृप्ति पाते हैं और इसके मुख की ओर देखते रहते हैं कि यह हमें देगा ॥४-५॥

सर्वस्याधारभूतेयं वत्स धेनुस्त्रयीमयी । यस्यां प्रतिष्ठितं विश्वं विश्वहेतुश्च या मता ॥६
ऋक्पृष्ठाऽसौ यजुर्मध्या सामवक्त्रशिरोधरा । इष्टापूर्तविषाणा च साधु-सूक्त तनूरुहा ॥७
शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रावर्णपादप्रतिष्ठिता । आजीव्यमाना जगतां साऽक्षयानापचीयते ॥८
स्वाहाकारः स्वधाकारो वषट्कारश्च पुत्रक । हन्तकारस्तथैवान्यस्तस्याः स्तन चतुष्टयम् ॥९
स्वाहाकारं स्तनं देवाः पितरश्च स्वधामयम् । मुनयश्च वषट्कारं देवभूतसुरेतराः ॥ १०
हन्तकारं मनुष्याश्च पिबन्ति सततं स्तनम् । एवमाप्याययत्येषा देवादीनखिलांस्त्रयी ॥११
एतद् वत्स चतुष्कं तु नर स्तनचतुष्टये । न नियुज्याद्यथाकालं तेन स्युस्ते विमानिताः ॥१२
देवादीनखिलान् येषु संतर्पयति मानवः । तेषामुच्छेदकर्त्ता यः पुरुषोऽत्यन्तपापकृत् ॥१३
स तमस्यंधतामिस्रे तामिस्रे च निमज्जति। यस्त्वेतां मानवो धेनुं स्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥१४
प्रापयत्युचिते काले स स्वर्गायोपपद्यते । तस्मात् पुत्र मनुष्येण देवर्षि-पितृ-मानवाः ॥१५
भूतानि चानुदिवसं पोष्याणि स्वतनुर्यथा । तस्मात् स्नातः शुचिर्भूत्वा देवर्षि-पितृ-तर्पणम् ॥१६
प्रजापतेस्तथैवाद्भिः काले कुर्यात् समाहितः । सुमनोगंधधूपैश्च देवानभ्यर्च्य मानवः ॥१७

हे पुत्र ! तीनों से युक्त, यह गृहस्थ रूपी 'धेनु ही' सम्पूर्ण जगत् का आधार है। जिसमें यह सम्पूर्ण विश्व प्रतिष्ठित है और जो सम्पूर्ण विश्व का कारण मानी गयी है ॥६॥

और ऋग्वेद इसकी पीठ, यजुर्वेद मध्य भाग, सामवेद मुख, इष्टापूर्त इसके सींग, सुन्दर सूक्त इसके शरीर पर उगे रोम हैं ॥७॥

शक्ति और पुष्टि उसका मल मूत्र तथा वर्णाश्रम पाद प्रतिष्ठा है। सम्पूर्ण जगत् का पालन करने वाली, यह अक्षय है, यह कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं होती ॥८॥

और हे पुत्र ! स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार तथा हंतकार ये चारों इसके चार थन हैं ॥९॥

जिनमें स्वाहाकार स्तनों को देवता, स्वधाकार को पितर और अन्य देव स्वरूप सुर तथा मुनि वषट्कारकों एव मनुष्य हंतकर रूपी स्तन को सदैव पीते रहते हैं। इस प्रकार त्रिगुण सम्पन्न यह (धेनु) सम्पूर्ण देवताओं को तृप्ति प्रदान करती है ॥१०-११॥

इस प्रकार के इन चारों स्तनों का चारों प्रकार (वर्णों) के व्यक्ति पान करते हैं। यदि वे यथा नियुक्त नहीं होते तो वे उस (धेनु) की अवमानना करते हैं ॥१२॥

जिसके द्वारा मनुष्य, देवादि सभी योनि के प्राणियों की तृप्ति करता है, उस (इस धेनु रूपी गृहस्थ) का उच्छेद करने वाला व्यक्ति अत्यन्त पापी है और वह अंधतामिस्र तथा तामिस्र नामक नरकों में गिरता है ॥१३-१४॥

जो मनुष्य इस धेनु को अमरादि वत्सों के द्वारा, उचित समय पर स्तनपान कराता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है। इसलिए हे पुत्र ! (इस प्रकार) मनुष्य—देवर्षि, ऋषि, पितर और भूतों का प्रतिदिन उसी प्रकार पोषण करते हैं जिस प्रकार अपने शरीर का। इसलिए मनुष्य स्नान करके पवित्र होकर ॥१५-१६॥

देव, ऋषि, पितर और प्रजापतियों का उसी प्रकार दत्तचित्त होकर प्रातःकाल में जल, चन्दन, गंध और धूपादि से तर्पण करे, जिस प्रकार देवताओं की पूजा करता है ॥१७॥

ततोऽग्नेस्तर्पणं कुर्याद् दद्याच्च बलिमित्यथ । ब्रह्मणे गृहमध्ये तु विश्वेदेवेभ्य एव च ॥१८
धन्वन्तरिं समुद्दिश्य प्रागुदीच्यां बलिं क्षिपेत् । प्राच्यां शक्राय याम्यायां यमाय बलिमाहरेत् ॥१९
प्रतीच्यां वरुणायाथ सोमायोत्तरतो बलिम् । दद्याद् धात्रे विधात्रे च बलिं द्वारे गृहस्य च ॥२०
अर्यम्णेऽथ बहिर्दद्याद् गृहेभ्यश्च समन्ततः । नक्तं चरेभ्यो भूतेभ्यो बलिमाकाशतो हरेत् ॥२१
पितृणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखः स्थितः । गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः ॥२२
ततस्तोयमुपादाय तेषामाचमनाय वै । स्थानेषु निक्षिपेत् प्राज्ञस्तास्ता उद्दिश्य देवताः ॥२३
एवं गृहबलिं कृत्वा गृहे गृहमतिः शुचिः । आप्यायनाय भूतानां कुर्यादुत्सर्गमादरात् ॥२४
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद् भुवि । वैश्वदेवं हि नामैतत् सायं प्रातरुदाहृतम् ॥२५
आचम्य च ततः कुर्यात् प्राज्ञो द्वारावलोकनम् । मुहूर्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्यो ह्यतिथिर्भवेत् ॥२६
अतिथिं तत्र सम्प्राप्तमन्नाद्येनोदकेन च । संपूजयेद् यथाशक्ति—गन्धपुष्पादिभिस्तथा ॥२७
न मित्रमतिथिं कुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् । अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम् ॥२८

और उसके बाद तर्पण करें तथा दधि की बलि दे। घर के मध्य ब्रह्मा और विश्व देवों के लिए तथा धन्वन्तरि को लक्ष्य करके पहले उत्तर दिशा में, बलि का क्षेपण करे। पुनः पूर्व दिशा में इन्द्र के लिए बलि देनी चाहिए ॥१८-१९॥

तत्पश्चात् पश्चिम में वरुण और सोम को उत्तर दिशा में तथा धाता विधाता को घर के द्वार पर ही बलि देनी चाहिए ॥२०॥

और अर्यमा को घर के बाहरी भाग में सब ओर से बलि देवें तथा निशाचर और भूतों के लिए आकाश में बलि दें ॥२१॥

पितरों को बलि देने के लिए गृहस्थ को एकाग्रचित्त होकर, दक्षिण दिशा की ओर मुख करके स्थित होकर ॥२२॥

उसके बाद उनके आचमन के लिए जल लेकर, प्राज्ञ उन-उन देवताओं को लक्ष्य करके विभिन्न स्थानों में जल का क्षेपण करें ॥२३॥

इस प्रकार घर में गृह बलि करके गृहस्थ (पुरुष) पवित्रता से प्राणियों की तृप्ति के लिए आदर पूर्वक उत्सर्ग विधि करे ॥२४॥

श्वान और श्वपच तथा पक्षियों के लिए भूमि में बलि दें। इसे ही 'वैश्व देव' बलि कहा जाता है, इसका प्रातः और सायंकाल देने का विधान किया गया है ॥२५॥

आचमन करने के बाद वह बुद्धिमान् गृही इस प्रकार वैश्वदेव बलि प्रदान पूर्वक आचमन करके, द्वार की ओर देखे, मुहूर्त के अष्टम भाग तक अतिथि की प्रतीक्षा करे ॥२६॥

और वहां अतिथि को प्राप्त करके यथाशक्ति अन्न, जल, गन्ध और पुष्पादि के द्वारा उसकी पूजा करे ॥२७॥

न तो मित्र को और न ही एक गांव के निवासी को अतिथि माने, उसी समय आए हुए अज्ञात कुल और गोत्र वाले व्यक्ति को ही (अतिथि बनाये) ॥२८॥

बुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिञ्चनम् । ब्राह्मणं प्राहुरतिथिं स पूज्यः शक्तितो बुधैः ।।२९
न पृच्छेद् गोत्रचरणं स्वाध्यायं चापि मण्डितः । शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ।।३०
अनित्यं हि स्थितो यस्मात् तस्मादतिथिरुच्यते ।
तस्मिंस्तृप्ते नृयज्ञोत्थाद् ऋणान्मुच्येद् गृहाश्रमी ।।३१
तस्यादत्त्वा तु यो भुंक्ते स्वयं किल्बिषभुङ् नरः। स पापं केवलं भुक्ते पुरीषं चान्यजन्मनि ।।३२
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते । स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ।।३३
अप्यम्बुशाकदानेन यच्चाप्यश्नाति स स्वयम् । पूजयेत नरः शक्त्या तेनैवातिथिमादरात् ।।३४
कुर्याच्चाहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च । पितॄनुद्दिश्य विप्रांश्च भोजयेद् विप्रमेव वा ।। ३५
अन्नस्याग्रं तदुद्धृत्य ब्राह्मणायोपपादयेत् । भिक्षां च याचितां दद्यात् परिब्राट्-ब्रह्मचारिणाम् ।।३६
ग्रासप्रमाणा भिक्षास्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् । अग्रं चतुर्गुणं प्राहुर्हंतकारं द्विजोत्तमाः ।।३७
भोजनं हंतकारं वा अग्रं भिक्षामथापि वा । अदत्त्वा तु न भोक्तव्यं यथा विभवमात्मनः ।।३८
पूजयित्वातिथीनिष्टाञ्ज्ञातीन् बन्धुंस्तथार्थिनः ।
विकलान् बालवृद्धांश्च भोजयेच्चातुरांस्तथा ।।३९

जो यथार्थ रूप से भूखा और श्रम से थका हो और अकिंचन हो, आगता हुआ आया हो, इसी प्रकार के ब्राह्मण को अतिथि कहा गया है और वही शक्ति के अनुसार विद्वानों द्वारा पूजनीय है ॥२९॥

और बुद्धिमान् (पुरुष) उस व्यक्ति के गोत्र (चरण) सम्प्रदाय (शाखा) और स्वाध्याय आदि के सम्बन्ध में प्रश्न न करे। वह चाहे सुन्दर हो अथवा असुन्दर उसको प्रजापति समझे ॥३०॥

क्योंकि वह अनित्य (प्रतिदिन नहीं) रूप से रहता है, इसलिए उसको अतिथि कहा जाता है। गृहस्थ आश्रम में रहने वाला व्यक्ति उसकी तृप्ति हो जाने पर, गृही के ऋण से मुक्त होता है ॥३१॥

उसको दिये बिना ही जो व्यक्ति स्वयं (अकेले) खाता है, वह पाप का भोक्ता होता है। वह पापी अन्य जन्म में केवल विष्ठा खाता है ॥३२॥

जिसके घर से अतिथि भग्न हुई आशा वाला होकर लौटता है। वह उसे अपने दुष्कर्म देकर और उसके पुण्यों को लेकर जाता है ॥३३॥

जो वह स्वयं खाता है, उन्हीं शाक, जलादि से अतिथि की यथाशक्ति पूजा करे ॥३४॥

प्रतिदिन अन्न, जलादि से पितरों को लक्ष्य करके श्राद्ध करे। अनेक ब्राह्मणों को अथवा एक ब्राह्मण को भोजन करावे ॥३५॥

अन्न के अग्र भाग को तोड़कर ब्राह्मणों को प्रदान करे और साधु अथवा ब्रह्मचारी याचक को भिक्षा प्रदान करे ॥३६॥

द्विजोत्तमों ने एक ग्रास को भिक्षा, चार ग्रास को अग्र और अग्र के चार गुने को हंतकार कहा है ॥३७॥

जैसा अपनी सामर्थ्य हो उसके अनुसार हंतकार, अग्र भिक्षा का भोजन दिये बिना (व्यक्ति को) नहीं खाना चाहिए ॥३८॥

अतिथियों की पूजा करके अपने प्रिय, (ज्ञाति जाति) बन्धु, याचक, विकल (व्याकुल), बालक, आतुर और वृद्धों को भोजन कराना चाहिए ॥३९॥

वाञ्छते क्षुत्परीतात्मा यच्चान्योन्नमकिंचनः। कुटुंबिना भोजनीयः स्व समं विभवे सति ।।४०
श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति । सीदतायत् कृतं तेन तत्पापं स समश्नुते ।।४१
सायं चैष विधिः कार्यः पूर्वोक्तं तत्र चातिथिम् । पूजयेच्च यथाशक्ति शयनासनभोजनैः ।।४२
एवमुद्वहतस्तात गार्हस्थ्यं भारमास्थितम् । स्कन्धे विधाता देवाश्च पितरश्च महर्षयः ।।४३
श्रेयोभि वर्षिणः सर्वे भवन्त्यतिथिबान्धवाः। पशु-पक्षि-मृगास्तृप्ता ये चान्ये सूक्ष्मकीटकाः ।।४४
गाथाश्चात्र महाभाग स्वयमत्रिरगायत । ताः शृणुष्व महाभाग गृहस्था श्रमसंस्थिताः ।।४५
देवान् पितॄंश्चातिथींश्च तद्वत् संपूज्य बान्धवान् । जामयश्च गुरुंश्चैव गृहस्थो विभवे सति ।।४६
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद् भुवि । वैश्वदेवं हि नामैतत् कुर्यात् सायं यथा दिने ।४७
मांसमन्नं तथा शाकं गृहे यच्चोपसाधितम् । न च तत्स्वयमश्नीयाद् विधिवद्यन्न निर्वपेत् ।।४८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे मदालसोपाख्याने मदालसोपदेश वर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ।

इसके अतिरिक्त यदि अन्य कोई भूख से व्याकुल आत्मा वाला अकिंचन व्यक्ति अन्न की इच्छा करे तो अपने ऐश्वर्य के अनुसार उसको भोजन कराये ।।४०।।

जाति में ऐश्वर्यशाली के होने पर भी जो उस जाति का व्यक्ति दुःखी होता है तो दुःखी रहते हुए जो अकार्य उसके द्वारा किया जाता है, उसको वह (धनवान्) व्यक्ति प्राप्त करता है ।।४१।।

सायंकाल में भी इसी पूर्वोक्त विधि को अतिथि के प्रति करना चाहिए और यथाशक्ति आसन, शय्या और भोजन द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिए ।।४२।।

हे तात ! इस प्रकार गृहस्थ के भार को अपने कंधों पर वहन करते हुए, विधाता, देव, पितर और महर्षि, पशु, पक्षी, मृग, अतिथि, बन्धु तथा अन्य जो सूक्ष्म कीट हैं, सबको प्रसन्न (तृप्त) करके गृहस्थी श्रेयस् को प्राप्त करते हैं ।।४३-४४।।

हे महाभाग ! इस विषय में महर्षि अत्रि ने स्वयं जो गाथाएं गायी हैं । गृहस्थाश्रम सम्बन्धी उन गाथाओं को सुनो ।।४५।।

ऐश्वर्य होने पर देव, पितर और अतिथि के समान ही बन्धुओं की पूजा करके गृहस्थी ज्ञाति और गुरुओं का पूजन करे ।।४६।।

श्वा, श्वपच और पक्षियों के लिए, पृथ्वी में अन्न का वपन करे वैश्वदेव नामक यह बलि कर्म गृहस्थी को प्रतिदिन प्रातः और सायं करना चाहिए ।।४७।।

मांस, अन्न तथा शाक जो भी घर में उपलब्ध हो, उसको स्वयं (अकेले) नहीं खाना चाहिए और विधिवत् अन्न का वपन करना चाहिए ।।४८।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मदालसाख्यान में मदालसोपदेश वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

सप्तविंशोऽध्यायः

मदालसोवाच—

नित्यं नैमित्तिकं चैव नित्यनैमित्तिकं तथा। गृहस्थस्य त्रिधा कर्म तन्निशामय पुत्रक ॥१
पञ्चयज्ञाश्रितं नित्यं यदेतत् कथितं तव। नैमितिकं तथा चान्यत् पुत्र जन्म क्रियादिकम् ॥२
नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादि पण्डितैः।
तत्र नैमित्तिकं वक्ष्ये श्राद्धमाभ्युदयं तव ॥३
पुत्रजन्मनियत् कार्यं जातकर्मसमं नरैः। विवाहादौ च कर्त्तव्यं सर्वं सम्यक् क्रमोदितम् ॥४
पितरश्चात्र संपूज्याः ख्याता नान्दी मुखास्तु ये।
पिण्डाश्च दधिसम्मिश्रान् दद्याद् यवसमन्वितान् ॥५
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः। वैश्वदेव विहीनं तत् केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥६
युग्माश्चात्र द्विजाः कार्यास्ते पूज्याश्च प्रदक्षिणम्। एतं नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्ध्वदैहिकम् ॥७
मृताहनि तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं शृणुष्व तत्।
दैवहीनं तथैकार्घ्यं तथैवैकपवित्रकम् ॥८
आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौ करणवर्जितम्। प्रेतस्य पिण्डमेकं च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥९

मदालसा ने कहा—

नित्य क्रियाएँ, नैमित्तिक क्रियाएँ और नित्य नैमित्तिक क्रियाओं का करना ही हे पुत्र! गृहस्थ के कर्म हैं। हे पुत्र! तुम उन्हें सुनो, पञ्च यज्ञों के आश्रित रहने वाले कर्म नित्य कहे जाते हैं, जो ये मैंने तुम से कहे हैं। हे पुत्र! जो पुत्र-जन्म के अवसर पर होने वाली क्रियायें नैमित्तिक क्रियाएँ हैं। पर्व, श्राद्ध आदि के अवसर पर होने वाली क्रियाएँ नित्य नैमित्तिक क्रियाएँ हैं। वे सब बुद्धिमान् को भली प्रकार जाननी चाहियें ॥१-२॥

उनमें मैं तुमसे नैमित्तिक क्रिया अर्थात् अभ्युदय करने वाले श्राद्ध को कहूंगी—॥३॥

पुत्र जन्म से लेकर, जात कर्म संस्कार के साथ ही साथ मनुष्य के पुत्र का विवाह आदि सभी नियत कार्य सम्यक् प्रकार से क्रमशः करने चाहियें ॥४॥

'नान्दी मुख' नाम के प्रसिद्ध (विवाहादि कार्यों में) पितरों की पूजा करनी चाहिए तथा एकाग्र मन होकर यजमान को उत्तर दिशा की ओर मुख करके अथवा पूर्व दिशा की ओर मुख करके, यवों से युक्त दही मिश्रित पिण्ड देने चाहियें। कुछ लोग कहते हैं कि इसमें वैश्व देव बलि देने की आवश्यकता नहीं है ॥५-६॥

और ब्राह्मणों को पत्नी सहित यजमान की प्रदक्षिणापूर्वक पूजा करनी चाहिए। यही (वृद्धिश्राद्ध में) नैमित्तिक कहा गया है और अन्य एकोद्दिष्ट नाम के औध्वंदैहिक कर्म कहलाते हैं ॥७॥

जो मृत्यु के दिन किये जाते हैं, उन्हें सुनो।

उनमें से एक देवहीन और अन्य पवित्र करने वाली है ॥८॥

एवं आह्वान कर्म भी नहीं करना चाहिए तथा अग्नोकरण भी वर्जित है। उच्छिष्ट के निकट एक मात्र प्रेत को पिण्ड प्रदान करे ॥९॥

तिलोदकं चापसव्यं तन्नाम स्मरणान्वितम् । अक्षय्यममुकस्येति स्थाने विप्र विसर्जने ॥१०
अभिरम्यतामिति ब्रूयाद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्म ह । प्रतिमासं भवेदेतत् कार्यमावत्सरान्नरैः ॥११
अथ संवत्सरे पूर्णे यदा वा क्रियते नरैः । सपिण्डीकरणं कार्यं तस्यापि विधिरुच्यते ॥१२
तच्चापि दैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम् । नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥१३
अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान् । विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः ॥१४
तं कथ्यमानमेकाग्रो वदन्त्या मे निशामय । तिलगन्धोदकैर्युक्तं कुर्यात् पात्र चतुष्टयम् ॥१५
कुर्यात् पितृणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक । पात्रत्रये प्रेतपात्रमर्घ्यं चैव प्रसेचयेत् ।१६
ये सामाना इति जपन् पूर्ववच्छेषमाचरेत् । स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम् ॥१७
सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावेन विद्यते । प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रियाः ॥१८
मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम् । पुत्राभावे स पिण्डास्तु तदभावे सहोदकाः ॥१९

और उनका नाम स्मरण करके अपसव्य को तिलोदक देना चाहिए तथा वह ब्राह्मण उस समय इस प्रकार कहे—'मैं अमुक के उद्देश्य से यह तिलोदक प्रदान करता हूं, यह अक्षय हो एवं इसके द्वारा वह परम प्रीति का अनुभव करे' ॥१०॥

तब वे ब्राह्मण इस प्रकार कहें—हमने प्रसन्नता अनुभव की। इस प्रकार का आनुष्ठान मनुष्य को प्रति मास संवत्सर पर्यन्त करना चाहिए ॥११॥

इसके पश्चात् संवत्सर का समय पूरा होने पर, अथवा जब भी उसके करने की विधि है, उसी समय 'सपिण्डीकरण' करना चाहिए। उसकी विधि भी कही जा रही है ॥१२॥

यह (सपिण्डीकरण) भी दैव कार्य विहीन, अग्नौकरण विहीन तथा आवाहनहीन है। एक मात्र अर्घ्य और कुशल प्रदान की ही इसमें विधि प्रतिपादित है ॥१३॥

एवं अयुग्म (एक पांच तीन) ब्राह्मणों को उसमें भी अप-संख्यक (दक्षिण) दिशा में, जल सहित पिण्डादि पूर्वोक्त विधान से अर्पण कराना चाहिए। इसमें विशेष यही है कि प्रतिमास में अतिरिक्त कार्य करना चाहिए ॥१४॥

हे वत्स ! वह भी मैं तुमसे कहती हूं, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो . पहले तिल एवं सुगन्ध-जल युक्त पात्रों की स्थापना करे ॥१५॥

हे पुत्र ! उनमें तीन को पितरों के लिए और एक की प्रेत के लिए स्थापना करनी चाहिए। पितरों के तीन पात्रों में प्रेत पात्र और अर्घ्य का प्रसेचन करना चाहिए ॥१६॥

फिर 'ये समाना' इत्यादि मन्त्र को जपते हुए, पूर्ववत् शेष कार्य का सम्पादन करे। स्त्रियों के लिए भी इसी प्रकार की एकोद्दिष्ट विधि का विधान किया है ॥१७॥

किन्तु पुत्र के न होने से उसका 'सपिण्डीकरण' नहीं होता इस प्रकार मनुष्यों को चाहिए कि स्त्री को उद्देश्य करके प्रति संवत्सर में इस एकोद्दिष्ट कार्यों का सम्पादन करे ॥१८॥

मनुष्य के मरने के दिन जैसा कि मैंने यहाँ कहा है, वैसे विधि विधान के अनुसार पुत्र के अभाव में सपिण्ड और उसके अभाव में सहोदक क्रिया का सम्पादन करे ॥१९॥

मातुः सपिण्डा ये च स्युर्येऽन्ये मातुःस होदकाः । कुर्युरेवं विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतासुतः ॥२०
कुर्युं मातामहायैवं पुत्रिका तनयास्तथा । द्वयामुष्यायण संज्ञास्तु मातामह पितामहान् ॥२१
पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि । सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तॄणाममंत्रकम् ॥२२
तदभावे च नृपतिः कारयेत् स्वकुटुम्बिना । तज्जातीयैर्नरैः सम्यग्दाहाद्याः सकलाः क्रियाः ॥२३
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः । एतास्ते कथिता वत्स नित्यानैमित्तिकाः क्रियाः ॥२४
क्रियां श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकीं शृणु । दर्शस्तत्र निमित्तं वै कालश्चन्द्रक्षयात्मकः ॥
नित्यतां नियतः कालस्तस्य संसूचयत्यथ ॥२५

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासने गार्हस्थ्य कथने नैमित्तिकादि श्राद्धकल्पो नाम सप्तविंशोऽध्यायः ।

और जो माता के सपिण्ड हैं अथवा सहोदक हैं तथा जो माता का दौहित्र है, वह इस प्रकार कार्यानुष्ठान करे ॥२०॥

मातामह के उद्देश्य से कन्या का पुत्र इस प्रकार कार्य करे इसे 'द्वयामुष्यायण' कहते हैं। नैमित्तिक श्राद्ध द्वारा मातामह और पितामह इनकी विधान के अनुसार पूजा करनी चाहिए। इन सब के अभाव में स्त्रियां अपने पति का कार्य बिना मन्त्र प्रयोग के करे ॥२१-२१॥

उस (स्त्री) के अभाव में राजा के उसके कुटुम्बियों के द्वारा अथवा उसकी जाति के मनुष्यों के द्वारा उसकी दाहादि सभी क्रियाओं का भली प्रकार सम्पादन कराए ॥२३॥

क्योंकि राजा सभी वर्णों का बन्धु होता है। हे वत्स ! यह मैंने तुमसे नित्य और नैमित्तिक क्रियाओं का कथन किया ॥२४॥

अब श्राद्ध सम्बन्धी अन्य नित्य नैमित्तिक क्रियाओं को सुनो। चन्द्र का क्षयात्मक काल ही दर्श (अमावस्या) कहा गया है। (वह दर्श ही) इसका निमित्त स्वरूप है एवं इसकी नित्यता सूचित करता है । इसी कारण इसे नित्य नैमित्तिक क्रिया कहा जाता है ॥२५॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मदालसोपाख्यान में अलर्कानुशासन में गार्हस्थ्यकथन में नैमित्तिकादि श्राद्धकल्प नामक सत्ताइसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टाविंशोऽध्यायः

मदालसोवाच—

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः । सुतलेपभुजोयाति प्रलुप्तपितृपिण्डकः ॥१

मदालसा ने कहा—

जो पिता का भी प्रपितामह हैं, वह सपिण्डीकरण क्रिया से ऊपर है (उसका अधिकार इसमें नहीं है) लुप्त हुए पितृ पिण्ड वाला, वह सुत लेप का भोगी होता है ॥१॥

तेषामन्यश्चतुर्थो यः पुत्रलेपभुजान्नभुक् । सोऽपि सम्बन्धतो हीनमुपभौगं प्रपद्यते ॥२
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । पिण्डसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः ॥३
लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् । प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः ॥४
इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः साप्तपौरुषः । यजमानात् प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेप भुजस्तथा ॥५
ततोऽन्ये पूर्वजाः स्वर्गे ये चान्ये नरकौकसः । ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादि संस्थिताः ॥६
तान् सर्वान् यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन् यथाविधिः । समाप्यायते वत्स येन येन श्रृणुष्व तत् ॥७
अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि । तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः ॥८
यदम्बुस्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक । तेन ये तरुतां प्राप्तास्तेषां तृप्तिः प्रजायते ॥९
यास्तु गात्राम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले । ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ॥१०
उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु याश्चान्नकणिका भुवि । ताभिराप्यायनं तेषां ये तिर्यक्त्वं कुले गताः ॥११
ये वा दग्धाः कुले बालाः क्रियायोगा ह्यसंस्कृताः । विपन्नास्तेऽन्नविकिर सम्मार्जनजलाशिनः ॥१२
भुक्त्वा चाचामतां यच्च जलं यच्चांघ्रिशोधने । ब्राह्मणानां तथैवान्येतेन तृप्ति प्रयान्ति वै ॥१३

उनमें जो चतुर्थ स्थानीय एवं पुत्र लेप के भोगी हैं। वे भी सम्बन्धी हीन हैं, उन्हें भी केवल उपभोग प्राप्त होता है ॥२॥

इस प्रकार पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीनों पुरुष ही पिण्ड सम्बन्धी जानने चाहियें ॥३॥

पितामह के पितामह से लेकर तीन पुरुष ही लेप सम्बन्धी कहे गये हैं उनमें यजमान सातवां है ॥४॥

इस प्रकार यह मुनियों ने सात पुरुषों का सम्बन्ध कहा है। यजमान से लेकर ऊपर के पुरुष अनुलेप भोगी हैं ॥५॥

इसके अतिरिक्त जो पूर्वज स्वर्गवासी तथा अन्य नरकवासी हैं और जो तिर्यक् योनिगत तथा भूतादि में स्थित हैं— ॥६॥

उन सबका श्राद्ध करते हुए यजमान जिस विधि विधान से उनकी तृप्ति करे। हे वत्स ! उस उसका वर्णन करती हूं, सुनो ॥७॥

मनुष्य पृथ्वी पर जो अन्न बिखेरते हैं। उस (अन्न) से जो (पूर्वज) पिशाच योनि में पड़े हुए हैं, उनकी तृप्ति होती है ॥८॥

और हे पुत्र ! स्नान करने के पश्चात् वस्त्र के निचोड़ने से जो जल पृथ्वी पर गिरता है। उसमें जो (पूर्व पुरुष) वृक्ष योनि को प्राप्त हुए हैं, उन सबकी तृप्ति होती है ॥९॥

और (स्नान के पश्चात्) शरीर से जो जल की बूंदें पृथ्वी तल पर गिरती हैं। उन (बूंदों) के द्वारा उन (पूर्व पुरुषों) की तृप्ति होती हैं, जो देव योनि में उत्पन्न हुए हैं ॥१०॥

और पिण्ड के उठाने पर जो अन्न कणिकाएँ पृथ्वी पर गिरती हैं, उनसे उन (पूर्वजों) की तृप्ति होती हैं, जो पक्षी योनि में उत्पन्न हुए हैं ॥११॥

अथवा जो क्रिया के योग्य होकर भी असंस्कृत और बाल्यावस्था में जल (कर मर) गये हैं। वे विकीर्ण और बुहारे हुए (एकत्र किए) जल का भक्षण करते हैं ॥१२॥

इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों के भोजन करने के पश्चात् और आचमन के समय में तथा पैर धोते समय जो जल गिरता है। अन्यान्य उससे ही तृप्ति को प्राप्त करते हैं ॥१३॥

पिशाचत्वमनुप्राप्ताः क्रिमिकीटत्वमेव ये । एवं यो यजमानस्य यश्च तेषां द्विजन्मनाम् ।।१४
कश्चिज्जलान्न विक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा । तेन तेन कुले तत्र तत्तद् योन्यंतरं गताः ।।१५
प्रयान्त्याप्यायनं वत्स सम्यक्-छ्राद्धक्रियावताम् । अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः ।।१६
तृप्यन्ते तेन चाण्डालपुल्कसाद्यासु योनिषु । एवमाप्यायनं वत्स बहूनामपि बान्धवैः ।।१७
श्राद्धं कुर्वद्भिरन्नाम्बुशाकैरपि हि जायते । तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ।।१८
कुर्वीत कुर्वतः श्राद्धं कुले कश्चिन्नसीदति । तस्य कालानहं वक्ष्ये नित्यनैमित्तिकात्मकान् ।।१९
विधिना येन च नरैः क्रियते तन्निबोध मे । कार्यं श्राद्धममावस्यां मासि मास्युडुपक्षये ।।२०
तथाष्टकास्वप्यवश्यमिष्टकालान्निबोध मे । विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्येन्दुग्रहणेऽयने ।।२१
विषुवद् रविसंक्रान्तिव्यतिपातेषु पुत्रक । श्राद्धार्हद्रव्यसम्पत्तौ तथा दुःस्वप्न दर्शने ।।२२
जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया । विशिष्टः श्रोत्रियो योगी वेदविज्ज्येष्ठसामगः ।।२३
त्रिणाचिकेतः श्रुतवान् विहितव्रतकारकः । त्रिणाचिकेत स्त्रिमधु स्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ।।२४

और जो पिशाचत्व एवं क्रमि तथा कीटत्व को प्राप्त हो गये हैं । इस प्रकार जो यजमान का, उन ब्राह्मणों का ।।१ ।।

अथवा अन्य किसी का पवित्र अथवा अपवित्र जल और अन्न का विक्षेप (पतन) होता है । उस जल से वे योन्यन्तर को प्राप्त हुए वे (पूर्वज) ।।१५।।

अच्छी प्रकार श्राद्ध करने से सम्यक् प्रकार तृप्त होते हैं । अन्याय के द्वारा एकत्रित धन से जो मनुष्य श्राद्ध करते हैं । उससे चाण्डाल अथवा पुल्कस योनियों में उत्पन्न हुए (पूर्व पुरुष) तृप्त होते हैं ।।१६।।

हे वत्स ! इसी प्रकार से बान्धव गणों के द्वारा श्राद्धानुष्ठान करने से जो जल बिन्दु अन्न अथवा शाक आदि गिरते हैं । उससे उनके पितृ पुरुषों की तृप्ति होती है । इसलिए मनुष्य को भक्तिपूर्वक शाक द्वारा भी यथा विधि श्राद्ध करना चाहिये ।।१७-१८।।

श्राद्ध करते हुए उसके कुल में कोई दुःख नहीं होता है । हे वत्स ! अब मैं तुम से उन नित्य नैमित्तिक क्रियाओं के काल का कथन करूँगी ।।१९।।

एवं जिस विधि के अनुसार मनुष्यों के द्वारा अनुष्ठान किया जाए, उस विधि को अब मुझसे जानो । हे पुत्र ! प्रतिमाह जब चन्द्रमा का क्षय होता है । उसी अमावस्या में विधान के अनुसार श्राद्ध करना चाहिए ।।२०।।

इसके अतिरिक्त पौष मासादि की कृष्णाष्टमी में भी अवश्य ही श्राद्ध करना चाहिए । अब श्राद्ध का का अच्छा काल कहती हूं । विशिष्ट ब्राह्मण के प्राप्त होने पर सूर्य और चन्द्र ग्रहण में तथा अयन में ।।२१।।

विषुवत् समय में रवि—संक्रमण काल में श्राद्ध के योग्य वस्तु के प्राप्त होने पर, दुःस्वप्न देखने पर ।।२२।।

जन्म नक्षत्र में, ग्रह पीड़ा उपस्थित होने पर, इच्छापूर्वक श्राद्ध का भली प्रकार अनुष्ठान करे । जो मनुष्य विशिष्ट श्रोत्रिय योगी, वेदों को जानने वाला, ज्येष्ठ सामगान वाला, नचिकेता प्रणीत, तीन उपनिषदों को (सुनने वाला), वेद विहित व्रतों का अनुष्ठान करने वाला, नचिकेता प्रणीत त्रिमधु, त्रिसुपर्ण और षडंगवेत्ता है ।।२३-२४।।

दौहित्र-ऋत्विक-जामातास्वस्त्री यः श्वशुरस्तथा ।
पञ्चाग्निकर्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठोऽथ मातुलः ॥२५
मातापितृपराश्चैव शिष्यसम्बन्धिवान्धवाः । एते द्विजोत्तमाः श्राद्धे समस्ताः केतनक्षमाः ॥२६
अवकीर्णी तथा रोगीन्यूनाङ्ग स्त्वधिकाङ्गकः । पौनर्भवस्तथा काणः कुण्डो गोलोऽथ पुत्रक ॥२७
मित्रध्रुक् कुनखी कुण्ठी श्यावदन्तो निराकृतिः । अभिशस्तस्तथास्तेयः पिशुनः सोमविक्रयी ॥२८
कन्यादूषयिता वैद्यो गुरु–पित्रोस्तथोज्झकः । भृतकाध्यापको मित्रं परदुष्टापतिस्तथा ॥२९
वेदोज्झश्चाग्निसंत्यागी वृषलापत्य दूषितः । तथाऽन्ये च विकर्मस्था वर्ज्याः पैत्र्येषु वै द्विजाः ॥३०
निमन्त्रयेत पूर्वेद्युः पूर्वोक्तान् द्विजसत्तमान् । दैवेनियोगे पित्र्ये च तांस्तथैवोपकल्पयेत् ॥३१
तैश्च संयमभिर्भाव्यं यश्च श्राद्धं करिष्यति । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽनुगच्छति ॥३२
पितरस्तु तयोर्मासं तस्मिन् रेतसि शेरते । गत्वा च योषितं श्राद्धे यो भुंक्ते यस्तु गच्छति ॥३३
रेतोमूत्रकृताहारास्तं मासं पितरस्तयोः । तस्मात्तु प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम् ॥३४
अप्राप्तौ तद्दिने चापि वर्ज्या योषित् प्रसंगिनः ।
भिक्षार्थमागतान् वापि काले संयमिनो यतीन् ॥३५

जो पुरुष दौहित्र, ऋत्विक जामाता, भगिनी पुत्र और श्वसुर जो पञ्चाग्नि कर्मनिष्ठ और तपोनिष्ठ तथा मामा है ॥२५॥

तथा जो माता और पिता का सेवक है अथवा शिष्य सम्बन्धी अथवा बन्धु है। इस प्रकार के श्रेष्ठ ब्राह्मण ही सम्पूर्ण श्राद्धों में पात्र होने योग्य हैं ॥२६॥

तथा अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यादि रहित), रोगी, थोड़े अंगों वाला अथवा अधिक अंगों वाला, दो बार विवाहिता स्त्री से उत्पन्न तथा काणा, जारज पुत्र या कुपुत्र (पति के मरने के बाद अन्य पुरुष से उत्पन्न) ॥२७॥

बन्धु द्रोही, कुनखी, कुष्ठ रोगी, काले दांत वाला तथा निराकृति, पिता द्वारा शापित, स्तेय, पिशुन और शराब वेचने वाला, कन्या को दूषित करने वाला, वैद्य, गुरु और पिता का त्याग करने वाला, वेतन लेकर अध्यापन करने वाला, अमित्र, दूसरे पुरुष की दुष्टा स्त्री का स्वामी ॥२८-२९॥

वेद त्यागी, अग्नि त्यागी, शूद्र स्त्री का पति, दूषित तथा अन्य विकर्मों (वर्जित) में लगे हुए ब्राह्मणों का पितृ कर्म (श्राद्ध) में परित्याग करना चाहिए ॥३०॥

(श्राद्ध से पहले दिन पूर्वोक्त श्रेष्ठ ब्राह्मणों को निमन्त्रण देना चाहिए। देव कार्य में ही ब्राह्मण बुलाना चाहिए ॥३१॥

श्राद्ध का अनुष्ठान करने वाले को संयमपूर्वक रहना चाहिए। जो (मनुष्य) श्राद्ध करके अथवा खाकर मैथुन करता है ॥३२॥

उन दोनों के पितर एक माह तक उस वीर्य में शयन करते हैं। तथा जो संभोग करके श्राद्ध में आहार या गमन करता है ॥३३॥

उन दोनों के पितरगण उस मास में रेतस् और मूत्र-पान करके स्थित रहते हैं। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को पहले, पूर्व दिन निमन्त्रण देना चाहिए ॥३४॥

श्राद्ध के दिन श्रेष्ठ ब्राह्मण के न मिलने पर भी स्त्री का प्रसंग करने वाले ब्राह्मण को नहीं बुलाना चाहिए। यथा समय भिक्षा के लिए आये हुए व्यक्ति को अथवा संयमी यति को ॥३५॥

भोजयेत् प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः। यथैव शुक्लपक्षाद् वै पितृणाममसितः प्रियः ॥३६
तथापराह्णः पूर्वाह्णात् पितृणामतिरिच्यते । संपूज्य स्वागतेनैतानभ्युपेतान् गृहे द्विजान् ॥३७
पवित्रपाणिराचां तानासनेषूपवेशयेत् । पितृणामयुजः कामं युग्मान् दैवे द्विजोत्तमान् ॥३८
एकैकं वापि पितृणां च देवानां च स्वशक्तितः। तथा मातामहानां च तुल्यं वा वैश्वदैविकम् ॥३९

पृथक् तयोस्तथा चान्ये केचिदिच्छन्ति मानवाः ।
प्राङ्मुखान् देवसंकल्पान् पित्र्यान् कुर्यादुदङ्मुखान् ॥४०
तथा मातामहानाञ्च विधिरुक्तो मनीषिभिः ।
विष्टरार्थे कुशान् दत्त्वा संपूज्यार्घ्यादिना ततः ॥४१

पवित्रकाणि दत्त्वा वै तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च। कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां मन्त्रतो द्विजः ॥४२

यवाम्भोभिस्ततश्चार्घ्यं दत्त्वा वै वैश्वदैविकम् ।
गन्धमाल्यादि धूपं च दत्त्वा सम्यक सदीपकम् ॥४३

अपसव्यं पितृणां च सर्वमेवोपकल्पयेत्। दर्भांश्च द्विगुणान् दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च ॥४४

प्रणामादि द्वारा प्रसन्न करके, संयत चित्त से भोज कराना चाहिए। जिस प्रकार शुक्ल पक्ष की अपेक्षा पितरों को कृष्णपक्ष प्रिय है ॥३६॥

उसी प्रकार पूर्वाह्ण ही पितरों को प्रसन्नता प्रदान करने वाला है। घर आये हुए ब्राह्मणों की स्वागत पूर्वक भलि भाँति पूजा करके ॥३७॥

कुश हाथ में लिए हुए पवित्र हाथों से उन्हें आसनों पर बैठाना चाहिए, तथा पितृ अथवा देव कार्य में श्रेष्ठ युग्म ब्राह्मणों को ही नियोजित करना चाहिए ॥३८॥

अपनी शक्ति के अनुसार पितर और देवकर्म में एक-एक ब्राह्मण को बुलाना चाहिए। इसी के समान मातामह के पक्ष में भी वैश्व देव विधि कही गयी है ॥३९॥

कुछ लोग पृथक् प्रकार से उन दोनों की व्यवस्था की इच्छा करते हैं। पूर्वाभिमुख होकर देव संकल्पों को तथा उत्तराभिमुख होकर मातामह के पितृ संकल्पों को करना चाहिए ॥४०॥

मातामह के श्राद्ध की यही विधि विद्वानों ने बताई हैं। इसी समय आसन के लिए कुशाएँ देकर, उसके बाद ही अर्घ्य आदि से पूजा करनी चाहिए ॥४१॥

फिर पवित्रकादि अर्पित करके उन (अभ्यागत) से आज्ञा लेकर मंत्र पाठ सहित देवताओं का आवाहन करना चाहिए ॥४२॥

फिर यव युक्त जलों के द्वारा विश्वे देवों को अर्घ्य प्रदान करके गंध, धूप, दीप, माला आदि से सम्यक् पूजा करके ॥४३॥

पितरों के अपसव्य (दक्षिण दिशा में) सभी कार्यों का सम्पादन करना चाहिए। तदनन्तर दुगुनी दुर्भांकुर प्रदान करके उनसे आज्ञा प्राप्त कर ॥४४॥

मन्त्रपूर्वं पितृणां च कुर्यादावाहनं बुधः । अपसव्यं तथैवार्घ्यं यवार्थे च तथा तिलैः ।।४५
निष्पादयेन्महाभाग पितृणां प्रीणने रतः । अग्नौ कार्यमनुज्ञातः कुरुष्वेति ततो द्विजैः ।।४६
जुहुयाद् व्यञ्जनक्षार क्वर्ज्यमन्नं यथाविधि । अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहेति प्रथमाहुतिः ।।४७
सोमाय वै पितृमते स्वाहेत्यन्या तथा भवेत् । यमाय प्रेतपतये स्वाहेति तृतीयाहुतिः ।।४८
हुतावशिष्टं दद्याच्च भाजनेषु द्विजन्मनाम् । भाजनालम्भनं कृत्वा दत्त्वा चान्नं यथाविधि ।।४९

यथासुखं जुषध्वं भोरिति वाच्यमनिष्ठुरम् ।
मुञ्जीरंश्च ततस्तेऽपि तच्चित्ता मौनिनः सुखम् ।।५०

यद्यदिष्टतमं तेषां तत्तदन्नमसत्वरम् । अक्रुध्यंश्च नरो दद्यात् संस्तवेन प्रलोभयेत् ।।५१
रक्षोघ्नांश्च जपेन्मंत्रांस्तिलैश्च विकिरेन्महीम् । सिद्धार्थकैश्च रक्षार्थं श्राद्धं हि प्रचुरच्छलम् ।।५२

पृष्टैस्तृप्तैश्च तृप्ताः स्थ तृप्तः स्म इति वादिभिः ।
अनुज्ञातो नरस्त्वन्नं विकिरेद् भुवि सर्वतः ।।५३

तद्वदाचमनार्थाय दद्यादम्भः सकृत् सकृत् । तनुज्ञाञ्च ततः प्राप्य यतवाक्कायमानसः ।।५४

बुद्धिमान् पुरुष को मन्त्रपूर्वक पितरों का आह्वान करना चाहिए। उसी प्रकार उस मनुष्य को अपसव्य तथा यवार्थ तिल सहित अर्घ्य का प्रतिपादन करना चाहिए। हे महाभाग ! पितरों को प्रसन्न करने लगे हुए, (उसे) पुनः ब्राह्मणों का अग्नि कार्य करके उनसे आज्ञा प्राप्त करनी चाहिए ।।४५-४६।।

अग्नि में विधि पूर्वक व्यञ्जन और क्षार रहित अन्न की आहुति देनी चाहिए, "अग्नये कव्य वाहनाय स्वाहा" इस प्रकार कहकर प्रथम आहुति देनी चाहिए ।।४७।।

फिर 'सोमायवैं पितृमते स्वाहा' इस प्रकार उच्चारण पूर्वक दूसरी आहुति देनी चाहिए। पुनः 'यमाय प्रेत पतये स्वाहा' यह कहकर, तीसरी आहुति डालनी चाहिए ।।४८।।

होम के अन्त में बचे हुए, अन्न को ब्राह्मणों को पात्रों में दान देना चाहिए। भाजनों का आलम्भन करके तथा अन्न को यथाविधि प्रदान कर ।।४९।।

अरे, आप यथाविधि सुखपूर्वक इस अन्न का भोग कीजिए इस प्रकार मधुर वचन कहने चाहिए। तब उन ब्राह्मणों को मौन भाव से तत् गत चित्त होकर (सुखपूर्वक) भोजन करना चाहिए ।।५०।।

उनको जो-जो (अन्न) अत्यधिक इष्ट हो उस-उसको क्रोध रहित होकर धीरे-धीरे स्तवन सहित मनुष्यों को प्रलोभित करके वही प्रदान करना चाहिए ।।५१।।

रक्षोघ्न मन्त्रों का जप करे एवं सिद्धि अथवा रक्षा के लिए समस्त भूमि पर तिल बिखेरने चाहिए, क्योंकि श्राद्ध स्वतः ही प्रचुर छिद्र पूर्ण होता है ।।५२।।

"इसके बाद" आप पुष्टि तथा तृप्ति जनक अन्न का भोजन करके तृप्त हुए ! इस प्रकार पूछने पर ब्राह्मण को भी 'हम तृप्त हुए' इस प्रकार का कहना चाहिए, फिर आज्ञा लेकर मनुष्य को सम्पूर्ण भूमि तल पर अन्न बिखेरना चाहिए ।।५३।।

फिर उसी प्रकार आचमन के लिए, एक-एक बार जल देना चाहिए। फिर आज्ञा प्राप्त करके संयत वाणी, संयत मन और संयत शरीर से युक्त होकर ।।५४।।

सतिलेन ततोऽन्नेन पिण्डान् सर्वेण पुत्रक। पितॄनुद्दिश्य दर्भेषु दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥५५
पितृतीर्थेन तोयं च दद्यात्तेभ्यः समाहितः। पितॄन् संचिन्त्य तद् भक्त्या यजमानो नृपात्मज ॥५६
तद्वन्मातामहानां च दद्यात् पिण्डान् यथाविधि। गन्धमाल्यादिसंयुक्तान् दद्यादाचमनं ततः ॥५७

दत्वा च दक्षिणां शक्त्या सुस्वधाऽस्त्विति तान् वदेत्।
तैश्च तुष्टैस्तथेत्युक्त्वा वाचयेद् वैश्वदैविकान् ॥५८

प्रीयन्तामिति भद्रं वो विश्वेदेवा इतीरयेत्। तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तदाशिषः ॥५९
विसर्जयेत् प्रियाण्युक्त्वा प्रणिपत्य च भक्तितः। आद्वारमनुगच्छेच्च आगच्छेच्चानुमोदितः ॥६०

ततो नित्य-क्रियां कुर्याद् भोजयेच्च तथातिथीन्।
नित्यक्रियां पितॄणां च केचिदिच्छन्ति सत्तमा ॥६१

न पितॄणां तथैवान्ये शेषंपूर्ववदाचरेत्। पृथक् पाकेन चेत्यन्ये केचित्पूर्वं च पूर्ववत् ॥६२
ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः। एवं कुर्वीत धर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः ॥६३
यथा वा द्विजमुख्यानां परितोषोऽभिजायते। त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुतुपस्तिलाः ॥६४

हे पुत्र ! तिल सहित अन्न से पिण्डों का निर्माण करे और पितरों को लक्ष्य करके, कुशाओं के ऊपर रखकर, उच्छिष्ट को निकालकर, उन सबको अर्पित करना चाहिए ॥५५॥

हे राजपुत्र ! पुनः समाहित चित्त से पितरों का चिंतन करके भक्तिपूर्वक, यजमान पितृ तीर्थ योग में उन्हें जल दान करे ॥५६॥

उसी प्रकार मातामह का भी गंध, माला आदि से युक्त आचमन विधि पूर्वक पिण्ड दान करना चाहिए ॥५७।

तथा यथाशक्ति दक्षिणा देकर, उनको सुस्वधास्तु इस प्रकार कहना चाहिए। जब प्रसन्न हुए वे सब इस मन्त्र का पाठ करे, तो उनके द्वारा हे वैश्व देवो, ॥५८॥

आप प्रसन्न होइये तथा हे वैश्व देव ! आप हमारे लिए कल्याण प्रदान कीजिए। इस प्रकार वैश्व दैविक मंत्र का ब्राह्मणों के द्वारा पाठ कराना चाहिए पुनः उनसे आशीर्वाद की प्रार्थना करनी चाहिए ॥५९॥

तथा प्रिय वचन कहकर सबको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके विदा करना चाहिए और उनके पीछे-पीछे द्वार तक जाना चाहिए उनसे अनुमोदित होकर ही वापस आना चाहिए ॥६०॥

उसके बाद अपनी नित्य क्रियाओं को करके अतिथि को भोजन कराना चाहिए। कुछ विद्वान् पितरों की नित्य क्रियाओं की इच्छा करते हैं ॥६१॥

किन्तु अन्य कुछ का कहना है कि पृथक् पाक पूर्वक पितृ कार्य करने की आवश्यकता नहीं होती, अपितु शेष कर्म पूर्ववत् पूर्ण करने चाहिएँ ॥६२॥

तब वह व्यक्ति उस अन्न को सेवकों सहित भक्षण करे, इस प्रकार धर्मज्ञ पुरुष को समाहित चित्त से पितरों का श्राद्ध करना चाहिए ॥६३॥

अथवा जिस प्रकार ब्राह्मणों को संतोष हो, उसी प्रकार (समाहित चित्त से पितरों का श्राद्ध करना चाहिए) श्राद्ध में दौहित्र कुतुप और तीन-तीन वस्तुएँ पवित्र होनी आवश्यक हैं ॥६४॥

वर्ज्यानि चाहुर्विप्रैश्च कोपोऽध्वगमनं त्वरा । राजतं च तथा पात्रं शस्तं श्राद्धेषु पुत्रक ।।६५
रजतस्य तथा कार्यं दर्शनं दानमेव वा । राजते हि स्वधा-दुग्धा-पितृभिः श्रयते मही ।।६६
तस्मात् पितृणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्धनम् ।।६७

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पोनामाष्टाविंशोऽध्यायः ।

और क्रोध, मार्ग भ्रमण एवं त्वरा, इन तीनों को विद्वानों ने वर्जित कहा है । हे पुत्र ! श्राद्ध कार्य में रजत पात्र प्रशंसनीय है ।।६५।।

अतः श्राद्धों में रजत का ही दान और दर्शन करना चाहिए, क्योंकि ऐसा सुना जाता है कि पितरों द्वारा रजत पात्र में ही स्वधा रूपी दुग्ध का दोहन किया गया था ।।६६।।

इसीलिए रजत ही पितरों का अभीष्ट एवं प्रीति वर्द्धक होता है ।।६७।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में अलर्कानुशासन में श्राद्ध कल्प नामक अट्ठाइसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

मदालसोवाच—

अतः परं शृणुष्वेमं पुत्र भक्त्या यदाहृतम् । पितृणां प्रीतये यद्वद्वर्ज्यं वा प्रीतिकारकम् ।।१
मासंतृप्तिः पितृणां च हविष्यान्नेन जायते । मासद्वयं मत्स्यमांसैस्तृप्तिं यान्ति पितामहाः ।।२
त्रीन् मासान् हारिणं मांसं विज्ञेयं पितृतृप्तये । पुष्णातिचतुरो मासाञ्छशस्य पिशितं पितॄन् ।।३
शाकुनं पञ्च वैमासान् षण्मासान् सूकरामिषम् । छागलं सप्त वै मासानैणेयं चाष्टमासिकीम् ।।४
करोति तृप्तिं नव वै रुरोर्मांसं न संशयः । गवयस्यामिसं तृप्तिं करोति दशमासिकीम् ।।५
तथैकादशमासांस्तु औरभ्रं पितृतृप्तिदम् । संवत्सरं तथा गव्यं पयः पायसमेव वा ।।६

मदालसा ने कहा—

हे पुत्र ! इसके बाद तुम पितरों की प्रीति के लिए क्या वर्ज्य है, और क्या ग्राह्य है, जिसे भक्ति पूर्वक ग्रहण करना चाहिए, उसे सुनो ।।१।।

पितरों की हविष्यान्न से एक मास के लिए तृप्ति होती है । तथा मत्स्य के मांस से पितामह (पितर) दो मास के लिए तृप्त होते हैं ।।२।।

हरिण के मांस को तीन माह तक पितरों की तृप्ति के लिए जानना चाहिए तथा खरगोश का मांस पितरों को चार मास तक पुष्टि प्रदान करता है ।।३।।

पक्षी का मांस पाँच महीने तथा सूअर का मांस छः महीने एवं छाग के मांस से सात महीने और ऐण मृग के मांस से आठ महीने तक पितरों को तृप्ति प्राप्त होती है ।।४।।

तथा रुरु नामक मृग का मांस पितरों को नौ महीने तक तृप्त करता है एवं गवय का मांस दस मासिकी तृप्ति प्रदान करता है ।।५।।

उसी प्रकार औरभ्र का मांस पितरों को ग्यारह महीनों तक तृप्ति प्रदान करने वाला होता है तथा दुग्ध एवं खीर से उन्हें एक वर्ष तक तृप्ति होती है ।।६।।

वार्ध्रीणसामिषं लोहं कालशाकं तथा मधु । दौहित्रामिषमन्यच्च दत्तमात्मकुलोद्भवैः ॥७
अनन्तां वै प्रयच्छन्ति तृप्तिं गौरीसुतस्तथा । पितृणां नात्र संदेहो गयाश्राद्धं च पुत्रक ॥८
राजश्यामाकश्यामाकौ तद्वच्चैव प्रशातिका । नीवाराः पौष्कराश्चैव वन्यानि पितृतृप्तये ॥९
यवव्रीहि सगोधूम-तिल-मुद्गाः ससर्षपाः । प्रियंगवः कोद्रवाश्च निष्पावाश्चातिशोभनाः ॥१०
वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथाणवः । विप्रूषिका मसूराश्च श्राद्धकर्मणि गर्हिताः ॥११
लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुः पिण्डमूलकम् । करम्भं यानि चान्यानि हीनानि रसवर्णतः ॥१२
गांधारिकमलाम्बूनि लवणान्यूषराणि च । आरक्ता ये च निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च ॥१३
वर्जयेत् तानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते । यच्चाप्युत्कोचतः प्राप्तं पतिताद् यदुपार्जितम् ॥१४
अन्यायकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम् । दुर्गंधिफेनिलं चाम्बु तथैवाल्पतरोदकम् ॥१५
न लभेद् यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् । यन्न सर्वापचोत्सृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम् ॥१६
तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्मणि । मार्गमाविकमौष्ट्रं च सर्वमेकशफं च यत् ॥१७
माहिषं चामरं चैव धेन्वागोश्चाप्यनिर्दशम् । पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम् ॥१८

तथा वार्ध्रीणस के मांस से लौह, काल, शाक, मधु तथा दौहित्र के दिये मांस से अथवा अपने वंश में उत्पन्न हुए, जिस किसी पुरुष द्वारा दिये हुए मांस से ॥७॥

तथा गौरी सुत और गया श्राद्ध आदि ये सब हे पुत्र ! पितरों को अनन्त काल तक तृप्ति प्रदान करते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥८॥

राज श्यामक और उसी के समान पसाई के चावल, नीवार पौष्कल इत्यादि वनों के अन्न भी पितरों की तृप्ति के लिए हैं ॥९॥

तथा यव, व्रीहि, गोधूम, तिल, मूंग, सरसों, प्रियगुदी, कोविदार तथा निष्पाव इत्यादि भी पितृ तृप्ति के लिए अति सुन्दर अन्न हैं ॥१०॥

तथा श्राद्ध कार्य में मकई, लोबिया, त्याज्य है एवं विप्रूषी मसूर ये सब अन्न श्राद्ध कार्य में निन्दनीय हैं ॥११॥

लहसुन, गाजर, प्याज, मूली, करभ तथा अन्य जो वस्तुयें वर्ण एवं रस रहित हैं ॥१२॥

गांधारिका, अलाबु, खारा नमक, लाल गोंद और प्रत्यक्ष लवण आदि ये सब पदार्थ ॥१३॥

श्राद्ध में वर्जित हैं तथा जो वाणी के द्वारा कहने से प्रशंसनीय न हो एवं उत्कोच (घूस) इत्यादि से या पतित से जो धन प्राप्त हो ॥१४॥

तथा अन्याय से कन्या के शुल्क से प्राप्त हुआ धन श्राद्ध कर्म में लगाना गर्हित है एवं दुर्गन्ध युक्त, फेन युक्त तथा अत्यल्प जल भी ॥१५॥

और जहाँ जिस जल से गाय भी तृप्ति प्राप्त न करे, रात्रि में रक्खा हुआ वासी जल, अपेय अथवा अभोज्यों की प्याऊ से लाया हुआ जल ॥१६॥

हे तात ! इसी प्रकार के सभी जल पितरों के कार्य श्राद्ध में त्याज्य हैं। मृग, बकरी, ऊँट, तथा एक खुर वाले। जितने पशु हैं, उन सबका ॥१७॥

तथा भैंस का चमर गाय का, और ब्याने के बाद दस दिनों से पूर्व की गाय का एवं मेरे पितृ कार्य के लिए (दूध) प्रदान करो, यह कहकर जो (दूध) लाया गया हो ॥१८॥

वर्जनीयं सदा सद्भिस्तत्पय: श्राद्धकर्मणि। वर्ज्या जन्तुमती रूक्षा क्षिति: प्लुष्टा तथाग्निना ।।१९
अनिष्टा दुष्टशब्दोग्रा दुर्गंधा श्राद्धकर्मणि । कुलापमानका: श्राद्धे व्यायुज्य कुलहिंसका: ।।२०
कुलाधमो ब्रह्महा च तथा वैं रोगिणोंत्यजा: । नग्ना: पातकिनश्चैव घ्नंति दृष्ट्या पितृक्रियाम् ।।२१
अपुमानपविद्धश्च कुक्कुटो ग्राम सूकर: । श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि यातुधानाश्च दर्शनात् ।।२२
तस्मात् सुसंवृतो दद्यात् तिलैश्च विकिरेन् महीम् । एवं रक्षा भवेच्छ्राद्धे कृता ताताेभयोरपि ।।२३
शावसूतकिसंस्पृटं दीर्घरोगिभिरेव च । पतितैर्मलिनैश्चैव पुष्णाति न पितामहान् ।।२४
वर्गनीयं तथा श्राद्धे सदोदक्यादिदर्शनम् । चण्डशौण्डसमाभाषा यजमानेन चादरात् ।।२५
केशकीटावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम् । पूतिपर्युषितं चैव वार्ताक्य भिषवांस्तथा ।।२६
वर्जनीया हि वैं श्राद्धे तथा वस्त्रानलाहतम् । श्रद्धया परया दत्तं पितृणां नाम गोत्रत: ।।२७
यदाहारश्च ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् । तस्माच्छ्रद्धायुतं पात्रे यच्छ त्वं पितृकर्मणि ।।२८
तथा तच्चैव दातव्यं पितृणां तृप्तिमिच्छता । योगिनश्च सदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता ।।२९

सज्जनों द्वारा सदैव ये सब प्रकार के दूध श्राद्ध कर्म में त्याग देने चाहियें जो पृथ्वी (स्थान) प्राणियों से युक्त, सूखी एवं अग्नि से जला हुआ ।।१९।।

एवं दुर्गन्ध युक्त हो, इस प्रकार के अनिष्ट स्थानों की मिट्टी का तथा दुष्ट एवं उग्र शब्दों के कथन का श्रद्ध कर्म में परित्याग करना चाहिए। श्राद्ध कर्म में कुल का अपमान करने वाले और कुल के हिंसकों को युक्त नहीं करना चाहिए ।।२०।।

और कुलाधम ब्रह्म हत्या करने वाला, रोगी, नीच, नग्न तथा पात की ये सब दृष्टिपात के द्वारा ही श्राद्ध कर्म को नष्ट कर देते हैं ।।२२।।

नपुंसक, गिद्ध, मुरगा, ग्राम सूअर, कुत्ता, राक्षस इन सबके देखने से ही श्राद्ध कर्म नष्ट हो जाते हैं ।।२२।।

इसीलिए गोपन भाव से पृथ्वी में तिल, विकीर्ण करने चाहियें। हे वत्स ! इस प्रकार अनुष्ठान करने से श्राद्ध में दोनों की रक्षा होती है ।।२३।।

जिसके घर में कोई मृत्यु हुई हो अथवा कोई उत्पन्न हुआ हो अथवा दीर्घ काल से रोगी हो तथा पतित और मलिन हो इस प्रकार के पुरुषों के द्वारा स्पर्श किया हुआ, श्राद्ध कर्म भी पितरों को पुष्टिदायक नहीं होता ।।२४।।

तथा श्राद्ध कर्म में रजस्वला का दर्शन, मुण्डित यजमान एवं सुरासक्त पुरुष को भी आदरपूर्वक आने से रोकना चाहिए ।।२५।।

बाल अथवा कीड़े पड़ा हुआ और कुत्ते द्वारा देखा हुआ, पूतिगन्ध युक्त एवं वासी, वस्त्र की पवन से युक्त द्रव्य पदार्थों का श्राद्ध में परित्याग करना चाहिए। परम श्रद्धा सहित पितरों के नाम और गोत्रोच्चारण पूर्वक जो कुछ दिया जाता है ।।२६-२७।।

और जो आहार सम्पन्न किया जाता है, वह सब कुछ उनका भोज्य बन जाता है। इसलिए तुम पितृ कर्मों में श्रद्धायुक्त होकर सत्पात्रों को ही दान दो ।।२८।।

पितरों की तृप्ति को चाहने वाले व्यक्ति को उसी प्रकार ये सब वस्तुएँ प्रदान करनी चाहियें। विद्वान् पुरुष को सदैव श्राद्ध कर्म में योगियों को भोजन कराना चाहिए ।।२९।।

योगाधारा हि पितरस्तस्मात् तान् भोजयेत् सदा ।
ब्राह्मणानां सहस्रस्य योगी त्वग्रासनी यदि ।।३०
यजमानं च भोक्तृंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् । पितृगाथास्तथैवात्र श्रूयन्ते ब्रह्मवादिभिः ।।३१
या गीताः पितृभिः पूर्वमैलस्यासन् महीपतेः । कदा नः सन्ततावग्र्यः कस्यचिद् भविता सुतः ।।३२
यो योगिभुक्तशेषान्नैर्भुवि पिण्डं प्रदास्यति । गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं महाहविः ।।३३
कालशाकं तिलाढ्यं वा कृसरं मासतृप्तये । वैश्वदेव्यं च सौम्यं च खड्गमांसं परं हविः ।।३४
विषाणवर्ज्यखड्गाप्त्या आसूर्यञ्चाश्नुवामहे । तथा वर्षं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ।।३५
मधुसर्पिः समायुक्तं पायसं दक्षिणायने । तस्मात् संपूजयेद् भक्त्या स्वपितॄन् यतमानसः ।।
कामानभीप्सन् सकलान् पापाच्चात्मविमोचनम् ।।३६
वसून् रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः । प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः ।।३७
आयुः प्रजा धनं विद्यां स्वर्गमोक्षं सुखानि च । प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ।।३८
एतत् ते कथितं पुत्र श्राद्धकर्मयथोदितम् । काम्यानां श्रूयतां वत्स श्राद्धानां तिथिकीर्त्तनम् ।।३९

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पोनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

क्योंकि पितर गण ही योग के आधार हैं, इसलिए उन्हीं को सदैव भोजन कराना चाहिए । यदि (श्राद्धकर्त्ता) सहस्रों ब्राह्मणों की अपेक्षा एकमात्र योगी को सर्व प्रथम भोजन कराता है तो ।।३०।।

जिस प्रकार नौका सभी को जल से पार उतार देती है, उसी प्रकार उससे भी) यजमान और भोक्ता दोनों का उद्धार हो जाता है । उसी प्रकार इस सम्बन्ध में ब्रह्मवादियों के द्वारा (कीर्तित) पितृगाथा सुनी जाती है ।।३१।।

हे महीपते ! पूर्व काल में जो गाथा पितरों ने ऐल के प्रति गायी थी, उन्होंने इस प्रकार कहा था कि—'हमारी आगे आने वाली संतति में ऐसा पुत्र कब उत्पन्न होगा' । (ऐसा कहने पर उन्होंने कहा) ।।३२।।

जो योगियों के भोजन से बचे हुए अन्न द्वारा हमें पृथ्वी पर पिण्ड दान करेगा अथवा गया धाम में उत्कृष्ट हवि रूप गैंडे के मांस से ।।३३।।

काल शाक, तिल युक्त खिचड़ी आदि वस्तुओं से एक मास की तृप्ति के लिए पिण्ड दान करेगा, क्योंकि वैश्व देव और सौम्य बलि के विषय में, गैंडे का मांस ही परम हवि कहा गया है ।।३४।।

सींग रहित गैंडे का मांस प्राप्त होने पर सूर्य की स्थिति तक हम उसका भक्षण करते हैं तथा मघा नक्षत्र की त्रयोदशी तिथि को विधि विधान के अनुसार श्राद्ध । ३५।।

और दक्षिणायण में मधु तथा घृत युक्त खीर के द्वारा भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त होकर, अपने पितरों की पूजा करने से मनोवांछित सभी कामनाओं की पूर्ति होती तथा आत्मा के समस्त पाप दूर हो जाते हैं, इसलिये पितरों की भक्तिपूर्वक एकाग्रचित्त से पूजा करनी चाहिए ।।३६।।

श्राद्धों में पितरों को तृप्त करने से वसु, रूद्र, आदित्य, ग्रह, नक्षत्र और तारकगण सब ही मनुष्यों से प्रसन्न होते हैं ।।३७।।

आयु, प्रजा (संतति), धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष तथा राज्य, श्रद्धा-तर्पित पितर (ही) देते हैं ।।३८।।

हे पुत्र ! मैंने यह तुमसे श्राद्ध कर्म का विधिपूर्वक वर्णन किया, अब तुम हे वत्स ! काम्य श्राद्ध की तिथि का कीर्तन सुनो ।।३९।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में अलर्कानुशासन में श्राद्धकल्प नामक उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रिंशोऽध्यायः

मदालसोवाच —

प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीयाद्द्विपदप्रदा । वरार्थिनी तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी ।।१

श्रियं प्राप्नोति पञ्चम्यां षष्ठ्यां पूज्यो भवेन्नरः ।
राजाधिपत्यं सप्तम्यामष्टम्यां वृद्धिमुत्तमाम् ।।२

स्त्रियो नवम्यां प्राप्नोति दशम्यां पूर्णकामताम्। वेदांस्तथाप्नुयात् सर्वानेकादश्यां क्रियापरः ।।३
द्वादश्यां जयलाभं च प्राप्नोति पितृपूजकः । प्रजां बुद्धिं पशून् वृद्धिं स्वातन्त्र्यं पुष्टिमुत्तमाम् ।।४
दीर्घमायुस्तथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीम् । अवाप्नोति न संदेहो श्राद्धं श्रद्धापरो नरः ।।५
यथासम्भावितान्नेन श्रद्धासम्पत् समन्वितः। विकृत्या पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वाहताः ।।६
तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता । श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यां यत्नेन पुरुषः शुचिः ।।७
सर्वान् कामानवाप्नोति स्वर्गं चानत्यमश्नुते। कृत्तिकासु पितृनर्चन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः ।।८
अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्ये तेजस्वितां लभेत्। शौर्यमार्द्रासु चाप्नोति क्षेत्रादि च पुनर्वसौ ।।९

पुष्टिं पुष्ये सदाऽभ्यर्च्य आश्लेषासु वरान् सुतान् ।
मघासु स्वजन श्रेष्ठ्यं सौभाग्यं फाल्गुनीषु च ।।१०

मदालसा ने कहा —

प्रतिपदा तिथि (पर किये गये श्राद्ध) से धन लाभ, द्वितीया से संतान प्राप्ति, तृतीया वर प्रदान करने वाली तथा चतुर्थी शत्रुओं को नष्ट करने वाली है ।।१।।

पंचमी तिथि में श्राद्ध से मनुष्य लक्ष्मी को प्राप्त करता है। षष्ठी तिथि में श्राद्ध करने से मनुष्य समाज में पूजित होता है। सप्तमी में राज्याधिकार और अष्टमी में उत्तम वृद्धि को प्राप्त करता है ।।२।।

नवमी तिथि में (श्राद्ध करने से) स्त्री प्राप्त करता है और दशमी में सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा एकादशी में श्राद्धकर्म करने पर मनुष्य सभी वेद विद्या को सहज ही प्राप्त कर लेता है ।।३।।

द्वादशी में पितरों की पूजा करने वाला मनुष्य विजय लाभ, एवं प्रजा (संतति), बुद्धि एवं पशुओं की वृद्धि को तथा उत्तम स्वतन्त्रता एवं पुष्टि को प्राप्त करता है ।।४।।

त्रयोदशी तिथि पर श्राद्ध करते हुए मनुष्य दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त करता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। इसलिए व्यक्ति को त्रयोदशी को श्रद्धायुक्त होकर अवश्य श्राद्ध करना चाहिए ।।५।।

जिसके पितर विकृति से (रोगदि के द्वारा) अथवा शस्त्र के द्वारा मारे गये हैं, यथा सम्भव अन्न तथा श्रद्धारूपी सम्पत्ति से युक्त हुए उनकी तृप्ति के इच्छुक, उसको चतुर्दशी तिथि में पितरों का श्राद्धकर्म करना चाहिए। अमावस्या तिथि पर यत्नपूर्वक श्राद्ध करने से पवित्र, मनुष्य अपनी सभी कामनाओं को प्राप्त करता है तथा अन्त में स्वर्ग लाभ करता है। कृत्तिका नक्षत्र में भी पितरों की पूजा करने से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है ।।६–८।।

पुत्र प्राप्ति का इच्छुक व्यक्ति रोहिणी नक्षत्र में श्राद्ध करने से सौम्य एवं तेजस्वी पुत्रों को प्राप्त करता है। मृगशिरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से मनुष्य तेजस्विता को प्राप्त करता है। आर्द्रा में शौर्य को तथा पुनर्वसु नक्षत्र में श्राद्ध करने से पुष्टि, आश्लेषा में श्रेष्ठ पुत्र, मघा में स्वजनों में प्राधान्य और पूर्वा फाल्गुनी में सौभाग्य लाभ होता है ।।९–१०।।

प्रदानशीलो भवति सापत्यश्चोत्तरासु वै । प्रयाति श्रेष्ठतां सत्सु हस्ते श्राद्धपदो नरः ।।११
रूपयुक्तस्तु चित्रासु तथापत्यान्यवाप्नुयात् । वाणिज्यलाभदा स्वातिर्विशाखा पुत्रकामदा ।।१२
कुर्वन्तश्चानुराधासु लभन्ते चक्रवर्तिताम् । आधिपत्यं च ज्येष्ठासु मूले चारोग्यमुत्तमम् ।।१३
आषाढासु यशः प्राप्तिरुत्तरासु विशोकताम् । श्रवणेन शुभाँल्लोकान् धनिष्ठासु धनं महत् ।।१४
वेदविद्या चाभिजिति भिषक्सिद्धिं च वारुणे । अजाविकं प्रोष्ठपदे विद्यागावस्तथोत्तरे ।।१५
रेवतीषु तथा कुप्यमाश्विनीषु तुरङ्गमान् । श्राद्धं कुर्वंस्तथाप्नोति भरणीष्वायुरुत्तमम् ।।१६
तस्मात् काम्यानि कुर्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित् ।।१७

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासने श्राद्धफलवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ।

तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से व्यक्ति दानशील एवं पुत्रवान् होता है। हस्त नक्षत्र में श्राद्ध का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य सज्जनों में श्रेष्ठता को प्राप्त करता है ।।११।।

चित्रा नक्षत्र में वह रूपवान् होता है तथा सन्तान लाभ करता है। स्वाति में वाणिज्य लाभ तथा विशाखा में (पितृ पूजा से) पुत्र प्राप्ति एवं कामना की प्राप्ति होती है ।।१२।।

अनुराधा नक्षत्र में श्राद्ध करते हुए, मनुष्य चक्रवर्तित्व को प्राप्त करता है। ज्येष्ठा में अधिकार को और मूल में आरोग्य को प्राप्त करता है ।।१३।।

पूर्वा आषाढ़ा में सुयश, उत्तराषाढ़ा में शोक राहित्य, श्रवण में शुभ लोकों की तथा धनिष्ठा में महान् धन की प्राप्ति होती है ।।१४।।

अभिजित् नक्षत्र में श्राद्ध करने से (मनुष्य) समस्त वेद विद्या को प्राप्त कर लेता है तथा शतभिषा में वैद्यक शास्त्र में सिद्धि होती है तथा पूर्वा भाद्रपदा में भेड़, बकरी लाभ एवं उत्तर भाद्रपद में विद्या और गौ का लाभ होता है ।।१५।।

रेवती में स्वर्ण की, अश्विनी में अश्वों की तथा भरणी नक्षत्र में श्राद्ध करने वाले को उत्तम आयु की प्राप्ति होती है ।।१६।।

इसलिए तत्त्वज्ञ पुरुष को इन सब नक्षत्रों में काम्य (कामनाओं को पूर्ण करने वाले) श्राद्धकर्म का अनुष्ठान करना चाहिए ।।१७।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में मदालसाख्यान में अलर्काख्यान में श्राद्धफलवर्णन नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकत्रिंशोऽध्यायः

मदालसोवाच—

एवं पुत्र गृहस्थेन देवताः पितरस्तथा । संपूज्यहव्यंकव्याभ्यामन्नेनातिथि बान्धवाः ।।१
भूतानि भृत्या विकलाः पशु-पक्षि-पिपीलिकाः । भिक्षवो याचमानास्तु ये चान्ये वसता गृहे ।।२
सदाचारवता तात साधुना गृहमेधिना । पापं भुङ्क्ते समुल्लंघ्य नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ।।३

अलर्क उवाच—

कथितं मे त्वया मातर्नित्यनैमित्तिकं च यत् । नित्यनैमित्तिकं चैव त्रिविधं कर्मपौरुषम् ।।४
सदाचारमहं श्रोतुमिच्छामि कुलनंदिनि । यं कुर्वन् सुखमाप्नोति परत्रेह च मानवः ।।५

मदालसोवाच—

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् । न ह्याचारविहीनस्य सुखमत्र परत्र वा ।।६
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये । भवन्ति यः सदाचारं समुल्लंघ्य प्रवर्त्तते ।।७
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विंदते महत् । कार्यो यत्नः सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम् ।।८
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य पुत्रक । समाहितमनाः श्रुत्वा तथैव परिपालय ।।९

मदालसा ने कहा—

हे पुत्र ! इस प्रकार गृहस्थ को, हव्य, कव्य और अन्नादि से अतिथि देवताओं, पितरों एवं बन्धुओं की पूजा करके ।।१।।

भूत, सेवक और व्याकुल (अपंगादि) पशु, पक्षी और चींटियों, भिक्षुक, याचक अथवा अन्य किसी को भी घर पर रहते हुए ।।२।।

सदाचार परायण होकर, हे तात ! सज्जन गृहस्थ द्वारा यदि नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं का उल्लंघन किया जाता है तो (उसे) पाप का भागी होना पड़ता है ।।३।।

अलर्क ने कहा—

हे माता ! मुझसे तुमने नित्य, नैमित्तिक क्रियाओं को और पुरुषोचित नित्य नैमित्तिक त्रिविध कर्मों को तो कहा है ।।४।।

अब जिसको करते हुए मनुष्य, इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त करता है, हे कुल नंदिनी ! मैं उस सदाचार को सुनने का इच्छुक हूं ।।५।।

मदालसा ने कहा—

गृहस्थ (व्यक्ति) को सदैव ही आचार का पालन करना चाहिये, आचारविहीन को इस लोक और परलोक में (कहीं भी) सुख प्राप्त नहीं होता ।।६।।

उस पुरुष के यज्ञ, दान और तप भी कल्याण देने वाले नहीं होते हैं, जो सदाचरण का उल्लंघन करके प्रवृत्त होता है ।।७।।

दुराचारी व्यक्ति इस संसार में बडी आयु को प्राप्त नहीं कर सकता । इसलिए सदाचरण करने के लिए यत्न करना चाहिए । (क्योंकि) सदाचार बुरे लक्षण को दूर कर देता है ।।८।।

हे पुत्र ! अब मैं उस सदाचार के रूप को कहती हूं (तुम) स्थिर चित्त से सुनकर उसी प्रकार उसका पालन करो ।।९।।

त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्त्तव्यो गृहमेधिना । तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च ॥१०
पादेनार्थस्य पारत्र्यं कुर्यात् संचयमात्मवान् । अर्धेन चात्मभरणं नित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥११
पादं चात्मार्थमायस्य मूलभूतं विवर्द्धयेत् । एवमाचारतः पुत्र अर्थः साफल्यमृच्छति ॥१२
तद्वत् पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता । परत्रार्थं तथा चान्यः काम्यो त्रैव फलप्रदः ॥१३
प्रत्यवाय भयात् कामस्तथान्यश्चाविरोधवान् । द्विधा कामो निगदितस्त्रिवर्गस्याविरोधतः ॥१४
परस्परानुबन्धांश्च सर्वानेतान् विचिन्तयेत् । विपरीतानुबन्धांश्च धर्मादींस्ताञ्छृणुष्व मे ॥१५
धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो नात्मार्थबाधकः । उभाभ्यां च द्विधा कामस्तेन तौ च द्विधा पुनः ॥१६
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्माथौ चानुचिंतयेत् । कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥१७
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः । समुत्थाय तथाचम्य प्राङ्मुखो नियतः शुचिः ॥१८
पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् । उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥१९

गृहस्थी को त्रिवर्ग साधन में प्रयत्न करना चाहिए । उसकी सिद्धि होने पर गृहस्थाचरण करने वाले व्यक्ति की इस लोक और परलोक (दोनों, की सिद्धि हो जाती है ॥१०॥

आत्मवान् को अर्जित धन का चतुर्थ भाग पारलौकिक धर्म के लिए निर्धारित करना चाहिए और आधे से नित्य नैमित्तिक क्रियाओं को करते हुए अपना पालन-पोषण करना चाहिए ॥११॥

और शेष चौथे भाग की आत्मा के लिए मूलधन (भविष्यनिधि, के रूप में वृद्धि करनी चाहिए । हे पुत्र ! इस प्रकार आचरण करने से ही मनुष्य अर्थ की सफलता को प्राप्त करता है ॥१२॥

(धन प्राप्त करने में जिस प्रकार का आचरण किया जाता है) उसके समान दत्त चित्त होकर बुद्धिमान् व्यक्ति को पापों को दूर करने के लिए धार्मिक कृत्य करने चाहिएँ । (कर्मों के दो प्रकार होते हैं—काम्य और निष्काम्य) उनमें से काम्य इसी लोक में और निष्काम परलोक में फल प्रदान करने वाला होता है ॥१३॥

विघ्नों के भय से काम्य कर्मों और अन्य अविरोधी कर्मों को करना चाहिए। इनमें द्वितीय त्रिवर्ग का अविरोधी काम्य कर्म दो प्रकार का कहा गया है ॥१४॥

इन सब (कर्मों) को परस्पर अनुबन्धित और बन्धन रहित भी मानना चाहिये । अब तुम विपरीत बन्धनों वाले धर्मादि को मुझसे सुनो ॥१५॥

धर्म और धर्म के अनुबंध के लिए वह धर्म आत्मा का बाधक नहीं है । जिस प्रकार काम दो प्रकार का होता है, उसी प्रकार उन दोनों (धर्म और धर्मानुबन्धार्थ धर्म) को भी पुनः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है ॥१६॥

गृहस्थी को ब्रह्म मुहूर्त्त में उठकर, धर्म, अर्थ, कायक्लेश, उनके मूल (कारण) और वेदों के तत्त्व को जानने के लिए चिन्तन करना चाहिए ॥१७॥

फिर शय्या से उठकर दैनिक आवश्यक कर्म शौचादि से निवृत्त होकर, एकाग्रचित्त से आचमन करके नियत और पवित्र भाव से पूर्वाभिमुख होकर बैठे ॥१८॥

इस प्रकार नक्षत्रों के पूर्व ही संध्या करे । इसी प्रकार सायंकालीन संध्या भी सूर्य के स्थित रहते हुए ही करे । आपत्तिकाल को छोड़कर उसी प्रकार प्रतिदिन उपासना करनी चाहिए (जिस प्रकार अन्य दिनों में की जाती रही है' ॥१९॥

असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च पुत्रक ॥२०
सायं प्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् । नोदयास्तमये बिम्बमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२१
केशप्रसाधनादर्श-दर्शनं दन्तधावनम् । पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च तर्पणम् ॥२२
ग्रामावसथ तीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि । न मूत्रमनुतिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे ॥२३
नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्न पश्येदात्मनः शकृत् । उदक्या दर्शनं स्पर्शो वर्ज्यं संभाषणं तथा ॥२४
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा निष्ठीवं न समाचारेत् । नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रं केश-भस्म-कपालिकाः ॥२५
तुषांगारास्थिचूर्णानि रजोवस्त्राणि कानिचित् ॥
नाधितिष्ष्ठेत् तथा प्राज्ञः पथि पत्राणि वा भुवि ॥२६
पितृ-देव-मनुष्याणां भूतानां च तथार्चनम् । कृत्वा विभवतः पश्चाद् गृहस्थो भोक्तुमर्हति ॥२७
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वाचांतो वाग्यतः शुचिः ।
भुञ्जीतान्नं च तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः ॥२८
उपघातमृते दोषं नान्यस्योदीरयेद् बुधः । प्रत्यक्षं लवणं वर्ज्यमन्नमत्युष्णमेव च ॥२९
न गच्छन्नैव तिष्ठन् वै विण्मूत्रोत्सर्गमाचरन् । कुर्वीत नैव चाचामेन् न किञ्चिदपि भक्षयेत् ॥३०

हे पुत्र ! उसको असत्य वचन, अनुचित प्रलाप, कठोर वचन, असत्य शास्त्र, असत्वाद और असत् सेवा को छोड़ देना चाहिए ॥२०॥

और संयत मन से प्रातः और सायंकाल दोनों समय हवन करना चाहिए। उदय और अस्त होते हुए सूर्य के बिम्ब को नहीं देखना चाहिए ॥२१॥

केश प्रसाधन, दर्पण दर्शन, दंत धावन, और देव तर्पण (इत्यादि कर्मों को) केवल पूर्वाह्ण में ही करना चाहिए ॥२२॥

ग्राम, निवास, तीर्थ-क्षेत्र, मार्ग, जुते हुए खेत और गोओं के बाड़े में मूत्र नहीं करना चाहिये ॥२३॥

नग्न परस्त्री का दर्शन न करें और न ही अपने मल को देखना चाहिए तथा ऋतुमति स्त्री का दर्शन, स्पर्श और संभाषण भी वर्ज्य हैं ॥२४॥

और न तो जल में मल, मूत्र करना चाहिए और न थूकना चाहिए। तथा न ही केश, भस्म और कपाल तथा अंगार, अस्थि, चूर्ण एवं किसी रजस्वला स्त्री के वस्त्र पर शौच और मूत्र के लिए नहीं बैठना चाहिये ॥२५॥

और न ही किसी बुद्धिमान् पुरुष को मार्ग अथवा पत्तों पर ही बैठना चाहिए ॥२६॥

अपने सामर्थ्य (धन) के अनुसार, पितृ, देव, मनुष्य और अन्य प्राणियों की पूजा करके ही गृहस्थ व्यक्ति को बाद में भोजन करना चाहिये ॥२७॥

आचमन के अन्त में संयम, पवित्रता से युक्त व्यक्ति को अन्तर्जानु होकर, पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर मुख करके एकाग्रचित्त से अन्न खाना चाहिए ॥२८॥

किसी प्रकार का अनिष्ट (या उत्तेजन) न करने पर, किसी का दोष प्रकट नहीं करना चाहिए। प्रत्यक्ष अधिक लवण और अत्यन्त उष्ण सर्वथा वर्जित है ॥२९॥

विचारवान् को चलते हुए और बैठे-बैठे मल मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। आचमन करने के बाद कुछ भी नहीं खाना चाहिए ॥३०॥

उच्छिष्टो नालपेत् किंचित् स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ।
गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्धानं च न स्पृशेत् ।।३१
न च पश्येद् रविं नेन्दुं न नक्षत्राणिका मत: ।
भिन्नासनं तथा शय्यां भाजनं च विवर्जयेत् ।।३२
गुरूणामासनं देयमभ्युत्थानादि-सत्कृतम् । अनुकूलं तथालापमभिवादनपूर्वकम् ।।३३
तथानुगमनं कुर्यात् प्रतिकूलं न संलपेत् । नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत न कुर्याद् देवतार्चनम् ।।३४
न गर्हयेद् द्विजान् नाग्नौ मेहं कुर्वीत बुद्धिमान् । न स्नायीत नरो नग्नो न शयीत कदाचन ।।३५
न पाणिभ्यामुभाभ्यां च कण्डूयेत शिरस्तथा ।
न चाभीक्ष्णं शिर: स्नानं कार्यं निष्कारणं नरै: ।।३६
शिर: स्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत् ।
अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ।।३७
ब्राह्मणानलगोसूर्यान् न मेहेत कदाचन । उदङ्मुखो दिवारात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुख: ।।३८
आबाधासु यथाकामं कुर्यान् मूत्र-पुरीषयो: ।।
दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात् क्रुद्धं चैनं प्रसादयेत् ।।३९

झूठे मुख न तो कुछ बोलना चाहिए और न ही स्वाध्याय ही करना चाहिए तथा गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने मस्तक का भी स्पर्श नहीं करना चाहिए ।।३१।।

और स्वेच्छा से (उच्छिष्ट मुख से) सूर्य चन्द्रमा अथवा नक्षत्रों का भी दर्शन नहीं करना चाहिए तथा टूटे आसन, शय्या और पात्र का त्याग कर देना चाहिए ।।३२।।

गुरुओं को, सत्कारपूर्वक उठकर, अनुकूल वाणी से अभिवादनपूर्वक आसन देना चाहिए ।।३३।।

और उनका अनुगमन करना चाहिए तथा उनके प्रतिकूल कुछ नहीं बोलना चाहिए । केवल एक वस्त्र में न तो भोजन करना चाहिए और न ही देव पूजा करनी चाहिए ।।३४।।

ब्राह्मणों की निन्दा न करें । और न ही बुद्धिमान् व्यक्ति को अग्नि में मूत्र त्याग करना चाहिए तथा मनुष्य को कभी न तो नग्न स्नान और न कभी नग्न शयन करना चाहिए ।।३५।।

अपने दोनों हाथों से अपने सिर को कभी खुजलाना नहीं चाहिए और मनुष्य को अकारण स्नान या सिर से स्नान भी नहीं करना चाहिए ।।३६।।

सिर से स्नान करने के बाद तेल का शरीर के किसी भी अंग से स्पर्श न करे । सभी अनध्याय के दिनों में स्वाध्याय का त्याग करना चाहिए ।।३७।।

गो, ब्राह्मण, अग्नि, सूर्य और अन्न की ओर मुख करके, (मल-मूत्र का) कभी त्याग न करें । दिन में उत्तर की ओर रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके, विघ्न रहित स्थान में, इच्छानुसार मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए । गुरु के दुष्कृत का कथन न करे और क्रुद्ध होने पर इनको प्रसन्न करना चाहिए ।।३८-३९।।

परीवादं न श्रृणुयादन्येषामपि कुर्वताम् । पन्था देयो ब्राह्मणानां राज्ञो दुःखातुरस्य च ।।४०
विद्याधिकस्य गुर्विण्या भारार्त्तस्य यवीयसः ।मूकान्धबधिराणां च मत्तस्योन्मत्तकस्य च ।।४१
पुंश्चल्या कृतवैरस्य बालस्य पतितस्य च। देवालयं चैत्यतरुं तथैव च चतुष्पथम् ।।४२
विद्याधिकं गुरुं चैव बुधः कुर्यात् प्रदक्षिणम् । उपानद्-वस्त्र-माल्यादि धृतमन्यैर्न धारयेत् ।।४३
उपवीतमलङ्कारं करकं चैव वर्जयेत् । प्रशस्तानि च कर्माणि कुर्वाणा दीर्घजीविनः ।।४४
चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पञ्चदश्यां च पर्वसु । तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत् ।।४५
न क्षिप्तपाद-जंघश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन। न चापि विक्षिपेत् पादौ पादं पादेन नाक्रमेत् ।।४६
मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यं च विवर्जयेत् । दम्भाभिमानतैक्ष्ण्यानि न कुर्वीत विचक्षणः ।।४७
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनो विरूपान् मायिनस्तथा । न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्च नोपहासेन दूषयेत् ।।
परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं पुत्रशिष्ययोः ।।४८
तद्वन्नोपविशेत् प्राज्ञः पादेनाक्रम्य चासनम् । संयावं कृसरं मांसं नात्मार्थमुपसाधयेत् ।।४९
सायं प्रातश्च भोक्तव्यं कृत्वा चातिथिपूजनम् ।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वाग्यतो दन्तधावनम् ।।५०

यदि कोई अन्य व्यक्ति गुरु की बुराई कर रहा हो तो उसे कभी नहीं सुनना चाहिए। रास्ते में आये हुए ब्राह्मण, राजा, दुःख से दुःखी, अपने से विद्या में अधिक, गर्भिणी, भार से दुःखी युवक, गूंगा, अन्धा, बहरा; मत्त, उन्मत्त, पुंश्चली, बैरी, बालक, पतित इन सब को मार्ग देना चाहिए। देवालय, तरु, चैत्य, चौराहा अपने से अधिक विद्या वाला और गुरु इन सब की बुद्धिमान् को प्रदक्षिणा करनी चाहिए। दूसरे किसी व्यक्ति का पहना हुआ जूता, वस्त्र, माला आदि को धारण नहीं करना चाहिए ।।४०-४३।।

(दूसरे का) यज्ञोपवीत, आभूषण और कमण्डल भी धारण नहीं करना चाहिए। प्रशंसनीय कर्म करते हुए ही व्यक्ति दीर्घ जीवी होता है ।।४४।।

चतुर्दशी, अष्टमी और पञ्चदशी इन पर्वों पर तेल की मालिश और स्त्री के साथ भोग विवर्जित है ।।४५।।

बुद्धिमान् व्यक्ति को कभी भी पैरों, जंघाओं को फैलाकर नहीं बैठना चाहिए और न ही पैर पर पैर मारना चाहिए ।।४६।।

मर्म के ऊपर आघात, आक्रोश और पैशुन्य का त्याग करना चाहिए। बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी, दम्भ, अभिमान और तीखा व्यवहार नहीं करता है ।।४७।।

मूर्ख उन्मत्त, व्यसनी, कुरूप, मायावी, अंगहीन अथवा अधिकांग को उपहास द्वारा दूषित न करें। पुत्र और शिष्य की शिक्षा के लिए, दूसरे के दण्ड को न उठाना चाहिए ।।४८।।

और प्राज्ञ व्यक्ति पैरों से आक्रमण करते हुए, आसन पर न बैठें तथा कुलथी, खिचड़ी और मांस को केवल अपने लिए ही नहीं परोसना चाहिए ।।४९।।

प्रातः और सायं अतिथि का पूजन करके भोजन करना चाहिए और वाणी को रोककर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर दंत धावन करे ।।५०।।

कुर्वीत सततं वत्स वर्जयेद् वर्ज्यवीरुधः । नोदक्छिराः स्वपेज्जातु न च प्रत्यक् शिरानरः ॥५१
शिरस्यगस्त्यमास्थाय शयीताथ पुरन्दरम् । न तु गन्धवतीष्वप्सु स्नायीत न तथा निशि ॥५२
उपरागे परंस्नानमृते दिनमुदाहृतम् । अपमृज्यान्न चास्नातो गात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥५३
न चापि धूनयेत् केशान् वाससी न च धूनयेत । नानुलेपनमादद्यादस्नातः कर्हिचिद् बुधः ॥५४
न चापि रक्तवासाः स्याच्चित्रासितधरोऽपि वा ।
न च कुर्याद् विपर्यासं वाससोर्नापि भूषणे ॥५५
वर्ज्यं च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतं च यत् । केशकीटावपन्नं च क्षुण्णं श्वभिरवेक्षितम् ॥५६
अवलीढावपन्नं च सारोद्धरणदूषितम् । पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्ज्यमांसं च पुत्रक ॥५७
न भक्षयीत सततं प्रत्यक्ष लवणानि च । वर्ज्यं चिरोषितं पुत्र भक्तं पर्युषितं च यत् ॥५८
पिष्टशाकेक्षु पयसां विकारा नृप नन्दन । तथा मांस विकाराश्च ते च वर्ज्याश्चिरोषिताः ॥५९
उदयास्तमने भानोः शयनं च विवर्जयेत् । नास्नातो नैव संविष्टो न चैवान्यमना नरः ॥६०
न चैव शयने नोर्व्यामुपविष्टो न शब्दवत् । न चैकवस्त्रो न वदन् प्रेक्षतामप्रदाय च ॥६१

हे वत्स ! उसको दातून में, वर्जित काष्ठादि का दन्त धावन के लिए व्यवहार नहीं करना चाहिए तथा मनुष्य को उत्तर एवं पश्चिम की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिए ॥५१॥

दक्षिण या पूर्व दिशा की ओर सिर करके सोना चाहिए तथा दुर्गंधपूर्ण जल में और रात्रि के समय स्नान नहीं करना चाहिए ॥५२॥

किन्तु चन्द्र ग्रहण के दिन रात्रि स्नान का निषेध नहीं किया है। स्नान के पश्चात् वस्त्र अथवा हाथ के द्वारा शरीर का मार्जन नहीं करना चाहिए ॥५३॥

तथा बुद्धिमान् व्यक्ति कभी गीले केशों को न फटकारे, और न ही गीले वस्त्र को झाड़े तथा न ही कभी स्नान के बिना चन्दन धारण करे ॥५४॥

लाल, काले अथवा चित्रित वस्त्रों को भी धारण नहीं करना चाहिए। वस्त्रों (उत्तरीय आदि) और आभूषणों को कभी उलटे तरीके से धारण नहीं करना चाहिए ॥५५॥

जो वस्त्र निकृष्ट दशा को प्राप्त, जीर्ण एवं फटा हुआ हो, उसे नहीं पहनना चाहिए। जो अन्न केश अथवा कीटों से युक्त हो, कुत्ते द्वारा देखा हुआ हो, अथवा चाटा हुआ हो या जिसका सार निकाल लिया गया हो, दूषित हो तथा पृष्ठ, मांस, वृथा मांस ॥५६–५७॥

वर्जित मांस, प्रत्यक्ष लवण इत्यादि को हे पुत्र ! कभी नहीं खाना चाहिए तथा हे पुत्र ! बहुत दिनों का रखा हुआ तथा बासी अन्न का भी त्याग कर देना चाहिये ॥५८॥

हे नृपनंदन ! पिट्ठी, शाक, इक्षु और दुग्ध इन सबका विकृत भोजन नहीं करना चाहिए। विकृत मांस बहुत दिनों का रखा होने पर नहीं खाना चाहिए ॥५९॥

सूर्य के उदय अथवा अस्त समय में तथा स्नान के बाद, बैठे-बैठे, अन्य मनस्क होकर भी मनुष्य को नहीं सोना चाहिए ॥६०॥

शय्या पर अथवा पृथ्वी में शब्द करते हुए नहीं बैठना चाहिए। एक वस्त्र में, बोलते हुए, सामने बैठे हुए, देखने वाले व्यक्ति को बिना दिये भोजन नहीं करना चाहिए ॥६१॥

भुञ्जीत पुरुषः स्नातः सायं प्रातर्यथाविधि । परदारा न गन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता ॥६२
इष्टापूर्त्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम् । न हीदृशमनायुष्यं लोके किंचन विद्यते ॥६३
यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्शनम् । देवार्चनाग्निकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम् ॥६४
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजि क्रियाम् । अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥६५
आचामेत् पुत्र पुण्याभिः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।
अन्तर्जलादावसथाद् बल्मीकान् मूषिकस्थलात् ॥६६
कृत शौचावशिष्टाच्च वर्जयेत् पञ्च वै मृदः । प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च समभ्युक्ष्य समाहितः ॥६७
अन्तर्जानुस्तथाचामेत् त्रिश्चतुर्वा पिबेदपः । परिमृज्य द्विरास्यान्तं खानिमूर्धानमेव च ॥६८
सम्यगाचम्यतो येन क्रियां कुर्वीत वै शुचिः । देवतानामृषीणां च पितॄणां चैव यत्नतः ॥६९
समाहितमना भूत्वा कुर्वीत सततं नरः । क्षुत्त्वा निष्ठीव्य वासश्च परिधायाचमेद् बुधः ॥७०
क्षुतेऽवलीढे वान्ते च तथा निष्ठीवनादिषु । कुर्यादाचमनं स्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ॥७१
कुर्वीतालम्बनं चापि दक्षिणश्रवणस्य वै । यथा विभवतो ह्येतत् पूर्वाभावे ततः परम् ॥७२

सायं काल एवं प्रातः काल यथा विधि स्नान करके ही पुरुष को भोजन करना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति को परदारा गमन नहीं करना चाहिए ॥६२॥

क्योंकि परस्त्री गमन मनुष्यों के इष्ट एवं पूर्त कर्मों तथा आयु को नष्ट करने वाला होता है। इस प्रकार का आयु कम करने वाला अन्य कोई (पाप) इस लोक में नहीं है ॥६३॥

जिस प्रकार पुरुष के लिए यह परदारा गमन, इस संसार में महापातकी है, उसी प्रकार देव पूजा, हवनादि कार्य तथा गुरु को प्रणाम आदि कार्य अति पुण्यशाली है ॥६४॥

सम्यक् प्रकार आचमन करके अन्न भक्षण की क्रिया का भी उसी प्रकार समापन करना चाहिए। फेन रहित, गन्ध रहित, स्वच्छ एवं पवित्र जल के द्वारा आदरपूर्वक पूर्व की ओर मुख करके अथवा उत्तराभिमुख होकर, आचमन करना चाहिए। जल के अन्दर की, वास ग्रह (सूतिका ग्रह) की, बांबी की तथा चूहे के बिल की ॥६५-६६॥

शौच के पश्चात् बची हुई ये पांच प्रकार की मिट्टी का ग्रहण नहीं करना चाहिए। हाथ और पैर धोकर संयत चित्त से पवित्र होकर ॥६७॥

दोनों जानु अन्दर को सिमेटकर, बैठकर तीन या चार बार जल पान सहित, आचमन करना चाहिए। दो बार मुख के अन्दर, मुख गह्वर में तथा मस्तक का मार्जन करके ॥६८॥

जो व्यक्ति पवित्रता पूर्वक आचमन करके, ये सभी क्रियाएँ करता है तथा देवता, ऋषि तथा पितरों को यत्नपूर्वक ॥६९॥

समाहित चित्त होकर निरन्तर (नित्य) पूजा करता है। बुद्धिमान् व्यक्ति को वमन, खंखार और वस्त्र पहनने के बाद भी आचमन करना चाहिए ॥७०॥

छींकने पर, चाटने पर, वमन के पश्चात्, तथा सिनकने पर आचमन, गोपृष्ठ का स्पर्श एवं सूर्य का दर्शन करना चाहिए ॥७१।

तथा अपने दाहिने कान का भी स्पर्श करना चाहिए। इन सब में पूर्व-पूर्व के अभाव में अपनी सुविधानुसार अपर को करना चाहिए ॥७२॥

अविद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते । न कुर्याद् दन्तसंघर्षं नात्मनो देहताडनम् ।।७३

स्वप्नाध्यापनभोज्यानि स्वाध्यायं च विवर्जयेत् ।
सन्ध्यायां मैथुनं चापि तथा प्रस्थानमेव च ।।७४

पूर्वाह्ने तात देवानां मनुष्याणां च मध्यमे । भक्त्या तथापराह्ने च कुर्वीत पितृपूजनम् ।।७५
शिरः स्नातश्च कुर्वीत दैवं पैत्र्यमथापि वा। प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि श्मश्रुकर्म च कारयेत् ।।७६
व्यङ्गां विवर्जयेत् कन्यामकुलां चापि रोगिणीम् । विकृतां पिगलां चैव वाचालां सर्वदूषिताम् ।।७७
अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं सर्भलक्षणलक्षिताम् । तादृशीमुद्वहेत् कन्यां श्रेयः कामो नरः सदा ।।७८
उद्वहेत् पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा । रक्षेद्दारांस्त्यजेदीर्षां दिवा च स्वप्न मैथुने ।।७९
परोपतापकं कर्म जन्तुपीडां च वर्जयेत् । उदक्याः सर्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम् ।।८०
स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीमपि वर्जयेत् ।ततः षष्ठ्यां व्रजेद् रात्र्यां श्रेष्ठायुग्माः सु पुत्रक ।।८१
पर्वाणि वर्जयेन्नित्यमृतुकालेऽपि योषितः । तस्मान्नित्यं नरो गच्छेच्छेष युग्मासु पुत्रक ।।८२

पूर्व क्रिया के अभाव में उत्तर क्रिया करनी चाहिए, न ही कभी अपने दांतों का घर्षण करना चाहिए और न अपने शरीर को पीटना चाहिए ।।७३।।

प्रातः काल और संध्या काल में भोजन, अध्यापन, स्वाध्याय, मैथुन और प्रस्थान नहीं करना करना चाहिए ।।७४।।

हे वत्स ! पूर्वाह्न में देवताओं की, मध्याह्न में मनुष्यों की, तथा अपराह्न में पितरों की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए ।।७५।।

सिर से स्नान करके ही देवताओं और पितरों के पूजा कार्य करने चाहियें तथा पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुख करके ही, हजामत बनवानी चाहिए ।।७६।।

तथा विकलांगी, अकुलीन, रोगी, विकृत, पीत वर्ण, वाचाल, अथवा समस्त दोषों से दूषित कन्या का सर्वथा परित्याग करना चाहिए ।।७७।।

जो मनुष्य सदैव कल्याण की कामना करे, वह सर्वांगी (सुन्दरी) सौम्याकृति, सभी सुलक्षणों से युक्त, उस प्रकार की कन्या को ही ग्रहण करे ।।७८।।

पिता अथवा माता की सात या पांचवी पीढ़ी को छोड़कर अन्य कन्या को ग्रहण करना चाहिए। स्त्री की रक्षा करनी चाहिए और ईर्ष्या का त्याग उचित है तथा दिन में शयन और मैथुन सर्वथा वर्जित है ।।७९।।

दूसरे को संताप पहुंचाने वाले और अन्य प्राणियों को पीड़ा देने वाले कर्मों को भी नहीं करना चाहिए। सभी वर्णों को ऋतुमती नारी का चार रात्रियों में सेवन नहीं करना चाहिए ।।८०।।

तथा कन्या जन्म के परिहार के लिए पांचवीं रात्रि को भी छोड़ देना चाहिए। उसके बाद छठी रात्रि में ऋतुमती स्त्री के साथ सहवास करना चाहिए क्योंकि युग्म रात्रि ही नारी सहवास में श्रेष्ठ होती है ।।८१।।

तथा स्त्री के ऋतुकाल में, सदैव ही पर्वों में (अमावस्या, चोदस, अष्टमी और संक्रान्ति) सहवास नहीं करना चाहिए। इसलिए सदैव मनुष्य को शेष युग्म रात्रियों में ही स्त्री गमन करना चाहिए ।।८२।।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेत सदा नरः ॥८३
विधर्मिणोऽह्निपूर्वाख्ये सन्ध्याकाले च षण्ढकाः । क्षुरकर्मणि वान्ते च स्त्री-संभोगे च पुत्रक ॥८४
स्नायीत चैलवान् प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्य च । देव-वेद-द्विजातीनां साधु-सभ्य-महात्मनाम् ॥८५
गुरोः पतिव्रतानां च तथा यज्वितपस्विनाम् । परीवादं न कुर्वीत परिहासं च पुत्रक ॥८६
कुर्वतामविनीतानां न श्रोतव्यं कथञ्चन । देवपित्र्यातिथेयाश्च क्रियाः कुर्वीत वै बुधः ॥८७
स्वाध्यायं चापि कुर्वीत यथाशक्त्या ह्यतन्द्रितः । नोत्कृष्टशय्यासनयोर्न्नापकृष्टस्य चारुहेत् ॥८८
न चामङ्गल्यवेषः स्यान्न चामङ्गल्यवाग्भवेत् । धवलाम्बरसंवीतः सितपुष्पविभूषितः ॥८९
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः । गच्छेन्मैत्रीं न चाशीलैर्न च चौर्यादिदूषितैः ॥९०
न चाति व्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः । नानृतकैस्तथाक्रूरैः सहासीत कदाचन ॥
न बन्धकीभिर्न न्यूनैर्बन्धकोपतिभिस्तथा ॥९१
सार्द्धं न बलिभिः कुर्यान्न च न्यूनैर्नरैः निन्दितैः । न सर्वशङ्किभिर्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः ॥९२
कुर्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचारावलम्बिभिः । प्राज्ञैरपिशुनैः शक्तैः कर्मण्युद्योगभागिभिः ॥९३

युग्म रात्रियों में पुत्र और अयुग्म रात्रियों में पुत्री उत्पन्न होती है। इसलिए पुत्र का इच्छुक मनुष्य सदैव युग्म रात्रियों में ही स्त्री प्रसंग करे ॥८३॥

पूर्वाह्न में (नारी संग से) विधर्मी तथा सायं काल में स्त्री प्रसंग से नपुंसक पुत्र की प्राप्ति होती है। हे पुत्र ! क्षौर कर्म, वमन और स्त्री प्रसंग के बाद ॥८४॥

श्मशान भूमि में गमन करने पर विद्वान् पुरुष को सवस्त्र स्नान करना चाहिए। देवता, वेद, ब्राह्मण, साधु, सभ्य एवं महात्मा ॥८५॥

हे पुत्र ! गुरुजन, पतिव्रता स्त्री, यज्ञ करने वाला, तपस्वी, इन सबकी परिहास और निन्दा (कभी) नहीं करनी चाहिए ॥८६॥

और यदि अविनीत मनुष्य इनकी निन्दा करे तो उसे कभी नहीं सुनना चाहिए। बुद्धिमान् को देवता पितर और अतिथि की क्रियाओं का अनुष्ठान करना चाहिए ॥८७॥

तथा अपनी शक्ति के अनुसार आलस्य रहित होकर, स्वाध्याय भी करना चाहिए। अपने से उत्कृष्ट अथवा अपकृष्ट व्यक्ति की शय्या पर भी नहीं बैठना चाहिए ॥८८॥

और न अमंगल्य वेष धारण करना और न अमंगल्य वाणी को बोलना चाहिए। श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्प से विभूषित होकर ही रहना चाहिए ॥८९॥

बुद्धिमान् व्यक्ति को उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, अविनीत, दुश्चरित, चौर्यादि दोषों से दूषित व्यक्तियों के साथ मैत्री नहीं करनी चाहिए ॥९०॥

और अधिक व्ययी, लालची, शत्रु, व्यभिचारिणी, हीन और बन्धकी के स्वामी, असत्यवादी, क्रूर आदि मनुष्यों के साथ भी न तो कभी बैठना चाहिए और न कभी मैत्री ही करनी चाहिए ॥९१॥

तथा नीच आशय, निन्दित, सदैव शंकालु आदि मनुष्यों के साथ, दैवपरायण बुद्धिमान् व्यक्ति को मित्रता नहीं करनी चाहिए ॥९२॥

सज्जनों के साथ, सदाचार का आचरण करने वाले, बुद्धिमान् पिशुनता रहित, शक्तिशाली, कार्यों में परिश्रमी व्यक्तियों के साथ ही सदैव मित्रता करनी चाहिए ॥९३॥

वेदविद्याव्रतस्नातैः सहासीत सदा बुधः। सुहृद्दीक्षित-भूपाल-स्नातकश्वशुरैः सह ॥
ऋत्विगादीन् षडर्घार्हानर्चयेच्च गृहागतान् ॥९४
यथा विभवतः पुत्र द्विजान् संवत्सरोषितान् । अर्चयेन्मधुपर्केण यथाकालमतन्द्रितः ॥९५
तिष्ठेच्च शासने तेषां श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः। न च तान् विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापि तैः सदा ॥९६
सम्यग् गृहार्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात्। संपूजयेत् ततो वह्निं दद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ॥९७
प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात् प्रजानां पतये ततः। तृतीयां चैव गुह्येभ्यः कश्यपाय तथा पराम् ॥९८
ततोऽनुमतये दत्त्वा दद्याद् गृहबलिं ततः। पूर्वं ख्यातो मया यस्ते नित्यकर्मक्रियाविधिः ॥९९
वैश्वदेवं ततः कुर्याद् बलयस्तत्र मे शृणु। यथास्थानविभागं तु देवानुद्दिश्य वै पृथक् ॥१००
पर्जन्याद्भ्यो धरित्र्यै च दद्याच्च मणिके त्रयम्। ततो धातुर्विधातुश्च दद्याद् द्वारे गृहस्य तु ॥
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादितः क्रमात् ॥१०१
ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय सूर्याय च यथा क्रमम्। विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च ॥१०२
उषसे भूतपतये दद्याच्चोत्तरतस्ततः। स्वधा नम इत्युक्त्वा पितृभ्यश्चापि दक्षिणे ॥१०३

तथा विद्वान् पुरुष सदैव वेदज्ञ, विद्वान्, व्रतपरायण और स्नातक पुरुष के साथ ही संगति करता है। सुहृदय, दीक्षित, भूपाल, स्नातक, श्वसुर और ऋत्विक् आदि ये छः व्यक्ति घर पर आने पर पूजा के योग्य होते हैं ॥९४॥

हे पुत्र ! पूर्वोक्त छः प्रकार के मनुष्यों के घर आने पर संवत्सर बीतने पर, अपने विभव (धन) के अनुसार यथा समय आलस्य रहित होकर, मधुपर्क के साथ पूजा करनी चाहिए॥ ९५॥

तथा अपने कल्याण के इच्छुक ब्राह्मण व्यक्ति को उनकी आज्ञा से ही बैठना चाहिए तथा बुद्धिमान् व्यक्ति को इनके आक्रुष्ट होने पर भी कभी इनके साथ विवाद नहीं करना चाहिए ॥९६॥

सम्यक् प्रकार से गृह-पूजा करके, उसके बाद क्रम से यथा स्थान अग्नि की पूजा करनी चाहिए, पुनः क्रमशः अग्नि में आहुति प्रदान करे ॥९७॥

उनमें पहली आहुति ब्रह्मा की और फिर प्रजापति को देनी चाहिए तथा गुह्यकों को तीसरी एवं कश्यप को चौथी आहुति देनी चाहिए ॥९८॥

फिर अनुमति के उद्देश्य से पंचमाहुति देकर पहले तुमसे नित्य कर्म के विषय में जिस प्रकार बतलाया है, तदनुसार ही इसके पश्चात् गृह बलि देनी चाहिए ॥९९॥

फिर वैश्व देवों की बलि का विधान करना चाहिए, उसे भी मुझसे सुनो। स्थान विभाग के अनुसार देवताओं का नामोच्चारण करके पृथक्-पृथक् बलि देनी चाहिए ॥१००॥

पर्जन्य, अन्न और पृथ्वी, पहले इन तीनों को बलि देनी चाहिए। उसके बाद धाता, विधाता और घर के द्वार को देनी चाहिए। पुनः वायु को और फिर पूर्वादि के क्रम से प्रत्येक दिशा को बलि देनी चाहिए ॥१०१॥

फिर क्रम से ब्रह्मा, अन्तरिक्ष और सूर्य के लिए तथा विश्वे देवगण, देवगण एवं विश्व भूतों को भी देनी चाहिए) ॥१०२॥

और उसके बाद उषा तथा भूतपति के लिए 'स्वधा नमः' इस प्रकार कहकर उत्तर में और पितरों को दक्षिण में, ॥१०३॥

कृत्वापसव्यं वायव्यां यक्ष्मै तत्तेति भाजनात् । अन्नावशेषमिच्छन् वै तोयं दद्याद्यथाविधि ।।१०४
ततोऽन्नाग्रं समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पनम् । यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ।।१०५
कुर्यात् कर्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि । देवादीनां तथा कुर्याद् ब्राह्मेणाचमनक्रियाम् ।।१०६
अंगुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्या दक्षिणस्य तु । एतद् ब्राह्ममिति ख्यातं तीर्थमाचमनाय वै ।।१०७
तर्जन्यंगुष्ठयोरन्तः पैत्रं तीर्थमुदाहृतम् । पितॄणां तेन तोयादि दद्यान्नान्दी मुखादृते ।।१०८
अंगुल्यग्रे तथा दैवं तेन दिव्यक्रियाविधिः । तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तेन प्रजापतेः ।।१०९
एवमेभिः सदा तीर्थैर्देवानां पितृभिः सह । सदा कार्याणि कुर्वीत नान्यत् तीर्थेन कर्हिचित् ।।११०
ब्राह्मेणाचमनं शस्तं पित्र्यं पैत्रेण सर्वदा । देवतीर्थेन देवानां प्राजापत्यं निजेन च ।।१११
नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् । प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किंचित् प्रजापतेः ।।११२
युगपज्जलमग्निं च बिभृयान्न विचक्षणः । गुरुदेवान् प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत् ।।११३
नाचक्षीत धयन्तीं गां जलं नाञ्जलिना पिबेत् । शौचकालेषु सर्वेषु गुरुष्वल्पेषु वा पुनः ।।११४

पुनः अपसव्य करके, वायु कोण में 'यक्ष्मै तत्ता' इस मंत्र के साथ अन्न विशेष की कामना करके, विधि पूर्वक जल दान करना चाहिए ।।१०४।।

उसके बाद अन्न का अग्र भाग तोड़कर हन्तकार की कल्पना करके विधि विधान और न्याय के अनुसार ब्राह्मण को प्रदान करना चाहिए ।।१०५।।

पुनः स्वकीय तीर्थ योग में यथा विधि कार्यों को करे। देवादि के उद्देश्य से ब्राह्मतीर्थ के द्वारा क्रिया करनी चाहिए ।।१०६।।

दाहिने हाथ से अंगूठे की जो उत्तर दिशा की रेखा है तीर्थ के आचमन के लिए यही ब्राह्मतीर्थ कहलाती है ।।१०७।।

तर्जनी और अंगूठा इन दोनों का मध्य ही पितृ तीर्थ कहा गया है। नान्दी मुख को छोड़कर अन्य समस्त क्रियाओं में पितरों को इसी (पितृ मुख) से जल देना चाहिए ।।१०८।।

अंगुली के अग्र भाग में देव तीर्थ हैं अतः देव क्रिया विधि उसी के द्वारा सम्पन्न करनी चाहिए। कनिष्ठा के मूल में काय तीर्थ है, अतः प्रजापति का कार्य उसी के द्वारा सम्पन्न करना चाहिए ।।१०९।।

इस प्रकार इन तीर्थों के द्वारा सदैव पितरों के साथ देवताओं की क्रियाओं को करना चाहिए, कभी भी अन्य तीर्थों के द्वारा नहीं करनी चाहिए ।।११०।।

ब्रह्म तीर्थ के द्वारा आचमन प्रशंसनीय है तथा पितृ तीर्थ के द्वारा सदैव पितृ कार्य, देव तीर्थ द्वारा देव कार्य और कार्य तीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिए ।।१११।।

जिस प्रकार प्रजापति तीर्थ के द्वारा प्रजापति के कार्य सम्पादित किये जाते हैं, उसी प्रकार विद्वान् व्यक्ति (उसी के द्वारा) नान्दी मुख की भी पिण्डोदक क्रिया सम्पन्न करे ।।११२।।

बुद्धिमान् को एक साथ जल और अग्नि को धारण नहीं करना चाहिए तथा गुरु और देव जनों की ओर भी कभी पैर नहीं फैलाने चाहियें ।।११३।।

बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय को न पुकारे और अंजलि के द्वारा जलपान न करें। सभी प्रकार के शौच कार्यों में थोड़ी हो या अधिक शीघ्रता करे ।।११४।।

न विलम्बेत शौचार्थं न मुखेनानलं धमेत् । तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम् ।।११५
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रियः सजलानदी । जितामित्रो नृपो यत्र बलवान् धर्मतत्परः ।।११६
तत्र नित्यं वसेत् प्राज्ञः कुतः कुनृपतः सुखम् । यत्राप्रधृष्यो नृपतिर्यत्र सस्यवती मही ।।११७
पौरासु संयता यत्र सततं न्यायवर्त्तिनः । यत्रामत्सरिणो लोकास्तत्र वासः सुखोदयः ।।११८
यस्मिन् कृषोवला राष्ट्रे प्रायशो नातिभोगिनः। यत्रौषधान्यशेषाणि वसेत् तत्र विचक्षणः ।।११९
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्रैतत् त्रितयं सदा । जिगीषुः पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सवः ।।१२०
वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहवासिषु पण्डितः । इत्येतत् कथितं पुत्र मया ते हितकाम्यया ।।१२१

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणेऽलर्कानुशासने सदाचारवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ।

शौच कार्य में देर न करे तथा मुख के द्वारा अग्नि प्रज्वलित न करे और हे पुत्र ! जहां इन चार वस्तुओं की स्थिति न हो वहाँ वास न करे ।।११५।।

ऋण देने वाला, वैद्य, श्रोत्रिय तथा जल युक्त नदी और जिस राज्य में शत्रुओं को जीतने वाला धर्मनिष्ठ बलवान् राजा निवास करता हो ।।११६।।

वहाँ पर बुद्धिमान् को नित्य ही निवास करना चाहिए। क्योंकि दुष्ट राजा के राज्य में सुख कहाँ ? जिस राज्य का राजा दुर्द्धर्ष और भूमि धान्यवती है ।।११७।।

जहाँ पर नगरवासी नियमों में तत्पर एवं नित्य मार्ग का अनुसरण करने वाले हैं और जहां सभी मनुष्य मात्सर्य विहीन हैं। वहाँ निवास करने से सुख की प्राप्ति होती है ।।११८।।

जिस राष्ट्र में कृषक प्रायः अति भोगी नहीं हैं और जहाँ सम्पूर्ण ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं, प्राज्ञ पुरुष को वहीं रहना चाहिए ।।११९।।

हे पुत्र ! जिस स्थान पर जिगीषु, पूर्व शत्रु तथा सदैव उत्सव करने वाला ये तीनों व्यक्ति हों, वहाँ पर कभी नहीं रहना चाहिए ।।१२०।।

बुद्धिमान् को सदैव सुशील सहयोगियों के मध्य रहना चाहिए। हे पुत्र ! मैंने यह सब तुम्हारे हित की कामना से वर्णन किया है ।।१२१।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में अलर्कानुशासन में सदाचार वर्णन नामक इकत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ

द्वात्रिंशोऽध्यायः

मदालसोवाच—

अतः परं शृणुष्व त्वं वर्ज्यावर्ज्य प्रतिक्रियाम् । भोज्यमन्नं पर्युषितं स्नेहाक्तं चिरसम्भृतम् ।।१

मदालसा ने कहा—

अब तुम इसके बाद वर्ज्यावर्ज्य (द्रव्य की) प्रतिक्रिया का वर्णन सुनो, बासी अन्न और बहुत दिनों का इकट्ठा किया हुआ स्नेह द्रव्य (तेल का तला हुआ पदार्थ) ।।१।।

अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगो-रसविक्रियाः। शशकः कच्छपो गोधाश्वावित् खङ्गोऽथ पुत्रक ॥२
भक्ष्या ह्येते तथा वर्ज्यौ ग्राम-शूकर कुक्कुटौ। पितृदेवादिशेषञ्च श्राद्धे ब्राह्मणकाम्यया ॥३
प्रोक्षितं चौषधार्थं च खादन् मांसं न दुष्यति। शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम् ॥४
शाक-मूल-फलानां च तथा विदलचर्मणाम्। मणि-वज्र-प्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च ॥५
गात्राणां च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते। पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥६
ताम्रायः कांस्यरैत्यानां त्रपुषः सीसकस्य च। शौचं यथार्थं कर्तव्यं क्षाराम्लोदक वारिणा ॥७
तथायसानां तोयेन ग्राव्णः संघर्षणेन च। सस्नेहानां च भाण्डानां शुद्धिरुष्णेन वारिणा ॥८
शूर्पधान्याजिनानां च मुशलोलूखलस्य च। संहतानां च वस्त्राणां प्रोक्षणात् संचयस्य च ॥९
वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते। तृणकाष्ठौषधीनां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥१०
आविकानां समस्तानां केशानां चापि मेध्यता। सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः ॥११
साम्बुना तात भवति उपघातवतां सदा। तथा कार्पासिकानां च विशुद्धिर्जलभस्मना ॥१२
नागदन्तास्थिशृङ्गाणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते। पुनः पाकेन भाण्डानां पार्थिवानां च मेध्यता ॥१३

तथा घी रहित, गेहूं और जौ से निर्मित पदार्थ तथा दूध की विक्रिया (फटा दूध) का भोजन नहीं करना चाहिए। खरगोश, कछुआ, गोंधा (गोह), श्वावित (सेही), गैंडा, हे पुत्र! (श्राद्ध कर्ता) इन सब जीवों का मांस खा सकता है किन्तु गांव के सूअर और मुर्गा इन दोनों के मांस अभक्ष्य हैं। श्राद्ध में पितृ देव आदि का जो अवशिष्ट अन्न बचता है, वह ब्राह्मणों के लिए होता है ॥२-३॥

तथा (यज्ञादि में) प्रोक्षित और औषध के लिए लाये हुए मांस को खाने से दोष नहीं लगता। शंख, पाषाण, स्वर्ण, चांदी, रस्सी तथा वस्त्र, शाक, मूल, फल, विदल, अन्न, चर्म, मणि, हीरा, मूंगा, मोती ॥४-५॥

और मनुष्यों के शरीर, ये सब जल में धुलने से पवित्र होते हैं। पात्रों एवं चमसों की जल में धुलने से शुद्धि हो जाती है ॥६॥

तांबा, कांसा, रांगा, सीसा, इन सबकी क्षार युक्त तथा अम्ल-युक्त जल के द्वारा यथार्थ रूप से शुद्धि करनी चाहिए ॥७॥

जल के द्वारा लोहयुक्त पदार्थ की, घर्षण द्वारा पाषाण की और गर्म जल से घृतयुक्त पदार्थों की शुद्धि करनी चाहिए ॥८॥

छाज, धान्य, मृगचर्म, मूसल, ओखली और गन्दा वस्त्र ये सब वस्तुएं जल में प्रोक्षण (धोने) से शुद्ध होती हैं ॥९॥

सम्पूर्ण वल्कल और मिट्टी भी जल के संयोग से शुद्ध होती है। तृण, काष्ठ और औषधि ये सभी (जल के) प्रोक्षण से ही शुद्ध होती हैं ॥१०॥

भेड़ के बालों से बने हुए, सभी वस्त्र तथा केश इनके दूषित होने पर जल युक्त सरसों के कल्क अथवा तिल कल्क के द्वारा शुद्धि होती है ॥११॥

हे वत्स! इन सबके अशुद्ध होने पर, जल के द्वारा ही सदैव शुद्ध हो जाती है तथा कपास द्वारा निर्मित वस्तुओं की शुद्धि जल और भस्म के द्वारा होती है ॥१२॥

हाथी दांत और उसकी हड्डी, सींग, इनकी उसी क्षण उसी प्रकार शुद्धि होती है। मिट्टी के पात्र पुनः पकाने से शुद्ध होते हैं ॥१३॥

शुचिर्भैक्षकारुहस्तैः पण्यं यच्च प्रसारितम् । योषिन्मुखं बालमुखमात्मवृद्धमुखं तथा ॥१४
रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गादिनाहृतम् । वाक् प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ॥१५
अतिप्रभूतं बालं च वृद्धातुरविचेष्टितम् । कर्मान्ताङ्गारशालाश्च स्तनन्धय सुताः स्त्रियः ॥१६
अभ्यस्य च तथा वाचः स्रवन्त्योऽनन्धबुद्बुदाः । भूमिर्विशुध्यते कालाद् दाहमार्जन गोक्रमैः ॥१७
लेपादुल्लेखनात् सेकाद् वेश्म संमार्जनार्चनात् । केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्राते मक्षिकान्विते ॥१८
मृदम्बुभस्मना तात प्रोक्षितव्यं विशुद्धये । औदुम्बराणामम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः ॥१९
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावोद्रवस्य च । अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ॥२०
अन्येषां चैव तद्द्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः । चाण्डालैरंत्यजैश्चैव म्लेच्छैरस्पृश्य जातिभिः ॥२१
स्पृष्टमक्षालितं धान्यमनर्हं सर्वकर्मणि । द्रोणादधस्तु यद्धान्यं तस्यायं विधिरुच्यते ॥२२
द्रोणादूर्ध्वं तु यद्धान्यं प्रोक्षणादेव शुध्यति । रथ्यासु पतितं धान्यं दृष्ट्वा यत्नेन वन्दयेत् ॥२३
उद्धृत्य मूर्ध्ना चादद्याल्लक्ष्मीर्नश्यति चान्यथा । शुचिगोतृप्तिकृत् तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥२४

भिक्षा में प्राप्त वस्तु, शिल्पकार का हाथ और बाजार से आयी वस्तु, स्त्री का मुख, अपना मुख और वृद्ध पुरुष का मुख, स्वयं ही पवित्र होते हैं ॥१४॥

मार्ग में आता हुआ, अविज्ञात तथा दास वर्ग के द्वारा लाया हुआ, चिरातीत, अनेक बाधाओं से युक्त और लघुजन, वचन मात्र से ही शुद्ध हो जाता है ॥१५॥

संख्यक, बालक, वृद्ध, आतुर द्वारा किया कर्म, ये भी स्वभावतः शुद्ध हैं। कर्म समापनोपरान्त की अंगारशाला तथा वे स्त्रियाँ जिनका बालक स्तन नहीं छोड़ता ॥१६॥

तथा गन्ध रहित, बुलबुलों से रहित और स्रोत से उत्पन्न जल भी स्वतः विशुद्ध हैं। काल से, जलाने से, बुहारने से तथा गौ के विचरण से भूमि शुद्ध हो जाती है ॥१७॥

लीपने से, खुरचने से, जल छिड़कने से और मार्जन तथा अर्चन से घर की शुद्धि करनी चाहिए, केश, कीट युक्त, गौ के सूंघे हुए पदार्थ और मक्षिका युक्त पदार्थों की शुद्धि मृत्तिका से तथा भस्म के प्रोक्षण से करनी चाहिए ॥१८॥

गूलर के काष्ठ से बने, (ओदुम्बर) की अम्ल से तथा रांग और सीसे की क्षार से, कांसे की भस्म से और जल के द्वारा शुद्धि करनी चाहिए। जो पदार्थ अमेध्य वस्तु से लगा हुआ हो, मिट्टी और जल के द्वारा उसकी गन्द दूर करने से ॥१९-२०॥

तथा उस द्रव्य से बने अन्य पदार्थों की वर्ण और गन्ध को दूर करने से वह शुद्ध होता है। चाण्डाल, अन्त्यज, म्लेच्छ तथा छूने के अयोग्य जातियों द्वारा ॥२१॥

स्पर्श किया अथवा धोया हुआ (धान्य) सभी कार्यों में अयोग्य होता है तथा जो धान्य एक द्रोण से कम होता है, उसकी ही यह विधि कही गयी है ॥२२॥

जो धान्य एक द्रोण परिमाण से अधिक होता है, वह प्रोक्षण से ही शुद्ध होता है। मार्ग में पड़े हुए धान्य को देखकर यत्नपूर्वक प्रणाम करना चाहिए ॥२३॥

और उठाकर सिर पर धारण करना चाहिए, नहीं तो लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। गो की तृप्ति करने योग्य और स्वभाव से ही पृथ्वी में स्थित जल भी पवित्र होता है ॥२४॥

तथा मांसं च चंडालक्रव्यादादि निपातितम् । रथ्यागतं च चेलादि तात वाताच्छुचिस्मृतम् ।।२५
गजोऽग्निरश्वो गाश्छायारश्मयः पवनो मही । विप्रषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः ।।२६
अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम् । मातुः प्रस्रवणं मेध्यं शकुनिः फलपातने ।।२७
आसनं शयनं यानं नावः पथि तृणानि च । सोमसूर्यांशुपवनैः शुध्यन्ते तानि पण्यवत् ।।२८
रथ्या प्रसर्पणे स्नाने क्षुतपानान्न कर्मसु । आचामेत यथान्यायं वासो विपरिधाय च ।।२९
स्पृष्टानामप्यसंस्पृश्यैर्विरथ्या कर्दमांभसाम् । पक्वेष्ट रचितानां च मेध्यता वायुसंगमात् ।।३०
प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य संत्यजेत् । शेषस्य प्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा ।।३१
उपवासस्त्रिरात्रं तु दुष्टभक्ष्याशिनो भवेत् । अज्ञाते ज्ञानपूर्वं तु तद्दोषोपशमेन तु ।।३२
उदक्याश्वशृंगालादीन् सूतिकान्त्यावसायिनः । स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ।।३३

नारं स्पृष्ट्वास्थिसस्नेहं स्नातः शुध्यति मानवः ।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ।।३४

न लंघयेत् तथैवासृक्ष्ठीवनोद्वर्तनानि च । नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत् कदाचन ।।३५

चाण्डाल और क्रव्यादि के द्वारा मारे हुए जीवों का मांस भी शुद्ध होता है। हे वत्स ! मार्ग में पड़े हुए पुराने वस्त्र वायु के द्वारा ही शुद्ध हो जाते हैं ।।२५।।

हाथी, अग्नि, अश्व, गौ, छाया (सूर्य आदि की) किरणें, वायु पृथ्वी, जल की बूंदें, मक्खी आदि दुष्ट वस्तुओं के सन्दर्भ से भी दूषित नहीं होती ।।२६।।

बकरी और अश्व का मुख पवित्र है और गोवत्स (बछड़े) का मुख अपवित्र है। और फल गिराने वाला पक्षी भी शुद्ध होता है ।।२७।।

आसन, शय्या, यान, नौका, मार्ग में स्थित तृण, चण्ड और सूर्य की किरणें ये सब वायु के स्पर्श से ही बाजार के पदार्थों के समान शुद्ध हैं ।।२८।।

मार्ग में परिभ्रमण, स्नान, छींक, पान और मल, मूत्र के विसर्जनादि कार्यों के पश्चात् तथा वस्त्र बदलने के बाद यथाविधि आचमन करना चाहिए ।।२९।।

मार्ग की कीचड़. जल, ईंट और कीचड़ आदि से लिप्त हुए पदार्थ इनके संसर्ग दोष से दूषित होने पर भी वायु के स्पर्श से ही शुद्ध हो जाते हैं ।।३०।।

अत्यधिक अन्न के दूषित होने पर उसके अग्र भाग से थोड़ा सा अन्न उठाकर (त्याग देना चाहिए) और बचे हुए अन्न का आचमन करके जल तथा मिट्टी से प्रोक्षण करना चाहिए ।।३१।।

अनजाने में दुष्ट अन्न का भक्षण करने पर तीन रात्रि पर्यंन्त उपवास करे किन्तु जान बूझकर दुष्ट अन्न खाने से विधि विधान के अनुसार उसके दोष की शान्ति करनी चाहिए ।।३२।।

ऋतुमती स्त्री, कुत्ता, गीदड़ आदि तथा सूतिका, चाण्डाल और शव को ले जाने वाला इनके स्पर्श होने पर शुद्धि के लिए, मनुष्य को स्नान करना चाहिए ।।३३।।

स्नेह युक्त मनुष्य की हड्डी के स्पर्श से मनुष्य स्नान करके ही शुद्ध होता है तथा स्नेह रहित अस्थि स्पर्श करने पर आचमन करके गो स्पर्श अथवा सूर्य के दर्शन से ही शुद्ध हो जाता है ।।३४।।

उसी प्रकार रुधिर, खखार और उबटन का उल्लंघन नहीं करना चाहिए तथा बुद्धिमान् व्यक्ति को कभी भी असमय में उद्यान में नहीं रुकना चाहिए ।।३५।।

न चालपेज्जनद्विष्टां वीरहीनां तथा स्त्रियम् ।
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि क्षिपेद् बहिः ॥३६
पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिणा । स्नायीत देवखातेषु गंगा-ह्रद-सरित्सु च ॥३७
देवता-पितृ-सच्छास्त्र-यज्ञ-मन्त्रादि-निन्दकैः । कृत्वा तु स्पर्शनालापं शुध्येतार्कावलोकनात् ॥३८
अवलोक्य तथोदक्यामन्त्यजं पतितं शवम् । विधर्मिसूतिकाषण्ढ विवस्त्रान्त्यावसायिनः ॥३९
मृतनिर्यातकाश्चैव परदाररताश्च ये । एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः ॥४०
अभोज्य सूतिका षण्ढमार्जाराखुश्वकुक्कुटान् । पतिताविद्ध चण्डाल मृतहारांश्च धर्मवित् ॥४१
संस्पृश्य शुध्यते स्नानादुदक्याग्रामसूकरौ । तद्वच्च सूतिका शौचदूषितौ पुरुषावपि ॥४२
अतः परं शृणुष्व त्वं स्त्रीधर्मान्ननु विस्तरात् । उदुंबरे वसेन्नित्यं भवानी सर्वदेवता ॥४३
ततः सा प्रत्यहं पूज्या गन्ध-पुष्पाक्षतादिभिः । अशून्या देहली कार्या प्रातः काले विशेषतः ॥४४
यस्य शून्या भवेत् सा तु शून्यं तस्य कुलं भवेत् । पादस्य स्पर्शनं तत्र असम्पूज्य च लंघनम् ॥४५
कुर्वन् नरकमाप्नोति तस्मात् तत् परिवर्जयेत् । प्रातः काले स्त्रिया कार्यं गोमयेनानुलेपनम् ॥४६

मनुष्य को निन्दित, अवीर तथा हीन स्त्री के साथ कभी बात नहीं करनी चाहिए। उच्छिष्ट, मल, मूत्र, पैरों का धोया हुआ जल, घर से बाहर फेंकना चाहिए ॥३६॥

पंच पिण्ड उद्धार (निकाले बिना) जल में स्नान नहीं करना चाहिए। देव खात, गंगा, तालाब और नदी इत्यादि में स्नान करना चाहिए ॥३७॥

जो व्यक्ति देव, पितर, श्रेष्ठ शास्त्र, यज्ञ, मंत्र, इत्यादि की निन्दा करते हैं, उनके साथ वार्तालाप अथवा स्पर्श करने पर सूर्य दर्शन से (व्यक्ति) शुद्ध होता है ॥३८॥

ऋतुमती स्त्री, अन्त्यज (चाण्डाल), पतिता, शव, विधर्मी, नव प्रसूता, नपुंसक, विवस्त्र पुरुष अन्त्यावसायी, शव को ले जाने वाला तथा जो परस्त्री गमन करने वाले हैं, इन सबके दर्शन करने पर बुद्धिमान् व्यक्ति को (सूर्य दर्शन से) अपने को शुद्ध कर लेना चाहिए ॥३९-४०॥

अभक्ष्य, नव प्रसूता स्त्री, नपुंसक, बिल्ली, चूहा, कुत्ता, मुर्गा, पतित, आविद्ध (माता पिता द्वारा त्यक्त), चाण्डाल, मृत व्यक्ति (शव) को ले जाने वाला ॥४१॥

रजस्वला स्त्री, ग्राम्य सूअर तथा सूतिका और शौच से दूषित व्यक्ति इन सबका स्पर्श करने पर धर्म विद व्यक्ति स्नान से ही शुद्ध होता है ॥४२॥

(अब इसके बाद तुम विस्तार के साथ स्त्री धर्म सुनो) भवानी तथा सभी देवता नित्य ही गूलर में निवास करते हैं ॥४३॥

इसलिए गंध, पुष्प और अक्षत आदि से उनका प्रतिदिन पूजन करना चाहिए। विशेष रूप से प्रातः काल (घर की) देहली शून्य नहीं रखनी चाहिए ॥४४॥

जिसकी वह (देहली) शून्य हो जाती है, उसका कुल ही (नष्ट) हो जाता है। उसका पैर से स्पर्श और बिना पूजे लंघन ॥४५॥

करने से वह नरक को प्राप्त होता है। इसलिए ऐसा नहीं करना चाहिए। प्रातः काल में स्त्रियों का कार्य गोबर से घर लीपना है ॥४६॥

प्रत्यहं सदने तस्मान्नैव दुःखानि पश्यति । स्पृशन्ति रश्मयो यस्य गृहं सम्मार्जनादृते ।।४७
भवन्ति विमुखास्तस्य पितरो देवमातरः । निशायाः पश्चिमे यामे धान्यसंस्करणादिकम् ।।४८
कुरुते या तु मोहेन वन्ध्या जन्मनि जन्मनि। सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते मार्जनं न करोति या ।।४९
भर्तृहीना भवेत् सा तु निःस्वा जन्मनि जन्मनि ।
अकृत स्वस्तिकां यातु कामलिप्तां च मेदिनीम् ।।५०
तस्याः स्त्रिया विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा। मार्जनी चुल्लिकाष्ठीवद्धषदश्चोपलं तथा ।।५१
नाक्रमेदंघ्रिणा जातु पुत्रदारधनक्षयात् । उलूखलं च मूसलं वृथा चैव तु घर्षणम् ।।५२
पदाक्रमणात् पापीयान्नाप्नोत्येवोत्तमां गतिम् । भिन्नासनं योगपट्टं तथैव मृगचर्म च ।।५३
कृष्णाविकं तथा तात वर्जयेत् पुत्रवान् गृही। दक्षिणाभिमुखो यस्तु विदिक् संमुख एव च ।।५४
केशान् संस्कुरुते मर्त्यो धननाशं च विन्दति। अनूढस्तु न कुर्वीत भुक्त्वा दन्त विशोधनम् ।।५५
पादुकारोहणं चैव तिलैश्चापि सतर्पणम् । न जीवत् पितृकः कुर्यादर्धकक्षोत्तरीयकम् ।।५६
दर्शे श्राद्धं न कुर्वीत दर्शस्नानं कथञ्चन । पादुकारोहणं चैव योगपट्टकमेव च ।। ५७

प्रतिदिन ऐसा न करने से घर में दुःख के दर्शन नहीं होते, संमार्जन (बुहारी) के बिना जिसके घर में सूर्य की किरणें पड़ती हैं ।।४७।।

उससे देव, पितर और मातृगण विमुख हो जाते हैं। रात्रि के पिछले प्रहर में जो धान्य आदि का संस्कार (पिछोड़ना) करती है ।।४८।।

मोह (अज्ञान) के कारण वह जन्म-जन्म में बाँझ होती है तथा जो स्त्री सन्ध्या होने पर घर का समार्जन (बुहारी) नहीं करती ।।४९।।

वह जन्म-जन्म में पति और धन से हीन होती है तथा जो मनुष्य लिपी हुई भूमि में स्वस्ति वाचन नहीं करता है ।।५०।।

उसकी स्त्री; धन, आयु और यश का विनाश हो जाता है । बुहारी, चूल्हा और सिलबट्टे को ।।५१।। कभी पैर के द्वारा नहीं सरकाना चाहिए (लांघना नहीं चाहिए) ऐसा करने पर पुत्र, स्त्री और धन नष्ट होता है । इसी प्रकार मूसल के व्यर्थ घर्षण से ।।५२।।

और पैरों से ठोकर मारने से मनुष्य पापी होकर उत्तम गति को प्राप्त नहीं होता तथा हे पुत्र ! टूटे आसन, योगपट्ट और काले कम्बल तथा मृगचर्म,

पुत्रवान् व्यक्ति को इन सब वस्तुओं का त्याग करना चाहिए। तथा जो पुरुष दक्षिण की ओर अथवा विदिशाओं की ओर मुख करके ।।५३-५४।।

बालों को सवाँरता है, वह धन के नाश को प्राप्त करता है। अविवाहित को भोजन खाकर दांत नहीं कुरेदने चाहियें ।।५५।।

तथा जिसका पिता जीवित हो वह खड़ाऊँ पर चढ़ना, तिलों से तर्पण तथा आधी धोती सिर पर ओढ़ना इत्यादि कर्म न करे ।।५६।।

तथा वह व्यक्ति कभी अमावस्या में श्राद्ध और अमावस्या में स्नान न करे तथा न ही योग पट्ट तथा खड़ाऊँ पर आरोहण करे ।।५७।।

न जीवत्पितृकः कुर्याद् गया श्राद्धं तथैव च । दीपभाण्डमयीच्छाया बिभीत ककुरंटजा ।।५८
वर्जनीया सदा पुत्र यदि जीवितुमिच्छसि । अधो वस्त्रेण यो वायुं कुरुते शिरसि द्विज ।।
स्थालेन चर्मशूर्पाभ्यां सुकृतं तस्य नश्यति ।।५९

अलर्क उवाच—

भवत्या कीर्तिता भोज्या य एते सूतिकादयः । अमीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि ह ।।६०

मदालसोवाच—

ब्राह्मणी ब्राह्मणस्येह यावरोधत्वमागता । तावुभौ सूतिकेत्युक्तौ तयोरन्नं विगर्हितम् ।।६१
न जुहोत्युचिते काले नाश्नाति न ददाति च । पितृ-देवार्चनाद्धीनः षण्ढः स परिगीयते ।।६२
दम्भार्थे यजते यश्च तप्यते च तपस्तथा । न परार्थमिहेत्युक्तः स मार्जारः स्मृतो बुधैः ।।६३
विभवे सति नैवात्ति न ददाति जुहोति च । तमाहुराखु तस्यान्नं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्धयति ।।६४
सभा गतानां मर्त्यानां पक्षपातं समाश्रयेत् । तमाहुः कुक्कुटं देवास्तस्याप्यन्नं विगर्हितम् ।।६५
स्वधर्मं यः समुच्छिद्य परधर्मं समाश्रयेत् । अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्तितः ।।६६
देवत्यागी गुरुत्यागी गुरुपत्न्युज्झकस्तथा । गो-ब्राह्मण-स्त्रीवध-कृदपविद्धः प्रचक्षते ।।६७

तथा जिसका पिता जीवित है वह, गया श्राद्ध भी न करे। तथा हे पुत्र ! यदि जीवित रहना चाहते हो तो दीपक की, बहेड़े की, कुरर की छाया का सदा परित्याग करो तथा जो द्विज धोती से, थाली, चर्म अथवा छाज से सिर की हवा करते हैं, उनका पुण्य नष्ट हो जाता है ।।५८-५९।।

अलर्क बोला—

तुमने जो ये सूतिका आदि भोज्य कहे हैं, अब मैं आपसे इनके यथार्थ लक्षण सुनना चाहता हूं ।।६०।।

मदालसा ने कहा—

जो ब्राह्मणी ब्राह्मण की (स्त्री) है अथवा उसके अवरोध में आ गया है। वे दोनों ही सूतिका कहे गये हैं और उन दोनों का अन्न निन्दनीय है ।।६१।।

जो पुरुष समय पर न हवन करता है तथा न भोजन और न दान ही करता तथा कराता है तथा जो पितृ और देव पूजा विहीन है, वह षण्ड कहा जाता है ।।६२।।

जो मनुष्य दम्भ के लिए, यजन अथवा तप करता है। वह परमार्थ नहीं कहा जाता, उसे बुद्धिमानों में मार्जार कहा है ।।६३।।

ऐश्वर्य होने पर भी जो न खाता है न देता है और न हवन करता है। उसे चूहा कहा जाता है, उसका अन्न खाने से मनुष्य कठिनाई से (व्रत करने से, शुद्ध होता है ।।६४।।

जो मनुष्य सभा में आये हुए, मनुष्यों का पक्षपात कराता है। उसको देवता कुक्कुट कहते हैं। उसका भी अन्न खाना गर्हित है ।।६५।।

जो आपत्ति के बिना अपने धर्म को छोड़कर दूसरे के धर्म को ग्रहण करता है, वह विद्वानों के द्वारा पतित कहा गया है ।।६६।।

तथा देव, गुरु, पत्नी का त्याग करने वाला तथा गौ, ब्राह्मण और स्त्री का वध करने वाला, अपविद्ध कहलाता है ।।६७।।

येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम् ।
ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम् ॥६८
आशाकर्त्तुं स्त्वदाता च दातुश्च प्रतिषेधकः । शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालो नराधमः ॥६९
यो बान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि । कुण्डाशी यश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥७०
यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च । भुक्त्वान्न तस्य शुद्ध्यर्थं च त्रिरात्रो पोषितो नरः ॥७१
यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मणः । यश्च ब्राह्मण सन्त्यक्तः किल्बिषी स नराधमः ॥७२
नित्यस्य कर्मणो हानिं न कुर्वीत कदाचन । तस्य त्वकरणे बन्धः केवलं मृतजन्मसु ॥७३
दशाहं ब्राह्मणस्तिष्ठेद् दानहोमादि वर्जितः । क्षत्रियो द्वादशाहं च वैश्यो मासार्द्धमेव च ॥७४
शूद्रस्तु मासमासीत नित्यकर्मविवर्जितः । रोगग्रहादिविधिना नित्यकर्मविधिच्युतः ॥७५
पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा गां दत्त्वा शुद्धिमाप्नुयात् । ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वे यथोदितम् ॥७६
प्रेताय सलिलं देयं बहिर्गेहाच्च गोत्रिकैः । प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा ॥७७
भस्मास्थिचयनं कार्यं चतुर्थे गौत्रिकैर्दिने । ऊर्ध्वं संचयनात् तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ॥७८

जिनके कुलों में वेद, शास्त्र और व्रत नहीं हैं सज्जनों के द्वारा वे नग्न कहे गये हैं। उनका अन्न भी गर्हित होता है ॥६८॥

जो आशावान् को नहीं देता तथा देने वाले को रोकता है तथा शरणागत का त्याग करता है, वह नराधम चाण्डाल होता है ॥६९॥

जो बन्धु, साधु और ब्राह्मणों के द्वारा त्यागा गया है, वह वर्णसंकर कुण्डाशी होता है। उसका अन्न खाकर शुद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत करता चाहिए ॥७०॥

तथा जो नित्य प्रति नित्य नैमित्तिक कर्मों की हानि करता है। उसका अन्न खाकर शुद्धि के लिए तीन रात्रि तक व्रत करना चाहिए ॥७१॥

जिसके घर में नित्यप्रति नित्य कर्मों की हानि होती है तथा जो ब्राह्मणों के द्वारा त्यागा हुआ है, वह पापी मनुष्यों में अधम होता है ॥७२॥

इसलिए कभी भी नित्य कर्मों की हानि नहीं करनी चाहिए। केवल किसी के मरने अथवा उत्पन्न होने पर ही उनके न करने से कोई दोष नहीं होता है ॥७३॥

(जन्म शौच और मरण शौच में) ब्राह्मण दस दिन तक और क्षत्रिय बारह दिन तक तथा वैश्य पन्द्रह दिन तक दान होम आदि नित्य कर्मों के बिना रह सकता है ॥७४॥

शूद्र एक मास तक नित्य कर्मों से रहित होकर रह सकता है। रोग, ग्रह आदि की बाधा में नित्य कर्म विधियों में छूट दी जाती है ॥७५॥

उस (रोग ग्रहादि बाधा) में पाद कृच्छ्रव्रत का अनुष्ठान करके गोदान शुद्धि प्राप्त होती है और उसके बाद पूर्वोक्त सभी निज कर्म करने चाहियें ॥७६॥

गोत्रिकों के द्वारा घर से बाहर (मृत शरीर को जलाकर) प्रेत के लिए पहले, तीसरे, सातवें और नवें दिन जल दान करना चाहिए ॥७७॥

तथा चौथे दिन (मृत व्यक्ति) के गोत्रिकों द्वारा उसकी भस्म और अस्थि आदि का संचयन कार्य करना चाहिए। संचयन से बाद में उसका अंग स्पर्श करना चाहिए ॥७८॥

सोदकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्याः संचयनात्परम्। स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ॥७९
वृक्षाहि गोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बंधनवह्निषु । विषप्रपातादिमृते प्रायो नाशकयोरपि ॥८०
बाले देशान्तरस्थे च तथा प्रव्रजितेमृते । सद्यः शौचमथान्यैश्च त्र्यहमुक्तमशौचकम् ॥८१
नैवोर्ध्वदैहिकं कार्यं न च कार्योदकक्रिया । गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्णकालेन शुध्यति ॥८२
ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम्। षड्रात्रमपि वैश्यानां शूद्राणां द्वादशाह्निकम् ॥८३
सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन् मृतो यदि। पूर्वाशौचसमाख्यातैः कार्या तस्य दिनैः क्रिया ॥८४
एष एव विधिर्दृष्टो जन्मन्यपि हि सूतके । सपिण्डानां सपिण्डेषु यथा वत्सोदकेषु च ॥८५
जाते पुत्रे पितुः स्नानं स चैलं तु विधीयते । मृते हि सर्वबन्धूनामित्याह भगवान् भृगुः ॥८६
तत्रापि यदि चान्यस्मिञ्जाते जायेत चापरः। तत्रापि शुद्धिरुद्दिष्टा पूर्वजन्मवतो दिनैः ॥८७
दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यैर्दिनैर्गतैः । स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाविधि ॥८८
प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं ततः परम् । सपिण्डीकरणं चैव कार्यमावत्सरान्नरैः ॥८९

तथा (अस्थि) संचयन के पश्चात् गौत्रिक पुरुष को उसकी उदक दान सहित सभी क्रियाएँ करनी चाहिएँ तथा मृत दिवस में पिण्ड सहित उन दोनों का स्पर्श करना चाहिए ॥७९॥

वृक्ष, सर्प, गौ, दंष्ट्रि, शस्त्र, जल, वध स्थान, अग्नि, विष और पर्वत से गिरने, प्रायोपवेशन और और अनशन इत्यादि में मृत्यु होने से सगौत्रिक का एक दिन अशौच होता है ॥८०॥

वालक, परदेश में रहने वाला, सन्यासी की मृत्यु होने पर, तत्काल शौच होता है। अन्यों ने (उस स्थिति में) तीन रात्रि का अशौच कहा है ॥८१॥

इनकी और्ध्वदैहिक एवं उदक दानादि क्रियाएँ नहीं करनी चाहियें। गर्भपात में भी ऐसा ही कहा गया है। (इन सबकी) पूर्ण काल में शुद्ध होती है ॥८२॥

ब्राह्मणों की (यहाँ गर्भपात में) एक दिन-रात, क्षत्रिय की तीन दिन, वैश्यों को छः दिन और शूद्रों की बारह दिन में शुद्धि होती है ॥८३॥

एक पुरुष के मरने पर उसके अशौच में अन्य किसी सपिण्ड की मृत्यु होने पर प्रथम पुरुष के मृत्यु दिन की गणना में, अन्य व्यक्ति को अशौचादि शुद्धि क्रिया को पूर्ण करना चाहिए ॥८४॥

जन्माशौच में भी सपिण्ड और समानोदक पुरुष की इसी प्रकार की विधि कही गयी है ॥८५॥

पुत्र उत्पन्न होने पर पिता को और मृत्यु में सभी बन्धुओं को वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए, यह भगवान् भृगु ने कहा है ॥८६॥

उसमें भी यदि एक पुत्र के उत्पन्न होने पर (बाद में) अन्य शिशु भी उत्पन्न हो जाए तो उसकी भी पहले शिशु के जन्म की शुद्धि के दिन ही शुद्धि कही गयी है ॥८७॥

(ब्राह्मण आदि) सभी वर्णों को विधि विधान के अनुसार दस दिन, बारह दिन, एक पक्ष और एक माह तक अपनी-अपनी (जाति के अनुसार) कर्म क्रियाओं को करना चाहिए ॥८८॥

उसके बाद प्रेत को उद्देश्य करके एकोद्दिष्ट करना चाहिए तथा मनुष्यों को एक वर्ष तक सपिण्डीकरण कर लेना चाहिए ॥८९॥

ततः पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिस्त्रिभिः । प्रीणयंस्तस्य कर्तव्यं यथा श्रुति निदर्शनम् ।।९०
दानानि चैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः । यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे ।।९१
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता । प्रेतं प्रेतं समुद्दिश्य भूमिधेन्वादिकं स्वकम् ।।९२
दद्याद्येनास्य संप्रीताः पितरः सन्ति पुत्रक। पूर्णैस्तु दिवसैः स्पृष्ट्वा सलिलं वाहनायुधम् ।।९३
प्रतोददण्डौ च तथा सम्यग्वर्णाः कृत क्रियाः । स्ववर्णधर्मनिर्दिष्टमुपादानं तथा क्रियाः ।।९४
कुर्युः समस्ताः शुचयः परत्रेह च भूतिदाः। अध्येतव्या त्रयी नित्यं भवितव्यं विपश्चिता ।।९५
धर्मतो धनमाहार्यं यष्टव्यं चापि यत्नतः । यच्चापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति पुत्रक ।।९६
तत्कर्त्तव्यमशङ्केन यन्न गोप्यं महाजने । एवमाचरतो वत्स पुरुषस्य गृहे सतः ।।
धर्मार्थकामसम्प्राप्त्या परत्रेह च शोभनम् ।।९७

इति श्री मार्कण्डेय महापुराणेऽलर्कानुशासने धर्माधर्मनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

पुनः प्रेत को प्राप्त होने पर दर्श पौर्ण मास में तीन दिनों तथा जैसा श्रुतियों ने निर्देश किया है उनकी प्रसन्नता के लिए, वह सब कुछ करना चाहिए ।।९०।।

विद्वान् पुरुषों के द्वारा, ब्राह्मणों को दान देना चाहिए तथा संसार में जो-जो अत्यधिक प्रिय और घर में इष्ट वस्तु हो ।।९१।।

वह-वह अक्षय की इच्छा करने वाले व्यक्ति को गुणवान् को देनी चाहिए तथा प्रत्येक प्रेत को उद्दिष्ट करके अपनी भूमि और धेनु आदि ।।९२।।

देने से इसके प्रति पितर संतुष्ट होते हैं । हे पुत्र ! फिर अशौच के पूर्ण होने वाले दिन जल, वाहन और शस्त्र का स्पर्श करके ।।९३।।

तथा चाबुक और दण्ड का (स्पर्श करके) सभी वर्णों के क्रमानुसार अपने-अपने वर्ण धर्म के अनुसार उपादान कार्यों को भली प्रकार करना चाहिए ।।९४।।

समस्त शुचि कार्य करने वालों को परलोक में और इस लोक में (ये क्रियाएँ) परम ऐश्वर्य प्रदान करने वाली हैं तथा विद्वान् व्यक्ति को नित्य वेदत्रयी का अध्ययन करना चाहिए ।।९५।।

धर्मानुसार धनोपार्जन करके यत्नपूर्वक यज्ञानुष्ठान करना चाहिए तथा हे पुत्र ! उन कर्मों को करना चाहिए, जिनसे आत्मा निन्दित न हो ।।९६।।

तथा जो महाजनों में गोपनीय नहीं हैं, उन कर्मों को निशंक होकर करना चाहिए । हे वत्स ! गृहस्थ व्यक्ति के इस प्रकार आचरण करने से, धर्म, अर्थ और काम को प्राप्त करते हैं तथा उन्हें परलोक और इहलोक में कल्याण की प्राप्ति होती है ।।९७।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में अलर्कानुशासन में धर्माधर्म निरूपण नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

जड उवाच—

स एवमनुशिष्टः सन् मात्रा सम्प्राप्य यौवनम्। ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् ॥१
पुत्रांश्चोत्पादयामास यज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः। पितुश्च सर्वकालेषु चकाराज्ञानुपालनम् ॥२
ततः कालेन महता सम्प्राप्य चरमं वयः। चक्रेऽभिषेकं पुत्रस्य तस्य राज्ये ऋतध्वजः ॥३
भार्यया सह धर्मात्मा यियासुस्तपसेवनम्। अवतीर्णो महीरक्षो महाभागो महीपतिः ॥४
मदालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः। कामोपभोगसंसर्गप्रहाणाय सुतस्य वै ॥५

मदालसोवाच —

यदा दुःखमसह्यं ते प्रिय-बन्धुवियोगजम्। शत्रुबाधोद्भवं वापि वित्तनाशात्मसम्भवम् ॥६
भवेत् तत्कुर्वतो राज्यं गृहधर्मावलम्बिनः। दुःखायतनभूतो हि ममत्वालम्बनो गृही ॥७
तदास्मात् पुत्र निष्कृश्य मद्दत्तादंगुलीयकात्। वाच्यं ते शासनं पट्टे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥८

जड उवाच—

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै सौवर्णं सांगुलीयकम्। आशिषश्चापि या योग्याः पुरुषस्य गृहे सतः ॥९
ततः कुवलयाश्वोऽसौ सा च देवी मदालसा। पुत्राय दत्त्वा तद्राज्यं तपसे काननं गतौ ॥१०

इति श्री मार्कण्डेय महापुराणे मदालसोपाख्यानं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः।

जड़ बोला—

माता के द्वारा इस प्रकार उपदेश देने पर, युवक होने पर ऋतध्वज के पुत्र ने विधिपूर्वक विवाह किया ॥१॥

और उसने बहुत से पुत्र उत्पन्न किये तथा अनेक अनुष्ठान किये एवं हमेशा अपने पिता की आज्ञा का पालन किया ॥२॥

तत्पश्चात् बहुत समय व्यतीत होने पर वृद्धावस्था प्राप्त करने पर ऋतध्वज ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक किया ॥३॥

और अपनी पत्नी के साथ वन जाकर तपस्या करने के इच्छुक पृथ्वीपति महाराज ऋतध्वज ने सिंहासन त्याग दिया ॥४॥

मदालसा ने पुत्र को भोगादि से निवृत्त करने के विचार से (अन्तिम) वचन कहे ॥५॥

मदालसा बोली—

राज्य करते हुए एवं गृहस्थ धर्म का अवलम्बन किए हुए, जब तुमको किसी प्रिय बन्धु के वियोग से अथवा शत्रु-बाधा से उत्पन्न या धन के नाश के कारण असह्य दुःख हो, क्योंकि गृहस्थ सदा ममता परायण होने से दुःख का (आलय) घर है ॥६-७॥

(इसलिए) हे पुत्र, मेरे द्वारा दी गयी इस अंगूठी से निकाल कर इस सूक्ष्म अक्षरों में लिखे हुए शासन पट्ट का पाठ याद करना ॥८॥

जड़ बोला—

यह कहकर उसने वह स्वर्ण की अंगूठी उसे दे दी और जो घर में रहने वाले पुरुष के योग्य जो आशीर्वाद होते हैं, वे भी दिये ॥९॥

इसके पश्चात् वह राजा कुवलयाश्व और वह महारानी मदालसा पुत्र को राज्य देकर तप करने के लिए वन में गये ॥१०॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मदालसोपाख्यान नामक तेंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

चतुस्त्रिंशोऽध्याय:

जड उवाच—

सोऽप्यलर्को यथान्यायं पुत्रवन्मुदिता: प्रजा:। पालयामास धर्मात्मा स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिता: ।।१
दुष्टेषु दण्डं शिष्टेषु सम्यक् च परिपालनम् । कुर्वन् परां मुदं लेभे इयाज च महामखैः ।।२
अजायन्त सुताश्चास्य महाबलपराक्रमा: । धर्मात्मानो महात्मानो विमार्गपरिपन्थिन: ।।३
चकार सोऽर्थं धर्मेण धर्ममर्थेन वा पुन: । तयोश्चैवाविरोधेन बुभुजे विषयानपि ।।४
एवं बहूनि वर्षाणि तस्य पालयतो महीम् । धर्मार्थकामसक्तस्य जग्मुरेकमहर्यथा ।।५
वैराग्यं नास्य संजज्ञे भुञ्जतो विषयान् प्रियान् । न चाप्यलमभूत् तस्य धर्मार्थोपार्जनं प्रति ।।६
तं तथा भोगसंसर्गप्रमत्तमजितेन्द्रियम् । सुबाहुर्नाम शुश्राव भ्राता तस्य वनेचर: ।।७
तं बुबोधयिषु: सोऽथ चिरं ध्यात्वा महामति: । तद्वैरिसंश्रयं तस्य श्रेयोऽमन्यत भूपते: ।।८
तत: स काशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् । स्वराज्यमाप्तुमागच्छद् बहुश: शरणं कृती ।।९
सोऽपि चक्रे बलोद्योगमलर्कं प्रति पार्थिव: । दूतं च प्रेषयामास राज्यमस्मै प्रदीयताम् ।।१०

जड़ बोला—

उस धर्मात्मा राजा अलर्क ने भी पुत्रवत् प्रजा का न्यायपूर्वक पालन किया । इस प्रकार प्रसन्न प्रजा अपने-अपने कार्यों में लग गयी ।।१।।

दुष्टों को दण्ड देते हुए और शिष्टों का उचित रीति से पालन करते हुए, वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया ।।२।।

इसके पश्चात् इनके महा बली, पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा और कुमार्ग के शत्रु बहुत से पुत्र हुए ।।३।।

इस प्रकार (महात्मा अलर्क ने) धर्म से अर्थ और अर्थ से धर्म अथवा फिर उन दोनों के ही बिना विरोध के विषयों का भी उपभोग किया । ४।।

इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग में प्रवृत्त हुए, उस राजा (अलर्क) के बहुत वर्षों तक पृथ्वी का पालन करते हुए, बहुत से वर्ष भी एक दिन के समान व्यतीत हो गये ।।५।।

प्रिय विषयों का उपभोग करते हुए भी, उसके चित्त में न तो कभी वैराग्य उत्पन्न हुआ और नहीं धर्म, अर्थ के उपार्जन के प्रति कभी उदासीनता ही उत्पन्न हुई ।।६।।

जब उसके बनवासी सुबाहु नामक भाई ने उस (अलर्क) की भोग विलासिता, प्रमत्तता तथा अजितेन्द्रियता के सम्बन्ध में सुना ।।७।।

तो उसके बोध कराने के इच्छुक उस महाबुद्धिमान् ने चिरकाल तथा विचार करके, उस राजा के शत्रु राजाओं के पास जाना ही उसके कल्याण के लिए उचित समझा ।।८।।

तब अपना राज्य प्राप्त करने के लिए वह विशाल सेना और वाहनादि से युक्त काशी नरेश की शरण में अनेक बार गया ।।९।। ।

उस राजा ने भी अलर्क के प्रति अपनी सेना की चढ़ाई कर दी और दूत को भेजा कि इसे (सुबाहु) को राज्य दे दो ।।१०।।

सोऽपि नैच्छत्तदा दातुमाज्ञापूर्वं स्वधर्मवित् । प्रत्युवाच च तं दूतमलर्कः काशिभूभृतः ॥११
मामेवाभ्येत्य हार्देन याचतां राज्यमग्रजः। नाक्रान्त्या संप्रदास्यामि भयेनाल्पामपि क्षितिम् ॥१२
सुबाहुरपि नो याच्ञां चकार मतिमांस्तदा। न धर्मः क्षत्रियस्येति याच्ञा वीर्यधनो हि सः ॥१३
ततः समस्तसैन्येन काशीशः परिवारितः । आक्रान्तुमभ्यगाद् राष्ट्रमलर्कस्य महीपतेः ॥१४
अनन्तरैश्च संश्लेषमभ्येत्य तदनन्तरम् । तेषामन्यतमैर्भृत्यैः समाक्रम्यानयद् वशम् ॥१५
अपीडयंश्च सामन्तांस्तस्य राष्ट्रोपरो धनैः। तथा दुर्गांतपालांश्च चक्रे चाटविकान् वशे ॥१६

कांश्चिच्चोपप्रदानेन कांश्चिद् भेदेन पार्थिवान् ।
साम्नै वान्यान् वशं निन्ये निभृतास्तस्य येऽभवन् ॥१७

ततः सोऽल्प बलो राजा परचक्रावपीडितः । कोशक्षयमवापोच्चैः पुरं चारुध्यतारिणा ॥१८
इत्थं सम्पीडयमानस्तु क्षीण-कोशो दिने दिने। विषादमागात् परमं व्याकुलत्वं च चेतसः ॥१९
आर्ति स परमां प्राप्य तत् सस्मारांगुलीयकम्। यदुद्दिश्य पुरा प्राह माता तस्य मदालसा ॥२०
ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा वाचयित्वा द्विजोत्तमान्। निष्क्रृष्य शासनं तस्माद् ददृशे प्रस्फुटाक्षरम्॥२१

स्वधर्म (क्षत्रिय धर्म) के ज्ञाता अलर्क ने भी आज्ञा पूर्वक राज्य देना स्वीकार नहीं किया और काशी राज के दूत से कहा—॥११॥

(कि यदि) मेरे बड़े भाई मेरे पास आकर प्रेम पूर्वक राज्य माँगे (तो मैं सहर्ष दे दूँगा) किन्तु मैं आक्रमण के भय से थोड़ी सी भूमि भी उनको नहीं दूँगा ॥१२॥

मतिमान् सुबाहु ने भी उससे याचना नहीं की क्योंकि याचना क्षत्रिय का धर्म नहीं हैं। वह तो पराक्रम का ही धनी होता है ॥१३॥

उसके बाद काशीराज सम्पूर्ण सेना से घिरा हुआ, राजा अलर्क के राज्य पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ा ॥१४॥

तदनन्तर आत्मीय (सामन्त राजाओं से) युक्त होकर उनके दूसरे भृत्यों के साथ आक्रमण करके उन्होंने अलर्क को वश में कर लिया ॥१५॥

और अलर्क के राज्य के घेरे से सामन्तों को तथा दुर्ग रक्षकों को पीड़ित किया एवं वनवासियों को वश में किया ॥१६॥

किन्हीं राजाओं (सामन्तों) को धन से, किन्हीं को भेद से और अन्यों को दण्ड से ही वश में कर लिया। इस प्रकार ये सब उसके सेवक हो गये ॥१७॥

तब आक्रमण से पीड़ित हुआ वह राजा अलर्क अत्यन्त क्षीण (स्वल्प सैन्य युक्त) हो गया क्योंकि नगर भी शत्रुओं द्वारा घेर लिया गया और कोष भी खाली हो गया ॥१८॥

इस प्रकार पीड़ित हुआ दिन प्रतिदिन कोष के क्षीण होने पर चित्त की व्याकुलता से विषाद को प्राप्त हुआ ॥१९॥

(तो) अत्यन्त दुःखी होकर उसने अंगूठी का स्मरण किया जिसको लक्ष्य करके पहले कभी उसकी माता मदालसा ने कहा था ॥२ ॥

तब स्नान द्वारा पवित्र होकर एवं स्वास्तिवाचन करके उसके शासन पट्ट को निकालकर उसने स्पष्ट अक्षरों (लिखित शासन) को देखा ॥२१॥

तत्रैव लिखितं मात्रा वाचयामास पार्थिवः । प्रकाशपुलकाङ्गोऽसौ प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥२२
सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते । स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां संगो हि भेषजम् ॥२३
कामः सर्वात्मना हेयो हातुं चेच्छक्यते न सः । मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्यापि भेषजम् ॥२४
वाचयित्वा तु बहुशो नृणां श्रेयः कथंत्विति । मुमुक्षयेति निश्चित्य सा च तत्संगतोयतः ॥२५
ततः स साधु सम्पर्कं चिन्तयन् पृथिवीपतिः । दत्तात्रेयं महाभागमगच्छत् परमार्तिमान् ॥२६
तं समेत्य महात्मानमकल्मषमसङ्गिनम् । प्रणिपत्याभिसम्पूज्य यथान्यायमभाषत ॥२७
ब्रह्मन् कुरु प्रसादं मे शरण्यः शरणार्थिनाम् । दुःखापहारं कुरु मे दुःखार्त्तस्यातिकामिनः ॥२८

दत्तात्रेय उवाच—

दुःखापहारमद्यैव करोमि तब पार्थिवः । सत्यं ब्रूहि किमर्थं ते दुःखं तत् पृथिवीपते ॥२९
कस्य त्वं, कस्य वा दुःखं तत्त्वमेवं विचार्यताम् । अंगान्यंगि निरङ्गं च सर्वांगानि विचिन्तय ॥३०

जड उवाच—

इत्युक्तश्चिन्तयामास स राजा तेन धीमता । त्रिविधस्यापि दुःखस्य स्थानमात्मानमेव च ॥३१

तब राजा ने उसमें माता द्वारा लिखे गये वचनों को पढ़ा । शासन पढ़ते ही, उसका शरीर पुलकित हो गया और दोनों नेत्र आनन्द से फूल गये ॥२२॥

उसमें लिखा था) संगति का पूर्ण रूप से त्याग कर देना चाहिए यदि उसका पूर्ण रूप से त्याग न किया जा सके तो वह संगति सज्जनों के साथ करनी चाहिए, क्योंकि सत्संगति ही औषधि होती है ॥२३॥

काम का पूर्ण रूप से त्याग कर देना चाहिए । यदि उसका त्याग सम्भव न हो सके तो वह कार्य (कामादि) भी मोक्षेच्छा से ही करें क्योंकि वही उसकी औषधि है ॥२४॥

इस प्रकार माता द्वारा प्रदत्त शासन का) बहुत बार पाठ करके मनुष्यों का कैसे कल्याण हो । मोक्ष-कामना ही उसका एक मात्र उपाय है, यह निश्चय कर और क्योंकि उसकी प्राप्ति सत्संगति से ही हो सकती है, इसलिए, ॥२५॥

साधु संगति के विषय में चिन्तन करते हुए, अत्यन्त भावातुर होकर, वह राजा महाभाग दत्तात्रेय के पास गया ॥२६॥

एवं उन निष्पाप तथा संग रहित महात्मा के पास जाकर, प्रणाम एवं विधि पूर्वक पूजा करके बोला—॥२७॥

हे ब्रह्मन् ! शरणार्थियों के शरण स्वरूप ! मेरे ऊपर कृपा कीजिए । दु:खों से अत्यन्त दुःखी हुए मुझको भी दुःख से उद्धार कीजिये ॥२८॥

दत्तात्रेय बोले—

हे राजन् ! मैं आज ही तुम्हारे दुःखों का अपहरण कर देता हूं । हे पृथिवीपते ! तुम सत्य कहो कि तुमको किस कारण दुःख है ? ॥२९॥

सर्वप्रथम तो इस तत्व का विचार करो कि तुम किसके हो और दुःख किसका है ? अंग, अंगी और निरंग इन सबका विचार करो ॥३०॥

जड़ बोला—

उन महात्मा दत्तात्रेय के इस प्रकार कहने पर उस राजा ने आत्मा के त्रिविध भौतिक, दैविक और आध्यात्मिक दुःखों का आधार एवं आत्मा का विचार किया ॥३१॥

स विमृश्य चिरं राजा पुनः पुनरुदारधीः । आत्मानमात्मना धीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥३२
नाहमुर्वी न सलिलं न ज्योतिरनिलो न च । नाकाशं किन्तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यते ॥३३
न्यूनातिरिक्ततां याति पञ्चकेऽस्मिन् सुखासुखम् ।
यदि स्यान्मम किं न स्यादन्यस्थेऽपि हितं मयि ॥३४
नित्यप्रभूतसद्भावे न्यूनाधिक्यान्नतोन्नते । तथा च ममता त्यक्तो विशेषेणोपलभ्यते ॥३५
तन्मात्रावस्थिते सूक्ष्मे तृतीयांशे च पश्यतः । तथैव भूतसद्भावं शारीरं किं सुखासुखम् ॥३६
मनस्यवस्थितं दुःखं सुखं वा मानसं च यत् । यतस्ततो न मे दुःखं सुखं वा न ह्यहं मनः ॥३७
नाहङ्कारो न च मनो बुद्धिर्नाहं यतस्ततः। अन्तःकरणजं दुःखं पारक्यं मम तत् कथम् ॥३८
नाहं शरीरं न मनो यतोऽहं पृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ।
तत्सन्तु चेतस्यथवापि देहे सुखानि दुःखानि च किं ममात्र ॥३९
राज्यस्य वाञ्छां कुरुतेऽप्रजो(ऽग्रजो)ऽस्य देहस्यचेत् पञ्चमयः स राशिः ।
गुणप्रवृत्त्या मम किन्नु तत्र तत्स्थः स चाहं च शरीरतोऽन्यः ॥४०

उदार बुद्धि उस राजा ने बार-बार चिरकाल तक आत्मा के द्वारा आत्मा का विचार करके, हँसकर इस प्रकार कहा—॥३२॥

न तो मैं पृथ्वी हूं, न जल, न ज्योति, न वायु और न ही आकाश हूं । किन्तु शरीर का आश्रय लेकर (इन सब तत्त्वों के मेल से देह युक्त होकर) सुख चाहता हूं ॥३३॥

इस पंच भौतिक देह में सुख अथवा दुःख की प्राप्ति न्यूनाधिक्य होती रहती है। यदि वह उसमें हो तो मुझे क्या (हानि है ?) अथवा न ही हो या अन्य स्थान पर हो तो भी मेरे हित में ही है। क्योंकि वह देह नहीं है, स्वतन्त्र भाव से देह में अवस्थान है, अतः मेरे घटने-बढ़ने की भी सम्भावना नहीं है ॥३४॥

मुझे नित्य प्रभूत सद्भाव की प्राप्ति है। न्यूनाधिक्य के कारण ऊँचा-नीचा होता हूं। इसलिए ममता का त्याग करके मुझे ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिए ॥३५॥

मैं तन्मात्राओं के अवस्थित सूक्ष्म रूप में तथा तृतीयांश में अवस्थित हूं, इस प्रकार देखते हुए, जैसे मेरा यह शरीर, उसी प्रकार अन्य भूतों का सद्भाव (उपस्थिति) है। अतः सुख दुःख क्या है ? (कुछ भी नहीं है) ॥३६॥

सुख, दुःख, मन का धर्म होने से मन में ही रहते हैं क्योंकि मैं मन भी नहीं हूं तो मुझे सुख दुःख भी नहीं है ॥३७॥

न मैं अहंकार हूं न मन हूं और न बुद्धि हूं तो फिर मुझ में अन्तःकरण से उत्पन्न दुःख से पार्थक्य ही कैसे हो सकता है ? ॥३८॥

न मैं शरीर हूं और न ही मन हूं क्योंकि मैं शरीर और मन इन दोनों से पृथक् हूं, तब सुख और दुःख शरीर में रहे अथवा मन में रहे मुझे इन सब से क्या ? ॥३९॥

राज्य रहित (बड़े भाई) हीन राज्य की कामना करते हैं और यह शरीर पञ्च तत्व का पुञ्ज है। इस शरीर के पाँच भौतिक अवयव है) तो उनकी गुण प्रवृत्ति में मेरा क्या ? क्योंकि राज्य पर स्थित वह (बड़ा भाई) और मैं दोनों ही शरीर से अन्य है ॥४०॥

न यस्य हस्तादिकमप्यशेषं मांसं न चास्थीनिर्शिराविभागः ।
कस्तस्य नागाश्व-रथादिकोशैः स्वल्पोऽपि सम्बन्ध इहास्तिपुंसः ।।४१
तस्मान्न मेऽरिर्न च मेऽस्ति दुःखं न मे सुखं नापि पुरं न कोशम् ।
न च श्वनागादिबलं न तस्य नान्यस्य वा कस्यचिद्वा ममास्ति ।।४२
यथा घटी-कुम्भ-कमण्डलुस्थमाकाशमेकं बहुधा हि दृष्टम् ।
तथा सुबाहुः स च काशिपोऽहं मन्ये च देहेषु शरीरभेदैः ।।४३
इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे पितापुत्रसम्वादे आत्मविवेको नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

एवं जिसके न तो हाथ पैरादि अंग हैं और न माँस, हड्डी, शिराएँ आदि विभाग है। उस पुरुष को हाथी, घोड़े, रथ एवं कोशादि इन सब वस्तुओं से थोड़ा भी सम्बन्ध नहीं है ।।४१।।

इसलिए न तो मेरा कोई शत्रु है न मुझे दुःख है और न ही सुख, न मेरा राज्य है, न कोश है और न ही अश्व, हाथी और सेना आदि है। न उसकी है न दूसरे की है और न ही अन्य किसी की है अथवा न मेरी है ।।४२।।

मेरा मत है कि जिस प्रकार घटी, कुम्भ और कमण्डल में स्थित आकाश एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होता है। उसी प्रकार आत्मा सुबाहू काशीराज और मुझ में एक होकर भी शरीर भेद से, अनेक दीख रही हैं। ऐसा मैं मानता हूं ।।४३।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में पिता पुत्र संवाद में आत्म विवेक नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

जड उवाच—

दत्तात्रेयं ततो विप्रं प्रणिपत्य स पार्थिवः । प्रत्युवाच महात्मानं प्रश्रयावनतो वचः ।।१
सम्यक् प्रपश्यतो ब्रह्मन् मम दुःखं न किञ्चन । असम्यग्दर्शिनो मग्नाः सर्वदैवासुखार्णवे ।।२
यस्मिन् यस्मिन् ममत्वेन बुद्धिः पुंसः प्रजायते । ततस्ततः समादाय दुःखान्येव प्रयच्छति ।।३
मार्जार-भक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे । न तादृङ् ममता शून्ये कलविङ्केऽथ मूषिके ।।४

जड बोला—

तदुपरान्त वह राजा (अलर्क) विप्र दत्तात्रेय से विनयावनत होकर; प्रणाम पूर्वक बोला – ।।१।।

हे ब्रह्मन् ! ज्ञान दृष्टि से भली प्रकार देखते हुए अब मुझे कोई दुःख नहीं हैं। जो असम्यक्दर्शी हैं, वे सदैव ही दुःख रुपी समुद्र में निमग्न रहते हैं ।।२।।

मनुष्य की बुद्धि जिस-जिस विषय में ममता-युक्त हो जाती हैं। उन-उनको ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त बुद्धि दुःखों को ही प्रदान करती हैं ।। ।।

घर के मुर्गे को बिल्ली के खाने पर जैसा दुःख होता है वैसा (दुःख) ममता शून्य चिड़िया या चूहे (के खाने पर नहीं होता) ।।४।।

सोऽहं न दुःखी न सुखी यतोऽहं प्रकृतेः परः। यो भूताभिभवो भूतैः सुखदुःखात्मको हि सः ॥५

दत्तात्रेय उवाच—

एवमेतन्नरव्याघ्र यथैतद् व्याहृतं त्वया। ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति च निर्वृत्तिः ॥६
मत्प्रश्नादेव ते ज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम्। ममेति प्रत्ययो येन क्षिप्तः शाल्मलितूलवत् ॥७
अहमित्यंकुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान् महान्। गृहक्षेत्रोच्च शाखश्च पुत्रदारादि पल्लवः ॥८
धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्धितः। पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःख महाफलः ॥९
अपवर्गपथव्यापी मूढसम्पर्कसेचनः। विधित्साभृङ्गमालाढ्योऽकृत्यज्ञानमहातरुः ॥१०
संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः।
भ्रान्ति-ज्ञान-सुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकं कुतः ॥११
यैस्तु सत्सङ्गपाषाणशितेन ममतातरुः। छिन्नो विद्याकुठारेण ते गतास्तेन वर्त्मना ॥१२
प्राप्य ब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम्। प्राप्नुवन्ति परां प्राज्ञा निर्वृत्तिवृत्तिवर्जिताः ॥१३
भूतेन्द्रियमयं स्थूलं न त्वं राजन्न चाप्यहम्। न तन्मात्रं मया वाच्यं नैवान्तःकरणात्मकौ ॥१४

इसलिए मैं न दुःखी हूं और न सुखी हूं क्योंकि मैं प्रकृति से परे (अतीत) हूं। जो भूतों के द्वारा अभिभूत (आक्रान्त) होता है, वही सुख, दुःखात्मक होता है ॥५॥

हे नरश्रेष्ठ ! यह जैसा तुम कह रहे हो, यह सब वैसा ही है। यह मेरा है; यही दुःख का मूल है और मेरा नहीं है, यही दुःख की निवृत्ति है ॥६॥

मेरे प्रश्न करते ही तुम्हें यह श्रेष्ठ ज्ञान उत्पन्न हो गया। तुम्हारी ममता बुद्धि ('मेरा है', इस प्रकार की भावना) से सेम्बल की रूई के समान उड़ गयी ॥७॥

अहंकार रूप अंकुर से, ममता रूपी स्कन्धों (तनों) वाले, अज्ञान रूपी विशाल वृक्ष की उत्पत्ति होती है। जिसके घर और खेत आदि स्थायी सम्पत्ति) शाखाएं हैं और पुत्र और पत्नी आदि छोटे पत्ते हैं ॥८॥

एवं धन धान्य बड़े पत्ते हैं। जो एक साथ ही नहीं बढ़ते हैं (अपितु धीरे-धीरे बढ़ते हैं) पुण्य एवं पाप उसके अग्र पुष्प और सुख दुःख बड़े-बड़े फल हैं ॥९॥

अपवर्ग रूपी मार्ग में फैले हुए इसका मूर्खों के सम्पर्क रूपी जल सेचन होता है एवं अभिलाषा रूपी भौरों की पक्तियों से यह समृद्ध है। इस प्रकार यह मुक्ति के मार्ग पर फैला हुआ अज्ञान रूपी विशाल वृक्ष है ॥१०॥

संसार रूपी पथ पर (चलने से) जो थक जाते हैं भ्रांति ज्ञान एवं सुख के अधीन हुए वे इस (वृक्ष) की छाया का आश्रय लेते हैं, उन व्यक्तियों को मोक्ष लाभ कैसे हो सकता है ॥११॥

जो मनुष्य सत्संग रूपी पत्थर पर तेज किये गये विद्या रूपी कुठार (कुल्हाड़े) से इस ममता रूपी वृक्ष को काटने में समर्थ होते हैं, वे उस (ब्रह्म) मार्ग से जाते हैं। १२॥

और (वे) शीतल, धूल रहित एवं निष्कण्टक ब्रह्मवन को प्राप्त करके, वृत्ति रहित होकर परम प्रज्ञा एवं निर्वृत्ति (शान्ति) को प्राप्त करते हैं ॥१३॥

हे राजन् ! न तो आप ही भूतेन्द्रियमय स्थूल (पदार्थ) है और न मैं ही हूं। न ही हम दोनों तन्मात्रामय हैं और न ही अन्तःकरणात्मक है ॥१४॥

कं वा पश्यामि राजेन्द्र प्रधानमिदमावयोः । यतः परो हि क्षेत्रज्ञ संघातो हि गुणात्मकः ।।१५
मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसां यथा । एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मनोर्नृप ।।१६

अलर्क उवाच –

भगवंस्त्वत् प्रसादेन ममाविर्भूतमुत्तमम् । ज्ञानं प्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् ।।१७
किन्त्वत्र विषयाक्रान्ते स्थैर्य्यवत्त्वं न चेतसि। न चापि वेद्मि मुच्येयं कथं प्रकृतिबन्धनात् ।।१८
कथं न भूयोभूयश्च कथं निर्गुणतामियाम् । कथं च ब्रह्मणैकत्वं व्रजेयं शाश्वतेन वै ।।१९
तन्मे योगं तथा ब्रह्मन् प्रणतायाभियाचते। सम्यग्ब्रूहि महाप्राज्ञ सत्सङ्गो ह्युपकृन्नृणाम् ।।२०

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे दत्तात्रेयालर्क संवादे प्रश्नाध्याय वर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

अथवा हे राजेन्द्र, हम दोनों में से कौन प्रकृतिमय दीख पड़ता है, क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष प्रकृति से अतीत हैं और पञ्चभौतिक पदार्थ समूह ही गुणात्मक है ।।१५।।

हे राजन् ! जिस प्रकार मशक और गूलर, सरकंडा और मूंज मछली तथा जल में एकत्व होने पर भी पृथक् भाव हैं । उसी प्रकार शरीर और आत्मा में (एकत्व प्रतीत होता है) पर भिन्नता है ।।१६।।

अलर्क बोला—

हे भगवन् ! आपकी कृपा से मुझे प्रधान और चित् शक्ति का विवेक (भेद) करने वाला इस प्रकार का उत्कृष्ट ज्ञान उत्पन्न हो गया है ।।१७।।

किन्तु इन विषयों से आक्रान्त होने के कारण मेरे मन में स्थिरता नहीं है । इसलिए मैं यह भी नहीं जान पा रहा हूं कि प्रकृति के बन्धन से मेरा छुटकारा कैसे होगा ? ।।१८।।

और किस प्रकार पुनः उत्पन्न न होऊँ एवं निर्गुणत्व कैसे प्राप्त हो तथा किस प्रकार शाश्वत ब्रह्म के साथ एकत्व प्राप्ति हो ।।१९।।

हे ब्रह्मन्, मैं आपसे प्रणत होकर याचना कर रहा हूं, आप मुझे उस योग का भली प्रकार उपदेश दीजिये । हे महाप्राज्ञ ! क्योंकि सत्संग ही मनुष्यों का उपकार करता है ।।२०।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में दत्तात्रेय और अलर्क संवाद में प्रश्नाध्याय वर्णन नामक पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

दत्तात्रेय उवाच—

ज्ञानपूर्वो वियोगो योऽज्ञानेन सह योगिनः । सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्यं प्राकृतैर्गुणैः ।।१

दत्तात्रेय बोले—

जब योगियों का अज्ञान से ज्ञानपूर्वक वियोग हो जाता है । वही मुक्ति कहलाता है तथा प्रकृति के गुणों के साथ पृथक्ता हो जाना ही ब्रह्म के साथ ऐक्य हो जाता है ।।१।।

योगे च शक्तिर्विदुषां येन श्रेयः परं भवेत् । मुक्तिर्योगात् तथा योगः सम्यग्ज्ञानान्महीपते ।।
संगदोषोद्भवं दुःखं ममत्वासक्तचेतसाम् ।।२
तस्मात् सङ्गं प्रयत्नेन मुमुक्षुः संत्यजेन्नरः । सङ्गाभावे ममेत्यस्याः ख्यातेर्हानिः प्रजायते ।।३
निर्ममत्वं सुखायैव वैराग्याद् दोषदर्शनम् । ज्ञानादेव च वैराग्यं ज्ञानं वैराग्यपूर्वकम् ।।४
तद्गृहं यत्र वसतिस्तद् भोज्यं येन जीवति । यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा ।।५
उपभोगेन पुण्यानामपुण्यानां च पार्थिव । कर्त्तव्यमिति नित्यानामकामकरणात् तथा ।।६
असंचयादपूर्वस्य क्षयात् पूर्वार्जितस्य च । कर्मणोऽबन्धमाप्नोति शरीरं च पुनः पुनः ।।७
कर्मणामोक्षमाप्नोति वैपरीत्येन तस्य तु । एतत्ते कथितं ज्ञानं योगं चेमं निबोध मे ।।
यं प्राप्य ब्रह्मणो योगी शाश्वतान्नान्यतां व्रजेत् ।।८
प्रागेवात्मात्मना जेयो योगिनां स हि दुर्जयः । कुर्वीत तज्जये यत्नं तस्योपायं श्रृणुष्व मे ।।९
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।।१०

हे महीपते ! योग से मुक्ति एवं सम्यक् ज्ञान से योग की प्राप्ति होती है। योग में वह शक्ति है, जिससे विद्वानों को परम कल्याण की उपलब्धि होती है। ममता से आसक्त हुए चित्त वालों को संग दोषों से दुःख होता है ।।२।।

इसलिए मोक्ष के इच्छुक व्यक्ति को विषयासक्ति का प्रयत्नपूर्वक त्याग कर देना चाहिए। विषयासक्ति के अभाव में मेरापन (ममता) इस प्रकार से प्रसिद्ध ममत्व-ज्ञान नष्ट हो जाता है ।।३।।

निर्ममत्व ही सुख का कारण है। वैराग्य से (सांसारिक वस्तुओं के) दोषों का दर्शन होता है और ज्ञान से वैराग्य (का उदय होता है) तथा ज्ञान भी वैराग्य से उत्पन्न होता है ।।४।।

वही घर है, जहाँ निवास किया जाय, वही भोग्य है जिससे जीवित रहा जाए एवं जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है, वही ज्ञान है। इसके जो विपरीत है, वही अज्ञान कहा जाता है ।।५।।

हे पार्थिव ! पुण्य और अपुण्यों के उपभोग के पश्चात् निष्काम भाव से नित्यकर्म करने चाहिएँ ।।६।।

इससे पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय एवं नवीन कर्मों का असञ्चय होने से शरीर बार-बार कर्म बन्धन प्राप्त नहीं करता ।।७।।

(इस प्रकार के निष्काम) कर्म करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है और इसके विपरीत आचरण करने से पुनः जन्म होता है। यह सब मैंने तुम्हें ज्ञान योग का उपदेश किया। जिसे प्राप्त करके योगीजन शाश्वत ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी को प्राप्त नहीं करते ।।८।।

पहले ही आत्मा के द्वारा आत्मा को जीत लेना चाहिए क्योंकि आत्मा ही योगियों के लिए दुर्जय है। अतः उसके जीतने के लिए यत्न करना चाहिए। अब मुझसे (उसके जीतने के) उपाय को सुनो ।।९।।

समस्त दोषों को प्राणायाम के द्वारा एवं समस्त पापों को धारणा के द्वारा, प्रत्याहार से विषय समूह को तथा ध्यान से अनीश्वर गुणों को दग्ध करना चाहिए ।।१०।।

यथा पर्वतधातूनां ध्मातानां दह्यते मलम् । तथेन्द्रियकृता दोषा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ।।११
प्रथमं साधनं कुर्यात् प्राणायामस्य योगवित् । प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः ।।१२
लघुमध्योत्तरीयाख्यः प्राणायामस्त्रिधोदितः । तस्य प्रमाणं वक्ष्यामि तदलर्क शृणुष्व मे ।।१३
लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणः स तु मध्यमः । त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः परिकीर्त्तितः ।।१४
निमेषोन्मेषणे मात्राकालो लघ्वक्षरस्तथा । प्राणायामस्य संख्यार्थं स्मृतो द्वादश मात्रिकः ।।१५
प्रथमेन जयेत् स्वेदं मध्यमेन च वेपथुम् । विषादं हि तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात् ।।१६
मृदुत्वं सेव्यमानास्तु सिंहशार्दूलकुञ्जराः । यथा यान्ति तथा प्राणो वश्यो भवति योगिनः ।।१७
वश्यं मत्तं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः । तथैव योगी छन्देन प्राणं नयति साधितम् ।।१८
यथाहि साधितः सिंहो मृगान् हन्ति न मानवान् । तद्वन्निषिद्धपवनः किल्विषं न नृणां तनुम् ।।१९
तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायाम परो भवेत् । श्रूयतां मुक्तिफलदं तस्यावस्थाचतुष्टयम् ।।२०
ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा संवित्प्रसादश्च महीपते । स्वरूपं शृणु चैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात् ।।२१

जिस प्रकार पर्वत से प्राप्त धातुओं के दोषों को दहन के द्वारा (अग्नि संस्कार से) जला दिया जाता है। उसी प्रकार प्राण वायु को वश में करने से समस्त इन्द्रियकृत दोष दग्ध हो जाते हैं ।।११।।

योगी सर्व प्रथम प्राणायाम का अभ्यास करे क्योंकि प्राण और अपान इन दो वायुओं के निरोध को प्राणायाम कहते है ।।१२।।

प्राणायाम तीन प्रकार का होता है - लघु, मध्य और उत्तरीय । हे अलर्क ! (उन तीनों प्राणायामों के) प्रमाण को बताता हूं उसको सुनो ।।१३।।

लघु (प्राणायाम) बारह मात्रा का होता है और उसका दुगना (चौबीस मात्रा का) मध्यम होता है तथा उत्तम प्राणायाम उस ,लघु) का तिगुना (छत्तीस मात्रा का) कहा गया है ।।१४।।

आँख की पलक गिरने और उठने में जो समय लगता है वही एक मात्रा का काल है और लघु नामक प्राणायाम इसी प्रकार की बारह मात्राओं वाला कहा गया है ।।१५।।

प्रथम (प्राणायाम) के द्वारा पसीना और दूसरे (मध्यम प्राणायाम के द्वारा कम्पन और तीसरे (उत्तम प्राणायाम) के द्वारा विषाद आदि दोषों को क्रमशः जीतना चाहिए ।।१६।।

जिस प्रकार सेवा किये जाते हुए सिंह, बाघ और हाथी मृदुलता को प्राप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार (प्राणायाम के द्वारा) प्राण योगियों के वश में हो जाते हैं ।।१७।।

जिस प्रकार महावत मतवाले हाथी को वश में करके इच्छानुसार चलाता है, उसी प्रकार योगी प्राण को वशीभूत करके इच्छानुसार कार्य सिद्ध कर लेते हैं ।।१८।।

जिस प्रकार सिखाया हुआ सिंह मृगादि को तो मारता है, किन्तु मनुष्यों को नहीं, उसी प्रकार रोका हुआ (वश में किया हुआ) प्राण मनुष्यों के पापों को नष्ट करता है, किन्तु शरीर को कोई हानि नहीं करता ।।१९।।

इसीलिए कहा गया है कि मुक्त योगी को सदैव प्राणायाम करना चाहिए। उसकी चार अवस्थाएँ मुक्ति रूपी फल प्रदान करने वाली होती हैं, उन्हें सुनो—।।२०।।

हे राजन् ! ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित् और प्रसाद (ये उसकी चार अवस्थाएँ हैं) अब मैं इनके स्वरूप का क्रमानुसार वर्णन करता हूं, उसे सुनो—।।२१।।

कर्म्मणामिष्टदुष्टानां जायते फलसंक्षयः । चेतसोऽपकषाय त्वं यत्र सा ध्वस्तिरुच्यते ॥२२

ऐहिकामुष्मिकान् कामाॅल्लोभमोहात्मकान् स्वयम् ।
निरुध्यास्ते सदा योगी प्राप्तिः सा सार्वकालिकी ॥२३

अतीतानागतानर्थान् विप्रकृष्टतिरोहितान् । विजानातीन्दुसूर्यर्क्षग्रहाणां ज्ञानसम्पदा ॥२४
तुल्यप्रभावस्तु यदा योगी प्राप्नोति संविदम् । तदा संविदिति ख्याता प्राणायामस्य सा स्थितिः ॥२५
यान्ति प्रसादं येनास्य मनः पञ्च च वायवः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः ॥२६
शृणुष्व च महीपाल प्राणायामस्य लक्षणम् । युञ्जतश्च सदा योगं यादृग्विहितमासनम् ॥२७
पद्ममर्द्धासनं चापि तथा स्वस्तिकमासनम् । आस्थाय योगं युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि ॥२८
समः समासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ । संवृतास्यस्तथैवोरू सम्यग्विष्टभ्य चाग्रतः ॥२९
पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन् प्रयतः स्थितः । किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत् ॥३०
स पश्यन्नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् । रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा ॥३१
संछाद्य निर्मले सत्त्वे स्थितो युञ्जीत योगवित् । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन् मन एव च ॥३२
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् । यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् सर्वाङ्गानीव कच्छपः ॥३३

जिस (अवस्था) में इष्ट और दुष्ट (दोनों प्रकार के) कर्मों के फल नष्ट हो जाते हैं (क्षय को प्राप्त हो जाते हैं) और चित्त निर्मल हो जाता है । वह (प्राणायाम की अवस्था) ध्वस्ति कही जाती है ॥२२॥

योगी जन जिस अवस्था में ऐहिक और पारलौकिक लोभ और मोहात्मक समस्त कामनाओं का सदा निरोध करके जिस अवस्था में स्थित होता है, वह सर्वकालिकी अवस्था 'प्राप्ति' कही जाती है ॥२३॥

और जब योगी, ज्ञान सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है एवं चन्द्र, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रादि की तरह क्षमता प्राप्त कर लेता है एवं अतीत, अनागत तथा तिरोहित व दूरस्थ विषयों को जान लेता है तब प्राणायाम की वह अवस्था संविद्' नाम से पुकारी जाती है ॥२४–२५॥

और जिस अवस्था के द्वारा योगी के मन, पांच वायु. इन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयों की शुद्धि हो जाती है । उसको प्रसाद कहते हैं ॥२६॥

हे राजन् ! अब तुम प्राणायाम के लक्षण और योग का अभ्यास करते समय जिस प्रकार के आसन का विधान है, उसको सुनो ॥२७॥

पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन आदि आसनों को लगाकर, हृदय में प्रणवकार का चिंतन करते हुए योग के अनुष्ठान में प्रवृत्त होना चाहिए ॥२८॥

(साधक को) समासन (आसन की समानता ऊँचा नीचा न हो) होकर दोनों पांव और जंघाएँ आगे की ओर बटोरकर मुँह बन्द करके, संयत चित्त से इस प्रकार बैठे, जिससे हाथ से जननेन्द्रिय अथवा अण्डकोशों का स्पर्श न हो । (इस समय) गर्दन कुछ ऊँची रहे तथा दाँतों से दाँत स्पर्श न करें ॥२९-३०॥

और उस समय उस योगी को इधर-उधर दिशाओं में न देखते हुए, अपने नासिकाग्र पर ही दृष्टि रखनी चाहिए तथा योग ज्ञानी को रजोगुण से तमोगुण को और सतोगुण से रजोगुण को दूर करके, निर्मल सतोगुण में स्थित होकर योग का अभ्यास करना चाहिए एवं समवाय के द्वारा इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों, प्राणों और मन को रोककर योगी कछुए के समान अपने सभी अगों को विषयों से खींचकर रक्खे ॥३१-३३॥

सदात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि । स बाह्याभ्यन्तरं शौचं निष्पाद्याकण्ठनाभितः ॥३४
पूरयित्वा बुधो देहं प्रत्याहारमुपक्रमेत् । प्राणायामादशद्वौ च धारणा साऽभिधीयते ॥३५
द्वे धारणे स्मृते योगे योगिभिस्तत्त्वदृष्टिभिः । तथा वै योगयुक्तस्य योगिनो नियतात्मनः ॥३६
सर्व-दोषाः प्रणश्यन्ति स्वस्थश्चैवोपजायते । वीक्षते च परं ब्रह्म प्राकृतांश्च गुणान् पृथक् ॥३७
व्योमादिपरमाणूंश्च तथात्मानमकल्मषम् । इत्थं योगी यताहारः प्राणायामपरायणः ॥३८
जितां जितां शनैर्भुमिमारोहेत यथा गृहम् । दोषान् व्याधींस्तथा मोहमाक्रान्ता भूरनिर्जिता ॥३९
विवर्धयति नारोहेत् तस्माद् भूमिमनिर्जिताम् । प्राणानामुपसंरोधात् प्राणायाम इति स्मृतः ॥४०
धारणेत्युच्यते चेयं धार्यते यन्मनो यया । शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानि यदक्षाणि यतात्मभिः ॥४१
प्रत्याह्रियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततः स्मृतः । उपायश्चात्र कथितो योगिभिः परमर्षिभिः ॥४२
येन व्याधादयो दोषा न जायन्ते हि योगिनः । यथा तोयार्थिनस्तोयं यन्त्रनालादिभिः शनैः ॥४३
आपिबेयुस्तथा वायुं पिबेद्योगीजितश्रमः । प्राङ्नाभ्यां हृदये चाथ तृतीये च तथोरसि ॥४४

एक मात्र आत्मरति में स्थित हुआ वह सदैव आत्मा में आत्मा के दर्शन करता है (इसके अतिरिक्त) वह बुद्धिमान् योगी कण्ठ से लेकर नाभि पर्यन्त बाह्य और आभ्यान्तरिक शुद्धि करके, ॥३४॥

देह को परिपूर्ण करके प्रत्याहार का आचरण करना चाहिए । प्राणायाम बारह प्रकार के और धारणा दो प्रकार की कही जाती है ॥३५॥

तत्त्वदर्शी योगियों ने भी योगाभ्यास में दो प्रकार की धारणा का उल्लेख किया है । संयमी (नित्यात्मा) होकर योगाभ्यास करने से योगी के, सभी दोष नष्ट हो जाते हैं एवं शान्ति लाभ होता है । प्राकृत गुणों का पृथक् दर्शन होता है एवं परम ब्रह्म का साक्षात्कार होता है ॥३६-३७॥

आकाशादि के परमाणुओं तथा विशुद्ध आत्मा का भी (प्रत्यक्ष होता है) इस प्रकार संयत आहार एवं प्राणायाम परायण योगी, ॥३८॥

धीरे धीरे योग भूमि को जीत ले और जिस प्रकार अपने घर की भूमि पर चढ़ता है, उसी प्रकार उस योग भूमि पर आरूढ़ हो जाए । अनिर्जित योगभूमि (शरीर) व्याधि, मोह आदि दोषों से आक्रान्त हो जाती है ॥३९॥

एवं इन दोषों की वृद्धि करती है, इसलिए योगभूमि पर विजय प्राप्त किये बिना उस पर आरूढ़ नहीं होना चाहिए । जिसके द्वारा पञ्च-प्राणों का रोधन (संयतीकरण) होता है, उसे ही प्राणायाम कहते हैं ॥४०॥

जिसके द्वारा मन को धारण किया जाता है, वह धारणा कहलाती है । नियतात्मा (व्यक्ति) जिस (अवस्था) में योग द्वारा शब्दादि विषयों से इन्द्रियों का प्रत्याहरण करते हैं, उसको ही प्रत्याहार कहते हैं, उत्तम योगी और बड़े ऋषियों ने इस विषय में उत्तम उपाय कहे हैं ॥४१-४२॥

उनके अवलम्बन से योगियों के शरीर में व्याधि आदि दोष उत्पन्न नहीं होते हैं । जिस प्रकार प्यासे मनुष्य यन्त्र नालिका आदि के द्वारा धीरे-धीरे ॥४३॥

जल पीते हैं, उसी प्रकार जित-श्रम योगी धीरे-धीरे वायु का पान करे । पहले नाभि में पुनः हृदय में और तीसरे नम्बर पर वक्षस्थल में, ॥४४॥

कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु । किञ्च तस्मात् परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ।।४५
दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् । नाध्मातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुल चेतनः ।।४६
युञ्जीत योगं राजेन्द्र योगीसिद्धयर्थमादृतः । नातिशीते न चोष्णे वै न द्वन्द्वे नानिलात्मके ।।४७
कालेष्वेतेषु युञ्जीत न योगं ध्यानतत्परः । स शब्दाग्निजलाभ्याशे जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।।४८
शुष्कपर्णचये नद्यां श्मशाने स सरीसृपे । सभये कूपतीरे वा चैत्यवल्मीक संचये ।।४९
देशेष्वेतेषु तत्त्वज्ञो योगाभ्यासं विवर्जयेत् । सत्त्वस्यानुपपत्तौ च देशकालं विवर्जयेत् ।।५०
नासतो दर्शनं योगे तस्मात् तत् परिवर्जयेत् । दोषानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति वै ।।५१
विघ्नायतस्य वै दोषा जायन्ते तन्निबोध मे । बाधिर्य्यं जडता लोपः स्मृतेर्मूकत्वमन्धता ।।५२
ज्वरश्च जायते सद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः । प्रमादाद्योगिनो दोषा यद्येते स्युश्चिकित्सितम् ।।५३
तेषां नाशाय कर्त्तव्यं योगिनां तन्निबोध मे । स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैव धारयेत् ।।५४
वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्ते तथोदरे । यवागूं वापि पवनं वायुग्रन्थि प्रतिक्षिपेत् ।।५५
तद्वत् कम्पे महाशैलं स्थिरं मनसि धारयेत् । विघाते वचसो वाचं बाधिर्य्ये श्रवणेन्द्रियम् ।।५६

पुनः क्रमशः कण्ठ, मुख, नासिकाग्र, नेत्र फिर भौंहों के बीच में, तालु में और अन्त में परम ब्रह्म में धारणा करनी चाहिए। इस प्रकार यह (दस प्रकार की) धारणा कही गयी है ॥४५॥

इस दस प्रकार की धारणा को प्राप्त करके (योगी) अक्षर ब्रह्म के सारूप्य को प्राप्त कर लेता है। हे राजन् ! योगी को सिद्धि लाभ के लिए, हाँफना, भूख, थकावट और चित्त चाञ्चल्य इनका परित्याग कर, समत्व बुद्धि से आदरपूर्वक योगाभ्यास करना चाहिए। न अति शीतलता में न अति उष्णता में और न ही वायु के द्वन्द्व (आंधी) में, इन समयों पर ध्यान तत्पर होकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिए, कोलाहल (युक्त वातावरण में, अग्नि और जल के निकट, जीर्ण गोष्ठ (गो बाड़ा) चौराहे पर, सूखी पत्तियों के समूह पर, नदी में, श्मशान में, साँप, बिच्छुओं के स्थान पर, भय युक्त प्रदेश में, कुएँ के किनारे अथवा चैत्य या बाँबी से युक्त स्थल पर, ॥४६-४९॥

इन-इन स्थानों में तत्त्व वेत्ता योगी को योगाभ्यास नहीं करना चाहिए। जिस देश और काल में सत्त्व गुण की उत्पत्ति न हो, तब भी (योगाभ्यास) नहीं करना चाहिए ॥५०॥

सत्वगुण की अनुपस्थिति में योगाभ्यास करने पर आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता, इसलिए उस समय और स्थान का त्याग करना चाहिए। जो (साधक) उक्त (इन) दोषों की उपेक्षा करके मूर्खतावश उन्हीं स्थलों पर योगाभ्यास में प्रवृत्त होता है ॥५१॥

उसमें विघ्न करने के लिए कौन-कौन दोष उत्पन्न हो जाते हैं, वह मैं कहता हूं, सुनो, अज्ञानी योगी को बधिरता, जड़ता, स्मृतिलोप, मूकत्व, अंधापन तथा उस अज्ञानी योगी को शीघ्र ही ज्वर उत्पन्न हो जाता है। आलस्य वश यदि (साधक में) ये दोष उत्पन्न हो जायें तो उनके नाश के लिए योगियों को जो चिकित्सा करनी चाहिए, वह मुझसे सुनो वात, गुल्म और अफारे की शान्ति के लिए कुछ तेज गर्म जौ की लपसी, खिचड़ी खाकर (उदर के ऊपर) उसके ऊपर धारण करना चाहिए। इसी प्रकार जौ आदि (की खिचड़ी) को वायु ग्रन्थि पर बाँधना या हवा करना लाभदायक होता है ॥५२–५५॥

उसी प्रकार कंपन होने पर (मन के चंचल होने पर प्रलय कालीन) स्थिर महाशैल की मन में धारणा करनी चाहिए। वाक् शक्ति के लोप होने पर वाक् की धारणा और बहरापन होने पर श्रवणेन्द्रिय की, ॥५६॥

यथैवाम्रफलं ध्यायेत् तृष्णार्त्तो रसनेन्द्रियम्।
यस्मिन् यस्मिन् रुजा देहे तस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥५७
धारयेद् धारणामुष्णे शीतां शीते च दाहिनीम्।
कीलं शिरसि संस्थाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ॥५८
लुप्तस्मृतेः स्मृतिः सद्यो योगिनस्तेन जायते। द्यावापृथिव्यौ वाय्वग्नीव्यापिनावपि धारयेत् ॥५९
अमानुषात् सत्त्वजाद्वा बाधास्त्विवति चिकित्सितम्। अमानुषं सत्त्वमन्तर्योगिनं प्रविशेद् यदि ॥६०
वाय्वग्निधारणेनैनं देहसंस्थं विनिर्दहेत्। एवं सर्वात्मना रक्षा कार्या योगविदा नृप ॥६१
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः। प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद् योगिनो विस्मयात् तथा ॥
विज्ञानं विलयं याति तस्माद् गोप्याः प्रवृत्तयः ॥६२
अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम्।
कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं हि चिह्नम् ॥६३
अनुरागं जनो याति परोक्षे गुणकीर्त्तनम्। न बिभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ॥६४
शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य बाधा न विद्यते। न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरूपस्थिता ॥६५

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे जडोपाख्याने योगनिरूपणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः।

उसी प्रकार धारणा करनी चाहिए, जिस प्रकार तृषातुर व्यक्ति रसनेन्द्रिय के लिए आम्रफल-प्राप्ति की इच्छा करता है। इस प्रकार जिस-जिस शरीर में जो-जो व्याधि हो, उसके (नाश के) लिए उस-उस उपकारी धारणा को धारण करना चाहिए। उष्णता में शीतलता की ओर शीत में उष्णता की भावना करनी चाहिए। स्मृति के लुप्त हो जाने पर सिरहाने की ओर एक कील गाड़कर उसके ऊपर एक लकड़ी का टुकड़ा रखकर दूसरे लकड़ी के टुकड़े से उसको ठोकना चाहिए ॥५७-५८॥

उससे योगी को शीघ्र ही स्मृति उत्पन्न हो जाती है अथवा (स्मृति लोप होने पर) आकाश, पृथ्वी, वायु और अग्नि की धारणा करनी चाहिए ॥५९॥

अमानुषत्व के कारण उत्पन्न बाधाओं की चिकित्सा इस प्रकार होती है। योगी के हृदय में अमानुषत्व का प्रवेश होने पर, ॥६०॥

वायु और अग्नि की धारणा करने से इसकी देह में स्थित वह अमानुषत्व दग्ध हो जाता है। हे राजन्! इस प्रकार योग के ज्ञानी को अपने शरीर की सब प्रकार भलीभाँति रक्षा करनी चाहिए ॥६१॥

क्योंकि शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का एक मात्र साधन है। प्रवृत्ति, लक्षण, आख्यान और विस्मय से योगियों का विज्ञान विलय को प्राप्त होता है। इसलिए प्रवृत्ति समूह को गुप्त रखना चाहिए ॥६२॥

चञ्चलता का राहित्य, नीरोगता, अनिष्ठुरता, देह में सुगन्ध सञ्चार, मूत्र और विष्ठा की अल्पता, कान्ति, प्रसाद और मधुर स्वर तथा सौम्यता ये सब योग प्रवृत्ति के प्रथम चिह्न हैं ॥६३॥

जब मनुष्य में प्रेम भाव आये एवं पीछे-पीछे (परोक्ष में) गुणों का कीर्तन करे और कोई जीव उससे भयभीत न हो, यही उसकी सिद्धि का उत्तम लक्षण है ॥६४॥

जिसको अत्यधिक भयानक शीत आदि से भी पीड़ा नहीं होती और किसी से भयभीत न हो, उसको सिद्धि प्राप्त हो गयी ऐसा जानना चाहिए ॥६५॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में जडोपाख्यान में योग निरूपण नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

दत्तात्रेय उवाच—

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दृष्टे ह्यात्मनि योगिनः । ये तांस्ते संप्रवक्ष्यामि समासेन निबोध मे ॥१

काम्याः क्रियास्तथा कामान् मानुषानभिवाञ्छति ।
स्त्रियो दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं दिवम् ॥२

देवत्वममरेशत्वं रसायन-वयः क्रियाम् । मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनं तथा ॥३

श्राद्धानां सर्वदानानां फलानि नियमांस्तथा । तथोपवासात् पूर्त्ताच्च देवताभ्यर्चनादपि ॥४

तेभ्यस्तेभ्यश्च कर्मभ्य उपसृष्टोऽभिवाञ्छति । चित्तमित्थं वर्तमानं यत्नाद्योगी निवर्तयेत् ॥५

ब्रह्मसङ्गिमनः कुर्वन्नुपसर्गात् प्रमुच्यते । उपसर्गैर्जितैरेभिरूपसर्गास्ततः पुनः ॥६

योगिनः संप्रवर्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः । प्रातिभः श्रावणो दैवोभ्रमावर्त्तौ तथा परौ ॥७

पञ्चैते योगिनां योगविघ्नाय कटुकोदयाः । वेदार्थाः काव्यशास्त्रार्था विद्या शिल्पान्यशेषतः ॥८

प्रतिभान्ति यदस्येति प्रातिभः स तु योगिनः । शब्दार्थानखिलान् वेत्ति शब्दं गृह्णाति चैव यत् ॥९

योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणः सोऽभिधीयते । समन्ताद्वीक्षते चाष्टौ स यदा देवयोनयः ॥१०

उपसर्गं तमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद् बुधाः । भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनो दोषेण योगिनः ॥११

दत्तात्रेय बोले—

आत्मा का साक्षात्कार होने पर योगियों को जो विघ्नों के अनुभव होते हैं, उनको मैं संक्षेप में कहता हूं, सुनो ॥१॥

उस समय मनुष्यों को बहुत सी काम्य क्रियाओं और मानवोचित् भोग्य पदार्थों की इच्छा होने लगती है। स्त्री दान, फल, विद्या, माया, कुप्य, धन, स्वर्ग, देवेन्द्रत्व, अमरत्व, नाना प्रकार के रसायन, वायु में उड़ान, यज्ञ, जल और अग्नि में प्रवेश, ॥२–३॥

समस्त श्राद्ध और दान समूह का फल एवं नियम, उपवास, पूर्तादि, कर्म, देवार्चन आदि ॥४॥

उन-उन कर्मों से उपसृष्ट होने की वह इच्छा करता है। योगी को प्रयत्नपूर्वक इस प्रकार की अवस्था में स्थित चित्त को लौटा लेना चाहिए। (रोकना चाहिए तभी उसका उपसर्ग से छुटकारा हो सकता है) ॥५॥

मन को ब्रह्म की संगति में करते हुए उपसर्ग से छुटकारा पाया जा सकता है। इन उपसर्गों को जीत लेने पर भी फिर सात्विक, राजसिक एवं तामसिक भेद से अन्यान्य उपसर्ग योगी को आ घेरते हैं। उनमें प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त ॥६–७॥

ये पांच प्रकार के उपसर्ग योग में विघ्न के लिए भयंकर रूप से उत्पन्न होते हैं। जिसके द्वारा सम्पूर्ण वेदार्थ, काव्य, शास्त्रार्थ एवं सम्पूर्ण विद्याएँ एवं शिल्प शास्त्र, ॥८॥

योगी के चित्त में प्रतिभासित होते हैं। इसको 'प्रातिभ' कहते हैं। जिसके द्वारा वह समस्त शब्दों के अर्थों को जान जाता है तथा जिसके द्वारा उसको सहस्रों योजनों की दूरी से शब्द सुनायी देने लगता है। उसे श्रावण कहा जाता है तथा जिसके द्वारा देव योनि को प्राप्त करके वह योगी उन्मत्त की तरह चारों ओर आठों दिशाओं का अवलोकन करने लगता है। विद्वान् पुरुष उस उपसर्ग को दैव कहते हैं ॥९–११॥

समस्ताचारविभ्रंशाद् भ्रमः स परिकीर्तितः। आवर्त इव तोयस्य ज्ञानावर्त्तो यदाकुलः ॥१२
नाशयेच्चित्तमावर्त उपसर्गः स उच्यते। एतैर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः ॥१३
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्तन्ते पुनः पुनः। प्रावृत्य कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्मनोमयम् ॥१४
(शरीरमण्डले दृष्ट्वा गुरुज्ञानं ततो हियत्। ज्ञानपूर्वोऽपियो योगो ज्ञातव्यो वै विपश्चिता) ॥१५
चिन्तयेत् परमं ब्रह्मकृत्वा तत् प्रवणंमनः। यौगयुक्तः सदायोगी लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥१६
सूक्ष्मास्तुधारणाः सप्तभूराद्या मूर्ध्नि धारयेत्। धरित्रीं धारयेद् योगी तत् सौक्ष्म्यं प्रतिपद्यते ॥१७
आत्मानं मन्यते चोर्वीं तद् गंधं च जहाति सः। तथैवाप्सु रसं सूक्ष्मंतद्वद्रूपं च तेजसि ॥१८
स्पर्शं वायौ तथा तद्वद्बिभ्रतस्तस्य धारणाम्। व्योम्नः सूक्ष्मां प्रवृत्तिं च शब्दं तद्वज्जहाति सः ॥१९
मनसा सर्वभूतानां मनस्याविशते यदा। मानसीं धारणां बिभ्रन् मनः सूक्ष्मं च जायते ॥२०
तद्वद् बुद्धिमशेषाणां सत्त्वानामेत्य योगवित्। परित्यजति सम्प्राप्य बुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥२१
परित्यजति सूक्ष्माणि सप्तत्वेतानि योगवित्। सम्यग् विज्ञाय योऽलर्कतस्यावृत्तिर्न विद्यते ॥२२

समस्त आचारों के भ्रंश से उत्पन्न दोष से योगियों का मन निरालम्ब होकर जब चक्कर खाने लगता है, तब उसको 'भ्रम' उपसर्ग कहा जाता है ॥१२॥

और जिसके प्रभाव से ज्ञानावर्त्त, जलावर्त्त की तरह व्याकुल होकर चित्त को नष्ट कर देता है, वह आवर्त्त उपसर्ग कहा जाता है ॥१३॥

इन सब उपसर्गों के प्रभाव से योगी सम्पूर्ण दैव योनि तथा योग से भ्रष्ट होकर संसार चक्र में बार-बार घूमते हैं। इसलिए योगी को मनोमय शुभ्र कम्बल में आवृत्त होकर, ॥१४॥

(शरीर मण्डल में उस गुरु ज्ञान का दर्शन करे, क्योंकि विद्वानों को ज्ञान से ही योग का ज्ञान करना चाहिए) ॥१५॥

एवं मन को एक मात्र परब्रह्म में लगाकर, उसी का निरन्तर चिन्तन करना चाहिए। योग परायण योगी पुरुष सदैव अल्पाहारी जितेन्द्रिय, और योग युक्त होकर भूर्भुवादि सात प्रकार की सूक्ष्म धारणा को मस्तिष्क में धारण करे। योगी पृथ्वी को धारण करे इससे उसको उसकी सूक्ष्मता प्राप्त होती है ॥१६--१७॥

वह आत्मा मानकर धरित्री की धारणा करे, वह उसकी गन्ध का त्याग कर दे और उसी प्रकार जल में सूक्ष्म रस तथा उसी प्रकार तेज में रूप, ॥१८॥

वायु में स्पर्श एवं उसी के समान आकाश की सूक्ष्म प्रवृत्ति तथा शब्द की धारणा करके उनका परित्याग कर दे ॥१९॥

इस प्रकार जब मन के द्वारा सब भूतों के मन में प्रविष्ट होकर मानसी धारणा की जायेगी, तभी सूक्ष्म मन उत्पन्न होता है ॥२०॥

इस प्रकार योग ज्ञानी पुरुष, सम्पूर्ण प्राणियों की बुद्धि में प्रविष्ट होकर, सर्वोत्तम सूक्ष्म बुद्धि को प्राप्त करके, उसका त्याग कर देता है ॥२१॥

हे अलर्क ! जो योगी इन सात प्रकार के सूक्ष्म भावों से सम्पूर्ण रूप से परिचित होकर उनका परित्याग कर देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता ॥२२॥

एतासां धारणानां तु सप्तानां सौक्ष्म्यमात्मवान् ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा ततः सिद्धिं त्यक्त्वा त्यक्त्वा परां व्रजेत् ॥२३
यस्मिन्यस्मिश्च कुरुते भूते रागं महीपते । तस्मिंस्तस्मिन्समासक्तिं संप्राप्य स विनश्यति ॥२४
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् । परित्यजति यो देही सपरं प्राप्नुयात् पदम् ॥२५
एतान्येव तु संधाय सप्त सूक्ष्माणि पार्थिव । भूतादीनां विनाशोऽत्र सद्भावज्ञस्य मुक्तये ॥२६
गन्धादिषु समासक्तिं सम्प्राप्य स विनश्यति । पुनरावर्त्तते भूप स ब्रह्मापर मानुषम् ॥२७
सप्तैता धारणा योगी समतीत्य यदिच्छति । तस्मिंस्तस्मिंल्लयं सूक्ष्मे भूते याति नरेश्वर ॥२८
देवानामसुराणां वा गन्धर्वोरगरक्षसाम् । देहेषु लयमायाति संगं नाप्नोति च क्वचित् ॥२९
अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च । प्राकाम्यं चतथेशित्वं वशित्वं च तथा परम् ॥३०
यत्र कामावशायित्वं गुणानेतांस्तथैश्वरान् । प्राप्नोत्यष्टौ नरव्याघ्र परं निर्वाण सूचकान् ॥३१
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वं लघिमा गुणः ।
महिमाशेषपूज्यत्वात् प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ॥३२

आत्मज्ञानी पुरुष इन सात प्रकार की धारणाओं की सूक्ष्मता को बार-बार देखकर तथा बार-बार सिद्धियों को त्याग कर परमोत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं ॥२३॥

हे महीपते ! योगी पुरुष जिस-जिस भूति (ऐश्वर्य) में आसक्त होगा, उस-उसमें आसक्ति प्राप्त करके वह नष्ट हो जाता है ॥२४॥

इसलिए जो देहधारी (पुरुष) परस्पर ससक्त हुए, इन सूक्ष्म भूतों को जानकर उनका त्याग कर देता है, वही परमपद को प्राप्त कर सकता है ॥२५॥

हे पार्थिव ! इन सात प्रकार की धारणाओं का अभ्यास करके भूतादि (में अनुरक्त न होने से ही) उनका नाश करके सद्भाव मुक्त हो जाता है ॥२६॥

हे राजन् ! गन्धादि में आसक्ति से वह (योगी) नष्ट हो जाता है। और वह पुनः इस संसार चक्र में चक्कर लगाता है और मानव शरीर प्राप्त करता है ॥२७॥

हे नरेश्वर ! योगी पुरुष इन सात प्रकार की धारणाओं का अतिक्रमण करके यदि (देह विसर्जन) करना चाहें, तो वह उन-उन सूक्ष्म भूतों में लय को प्राप्त हो जाता है ॥२८॥

अथवा देवता, दानव, गन्धर्व, पन्नग और राक्षस इनके शरीरों में विलीन हो जाता है। वह किसी में आसक्त नहीं होता ॥२९॥

हे नरश्रेष्ठ ! वही व्यक्ति परम निर्वाण की सूचक—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामाव-सायित्व इन आठ प्रकार के ईश्वरीय गुणों का अधिकारी होता है ॥३०-३१॥

सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होना ही अणिमा है तथा जिसके द्वारा क्षिप्रकारित्व उदय हो वह लघिमा गुण है। सभी मनुष्यों द्वारा पूजित होना ही महिमा नामक सिद्धि है। अप्राप्त वस्तुओं की जिसके द्वारा प्राप्ति हो जाए, वह प्राप्ति नामक सिद्धि होती है ॥३२॥

प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वं चेश्वरो यतः। वशित्वाद् वशिमा नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥३३
यत्रेच्छा स्थानमप्युक्तं यत्र कामावशायिता। ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥३४
मुक्ति संसूचकं भूप परं निर्वाणमात्मनः। ततो न जायते नैव वर्द्धते न विनश्यति ॥३५
नापि क्षयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति। छेदं क्लेदं तथा दाहं शोषं भूरादितो न च ॥३६
भूतवर्गादवाप्नोति शब्दाद्यैर्ह्रियते न च। न चास्य सन्ति शब्दाद्यास्तद्भोक्ता तैर्नयुज्यते ॥३७
यथा हि कानकं खण्डमपद्रव्यवदग्निना। दग्धदोषं द्वितीयेन खण्डेनैक्यं व्रजेन्नृप ॥३८
न विशेषमवाप्नोति तद्वद्योगाग्निना यतिः। निर्दग्धदोषस्तेनैक्यं प्रयाति ब्रह्मणा सह ॥३९
यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तः समानत्वमनुव्रजेत्। तदाख्यस्तन्मयो भूतो न गृह्येत विशेषतः ॥४०
परेण ब्रह्मणा तद्वत् प्राप्यैक्यं दग्धकिल्विषः। योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते ॥४१
यथा जलं जलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति। तथात्मा साम्यमभ्येति योगिनः परमात्मनि ॥४२

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे योगसिद्धिर्नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः।

जिसके द्वारा व्यापकता की शक्ति प्राप्त हो, वह प्राकाम्य है। और क्योंकि ईशित्व से ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है, अतः वह ईशित्व है। वश में करने के कारण योगियों का सातवाँ गुण वशित्व है ॥३३॥

जिसके द्वारा इच्छानुसार स्थान पर गमन किया जा सके, वही कामावशायिता सिद्धि कहलाती है। योगी लोग इन आठ प्रकार के कारणों से ईश्वरत्व प्राप्त कर लेते हैं। अतः इनका हमने कथन कर दिया, ये आठ प्रकार की होती हैं ॥३४॥

हे राजन्! ये सब गुण मुक्ति के सूचक हैं, अतः इनसे आत्मा को परम निर्वाण (पद की) प्राप्ति होती है। उसके बाद वह योगी न उत्पन्न होता है, न बढ़ता है और न ही विनष्ट होता है ॥३५॥

न ही क्षय को प्राप्त करता है और न परिणाम को तथा वह कभी भू आदि भूतों से छिन्न, भिन्न, क्लिन्न, दग्ध अथवा शुष्क नहीं होता है ॥३६॥

भूत वर्गों से उत्पन्न शब्दादि से वह कभी आकृष्ट नहीं होगा क्योंकि शब्दादि विषयों के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। अतः वह उनका भोक्ता भी नहीं बनता (न शब्दादि इसके होंगे न उनसे इसका कोई सम्बन्ध होगा न यह उनका भोक्ता होगा) ॥३७॥

हे राजन्! जिस प्रकार अशुद्ध स्वर्ण खण्ड को अग्नि के द्वारा दोष दूर करने पर दूसरे शुद्ध स्वर्ण खण्ड में मिला देने पर शीघ्र ही एक रूप हो जाता है। उस समय विशेष कुछ (नहीं बचता) ॥३८॥

उसी प्रकार योग रूपी अग्नि के द्वारा (राग द्वेषादि) दोषों को जलाने पर योगी परब्रह्म के साथ एक रूप हो जाता है ॥३९॥

हे राजन्! जिस प्रकार अग्नि में अग्नि डालने पर दोनों अग्नि समान रूप वाली हो जाती हैं। उनके तन्मय होने पर विशेष का ग्रहण नहीं किया जाता है ॥४०॥

उसी प्रकार दोष समूह के दग्ध होने पर परम ब्रह्म के साथ ऐक्य भाव को प्राप्त करने पर हे राजन्! योगी कभी ब्रह्म से पृथक् भाव नहीं रखता है।४१॥

ऐसे ही जिस प्रकार जल में जल डाल देने पर ऐक्य भाव को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार योगियों की आत्मा भी परमात्मा के साथ मिलकर ऐक्य को प्राप्त करती है ॥४२॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में योग सिद्धि नामक सेंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अलर्क उवाच—

भगवन् योगिनश्चर्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन् यथा योगी न सीदति ॥१

दत्तात्रेय उवाच—

मानापमानौ यावेतौ प्रत्युद्वेगकरौ नृणाम्। तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥२

मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते। अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तु विषमं विषम् ॥३

चक्षुः पूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतं च चिन्तयेत् ॥४

आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च। महाजनेषु सिद्धचर्थं न गच्छेद् योगवित् क्वचित् ॥५

व्यस्ते विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने। अटेत योगविद् भैक्ष्यं न तु तेष्वेव नित्यशः ॥६

यथैवमवमन्यन्ते जनाः परिभवन्ति च। तथा युक्तश्चरेद् योगी सतां वर्त्मनदूषयन् ॥७

भैक्ष्यं चरेद् गृहस्थेषु यायावरगृहेषु च। श्रेष्ठा तु प्रथमा चेति वृत्तिरस्योपदिश्यते ॥८

अथ नित्यं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद् यतिः। श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥९

अलर्क बोला—

हे भगवन्! मैं योगी की उस दिनचर्या को तत्त्वतः सुनना चाहता हूं, जिसका पालन करके योगी ब्रह्म पथ का अनुसरण करते हुए, अवसाद को प्राप्त नहीं होता है ॥१॥

दत्तात्रेय बोले—

मान और अपमान ये दोनों ही मनुष्यों को प्रसन्न एवं उद्विग्न करने वाले हैं। वे दोनों ही विपरीत स्थिति में योगी को सिद्धि प्रदान करने वाले हो जाते हैं ॥२॥

मान और अपमान ये दोनों विष और अमृत कहे गये हैं। उनमें अपमान तो अमृत तथा सम्मान विषम (भयंकर) विष स्वरूप है ॥३॥

(योगी) व्यक्ति को दृष्टि द्वारा पवित्र भूमि पर ही पाद निक्षेप करना चाहिए एवं वस्त्र द्वारा पवित्र किये हुए जल को पीना चाहिए तथा सत्य से पवित्र हुई वाणी को बोलना चाहिए और बुद्धि से पवित्र भाव का ही चिन्तन करना चाहिए ॥४॥

योग विद् व्यक्ति को कभी आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सव में कभी भी सम्मिलित नहीं होना चाहिए तथा महाजनों के पास सिद्धि के लिए कभी नहीं जाना चाहिए ॥५॥

जब गृहस्थियों के (चूल्हे के) अंगार शान्त हो जाए, घर निधूम हो जाए और सब व्यक्ति भोजन कर चुकें, तो उसी समय योगी व्यक्ति भिक्षा के लिए गमन करे। परन्तु सदा वहीं नहीं ॥६॥

जिससे व्यक्ति तिरस्कृत और अपमानित करें, ऐसे कार्य करते हुए योगी आनन्द के साथ साधुजनों के आचार समूह को दूषित न करते हुए, विचरण करे ॥७॥

गृहस्थों अथवा यायावर पुरुषों के घर से ही भिक्षा लेनी चाहिए उसमें भी प्रथमा वृत्ति ही मान्य मानी गयी है ॥८॥

इसके अतिरिक्त योगी को प्रतिदिन शिष्ट, श्रद्धावान्, दान्त, श्रोत्रिय और महात्मा गृहस्थों में ही विचरण करना चाहिए ॥९॥

अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च । भैक्ष्यचर्य्या विवर्णेषु जघन्यावृत्तिरिष्यते ।।१०
भैक्ष्यं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव वा । फलं मूलं प्रियङ्गुं वा कणपिण्याकसक्तवः ।।११
इत्येते च शुभाहारा योगिनां सिद्धिकारकाः । तत् प्रयुंज्यान्मुनिर्भक्त्या परमेण समाधिना ।।१२
अपःपूर्वं सकृत् प्राश्य तूष्णीं भूत्वा समाहितः । प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृताः ।।१३
अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा । उदानाय चतुर्थी स्याद् व्यानायेति च पंचमी ।।१४
प्राणायामैः पृथक् कृत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः । अपः पुनः सकृत् प्राश्य आचम्य हृदयं स्पृशेत् ।।१५
अस्तेयं ब्रह्मचर्यं च त्यागोऽलोभ स्तथैव च । व्रतानि पञ्च भिक्षूणामहिंसा परमाणि वै ।।१६
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् । नित्यस्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्तिताः ।।१७
सारभूतमुपासीत ज्ञानं यत्कार्यसाधकम् । ज्ञानानां बहुतायेयं योगविघ्नकरी हि सा ।।१८
इदं ज्ञेयमिदं ज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत् । अपि कल्पसहस्रेषु नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ।।१९
त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारी जितेन्द्रियः । विधाय बुद्धया द्वाराणि मनोध्याने निवेशयेत् ।।२०

और जो दूषित अथवा पतित नहीं हैं, उन्हीं के घर यति (योगी) व्यक्ति को भिक्षाटन करना चाहिए। नीच वर्ण के पुरुषों के घर की भिक्षा निन्दनीय वृत्ति कही गयी है ॥१०॥

योगी व्यक्ति भिक्षा में जो, मट्ठा, दूध, यावक, कुलथी, फल, मूल, प्रियंगु, कण, पिण्याक, सत्तू आदि वस्तुओं को ही ग्रहण करे ॥११॥

ये वस्तुएँ ही योगियों के लिए, कल्याण करने वाली एवं सिद्धि देने वाली कही गयी हैं, इसलिए परम समाधि तथा भक्ति युक्त होकर योगी को इन्हीं वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए ॥१२॥

भोजन से पहले योगी पुरुष मौन रहकर एक बार आचमन करके समाहित चित्त से यह प्राण के लिए है, इस प्रकार कहकर प्रथम ग्रास ले। योगियों की यही प्रथम आहुति मानी गयी है ॥१३॥

इसके बाद क्रमशः यह 'अपानाय स्वाहा' इस प्रकार कहकर द्वितीय 'वह समान के लिए है' ऐसा स्वाहा कहकर तृतीय 'यह उदान के लिए है ऐसा कहकर चतुर्थ 'यह व्यान के लिए है ऐसा कहकर पांचवीं आहुति जठराग्नि के लिए प्रदान करनी चाहिए ॥१४॥

इसके बाद प्राणायामों के द्वारा अलग-अलग करके शेष भोजन को इच्छानुसार भक्षण करे। भोजन करने के पश्चात् फिर एक बार जल पीकर और आचमन करके हृदय का स्पर्श करना चाहिए ॥१५॥

अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ एवं अहिंसा ये भिक्षुओं योगियों) के लिए पांच परम व्रत हैं ॥१६॥

अक्रोध, गुरु सेवा, शौच (पवित्रता , अल्पाहार एवं प्रतिदिन वेदाध्ययन ये पाँच उत्तम नियम कहे गये हैं ॥१७॥

सारभूत एवं कार्य की सिद्धि करने वाले ज्ञान की ही योगी को उपासना करनी चाहिए, क्योंकि जो ज्ञानों की विविधता है वह योग में विघ्न उत्पन्न करने वाली होती है ॥१८॥

एवं 'यह जानना है', 'यह जानना है,' इस प्रकार के प्यासे चित्त से युक्त होकर जो योगी विचरण करता है तो उसको सहस्रों कल्पों तक ज्ञेय वस्तु का ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ॥१९॥

विषयासक्ति को त्यागने वाला, क्रोध को जीतने वाला, अल्पाहारी एवं जो जितेन्द्रिय योगी है उसे बुद्धि की सहायता से, दसों इन्द्रियों के द्वार बन्द करके मन को ध्यान में लगा देना चाहिए ॥२०॥

शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च । नित्ययुक्तः सदायोगी ध्यानं सम्यगुपक्रमेत् ।।२१
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रय । यस्यैते नियतादण्डाः स त्रिदण्डी महायतिः ।।२२
सर्वमात्ममयं यस्य सदसद् जगदीद्दशम् । गुणागुणमयं तस्य कः प्रियः को नृपाप्रियः ।।२३

विशुद्धबुद्धिः समलोष्ठकाञ्चनः समस्तभूतेषु समां समाहितः ।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययं च यतिर्हि गत्वा न पुनः प्रजायते ।।२४
वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयज्ञक्रियाश्च यज्ञाज्जाप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात् ।
ज्ञानांद्ध्यानं संगरागव्यपेतं तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ।।२५
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः ।
समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः ।।२६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे योगिचर्याकथनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

निर्जन स्थान, गुहा अथवा अरण्य में निवास करते हुए, नित्य मुक्त योगी को सदैव ध्यान करने का उपक्रम करना चाहिए ।।२१।।

वाक्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड ये तीनों दण्ड जिसके वश में है । तीन दण्डों से युक्त वह महायति (योगी) त्रिदण्डी होता है ।।२२।।

एवं जो (योगी) यह सत् और असत् रूप तथा गुण और अगुण रूप यह संसार जिसके लिए आत्ममय बन गया है, उसके लिए कौन प्रिय है ? और कौन अप्रिय ? ।।२३।।

जो विशुद्ध बुद्धि युक्त और स्वर्ण को भी मिट्टी के ढेले के समान मानने वाले हैं एवं समस्त प्राणियों में समान भाव से युक्त है । समस्त भूतों में समाहित होकर सर्वत्र एकमात्र सर्वाधार, परम, शाश्वत, अव्यय स्थान (ब्रह्म) को प्राप्त कर योगी निश्चय ही पुनः उत्पन्न नहीं होता है । (उसका पुनर्जन्म नहीं होता) ।।२४।।

संसार में (वेद श्रेष्ठ हैं) वेदों से भी सभी यज्ञ क्रियाएँ श्रेष्ठ हैं, यज्ञ से जप, और जप से ज्ञान मार्ग एवं ज्ञान से विषयासक्ति एवं राग विहीन होकर ध्यान करना श्रेष्ठ है । उस ध्यान के प्राप्त होने पर शाश्वत ब्रह्म की उपलब्धि होती है ।।२५।।

जो महात्मा समाहित, ब्रह्मपरायण, प्रमाद शून्य, पवित्र, एकान्त का अनुरागी और यतेन्द्रिय होकर इस ध्यान योग की साधना करता है वह अपने योग से विमुक्ति प्राप्त करता है ।।२६।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में योगीचर्या कथनं नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

दत्तात्रेय उवाच—

एवं यो वर्त्तते योगी सम्यग्योगव्यवस्थितः । न स व्यावर्तितुं शक्यो जन्मान्तरशतैरपि ॥१
दृष्ट्वा च परमात्मानं प्रत्यक्षं विश्वरूपिणम् । विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ॥२
तत्प्राप्तये महत् पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् । तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम् ॥३
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् । एतास्तिस्रः स्मृतामात्राः सात्त्वराजसतामसाः ॥४
निगुणा योगिगम्याऽन्या चार्धमात्रोर्ध्वसंस्थिता । गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया ॥५
पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्तमूर्ध्नि लक्ष्यते । यथा प्रयुक्त ओङ्कार प्रतिनिर्याति मूर्धनि ॥६
तथोङ्कारमयो योगि त्वक्षरे त्वक्षरो भवेत् । प्राणो धनुः शरो हि आत्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम् ॥७
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् । ओमित्येतत् त्रयो वेदा स्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः ॥८
विष्णुर्ब्रह्माहरश्चैव कृक्सामानि यजूंषि च । मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः ॥९

दत्तात्रेय बोले—

इस प्रकार से जो योगी सम्यक् प्रकार से योग में अवस्थित रहता है, उसे सैंकड़ों जन्मान्तरों में भी कोई अपने पद से हटाने में समर्थ नहीं होता ॥१॥

विश्व रूप परमात्मा को प्रत्यक्ष देखकर विश्व ही जिसके चरण है, विश्व ही जिसकी ग्रीवा है एवं जो विश्वेश्वर विश्व भावनामय है, ऐसे विश्व रूपमय परमात्मा को प्रत्यक्ष देखकर, उनकी प्राप्ति के लिए अतिशय पुण्य युक्त एकाक्षर 'ओम्' का जप करना चाहिए । उसके परम श्रेष्ठ स्वरूप का श्रवण (और मनन भी) उसका अध्ययन है (ऐसा मानना चाहिए) ॥२-३॥

अकार, उकार और मकार ये तीन अक्षर ओंकार की सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन मात्राएँ कही गयी हैं ॥४॥

इसके अतिरिक्त ओंकार की, निर्गुण एवं उर्ध्व में अवस्थित आधी मात्रा और है जो केवल योगियों के लिए ही गम्य है । गांधार स्वर युक्त होने के कारण, उसको गान्धारी जानना चाहिए ॥५॥

चींटी के समान गति वाली यह स्पर्श गुण से युक्त शिरोभाग में दिखाई देती है और ओंकार का प्रयोग करने से उसकी संवेदना मस्तिष्क में होती है ॥६॥

उसी प्रकार ओंकार परायण योगी अक्षर-अक्षर में ओंकार मय हो जाता है । प्राण इसका धनुष है । आत्मा बाण रूप है और ब्रह्म इसका उत्तम लक्ष्य है ॥७॥

अतः योगी को इस लक्ष्य को अप्रमत्त होकर बेधना चाहिए । इससे वह बाण के समान तन्मय हो जाता है । ओंकार इस शब्द में तीन वेद, तीनों लोक और तीनों अग्नियाँ समाहित हैं ॥८॥

एवं वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश ऋक्, यजुस् तथा साम मय है । वस्तुतः ओंकार की साढ़े तीन मात्राएँ ही परमार्थ रूप में जाननी चाहियें ॥९॥

तत्र युक्तस्तु यो गोगी स तल्लयमवाप्नुयात् । अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारश्चोच्यते भुवः ।।१०
सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकः परिकल्प्यते। व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीया व्यक्तसंज्ञिता ।।११
मात्रातृतीया चिच्छक्तिरर्धमात्रा परं पदम् । अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योग भूमयः ।।१२
ओमित्युच्चारणात् सर्वं गृहीतं सदसद्‌ भवेत् । ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता ।।१३
तृतीया चप्लुताऽर्धाख्या वचसः सा न गोचरा । इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोंकारसंज्ञितम् ।।१४
यस्तु वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः । संसार चक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः ।।१५
प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि । आक्षीणकर्मबन्धश्च ज्ञात्वा मृत्युमरिष्टतः ।।१६
उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति । तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः ।।
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति ।।१७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे योगधर्मे ओंकारवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

जो योगी उससे संयुक्त हो जाता है, वह अन्त में उसी में लीन हो जाता है। अकार से भूलोक; उकार से भुवः लोक और व्यञ्जनयुक्त मकार से स्वर्ग लोक माना गया है। उसकी पहली मात्रा व्यक्त, दूसरी अव्यक्त तथा तीसरी मात्रा चिच्छक्ति एवं (चौथी) अर्द्ध मात्रा परम पद के नाम से कही गयी है। इसी क्रम से उन योग भूमियों को भी ज़ानना चाहिए ।।१०-१२।।

'ओम्' इस उच्चारण से ही सम्पूर्ण सद् एवं असद् का ग्रहण हो जाता है। इनमें पहली मात्रा ह्रस्व तथा दूसरी दीर्घ, ।।१३।।

और तीसरी प्लुत है, किन्तु अर्ध नामक चौथी मात्रा वाणी के द्वारा उच्चरित नहीं हो सकती। इस प्रकार यह अक्षर परब्रह्म ओंकार कहा गया है ।।१४।।

जो (योगी) मनुष्य इनको भली प्रकार जानता है अथवा पुनः (जानकर) उसका ध्यान करता है। वह संसार चक्र को छोड़कर तीनों प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।।१५।।

तथा परब्रह्म परमात्मा में विलय को प्राप्त हो जाता है और सम्पूर्ण कर्म बन्धनों के क्षीण हो जाने पर अरिष्ट के द्वारा मृत्यु को जानकर, ।।१६।।

उत्क्रांति के समय (परब्रह्म का) स्मरण करके पुनः दूसरे जन्म में भी योगी बनता है। इसलिए सिद्ध योग अथवा असिद्ध योग के द्वारा सदैव अपने अरिष्टों का ज्ञान कर लेना चाहिए। जिससे उसको उत्क्रान्ति (देहावसान) के समय दुःखी नहीं होना पड़े ।।१७।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में योग धर्म में ओंकार वर्णन नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

चत्वारिंशोऽध्यायः

दत्तात्रेय उवाच —

अरिष्टानि महाराज श्रृणु वक्ष्यामि तानि ते। येषामालोकनान् मृत्युं निजं जानाति योगवित् ।।१
देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् । यो न पश्येन्न जीवेत् स नरः संवत्सरात् परम् ।।२
अरश्मिबिम्बं सूर्य्यस्य बह्निं चैवांशुमालिनम् । दृष्ट्वैकादशमासेभ्यो नरो नोर्ध्वं तु जीवति ।।३
वान्तेमूत्रपुरीषे च यः स्वर्णं रजतं तथा । प्रत्यक्षं कुरुते स्वप्ने जीवेत् स दशमासिकम् ।।४
दृष्ट्वा प्रेतपिशाचादीन् गंधर्वनगराणि च । सुवर्णवर्णान् वृक्षांश्च नवमासान्स जीवति ।।५
स्थूलः कृशः कृशः स्थूलो योऽकस्मादेव जायते। प्रकृतेश्च निवर्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ।।६
खण्डं यस्य पदं पार्ष्ण्यं पादस्याग्रे च वा भवेत् । पांशुकर्दमयोर्मध्ये सप्तमासान्स जीवति ।।७
गृध्रः कपोतः काकोलो वायसो वापि मूर्द्धनि । क्रव्यादो वा खगोनीलः षण्मासायुः प्रदर्शकः ।।८
हन्यते काक पङ्क्तिभिः पांशु-वर्षेण वा नरः। स्वां छायामन्यथा दृष्ट्वा चतुः पञ्च सजीवति ।।९

अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ।
रात्राविन्द्र धनुश्चापि जीवितं हि त्रिमासिकम् ।।१०

दत्तात्रेय ने कहा—

हे महाराज ! अब मैं तुम्हें अरिष्टों को कहता हूं, उन्हें तुम सुनो। जिन को देखकर योगी मनुष्य अपनी मृत्यु को जान लेते हैं ॥१॥

जो व्यक्ति देव मार्ग ध्रुव, शुक्र, सोमग्रह एवं अपनी छाया तथा अरुन्धती इनको नहीं देख सकता है, वह मनुष्य एक संवत्सर से अधिक जीवित नहीं रहता है ॥२॥

जो सूर्य बिम्ब को किरणों से रहित और अग्नि को ज्वालाओं से युक्त देखें, वह व्यक्ति ग्यारह माह से अधिक जीवित नहीं रहता ॥३॥

जो स्वप्न में वमन, मूत्र, विष्ठा के समूह में सोना और चांदी को प्रत्यक्ष देखता है, वह केवल दस महीने ही जीवित रहता है ॥४॥

जो प्रेत, पिशाच अथवा गन्धर्वों के नगरों एवं स्वर्ण के समान रंग वाले वृक्षों को देखे, वह (केवल) नौ माह जीवित रहता है ॥५॥

जो व्यक्ति (स्वप्न में) अचानक ही स्थूल से कृश एवं कृश से स्थूल हो जाता है, उसकी आयु केवल आठ माह ही शेष रहती है ॥६॥

धूल अथवा कीचड़ में पैर के किनारे का या अग्रभाग यदि खंडित दिखायी पड़े तो वह सात माह जीता है ॥७॥

गिद्ध, कबूतर, उल्लू अथवा कौआ अथवा मांस भक्षक, नीले रंग के पक्षी का उड़कर सिर पर बैठना छः माह की आयु का द्योतक होता है ॥८॥

जो व्यक्ति काक समूह अथवा धूलि वर्षा के द्वारा पीड़ित होता है एव अपनी छाया ही (उसे) उल्टी दीख पड़ती है, वह केवल पांच महीने ही जीवित रहता है ॥९॥

बादल रहित आकाश में, दक्षिण दिशा में बिजली को देखकर और रात्रि में इन्द्र धनुष के दर्शन करने पर (व्यक्ति) केवल तीन महीने ही जीवित रहता है ॥१०॥

घृते तैले तथादर्शे तोये वा नात्मनस्तनुम् । यः पश्येदशिरस्कां वा मासादूर्ध्वं न जीवति ।।११
यस्य बस्तसमो गन्धो गात्रे शवसमोऽपि वा । तस्यार्द्धमासकं ज्ञेयं योगिनो नृप जीवितम् ।।१२
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादमवशुष्यते । पिबतश्च जलं शोषो दशाहं सोऽपि जीवति ।।१३
संभिन्नो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृन्तति । हृष्यते नाम्बु संस्पर्शात् तस्य मृत्युरुपस्थितः ।।१४
ऋक्षवानरयानस्थो गायन्यो दक्षिणां दिशम् । स्वप्ने प्रयाति तस्यापि न मृत्यु कालमिच्छति ।।१५
रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती हसती च यम् । दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति ।।१६
नग्नं क्षपणकं स्वप्ने हसमानं महाबलम् । एवं संवीक्ष्य वल्गन्तं विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ।।१७
आमस्तकतलाद्यस्तु निमग्नं पङ्कसागरे । स्वप्ने पश्यत्यथात्मानं स सद्यो म्रियते नरः ।।१८
केशाङ्गारांस्तथा भस्मभुजङ्गान्निर्जलां नदीम् । दृष्ट्वा स्वप्ने दशाहात् तु मृत्युरेकादशे दिने ।।१९
करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः । पाषाणैस्ताडितः स्वप्ने सद्यो मृत्युं लभेन्नरः ।।२०
सूर्योदये यस्य शिवा क्रोशन्ती याति संमुखम् । विपरीतं परीतं वा स सद्यो मृत्युमृच्छति ।।२१

घी, तेल, जल अथवा दर्पण में जो मनुष्य अपना शरीर न देख सके अथवा देह को बिना मस्तक के देखे, वह एक मास से अधिक नहीं जीता है ।।११।।

हे राजन् ! जिसके शरीर से शौच के समान या शव के समान दुर्गन्ध निकलनी प्रारम्भ हो जाए, उस योगी का जीवन मात्र १५ दिन तक ही जानना चाहिए ।।१२।।

स्नान करते ही जिसके हृदय और पैर सूख जाते हैं, जल पीते ही गला सूख जाता है, वह केवल दस दिन ही जीवित रहता है ।।१३।।

वायु के छितरने से जिसके मर्म स्थानों में पीड़ा होने लगती है एवं जल के स्पर्श से प्रसन्न नहीं होता (रोंगटे खड़े नहीं होते) उस योगी की तो मानो मृत्यु उपस्थित ही है ।।१४।।

जो स्वप्न में भालू और बन्दर की सवारी पर चढ़कर गाता हुआ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करे, उसका भी मृत्यु काल बहुत निकट समझना चाहिए ।।१५।।

और जिसके स्वप्न में लाल, काला वस्त्र धारण किये हंसती और गाती हुई स्त्री दक्षिण दिशा की ओर ले जाए वह (योगी) भी जीवित नहीं रहता ।।१६।।

स्वप्न में जो महाबली और नग्न क्षपणक को अकेले हँसते हुए जाता देखता है, उसका मृत्यु काल निकट समझना चाहिए ।।१७।।

जो स्वप्न में अपने शरीर को मस्तक पर्यन्त कीचड़ की दलदल में फंसा हुआ देखता है; वह मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है ।।१८।।

स्वप्न में केश, अंगार, भस्म, सर्प और सूखी नदी; जिसको दृष्टिगोचर हो, दस दिन के बाद ग्यारहवें दिन उसकी मृत्यु अवश्य हो जाती है ।।१९।।

जो स्वप्न में कराल, विकट आकार वाले काले पुरुषों को सशस्त्र आकर अपने ऊपर; पत्थरों से मारता हुआ देखे, वह व्यक्ति शीघ्र ही मृत्यु प्राप्त करता है ।।२०।।

सूर्योदय के समय, जिसके सामने, पीछे अथवा चारों ओर से सियार चिल्लाते हुए जाते हैं, वह भी शीघ्र मृत्यु लाभ करता है ।।२१।।

यस्य वै भुक्तमात्रस्य हृदयं बाध्यते क्षुधा। जायते दन्तघर्षश्च स गतायुर्न संशयः ॥२२
दीपगन्धं न यो वेत्ति त्रस्यत्यह्नि तथा निशि। नात्मानं परनेत्रस्थं वीक्षते न स जीवति ॥२३
शक्रायुधं चार्द्धरात्रे दिवाग्रहगणांस्तथा। दृष्ट्वा मन्येत संक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ॥२४
नासिका वक्रतामेति कर्णयोर्नमनोन्नती। नेत्रं च वामं स्रवति यस्य तस्यायुरुद्गतम् ॥२५
आरक्ततामेति मुखं जिह्वा वा श्यामतां यदा। तदा प्राज्ञो विजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ॥२६
उष्ट्ररासभयानेन यः स्वप्ने दक्षिणां दिशम्। प्रयाति तं च जानीयात् सद्यो मृत्युं नरेश्वर ॥२७
पिधाय कर्णौ निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम्। नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोऽपि न जीवति ॥२८
पततो यस्य वै गर्ते स्वप्ने द्वारं पिधीयते। न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२९

ऊर्ध्वा च दृष्टिर्न च संप्रतिष्ठा रक्ता पुनः संपरिवर्तमाना।
मुखस्य चोष्मा शिशिरा च नाभिः शंसंति पुंसामपरं शरीरम् ॥३०

स्वप्नेऽग्निं प्रविशेद्यस्तु न च निष्क्रमते पुनः। जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम् ॥३१

जिसका हृदय भोजन करने के तुरन्त बाद पुनः भूख से पीड़ित हो जाता है और दन्त घर्षण होता है; उसकी आयु समाप्त हो गयी, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥२२॥

और जो दीपक की गन्ध को नहीं जान पाता है, दिन में और रात्रि में भयभीत होता है और जो अपना प्रतिबिम्ब दूसरे के नेत्रों में नहीं देख पाता है; वह अधिक जीवित नहीं रहता ॥२३॥

यदि अर्द्धरात्रि में इन्द्र धनुष और दिन में तारागण दिखायी देने लगें तो आत्म ज्ञानी को अपनी आयु को समाप्त ही जान लेना चाहिए ॥२४॥

जिसकी नासिका टेढ़ी और कान नतोन्नत हो गये हों एवं जिसकी बांयी आँख से निरन्तर पानी बहता हो, उसकी आयु समाप्त जाननी चाहिए ॥२५॥

और जब मुख तो लाल हो जाए और जीभ काली पड़ जाए, तब बुद्धिमान को अपनी मृत्यु को समीप आया जान लेना चाहिए ॥२६॥

और जो स्वप्न में ऊँट अथवा गधे की सवारी से दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करे तो हे राजन्! उसकी शीघ्र ही मृत्यु जाननी चाहिए ॥२७॥

जिसको, कानों पर अपने हाथ रखने पर, अपना शब्द न सुनायी पड़े और जिसके नेत्रों की ज्योति समाप्त हो जाए। वह भी जीवित नहीं रहता है ॥२८॥

और जिसके स्वप्न में गड्ढे में गिरने पर बाहर निकलने का मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता है अपनी शक्ति से उठने का प्रयत्न करने पर भी गड्ढे से निकलने में समर्थ नहीं हो पाता, तो उसके जीवन का अन्त ही मानना पड़ेगा ॥२९॥

जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व (ऊपर की ओर चढ़ी हुई) हों, आंखें लाल हों एवं चञ्चलता के कारण एक स्थान पर न रहकर, इधर उधर घूमती हों और मुख गर्मी (पसीने) से युक्त हों और नाभिरन्ध्र शीतल हो गया हो। ये सब बातें मनुष्य के इस शरीर को छोड़कर अन्य शरीर में प्रवेश की सूचना देती हैं ॥३०॥

स्वप्न में अग्नि अथवा जल में प्रवेश करके जो फिर नहीं निकल पाता है, उससे भी उसके जीवन का अन्त जानना चाहिए ॥३१।

यश्चाभिहन्यते दुष्टैर्भूतैरात्रावथो दिवा । स मृत्युं सप्तरात्रान्ते नरः प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३२

स्व वस्त्रममलं शुक्लं रक्तं पश्यत्यथोऽसितम् ।
यः पुमान् मृत्युमासन्नं तस्यापि हि विनिर्दिशेत् ॥३३

स्वभाववैपरीत्यं तु प्रकृतेश्च विपर्ययः । कथयन्ति मनुष्याणां समासन्नौ यमान्तकौ ॥३४

येषां विनीतः सततं येऽस्य पूज्यतमा मताः । तानेव चावजानाति तानेव च विनिन्दति ॥३५

देवान्नार्चयते वृद्धान् गुरून् विप्रांश्च निन्दति । मातापित्रोर्न सत्कारं जामातॄणां करोति च ॥३६

योगिनां ज्ञान विदुषामन्येषां च महात्मनाम् । प्राप्ते तु काले पुरुषंस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः ॥३७

योगिनां सततं यत्नादरिष्टान्यवनीपते । संवत्सरान्ते तज्ज्ञेयं फलदानि दिवानिशम् ॥३८

विलोक्या विशदा चैषां फलपंक्तिः सुभीषणा । विज्ञाय कार्यौ मनसि स च कालो नरेश्वर ॥३९

ज्ञात्वा कालं च तं सम्यगभयस्थानमाश्रितः ।
युञ्जीत योगी कालोऽसौ यथा नास्याफलो भवेत् ॥४०

दृष्ट्वारिष्टं तथा योगी त्यक्त्वा मरणजं भयम् । तत्स्वभावं तदालोक्य कालो यावद्विपाकदः ॥४१

जो रात्रि अथवा दिन में दुष्ट भूत गणों के द्वारा मारा जाता है, वह व्यक्ति सात रात्रियों के भीतर मृत्यु प्राप्त करता है । इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥३२॥

जो अपने स्वच्छ श्वेत वस्त्र को लाली या काले रंग से युक्त देखता है, उस व्यक्ति की भी मृत्यु निकट है । ऐसा जानना चाहिए ॥३३॥

एवं जिसका स्वभाव विपरीत हो जाए अथवा जिसकी प्रकृति विपर्यय हो जाए (विद्वान्) ऐसे मनुष्यों की मृत्यु और यम सदा ही पास आये हुए कहते हैं ॥३४॥

एव जिनके प्रति यह हमेशा विनीत रहता और जो सदैव इसके पूजनीय थे वह, उन्हीं महानुभावों की निन्दा और अपमान करने लगता है ॥३५॥

देवताओं की पूजा नहीं करता और वृद्धों, गुरुओं और ब्राह्मणों की निन्दा करता है और अपने माता-पिता और जामाता का भी सत्कार नहीं करता है ॥३६॥

योगी, ज्ञानी और अन्य महात्माओं की (भी) अवमानना करने लगता है । ऐसा होने पर विद्वान् द्वारा उस योगी का काल निकट आया हुआ जानना चाहिए ॥३७॥

हे अवनी पते ! योगियों को निरन्तर यत्न पूर्वक अरिष्टों को जानना चाहिए क्योंकि ये अरिष्ट संवत्सर के अन्त में दिन अथवा रात में निश्चय ही फल प्रदान करते हैं ॥३८॥

उन्हें इन सब भयंकरतम फलों की ओर ध्यान रखना चाहिए । हे राजन् ! इन सब कार्यों को देखकर मन में मृत्यु का निश्चय कर लेना चाहिए ॥३९॥

इन सब फलों के आगमन काल को अच्छी प्रकार जानकर भयभीत न होते हुए योगी को अपने को इस योगाभ्यास में लगा देना चाहिए, जिससे इन अरिष्टों का फल न हो ॥४०॥

एवं योगी को अरिष्ट को देखकर तथा मरण से उत्पन्न भय को त्याग कर एवं उस (अरिष्ट) के स्वभाव को जानकर, जिस समय अरिष्ट फलोदय की सम्भावना हो ॥४१॥

तस्य भागे तथैवाह्नो योगं युञ्जीत योगवित्। पूर्वाह्णे चापराह्णे च मध्याह्ने चापि तद्दिने।।४२
यत्र वा रजनी भागे तदरिष्टं निरीक्षितम्। तत्रैव तावद्युञ्जीत यावत् प्राप्तं हि तद्दिनम् ।।४३
ततस्त्यक्त्वा भयं सर्वं जित्वा तं कालमात्मवान्। तत्रैवावसथे स्थित्वा यत्र वा स्थैर्यमात्मनः ।।४४

युञ्जीत योगं निर्जित्य त्रीन् गुणान् परमात्मनि।
तन्मयश्चात्मना भूत्वा चिद्वृत्तिमपि संत्यजेत् ।।४५

ततः परमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम्। यद्बुद्धेर्यन्न चाख्यातुं शक्यते तत् समश्नुते ।।४६
एतत् सर्वं समाख्यातं तवालर्क यथार्थवत्। प्राप्स्यसे येन तद्ब्रह्म संक्षेपात्तन्निबोध मे ।।४७
शशांकरश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिः पयः। समुत्सृजति नायुक्तः सोपमा योगिनः स्मृता ।।४८
यथार्करश्मिसंयोगादर्ककान्तो हुताशनम्। आविष्करोति नैकः सन्नुपमा सापि योगिनः ।।४९
पिपीलिकाखुनकुलगृहगोधाकपिञ्जलाः। वसन्ति स्वामिवद् गेहे ध्वस्ते यान्ति ततोऽन्यतः ।।५०
दुःखं तु स्वामिनो ध्वंसे तस्य तेषां न किंचन। वेश्मनो यत्र राजेन्द्र सोपमा योगसिद्धये ।।५१

दिन के उसी भाग में योगवित् को 'योग में' मन को संलग्न कर देना चाहिए। उस दिन के पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण, रात्रिकाल अथवा जिस समय अरिष्ट की सूचना प्राप्त हुई हो, उसी समय योगी को योग में प्रवृत्त होना चाहिए तथा जब तक वह (मृत्यु का) दिन न आ जाए, तब तक इसी प्रकार योग का आचरण करना चाहिए ।।४२-४३।।

उस समय उस योगी को सभी प्रकार के भय का त्याग करके आत्मवान् होकर, उस काल को जीत-कर उसी स्थान में रहकर अथवा जहां कहीं भी अपने मन को स्थिरता प्राप्त हो, उस स्थान पर रहकर, तीनों गुणों को जीतकर योग युक्त होकर (आत्मा को) परमात्मा में मिला दे। इस प्रकार अपनी आत्मा से (परमात्मा के साथ) तन्मय होकर अन्त में चित् वृत्ति को भी त्याग दे ।।४४-४५।।

उसके बाद (योगी) इन्द्रियातीत एवं जहां बुद्धि की पहुँच भी नहीं है तथा जिसका कथन करना भी सम्भव नहीं है। उस परम निर्वाण पद को प्राप्त करता है ।।४६।।

हे अलर्क ! मैंने यह सब यथार्थ रूप से तुम्हें कहा। जिस उपाय से तुम ब्रह्म की प्राप्ति कर सकोगे, उसको संक्षेप में कहता हूँ सुनो ।।४७।।

जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणों के संयोग से चन्द्रकान्त मणि से जल निकलता है। उन (किरणों) के सयोग के बिना जल निसृत नहीं होता वही उपमा योगी के साथ भी घटित होती है ।।४८।।

और जिस प्रकार सूर्य की किरणों के संयोग से सूर्यकान्त मणि से अग्नि का प्रादुर्भाव होता है। बिना सूर्य की किरणों के सयोग के (वह प्रकट) नहीं होती। यह भी योगी की योगसिद्धि के सम्बन्ध में दूसरी उपमा है। (योगी को योग युक्त होने पर ही ब्रह्म साक्षात्कार होता है।) ।।४९।।

चींटी, चूहा, नेवला, छिपकली और कपिंजल (कबूतर) ये सब गृह स्वामी के साथ ही घर में रहते हैं। (घर के) नष्ट हो जाने पर अन्य स्थान पर चले जाते हैं ।।५०।।

जिस प्रकार स्वामी के मर जाने पर उनको उसका कोई दुःख नहीं होता कि वहां पर उनका घर था। हे राजेन्द्र ! योगसिद्धि के सम्बन्ध में यह तीसरी उपमा है ।।५१।।

मृद्देहिकाल्पदेहापि मुखाग्रेणाप्यणीयसा । करोति मृद्भारचयमुपदेशः स योगिनः ।।५२
पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम् । वृक्षं विलुप्यमानं तु दृष्ट्वा सिध्यन्ति योगिनः ।।५३
रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृतिम् । सह तेन विवर्द्धन्तं योगी सिद्धिमवाप्नुयात् ।।५४
द्रवपूर्णमुपादाय पात्रभारोहतो भुवः । तुङ्गमङ्गं विलोक्योच्चैर्विज्ञातं किं न योगिना ।।५५
सर्वस्वे जीवनायालं निखाते पुरुषस्य या । चेष्टां तां तत्त्वतो ज्ञात्वा योगिनः कृतकृत्यता ।।५६
तद् गृहं यत्र वसति तद्भोज्यं येन जीवति । येन सम्पद्यते चार्थस्तत्सुखं ममतात्र का ।।५७
अभ्यर्थितोऽपि तैः कार्यं करोति करणैर्यथा । तथा बुद्ध्यादिभिर्योगी पारक्यै साधयेत् परम् ।।५८

जड उवाच—

ततः प्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कः स महीपतिः । प्रश्रयावतो वाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ।।५९
दिष्टयादेवैरिदं ब्रह्मन् पराभिभवसम्भवम् । उपपादितमत्युग्रं प्राणसंदेहदं भयम् ।।६०
दिष्ट्या काशिपतेर्भूरिबलसम्पत्पराक्रमः । यदुच्छेदादिहायातः स युष्मत् सङ्गदो मम ।।६१

दीमक अत्यन्त छोटे शरीर वाला होते हुए भी अपने छोटे से मुखाग्र से मिट्टी के कण एकत्र करके ढेर बना देता है। योगियों के लिए यह परम उपदेश है ।।५२।।

पशु, पक्षी और मनुष्य आदि को फल, पुष्प और पत्तों से युक्त वृक्ष का नाश करते हुए, देखकर भी योगी लोग सिद्धि का लाभ करते हैं ।।५३।।

रुरु नामक मृग के बच्चे के सींग के अग्र भाग तिलक आकृति वाले दिखाई देते हैं। किन्तु उसके बढ़ने के साथ ही साथ वे सींग भी बढ़ने लगते हैं, इसी प्रकार योगियों को भी धीरे-धीरे सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए ।।५४।।

द्रव्य से भरे हुए पात्र को (लेकर) जब योगी पृथ्वी से बहुत ऊँचा उठ जाता है और वहाँ से जब अपने तुंग अंग को देखता है। तब उसके जानने योग्य क्या रह जाता है ।।५५।।

अपने जीवन के लिए सर्वस्व का त्याग करने की जो मनुष्य की चेष्टा होती है, उस चेष्टा को यथार्थ रूप से जानकर योगी कृत कृत्य हो जाता है ।।५६।।

उसके लिए वही घर है, जहाँ रहता है। वही भोजन है जिससे जीवित रहता है। जिससे अर्थ प्राप्ति हो वही सुख होता है (अतः) इन सबमें ममता कैसी ? ।।५७।।

जिस प्रकार साधनों के द्वारा अभिलषित साध्य प्राप्त होता है। उसी प्रकार योगी को भी बुद्धि आदि को परायी जानकर ही परब्रह्म की साधना करनी चाहिए ।।५८।।

जड़ बोला—

तदन्तर वह राजा अलर्क उन अत्रि-पुत्र (दत्तात्रेय) को विनय से अवनत होकर प्रणाम करके आनन्द पूर्वक इस प्रकार बोले—।।५९।।

हे ब्रह्मन् ! भाग्य विधाता की कृपा से शत्रु के द्वारा पराभव से उत्पन्न, अत्यन्त उग्र प्राणों में भी संदेह उत्पन्न करने वाला, यह भय मुझ में उत्पन्न हो गया था ।।६०।।

भाग्य से ही अत्यधिक बल (सैन्य बल) एवं पराक्रम से युक्त काशीराज ने जो उच्छेद (सैन्य विध्वन्स) किया, इस कारण यहाँ आकर आपके संसर्ग का लाभ उठा सका ।।६१।।

दिष्ट्या मन्दबलश्चाहं दिष्ट्या भृत्याश्च मे हताः ।
दिष्ट्या कोषः क्षयं यातो दिष्ट्याहं भीतिमागतः ।।६२
दिष्टया त्वत्पादयुगलं मम स्मृतिपथं गतम् ।
दिष्ट्या त्वदुक्तयः सर्वा मम चेतसि संस्थिताः ।।६३
दिष्ट्या ज्ञानं ममोत्पन्नं भवतश्च समागमात् ।
भवता चैव कारुण्यं दिष्ट्या ब्रह्मन् कृतं मयि ।।६४
अनर्थोऽप्यर्थतां याति पुरुषस्य शुभोदये । तथेदमुपकाराय व्यसनं संगमात् तव ।।६५
सुबाहुरुपकारी मे स च काशिपतिः प्रभो । तयोः कृतेऽहं संप्राप्तो योगीश भवतोऽन्तिकम् ।।६६
सोऽहं तव प्रसादाग्निर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः । तथा यतिष्ये येन ईदृङ् न भूयां दुःख भाजनम् ।।६७
परित्यजिष्ये गार्हस्थ्यमार्तिपादपकाननम् । त्वत्तोऽनुज्ञां समासाद्य ज्ञानदातुर्महात्मनः ।।६८
दत्तात्रेय उवाच —
गच्छ राजेन्द्र भद्रं ते यथा ते कथितं मया । निर्ममो निरहङ्कारस्तथाचर विमुक्तये ।।६९
जड उवाच —
एवमुक्तः प्रणम्यैनमाजगाम त्वरान्वितः । यत्र काशिपतिर्भ्राता सुबाहुश्चास्य सोऽग्रजः ।।७०

और भाग्य से ही मैं क्षीण बल वाला (सिद्ध) हुआ और भाग्य से ही मेरे (भृत्यगण) मारे गये तथा सौभाग्य से ही मेरा कोष नष्ट हुआ, और भाग्य से ही मैं भयभीत हुआ ।।६२।।

एवं भाग्य से ही आपके चरण युगल का मुझे स्मरण हुआ और सौभाग्य से ही आपके सभी उपदेश मेरे मन में स्थिर हुए ।।६३।।

और भाग्य से आपके समागम से मुझमें ज्ञानोदय हुआ, हे ब्रह्मन् ! सौभाग्य से ही आपने मुझ पर दया की है ।।६४।।

जिस प्रकार अनर्थ भी मनुष्य के शुभोदय के समय अर्थ युक्त (सार्थक) हो जाता है। उसी प्रकार यह भयानक आपत्ति आपका संग प्रदान करने के कारण मेरे उपकार के लिए ही हुई है ।।६५।।

हे प्रभो ! काशीपति और सुबाहु दोनों ही मेरे लिए उपकारी हुए, क्योंकि हे योगीश ! उन्हीं के कारण तो मैं यहाँ आपके पास आया हूं ।।६६।।

इसलिए आपकी कृपा रूपी अग्नि ने मेरे अज्ञान रूपी पापों को भस्म कर दिया है। अतः अब मैं ऐसा यत्न करूँगा जिससे इस प्रकार के महान् दुःखों की प्राप्ति फिर न हो ।।६७।।

हे ज्ञान प्रदान करने वाले महात्मन् ! आपकी आज्ञा प्राप्त करके ही मैं दुःख रूपी वृक्षों से युक्त गृहस्थ आश्रम का परित्याग करूँगा ।।६८।।

दत्तात्रेय बोले —

हे राजन् ! जाओ, तुम्हारा कल्याण हो। मैंने जैसा तुम्हें उपदेश दिया। मुक्ति के लिए ममता रहित और अहंकार रहित होकर, उसी प्रकार आचरण करो ।।६९।।

जड़ बोला —

इनके ऐसा कहने पर (अलर्क) इनको प्रणाम करके शीघ्र ही जहाँ पर इसके बड़े भाई सुबाहु और काशीराज स्थित थे, वहाँ महाबाहु के पास जाकर ।।७०।।

समुत्पत्य महाबाहुं सोऽलर्कः काशिभूपतिम् । सुबाहोरग्रतो वीरमुवाच प्रहसन्निव ।।७१
राज्यकामुककाशीश भुज्यतां राज्यमूर्जितम् । यथा च रोचते तद्वत् सुबाहोः संप्रयच्छ वा ।।७२

काशीराज उवाच—

किमलर्क परित्यक्तं राज्यं ते संयुगं विना । क्षत्रियस्य न धर्मोऽयं भवांश्च क्षत्रधर्मवित् ।।७३
निर्जितामात्यवर्गस्तु त्यक्त्वा मरणजं भयम् । संदधीत शरं राजा लक्ष्यमुद्दिश्य वैरिणम् ।।७४
तंजित्वा नृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान् वरान् । भुञ्जीत परमं सिद्धयै यजेत च महामखः ।।७५

अलर्क उवाच—

एवमीदृशकं वीर ममाप्यासीन्मनः पुरा । साम्प्रतं विपरीतार्थं शृणु चाप्यत्र कारणम् ।।७६
यथाऽयं भौतिकः संघस्तथान्तः करणं नृणाम् । गुणास्तु सकलास्तद्वदशेषेष्वेव जन्तुषु ।।७७
चिच्छक्तिरेक एवायं यदा नान्योऽस्ति कश्चन । तदा का नृपते ज्ञानान्मित्रारिप्रभुभृत्यता ।।७८
तन्मया दुःखमासाद्य त्वद्भयोद्भवमुत्तमम् । दत्तात्रेय प्रसादेन ज्ञानं प्राप्तं नरेश्वर ।।७९
निर्जितेन्द्रियवर्गस्तु त्यक्त्वा संगमशेषतः । मनो ब्रह्मणि संधास्येतज्जये परमो जयः ।।८०

वह वीर अलर्क काशीराज से सुबाहु के सामने ही मानो हंसते हुए इस प्रकार बोला—।।७१।।

हे राज्य के कामुक काशीपति ! इस समृद्धिशाली राज्य का उपभोग करो या सुबाहु को दे दो अथवा जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ।।७२।।

काशीराज बोले—

हे ! अलर्क, तुम युद्ध के बिना ही राज्य का परित्याग क्यों कर रहे हो और (तुम तो) क्षत्रिय धर्म को जानने वाले हो । यह क्षत्रिय धर्म नहीं है ।।७३।।

राजा को अपने मरने का भय त्यागकर अमात्य वर्ग को जीतकर शत्रु को लक्ष्य करके, शर संधान करना चाहिये ।।७४।।

और शत्रुओं को जीत कर राजा को सिद्धि एवं अभिलषित उत्तम भोगों का उपभोग करने के लिये बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करना चाहिये ।।७५।।

अलर्क ने कहा —

हे ! वीर, मेरे मन में भी पहले ऐसा ही विचार था, लेकिन इस समय मेरा भाव इसके ठीक विपरीत हो गया है ।।७६।।

जिस प्रकार यह मनुष्यों का समूह भौतिक है, उसी प्रकार (मनुष्यों का) अन्तःकरण एवं सभी प्राणियों में गुणादि उपस्थित हैं ।।७७।।

एक मात्र चित्शक्ति ही सत्य है । उसके अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है । जिसे यह ज्ञान हो गया उसको हे राजन् ! शत्रु, मित्र, स्वामी, सेवक आदि सम्बन्धों से क्या ? ।।७८।।

हे नरेश्वर ! मैंने आपके भय से अत्यधिक दुःख प्राप्त करके (अब मैंने) दत्तात्रेय की कृपा से ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।।७९।।

अब मैं जितेन्द्रिय होकर और सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके मन को परब्रह्म में लगा दूंगा । उस (ब्रह्म) को जीतना ही परम विजय है ।।८०।।

संसाध्यमन्यत् तत्सिद्धयै यतः किंचिन्न विद्यते । इन्द्रियाणि च संयम्य ततः सिद्धिं नियच्छति ।।८१
सोऽहं न तेऽरिर्न ममासि शत्रुः सुबाहुरेषो न ममापकारी ।
दृष्टं मया सर्वमिदं यथात्मा अन्विष्यतां भूप रिपुस्त्वयाऽन्यः ।।८२
इत्थ स तेनाभिहितो नरेन्द्रो हृष्टः समुत्थाय ततः सुबाहुः ।
दिष्ट्येति तं भ्रातरमभिनन्द्य काशीश्वरं वाक्यमिदं बभाषे ।।८३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे अलर्क निर्वेदो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ।

क्योंकि उस (परब्रह्म) के अतिरिक्त अन्य कुछ भी (सत्य) नहीं है। इसलिये उसे जीतने का प्रयास करना चाहिये। इन्द्रिय को संयमित करने के बाद ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥८१॥

इसलिये न मैं तुम्हारा शत्रु हूं और न तुम मेरे शत्रु हो। यह सुबाहू भी मेरा अपकारी नहीं है। अब मैंने यह सब आत्मा के समान है ऐसा भली प्रकार देख लिया है। इसलिये हे राजन् ! अब आप किसी दूसरे शत्रु की खोज कीजिये ॥८२॥

उस (अलर्क) के ऐसा कहने पर अत्यन्त प्रसन्नता से युक्त राजा सुबाहू ने उठकर मेरा परम सौभाग्य है, इस प्रकार (कहकर) उस अपने भाई का अभिनन्दन करके काशीराज से ऐसा कहा—॥८३॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में अलर्क निर्वेद नामक चालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

सुबाहुरुवाच—

यदर्थं नृपशार्दूल त्वामहं शरणं गतः । तन्मया सकलं प्राप्तं यास्यामि त्वं सुखी भव ।।१

काशिराज उवाच—

किं निमित्तं भवान् प्राप्तो निष्पन्नोऽर्थश्च कस्तव । सुबाहो तन्ममाचक्ष्व परं कौतुहलं हि मे ।।२
समाक्रान्तमलर्केण पितृपैतामहं महत् । राज्यं देहीति निर्जित्य त्वयाहमभिचोदितः ।।३

सुबाहु बोला—

हे ! नृपश्रेष्ठ, जिसलिये मैं आपकी शरण में गया था, वह सब कुछ मैंने प्राप्त कर लिया ह। अब मैं जाता हूं, आप सुखी होवें ॥१॥

काशीराज बोला—

हे सुबाहो ! आप यहाँ किसलिये आये थे और आपका क्या कार्य पूर्ण हो गया है, आप वह मुझे बताइये क्योंकि मुझे इस विषय में अत्यधिक कौतूहल है ॥२॥

अलर्क ने पिता और पितामह के विशाल राज्य को हस्तगत कर लिया था और आपने मुझे प्रेरित किया मैं उसे जीतकर आपको दे दूं (राज्य जीतकर मुझे दो इस प्रकार आपने मुझे प्रेरित किया) ॥३॥

ततो मया समाक्रम्य राज्यमस्यानुजस्य ते । एतत्ते बलमानीतं तद्भुङ्क्ष्व स्वकुलोचितम् ॥४

सुबाहुरुवाच—

काशिराज निबोध त्वं यदर्थमयमुद्यमः । कृतो मया भवांश्चैव कारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥५
भ्राता ममायं ग्रामेषु सक्तो भोगेषु तत्त्ववित् । विमूढौ बोधवन्तौ च भ्रातरावग्रजौ मम ॥६
तनयोर्मम च यन्मात्रा बाल्ये स्तन्यं यथा मुखे । तथावबोधो विन्यस्तः कर्णयोरवनीपते ॥७
तयोर्मम च विज्ञेयाः पदार्था ये मता नृभिः। प्रकाश्यं मनसो नीतास्ते मात्रा नास्य पार्थिव ॥८
यथैकमर्थे यातानामेकस्मिन्नवसीदति । दुःखं भवति साधूनां तथास्माकं महीपते ॥९
गार्हस्थ्यमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन् नरेश्वर। सम्बन्धिन्यस्य देहस्य बिभ्रति भ्रातृकल्पनाम् ॥१०
ततो मया विनिश्चित्य दुःखाद् वैराग्य भावना। भविष्यतीत्यस्य भवानित्युद्योगाय संश्रितः ॥११
तदस्य दुःखाद् वैराग्यं संबोधादवनिपते । समुद्भूतं कृतं कार्यं भद्रं तेऽस्तु व्रजाम्यहम् ॥१२
उष्ट्वा मदालसागर्भे पीत्वा तस्यास्तथा स्तनम् । नान्य नारी सुतैर्यातं वर्त्मयात्विति पार्थिव ॥१३
विचार्य तन्मया सर्वं युष्मत् संश्रयपूर्वकम् । कृतं तच्चापि निष्पन्नं प्रयास्ये सिद्धये पुनः ॥१४

इसलिये मैंने आपके भाई के राज्य पर आक्रमण करके बलपूर्वक लेकर आपको दे दिया। इसलिये अब आप इसका अपनी कुल कीरीति के अनुसार उपभोग कीजिये ॥४॥

सुबाहु बोला—

हे काशीराज ! जिस कारण मैंने यह महान् उद्यम किया और आपसे कराया उसको आप सुनिये ॥५॥

मेरा यह भाई तत्व ज्ञानी होते हुए भी निम्न भोगों में आसक्त था और मेरे दो बड़े भाई निरक्षर होते हुए भी तत्व ज्ञानी है ॥६॥

बाल्यावस्था में मेरी माँ ने जिस प्रकार उन दोनों (बड़े भाईयों) के मुख में स्तनपान कराया था। उसी प्रकार हे अवनीपते ! मेरे कानों में भी ज्ञान का संचार किया ॥७॥

इसलिये हे राजन् ! मनुष्यों के लिये जिन पदार्थों को जानना उचित है, मैंने और उन दोनों भाइयों ने उन सबको जान लिया। (माता ने उन दोनों भाईयों को वे सब हृदयगत करा दिये) किन्तु माता ने इसको वे सब नहीं बताये ॥८॥

जिस प्रकार एक कार्य के लिये जाने वालों में एक के दुःखी होने पर सभी साधुओं को दुःख होता है। उसी प्रकार हे राजन्, (इसे देखकर) हम सब भाईयों को भी (दुःख हुआ) ॥९॥

हे नरेश्वर ! इस गृहस्थी में फंसकर मोह में आसक्त हुआ (यह भाई) कष्ट पा रहा है, क्योंकि इस देह के साथ भाई की कल्पना की जाती है ॥१०॥

इसलिये मैंने, इसे दुःख से वैराग्य भावना होगी, यह सोचकर ही मैं उद्योग के लिये आपकी शरण में गया ॥११॥

हे अवनिपते ! उस दुःख से ही इसको वैराग्य और उससे ज्ञान उत्पन्न हुआ है। अब मेरा कार्य पूर्ण हो गया, आपका कल्याण हो अब मैं जाता हूं ॥१२॥

हे राजन् ! यह (अलर्क) मदालसा के गर्भ में रहकर और उसका स्तनपान करके अन्य स्त्रियों के पुत्रों के मार्ग पर न चले, यही सब विचारकर मैंने पहले आपका आश्रय लिया था। वह सब भी मैंने पूर्ण कर लिया है। इसलिये (मैं अब) फिर सिद्धि के लिये जाऊंगा ॥१३-१५॥

उपेक्ष्यते सीदमानः स्वजनो बान्धवः सुहृत् । यैर्नरेन्द्र न तान् मन्ये सेन्द्रिया विकला हि ते ।।१५
सुहृदि स्वजने बन्धौ समर्थे योऽवसीदति । धर्मार्थकाममोक्षेभ्यो वाच्यास्ते तत्र न त्वसौ ।।१६
एतत् त्वत्संगमाद् भूप मया कार्यं महत् कृतम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि ज्ञानभाग् भव सत्तम ।।१७

काशिराज उवाच—

उपकारस्त्वया साधोरलर्कस्य कृतो महान् । ममोपकाराय कथं न करोषि स्वमानसम् ।।१८
फलदायी सतां सद्भिः संगमो नाफलो यतः । तस्मात् त्वत्संश्रयाद्युक्ता मया प्राप्ता समुन्नतिः ।।१९

सुबाहुरुवाच—

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् । तत्र धर्मार्थकामास्ते सकलो हीयतेऽपरः ।।२०
तत्ते संक्षेपतो वक्ष्ये तदिहैकमनाः शृणु । श्रुत्वा च सम्यगालोच्य यतेथाः श्रेयसे नृप ।।२१
ममेति प्रत्ययो भूप न कार्योऽहमिति त्वया । सम्यगालोच्य धर्मो हि धर्माभावे निराश्रयः ।।२२
को वाहमिति संज्ञेयमित्यालोच्य त्वयात्मना । बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ।।२३

हे नरेन्द्र ! जो मनुष्य स्वजन, बन्धु और मित्रों को कष्ट में पड़ा हुआ देखकर उपेक्षा करते हैं उन्हें मैं स्वस्थ इन्द्रियों से युक्त नहीं मानता हूं। वे तो वस्तुतः विकलाङ्ग हैं ।।१५।।

जो (व्यक्ति) मित्र, स्वजन और बन्धुओं के सामर्थ्यशाली होते हुए भी दुःखी होता है, तो वे मनुष्य (बन्धु आदि) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से च्युत होते हैं वस्तुतः वे निन्दनीय हैं, वह नहीं ।।१६।।

इसलिये हे राजन् ! आपके सहयोग से मैंने यह महान् कार्य किया है। आपका कल्याण हो और हे श्रेष्ठ ! आप ज्ञान के भागी (अर्थात् अलर्क के समान आप भी ज्ञान प्राप्त करें) ।।१७।।

काशीराज ने कहा—

हे साधु ! आपने अलर्क का महान् उपकार किया है । अब आप मेरे उपकार के लिये भी अपना चित्त क्यों नहीं लगाते हैं ।।१८।।

क्योंकि सज्जनों की संगति फलदायिनी होती है । सज्जनों का साहचर्य कभी निष्फल नहीं होता, इसलिये आपके साहचर्य से मुझे भी उन्नति प्राप्त करना उचित ही है ।।२०।।

सुबाहु बोले—

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ही चार पुरुषार्थ कहे गये हैं। उनमें सम्पूर्ण धर्म, अर्थ और काम आपको प्राप्त हैं। केवल मोक्ष शेष हैं ।।२०।।

उस (मोक्ष के सम्बन्ध में) मैं आपको संक्षेप में कहता हूं, आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये और सुनकर तथा भली प्रकार विवेचना करके, हे नृप ! अपने कल्याण के लिये यत्न कीजिए ।।२१।।

हे राजन् ! आप, 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' ऐसी ममता और अहंकार के वशीभूत न हों। धर्म का ही सम्यक् प्रकार विवेचन करें। क्योंकि (मनुष्य) धर्म के अभाव में आश्रयहीन हो जाता है ।।२२।।

अथवा 'मैं कौन हूँ' इस प्रकार का मन में भलिभाँति विचार करना चाहिए तथा ब्रह्ममुहूर्त में (उठकर) आपको अपनी आत्मा की विवेचना करनी चाहिए ।।२३।।

अव्यक्तादि विशेषान्तमविकारमचेतनम् । व्यक्ताव्यक्तं त्वया ज्ञेयं ज्ञाता कश्चाहमित्युत ।।२४
एतस्मिन्नेव विज्ञाते विज्ञातमखिलं त्वया । अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वे स्वमिति मूढता ।।२५
सोऽहं सर्वगतो भूप लोकसंव्यवहारतः । मयेदमुच्यते सर्वं त्वया पृष्टो व्रजाम्यहम् ।।२६
एवमुक्त्वा ययौ धीमान् सुबाहुः काशि भूमिपम् । काशिराजोऽपि संपूज्य सोऽलर्कं स्व पुरं ययौ ।।२७
अलर्कोऽपि सुतं ज्येष्ठमभिषिच्य नराधिपम् । वनं जगाम सन्त्यक्त-सर्वसङ्गः स्वसिद्धये ।।२८
ततः कालेन महता निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । प्राप्य योगर्द्धिमतुलां परं निर्वाणमाप्तवान् ।।२९
पश्यञ्जगदिदं सर्वं स देवासुरमानुषम् । पाशैर्गुणमयैर्बद्धं वध्यमानं च नित्यशः ।।३०
पुत्रादि भ्रातृपुत्रादि स्वपारक्यादि भावितैः । आकृष्यमाणं करणैर्दुःखार्त्तं भिन्नदर्शनम् ।।३१
अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारं महामतिः । आत्मानं च समुत्तीर्णं गाथामेतामगायत ।।३२
अहो कष्टं यदस्माभिः पूर्वं राज्यमनुष्ठितम् । इति पश्चान्मया ज्ञातं योगान्नास्ति परं सुखम् ।।३३

जो विकार रहित अचेतन विशेष (पुरुष) अव्यक्त से लेकर प्रकृति पर्यन्त व्याप्त है उस अव्यक्त तथा व्यक्त उसको तुम्हें जानना चाहिए । फिर जानने वाला कौन है, ज्ञेय क्या है और मैं कौन हूँ, यह जानिये ।।२४।।

यह सब कुछ जानने पर ही आप समझिये कि आपने सब कुछ जान लिया है (देह आदि) अनात्म वस्तुओं को आत्मा तथा जो वस्तुएँ अपनी नहीं हैं, उन्हें अपना समझना ही मूर्खता है ।।२५।।

इसलिए हे भूप ! वही मैं लौकिक व्यवहार से अवगत हूँ । इस प्रकार आपने मुझसे जो पूछा था, मैंने वह बता दिया । अब मैं जाता हूँ ।।२६।।

काशीराज से इस प्रकार कहकर वह बुद्धिमान् सुबाहु चला गया तथा काशिराज ने भी अलर्क को सम्यक् प्रकार से सम्मानित करके, अपने नगर को प्रस्थान किया ।।२७।।

(और राजा) अलर्क ने भी अपने बड़े पुत्र का अभिषेक करके राजा बना दिया । सब सुखों का त्याग करके, सिद्धि के लिए वन को प्रस्थान किया ।।२८।।

तदनन्तर बहुत समय तक निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर उत्कृष्ट योग सिद्धि प्राप्त करके परम निर्वाण पद प्राप्त किया ।।२९।।

और यह देखते हुए कि देव-दानव और मनुष्यों सहित; गुणमय पाशों से बंधा हुआ, यह सम्पूर्ण संसार नित्य ही मारा जाता रहा है ।।३०।।

पुत्रादि में और भ्रातृ पुत्रादि (भतीजों में) अपने-पराये आदि की भावना से (पाशों से) खींचा जाता हुआ प्राणी अत्यन्त दुःखी होता है । तथा भिन्न जैसा प्रतीत होता है ।।३१।।

और महामति अलर्क ने देखा कि यह (जगत्) अज्ञान रूपी पंक में डूबा हुआ है, इसके उद्धार का कोई उपाय नहीं है । अपने को महान् गर्त से पार हुआ जानकर अलर्क ने यह गाथा गायी;—"अरे, महान् कष्ट है कि मैंने पहले राज्य का उपभोग किया और यह मैंने बाद में जाना कि योग के अतिरिक्त कोई परम सुख नहीं है ।।३२-३३।।

पुत्र उवाच—

तातैनं त्वं समातिष्ठ मुक्तये योगमुत्तमम् । प्राप्स्यसे येन तद् ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचसि ।।३४
ततोऽहमपि यास्यामि कि यज्ञैः किं जपेन मे । कृतकृत्यस्य करणं ब्रह्मभावाय कल्पते ।।३५
ततोऽनुज्ञामवाप्याहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः। प्रयतिष्ये तथा मुक्तौ यथा यास्यामि निर्वृतिम् ।।३६

पक्षिण ऊचुः—

एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्यानुज्ञां ततश्च सः । ब्रह्मञ्जगाम मेधावी परित्यक्तपरिग्रहः ।।३७
सोऽपि तस्य पिता तद्वत् क्रमेण सुमहामतिः । वानप्रस्थं समास्थाय चतुर्थाश्रममभ्यगात् ।।३८
तत्रात्मजं समासाद्य हित्वा बन्धनं गुणादिकम्। प्राप सिद्धिं परां प्राज्ञस्तत्कालोपात्त सन्मतिः ।।३९
एतत् ते कथितं ब्रह्मन् यत् पृष्टा भवता वयम्। सुविस्तरं यथावच्च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।४०
यश्चैतच्छृणुयाद् विप्र प्रपठेद् वा सुसमाहितः ।।४१
यदश्वमेधावभृथस्नातः प्राप्नोति वै फलम् । सकलं तदवाप्नोति श्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ।।४२
एतत् संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् । अलर्कात्रियसंवादमशुभान् मुच्यते नरः ।।४३

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे पितापुत्रसंवादे जडोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ।

पुत्र बोला—

इसलिए, हे तात ! आप मुक्ति के लिए इस उत्तम योग का आचरण कीजिए । जिससे आप उस पर-ब्रह्म को प्राप्त करेंगे जहाँ जाकर शोक नहीं होगा ।।३४ ।

इसके पश्चात् मैं भी जाऊँगा । यज्ञों और जपादि से क्या लाभ ? कृत कृत्य पुरुष के कार्य केवल ब्रह्म प्राप्ति के लिए ही होते हैं ।।३५।।

अतः मैं आपसे आज्ञा प्राप्त कर निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर उस मुक्ति के लिए प्रयत्न करूँगा, जिससे निर्वृत्ति (शान्ति) प्राप्त होती है ।।३६।।

पक्षी बोले—

हे ब्रह्मन् ! पिता से इस प्रकार कहकर और उनकी आज्ञा प्राप्त करके तथा समस्त परिग्रहों का त्याग करने वाला वह मेधावी (जड़ पुत्र) वहाँ से चला गया ।।३७।।

उसके महामति पिता ने भी उसी क्रम मे वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके, चतुर्थ आश्रम में प्रवेश किया ।।३८।।

वहाँ अपने (उसी) पुत्र को प्राप्त करके गुणादि के बन्धनों से छुटकारा पाकर एवं उस समय सद्बुद्धि प्राप्त कर उस प्राज्ञ ने परम सिद्धि प्राप्त की ।।३९।।

हे ब्रह्मन् ! आपने जो हमसे पूछा मैंने आपको यथावत् विस्तारपूर्वक बता दिया । अब आप क्या सुनना चाहते हैं ? ।।४०।।

हे विप्र ! जो यह सब सुनता है अथवा एकाग्रचित्त से इसे पढ़ता है। वह अश्वमेध के अवभृथ स्थान के फल को प्राप्त करता है और हे मुनिश्रेष्ठ ! यह सुनकर (वह) सब कुछ प्राप्त कर लेता है ।।४१–४२।।

अलर्क और दत्तात्रेय का यह संवाद (मनुष्य के) संसार-चक्र से बचने का उत्तम उपाय है। इसे सुनकर मनुष्य अशुभ से छुटकारा प्राप्त कर लेता है ।।४३।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में अलर्क निर्वेद नामक इकतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

जैमिनिरुवाच —

सम्यगेतन्ममाख्यातं भवद्भिर्द्विजसत्तमाः । प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥१
अहो पितृ प्रसादेन भवतां ज्ञानमीदृशम् । येन तिर्यक्त्वमप्येतत् प्राप्य मोहस्तिरस्कृतः ॥२
धन्या भवन्तः संसिद्धचै प्रागवस्था स्थितं यतः। भवतां विषयोद्भूतैर्न मोहैश्चाल्यते मनः ॥३
दिष्ट्या भगवता तेन मार्कण्डेयेन धीमता । भवन्तो वै समाख्याताः सर्वसंदेहहृत्तमाः ॥४
संसारेऽस्मिन् मनुष्याणां भ्रमता मतिसंकटे । भवद्विधैः समं सङ्गो जायते नातपस्विनाम् ॥५
यद्यहं सङ्गमासाद्य भवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभिः । न स्यां कृतार्थस्तन्नूनं न मेऽन्यत्र कृतार्थता ॥६
प्रवृत्ते च निवृत्ते च भवतां ज्ञानकर्मणि । मतिमस्तमलां मन्ये यथा नान्यस्य कस्यचित् ॥७
यदि त्वनुग्रहवती मयि बुद्धिर्द्विजोत्तमाः । भवतां तत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ॥८
कथमेतत् समुद्भूतं जगत् स्थावरजङ्गमम् । कथं च प्रलयं काले पुनर्यास्यति सत्तमाः ॥९
कथं च वंशाद्देवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः । मन्वन्तराणि च कथं वंशानुचरितं च यत् ॥१०

जैमिनि बोले —

हे द्विजश्रेष्ठ ! आपने इस प्रकार प्रवृत्ति और निवृत्ति दो प्रकार के वैदिक कर्म सम्यक् प्रकार कहे ॥१॥

अरे ! पिता की अनुकम्पा से आपका इस प्रकार का ज्ञान जिसके द्वारा, तिर्यक् योनि को प्राप्त होने पर भी आपका मोह छूट गया है ॥२॥

आप सब धन्य हैं क्योंकि अब भी आपका मन पहले की तरह सिद्धि लाभ के लिए प्रवृत्त है । विषय जनित मोह से आपका मन विचलित नहीं होता ॥३॥

सौभाग्य से ही उन बुद्धिमान् भगवान् मार्कण्डेय ने सभी संदेह रूपी अंधकार को दूर करने में समर्थ आपके सम्बन्ध में बताया ॥४॥

इस सकटमय संसार में घूमते हुए भ्रमित मति वाले मनुष्यों के भाग्य में आप जैसे तपस्वियों के साथ मिलना नहीं होता है ॥५॥

आप जैसे ज्ञान चक्षुओं की संगति प्राप्त करके, यदि मेरा मनोरथ सिद्ध नहीं हो सका तो मैं अन्यत्र कहीं कृतार्थ नहीं हो सकता ॥६॥

प्रवृत्ति और निवृत्ति सम्बन्धी ज्ञान और कर्मों में जैसी आपकी बुद्धि निर्मल है। मेरे विचार से वैसी किसी अन्य को प्राप्त नही हो सकी है ॥७॥

हे द्विज श्रेष्ठों ! यदि आपकी अनुग्रहवती बुद्धि मेरे ऊपर कृपालु हो तो आप इसका विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए ॥८॥

कि यह स्थावर और जङ्गमात्मक जगत् कैसे उत्पन्न हुआ है ? प्रलय काल में यह कैसे विलीन हो जायेगा ॥९॥

एक ही वंश से देवता, ऋषि, पितृगण तथा भूतादि की उत्पत्ति कैसे हुई और मन्वन्तर कैसे होते हैं और जो वंशानुचरित (वंशों की आनुपूर्वी) कैसे होती है ? ॥१०॥

यावत्यः सृष्टयश्चैव यावन्तः प्रलयास्तथा । कथाकल्पविभागश्च या च मन्वन्तर स्थितिः ॥११
यथा च क्षिति संस्थानं यत्प्रमाणं च वै भुवः । यथास्थितिसमुद्रादिनिम्नगाः काननानि च ॥१२
भूर्लोकादिश्च लोकानां गणः पातालसंश्रयः । गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्ष ज्योतिषामपि ॥१३
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्वमेतदाभूतसंप्लवम् । उपसंहृते च यच्छेषं जगत्यस्मिन् भविष्यति ॥१४

पक्षिण ऊचुः—

प्रश्नभारोऽयमतुलो यस्त्वया मुनिसत्तम । पृष्टस्तं ते प्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेह जैमिने ॥१५
मार्कण्डेयेन कथितं पुरा कौष्टुकये यथा । द्विजपुत्राय शान्ताय व्रतस्नाताय धीमते ॥१६
मार्कण्डेयं महात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः । क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छ यदेतत् पृष्टवान् प्रभो ॥१७
तस्य चाकथयत् प्रीत्या यन्मुनिर्भृगुनन्दनः । तत्ते प्रकथयिष्यामः शृणुत्वं द्विजसत्तम ॥१८
प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम् । जगद्योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम् ॥
प्रलये चान्तकर्त्तारं रौद्रं रुद्रस्वरूपिणम् ॥१९

मार्कण्डेय उवाच —

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । पुराणमेतद्वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनिःसृताः ॥२०

तथा सृष्टियों की उत्पत्ति और उनका प्रलय कथन, कल्प विभाग और मन्वन्तरों की स्थिति ॥११॥

और जो पृथ्वी का संस्थान और परिमाण, गिरि, समुद्र, सरिता तथा वनादि की स्थिति (का विवरण) ॥१२॥

भूलोक आदि से लेकर पाताल तक लोकों के समूह का विवरण एवं सूर्य चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कों की गति, ॥१३॥

यह सब मैं सृष्टि के आरम्भ से प्रलय पर्यन्त तथा प्रलयोपरान्त जो इस संसार में शेष रहता है, सब सुनना चाहता हूं ॥१४॥

पक्षी बोले—

हे मुनि श्रेष्ठ ! आपने हमसे जो प्रश्न पूछे हैं वे जो अतुल (अति महत्वपूर्ण) हैं। हे जैमिने ! हम उन (के उत्तरों) को आपसे कहते हैं। आप (ध्यानपूर्वक) उसी प्रकार सुनिये—॥१५॥

जैसे कि हे धीमते ! यह सब विषय प्राचीन काल में मार्कण्डेय ने व्रत, स्नात, शान्त और बुद्धिमान् ब्राह्मण पुत्र कौष्टुकि से कहे थे—॥१६॥

हे प्रभो ! यह जो (जिज्ञासा) आपने हमसे की है, वही कौष्टुकि ने ब्राह्मणों द्वारा सत्कृत महात्मा मार्कण्डेय से पूछा था ॥१७॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! जो भृगुनन्दन (मार्कण्डेय) ने प्रसन्नतापूर्वक उनसे कहा था। उसी को हम भली प्रकार आपसे कहते हैं, आप श्रवण कीजिए ॥१८॥

जो (जगन्नाथ) पद्मयोनि पितामह के रूप में संसार की उत्पत्ति और विष्णु के रूप में सृष्टि की स्थिति करते हैं। और प्रलय काल में भयंकर रुद्र रूप में इस सबका संहार कर डालते हैं। (उन जगन्नाथ को प्रणाम करके आपसे भली प्रकार कहते हैं, आप सुनिये) ॥१९॥

मार्कण्डेय बोले—

पूर्व काल में अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के उत्पन्न होते ही इन सब पुराण और वेदों का उनके (चारों) मुखों से आविर्भाव हुआ ॥२०॥

पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाः परमर्षयः । वेदानां प्रविभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः ॥२१
धर्मज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्य्यं च महात्मनः । तस्योपदेशेन विना न हि सिद्धं चतुष्टयम् ॥२२
वेदान् सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसाः । पुराणं जगृहुश्चाद्या मुनयस्तस्य मानसाः ॥२३
भृगोः सकाशाच्च्यवनस्तेनोक्तं च द्विजन्मनाम् । ऋषिभिश्चापि दक्षाय प्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥२४
दक्षेण चापि कथितमिदमासीत् तदा मम । तत्तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् ॥२५
सर्वमेतन्महाभाग श्रूयतां मे समाधिना । यथा श्रुतं मया पूर्वं दक्षस्य गदतो मुने ॥२६
प्रणिपत्य जगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् । चराचरस्य जगतो धातारं परमं पदम् ॥२७
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे । यत्कारणमनौपम्यं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥२८
तस्मै हिरण्यगर्भाय लोकतन्त्राय धीमते । प्रणम्य सम्यग्वक्ष्यामि भूतवर्गमनुत्तमम् ॥२९
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् । प्रमाणैः पञ्चभिर्गम्यं स्रोतोभिः षड्भिरन्वितम् ॥३०
पुरुषाधिष्टितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम् । तच्छ्रूयतां महाभाग परमेण समाधिना ॥३१

(और फिर) ऋषियों ने पुराण संहिता को बहुत से अंशों और वेदों के सहस्रों विभागों में विभक्त किया ॥२१॥

उन महात्मा के उपदेशों के अभाव में धर्म ज्ञान, वैराग्य और ईश्वर (ऐश्वर्य) इन (पुरुषार्थ) चतुष्ट्य की सिद्धि होना सम्भव नहीं है ॥२२॥

उसके मन से उत्पन्न सप्तऋषियों ने सब वेदों का ग्रहण किया और उसी के मन से उत्पन्न अन्यान्य आदि मुनियों ने पुराणों को ग्रहण किया ॥२३॥

च्यवन (ऋषि) ने भृगु के निकट से (उनका ग्रहण किया) और उन्होंने इनका ब्राह्मणों को उपदेश दिया और महात्मा ऋषियों ने (ये सब पुराण) दक्ष को सुनाए ॥२४॥

तब दक्ष ने ही इनका मुझे उपदेश दिया। (दक्ष द्वारा कहे हुए वे पुराण तब से मेरे पास सुरक्षित थे)। कलिकाल में पापों का नाश करने वाले उनको आज मैं तुम्हें सुना रहा हूं ॥२५॥

हे महाभाग ! हे मुने ! पूर्वकाल में मैंने जो दक्ष से सुना, वह सब मैं आपसे कहता हूं, आप दत्तचित्त होकर सुनिये ॥२६॥

जो जगत् के कारण (योनि) जन्म रहित, अव्यय और चराचर जगत् के एक मात्र आश्रय, परमपद स्वरूप ॥२७॥

जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण भूत, आदि पुरुष और उपमा (साम्य) रहित हैं एवं जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है ॥२८॥

उन हिरण्य गर्भ, लोक नियामक परब्रह्म को सम्यक् प्रकार से प्रणाम करके हम, अनुत्तम प्रपञ्च (भूत वर्ग) का भली प्रकार वर्णन करते हैं ॥२९॥

महत् से लेकर विशेष पर्यन्त सभी भौतिक सृष्टि विकारों के लक्षणों का पंचविध प्रमाणों एवं छः स्रोतों सहित हम क्रम से वर्णन करेंगे ॥३०॥

हे महाभाग ! यह सृष्टि पुरुष द्वारा अधिष्ठित होने के कारण नित्य होते हुए भी अनित्य की तरह कैसे अवस्थित है ? वह संयत चित्त से सुनिये ॥३१॥

प्रधानं कारणं यत्तदव्यक्ताख्यं महर्षयः । यदाहुः प्रकृतिं सूक्ष्मां नित्यां सदसदात्मिकाम् ।।३२
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयं नान्यसंश्रयम् । गन्धरूपरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।।३३
अनाद्यं तं जगद्योनिं त्रिगुणप्रभावाप्ययम् । असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ।।३४
प्रलयस्यानु तेनेदं व्याप्तमासीदशेषतः । गुणसाम्यात् ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ।।३५
गुणभावात् सृज्यमानात् सर्गकाले ततः पुनः । प्रधानं तत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत्समावृणोत् ।।३६
यथा बीजं त्वचा तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् । सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधोदितः ।।३७
ततस्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधो वै व्यजायत । वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्च स तामसः ।।३८
महता चावृतः सोऽपि यथाव्यक्तेन वै महान् । भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रकं ततः ।।३९
ससर्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् । आकाशं शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत् ततः ।।४०
स्पर्शतन्मात्रमेवेह जायते नात्र संशयः । बलवाञ्जायते वायुस्तस्य स्पर्शगुणो मतः ।।४१
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह । ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ।।४२

इस सृष्टि का जो प्रधान कारण अव्यक्त नाम वाला है। जिसे महर्षियों ने सदसदात्मिका नित्य और सूक्ष्म प्रकृति कहा है ॥३२॥

यह निश्चय ही नित्य अक्षय, अजर और अपरिमेय है। जो किसी के आश्रित नहीं है। एवं जो रूप, रस, गंध शब्द एवं स्पर्शादि से रहित है ॥३३॥

अनादि, अनन्त, जो जगत् का उत्पत्ति स्थान है एवं त्रिगुणात्मिका एवं अव्यय है तथा जो चिर विद्यमान और अविज्ञेय है वह ब्रह्म ही सबसे पहले विद्यमान था ॥३४॥

उसी से प्रलय के उपरान्त भी यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त था। हे मुने ! (तीनों) गुण परस्पर अनुकूल होकर, अव्याहत रूप से उसी में अधिष्ठित रहते हैं। (सृष्टिकाल में) क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित ॥३५॥

उन-उन गुणों के द्वारा सृष्टि कार्य होने पर पहले प्रधान तत्त्व उत्पन्न होकर, महत् तत्त्व को समाच्छादित कर लेता है ॥३६॥

जिस प्रकार बीज को त्वचा (आच्छादित कर लेती है) उसी प्रकार अव्यक्त के द्वारा भी महत्तत्व आवृत कर लिया जाता है सात्विक, राजसिक एवं तामसिक तीन प्रकार का, ॥३७॥

तदनन्तर उससे तीन प्रकार का अहंकार उत्पन्न होता है। वैकारिक, तैजस और तामस, भूतादि ही तामस (अहंकार) होता है ॥३८॥

जिस प्रकार महत्तत्व प्रधान तत्त्व के द्वारा आवृत्त रहता है, उसी प्रकार यह अहंकार भी महत्तत्व के द्वारा समाच्छन्न रहता हैं ॥३९॥

(उसी के प्रभाव से वह विकृत होकर) शब्द तन्मात्रा एवं शब्द तन्मात्रा से शब्द लक्षण वाले, आकाश की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् शब्द तन्मात्रावाला आकाश आवृत हो जाता है ॥४०॥

निःसंदेह उसी से स्पर्श तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है और उस (स्पर्श तन्मात्रा से) स्पर्श गुण युक्त महान् बलवान् वायु उत्पन्न होता है ॥४१॥

वायु भी विकृत होता हुआ रूप तन्मात्रा को उत्पन्न करता है। और वायु से ही रूप गुण विशिष्ट ज्योति का आविर्भाव होता है। वह रूप गुण से युक्त कही जाती है ॥४२॥

स्पर्शमात्रस्तु वै वायूरूपमात्रं समावृणोत् । ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह ।।४३
सम्भवन्ति ततो ह्यापश्चासन् वै ता रसात्मिकाः ।
रसमात्रन्तु ता ह्यापो रूपमात्रं समावृणोत् ।।४४
आपश्चापि विकुर्वंत्यो गन्धमात्रं ससर्जिरे । संघातो जायते तस्मात् तस्य गन्धो गुणो मतः ।।४५
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रं तेन तन्मात्रता स्मृता । अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततश्च ते ।।४६
न शान्ता नापि घोरास्तेन मूढाश्चाविशेषतः । भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तु तामसात् ।।४७
वैकारिकादहङ्कारात् सत्त्वोद्रिक्तात् तु सात्त्विकात् । वैकारिकः ससर्गस्तु युगपत् संप्रवर्त्तते ।।४८
बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च । तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिका दश ।।४९
एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः । श्रोत्रं-त्वक्-चक्षुंषी-जिह्वा-नासिका चैव पञ्चमी ।।५०
शब्दादीनामवाप्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते । पादौ पायुरूपस्थश्च हस्तौ वाक् पञ्चमी भवेत् ।।५१
गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यं च कर्म तत् । आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समाविशत् ।।५२
द्विगुणो जायते वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः । रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ।।५३

स्पर्श तन्मात्र वायु से रूप तन्मात्र आवृत्त रहता है । ज्योति भी विकृत होकर रस तन्मात्र को उत्पन्न करता है ।।४३।।

उसी से रसात्मक जल का जन्म होता है । वह रसतन्मात्र रूप तन्मात्र के द्वारा आवृत्त रहता है ।।४४।।

जल भी विकृत होता हुआ गन्ध तन्मात्र का उत्पादक होता है, और उसी से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । जिसका गुण गन्ध होता है ।।४५।।

इस प्रकार जिस-जिस पदार्थ में जो तन्मात्र हो, उसी के द्वारा अन्य पदार्थ में तन्मात्रता आ जाती है । इनका अन्य कोई वाचक न होने के कारण अविशेष कहे जाते हैं ।।४६।।

इस अविशेष के कारण वह शान्त, घोर या मूढ़ नहीं है । इस प्रकार तामस अहंकार से भूत तन्मात्रों की उत्पत्ति होती है ।।४७।।

सत्त्वोद्रिक्त, सात्विक एवं वैकारिक अहंकार से, एक साथ वैकारिक सृष्टि की उत्पत्ति होती है ।।४८।।

बुद्धि आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय ये दसों तैजस इन्द्रिय वैकारिक देवता कहे गये हैं ।।४९।।

ग्यारहवाँ (इन्द्रिय) मन है, ये (ग्यारहों इन्द्रिय) वैकारिक देवता कहे गये हैं । श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, जीभ और नाक इन पांचों से, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का बोध प्राप्त करने के लिए ये बुद्धि द्वारा संचालित कहे गये हैं । पाद, वायु, उपस्थ, हस्त और वाक् इन पांचों कर्मेन्द्रियों से ।।५०-५१।।

क्रमशः गति विसर्जन, आनन्द शिल्प और वाक्य बोलना आदि कार्य होते हैं । शब्द तन्मात्र युक्त आकाश, स्पर्श तन्मात्र में प्रविष्ट हो जाता है ।।५२।।

तो वह दुगने वायु को उत्पन्न करता है । किन्तु वायु का विशेष गुण स्पर्श ही है । शब्द और स्पर्श ये दोनों गुण रूप में प्रविष्ट हो जाते हैं ।।५३।।

त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः सशब्द-स्पर्श-रूपवान् । शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसमात्रं समाविशत् ॥५४

तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धं समाविशत् ॥५५

संहता गन्धमात्रेण आवृण्वंस्ते महीमिमाम् । तस्मात् पञ्चगुणाभूमिः स्थूला भुतेषु दृश्यते ॥५६

शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः । परस्परानुप्रवेशाद् धारयन्ति परस्परम् ॥५७

भूमेरन्तस्त्विमं सर्वं लोकालोकं घनावृतम् । विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ॥५८

गुणं पूर्वस्य पूर्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् । नाना वीर्याः पृथग्भूताः सप्तैते संहतिं विना ॥५९

नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः । समेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्च ते ॥६०

एकसंघातचिह्नाश्च संप्राप्यैक्यमशेषतः । पुरुषाधिष्ठितत्त्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ॥६१

महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते । जलबुद्बुदवत्तत्र क्रमाद्वै वृद्धिमागतम् ॥६२

भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे बृहत्तदुदके शयम् । प्राकृतेऽण्डे विवृद्धः सन्क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥६३

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते । आदिकर्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत ॥६४

अग्नि शब्द स्पर्श और रूप इन तीनों गुणों से युक्त होता है। इसके अनन्तर शब्द, स्पर्श, रूप, रस तन्मात्र में समाविष्ट हो जाते हैं ॥५४॥

उन चार गुणों से चौगुने रसात्मक जल की उत्पत्ति होती है। पुनः शब्द, स्पर्श, रूप और रस, गन्ध तन्मात्र में समाविष्ट हो जाते हैं ॥५५॥

उनके साहचर्य से युक्त गन्ध तन्मात्र से, इस पृथ्वी का सृजन होता है । इसलिए भूमि पाँच गुणों से युक्त, पाँच भूतों से युक्त होने के कारण स्थूल आकार वाली दिखायी देती है ॥५६॥

और इसीलिए ये शान्त, घोर और मूढ़ विशेष कहे जाते हैं। (उक्त पाँचों भूत) आपस में समाविष्ट (प्रविष्ट) होकर एक दूसरे को धारण करते हैं ॥५७॥

और (ये सब) लोका-लोक घनीभूत होकर इस भूमि में ही सन्निविष्ट रहते हैं। नियतत्व के कारण ये सभी इन्द्रिय ग्राह्य 'विशेष' के नाम से भी कहे जाते हैं ॥५८॥

पूर्व-पूर्व के भूतों के गुण उत्तरोत्तर भूतों में प्रविष्ट हो जाते हैं। (दस इन्द्रिय, मन और पाँच तत्त्व) ये सात पदार्थ अलग-अलग बिना इकट्ठा हुए सृष्टि की उत्पत्ति करने में समर्थ नहीं होते हैं। ये परस्पर मिलकर एक दूसरे का अवलम्बन करते हुए पूर्ण रूप से संघटित होकर पुरुष के अधिष्ठान एवं प्रकृति का अनुग्रह प्राप्त करके ही, महत् से लेकर विशेष पर्यन्त एक अण्ड की उत्पत्ति करते हैं जो जल के बुलबुले की तरह क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होता है ॥५९-६२॥

हे महाबुद्धे !. जल में स्थित वह अण्ड सब भूतों से बड़ा होता है। उसी प्राकृत अण्ड में बढ़ता हुआ ब्रह्म नामक क्षेत्रज्ञ है ॥६३॥

वही प्रथम शरीरी और वही पुरुष कहा गया है और वही समस्त भूतों का आदि कर्त्ता ब्रह्मा भी कहा जाता है। वही सबसे पहले वर्तमान था ॥६४॥

तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं चराचरम् । मेरुस्तस्यानुसंभूतो जरायुश्चापि पर्वताः ।।६५
समुद्रा गर्भसलिलं तस्याण्डस्य महात्मनः । तस्मिन्नण्डे जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।।६६
द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्च सज्योतिर्लोकसंग्रहः । जलानिलानलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः ।।६७
वृतमण्डं दशगुणैरेकैकत्वेन तैः पुनः । महता तत् प्रमाणेन सहैवानेन वेष्टितः ।।६८
महांस्तैः सहितः सर्वैरव्यक्तेन समावृतः । एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।।६९
अन्योन्यमावृत्य च ता अष्टौ प्रकृतयः स्थिताः । एषा सा प्रकृतिर्नित्या तदन्तः पुरुषश्च सः ।।७०
ब्रह्माख्यः कथितो यस्ते समासाच्छ्रूयतां पुनः । यथा मग्नो जले कश्चिदुन्मज्जञ्जलसम्भवम् ।।७१
वलयं क्षिपति ब्रह्मा स तथा प्रकृतीर्विभुः । अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ।।७२
एतत् समस्तं जानीयात् क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् । इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ।।
अबुद्धिपूर्वः प्रथमः प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ।।७३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे ब्रह्मोत्पत्तिर्नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।

उसके द्वारा ही ये सम्पूर्ण चराचर त्रिलोक व्याप्त हो रहे हैं । उसके पश्चात् मेरु और जरायु पर्वतों की उत्पत्ति हुई । (पर्वत उसके जरायु हैं) ।।६५।।

और उस महान् अण्ड से ही जल युक्त समुद्र बने । देव, दानव और मनुष्यों से युक्त यह सम्पूर्ण जगत् उसी अण्ड में स्थित हैं ।।६६।।

द्वीपादि, पर्वत, समुद्र और सम्पूर्ण ज्योतिष्क् लोक, समूह जल, वायु, अग्नि, आकाश (उसी में स्थित है) जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि भूतों ने, ।।६७।।

उस अण्डे के क्रमशः दस गुणों के परिमाण में बाहर के भाग को घेर रक्खा है और साथ ही वह उसी प्रमाण से इस महत् के द्वारा भी समावृत्त है ।।६८।।

महत् सहित उन सबके साथ प्रकृति भी (अव्यक्त) उसे आवृत्त किये रहती है इस प्रकार वह अण्ड इन सात प्राकृत आवरणों से आवृत रहता है ।।६९।।

सब मिलकर आठों प्रकृतियाँ परस्पर एक दूसरे को आवृत्त किये रहती हैं । यह प्रकृति नित्य है और उसके भीतर वह पुरुष स्थित रहता है ।।७०।।

जिसे ब्रह्म कहा गया है । उसे पुनः संक्षेप में सुनिये । जिस प्रकार जल में डूबा हुआ कोई (व्यक्ति) जल से निकलते समय, (जल एवं जल के ऊपर स्थित वस्तु रूपी) वलय को दूर फेंक देता है । उसी प्रकार ब्रह्मा भी प्रकृति का स्वामी है (क्योंकि) अव्यक्त को क्षेत्र कहा गया, इसलिए ब्रह्म को क्षेत्रज कहा जाता है ।।७१-७२।।

इस प्रकार यही सब क्षेत्र और क्षेत्रज का लक्षण जानना चाहिए । इसी प्रकार यह प्राकृत सृष्टि क्षेत्रज द्वारा अधिष्ठित प्रकृति से) सर्व प्रथम अबुद्धि पूर्वक विद्युत् की तरह उत्पन्न हुई ई ।।७३।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में ब्रह्मोत्पत्ति नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रिचत्वारिंशोऽध्याय:

क्रोष्टुकिरुवाच —

भगवन्स्त्वण्डसंभूतिर्यथावत् कथिता मम । ब्रह्माण्डे ब्रह्मणो जन्म तथा चोक्तं महात्मनः ।।१

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं त्वत्तो भृगुकुलोद्भव। यदा न सृष्टिर्भूतानामस्ति किं नु न चास्ति वा ।।

काले वै प्रलयस्यान्ते सर्वस्मिन्नुपसंहृते ।।२

यदा तु प्रकृतौ याति लयं विश्वमिदं जगत् । तदोच्यते प्राकृतोऽयं विद्वद्भिः प्रतिसंचर ।।३

मार्कण्डेय उवाच —

स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्ते विकारे प्रतिसंहृते । प्रकृतिः पुरुषश्चैव साधर्म्येणावतिष्ठतः ।।४

तदा तमश्च सत्त्वं च समत्वेन गुणौ स्थितौ । अनुद्रिक्तावनूनौ च ओतप्रोतौ परस्परम् ।।५

तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम्। तथा तमसि सत्त्वे च रजोऽप्यनुसृतं स्थितम् ।।६

उत्पत्तिर्ब्रह्मणो यावदायुर्वै द्विपरार्द्धिकम् । तावद्दिनं परेशस्य तत्समा संयमे निशा ।।७

अष्टौ युग सहस्राणि अहोरात्रं प्रजापतेः । अनेनैव तु मानेन शतं ब्रह्मा स जीवति ।।

पितामहशतेनैव विष्णोर्मानं विधीयते ।।८

निमेषार्धेन शंभोस्तु सहस्राणि चतुर्दश । विनश्यन्ति तथा विष्णोरसंख्याताः पितामहाः ।।९

क्रोष्टुकि बोले —

हे भगवन् ! आपने अण्ड की उत्पत्ति और ब्रह्माण्ड में महात्मा ब्रह्मा के जन्म की कथा भली प्रकार सुना दी ॥१॥

हे भृगु वंशोत्पन्न ! अब मैं आपसे यह सुनना चाहता हूं कि प्रलय काल के अन्त में सबका संहार हो जाने के बाद जब भूतों (प्राणियों) की सृष्टि नहीं रहती (तब पञ्चभूतों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई) ।।२।।

मार्कण्डेय बोले —

जब यह सम्पूर्ण जगत् प्रकृति में लीन हो जाता है। उसी अवस्था को विद्वान् लोग प्राकृत प्रलय कहते हैं ॥३॥

प्रकृति के अपने में अवस्थित रहने पर (सृष्टि के) समस्त पदार्थ संहार को प्राप्त होते हैं। तब प्रकृति और पुरुष दोनों साधर्म्य सम्बन्ध से स्थित रहते हैं।।४।।

उस समय सत्त्व गुण और तमो गुण दोनों समान भाव से स्थित रहते हैं। तब दोनों में से किसी की भी न्यूनता कि वा अधिकता नहीं रहती, दोनों समभाव से युक्त होते हैं। एक दूसरे से ओतप्रोत रहते हैं। ५।।

जिस प्रकार तिलों में तेल अथवा दूध में घी स्थित रहता है। उसी प्रकार रजोगुण, सतोगुण एवं तमोगुण में मिला रहता है ॥६॥

उत्पत्ति से लेकर ब्रह्मा की आयु (का काल) दो परार्द्ध वर्ष है। उस परब्रह्म का दिन मान और रात्रि मान समान रहता है ।।७।।

प्रजापति का एक अहोरात्र आठ हजार युगों का होता है। इसी प्रमाण से ब्रह्मा सौ वर्ष जीते हैं। पितामह (ब्रह्मा) की सौ आयुओं के बराबर विष्णु की आयु होती है। शिव के अर्द्ध निमेष में चौदह हजार विष्णु नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा तो असंख्य होते हैं ।।८-९।।

अहर्मुखे प्रबुद्धस्तु जगदादिरनादिमान् । सर्वहेतुरचिन्त्यात्मा परः कोऽप्यपरक्रियः ।।१०
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु जगत्पतिः । क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ।।११
यथा मदो नवस्त्रीणां यथा वा माधवानिलः । अनुप्रविष्टः क्षोभाय तथाऽसौ योगमूर्तिमान् ।।१२
प्रधाने क्षोभ्यमाणे तु स देवो ब्रह्म संज्ञितः । समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थो यथा ते कथितं मया ।।१३
स एव क्षोभकः पूर्वं स क्षोभ्यः प्रकृतेः पतिः । स संकोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि संस्थितः ।।१४
उत्पन्नः स जगद्योनिरगुणोऽपि रजोगुणम् । भुञ्जन् प्रवर्तते सर्गे ब्रह्मत्वं समुपाश्रितः ।।१५
ब्रह्मत्वे स प्रजाः सृष्ट्वा ततः सत्त्वातिरेकवान् । विष्णुत्वमेत्य धर्मेण कुरुते परिपालनम् ।।१६
ततस्तमोगुणोद्रिक्तो रुद्रत्वे चाखिलं जगत् । उपसंहृत्य वै शेते त्रैलोक्यं त्रिगुणोऽगुणः ।।१७
यथा प्राग्व्यापकः क्षेत्री पालको लावकस्तथा । तथा स संज्ञामायाति ब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम् ।।१८
ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् रुद्रत्वे संहरत्यपि । विष्णुत्वे चाप्युदासीनस्त्रिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ।।१९
रजो ब्रह्मा तमो रुद्रो विष्णुः सत्त्वं जगत्पतिः । एत एव त्रयो देवा एत एव त्रयो गुणाः ।।२०

वह इस जगत् का आदि है और स्वयं अनादि है। वह सबका कारण है। अचिन्त्य स्वरूप वाला परमेश्वर स्वयं क्रियावान् है ।।१०।।

उस जगत्पति परमेश्वर ने परमयोग से प्रकृति और पुरुष में शीघ्र प्रविष्ट होकर उनको विक्षुब्ध किया, ।।११।।

जिस प्रकार नव युवतियों में मद अथवा बसंत ऋतु की वायु में मस्ती होती है। उसी प्रकार योग मूर्ति ब्रह्म भी उनमें प्रविट होकर प्रकृति और पुरुष को क्षुब्ध कर देता है ।।१२।।

प्रधान (प्रकृति) के क्षुभित किये जाने पर अण्ड कोष में स्थित ब्रह्म नाम का देवता, जैसा कि मैंने तुमसे कहा था, उत्पन्न हो जाता है ।।१३।।

वह पहले प्रकृति को क्षुभित करके प्रकृति का पति बनकर पुनः (स्वयं) क्षुब्ध होता है। इसी प्रकार संकोच एवं विकास के द्वारा वह स्वयं प्रकृति रूप हो जाता है ।।१४।।

वह जगत् योनि निर्गुण होते हुए भी रजोगुण का आश्रय (भोग) लेकर ब्रह्मा के रूप में परिणत हो जाता है और सृष्टि कार्य में प्रवृत्त हो जाता है ।।१५।।

वह ब्रह्मा के रूप में प्रजा की सृष्टि करके सतोगुण की अधिकता होने के कारण विष्णु का रूप धारण करके न्याय (धर्म) के अनुसार प्रजापालन करता है ।।१६।।

तदन्तर तमोगुण का उद्रेक होने पर (वह ब्रह्म) रुद्र रूप धारण करके समस्त विश्व का संहार करके सो जाता है। इस प्रकार वह निर्गुण होते हुए भी तीनों कालों में तीन गुणों का अवलम्बन करता है ।।१७।।

सर्व व्यापक, सबका उत्पत्ति कर्त्ता वह ईश्वर (जिस प्रकार सृष्टि से पहले) सर्व मानक, सर्व व्यापी ईश्वर इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और प्रलय के कारण ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामों से पुकारा जाता है ।।१८।।

वह ब्रह्म भाव से समस्त लोकों की उत्पत्ति करता है। एवं रुद्र भाव से संहार करता है तथा विष्णु भाव से उदासींनता पूर्वक पालन करता है। स्वयम्भुव की ये तीन अवस्थाएँ हैं ।।१९।।

ब्रह्मा रजोगुणमय हैं, रुद्र तमोगुण मय है और जगत्पति विष्णु सत्व गुणमय हैं। ये तीन देवता हैं और तीन ही गुण हैं ।।२०।।

अन्योन्यमिथुना ह्यते ह्यन्योन्याश्रयिणस्तथा। क्षणं वियोगो न ह्येषां न त्यजन्ति परस्परम् ।।२१
एवं ब्रह्मा जगत्पूर्वो देवदेवश्चतुर्मुखः । रजोगुणं समाश्रित्य स्रष्ट्त्वे स व्यवस्थितः ।।२२
हिरण्यगर्भो देवादिरनादिरूपचारतः । भूपद्मकर्णिकासंस्थो ब्रह्माग्रे समजायत ।।२३
तस्य वर्षशतं त्वेकं परमायुर्महात्मनः । ब्राह्मेणैव हि मानेन तस्य संख्यां निबोध मे ।।२४
निमेषैर्दशभिः काष्ठा तथा पञ्चभिरुच्यते । कलास्त्रिशच्च वै काष्ठा मुहूर्त्तं त्रिशदेवताः ।।२५
अहोरात्रं मुहूर्त्तानां नृणां त्रिशत्तु वै स्मृतम् । अहो रात्रैश्च त्रिशद्भिः पक्षौ द्वौ मास उच्यते ।।२६
तै षड्भिरयनं वर्ष द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे । तद्देवानामहोरात्रं दिनं तत्रोत्तरायणम् ।।२७
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम् । चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं शृणुष्व मे ।।२८
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कृतमुच्यते । शतानि सन्ध्या चत्वारि सन्ध्यांशश्च तथाविधः ।।२९

त्रेता त्रीणि सहस्राणि दिव्याब्दानां शतत्रयम् ।
तस्य सन्ध्या समाख्याता मध्यांशश्च तथाविधः ।।३०।।

द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां द्वे शते तथा । तस्य संध्या समाख्याता द्वे शताब्दे तदंशकः ।।३१

ये (निपुणता से) एक दूसरे का आश्रय लेकर स्थित रहते हैं इसका क्षण भर के लिये भी वियोग नहीं होता और नये एक दूसरे का त्याग करते हैं ।।२१।।

इस प्रकार जगत् के आदि देवाधिदेव चार मुखों वाले ब्रह्मा जी रजोगुण का आश्रय लेकर सबकी उत्पत्ति का कार्य करते हैं ।।२२।।

वे ही हिरण्य गर्भ, आदि देव और उपचार से अनादि भी है। वे ही पृथ्वी रूपी कमल के कोष (कर्णिका) में स्थित होकर सबसे पहले उत्पन्न होते हैं ।।२३।।

उन महात्मा की परमायु ब्राह्ममान के अनुसार एक सौ वर्ष होती है। उस संख्या को मुझ से सुनो— ।।२४।।

पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला एवं तीस कला का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तों का, मनुष्यों का एक अहोरात्र होता है और तीस अहोरात्रों अथवा दो पक्षों का एक मास कहा जाता है। ।।२४-२६।।

छः महीने का एक अयन और दो अयनों का एक वर्ष होता है। इन (दो अयनों) में एक दक्षिणायण और दूसरा उत्तरायण होता है। मानवों के एक वर्ष का देवताओं का एक अहोरात्र होता है। उनमें उत्तरायण दिन (दक्षिणायण रात होती हैं) ।।२७।।

दिव्य परिमाण के बारह सहस्र वर्षों में कृत, त्रेता, द्वापर आदि चार युग होते हैं। अब उनके विभाग को सुनो ।।२८।।

दिव्य चार सहस्र वर्षों का सत्युग कहा गया है। चार-चार सौ वर्षों का उसका सन्धि का तथा संध्यांश माना गया है ।।२९।।

तीन सहस्र दिव्य वर्षों का त्रेता युग और तीन-तीन सौ वर्षों का उनका संधिकाल एवं संध्यांश होता है ।।३०।।

और द्वापर युग दो सहस्र दिव्य वर्षों का होता है तथा दो-दो सौ वर्षों के उसका संधिकाल और संध्यांश मानने चाहियें ।।३१।।

कलिः सहस्रं दिव्यानामब्दानां द्विजसत्तम। सन्ध्या सन्ध्यांशकश्चैव शतकौ समुदाहृतौ ।।३२
एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या कविभिः कृता । एतत् सहस्रगुणितमहोब्राह्ममुदाहृतम् ।।३३
ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् मनवः स्युश्चतुर्दश । भवन्ति भागशस्तेषां सहस्रं तद्विभज्यते ।।३४
देवाः सप्तर्षयः सेन्द्रामनुस्तत्सूनवो नृपाः । मनुना सह सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्ववत् ।।३५
चतुर्युगानां संख्याता साधिकाह्येकसप्ततिः । मन्वन्तरं तस्य संख्यां मानुषाब्दैर्निबोध मे ।।३६

त्रिंशत् कोट्यस्तु संपूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज ।
सप्तषष्टिस्तथाऽन्यानि नियुतानि च संख्यया ।।३७।।

विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकं विना । एतन्मन्वन्तरं प्रोक्तं दिव्यैर्वर्षैर्निबोध मे ।।३८
अष्टौ वर्ष सहस्राणि दिव्यया संख्यया युतम् । द्विपञ्चाशत् तथाऽन्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ।।३९

चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् ।
तस्यान्ते प्रलयः प्रोक्ता ब्राह्मो नैमित्तिको बुधैः ।।४०

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकस्तन्निवासिनः । तदा विनाशमायान्ति महर्लोकच तिष्ठति ।।४१
तद्वासिनोऽपि तापेन जनलोकं प्रयान्ति वै । एकार्णवे च त्रैलोक्ये ब्रह्मा स्वपिति वै निशि ।।४२

हे द्विज श्रेष्ठ ! एक दिव्य सहस्र वर्ष का कलियुग होता है । और उसका संधिकाल तथा संध्यांश एक-एक सौ के कहे गये हैं ।।३२।।

विद्वानों ने इस प्रकार यह चारों युगों का विभाव देवताओं के बाहर सहस्र वर्षों में किया है । इसका एक हजार गुने वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है ऐसा कहा गया है ।।३३।।

हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा के इस एक दिन में चौदह मनु होते हैं । उनके काल का विभाजन सहस्रों वर्षों में किया जाता है ।।२४।।

(इन्द्रादि) देवता ! सप्तर्षि, मनु और मनु के पुत्र राजागण मनु के साथ ही उत्पन्न होते हैं तथा उसी क्रम से विलीन भी हो जाते हैं ।।३५।।

इकहत्तर चतुर्युगों से कुछ अधिक का एक मन्वन्तर होता है । मनुष्यों के वर्षों के प्रमाण से उसकी संख्या कहता हूं, सुनो ।।३६।।

तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार मानव वर्षों का एक मन्वन्तर होता है । यह मनुष्य वर्ष मान के अनुसार मन्वन्तर हुआ अब आप दिव्य वर्षमान के अनुसार सुनिये ।।३७।।

आठ सौ बावन हजार दिव्य वर्षों का एक मन्वन्तर होता है । इस काल का चौदह गुणा करने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है । हे ब्रह्मन् ! उस ब्राह्म दिन के अन्त की प्रलय को विद्वान् लोग नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ।।३८-४ ।।

भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक तथा उनके निवासीजन उस समय विनष्ट हो जाते हैं । केवल महः लोक शेष बचता है ।।४१।।

उस (महलोक) के निवासी भी (प्रलय काल के) ताप के कारण जनलोक में चले जाते हैं । तब त्रिभुवन रूपी समुद्र में, रात्रि में ब्रह्मा सो जाते हैं ।।४२।।

तत् प्रयाणैव सा रात्रिस्तदन्ते सृज्यते पुनः । एवं तु ब्रह्मणो वर्षमेकं वर्षशतं तु तत् ॥४३
शतं हि तस्य वर्षाणां परमित्यभिधीयते । पञ्चाशद्भिस्तथा वर्षैः परार्द्धमिति कीर्त्यते ॥४४
एकमस्य परार्द्धं तु व्यतीतं द्विजसत्तम । यस्यान्तेऽभून्महाकल्पः पाद्म इत्यभिविश्रुतः ॥४५
द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्तमानस्य वै द्विज । वाराह इति कल्पोऽयं प्रथमः परिकल्पितः ॥४६

॥ इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे ब्रह्मायुः प्रमाणकथनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

उस (दिन) के परिमाण के समान ही रात्रि का भी परिमाण होता है, उस रात्रि के अन्त में पुनः सृष्टि होती है। इस प्रकार (तीन सौ आठ दिनों में सात सौ बीस प्रलय होने पर) ब्रह्मा का एक वर्ष होता है और ऐसे सो वर्षों की, ॥४३॥

फिर से सौ गुणा करने पर जो संख्या आती है। उसी को पर कहते हैं। इस प्रकार के पचास वर्षों का एक परार्द्ध कहलाता हैं ॥४४॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! इस समय ब्रह्मा का एक परार्द्ध व्यतीत हो चुका है। जिसके अन्त में पद्म नामक महाकल्प हुआ था, ऐसा कहा जाता है ॥४५॥

हे द्विज ! अब यह दूसरा परार्थ वर्तमान हैं। वराह नामक यह कल्प प्रथम माना गया है ॥४६॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में ब्रह्मायु प्रमाण कथन नामक तितालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच —

यथा ससर्ज वै ब्रह्मा भगवानादिकृत्प्रजाः । प्रजापतिः पतिर्देवस्तन्मे विस्तरतो वद ॥१

मार्कण्डेय उवाच —

कथयाम्येष ते ब्रह्मन् ससर्ज भगवान् यथा । लोककृच्छाश्वतः कृत्स्नं जगत् स्थावरजंगमम् ॥२
पाद्मावसानसमये निशासुप्तोत्थितः प्रभुः । सत्त्वोद्रिक्तस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ॥३
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति । ब्रह्म स्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥४

क्रोष्टुकि ने कहा—

भगवान् प्रजापति आदि सृष्टा, प्रभु ब्रह्मा ने प्रजाओं की कैसे सृष्टि की, वह मुझे विस्तारपूर्वक कहिए ॥१॥

मार्कण्डेय बोले—

हे ब्रह्मन् ! जगत् का निर्माण करने वाले शाश्वत् भगवान् ने इस सम्पूर्ण स्थावर जङ्गमात्मक जगत् का जिस प्रकार निर्माण किया, वह मैं तुमसे कहता हूं ॥२॥

पाद्मकला के अवसान के समय, सत्वगुण के द्वारा उद्रिक्त ब्रह्मा ने शून्य हुए समस्त लोकों को देखा ॥३॥

तब जगत के कारण स्वरूप अव्यय ब्रह्मरूप नारायण के प्रति उन्हें इस श्लोक का स्मरण हुआ ॥४॥

'आपोनारा' इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। तासु शेते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥५
विबुद्धः सलिले तस्मिन् विधायान्तर्गतां महीम्। अनुमानात् समुद्धारं कर्तुकामस्तदा क्षितेः ॥६
अकरोत् स तनूरन्याः कल्पादिषु यथा पुरा। मत्स्यकूर्मादिका स्तद्वद् वाराहं वपुरास्थितः ॥७
वेदयज्ञमयं दिव्यं वेदयज्ञमयो विभुः। रूपं कृत्वा विवेशाप्सु सर्वगः सर्वसम्भवः ॥८
समुद्धृत्य च पातालान्मुमोच सलिलेभुवम्। जनलोकस्थितैः सिद्धैश्चिन्त्यमानो जगत्पतिः ॥९
तस्योपरि जलौघस्य महतो नौरिव स्थिता।
विस्तृतत्वात् तु देहस्य न मही याति सम्प्लवम् ॥१०
ततः क्षितिं समीकृत्य पृथिव्यां सोऽसृजद्गिरीन्। प्राग्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्तकाग्निना ॥११
तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भुवि सर्वशः। शैला एकार्णवे मग्ना वायुनापस्तु संहताः ॥१२
निषक्ता यत्र यत्रासंस्तत्र तत्राचलाभवन्। भूवि-भागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपोपशोभितम् ॥१३
भूराद्यांश्चतुरो लोकान् पूर्ववत् समकल्पयत्। सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ॥१४
अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात् प्रादुर्भूतस्तमोमयः। तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्ध संज्ञितः ॥१५

जलका ही प्रतिशब्द (पर्यायवाची) नार है, उनमें जिनका शयन स्थान हैं, वे ही नारायण कहे गये हैं, ॥५॥

नारायण ने जागकर (देखा) कि इस जल में पृथ्वी डूब रही है, अतः इस प्रकार के अनुमान से उन्होंने उसके उद्धार की इच्छा की ॥६॥

जिस प्रकार उन्होंने अन्य कल्पों में शरीर को भिन्न-भिन्न रूपों मत्स्य, कूर्म आदि वाला बनाकर अवतार ग्रहण किये थे। उसी प्रकार वराह के रूप को धारण किया ॥७॥

वेद यज्ञमय विभु ने दिव्य वेदयज्ञमय वाराह का रूप धारण करके जल में प्रवेश किया। सर्वगामी और सभी के उत्पत्ति स्थान ॥८॥

जगत् पति ने पृथ्वी को पाताल से निकाल कर जल के ऊपर छोड़ा। विशाल होने के कारण वह पृथ्वी जल में डूबी नहीं बल्कि नाव के समान उस जल समूह के ऊपर अवस्थित रही। यह देखकर जनलोक में निवास करने वाले सिद्ध पुरुषों ने जगत् पति परमात्मा का गुणगान किया ॥९-१०॥

तत्पश्चात् पृथ्वी को समतल करके उन्होंने पर्वतों की सृष्टि की (पहले सृष्टि के सम्वर्तक अग्नि से दग्ध किया, ॥११॥

पुनः उस अग्नि के द्वारा पृथ्वी पर स्थित, सभी पर्वत विशीर्ण होकर, समुद्र में मग्न हो गये और वहाँ का जल भी वायु के द्वारा एकत्र हो गया ॥१२॥

इसलिये पर्वत जहाँ पड़े थे वही अचल हो गये। पुनः पृथ्वी के विविध भाग करके सात द्वीपों में विभक्त कर दिया ॥१३॥

और पहले के समान भूलोक आदि चार लोकों का निर्माण किया गया और जिस प्रकार पहले कल्प से पूर्व सृष्टि थी, उसी प्रकार सृष्टि का विचार करने लगे ॥१४॥

उससे अबुद्धि पूर्वक तमोगुण उत्पन्न हुआ तब उनसे तमोयुक्त, तम, मोह, महामोह, तमिस्त्रा, अन्ध तमिस्र आदि पाँच अविद्याएं उत्पन्न हुईं ॥१५॥

अविद्या पञ्चपूर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः । पञ्चधावस्थितः सर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥१६
बहिरन्तश्चाप्रकाशः संवृतात्मानगात्मकः । मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥१७
तं दृष्ट्वा साधकं सर्गममन्यदपरं पुनः । तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोतो ह्यवर्तत ॥१८
यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तिः स तिर्यक् स्रोतस्ततः स्मृतः ।
पश्वादयस्ते विख्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः ॥१९
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः । अहंकृता अहंमाना अष्टाविंशद्विधात्मकाः ॥२०
अन्तः प्रकाशास्ते सर्वे आवृतास्तु परस्परम् । तमप्य साधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥२१
अर्द्धस्रोतस्तृतीयस्तु सात्त्विकोऽर्द्धमवर्तत । ते सुखप्रीति बहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः ॥२२
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतः समुद्भवाः । तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गो हि स स्मृतः ॥२३
तस्मिन् सर्गेऽभवत् प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा । ततोऽन्यं स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ॥२४
तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः । प्रादुर्बभौ तदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः ॥२५
यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्त ततोऽर्वाक् स्रोतस स्तुते । ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥२६
तस्मात्ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः । प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याःसाधकाश्च ते ॥२७

पाँच प्रकार से स्थित अप्रतिबोध (अज्ञान युक्त) सृष्टि उस प्रकार के चिन्तन से उत्पन्न हुई ॥१६॥

संवृत्तात्मक और पर्वत स्वरूप वह सृष्टि अपने बाहर-भीतर सर्वत्र अप्रकाशित थी। पर्वतों को प्रधानता के कारण वह सृष्टि 'मुख्य सर्ग' नामवाली हुई ॥१७॥

इस साधक सृष्टि को देखकर फिर उन्होंने अन्य सृष्टि की इच्छा की, तो उनके ध्यान से तिर्यक् स्रोत की प्रवृत्ति हुई ॥१८॥

क्योंकि उसकी तिर्यक् प्रवृत्ति थी, इसी कारण उसे तिर्यक् स्रोत कहा गया। तत्पश्चात् तमोगुणी सृष्टि अज्ञानी पशु आदि उत्पन्न हुए ॥१९॥

उन मार्गों को ग्रहण करने वाले और अज्ञान को ही ज्ञान मानने वाले अहंकारी, अहंमानी वे अट्ठाइस प्रकार के हुए ॥२०॥

अन्तःकरण से प्रकाशित वे सब एक दूसरे को आवृत्त करके रहते थे। उन्होंने इसे भी असाधक मानकर पुनः ध्यान किया ॥२१॥

इससे तृतीय ऊर्ध्वगामी सात्विक स्रोत प्रवाहित होने लगा। ऊर्ध्व स्रोत से उत्पन्न हुए वे सुख, प्रीति विशिष्ट, अन्दर और बाहर से प्रकाशित एवं तुष्टात्मा थे। यह तीसरी सृष्टि देव सर्ग कही गयी ॥२३॥

उस सृष्टि के उत्पन्न होने पर ब्रह्मा जी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसके बाद उन्होंने उत्तम साधकों की सृष्टि का चिंतन किया ॥२४॥

तब उस यथार्थ चिन्तन से युक्त ब्रह्मा जी के मनोबल से अव्यक्त के द्वारा अर्वाक् नामक स्रोत से साधकों की उत्पत्ति हुई ॥२५॥

क्योंकि यह स्रोत ऊर्ध्व से उग्र होकर स्थित रहता है, इसलिये इसे अर्वाक् स्रोत कहा गया है। इसमें (वे) स्रोत प्रकाश बहुल तमोगुण की न्यूनता तथा रजोगुण के आधिक्य से युक्त है ॥२६॥

इसलिये वे दुःख बहुल एवं बारम्बार कार्य करने वाले, बाहर और अन्दर से प्रकाशित वे साधक मनुष्य थे ॥२७॥

पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गः स चतुर्द्धा व्यवस्थितः । विपर्ययेन सिद्धचा च शान्त्या तुष्टचा तथैव च ॥२८
निवृत्तं वर्तमानं च तेऽर्थं जानन्ति वै पुनः । भूतादिकानां भूतानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥२९
ते परिग्राहिणः सर्वे संविभागरतास्तथा । चोदनाश्चाप्यशीलाश्च ज्ञेया भूतादिकाश्च सः ॥३०
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः । तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥३१
वैकारिक स्तृतीयस्तु सर्गश्चैन्द्रियकः स्मृतः । इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः ॥३२
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ।
तिर्यक्स्रोतास्तु यः प्रोक्तस्तिर्यंग्योन्यः स पञ्चमः ॥३३
तथोर्द्धस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः । ततोऽर्वाक् स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥३४
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः । पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ॥३५
प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः । इत्येते वै समाख्याता नव-सर्गाः प्रजापतेः ॥३६
प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः । सृजतो जगदीशस्य किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे प्राकृतवैकृतसर्गवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

फिर अनुग्रह नामक पाँचवीं सृष्टि हुई । यह चार प्रकार से स्थित हैं । विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और तुष्टि ॥१८॥

वे भूत और वर्तमान के सभी विषयों को जानते हैं । भूतादि तथा सभी भूतों की यह सृष्टि छठी सृष्टि कही गयी है ॥२९॥

वे सब भूतादि परिग्रह परायण, बटवारा करने में लीन, प्रेरणा कुशल एवं कुत्सित (अशील) स्वभाव के होते हैं ॥३०॥

जिससे ब्रह्मा जी की उत्पत्ति होती है, वह प्रथम सृष्टि महत् सृष्टि जाननी चाहिये । तन्मात्राओं से उत्पन्न द्वितीय सृष्टि भूत सृष्टि कही जातीहै ॥३१॥

और जो तीसरी वैकारिक सृष्टि है वह ऐन्द्रियक कही गयी है । इस प्रकार उत्पन्न हुआ यह प्राकृत सर्ग बुद्धि पूर्वक उत्पन्न माना गया है ॥३२॥

चतुर्थ सर्ग मुख्य (सर्ग) हैं । सभी स्थावरों को मुख्य कहा गया है और जो तिर्यक् योनिरूपतिर्यक् स्रोत कहा गया है । वह पञ्चम सर्ग है ॥३३॥

तथा ऊर्ध्व स्रोत से उत्पन्न छठी सृष्टि देव सर्ग कही गयी है । उसके बाद अर्वाक् स्रोत से उत्पन्न सातवीं मानवी सृष्टि है ॥३४॥

आठवां अनुग्रह सर्ग सात्विक और तामासिक दो प्रकार का होता है । यह पाँच वैकृत सर्ग और पहले कहे हुए तीन प्राकृत सर्ग है ॥३५॥

प्राकृत और वैकृत से युक्त कौमार नाम की नौवी सृष्टि मानी गयी है । इस प्रकार मैंने प्रजापति की नौ प्रकार की सृष्टियों का वर्णन किया ॥३६॥

ये प्राकृत और वैकृत ही संसार के मूल कारण हैं । जिसकी जगदीश्वर ने रचना की हैं । अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ॥३७॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में प्राकृत वैकृत सर्ग वर्णन नामक चवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

क्रोष्टुकिरुवाच—

समासात् कथिता सृष्टिः सम्यग्भवता मम। देवादीनां भवं ब्रह्मन् विस्तारात्तु ब्रवीहि मे ॥१

मार्कण्डेय उवाच—

कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन् भाविता पूर्वकर्मभिः। ख्याता तया ह्यनिर्मुक्ताः प्रलये ह्युपसंहृताः ॥२

देवाद्याः स्थावरान्ताश्च प्रजाब्रह्मंश्चतुर्विधाः। ब्रह्मणः कुर्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तदा ॥३

ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्च चतुष्टयम्। सिसृक्षुरम्भस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥४

युक्तात्मनस्तमो मात्रा उद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः। सिसृक्षोर्जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ॥५

उत्ससर्ज ततस्तां तु तमोमात्रात्मिकां तनुम्। सापि विद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥६

अन्यां तनुमुपादाय सिसृक्षुः प्रीतिमाप सः। सत्त्वोद्रेकास्ततो देवा मुखतस्तस्य जज्ञिरे ॥७

उत्ससर्ज च भूतेशस्तनुं तामप्यसौ विभुः। सा चापविद्धा दिवसं सत्त्वप्रायमजायत ॥८

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्। पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ॥९

क्रोष्टुकि बोले—

हे ब्रह्मन्! आपने सृष्टि को अति संक्षेप से मुझे सुनाया है। अतः आप देवादि की उत्पत्ति को विस्तार से कहिये ॥१॥

मार्कण्डेय ने कहा—

हे विप्र! पूर्व जन्म के सुभ और अशुभ कर्मों से ही पुनर्जन्म होता है (क्योंकि वह प्रलय में लीन होते हैं मुक्त नहीं होते) कर्मबद्ध देवताओं से लेकर स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण चारों प्रकार की ब्रह्मा की सृष्टि जब प्रलयकाल में विनष्ट हो जाती हैं तो ब्रह्मा पुनः सृष्टि करते हुए अपने मन से रचना करते हैं (यह मानसी सृष्टि होती है) ॥२-३॥

तब सुर, असुर, पितृगण और मनुष्य इस चार प्रकार की सृष्टि के सृजन की इच्छा से, उन्होंने अपने अंश को जल में प्रक्षिप्त किया ॥४॥

सृजन की कामना से युक्त ब्रह्माजी में तमोगुण के उद्रेक से पहले उनकी जंघा से असुरों की उत्पत्ति हुई ॥५॥

इसलिये उन्होंने वह तमोगुणी शरीर छोड़ दिया। उस व्यक्त शरीर से शीघ्र ही रात्रि आविर्भूत हुई ॥६॥

फिर ब्रह्मा जी ने दूसरा शरीर धारण किया, इससे वे बहुत प्रसन्न हुए। उसमें सतोगुण के उद्रेक से उनके मुख से देवताओं की उत्पत्ति हुई ॥७॥

उन विभु-भूतेश ने उस शरीर को त्याग दिया। वही व्यक्त देह सत्व गुणात्मक दिवस नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८॥

फिर उन्होंने एक अन्य सत्वमय शरीर को ग्रहण किया। पितृवत् माने जाते हुए, उससे पितृगणों की उत्पत्ति हुई ॥९॥

सृष्ट्वा पितॄनुत्ससर्ज तनुं तामपि स प्रभुः ।
सा चोत्सृष्टाऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थिता ॥१०

रजोमात्रात्मिकामन्यां तनुं भेजेऽथ स प्रभुः । ततो मनुष्याः सम्भूता रजोमात्रसमुद्भवाः ॥११
सृष्ट्वा मनुष्यान् स विभुरुत्ससर्ज तनुं ततः । ज्योत्स्ना समभवत् सा च नक्तान्तेऽहर्मुखे च या ॥१२
इत्येतास्तनवस्तस्य देवदेवस्य धीमतः । ख्याता राज्यहनी चैव सन्ध्याज्योत्स्ना च वै द्विज ॥१३

ज्योत्स्ना सन्ध्या तथैवाहः सत्त्वमात्रात्मकं त्रयम् ।
तमो मात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्तमोधिका ॥१४
तस्माद्देवा दिवा रात्रावसुरास्तु बलान्विताः ।
ज्योत्स्नागमे च मनुजाः सन्ध्यायां पितरस्तथा ॥१५

भवन्ति बलिनोऽधृष्या विपक्षाणां न संशयः । तद्विपर्ययमासाद्य प्रयान्ति च विपर्ययम् ॥१६
ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः । ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपाश्रितानि तु ॥१७
चत्वार्येतान्यथोत्पाद्य तनुमन्यां प्रजापतिः । रजस्तमोमयीं रात्रौ जगृहे क्षुत्तृडन्वितः ॥१८
तदन्धकारे क्षुत्क्षामानसृजद् भगवानजः । विरूपान् श्मश्रुलानत्तुमारब्धास्ते च तां तनुम् ॥१९

पितरो की सृष्टि करके भी उन प्रभु ने उस शरीर का भी परित्याग कर दिया । उस शरीर से दिन और रात्रि के मध्य में स्थित रहने वाली संध्या की सृष्टि हुई ॥१०॥

फिर उन प्रभु ने रजोगुण सम्पन्न एक अन्य शरीर को धारण किया । तब रजोगुण से उत्पन्न उस शरीर से, रजोगुण से युक्त मनुष्य उत्पन्न हुए ॥१२॥

मनुष्यों की सृष्टि करके उस विभु ने उस शरीर को भी छोड़ दिया वह (अव्यक्त) शरीर ज्योत्स्ना हुआ जो रात्रि के शेष और दिन के प्रथम भाग में स्थित रहती है ॥१२॥

हे द्विज ! इस प्रकार विचारशील देवाधिदेव के ये सब विग्रह ही दिवस, रात्रि, संध्या और ज्योत्स्ना के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥१३॥

ज्योत्स्ना, संध्या और दिवस ये तीनों सतोगुणी हैं और क्योंकि रात्रि तमोमात्रात्मिका होती हैं । इसलिये वह त्रियामिका कही जाती है ॥१४॥

इसलिये (पूर्वोक्त गुणों की अधिकता से) दिन में देवता, रात्रि में असुर, ज्योत्स्ना में मनुष्य और संध्याकाल में पितर, ॥१५॥

बलवान् होकर निःसन्देह शत्रुओं के लिये पराजेय, इस प्रकार विपरीत अवस्था में विपर्यय को प्राप्त हो जाते हैं ॥१६॥

प्रजापति ने तीन गुणों से युक्त दिवस, रात्रि, संध्या और ज्योत्स्ना रूपी ये चार शरीर उत्पन्न किये ॥१७॥

इन चारों शरीरों को उत्पन्न करने के पश्चात् क्षुधा एवं पिपासा युक्त प्रजापति ने रात्रि में रजस् तमोगुण युक्त एक अन्य शरीर को ग्रहण किया ॥१८॥

तब उस अंधकार में क्षुधा से कृश हुए, अाज ब्रह्मा ने विरुप दाढ़ी मूछों से युक्त प्राणियों की रचना की । तब उन्होंने उस शरीर को ही खाना प्रारम्भ कर दिया ॥१९॥

रक्षाम इति तेभ्योऽन्ये य ऊचुस्ते तु राक्षसाः ।
खादाम इति ये चोचुस्ते यक्षा यक्षणात् द्विज ।।२०
तान् दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्यन्त वेधसः। समारोहणहीनाश्च शिरसो ब्रह्मणस्तु ते ।।२१
सर्पणात् तेऽभवन्सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः। सर्पान्दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्ममे ।।२२
वर्णेन कपिलेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः । ध्यायतो गां ततस्तस्य गन्धर्वा जज्ञिरेसुताः ।।२३
जज्ञिरे पिबतो वाचं गन्धर्वास्तेन ते स्मृताः । अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः ।।२४
ततः स्वदेहतोऽन्यानि वयांसि पशवोऽसृजत्। मुखतोऽजाः ससर्ज्जाथ वक्षसश्चाऽवयोऽसृजत् ।।२५
गाश्चैवोदरलो ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्ममे ।
पद्भ्याञ्चाश्वान् समातङ्गान् रासभाञ्छशकान् मृगान् ।।२६
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव नानारूपाश्च जातयः । ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।।२७
एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा ह्ययजच्चाध्वरे विभुः। तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ।।२८
गौरजः पुरुषो मेषो अश्वाश्वतरगर्दभाः। एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यांश्च निबोध मे ।।२९
श्वापदं द्विखुरं हस्ती वानराः पक्षि पञ्चमाः। औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ।।३०

हे द्विज ! तब उनमें से जिन्होंने यह कहा कि दम रक्षा करते हैं वे तो राक्षस हुए एवं जिन्होंने कहा—'हम खाते हैं' वे भक्षण के कारण यक्ष कहलाए ।।२०।।

उन्हें (यक्ष-राक्षसों को) देखकर अप्रसन्नता के कारण ब्रह्मा के सभी बाल सिर से झड गये और पुनः न आने के कारण ब्रह्मा का सिर केश रहित हो गया ।।२१।।

वे सर्पण (रेंगने) के कारण सर्प हुए और हीनत्व के कारण अहि कहलाए। उन सर्पों को देखकर क्रोधयुक्त होने के कारण उन्हें क्रोधात्मक बनाया ।।२२।।

कपिल वर्ण वाले वे प्राणी बड़े उग्र एवं मांस भक्षी बने । इसके पश्चात् गौ का ध्यान करते हुए उनके शरीर से गन्धर्व नामक पुत्र हुए ।।२३।।

(जो) वाणी को ग्रहण करते-करते उत्पन्न होने से वे 'गन्धर्व' कहलाए । इस प्रकार ब्रह्मा इन आठ प्रकार की देव-योनियों को उत्पन्न करने के पश्चात् ।।२४।।

उन्होंने अपने शरीर से अन्यान्य पशु पक्षियों की उत्पत्ति की। मुख से उन्होंने बकरे को उत्पन्न किया और हृदय से भेड़ों को उत्पन्न किया ।।२५।।

ब्रह्मा ने अपने उदर और पार्श्व भाग से गायों को, पैरों से अश्व, हाथी, गधा, खरगोश, ।।२६।।

ऊँट और खच्चर आदि तथा नाना प्रकार की रूप एवं जाति वाली औषधि एवं फल फूलों की उनके रोमों से उत्पत्ति हुई ।।२७।।

इस प्रकार कल्प के आदि एवं त्रेता युग के आरम्भ में पशु एवं औषधियों का सृजन करके ब्रह्मा जी ने यज्ञ का सृजन किया। इन गाय, भैंस, बकरा, मेंढ़ा, घोड़ा, खच्चर, गधा इन पशुओं को 'ग्राम्य' कहा जाता है। अब मुझसे अरण्य के पशुओं के विषय में सुनो—।।२८-२९।।

श्वापद, दो खुर वाले, प्राणी, हाथी, वानर, पक्षी, जल चर, पशु ये छः और सातवां सांप (ये वन्य पशु कहलाते हैं ।।३०।।

गायत्रीञ्च तृचं चैव त्रिवृत् सामरथन्तरम् । अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात् ॥३१

यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा । बृहत्सामतथोक्तं च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥३२

सामानि जगतीच्छन्दः स्तोमं पञ्चदशं तथा । वैरूपमतिरात्रं च निर्ममे पश्चिमान्मुखात् ॥३३

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च । अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४

विद्युतोऽशनि मेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च । वयांसि च ससर्ज्जादौ कल्पस्य भगवान् विभुः ॥३५

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे । सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ॥३६

ततोऽसृजत् स भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ॥३७

नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् । अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजङ्गमम् ॥३८

तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टेः प्रतिपेदिरे । तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३९

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते । तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत्तस्य रोचते ॥४०

इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः । नानात्वं विनियोगं च धातैव व्यदधात् स्वयम् ॥४१

विधाता के प्रथम मुख से गायत्री, त्रिवृत्त छन्द, रथन्तर साम और अग्निष्टोम यज्ञ आदि उत्पत्ति हुई ॥३१॥

दक्षिण मुख से यजुर्वेद, त्रैष्टुभ छन्द, पंचदश स्तोम, बृहत् साम और उक्थ को प्रकट किया ॥३२॥

और पश्चिम मुख से सामवेद, जगती छन्द, पंचदश स्तोम वैरूप और अति रात्र को प्रकट किया ॥३३॥

उत्तर के मुख से इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, अनुष्टुभछन्द और वैराज की उत्पत्ति की ॥३४॥

उन भगवान् ब्रह्मा ने कल्प के प्रारम्भ में, विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित, इन्द्र धनुष तथा पक्षियों को उत्पन्न किया ॥३५॥

सुर, असुर, पितर और मनुष्य आदि चार प्रकार की प्रजा की सृष्टि करने के बाद उसके शरीर से अन्य विभिन्न प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए ॥३६॥

तत्पश्चात् उन्होंने स्थावर और जंगम (चर अचर) भूतगण, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व और अप्सराओं को (उत्पन्न किया) ॥३७॥

एवं नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग तथा नाग इत्यादि समस्त नश्वर और अविनश्वर स्थावर जंगम पदार्थों की सृष्टि की ॥३८॥

उनके जो कर्म हैं, उनका सृष्टि के प्रारम्भ में ही प्रतिपादन कर दिया। इसलिए वे बार-बार उत्पन्न होने पर भी उन्हीं कर्मों को करते हैं ॥३९॥

पूर्व जन्म में जो जीव हिंसा, अहिंसा, मृदुता, क्रूरता, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, जिसमें भी रुचि लेते हैं। इसलिए उसी योनि में उनकी उत्पत्ति होती है (पर जन्म में उसी की प्राप्ति होती है ॥४०॥

उन ब्रह्मा ने (विधाता ने) प्राणियों में इन्द्रियों के विषय और शरीरों में इन्द्रियाँ उनके विवश कर्मों के अनुसार ही निर्मित की है ॥४१॥

नानारूपञ्च भूतानां कृत्यानाञ्च प्रपञ्चनम् । वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनाञ्चकार स ।।४२
ऋणीणां नामधेयानि याश्च देवेषु सृष्टयः । शर्वर्यन्ते प्रसूतानामन्येषां च ददाति सः ।।४३
यथार्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये । दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ।।४४
एवं विधाः सृष्टयस्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । शर्वर्यन्ते प्रबुद्धस्य कल्पे कल्पे भवन्ति वै ।।४५

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे सृष्टिप्रकरणे देवादिस्थावरान्तसृष्टिवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।

उन प्राणियों के नाम रूप कृत्य, अकृत्य और प्रपञ्च तथा देव कर्म आदि का निर्माण वेद शब्द से सृष्टि के आदि में ही किया और अन्यान्य जो ऋषि और देवताओं की सृष्टियाँ हैं। उनकी प्रलय के अन्त होने पर पहले के समान ही ऋषियों के नाम और अन्य देवताओं की रचना की ।।४२-४३।।

जिस प्रकार ऋतु परिवर्तन से पूर्व ही उसके लक्षण प्रतीत होने लगते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक युग के (प्रारम्भ में तथा) अन्त में आगामी युग के लक्षण प्रकट होने लगते हैं ।।४४।।

अव्यक्त जन्म वाले, ब्रह्माजी इस प्रकार प्रलय काल के अन्त में प्रत्येक कल्प के आरम्भ में सृष्टि रचना करते हैं ।।४५।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सृष्टि प्रकरण में देवादि-स्थावरान्त सृष्टि वर्णन नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

क्रोष्टुकिरुवाच —

अर्वाक्स्रोतस्तु कथितो भवता यस्तु मानुष। ब्रह्मन् विस्तरतोब्रूहि ब्रह्मा समसृजद्यथा ।।१
यथा च वर्णानसृजद्यद्गुणांश्च महामते । यच्च येषां स्मृतं कर्म विप्रादीनां वदस्व तत् ।।२

मार्कण्डेय उवाच —

ब्रह्मणः सृजतः पूर्वं सत्याभिध्यायिनस्तथा । मिथुनानां सहस्रन्तु मुखात्सोऽसृजन्मुने ।।३
जातास्ते ह्यपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः स्वतेजसः । सहस्रमन्यद् वक्षस्तो मिथुनानां ससर्ज ह ।।४

क्रोष्टुकि बोले—

हे ब्रह्मन् ! आपने जो मुझसे अर्वाक् स्रोत वाले मनुष्यों का वर्णन किया, अब आप ब्रह्मा ने जिस प्रकार उसका निर्माण किया, उसी विषय को विस्तार पूर्वक कहिए ।।१।।

हे महामते ! जिस प्रकार वर्णों एवं गुणों की सृष्टि हुई और उन (ब्राह्मण आदि) का जो कर्म है, उसको आप मुझे कहिए ।।२।।

मार्कण्डेय ने कहा—

हे मुने ! सृष्टि के प्रारम्भ में ध्यानावस्थ ब्रह्मा के मुख से सत्व गुण युक्त सहस्रों मिथुनों की सृष्टि हुई ।।३।।

उत्पन्न हुए ये सब सतोगुण की अधिकता वाले एवं तेजस्वी थे। फिर उन्होंने अपने वृक्ष स्थल से अन्य सहस्रों मिथुनों की सृष्टि की ।।४।।

ते सर्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः । ससर्जान्यत् सहस्रं तु द्वन्द्वानामूरुतः पुनः ॥५
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ता इहाशीलास्तु ते स्मृताः । पद्भ्यां सहस्रमन्यच्च मिथुनानां ससर्ज ह ॥६
उद्रिक्तास्तमसा सर्वे निःश्रीका ह्यल्पचेतसः । ततःसंहर्षमाणास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः ॥७
अन्योन्यं हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः । ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः ॥८
मासि मास्यार्तवं यत्तु न तदासीत् तु योषिताम् । तस्मात्तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः ॥९
आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ताः सकृत् । (कुलिकं कुलिका चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षताम्) ॥
ततः प्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः ॥१०
ध्यानेन मनसा तासां प्रजानां जायते सकृत् । शब्दादिर्विषयः शुद्धः प्रत्येकं पञ्चलक्षणः ॥११
इत्येषा मानुषी सृष्टिर्या पूर्वं वै प्रजापतेः । तस्यान्ववायसम्भूतायैरिदं पूरितं जगत् ॥१२
सरित्सरः समुद्रांश्च सेवन्ते पर्वतानपि । तास्तदा ह्यल्पशीतोष्णा युगे तस्मिश्चरन्ति वै ॥१३
तृप्तिं स्वाभाविकीं प्राप्ता विषयेषु महामते । न तासां प्रतिघातोऽस्ति न द्वेषो नापि मत्सरः ॥१४

वे सब रजोगुणों एवं क्रोधमय स्वभाव के थे फिर उन्होंने अपनी दोनों जंघाओं से अन्य सहस्रों मिथुन उत्पन्न किये ॥५॥

रजोगुण एवं तमोगुण से युक्त ये ईर्ष्यालु स्वभाव के थे। फिर उनके चरणों से सहस्रों मिथुनों की उत्पत्ति हुई ॥६॥

उत्पन्न हुए वे सब कान्तिहीन, तमोगुणी एवं मंद बुद्धि के थे। इसके बाद द्वन्द्वों में उत्पन्न वे सब प्रसन्नचित्त प्राणी, ॥७॥

परस्पर इच्छानुसार मैथुन करने लगे। तब से लेकर इस कल्प में मिथुनों की सृष्टि हुई ॥८॥

उस समय स्त्रियों में प्रतिमास रजोदर्शन नहीं होता था। इसलिए मैथुन करने पर भी वे उस समय संतानोत्पत्ति नहीं करती थीं ॥९॥

वे मिथुन आयु के अन्त में केवल एक बार ही सन्तानोत्पत्ति करते थे। (अन्त अवस्था में ही कुलिक और कुलका उत्पन्न होते थे) तब से लेकर ही प्रतिकल्प में मिथुनों की सृष्टि होने लगी ॥१०॥

ब्रह्मा जी के ध्यान द्वारा मन से पंच महाभूत और शब्द आदि विषयों की प्रजाओं के साथ ही उत्पत्ति होती है ॥११॥

इस प्रकार यह मानुषी सृष्टि हुई जो पूर्व काल में प्रजापति की कही जाती है। (इस प्रकार पूर्व काल में उत्पन्न यह ब्रह्मा की मानुषी सृष्टि हुई) उसी की वंश परम्परा से ही उत्पन्न (प्राणियों से) यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है ॥१२॥

(उस समय वे सब) सरिता (नंदी) सरोवर, समुद्र और पर्वतों का ही उपयोग करते थे। विचरण करते हुए उन सब प्राणियों को उस युग में न अधिक शीत अधिक लगता था और न अधिक उष्णता से वे पीड़ित थे ॥१३॥

हे महामते ! उन्होंने विषयों में स्वाभाविक तृप्ति प्राप्त की। उनमें न तो परस्पर संघर्ष था न द्वेष और न ही मत्सर ही था ॥१४॥

पर्वतोदधिसेविन्यो ह्यनिकेतास्तु सर्वशः। ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः ।।१५
पिशाचोरगरक्षांसि तथा मत्सरिणो जनाः। पशवः पक्षिणश्चैव नक्रा मत्स्याः सरीसृपाः ।।१६
अवारका ह्यण्डजावाते ह्यधर्मप्रसूतयः। न मूलफलपुष्पाणि नार्तवा वत्सराणि च ।।१७
सर्वकालसुखः कालो नात्यर्थं धर्मशीलता। कालेन गच्छता तेषां पित्रा-सिद्धिरजायत: ।।१८
ततश्च तेषां पूर्वाह्णे मध्याह्ने च वितृप्तता। पुनस्तथेच्छतां तृप्तिरनायासेन साऽभवत् ।।१९
इच्छताञ्च तथाऽभ्यासो मनसः समजायत। अपां सौक्ष्म्यं ततस्तासां सिद्धिर्नाम्नारसोल्लसा ।।२०
समजायत चैवाऽन्या सर्वकामप्रदायिनी। असंस्कार्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः ।।२१
तासां विना तु संकल्पं जायन्ते मिथुनाः प्रजाः। समं जन्म च रूपं च म्रियन्ते चैव ता समम् ।।२२
अनिच्छा द्वेष संयुक्ता वर्तन्ते तु परस्परम्। तुल्यरूपायुषः सर्वा अधमोत्तमतां विना ।।२३
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु। आयुः प्रमाणं जीवन्ति न च क्लेशाद्विपत्तयः ।।२४
क्वचित् क्वचित् पुनः साऽभूत् क्षितिर्भाग्येन सर्वशः।
कालेन गच्छता नाशमुपयान्ति यथा प्रजाः ।।२५

अनिकेत वासी पर्वत और समुद्रों के किनारे रहने वाले (वे प्रसन्नचित्त, निष्काम भाव से चारों ओर विचरण करते थे ।:१५।।

पिशाच, उरग, राक्षस, मत्सर-युक्त मनुष्य. पशु, पक्षी, नाकू, मत्स्य, बिच्छू ,सर्प) आवरक और अण्डज इन सबकी अधर्म से उत्पत्ति हुई। उस समय मूल, फल, पुष्प, ऋतु और वर्ष आदि नहीं थे ।।१६-१७।।

उस समय न तो अधिक शीतलता थी और न अधिक उष्णता अपितु सम्पूर्ण काल सुखमय ही था। काल क्रम से ही उन सभी को अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई ।।१८।।

पूर्वाह्ण और मध्याह्न में उनकी अतृप्तता रहती थी। उसके पश्चात् इच्छा करने पर अनायास ही उनको तृप्ति हो जाती थी ।।१९।।

और प्रयत्न पूर्वक इच्छा करने पर उनके मन से, जल के सूक्ष्म होने के कारण विभिन्न प्रकार की रस और उल्लास नाम वाली अन्य सिद्धि उत्पन्न हुई ।।२०।।

इस प्रकार सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली अन्य सिद्धियाँ भी उत्पन्न हुई। संस्कार हीन शरीरों से युक्त होते हुए भी वह प्रजा स्थिर यौवन वाली थी ।।२१।।

उनके बिना संकल्प के उत्पन्न हुई मिथुनवती प्रजा जिस प्रकार साथ-साथ उत्पन्न हुई। उसी प्रकार रूप आदि में ममत्व प्राप्त करके एक साथ ही मरती भी थी ।।२२।।

वे परस्पर इच्छा एवं द्वेष रहित होकर व्यवहार करते थे। वे सब रूप और आयु में समान थे। उनमें ऊँच-नीच की भावना भी नहीं थी ।।२३।।

उस समय के मनुष्य क्लेश एवं विपत्ति रहित होकर चार हजार वर्षों तक जीवित रहते थे निर्धारित आयु प्रमाण वाले वे पूर्ण आयु जीवित रहते थे ।।२४।।

कहीं-कहीं पृथ्वी दैवयोग से ऐसी हो जाती थी कि जिसके कारण प्रजा को काल क्रमःसे जीवन समाप्त करना होता था ।।२५।।

तथा ताः क्रमशो नाशं जग्मुः सर्वत्र सिद्धयः । तासु सर्वासु नष्टासु नभसः प्रच्युता नराः ॥२६
पयसः कल्पवृक्षास्ते संभूता गृहसंज्ञिताः । सर्वे प्रत्युपभोगाश्च तासांतेभ्यः प्रजायत ॥२७
वर्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे तदा । ततः कालेन वै रागस्तासामाकस्मिकोऽभवत्॥२८
मासि मास्यार्तवोत्पत्त्या गर्भोत्पत्तिः पुनः पुनः । रागोत्पत्त्या ततस्तासां वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः॥२९
प्रणेशुरपरे चासंश्चतुः शाखामहीरुहाः । वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥३०
तेष्वेव जायते तेषां गन्ध-वर्ण-रसान्वितम् । अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु ॥३१
तेन ता वर्पयन्ति स्म मुखे त्रेतायुगस्य वै । ततः कालान्तरेणैव पुनर्लोभान्वितास्तु ताः ॥३२
वृक्षास्ताः पर्यगृह्णत ममत्वाविष्ट चेतसः । नेशुस्तेनायचारेण ते हि तासां महीरुहाः ॥३३
(मूलेषु चापरं वासं चक्रुः शाला महीरुहाम् ।) ततो द्वन्द्वान्यजायन्त शीतोष्णक्षुन्मुखानि वै ।
तास्तद्द्वन्द्वोपघातार्थं चक्रुः पूर्वं पुराणि तु ॥३४
मरुधन्वसु दुर्गेषु पर्वतेषु दरीषु च । संश्रयन्ति च दुर्गाणि वार्क्षं पार्वतमौदकम् ॥३५

एवं जब वे सभी सिद्धियाँ क्रमशः नष्ट हो गयीं तो उन सबके नष्ट होने पर आकाश से मनुष्य गिर पड़े ॥२६॥

तब जलों से गृह संज्ञा युक्त कल्प वृक्ष उत्पन्न हुए और फिर सम्पूर्ण उपभोगों की उनसे प्राप्ति होने लगी ॥२७॥

त्रेता युग के प्रारम्भ में उन्हीं कल्प वृक्षों के द्वारा मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करते थे। कुछ समय बाद उनमें अकस्मात् राग का प्रादुर्भाव हुआ ॥२८॥

(राग के उत्पन्न होने से स्त्रियों मे) प्रतिमास रजोदर्शन एवं बार-बार सन्तानोत्पत्ति होने लगी। तत्पश्चात् गृहों में स्थित कल्पवृक्षों में भी राग की उत्पत्ति हुई ॥२९॥

इससे कल्प वृक्ष नष्ट हो गये और अन्य प्रकार के चार शाखाओं वाले वृक्षों की उत्पत्ति हुई। उनके फलों से वस्त्र एवं आभरण उत्पन्न होते थे ॥३०॥

उन फलों के प्रत्येक पुट में श्रेष्ठ गंध, वर्ण एवं रस से युक्त परम बलशाली मधु, मक्खियों के बिना ही उत्पन्न होता था ॥३१॥

त्रेता युग के प्रारम्भ में (प्रजा) इसका उपभोग करके ही जीवन धारण करती थी। फिर वह काल क्रम से प्रजा लोभ युक्त होने लगी ॥३२॥

एवं ममत्व से आविष्ट चित्त होकर, उन वृक्षों को एक दूसरे से छीनने लगे। इस प्रकार के दुराचरण से वे सभी वृक्ष नष्ट हो गये ॥३३॥

(उन्होंने वृक्षों की जड़ों में निवास योग्य शाला का निर्माण कर लिया था) तत्पश्चात् शीत, उष्णता, क्षुधा और पिपासा आदि द्वन्द्व उत्पन्न हुए। तब पूर्व काल में उन द्वन्द्वों को दूर करने के लिए पुरों का निर्माण किया गया ॥३४॥

फिर (वे) मरूभूमि, पर्वतों, गुफाओं में रहने लगे। पश्चात् वृक्षों के नीचे, पर्वतों पर तथा जल में दुर्ग बनाकर रहने लगे ॥३५॥

कृत्रिमञ्च तथा दुर्गं मित्वा मित्वात्मनोऽङ्गुलैः । मानार्थानि प्रमाणानि तास्तु पूर्वं प्रचक्रिरे ॥३६
परमाणुः परं सूक्ष्मं त्रसरेणुर्महीरजः । बालाग्रञ्चैव लिक्षां च युकां चाथ यवोदरम् ॥३७
(क्रमादष्टगुणान्याहुर्यवानष्टौ तथाङ्गुलम् ।) एकादशगुणंतेषां यवमध्यं तथाङ्गुलम् ।
षडङ्गुलं पदन्तच्च वितस्तिर्द्विगुणं स्मृतम् ॥३८
द्वे वितस्ती तथा हस्तो ब्राह्मतीर्थादिवेष्टितः । चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नाडिकायुगमेव च ॥३९
धनुषां द्वे सहस्रे तु गव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् । प्रोक्तञ्च योजनं प्राज्ञैः संख्यानार्थमिदं परम् ॥४०
चतुर्णामथ दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु । चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तच्चक्रुयत्नतस्तु वै ॥४१
पुरञ्च खेटकं चैव तद्वद् द्रोणीमुखं द्विज । शाखानगरकञ्चापि तथा खर्वटकं त्रयी ॥४२
ग्रामसंघोषविन्यासं तेषु चावसथान् पृथक् । सोत्सेधवप्रकारञ्च सर्वतः परिणावृतम् ॥४३
योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतं पुरम् । प्रागुदक् प्रवणं शस्तं शुद्धवंशबहिर्गमम् ॥४४
तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेन च खर्वटम् । न्यूनं द्रोणीमुखं तस्मादष्टभागेन चोच्यते ॥४५
प्राकारपरिखाहीनं पुरं खर्वटमुच्यते । शाखानगरकं चान्यत् मन्त्रिसामन्त भुक्तिमत् ॥४६

अपनी-अपनी अंगुलियों के परिमाण से वे सब कृत्रिम दुर्ग नापे गये और उनके परिमाण को जानने के लिए नाप के प्रमाण निर्मित किये गये ॥३६॥

अति सूक्ष्म परिमाण के लिए परमाणु, त्रसरेणु, धूलि तथा स्थूल परिमाण के लिए बालाग्र, लीक, जूं और जौ का उदर (मध्य) निश्चित किये गये ॥३७॥

क्रमशः ग्यारह यव मध्य में एक अंगुल और छः अंगुलों का एक पद एवं दो पद का एक वितस्ति कहा गया है— ॥३८॥

तथा दो वितस्ति में एक हाथ ब्रह्म तीर्थ (कोहनी से लेकर मध्यमा अंगुली के अग्रभाग तक) के चार हाथ का एक धनुर्दण्ड (लट्ठा) अथवा नाडिका युग ॥३९॥

दो सहस्र धनुर्दण्ड की एक गव्यूति और चार गव्यूति का एक योजन। बुद्धिमान् पुरुषों ने नाप जोख के लिए यह प्रमाण निर्धारित किया हुआ है ॥४०॥

पूर्व कथित चार दुर्गों में तीन स्वयं निर्मित (प्राकृतिक) हैं, चौथा कृत्रिम दुर्ग है। जिसका (मनुष्यों को) यत्न पूर्वक निर्माण करना चाहिए ॥४१॥

हे द्विज ! (फिर उन्होंने) उन स्थानों में पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखानगर तथा तीन प्रकार की खर्वटक। ४२॥

ग्राम तथा संघोष की रचना की तथा उनमें पृथक् पृथक् आवास ग्रहों का निर्माण किया। जो चारों ओर से उत्सेध (चार दिवारी) और खाइयों से घिरा था ॥४३॥

दो कोस की लम्बाई वाले तथा उसके अष्टम अंश चौड़े (भू भाग) को पुर कहते हैं। उसके चारों ओर जल भरा होने के कारण, उससे बाहर जाने का मार्ग, शुद्ध बांस का बना होना चाहिए ॥४४॥

उस (पुर) के आधे लक्षण वाले को खेटक और उसके चतुर्थ भाग के परिमाण वाले को खर्वट तथा पुर के अष्टमांश परिमाण वाले को द्रोणी मुख कहते हैं ॥४५॥

प्राकार (चार दिवारी) और खाई रहित पुर को ही खर्वट कहा जाता है। जहाँ मन्त्री और सामन्त आदि रहते हों, उस विविध भोग पदार्थ युक्त (पुर) को शाखा नगर कहते हैं ॥४६॥

तथा शूद्रजनप्राया: स्वसमृद्धिकृषीबला: । क्षेत्रोपभोग्यभूमध्ये वसतिर्ग्राम संज्ञिता ।।४७
अन्यस्मान्नगरादेर्या कार्यमुद्धिश्यमानवैः । क्रियते वसतिः सा वै विज्ञेया वसतिर्नरैः ।।४८
दुष्टप्रायो विना क्षेत्रैः परभूमिचरो बली । ग्राम एवाऽक्रिमी सञ्ज्ञो राजबल्लभसंश्रय ।।४९
शकटारूढभाण्डैश्च गोपालैर्विपणं विना । गोसमूहैस्तथा घोषो यत्रेच्छाभूमिकेतनः ।।५०
त एवं नगरादींस्तु कृत्वा वासार्थमात्मनः । निकेतनानि द्वन्द्वानां चक्रुश्चोपशमाय वै ।।५१
गृहाकारा यथा पूर्वं तेषामासन्महीरुहाः । तथा संस्मृत्य तत्सर्वं चक्रुर्वेश्मानिताः प्रजाः ।।५२
वृक्षस्यैवं गताः शाखास्तथैवं चापरा गताः । न ताश्चैवोन्नताश्चैव तद्वच्छाखाः प्रचक्रिरे ।।५३

याः शाखाः कल्पवृक्षाणां पूर्वमासन् द्विजोत्तम ।
ता एव शाखा गेहानां शालात्वं तेन तासु तत् ।।५४

कृत्वा द्वंद्वोपघातं ते वार्तोपायमचिंतयन् । नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेष्वशेषतः ।।५५
विशादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः । ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतामुखे तदा ।।५६

तथा जहाँ निम्न श्रेणी के व्यक्ति तथा अपनी-अपनी समृद्धि करने वाले किसान रहते हैं और खेतों के उपयोग के योग्य भूमि के बीच में हों (जिसके चारों ओर खेत हों) उसे ग्राम कहते हैं ।।४७।।

और दूसरे नगरों से किसी कार्य को लक्ष्य करके आये हुए लोग जहाँ रहते हैं उसे 'वसति' कहते हैं ।।४८।।

जहाँ दूसरे की भूमि पर अधिकार करने वाले दुष्ट प्रकृति के बलवान् पुरुष अपना खेत न होने पर रहते हैं तथा राजाओं के प्रिय व्यक्तियों से युक्त वह ग्राम 'अक्रमी' नाम से कहा जाता है ।।४९।।

बाजारों से रहित जहाँ ग्वाले अपने बर्तनों को गाड़ी पर लादे रहते हैं; गौ समूह से युक्त, बाजार रहित हों एवं जहाँ भूमि बिना धन के ही इच्छानुसार प्राप्त हो जाती है, वह 'घोष' कहलाता है ।।५०।।

इस प्रकार उन्होंने अपने नगरादि निर्माण करके तथा शीतोष्णादि द्वन्द्वों के उपशमन के लिए घरों का निर्माण किया ।।५१।।

पहले जिस प्रकार वृक्ष उनके घरों के समान थे, उसी का स्मरण करके सभी प्रजाओं ने अपने घरों का निर्माण किया ।।५२।।

जिस प्रकार वृक्ष की शाखाएं एक के पीछे दूसरी क्रमशः ऊँची-ऊँची होती हैं। उसी प्रकार घरों की रचना में भी वृक्षों की शाखाएं क्रमशः ऊँची-ऊँची रखी गयी ।।५३।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! पूर्व काल में जो शाखाएं कल्प वृक्ष की थीं, उन शाखाओं ने ही घरों में शालात्व (शहतीर) स्थान ग्रहण कर लिया ।।५४।।

मधु के सहित समस्त कल्पवृक्षों के नष्ट होने पर अब शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों का उपघात करके वे अपनी जीविका की चिन्ता करने लगे ।।५५।।

तब क्षुधा और पिपासा से पीड़ित एवं विषाद से प्रजाएँ व्याकुल हो गयीं, क्योंकि त्रेतायुग के प्रारम्भ में ही उनमें वे सिद्धियाँ उत्पन्न हुई थीं ।।५६।।

वार्त्ता स्वसाधिता ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः ।
तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नगतानि वै ।।५७
वृष्ट्यावरुद्धैरभवत् स्रोतः खातानि निम्नगाः । ये पुरस्तादपांस्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ।।५८
ततो भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् । अफालकृष्टा श्चानुप्ताग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।।५९
ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षागुल्माश्च जज्ञिरे । प्रादुर्भावस्तु त्रेतायामाद्योऽयमौषधस्य तु ।।६०
तेनौषधेन वर्तन्ते प्रजास्त्रेता-युगे मुने । रागलोभौ समासाद्य प्रजाश्चाकस्मिकौ तदा ।।६१
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान् । वृक्षगुल्मौषधीश्चैव मात्सर्याच्च यथाबलम् ।।६२
तेन दोषेण ता नेशुरौषध्यो मिषतां द्विज । अग्रसद् भूर्युगपत्तास्तदौषध्यो महामते ।।६३
पुनस्तासु प्रनष्टासु विभ्रान्तास्ताः पुनः प्रजाः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुः क्षुधार्त्ताः परमेष्ठिनम् ।।३४
स चापि तत्त्वतो ज्ञात्वा तदा ग्रस्तां वसुन्धराम् । वत्सं कृत्वा सुमेरुन्तु दुदोह भगवान् विभुः ।।६५
दुग्धेयं गौस्तदा तेन सस्यानि पृथिवीतले । जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ताः पुनः ।।६६

जिनसे उनकी जीविका सम्बन्धी चिन्ता मिट गयी थीं तया इच्छा करते ही वृष्टि होती थी और वर्षा का जल निम्न गामी था ।।५७।।

वृष्टि का रुका हुआ जल ही स्रोत बन गया और फिर वही गहराई करता हुआ, नदी के रूप में हो गया । पहले जो थोड़ा जल पृथ्वी तल पर गिरा ।।५८।।

(वह जल) जो भूमि के संयोग से दोष रहित होगया, इसके गिरने से हल से जोते बिना ही ग्राम्य और अरण्य आदि चौदह ।।५९।।

वृक्ष और गुल्म उत्पन्न हो गये वे सभी ऋतुओं में पुष्प और फल उत्पन्न करते थे । इसी प्रकार त्रेता-युग के प्रारम्भ में सभी औषधियां उत्पन्न हुईं ।।६०।।

हे मुने ! अकस्मात् राग और लोभ से युक्त हुई प्रजाएँ इन औषधियों के द्वारा ही अपनी जीविका चलाती थीं ।।६१।।

उसके पश्चात् मात्सर्य के कारण अपने बल के अनुसार मनुष्य, नदी क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म, औषधि को ग्रहण करने लगे ।।६२।।

हे द्विज ! इसी दोष के कारण वे सब औषधियाँ देखते-देखते नष्ट हो गयीं । हे महामते ! उन सभी औषधियों को (वस्तुतः) पृथ्वी ने ग्रसित कर लिया था ।।६३।।

उन औषधियों के नष्ट होने पर पुनः भ्रांत हुई प्रजा क्षुधातुर होकर परमेष्ठी ब्रह्मा की शरण में गयी ।।६४।।

उन्होंने भी तत्त्व से पृथ्वी को ग्रास वाली जानकर सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर भगवान् ने उसका दोहन किया ।।६५।।

तब गौरूप पृथ्वी अपने तल में समस्त ६ ; ग्रों का दोहन कराने लगी । उसमें सभी बीजों की उत्पत्ति हुई । पुनः ग्राम्य और अरण्य वृक्ष पुनः उत्पन्न हुए ।।६

ओषध्यः फलपाकान्तागणाः सप्तदश स्मृताः। व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवास्तिलाः ॥६७
प्रियङ्गवः कोविदाराः कोरदूषाः सचीनकाः। माषा-मुद्गा-मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ॥६८
आढकाश्चणकाश्चैव गणा सप्तदश स्मृताः। इत्येता ओषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयः पुरा ॥६९
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश। व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ॥७०
प्रियंगु षष्ठा वै ह्येते सप्तमास्तु कुलत्थकाः। श्यामाकास्त्वथ नीवारा यत्तिलाः सगवेधुकाः ॥७१
कुरुविन्दा मर्कटकास्तथा वेणुयवाश्च ये। ग्रामारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यश्च चतुर्दश ॥७२
यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहन्ति ताः पुनः। ततः स तासां वृद्ध्यर्थं वार्त्तोपायञ्चकार ह ॥७३
ब्रह्मास्वयम्भुर्भगवान् हस्तसिद्धिञ्च कर्मजाम्। ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्यास्तु जज्ञिरे ॥७४
संमिद्धायान्तु वार्तायां ततस्तासां स्वयं प्रभुः। मर्यादां स्थापयामास यथान्यायं यथागुणम् ॥७५
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान् धर्मभृताम्वर। लोकानां सर्ववर्णानां सम्यक् धर्मार्थपालिनाम् ॥७६
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्। स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥७७
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्ततताम्। गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचर्यानुवर्त्तिनाम् ॥७८
अष्टाशीति सहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्। स्मृतं तेषां तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥७९

फल पकने के पश्चात् सत्रह प्रकार की औषधियों का समूह उत्पन्न हुआ। व्रीहि, जौ, गेहूँ, तिल, कोदों, प्रियंगु, राई, कोविदार, कचनार, मटर, उड़द, मूँग, मसूर, लोबिया, कुलथी, अरहर, चना आदि सत्रह प्रकार की ये ग्राम्यौषधियाँ पूर्व काल में उत्पन्न हुई ॥६७-६९॥

जो चौदह प्रकार की ग्राम्य और अरण्य औषधियाँ हैं वे यज्ञों में प्रयुक्त होती हैं। व्रीहि, जौ, गेहूँ, अणु, तिल, प्रियंगु, ककुनी, श्यामक, अलसी, तिल तथा गवेधुक ॥७०-७१॥

कुलथी, मर्कटक (मकई) वेणु, यव, ये चौदह औषधियाँ ग्राम्यारण्य मानी गयी हैं ॥७२॥

जब निर्मित औषधियाँ पुनः नहीं उगती थीं, तब उन्होंने उनकी वृद्धि के लिए तथा मनुष्यों की जीविका का विचार किया ॥७३॥

तब भगवान् स्वयंभू ब्रह्माजी ने कर्म द्वारा उत्पन्न होने वाली हस्त सिद्धि को उत्पन्न किया। तब से लेकर सभी औषधियाँ कृष्ट पच्य (हल के द्वारा जोतकर बोई हुई) ही उत्पन्न हुईं ॥७४॥

इस प्रकार उन (प्रजाओं) की जीविका का साधन हो जाने पर, स्वयं ब्रह्माजी ने न्याय और गुणों के अनुसार मर्यादा की स्थापना की ॥७५॥

हे धार्मिक प्रवर! तब उन्होंने वर्ण और आश्रमों के धर्म तथा धर्म पालक सब वर्णों में उत्पन्न हुए लोगों के धर्म का निरूपण किया ॥७६॥

क्रियानिष्ठ ब्राह्मणों के लिए उन्होंने प्रजापत्य स्थान निश्चित किया और युद्ध से विमुख न होने वाले क्षत्रियों के लिए, इन्द्र स्थान ॥७७॥

तथा अपने धर्म का पालन करने वाले वैश्यों के लिए मारुत स्थान एवं सेवा करने वाले शूद्रों के लिए गांधर्व स्थान का निर्धारण किया ॥७८॥

अट्ठासी सहस्र ऊर्ध्वरेता ऋषियों के लिए जो स्थान नियत किये गये वे स्थान ही गुरु गृह निवासी ब्रह्म वासियों को प्रदान किया गया ॥७९॥

सप्तर्षीणां तु यत् स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ।
प्राजांपप्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयम् ।।८०
योगिनाममृतं स्थानमिति वै स्थानकल्पना ।।८१
इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे सृष्टिप्रकरणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।

सप्त ऋषियों के लिए जो स्थान नियत किया था वही स्थान वन वासियों के लिए निर्दिष्ट किये गये। गृहस्थों के लिए प्रजापत्य, सन्यासियों के लिए अक्षय ब्रह्म पद एवं योगियों के लिए अमृत स्वरूप मोक्ष स्थान की कल्पना की गयी ।।८०-८१।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सृष्टि प्रकरण नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीः प्रजाः । तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्यैस्तैः कारणैः सह ।।१
क्षेत्रज्ञाः समवर्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः । ते सर्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदाहृताः ।।२
देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषयाः स्मृताः । एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च ।।३
यदाऽस्य ताः प्रजाः सर्वा न व्यवर्द्धन्त धीमतः ।
अथान्यान् मानसान् पुत्रान् सदृशांनात्मनोऽसृजत् ।।४
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथा । मरीचिं दक्षमत्रिञ्च वसिष्ठञ्चैव मानसम् ।।५

मार्कण्डेय बोले —

तदन्तर (ब्रह्माजी के) पुनः ध्यान करने पर उनके शरीर से कारण और कार्य सहित मानसी प्रजा की सृष्टि हुई ।।१।।

उन धीमान् ब्रह्मा के शरीर से सब क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए और इसके अतिरिक्त भी वे सब उत्पन्न हुए जो मैं पहले ही बता चुका हूँ ।।२।।

देवताओं से लेकर स्थावर जीवों तक सभी जीव त्रिगुणात्मक हैं। इस प्रकार (ब्रह्माजी ने) स्थावर जंगमात्मक चराचर जगत की उत्पत्ति की ।।३।।

लेकिन जब उन बुद्धिमान् ब्रह्माजी की वह प्रजा, वृद्धि को प्राप्त नहीं हुई तब उन्होंने अपने समान अन्य मानस पुत्रों की सृष्टि की ।।४।।

भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ आदि (सभी उनके) मानस पुत्र हैं ।।५।।

नवब्रह्मण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः । ततोऽसृजत् पुनर्ब्रह्मा रुद्रं क्रोधात्मसम्भवम् ॥६
सङ्कल्पं चैव धर्मञ्च पूर्वेषामपि पूर्वजम् । सनन्दनादयो ये च पूर्वसृष्टाः स्वयम्भुवा ॥७
न ते लोकेषु सज्जन्तो निरपेक्षाः समाहिताः । सर्वे तेऽनागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ॥८
तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मनः । ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ॥९
अर्द्धनारी नरवपुः पुरुषोऽतिशरीरवान् । विभजात्मानमित्युक्त्वा स तदान्तर्दधे ततः ॥१०
स चोक्तो वै पृथक् स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाऽकरोत् । विभेद पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा तु सः ॥११
सौम्यासौम्यैस्तथा शान्तैः पुंस्त्वं स्त्रीत्वञ्च स प्रभुः । विभेद बहुधा देव पुरुषैरमितैः शितैः ॥१२
ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः । आत्मनः सदृशं कृत्वा प्रजापाल्ये मनुं द्विजः ॥१३
शतरूपां च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम् । स्वायम्भुवोमनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे विभुः ॥१४
तस्माच्च पुरुषात पुत्रौ शतरूपाव्यजायत । प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥१५
कन्ये द्वे च तथाकूतिं प्रसूतिं च ततः पिता । ददौ प्रसूतिं दक्षाय तथाऽऽकूतिं रुचेः पुरा ॥१६

पुराणों में ये नौ ही ब्रह्माजी के मानस पुत्र माने गये हैं। तत्पश्चात् उन्होंने क्रोधात्मक रुद्र को उत्पन्न किया ॥६॥

जो पहले से ही प्रकट हुए थे उनसे भी पूर्व संकल्प और धर्म को उत्पन्न किया तथा पूर्व सृष्टि में ब्रह्मा ने सनन्दनादि को उत्पन्न किया ॥७॥

भविष्य को जानने वाले, वीतराग, मात्सर्य रहित, निरपेक्ष और समाधि युक्त हुए, वे प्रजाओं की सृष्टि करने में प्रवृत्त नहीं हुए ॥८॥

प्रजाओं की सृष्टि के विषय में उनको इस प्रकार निरपेक्ष देखकर ब्रह्मा जी को महान् क्रोध हुआ। तब (उनके क्रोध से) सूर्य के समान तेजस्वी, एक पुरुष उत्पन्न हुआ। जिसका विशाल शरीर आधा नारी और आधा पुरुष का था। तत्पश्चात् अपने को विभक्त करो, उसे (अर्द्ध नारी अर्द्ध पुरुष शरीर वाले को) इस प्रकार आज्ञा देकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये ॥९-१०॥

ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त कर उसने अपने शरीर को स्त्री और पुरुष दो-दो भागों में विभक्त किया। उसमें पुरुष भाग को शक्ति सम्पन्न (उस अर्द्धनारीश्वर) पुरुष ने सौम्य, असौम्य, शान्त आदि ग्यारह भागों में विभक्त किया। इसप्रकार अनेक रूपों में पुंसत्व और स्त्रीत्व से युक्त विविध प्रकार विभाग किया जो सित थे ॥११-१२॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने अपने से उत्पन्न पूर्व पुरुष को स्वायंभुव मनु बनाकर, हे द्विज ! अपने समान उस पुरुष को प्रजापालन में नियुक्त करके ॥१३॥

और तप द्वारा अपने दोषों को दग्ध कर दिया है, जिनसे इस प्रकार की उस शतरूपा नाम वाली नारी को स्वायंभुव मनु ने पत्नी रूप में ग्रहण किया ॥१४॥

उस पुरुष से शतरूपा के दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपने कर्मों के द्वारा प्रियव्रत और उत्तानपाद नामों से प्रसिद्ध हुए ॥१५॥

और (शतरूपा की) आकूति और प्रसूति नामक दो कन्याएं (हुई) तत्पश्चात् उनके पिता ने प्रसूति को दक्ष के लिए तथा आकूति को प्रजापति रुचि को प्रदान किया ॥१६॥

प्रजापतिः स जग्राह तयोर्यज्ञः सदक्षिणः। पुत्रो जज्ञे महाभाग दम्पतीमिथुनं ततः ।।१७
यज्ञस्य दक्षिणायां तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे। यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेऽन्तरे ।।१८
तस्य पुत्रास्तु यज्ञस्य दक्षिणायां सुभास्वराः। प्रसूत्याञ्च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिस्तथा ।।१९

ससर्ज कन्यास्तासाञ्च सम्यङ् नामानि मे श्रृणु।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ।।२०
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी।
पत्न्यर्थे प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः प्रभुः ।।२१
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः।
ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिस्तथा क्षमा ।।२२

सन्ततिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा। भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः ।।२३
पुलस्त्यः पुलहश्चैव ऋतुश्च ऋषयस्तथा। वसिष्ठोऽत्रिस्तथा वह्निः पितरश्च यथाक्रमम् ।।२४
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः। श्रद्धा कामं श्रीश्च दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ।।२५
संतोषं च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरजायत। मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नयं विनयमेव च ।।२६
बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम्। व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत ।।२७
सुखं सिद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मयोनयः। कामादतिमुदं हर्षं धर्मपौत्रमसूयत ।।२८

हे महाभाग ! (रुचि) प्रजापति ने उसे ग्रहण कर लिया। उनके यज्ञ और दक्षिणा नामक पुत्र और पुत्री उत्पन्न हुई, जो उत्पन्न होने के पश्चात दाम्पत्य सूत्र में बंध गये ।।१७।।

यज्ञ के दक्षिणा से बारह पुत्र उत्पन्न हुए जो स्वायम्भु मन्वन्तर में 'याम' नामक देवता कहलाए ।।१८।।

उसी यज्ञ के दक्षिणा से भास्वर (तेजस्वी) अनेक पुत्र उत्पन्न हुए तथा दक्ष ने प्रसूति से चौबीस कन्याएं उत्पन्न कीं। उत्पन्न हुई इन (कन्याओं) के नाम मुझसे भलीप्रकार सुनो, श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा तथा क्रिया ।।१९-२०।।

बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, कीर्ति इन तेरह दक्ष सुताओं को प्रभुधर्म ने अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया। २१।।

और युवती और सुन्दर नेत्रों वाली ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्तति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामक प्रसिद्ध शेष ग्यारह कन्याओं को क्रमशः भृगु, शंकर, मरीचि अंगिरा आदि मुनियों ने पुलस्त्य, पुलह, ऋतु आदि ऋषियों ने और वसिष्ठ, अत्रि तथा वह्नि आदि पितरों ने ग्रहण किया ।।२२-२४।।

इन मुनियों, मुनि सत्तमों (ऋषियों) ने ख्याति आदि ग्यारह दक्ष पुत्रियों को ग्रहण किया। तब श्रद्धा ने काम को लक्ष्मी ने दर्प को, धृति ने नियम को उत्पन्न किया ।।२५।।

मेधा और श्रुत क्रिया ने दण्ड नीति तथा विनय को तथा तुष्टि ने संतोष को, पुष्टि ने लोभ की उत्पत्ति की। बुद्धि (मेधा) ने बोध को, लज्जा ने नियम को, वपु ने व्यवसाय को जन्म दिया ।।२६-२७।।

शान्ति ने क्षेम को उत्पन्न किया एवं सिद्धि ने सुख, कीर्ति ने यश को उत्पन्न किया। इस प्रकार ये ही धर्म की संतान हुईं। काम से हर्ष नामक धर्म की उत्पत्ति हुई ।।२८।।

हिंसा भार्या त्वधर्मस्य तस्यां जज्ञे तथाऽनृतम् ।
कन्या च निर्ऋतिस्तस्यां सुतौ द्वौ नरकं भयम् ॥२९
माया च वेदना चैव मिथुनं द्वयमेतयोः । तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥३०
वेदनात्मसुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् । मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधाश्च जज्ञिरे ॥३१
दुःखोद्भवाः स्मृता ह्येते सर्वे वाऽधर्मलक्षणाः । नैषां भार्यास्ति पुत्रो व सर्वे ते ह्यूर्द्धरेतसः ॥३२
निर्ऋतिश्च तथा चान्या मृत्योर्भार्याऽभवन्मुने । अलक्ष्मीर्नाम तस्याञ्च मृत्योः पुत्राश्चतुर्दश ॥३३
अलक्ष्मीपुत्रका ह्येते मृत्योरादेशकारिणः । विनाशकालेषु नरान् भजन्त्येते शृणुष्व तान् ॥३४
इन्द्रियेषु दशस्वेते तथा मनसि च स्थिताः । स्वे स्वे नरं स्त्रियं वापि विषये योजयन्ति हि ॥३५
अथेन्द्रियाणि चाक्रम्य रोगक्रोधादिभिर्नरान् । योजयन्ति तथा हानिं यात्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥३६
अहङ्कारगताश्चान्ये तथान्ये बुद्धिसंस्थिताः । विनाशाय नरस्त्रीणां यतन्ते मोहसंश्रिताः ॥३७
तथैवान्यो गृहे पुंसां दुःसहो नाम विश्रुतः । क्षुत्क्षामोऽधोमुखो नग्नश्चीरी काकसमस्वनः ॥३८
स सर्वान् खादितुं सृष्टो ब्रह्मणा तमसोनिधिः । दंष्ट्राकरालमत्यर्थं विवृतास्यं सुभैरवम् ॥३९

अधर्म की हिंसा नामक पत्नी थी उससे असत्य की उत्पत्ति हुई और उनसे निऋति नामक कन्या ने नरक और भय दो पुत्रों को उत्पन्न किया ॥२९॥

एवं माया और वेदना नामक दो पुत्री हुईं, जिन्होंने उन दोनों के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित किया। उन दोनों में माया से जीवों को संहार करने वाला, मृत्यु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३०॥

और माया ने भी नरक से दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया। फिर मृत्यु के जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध (नामक पुत्र) उत्पन्न हुए ॥३१॥

दुःख से उत्पन्न हुए ये सभी अधर्म से युक्त लक्षणों वाले (अधर्मी) हुए क्योंकि ये सब उर्ध्वरेता हैं कोई पत्नी अथवा पुत्र नहीं है ॥३२॥

हे मुने ! मृत्यु की निऋति नामक जो दूसरी पत्नी थी। अलक्ष्मी नामक उस पत्नी से मृत्यु के चौदह पुत्र उत्पन्न हुए ॥३३॥

मृत्यु की आज्ञा का पालन करने वाले ये सभी पुत्र अलक्ष्मी ही कहे जाते हैं। मृत्यु के समय ये मनुष्यों को (जिन-जिन अंगों से) ग्रहण करते हैं, उन्हें सुनिये ॥३४॥

इनमें से दस तो दस इन्द्रियों में और एक मन में स्थित कर रहता है, जो स्त्री अथवा पुरुष को अपने-अपने विषयों में प्रवृत्त करता है ॥३५॥

फिर राग, क्रोध आदि के साथ इन्द्रियों को आक्रान्त करके, मनुष्यों को अधर्म आदि से संयुक्त कर देता है, जिससे उसकी अत्यधिक हानि होती है ॥३६॥

और (मृत्यु का) दूसरा (बारहवाँ) पुत्र अहंकार में रहता है तथा तेरहवाँ बुद्धि में स्थित रहता है। जो मोह का आश्रय लेकर मनुष्यों एवं स्त्रियों के विनाश के लिए प्रयत्न करते रहते हैं ॥३७॥

उसी प्रकार (मृत्यु का अन्य) दुःसह नाम से प्रसिद्ध (चौदहवाँ) पुत्र मनुष्यों के घरों में (रहता है) और क्षुधातुर, अधो मुख, नग्न चीरधारी एवं कौए के समान कर्कश शब्द करता है ॥३८॥

(उसके कार्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि) ब्रह्माजी ने इस तपोनिधि को इस जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों का भक्षण करने के लिए ही उत्पन्न किया है। तब भयंकर दाढ़ों वाले, अत्यधिक फैले हुए मुख वाले, भयंकर शब्द करते हुए ॥३९॥

तमत्तुकाममाहेदं ब्रह्मालोकपितामहः । सर्वब्रह्ममयः शुद्धः कारणं जगतोऽव्ययः ॥४०

ब्रह्मोवाच —

नात्तव्यं ते जगदिदं जहि कोपं शमं व्रज । त्यजैनां तामसीं वृत्तिमपास्य रजसः कलाम् ॥४१

दुःसह उवाच —

क्षुत्क्षामोऽस्मि जगन्नाथ पिपासुश्चापि दुर्बलः । कथं तृप्तिमियां नाथ भवेयं बलवान् कथम् ॥
कश्चाश्रयो ममाख्याहि वर्तेयं यत्र निर्वृतः ॥४२

ब्रह्मोवाच—

तवाश्रयो गृहं पुंसां जनश्चाधार्मिको बलम् । पुष्टिर्नित्यक्रियाहान्या भवान् वत्स गमिष्यति ॥४३
लूताः स्फोटाश्च ते वस्त्रमाहारं च ददामि ते । क्षुतं कीटावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम् ॥४४
भग्नभाण्डगतं तद्वन्मुखवातोपशामितम् । उच्छिष्टापक्वमस्विन्नमवलीढमसंस्कृतम् ॥४५
भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेव च । विदिङ्मुखं सन्ध्ययोश्च नृत्यवाद्यस्वनाकुलम् ॥४६
उदक्योपहतं भुक्तमुदक्या दृष्टमेव च । यच्चोपघातवत् किंचिद् भक्ष्यं पेयमथापिवा ॥४७

सम्पूर्ण संसार को खाने के इच्छुक उस (दुःसह) से, अविनाशी सर्व ब्रह्ममय, विशुद्ध और जगत के कारण लोक पितामह ब्रह्माजी ने इस प्रकार कहा—॥४०॥

ब्रह्माजी बोले—

हे दुःसह ! तुम्हें इस जगत् को नहीं खाना चाहिए । क्रोध का त्याग कर शान्त हो जाओ । इस तामसी वृत्ति और रजोगुण के अंश का परित्याग कर दो ॥४१॥

दुःसह बोला —

हे जगन्नाथ ! मैं भूख और प्यास से अत्यधिक दुर्बल हो गया हूँ । हे नाथ ! मैं कैसे तृप्ति प्राप्त करूँ तथा किस प्रकार बलवान् होऊँ ? और मेरा आश्रय कौन है ? जहाँ मैं सुखपूर्वक निवास करूँ । आप ही कृपा करके बताइये ॥४२॥

ब्रह्माजी ने कहा —

हे वत्स ! तुम्हारा आश्रय मनुष्य के घर हैं और अधर्मी पुरुष ही तुम्हारा बल है तथा नित्य कर्मों की हानि ही तुम्हारी पुष्टि होगी ॥४३॥

मकड़ी के जाले और फोड़े-फुन्सी (घाव) तुम्हारे वस्त्र होंगे अब मैं तुम्हें आहार प्रदान करता हूँ । कीड़े पड़े हुए घाव तथा जिसके व्रण को कुत्तों ने देख लिया है (ऐसे व्रण के स्वामी) तुम्हारे आहार स्वरूप हैं ॥४४॥

टूटे हुए बर्तन में रखा हुआ और उसी के समान मुख की वायु से ठंडा किया हुआ झूठा, कच्चा, असंस्कृत ॥४५॥

टूटे-फूटे आसन पर बैठकर खाया हुआ या समीप में आये हुए अतिथि को न दिया हुआ, दक्षिण की ओर मुख करके, संध्या के समय, नृत्य, वादन गायन आदि के समय खाया हुआ ॥४६॥

रजस्वला स्त्री द्वारा देखा अथवा छुआ हुआ । किसी का उच्छिष्ट अथवा दोषयुक्त पका हुआ भोजन आदि ॥४७॥

एतानि तव पुष्ट्यर्थमन्यच्चापि ददामि ते। अश्रद्धया हुतं दत्तमस्नातैर्यदवज्ञया ॥४८
यन्नाम्बुपूर्वकं क्षिप्तमनात्मीकृतमेव च। त्यक्तुमाविष्कृतं यत्तु दत्तं चैवातिविस्मयात् ॥४९
दुष्टं क्रुद्धार्तदत्तं च यक्ष्मन् तद्भागि तत्फलम्।
यच्च पौनर्भवः किंचित् करोत्यामुष्मिकं क्रमम् ॥५०
यच्च पौनर्भवा योषित् तद्यक्ष्मंस्तव तृप्तये। कन्या शुल्कोपधानाय समुपास्ते धनक्रियाः ॥५१
तथैव यक्ष्मन् पुष्ट्यर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्च या। यच्चार्थनिर्वृतौ किंचिदधीतं यन्न सत्यतः ॥५२
तत्सर्वं तव कामांश्च ददामि तव सिद्धये। गुर्विण्यभिगमे सन्ध्या नित्यकार्यव्यतिक्रमे ॥५३
असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषु च दुःसह। तवाभिभवसामर्थ्यं भविष्यति सदा नृषु ॥५४
पंक्तिभेदे वृथापाके पाकभेदे तथा कृते। नित्यञ्च गेहकलहे भविता वसतिस्तव ॥५५
अपोष्यमाणे च तथा भृत्यगोवाहनादिके। असन्ध्याभ्युक्षितागारे काले त्वत्तो भयं नृणाम् ॥५६
नक्षत्रग्रहपीडासु त्रिविधोत्पात दर्शने। अशान्तिकपरान् यक्ष्मन् नरानभिभविष्यसि ॥५७

ये सब पदार्थ तुम्हारी पुष्टि के लिए होंगे। इसके अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी तुम्हें प्रदान करता हूँ, जो स्नान किये बिना, श्रद्धा रहित हवन किया जाय तथा अवज्ञा पूर्वक दान दिया जाए ॥४८॥

और जो वस्तु जल के स्पर्श के बिना प्रदान की गयी हो, उपेक्षित (बिना जल दिये ही जिसका) दान संकल्प हुआ हो जो अनर्थ के लिए किया गया हो, परित्याग के लिए जिसका अविष्कार हुआ हो तथा जो विस्मय पूर्वक अर्पित किया गया हो ॥४९॥

दुष्ट, क्रोधित, आर्त्त मनुष्य द्वारा प्रदान किया गया हो ऐसे सब पदार्थों का उपभोग करो। हे यक्ष! दूसरी बार विवाहित स्त्री का पुत्र जो आमुष्मिक (परलोक सिद्धि) के कार्य करता है, उनका भी फल तुम्हीं प्राप्त करोगे ॥५०॥

और जो कर्म दूसरी बार विवाहित स्त्री करेगी, हे यक्ष! वे सब तुम्हारी तृप्ति के लिए ही होंगे एवं जो धर्म कार्य कन्या का विक्रय करके प्राप्त धन से सम्पादित होंगे ॥५१॥

वे भी उसी प्रकार यक्ष की पुष्टि के लिए ही होंगे और जो क्रिया मिथ्या (असत्) धर्मशास्त्र द्वारा सम्पादित की जाएँ और जो असत्यता पूर्वक अध्ययन किया एवं अर्थ प्राप्ति के लिए जो कार्य हैं ॥५२॥

वे सब तुम्हारी कामना की सिद्धि के लिए तुमको ही प्रदान करता हूँ तथा गर्भवती स्त्री के साथ समागम तथा संध्या और नित्य कर्मों के व्यतिक्रम के समय, ॥५३॥

तथा जो मनुष्य मिथ्या शास्त्र द्वारा कहे गये दुष्ट कर्मों से दूषित होते हैं। हे दुःसह! इस प्रकार के मनुष्यों का तिरस्कार करने की तुममें) सामर्थ्य होगी ॥५४॥

और जहां पंक्ति भेद, वृथा पाक, और पाक भेद करने वाले स्थान पर एवं जहाँ पर नित्य कलह होता हो, वहीं पर तुम्हारा निवास होगा ॥५५॥

और जहाँ पर गौ सेवक तथा वाहन (अश्वादि) भूखे हों तथा सुबह शाम जो घर परिष्कृत नहीं किये जाते, वहाँ रहने वाले सब लोग तुमसे भयभीत होंगे ॥५६॥

नक्षत्र, ग्रह पीड़ा अथवा त्रिविध उत्पातों के दिखाई देने पर जो उनकी शान्ति का उपाय नहीं करते, (उन) मनुष्यों को तुम अभिभूत करोगे ॥५७॥

वृथोपवासिनो मर्त्या द्यूतस्त्रीषु सदा रताः । त्वद्भाषणोपकर्त्तारो बैडालव्रतिकाश्च ये ।।५८
अब्रह्मचारिणाधीतमिज्या चाऽविदुषा कृता । तपोवने ग्राम्यभुजां तथैवानिर्जितात्मनाम् ।।५९
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्च स्वकर्मतः । परिच्युतानां या चेष्टा परलोकार्थमीप्सताम् ।।६०
तस्याश्च यत्फलं सर्वं तत्ते यक्ष्मन् भविष्यति ।
अन्यच्च ते प्रयच्छामि पुष्ट्यर्थं सन्निबोध तत् ।।६१
भवतो वैश्वदेवान्ते नामोच्चारणपूर्वकम् । एतत् तवेति दास्यन्ति भवतो बलिमूर्ज्जितम् ।।६२
यः संस्कृताशी विधिवच्छुचिरन्तस्तथा बहिः । अलोलुपोऽजितस्त्रीकस्तद् गेहमपवर्जय ।।६३
पूज्यन्ते हव्यकव्याभ्यां देवताः पितरस्तथा । जामयोऽतिथयश्चापि तद्गेहं यक्ष्म वर्जय ।।६४
यत्र मैत्री गृहे बाल-वृद्ध-योषिन्नरेषु च । तथा स्वजनवर्गेषु गृहं तच्चापि वर्जय ।।६५
योषितोऽभिरता यत्र न बहिर्गमनोत्सुकाः । लज्जान्विताः सदा गेहे यक्ष्मंस्तत् परिवर्जय ।।६६
वयः सम्बन्धयोग्यानि शयनान्यशनानि च । यत्र गेहे त्वया यक्ष्मंस्तद्वर्ज्यं वचनान्मम ।।६७
यत्र कारुणिका नित्यं साधुकर्मण्यवस्थिताः । सामान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथा यक्ष्म तद्गृहम् ।।६८

व्यर्थ उपवास करने वाले, जुए और स्त्री में आसक्त मनुष्य तुम्हारे ही उपकारी हैं, जो बिल्ली के समान अपने प्रयोजन में संलग्न रहते हैं ।।५८।।

तथा जो ब्रह्मचर्य के विना वेद पाठ करते हैं मूर्ख होते हुए भी यज्ञ करते हैं तथा तपोवन में ग्राम जैसा आचरण करते हैं एवं जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं किया है ।।५९।।

तथा अपने कर्तव्यों से च्युत हुए पारलौकिक सुख की इच्छा करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य शूद्रों द्वारा जो चेष्टाएँ की जाती हैं ।।६०।।

उन चेष्टाओं का जो फल है, वह सब तुम्हारी पुष्टि के लिए ही होगा और भी तुम्हारी पुष्टि के लिए प्रदान करता हूँ, सुनो ।।६१।।

जो पुरुष वैश्व देवों के अन्त में तुम्हारे नामोच्चारण पूर्वक यह तुम्हारा है, इस प्रकार कहकर तुम्हें अर्जित बली प्रदान करते हैं ।।६२।।

तथा जो (मनुष्य) संस्कार किये हुए पदार्थों को विधिवत् खाते हैं और बाहर-भीतर से पवित्र हैं, लोभ रहित हैं और स्त्रियाँ जिन्हें वश में नहीं कर सकतीं, तुम ऐसे मनुष्यों के घरों का परित्याग कर दो ।।६३।।

तथा जहाँ देवता और पितर क्रमशः हव्य और कव्य द्वारा पूजे जाते हैं। अपने सगे और अतिथि पूजित होते हैं। उस घर को भी छोड़ दो ।।६४।।

जिस घर में बालक, वृद्ध नारी, मनुष्य और स्वजनों में मैत्री भाव है, उस घर का भी त्याग कर दो ।।६५।।

और जहाँ स्त्रियाँ घर में ही अनुरक्त हैं, बाहर जाने के लिए उत्सुक नहीं हैं तथा लज्जा से युक्त हैं। हे यक्ष ! उस घर का भी सदैव परित्याग किये रहो ।।६६।।

हे यक्ष्म ! जिस घर में मनुष्य अपनी अवस्था और विभव के अनुसार ही शयन और भोजन करते हैं, उस घर का भी तुम मेरे कहने से त्याग कर दो ।।६७।।

जिस घर में मनुष्य सदैव करुणा युक्त एवं सत्कर्मों में अवस्थित रहते हैं तथा जो सामान्य सामग्री से युक्त हैं, हे यक्ष्म ! उस घर को भी तुम्हें छोड़ देना चाहिए ।।६८।।

यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सु गुरु-वृद्ध-द्विजातिषु। न तिष्ठन्ति गृहं तच्च वर्ज्यं यक्षमंस्त्वया सदा ॥६९
तरुगुल्मादिभिर्द्वारं न विद्धं यस्य वेश्मनः। मर्मभेदो न वा पुंसस्तच्छ्रेयो भवनं न ते ॥७०
देवतापितृभृत्यानामतिथीनां च वर्तनम्। यस्यावशिष्टेनान्नेन पुंसस्तस्य गृहं त्यज ॥७१
सत्यवाक्यान् क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः। पुरुषानीदृशान् यक्षमंस्त्यजेथाश्चानसूयकान् ॥७२
भर्तृ शुश्रूषणे युक्तामसत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम्। कुटुम्बभर्तृ शेषान्नपुष्टां च त्यज योषितम् ॥७३
यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिं सदा। याजनाध्यापनादानकृतवृत्तिं द्विजं त्यज ॥७४
दानाध्ययनयज्ञेषु सदोद्युक्तं च दुःसह। क्षत्रियं त्यज सच्छुल्कशस्त्राजीवात्त वेतनम् ॥७५
त्रिभिः पूर्वगुणैर्युक्तं पाशुपाल्यवणिज्ययोः। कृषेश्चावाप्तवृत्तिं च त्यज वैश्यमकल्मषम् ॥७६
दानेज्या द्विजशुश्रूषातत्परं यक्ष्म संत्यज। शूद्रं च ब्राह्मणादीनां शुश्रूषावृत्तिपोषकम् ॥७७
श्रुतिस्मृत्यविरोधेन कृतवृत्तिर्गृहे गृही। यत्र तत्र च तत्पत्नी तस्यैवानुगतात्मिका ॥७८
यत्र पुत्रो गुरोः पूजां देवानां च तथा पितुः। पत्नी च भर्तुः कुरुते तत्रालक्ष्मीभयं कुतः ॥७९

और जिस घर में मनुष्य, गुरु वृद्ध और ब्राह्मण के आसन पर बैठाये जाने पर भी नहीं बैठते हैं। हे यक्ष्म ! उस घर का भी सदैव त्याग किये रहो॥ ६९॥

तथा जिस घर के द्वार वृक्ष गुल्मादि के द्वारा अवरुद्ध न हों अथवा जो पुरुष किसी के प्रति मर्मभेदी वाक्यों का प्रयोग नहीं करता, वह घर तुम्हारे लिये कल्याण कारक नहीं है॥७०॥

तथा जो पुरुष, देव, पितर, मनुष्य, अतिथि को भोजन कराने के उपरान्त ही शेष अन्न का भक्षण करता है, उसके घर को भी तुम छोड़ दो॥७१॥

और हे यक्ष्म ! जो सत्य भाषी, क्षमावान्, अहिंसक तथा दूसरे को पीड़ित न करने वाला एवं ईर्ष्या रहित हों इस प्रकार के पुरुषों के घरों को तुम्हें त्याग देना चाहिए॥७२॥

पति की सेवा में सलग्न तथा असती स्त्री के संग में न रहने वाली, कुटुम्ब तथा पति के बचे हुए अन्न से पुष्टि प्राप्त करने वाली स्त्रियों को भी तुम छोड़ दो॥७३॥

तथा जिसकी बुद्धि सदैव भजन, अध्ययन, अभ्यास और दानादि के कार्यों में लगी रहती है। एवं यज्ञ अध्यापन और दान आदि कार्यों के द्वारा जीविकोपार्जन करते हैं, उन ब्राह्मणों को भी छोड़ दो॥७४॥

हे दुःसह ! जो सदैव दान अध्ययन तथा यज्ञ कार्यों में तत्पर रहते हैं तथा अपनी उचित क्रिया और पवित्र शस्त्र जीविका के द्वारा वेतन ग्रहण करते हैं, ऐसे क्षत्रियों को भी छोड़ दो॥७५॥

तथा जो वैश्य पूर्व कथित तीन गुणों से युक्त हैं, पशु पालन, व्यापार और कृषि कर्म द्वारा अपनी जीविकोपार्जन करते हैं, उन निष्पाप वैश्यों का भी परित्याग कर दो॥७६॥

हे यक्ष्म ! जो शूद्र दान, यज्ञ और ब्राह्मण की सेवा में तत्पर रहते हैं तथा ब्राह्मणादि की सेवावृत्ति से निर्वाह करते हैं, उन शूद्रों का भी त्याग कर दो॥७७॥

जो मनुष्य घरों में श्रुति और स्मृति सम्मत जीविका चलाते हैं और जहां उनकी पत्नी भी उनका अनुसरण करती है॥७८॥

और जहां पुत्र, देवता, पितर और गुरु की पूजा करते हैं और पत्नी पति की सेवा करती है, उस घर में अलक्ष्मी का भय कहां ?॥७९॥

सदानुलिप्तं सन्ध्यासु गृहमम्बुसमुक्षितम् । कृतपुष्पबलिं यक्ष्म न त्वं शक्नोषि वीक्षितुम् ॥८०
भास्करादृष्टशय्यानि नित्याग्निसलिलानि च । सूर्यावलोकदीपानि लक्ष्म्या गेहानि भाजनम् ॥८१
यत्रोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधु सर्पिषी । विषाज्यताम्रपात्राणि तद्गृहं न तवाश्रयः ॥८२
यत्र कण्टाकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववल्लरी । भार्या पुनर्भूर्वल्मीकस्तद्यक्ष्म तव मन्दिरम् ॥८३
यस्मिन् गृहे नराः पञ्च स्त्रीत्रयं तावतीश्च गाः । अन्धकारेन्धनाग्निश्च तद्गृहं वसति स्तव ॥८४
एकच्छागं द्विबालेयं त्रिगवं पञ्चमाहिषम् । षडश्वं सप्तमातङ्गं गृहं यक्ष्माशु शोषय ॥८५
कुद्दालदात्रपिटकं तद्वत् स्थाल्यादि-भाजनम् । यत्र तत्रैव क्षिप्तानि तव दद्युः प्रतिश्रयम् ॥८६
मुशलोलूखले स्त्रीणामास्या तद्वदुदुम्बरे । अवस्करे मन्त्रणं च यक्ष्म तदुपकृत्तव ॥८७
लंघ्यन्ते यत्र धान्यानि पक्वापक्वानि वेश्मनि । तद्वच्छास्त्राणि तत्र त्वं यथेष्टं चर दुःसह ॥८८
स्थालीपिधाने यत्राग्निर्दत्तो दर्व्वीफलेन वा । गृहे तत्र हि रिष्टानामशेषाणां समाश्रयः ॥८९

तीनों सन्ध्या कालों में जो घर सदैव लीपा जाता है तथा जल छिड़ककर (पवित्र) किया जाता है तथा जहाँ पुष्पों के द्वारा (देवताओं को) बलि दी जाती है। हे यक्ष्म ! तुम उस घर को देखने में भी समर्थ नहीं हो ॥८०॥

तथा जिन घरों की शय्या को सूर्य देख न सकता हो, जहाँ सदैव जल और अग्नि वर्तमान रहते हैं तथा जो दिन में सूर्य के प्रकाश से और रात्रि में दीपों से प्रकाशित रहते हैं, वे घर लक्ष्मी के निवास स्थान हैं ॥८ ॥

जिस घर में चन्दन, वीणा, दर्पण, शहद, घी, विष, तांबे का बर्तन विद्यमान हो, वह घर तुम्हारा आश्रय नहीं है ॥८२॥

जिस घर में कांटेदार वृक्ष, निष्पाव, वल्लरी, पुनः विवाहित स्त्री और बांबी हो हे यक्ष्म ! वह तुम्हारा ही घर है ॥८३॥

जिस घर में पाँच पुरुष, तीन स्त्री, तीन गौ, अंधेरा ईन्धन और अग्नि हो, वही तुम्हारा निवास स्थान होगा ॥८४॥

हे यक्ष ! जहाँ एक बकरी, दो स्त्री, तीन गौ, पांच भैंस, छः घोड़े, सात हाथी हैं। उस घर का तुम शीघ्र शोषण करो ॥८५॥

जिस घर में कुदाल, दाँती, पिटक (संदूकड़ी) उसी के समान, थाली इत्यादि वस्तुएँ इधर उधर बिखरी पड़ी हो। वहाँ रहने वाले, व्यक्ति तुम्हें निवास देने के इच्छुक हैं ॥८६॥

जहाँ स्त्रियों की मूसल या ओखली पर बैठकर अथवा आंगन में गूलर के नीचे बैठकर अथवा कूड़े के ढ़ेर पर, घर के पीछे बातें होती हैं, उनके कार्य तुम्हारा उपकार करते हैं ॥८७॥

जिस घर में कच्चे-पक्के धान्य लांघे जाते हैं और श्रेष्ठ शास्त्र का तिरस्कार होता है। हे दुःसह ! उस घर में तुम इच्छानुसार विचरण करो ॥८८॥

जिस घर में (स्त्री), स्थाली (बटलोई) ढकना अथवा चमचा से किसी को अग्नि देती है। वह घर सम्पूर्ण अरिष्टों का आश्रय स्थान होता है ॥८९॥

मानुषास्थिगृहे यत्र दिवा रात्रं मृतस्थितिः । तत्र यक्ष्म तवावासस्तथान्येषां च रक्षसाम् ॥९०
अदत्त्वा भुञ्जते ये वै बन्धोः पिण्डं तथोदकम् । सपिण्डान् सोदकांश्चैव तत्काले तान्नरान् भज ॥९१
यत्र पद्ममहापद्मौ सुरभिर्मोदकाशिनी । वृषभैरावतौ यत्र कल्प्यंते तद् गृहं त्यज ॥९२
अशस्त्रा देवता यत्र सशस्त्राश्चाहवं विना । कल्प्यन्ते मनुजैरर्च्यास्तत् परित्यज मन्दिरम् ॥९३
पौरजानपदैर्यत्र प्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः । क्रियन्ते पूर्ववद् गेहे न त्वं तत्र गृहे चर ॥९४
शूर्पवातघटाम्भोभिः स्नानं वस्त्राम्बुविप्रुषैः । नरवाग्रसलिलैश्चैव तान्याहि हृतलक्षणान् ॥९५
देशाचारान् समयाञ्ज्ञातिधर्मं जपं होमं मङ्गलं देवतेष्टिम् ।
सम्यक् छौचं विधिवल्लोकवादान् पुंसस्त्वया कुर्वतोमाऽस्तु सङ्गः ॥९६

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्त्वा दुःसहं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत । चकार शासनं सोऽपि तथा पंकज जन्मनः ॥९७

इति मार्कण्डेयमहापुराणे यक्ष्मानुशासनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।

जिस घर में मृत पदार्थ या मनुष्य की हड्डी दिन रात विद्यमान रहती है । हे यक्ष्म ! वहाँ तुम्हारा और अन्य राक्षसों का निवास रहेगा ॥९०॥

जो व्यक्ति अपने मृत (सपिण्ड तथा समानोदक) बन्धुओं को पिण्ड दान तथा जल बिना दिये ही स्वयं खाते हैं । उस समय तुम उनका सेवन करो ॥९१॥

और जहाँ पद्म और महापद्म (मणि) तथा स्त्रियाँ मोदक खाने वाली हैं और जहाँ बैल और ऐरावत हैं, तुम उस घर को छोड़ दो ॥९२॥

जहाँ अशस्त्र देवता बिना युद्ध के ही सशस्त्र देवताओं के समान पूजित होते हैं तुम उस घर का परित्याग कर दो ॥९३॥

जिन घरों, नगरों अथवा जनपदों में सदैव महोत्सव पूर्व प्रसिद्ध महोत्सव किये जाते हैं । पहले घरों के समान उन घरों में भी तुम विचरण मत करो ॥९४॥

जो मनुष्य छाज (सूप) की वायु घड़े के जल तथा वस्त्र के निचोड़े हुए जल एवं पैर के अग्रभाग से स्पर्श किये हुए जल से स्नान करते हैं, उन हीन लक्षणों से युक्त मनुष्यों के पास तुम जाओ ॥९५॥

जो मनुष्य देशाचार, समय, जाति, धर्म, जप, हवन, मंगल कार्य, देव पूजन, सम्यक् विधिवत् लोकाचार का पालन करते हैं । उनका तुम्हारे साथ कभी संग न होवे ॥९६॥

मार्कण्डेय बोले—

हे विप्रवर ! इस प्रकार दुःसह को आदेश प्रदान करके ब्रह्मा जी वहीं अन्तर्धान हो गये और दुःसह ने भी उसी प्रकार उस आदेश का पालन किया जिस प्रकार कमल योनि ब्रह्मा ने कहा था ॥९७॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में यक्ष्म-अनुशासन कथन नामक सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

दुःसहस्याभवद् भार्या निर्माष्टिर्नाम नामतः । जाता कलेस्तु भार्यायामृतौ चाण्डालदर्शनात् ॥१
तयोरपत्यान्यभवञ्जगद्व्यापीनि षोडश । अष्टौ कुमाराः कन्याश्च तथाष्टावतिभीषणाः ॥२
दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्च परिवर्तस्तथापरः । अङ्गध्रुक्छकुनिश्चैव गण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥३
गर्भहा सस्यहा चान्यः कुमारास्तनयास्तयोः । कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौ तासां नामानि मे शृणु ॥४
नियोजिका वै प्रथमा तथैवान्या विरोधिनी । स्वयंहारकरी चैव भ्रामणी ऋतुहारिका ॥५
स्मृतिबीजहरी चान्ये तयोः कन्ये सुदारुणे । विद्वेषण्यष्टमी नाम कन्या लोकभयावहा ॥६
एतासां कर्मवक्ष्यामि रोषप्रशमनं च यत् । अष्टम्यां च कुमाराणां श्रूयतां द्विजसत्तम ॥७
दन्ताकृष्टिः प्रसूतानां बालानां दशनस्थितः । करोति दन्तसंघर्ष चिकीर्षुर्दुःसहागमम् ॥८
तस्योपशमनं कार्य्यं सुप्तस्य सितसर्षपैः । शयनस्योपरि क्षिप्तैर्मानुषैर्दशनोपरि ॥९
सुवर्चसौषधस्नानात् तथा सच्छास्त्रकीर्त्तनात् । उष्ट्रकण्टकखड्गास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात् ॥१०
तिष्ठत्यन्यकुमारस्तु तथास्त्वित्यसकृद् ब्रुवन् । शुभाशुभे नृणां युङ्क्ते तथोक्तिस्तच्च नान्यथा ॥११

मार्कण्डेय बोले —

दुःसह की निर्माष्टि नामक पत्नी थी। जो कलि की पत्नी से ऋतुमती काल में चाण्डाल के दर्शन से उत्पन्न हुई ॥१॥

उन दोनों (दुःसह और निर्माष्टि) से जगद् व्यापी, अत्यन्त भयंकर आकृति वाली, सोलह सन्तानें उत्पन्न हुई। उनमें आठ पुत्र तथा आठ कन्याएँ थीं ॥२॥

दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त, अंगध्रुक, शकुनि, गण्डप्रान्तरति, गर्भहा, सस्यहा ये उन दोनों के पुत्र हैं और दूसरी आठ कन्याएँ थीं, उनके नाम भी मुझसे सुनो ॥३-४॥

नियोजिका तथा दूसरी विरोधिनी, स्वयं हारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका, स्मृतिहरी, और बीजहरी ये दोनों कन्याएँ अति भयंकर थीं और आठवीं विद्वेषिणी नाम की कन्या थी, वे लोकों के लिए, अत्यन्त भयावह थीं ॥ -६॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! अब इन आठ कन्याओं और कुमारों के कर्मों को कहता हूँ और उनके शेष शान्ति का जो उपाय है, उसको भी सुनो, ॥७॥

दन्ताकृति, सद्योत्पन्न बालकों के दांतों में स्थित होकर दंत-संघर्ष (किटकिटाना) करता है और दुःसह भी वहाँ आने का इच्छुक रहता है ॥८॥

मनुष्यों को उसकी शान्ति, सोते हुए बालक के दांतों तथा शय्या के ऊपर, सरसों के दाने डालने से करनी चाहिए ॥९॥

अथवा औषधियों के जल से स्नान या श्रेष्ठ शास्त्र (दुर्गा सप्तशती, रामरक्षा, शिव कवचादि) के पाठ से या, ऊँट या गेंडे की अस्थि का यन्त्र बनाकर कपड़े में बाँधकर बालक के कण्ठ में बाँधने से (अण्डी, क्षौम) वस्त्र के धारण से उसकी शान्ति हो जाती है ॥१०॥

दूसरा पुत्र निरन्तर 'तथास्तु', 'तथास्तु', इस प्रकार कहता हुआ सब मनुष्यों के शुभ और अशुभ कार्यों में लगा रहता है यह बिल्कुल सत्य है अन्यथा नहीं है ॥११॥

तस्माददुष्टं मङ्गल्यं वक्तव्यं पण्डितैः सदा । दुष्टे श्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयो जनार्दनः ॥१२
चराचरगुरुर्ब्रह्मा या यस्य कुलदेवता । अन्यगर्भे परान् गच्छन् सदैव परिवर्तयन् ॥१३
रतिमाप्नोति वाक्यं च विवक्षोरन्यदेव यत् । परिवर्त्तकसंज्ञोऽयं तस्यापि सितसर्षपैः ॥१४
रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्च रक्षां कुर्वीत तत्त्ववित् । अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गेषु स्फुरणोदितम् ॥१५
शुभाशुभं समाचष्टे कुशैस्तस्याङ्गताडनम् । काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यः श्वादेरंग गतोऽपि वा ॥१६
शुभाशुभं च शकुनिः कुमारोऽन्यो ब्रवीति वै । तत्रापि दुष्टे व्याक्षेपः प्रारम्भत्याग एव च ॥१७
शुभे द्रुततरं कार्यमिति प्राह प्रजापतिः । गण्डान्तेषु स्थितश्चान्यो मुहूर्तार्द्धं द्विजोत्तम ॥१८
सर्वारम्भान् कुमारोऽत्ति शमं तस्य निशामय । विप्रोक्त्या देवतास्तुत्या मूलोत्खातेन च द्विज ॥१९
गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तद्रक्षग्रहपूजनैः । पुनश्च धर्मोपनिषत्करणैः शास्त्रदर्शनैः ॥२०
अवज्ञया जन्मनश्च प्रशमं याति गण्डवान् । गर्भे स्त्रीणां तथाऽन्यस्तु कललाशी सुदारुणः ॥२१

इसलिए पण्डितों को सदैव शुभ और मंगल वाणी का ही उच्चारण करना चाहिए। अशुभ उच्चारण होने पर भगवान् जनार्दन के (नाम का) कीर्तन करना चाहिए ॥१२॥

चराचर गुरु, ब्रह्मा अथवा जिसका जो कुलदेव हो, उसी का स्मरण करना चाहिए। (तीसरा पुत्र) एक स्त्री का गर्भ दूसरी स्त्री के गर्भ में पहुँचाता हुआ, सदैव इस प्रकार के परिवर्तन करता हुआ ॥१३॥

और इसी प्रकार मनुष्य एक बात कहना चाहता है तो उससे कुछ अन्य ही कहला देता है, इस प्रकार परिवर्तन करता हुआ, वह प्रसन्नता को प्राप्त करता है। परिवर्तन नामक इस पुत्र की श्वेत सरसों के बिखरने से ही शान्ति होती है ॥१४॥

अथवा ज्ञानीजन रक्षोघ्न मन्त्र के जप से (उससे) रक्षा करे अन्य (पुत्र) मनुष्यों के अंगों में वायु के समान स्पंदन (उत्पन्न) करता है। (लोमहर्षण) करके ॥१५॥

शुभ और अशुभ का आचरण करता है। उसकी शान्ति के लिए अपने अंगों को कुशाओं से पीटना चाहिए। पाँचवाँ पुत्र काक आदि पक्षी अथवा श्वान आदि के अंगों में स्थित हुआ, ॥१६॥

शुभ, अशुभ का संपादन करता है, उसे शकुनि कुमार कहते हैं। उसके भी अशुभ के प्रकाशित होने पर किसी कार्य के प्रारम्भ का विचार त्याग देना चाहिए ॥१७॥

और प्रजापति कहते हैं कि शुभ लक्षण प्रकट होने पर कार्य को अति शीघ्रता से प्रारम्भ करना चाहिए। हे द्विजोत्तम ! (छटा पुत्र) गण्डान्तरित आधे मुहूर्त गण्डान्त में स्थित रहता है ॥१८॥

(और) आरम्भ किये हुए सभी कार्यों के कल्याण और अनिंद्यता का भक्षण कर लेता है। हे द्विज ! ब्राह्मण के आशीर्वाद से, देवताओं की स्तुति से मूल नक्षत्र की शान्ति से उसका शमन होता है ॥१९॥

गोमूत्र तथा सफेद सरसों से स्नान, नक्षत्र तथा ग्रह का पूजन, धर्मोपनिषद् के श्रवण और शास्त्रों के दर्शन से, ॥२०॥

जन्म की अवज्ञा से इस गण्ड दोष का शमन होता है। गर्भहा नामक सातवाँ भयंकर पुत्र स्त्रियों के गर्भस्थ कलल को खोलता है ॥२१॥

तस्य रक्षा सदा कार्या नित्यं शौच-निषेवणात् । प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात् ।।२२
विशुद्धगेहावसनादनायासाच्च वै द्विज । तथैव सस्यहा चान्यः सस्यर्द्धिमुपहन्ति यः ।।२३
तस्यापि रक्षां कुर्वीत जीर्णोपानद्विधारणात् । तथापसव्यगमनाच्चण्डालस्य प्रवेशनात् ।।२४
बहिर्बलिप्रदानाच्च सोमाम्बुपरिकीर्तनात् । परदारपरद्रव्यहरणादिषु मानवान् ।।२५
नियोजयति चैवान्या कन्या सा च नियोजिका । तस्याः पवित्रपठनात् क्रोधलोभादिवर्जनात् ।।२६
नियोजयति मामेष विरोधाच्च विवर्जनात् । आक्रुष्टोऽन्येन मन्येत ताडितो वा नियोजिका ।।२७
नियोजयत्येनमिति न गच्छेत् तद्वशं बुधः । परदारादिसंसर्गे चित्तमात्मानमेव च ।।२८
नियोजयत्यत्र सा मामिति प्राज्ञो विचिन्तयेत् । विरोधं कुरुते चान्या दम्पत्योः प्रीयमाणयोः ।।२९
बन्धूनां सुहृदां पित्रोः पुत्रैः सावर्णिकैश्च या । विरोधिनी सा तद्रक्षां कुर्वीत बलिकर्मणा ।।३०
तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् । धान्यं खलाद् गृहाद् गोष्ठात् पयः सर्पिस्तथापरा ।।३१
समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्ति च कन्यका । सा स्वयं हारिकेत्युक्ता सदान्तर्धान तत्परा ।।३२
महानसादर्द्धसिद्धमन्नागार स्थितं तथा । परिविष्यमाणं च सदा सार्द्धंभुङ्क्ते च भुञ्जता ।।३३

नित्य पवित्रता के आचरण से, प्रसिद्ध मंत्र के लेखन से, माला आदि के धारण से, शुद्ध घर में निवास से, आयास को त्यागकर, हे द्विज ! सदैव उस (गर्भ) की रक्षा करनी चाहिए तथा अन्य सस्यहा नामक पुत्र धान्य की वृद्धि आदि को नष्ट करता है ।।२२-२३।।

खेत में जीर्ण जूता रखने से, जनेऊ को बाँयें कंधे पर रखकर खेत में घूमने से, चाण्डाल का प्रवेश कराने से, ।।२४।।

खेत के बाहर बलि देने से, सोमाम्बु नामक मंत्र पाठ द्वारा उससे भी रक्षा करनी चाहिए । दुःसह की नियोजिका नाम की कन्या मनुष्यों को परायी स्त्री और पराये धन के हरण में नियोजित करती है । उसका पवित्र ग्रन्थों के पढ़ने से, क्रोध, लोभ आदि के त्याग से, ।।२५-२६।।

'यह मुझे दुष्ट कार्य में प्रवृत्त कर रही है', यह विचार कर उसके विरोध और त्याग से, किसी के क्रुद्ध होने पर अथवा मारने पर भी क्रोधादि के वशीभूत नहीं होना चाहिए । नियोजिका ही, ।।२७।।

मुझे इसमें प्रवृत्त कर रही है, यह विचार कर के ही बुद्धिमान् को उसके वश में नहीं होना चाहिए, और अपने चित्त को परदार आदि के संसर्ग से विरत कर लेना चाहिए ।।२८।।

उसकी अन्य पुत्री अत्यन्त प्रेम करते हुए दम्पतियों में विरोध झगड़ा करा देती है ।।२९।।

बन्धुओं, मित्रों, पिता, पुत्र और सावर्णिकों में जो कन्या विरोध कराती है, वह विरोधिनी है । उससे बलि कर्म द्वारा ।।३०।।

अतिवाद के सहन (परित्याग) से, शास्त्र सम्मत आचार के सेवन से (अपनी) रक्षा करनी चाहिये । जो घरों और खलिहान के धान्यों को, गो स्तनों से दूध को नष्ट कर देती है ।।३१।।

और वह कन्या द्रव्यादि, समृद्धि और ऋद्धि को नष्ट कर देती है सदैव अन्तर्धान रहने वाली वह स्वयं-हारिका इस नाम से कही गयी है ।।३२।।

रसोईघर से आधा पका हुआ अन्न अथवा भाण्डागार में स्थित अन्न अथवा परोसा हुआ अन्न भी चुरा ले जाती है अथवा खाते हुए व्यक्ति के साथ में (बैठकर) खाती है ।।३३।।

उच्छेषणं मनुष्याणां हरत्यन्नं च दुर्हरा । कर्मान्तागारशालाभ्यः सिद्धिं हरति द्विज ।।३४
गोस्त्रीस्तनेभ्यश्च पयः क्षीरहारी सदैव सा । दध्नो घृतं तिलात्तैलं सुरागारात्तथा सुराम् ।।३५
रागं कुसुम्भकादीनां कार्पासात् सूत्रमेव च । सा स्वयं हारिका नाम हरत्यविरतं द्विज ।।३६
कुर्याच्छिखण्डिनोर्द्वन्द्वं रक्षार्थं कृत्रिमां स्त्रियम् । रक्षाश्चैव गृहे लेख्या वर्ज्या चोच्छिष्टता तथा ।।३७
होमाग्निदेवताधूपभस्मना च परिष्क्रिया । कार्या क्षीरादिभाण्डानामेवं तद्रक्षणं स्मृतम् ।।३८
उद्वेगं जनयत्यन्या एकस्थाननिवासिनः । पुरुषस्य तु या प्रोक्ता भ्रामणी सा तु कन्यका ।।३९
तस्याथ रक्षां कुर्वीत विक्षिप्तैः सितसर्षपैः । आसने शयने चोर्व्यां यत्रास्ते स तु मानवः ।।४०
चिन्तयेच्च नरः पापा मामेषा दुष्ट चेतना । भ्रामयत्यसकृज्जप्यं भुवः सूक्तं समाधिना ।।४१
स्त्रीणां पुष्पं हरत्यन्या प्रवृत्तं सा तु कन्यका । तथा प्रवृत्तं सा ज्ञेया दुःसहा ऋतुहारिका ।।४२
कुर्वीत तीर्थदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु । नदीसङ्गमखातेषु स्नपनं तत्प्रशान्तये ।।४३

हे द्विज ! यह दुर्हरा मनुष्यों के उच्छिष्ट अन्न का भी हरण कर लेती है और कर्म स्थान (कारखाना आदि) शालाओं से उत्तम द्रव्य का हरण कर लेती है ।।३४।।

और वह क्षीरहारी सदैव गौ तथा स्त्रियों के स्तनों से दूध का हरण कर लेती है तथा दधि से घी, तिल से तेल तथा सुरागार से सुरा, पुष्पादिकों से राग (पराग या रस) तथा कपास से सूत्र आदि को चुरा लेती है । हे द्विज ! क्योंकि वह अविरत वस्तुओं का हरण करती है । इसलिए स्वयं हारिका नाम से कही गयी है ।।३५-३६।।

उससे रक्षा के लिए एक स्त्री और दो कृत्रिम मोरों का निर्माण करना चाहिए । घर में बनाये हुए उन चित्रों की सदैव रक्षा करनी चाहिए तथा उन्हें कोई उच्छिष्ट न करे ।।३७।।

तथा अग्नि देवता का हवन करे और धूप, भस्म आदि से दूधादि के पात्रों पर लगाकर, सब वस्तुओं का परिस्कार करना चाहिए । इस प्रकार करने से उससे इन वस्तुओं की रक्षा होती है ।।३८।।

एक स्थान पर रहने वाले मनुष्यों के हृदय में उसकी जो चौथी कन्या उद्वेग उत्पन्न करती है । वह कन्या भ्रामणी कही गयी है ।।३९।।

आसन, शयन और उस पृथ्वी पर जहाँ मनुष्य बैठता है सफेद सरसों के दाने बिखेर कर उससे भी रक्षा करनी चाहिए ।।४०।।

(किसी पाप कर्म में चित्त लगाने पर) मनुष्य को यही सोचना चाहिए कि मुझे इस पाप कर्म में वह दुष्ट चेतना ही नियोजित कर रही है । तब निरन्तर समाधि लगाकर भूमि सूक्त का निरन्तर जप करना चाहिए ।।४१।।

उसकी पाँचवीं कन्या ऋतुमति स्त्रियों के रज का हरण करती रहती है । इस प्रवृत्ति के कारण ही वह दुःसह की पुत्री ऋतुहारिका कही गयी है ।।४२।।

इसके शमन के लिए विद्वान् पुरुषों को तीर्थों पर, पर्वतों की गुफाओं में मंदिरों का निर्माण कराना चाहिए तथा नदियों के संगम स्थल पर स्नान करना चाहिए ।।४३।।

मन्त्रविद् भूततत्त्वज्ञः पर्वसूषसि च द्विज । (तेषां तु पूजनं कार्यं धूपवर्त्युपहारकैः)
चिकित्साज्ञश्च वै वैद्यः संप्रयुक्तैर्वरौषधैः ॥४४
स्मृतिं चापहरत्यन्या (प्रवृत्तां सा तु कन्यका । अथा प्रवृत्ता सा ज्ञेया) नृणां सा स्मृतिहारिका ॥४५
विविक्तदेशसेवित्वात् तस्याश्चोपशमो भवेत् । बीजापहारिणी चान्या स्त्रीपुंसोरतिभीषणा ॥
मेध्यान्नभोजनैः स्नानैस्तस्याश्चोपशमो भवेत् ॥४६
दारुणा सा दुराचारा दारुणं कुरुते भयम् । तत्प्रशांत्यै प्रकुर्वीत द्विजानामर्चनं शुभम् ॥४७
अष्टमी द्वेषणी नाम कन्या लोकभयावहा । या करोति जनद्विष्टं नरं नारीमथापि वा ॥४८
मधुक्षीरघृताक्तांस्तु शान्त्यर्थं होमयेत्तिलान् । कुर्वीत मित्रविन्दां च तथेष्टिं तत्प्रशान्तये ॥४९
एतेषां तु कुमाराणां कन्यानां द्विजसत्तम । अष्टत्रिंशदपत्यानि तेषां नामानि मे शृणु ॥५०
दन्ताकृष्टेरभूत् कन्या विजल्पा कलहा तथा । अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पा तत्प्रशान्तये ॥५१
तामेव चिन्तयेत् प्राज्ञः प्रयतश्च गृही भवेत् । कलहा कलहं गेहे करोत्यविरतं नृणाम् ॥५२
कुटुम्बनाशहेतुः सा तत्प्रशान्तिं निशामय । दूर्वांकुरान् मधुघृतक्षीराक्तान् बलिकर्मणि ॥५३

हे द्विज ! मन्त्रज्ञाता को भूतों को जानने वाले सब कर्म पर्वों में अथवा प्रातः काल करने चाहियें (उनकी पूजा का कार्य धूपादि के उपहारों से करें) तथा चिकित्सक वैद्य श्रेष्ठ औषधियों के प्रयोग से उसकी चिकित्सा करें ॥४४॥

उसकी जो कन्या मनुष्यों की स्मृति हरण में प्रवृत्त रहती है, इस प्रवृत्ति के कारण वह स्मृति हारिका कही जाती है ॥४५॥

एकान्त स्थान का सेवन करने से, उसकी शान्ति होती है। उसकी अत्यन्त भयंकर बीजाण्हारिणी नामक अन्य कन्या स्त्री पुरुषों की रति को विनष्ट करती है। पवित्र अन्न का भोजन और स्नान के द्वारा उसकी शान्ति होती है ॥४६।

वह कठोर (निष्ठुर) दुराचारिणी भयंकर भय को उत्पन्न करने वाली है। उसकी शान्ति के लिए ब्राह्मणों का कल्याणकारक पूजन करना चाहिए ॥४७॥

आठवीं द्वेषिणी नामक कन्या संसार को अत्यधिक भयभीत करने वाली है। जो पुरुष और स्त्रियों में द्वेष उत्पन्न (कराने वाली है) ॥४८॥

इसकी शान्ति के लिए मधु, क्षीर, घृत (शहद, दूध और घी) तिल की आहुति देनी चाहिए तथा उसकी शान्ति के लिए मित्रविन्दा नामक यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥४९॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! उसके पुत्रों और कन्याओं से, अड़तीस पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम भी मुझसे सुनो ॥५०॥

दन्ताकृष्टि के—विजल्पा और कलहा नाम की दो कन्याएँ हुईं, विजल्पा अवज्ञा करने वाली, असत्य और दुष्ट भाषण करने वाली है। उसकी शान्ति के लिए. ॥५१॥

विद्वान् पुरुष को उसी का चिन्तन करना चाहिए और गृहस्थी होना चाहिए। कलहा मनुष्यों के घरों में निरन्तर कलह कराती है ॥५२॥

वह कुटुम्ब के नाश का कारण है। इसलिए उसके शमन का उपाय सुनो। दूब के अंकुर मधु, घृत और दूब की बलि देकर ॥५३॥

विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलं मित्रं च कीर्तयेत् । भूतानां मातृभिः सार्द्धं बालकानां तु शान्तये ।।५४
विधानां तपसां चैव संयमस्य यमस्य च । कृष्यां वाणिज्यलाभे च शान्ति कुर्वन्तु मे सदा ।।५५
पूजिताश्च यथा न्यायं तुष्टि गच्छन्तु सर्वशः । कूष्माण्डा यातुधानाश्च ये चान्ये गणसंज्ञिताः ।।५६
महादेवप्रसादेन महेश्वरमतेन च । सर्वं एते नृणां नित्यं तुष्टिमाशु व्रजन्तु ते ।।५७
तुष्टाः सर्वं निरस्यन्तु दुष्कृतं दुरनुष्टितम् । महापातकजं सर्वं यच्चान्यद्विघ्नकारणम् ।।५८
तेषामेव प्रसादेन विघ्ना नश्यन्तु सर्वशः । उद्वाहेषु च सर्वेषु वृद्धिकर्मसु चैव हि ।।५९
पुण्यानुष्ठानयोगेषु गुरुदेवार्चनेषु च । जपयज्ञविधानेषु यात्रासु य चतुर्दश ।।६०
शरीरारोग्यभोग्येषु सुखदानधनेषु च । वृद्धबालातुरेष्वेव शान्ति कुर्वन्तु मे सदा ।।६१

सोमाम्बुपौ तथाम्भोभिः सविता चानिलानलौ ।
तथोक्तेः कलिजिह्वोऽभूत् पुत्रस्तालनिकेतनः ।।६२

स येषां रसनासंस्थस्तानसाधून् विवादयेत् । परिवर्त सुतौ द्वौ तु विरूपविकृतौ द्विज ।।६३
तौ तु वृक्षाद्रिपरिखाप्राकाराम्भोधिसंश्रयौ । गुर्विण्याः परिवर्तन्तौ कुरुतः पादपादिषु ।।६४

अग्नि में होम कर देना चाहिए तथा मित्र विन्दा मन्त्र का जप करना चाहिए । बालकों की शान्ति के लिए मातृकाओं के साथ भूतों का पूजन करना चाहिए ।।५४।।

(पुनः इस प्रकार कहना चाहिए) विद्या, तप, संयम, यम, कृषि, वाणिज्य के लाभ में आप सदैव शान्ति प्रदान करें ।।५५।

और जो कूष्माण्ड, यातुधान नाम वाले तथा अन्य गण हैं । यथाविधि पूजित हुए वे सतुष्ट होवें (तुष्टि को प्राप्त करें) ।।५६।।

महादेव (शिव) की कृपा और महेश्वर के अभिमत (इच्छा) से इन सब मनुष्यों के प्रति सभी शीघ्र ही प्रसन्न होवें ।।५७।।

तथा संतुष्ट हुए वे ये समस्त पाप दुष्ट कर्म एवं महापातक से उत्पन्न कष्ट तथा अन्य भी जो विघ्नों के कारण हैं, उन सब का नाश करें ।।५८।।

और उनके अनुग्रह से विवाह कार्यों तथा सभी उन्नति के कार्यों में आए विघ्न नष्ट हो जायें ।।५९।।

पुण्य कर्मों के अनुष्ठान में, गुरु देवादि के अर्चन में जप और यज्ञादि के विधान में तथा चौदह प्रकार की यात्राओं में, ।।६०।।

शरीर सम्बन्धी आरोग्य के भोगों में, सुख, दान और धन के विषयों में, वृद्ध, बालक, रोगी (पीड़ित) व्यक्तियों के सम्बन्ध में सदैव शान्ति प्रदान करें ।।६१।।

सोम, वरुण, समुद्र, सूर्य, वायु, अग्नि (आदि भी मेरी रक्षा करें) तथोक्ति का ताल नामक वृक्ष पर रहने वाला काले (काल जिह्व) नामक पुत्र (उत्पन्न) हुआ ।।६२।।

हे द्विज ! यह (काल जिह्व) जिस की जिह्वा पर बैठ जाता है । उनको साधुओं के प्रति विवाद के लिए प्रेरित करता है । परिवर्त के विरूप और विकृत दो पुत्र उत्पन्न हुए ।।६३।।

वे दोनों वृक्ष, पर्वत, खाई, महल (परकोटा) और समुद्र आदि का आश्रय लेकर गर्भिणी (स्त्री) के गर्भ का परिवर्तन करते हैं ।।६४।।

क्रौष्टुके परिवर्तः स्याद्गर्भस्यान्योदरात् ततः। न वृक्षं चैव नैवाद्रिं न प्राकारं महोदधिम् ॥६५
परिखां वासमाक्रामेदबला गर्भधारिणी। अङ्गध्रुक् तनयं लेभे पिशुनं नाम नामतः ॥६६
सोऽस्थिमज्जागतः पुंसां बलमत्त्यजितात्मनाम्।
श्येनकाककपोतांश्च गृध्रोलूकौ च वै सुतान् ॥६७
अवाप शकुनिः पञ्च जगृहुस्तान् सुरासुराः। श्येनं जग्राह मृत्युश्च काकं कालो गृहीतवान् ॥६८
उलूकं निर्ऋतिश्चैव जग्राहातिभयावहम्। गृध्रं व्याधिस्तदीशोऽथ कपोतं च स्वयं यमः ॥६९
एतेषामेव चैवोक्ताभूताः पापोपपादने। तस्माच्छ्येनादयो यस्य निलीयेयुः शिरस्यथ ॥७०
तेनात्मरक्षणायालं शान्तिं कुर्य्याद् द्विजोत्तम। गेहे प्रसूतिरेतेषां तद्वन्नीडनिवेशनम् ॥७१
नरस्तं वर्जयेद् गेहं कपोताक्रान्तमस्तकम्। श्येनः कपोतो गृध्रश्च काकालूकौ गृहे द्विज ॥७२
प्रविष्टः कथयेदन्तं वसतां तत्र वेश्मनि। ईदृक् परित्यजेद् गेहं शान्तिं कुर्याच्च पण्डितः ॥७३
स्वप्नेऽपि हि कपोतस्य दर्शनं न प्रशस्यते। षडपत्यानि कथ्यन्ते गण्डप्रान्तरतेस्तथा ॥७४
स्त्रीणां रजस्यवस्थानं तेषां कालाश्च मे शृणु। चत्वार्य्यहानि पूर्वाणि तथैवान्यत्त्रयोदशम् ॥७५
एकादशं तथैवान्यदपत्यं तस्य वै दिने। अन्यद्दिनाभिगमने श्राद्धदाने तथापरे ॥७६
पर्वस्वथान्यत्तस्मात्तु वर्ज्यान्येतानि पण्डितैः। गर्भहन्तुः सुतो निघ्नो मोहनी चापि कन्यका ॥७७

हे क्रौष्टुकि ! क्योंकि परिवर्त के पुत्र गर्भ का एक गर्भ से दूसरे गर्भ में परिवर्तन करते रहते हैं इसलिए गर्भिणी स्त्री को वृक्ष, पर्वत, परकोटा, समुद्र, ॥६५॥

खाई आदि के समीप नहीं जाना चाहिए। अंगध्रुक को पिशुन नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुआ ॥६६॥

वह अपने मन को वश में न करने वाले (अज्ञानी) मनुष्यों की अस्थि और मज्जा में प्रविष्ट होकर उनके बल को खाता है। शकुनि ने बाज, कौआ, कबूतर, गिद्ध और उल्लू ॥६७॥

को प्राप्त किया, उन पांचों को सुरों और असुरों ने ग्रहण कर लिया। बाज को मृत्यु ने लिया तथा कौए को काल ने ग्रहण कर लिया ॥६८॥

उल्लू का निर्ऋति ने तथा अत्यन्त भयानक गिद्ध को व्याधि ने तथा व्याधिश्वर यम ने स्वयं कपोत को लिया ॥६९॥

इन सबको पापोत्पादक कहा गया है। इसलिए बाज आदि जिसके घरों में अथवा सिर पर बैठ जाते हैं ॥७०॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! उन्हें अपनी (अनिष्ट से) रक्षा के लिए अवश्य शान्ति कार्य करने चाहियें। इन सब की जिसके घर में प्रसूति हो अथवा उसी के समान घोंसला बनाना आदि कार्य हों। कबूतरों से आक्रान्त घर अन्त का सूचक होता है ॥७१॥

मनुष्य को वह घर छोड़ देना चाहिए। हे द्विज ! कबूतर, बाज, गिद्ध, कौआ, और उल्लू, जिस घर में प्रवेश करें वह घर में (रहने वाले) के अन्तकाल की सूचना देते हैं। बुद्धिमान को इस प्रकार के घर को त्याग देना चाहिए तथा शान्ति कार्य कराने चाहियें ॥७२-७३॥

स्वप्न में भी कबूतर के दर्शन अच्छे नहीं होते। गण्डप्रांतरति की छः सन्तति कही जाती हैं। स्त्रियों के रज में निवास करने वाले उनके समय को मुझ से सुनो—पहले चार दिन, ग्यारहवें तथा तेरहवें दिन के अन्त में, श्राद्ध के दिन तथा दान कार्य के दिन, तथा समस्त पर्व के दिनों में, ये सब उनके पुत्रों का रहने का समय है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को इन दिनों में (स्त्री प्रसंग) का परित्याग करना चाहिए। गर्भहन्ता का विघ्न नामक पुत्र और मोहनी नामक कन्या हुई ॥७४-७७॥

प्रविश्य गर्भमत्त्येको भुक्त्वा मोहयतेऽपरा। जायन्ते मोहनात्तस्याः सर्पमण्डूककच्छपाः ॥७८
सरीसृपाणि यान्यानि पुरीषमथवा पुनः। षण्मासाद् गुर्विणी मांसमश्नुवानामसंयताम् ॥७९
वृक्षच्छायाश्रयां रात्रावथवा त्रिचतुष्पथे। श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ॥८०
रुद्यमानां निशीथेऽथ आविशेत् तामिमौ स्त्रियम्। सस्यहन्तु स्तथैवैकः क्षुद्रको नाम नामतः ॥८१
सस्यर्द्धि स सदा हन्ति लब्ध्वा रन्ध्रं श्रृणुष्व तत्। अमङ्गल्यदिनारम्भे सुतृप्तो वपते च यः ॥८२
क्षेत्रेष्वनुप्रवेशं वै करोत्यन्तोपसंगिषु ॥८३
अमङ्गल्यादिनारंभं मङ्गलानां च वर्जयेत्। महद्भयं प्रयच्छन्ति यत्र वै तत् प्रसंगिषु ॥
तस्मात् कल्पः सुप्रशस्ते दिनेऽभ्यर्च्य निशाकरम् ॥८४
कुर्यादारम्भमुप्तिं च हृष्टस्तुष्टः सहायवान्। नियोजिकेति या कन्या दुःसहस्य मयोदिता ॥८५
जातं प्रचोदिका संज्ञं तस्याः कन्या चतुष्टयम्। मत्तोन्मत्तप्रमत्तांस्तु नरान् नारीस्तु ताः सदा ॥८६
समाविशन्ति नाशाय चोदयन्तीह दारुणम्। अधर्मं धर्मरूपेण कामं चाकामरूपिणम् ॥८७
अनर्थं चार्थरूपेण मोक्षं चामोक्षरूपिणम्। दुर्विनीतान् विना शौचं दर्शयन्ति पृथङ् नरान् ॥८८
भ्रंसंत्याभिः प्रविष्टाभिः पुरुषार्थात् पृथङ नराः। तासां प्रवेशश्च गृहे सन्ध्यृक्षेषु ह्युदुम्बरे ॥८९

ये दोनों गर्भ में प्रविष्ट होकर एक (विघ्न) तो गर्भ को खा जाता है तथा दूसरी (कन्या) गर्भ खाकर मोह प्रदान करती है। उसके मोह के कारण ही सर्प, मेंढ़क, कछुए ॥७८॥

बिच्छू और अन्य जन्तुगण तथा पुरीष आदि उत्पन्न होते हैं। गर्भिणी स्त्री यदि छः माह तक मांस भक्षण करे, असंयत रहे ॥७९॥

रात्रि में वृक्ष के नीचे अथवा तिराहे या चौराहे पर शयन करे श्मशान आदि उत्कट भूमि में स्थित रहे, उत्तरीय रहित हो, ॥८०॥

और रात्रि में रुदन करने वाली स्त्री में ये दोनों प्रविष्ट हो जाते हैं। शस्यहन्त का शुद्धक नाम वाला एक पुत्र हुआ ॥८१॥

वह सदैव छिद्र पाते ही शस्य वृद्धि की हानि करता है। अब उसके विषय में सुनो—जो मनुष्य अशुभ दिन आरम्भ होने पर तृप्त होकर धान्य बोता है ॥८२॥

उन खेतों में (क्षुद्रक) प्रवेश करता है और संगियों का अन्त करता है ॥८३॥

यह अमांगलिक कार्यों को प्रारम्भ करके मांगलिक कार्यों को बाधित करता है। यह, जहाँ इसके प्रसंग होते हैं, उनमें महान् भय उत्पन्न करता है। इसलिए पवित्र दिन में चन्द्रमा की पूजा करके, प्रसन्न चित्त से कृषि कार्य और वपन कार्य प्रारम्भ करना चाहिए। इससे संतुष्ट देवता उसके सहायक होते हैं। दुःसह की नियोजिका नामक जो कन्या थी, उसको मैंने पहले ही कह दिया था ॥८४-८५॥

उसकी प्रचोदिका नामक चार कन्याएँ हुईं, वे सब सदैव मद से उन्मत्त हुई नर और नारियों में (प्रमत्त यौवन के मद से गर्वित) प्रवेश करती है और उनके नाश के लिए भयंकर रूप से प्रेरित करती है। अधर्म को धर्म रूप से और काम को अकाम रूप से, ॥८६-८७॥

अनर्थ को अर्थ रूप से मोक्ष को अमोक्ष रूप से (प्रेरणा पूर्वक) मनुष्यों को पृथक्-पृथक् दर्शन कराती हैं। उनको नाना अशुचि (अपवित्र) रूप दिखाकर भयानकता से नाश करती हैं। प्रविष्ठ हुई इनके द्वारा मनुष्य पुरुषार्थ से च्युत हो जाता है। उनका घरों में प्रवेश नक्षत्रों की संधियों में तथा घरों में स्थित गूलर में होता है ॥८८-८९॥

धात्रे विधात्रे च बलिर्यत्र काले न दीयते । भुञ्जतां पिबतां वापि संगिभिर्जलविप्रुषैः ॥९०
नरनारीषु संक्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते । विरोधिन्यास्त्रयः पुत्राश्चोदको ग्राहकस्तथा ॥९१
तमः प्रच्छादकश्चान्यस्तत्स्वरूपं शृणुष्व मे । प्रदीपतैलसंसर्गदूषिते लंघिते खले ॥९२
मुसलोलूखले यत्र पादुके वासने स्त्रियः । शूर्पदात्रादिकं यत्र पदाकृष्टं तथासनम् ॥९३
यत्रोपलिप्ते नाभ्यर्च्य विहारः क्रियते गृहे । दर्वीमुखेन यत्राग्निराहृतोऽयत्र नीयते ॥९४
विरोधिनी-सुतास्तत्र विजृम्भन्ते प्रचोदिताः । एको जिह्वागतः पुंसां स्त्रीणां चालीकसत्यवान् ॥९५
चोदको नाम स प्रोक्तः पैशुन्यं कुरुते गृहे । अवधानगतश्चान्यः श्रवणस्थोऽतिदुर्मतिः ॥९६
करोति ग्रहणं तेषां वचसां ग्राहकस्तु सः । आक्रम्यान्यो मनो नृणां तमसाच्छाद्य दुर्मतिः ॥९७
क्रोधं जनयते यस्तु तमः प्रच्छादकस्तु सः । स्वयं हार्यास्तु चौर्येण जनितं तनयत्रयम् ॥९८
सर्वहार्यर्द्धहारी च वीर्यहारी तथैव च । अनाचान्तगृहेष्वेते मन्दाचारगृहेषु च ॥९९
अप्रक्षालितपादेषु प्रविशत्सु महानसम् । खलेषु गोष्ठेषु च वैद्रोहो येषु गृहेषु वै ॥१००

(और जब) जहाँ पर धाता और विधाता को समय पर बलि नहीं दी जाती । संगी जनों के सहित भोजन खाने और जलपान के समय, कुल्ले के समय, ॥९०॥

उनका नर और नारियों में संक्रमण होता है । विरोधिनी के चोदक और ग्राहक औरप्रच्छादक जो तीन पुत्र हुए ॥९१॥

उनके स्वरूप को मुझसे सुनो । जहाँ पर मूसल या ओखली दीपक के तेल संसर्ग से दूषित होती है अथवा लाँघी जाती है ॥९२॥

और जहाँ मूसल और ओखली स्त्रियों की पादुका अथवा आसन होता है तथा जहाँ आसन, झाज और दरांती आदि पैरों से सरकायी जाती है । आसन के रूप में प्रयुक्त होती है ॥९३॥

तथा जिस घर में बिना लीपे, बिना पूजन किये, विहार किया जाता है तथा जहाँ करछी के अग्रभाग से अग्नि ग्रहण कर अन्य स्थान पर ले जायी जाती है ॥९४॥

उन स्थानों में विरोधिनी के पुत्र वृद्धि को प्राप्त करते हैं । तथा मनुष्यों को प्रेरित करते हैं (दुष्कर्मों के लिये) ॥९५॥

उनमें एक तो पुरुष और स्त्रियों की जिह्वा पर स्थित होकर उनमें मिथ्या और सत्य कहलाता है ।

वह चोदक नाम से कहा गया है और जो घरों में चुगली और नीच कर्म कराता है । अति दुष्ट बुद्धि वह मनुष्यों के कानों में स्थित होकर अथवा, ॥९६॥

वाक्यों को ग्रहण करता है वह ग्राहक है और जो दुर्मति तमाच्छादित मनुष्यों के मन पर आक्रमण कर तम से आच्छादित करके, ॥९७॥

उनमें क्रोध उत्पन्न करता है: वह तम प्रच्छादक हैं । स्वयंहारी ने चोरी से तीन पुत्र उत्पन्न किये ॥९८॥

सर्वहारी, अर्द्धहारी और वीर्यहारी । ये अपवित्र जहाँ आचार का पालन नहीं होता ऐसे घरों में, ॥९९॥

यहाँ पर मनुष्य बिना पैर धोए रसोईघर में प्रविष्ट हो जाते हैं, खलियानों में, गाय भैंसों के बाड़ों में और विद्रोह युक्त घरों में ॥१००॥

तेषु सर्वे यथान्यायं विहरन्ति रमन्ति च। भ्रमण्यास्तनयस्त्वेकः काकजंघ इति स्मृतः ॥१०१
तेनाविष्टो रतिं सर्वो नैव प्राप्नोति वै मुने । भुञ्जन् यो गायते मैत्रे गायते हसते च यः ॥१०२
संध्यामैथुनिनं चैव नरमाविशति द्विज । कन्या त्रयं प्रसूता सा या कन्या ऋतुहारिणी ॥१०३
एका कुचहरा कन्या अन्या व्यञ्जनहारिका। तृतीया तु समाख्याता कन्यका जातहारिणी ॥१०४
यस्या न क्रियते सर्वः सम्यग्वैवाहिको विधिः। कालातीतोऽथवा तस्या हरत्येका कुचद्वयम् ॥१०५
सम्यक् श्राद्धमदत्त्वा च तथानभ्यर्च्यमातृका। विवाहितायाः कन्याया हरति व्यञ्जनं तथा ॥१०६
अग्न्यम्बुशून्ये च तथा विधूपे सूतिकागृहे। अदीपशस्त्रमुसले भूति सर्षपवर्जिते ॥१०७
अनुप्रविश्य सा जातमपहृत्यात्मसम्भवम्। क्षणप्रसविनी बालं तत्रैवोत्सृजते द्विज ॥१०८
सा जातहारिणी नाम सुघोरा पिशिताशना। तस्मात् संरक्षणं कार्यं यत्नतः सूतिकागृहे ॥१०९
स्मृतिं चाप्रयतानां च शून्यागारनिषेवणात्। अपहन्ति सुतस्तस्याः प्रचण्डो नाम नामतः ॥११०
पौत्रेभ्यस्तस्य संभूता लीकाशतसहस्रशः। चण्डालयोनयश्चाष्टौ दण्डपाशातिभीषणाः ॥१११
क्षुधाविष्टास्ततो लीलास्ताश्च चण्डालयोनयः। अभ्यधावन्त चान्योन्यमत्तुकामाः परस्परम् ॥११२

वे सब उन घरों में इच्छानुसार विहार करते हैं और रमण करते हैं। भ्रामणी का काकजंघ नामक एक पुत्र हुआ ॥१०१॥

हे मुने ! उसके घर में प्रविष्ट होने पर कोई प्रसन्न नहीं होता। जो (मनुष्य) खाते हुए गाते हैं, मित्रों के साथ बातचीत करते अथवा हसते हैं ॥१०२॥

संध्याकाल में मैथुन करने वाले मनुष्यों पर भी काकजंघ आक्रमण करता है। हे द्विज ! ऋतुहारिणी ने जो तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं ॥१०३॥

उनमें एक कुचहरा, दूसरी व्यञ्जन हारिका और तीसरी कन्या जातहारिणी के नाम से प्रसिद्ध हुई ॥१०४॥

जिस (कन्या) का सम्यक् प्रकार की विधि से विवाह नहीं किया जाता अथवा शुभ मुहूर्त बीतने पर विवाह होता है, उस नारी के दोनों कुचों का उनमें से पहली (कुचहरा) हरण करती है ॥१०५॥

श्राद्ध आदि कार्यों का उचित अनुष्ठान करके तथा माता की पूजा के बिना, जो कन्या ब्याही जाती है (उस) विवाहित कन्या का व्यञ्जन हारिका हरण करती है ॥१०६॥

प्रसव गृह में अग्नि, जल, धूप, दीपक, शस्त्र, मूसल, भस्म, और सरसों के दानों से शून्य घरों में, हे द्विज ! वह जातहारिणी प्रवेश करके तथा अपने से उत्पन्न पुत्र का हरण कर और सद्योत्पन्न अपने पुत्र को वहीं छोड़ देती है (उस स्थान पर रख देती है) ॥१०७-१०८॥

इसलिए मांस-भक्षिणी, भयंकर, उस जातहारिणी से यत्नपूर्वक सूतिकागृह की रक्षा करनी चाहिए ॥१०९॥

उस (जातहारिणी) का प्रचण्ड नाम से प्रसिद्ध पुत्र, शून्य घर में रहने के कारण असंयत चित्त वाले मनुष्यों की स्मृति का हरण करता है ॥११०॥

उसके पौत्रों से सैंकड़ों हजार 'डायन' उत्पन्न हुईं तथा दण्ड और पाश को धारण करने वाली अत्यन्त भयंकर आठ चाण्डाल योनियाँ भी (उसी के वंश से उत्पन्न हुईं) ॥१११॥

भूख से व्याकुल हुई डायन और चाण्डाल योनि जब परस्पर एक दूसरे को खाने के लिए दौड़ीं ॥११२॥

प्रचण्डो वारयित्वा तु यास्ताश्चण्डालयोनयः । समये स्थापयामास यादृशे तादृशं श्रृणु ।।११३
अद्य प्रभृति लोकानामावासं यो हि दास्यति । दण्डं तस्याहमतुलं पातयिष्ये न संशयः ।।११४
चण्डालयोन्योऽवसथे लीका या प्रसविष्यति । तस्याश्च सन्ततिः पूर्वा सा च सद्यो न शिष्यति ।।११५
प्रसूते कन्यके द्वे तु स्त्रिपुंसोर्वीजहारिणी । वातरूपामरूपां च तस्याः प्रहरणं तु ते ।।११६
वातरूपा निषेकान्ते सा यस्मै क्षिपते सुतम् । स पुमान् वातशुक्रत्वं प्रयाति वनितापि वा ।।११७
तथैव गच्छतः सद्यो निर्बीजत्वमरूपया । अस्नाताशी नरो योऽसौ तथा चापि वियोगिनः ।।११८
विद्वेषिणी तु या कन्या भ्रुकुटीकुटिलानना । तस्या द्वौ तनयौ पुंसामपकारप्रकाशकौ ।।११९
निर्बीजत्वं नरो याति नारी वा शौचवर्जिता । पैशुन्याभिरतं लोलमसज्जलनिषेवणम् ।।१२०
पुरुषद्वेषिणं चैतौ नरमाक्रम्य तिष्टतः । मात्रा भ्रात्रा तथा मित्रैरभीष्टैः स्वजनैः परैः ।।१२१
विद्विष्टो नाशमायाति पुरुषो धर्मतोऽर्थतः । एकस्तु स्वगुणाँल्लोके प्रकाशयति पापकृत् ।।१२२
द्वितीयस्तु गुणान् मैत्रीं लोकस्थामपकर्षति । इत्येते दौः सहाः सर्वे यक्ष्मणः सन्ततावथ ।।
पापाचाराः समाख्याता यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ।।१२३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे दौः सहोत्पत्ति समापनं नामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।

तब प्रचण्ड ने उन चाण्डाल योनियों को रोककर जिस शर्त के साथ उनकी स्थापना की उसको सुनो ।।११३।।

जो (मनुष्य) आज से लेकर इन डायनों को आश्रय (निवास) देगा, उसे में महान् दण्ड दूँगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।।११४।।

चाण्डाल के घर में जो डायन संतान उत्पन्न करेगी, उसकी वह सन्तान पूर्व (कथित) शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगी ।।११५।।

तथा स्त्री और पुरुष दोनों के वीर्य का हरण करने वाली बीजहारिणी ने वातरूपा और अरूपा नामक दो कन्याओं को जन्म दिया ।।११६।।

उसमें वातरूपा निषेध काल में मैथुन करने पर जिसमें शुक्र को गिरा देती है । वह पुरुष अथवा स्त्री वात शुक्र रोग से पीड़ित हो जाता है ।।११७।।

उसी प्रकार जो मनुष्य बिना स्नान और भोजन किये (संभोग करता है) अथवा वियोनि में आसक्त होता है, वह शीघ्र ही अरूपा के द्वारा निर्वीर्य कर दिया जाता है ।।११८।।

कुटिल मुख एवं भृकुटि चढ़ाने वाली विद्वेषिणी नामक कन्या के मनुष्यों का अपकार करने वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए ।।११९।।

चुगली करने वाले, चञ्चल, अपवित्र, जल का सेवन करने वाले, शौच, (पवित्रता) रहित नर अथवा नारी वीर्य शून्यता को प्राप्त होते हैं । दुष्ट, जल सेवी, ये दोनों पुरुषों से द्वेष करने वाले, पुरुष पर आक्रमण करके स्थित रहते हैं । माता, भ्राता, अभीष्ट मित्र तथा स्वजनों के साथ जो पुरुष द्वेष करता है । ये दोनों उसके धर्म और अर्थ को नष्ट कर देते हैं । इस प्रकार एक दुराचारी पुत्र लोक में अपने गुणों को प्रकाशित करता है ।।१२०-१२२।।

और दूसरा लोगों के गुण और मैत्री का ह्रास करता है । इस प्रकार ये सब यक्ष्म दुःसह की सन्तति, पापाचारी कही गयी है । जिनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है ।।१२३।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में दौ सहोत्पत्ति समापन नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

इत्येष तामसः सर्गो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥१
तनवश्च तथैवाष्टौ पत्न्यः पुत्राश्च ते तथा । कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतः प्रभोः ॥२
प्रादुरासीदथाङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः । रुरोद सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विजसत्तम ॥३
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह । नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच जगत्पतिम् ॥४

ब्रह्मोवाच —

रुद्रस्त्वं देवनाम्नासिं मा रोदिर्धैर्य्यमावह । एवमुक्तस्ततः सोऽथ सप्त कृत्वो रुरोद ह ॥५
ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः। स्थानानि चैषामंष्टाना पत्नीः पुत्रांश्च वै द्विज ॥६
भवं शर्वं तथेशानं तथा पशुपतिं प्रभुः । भीममुग्रं महादेवमुवाच स पितामहः ॥७
चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार ह । सूर्य्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च ॥८
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् । सुवर्चला तथैवोमा विकेशी चापरास्वधा ॥९
स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहिणी च यथाक्रमम् । सूर्यादीनां द्विजश्रेष्ठ रुद्राद्यैर्नामभिः सह ॥१०

मार्कण्डेय बोले —

इस प्रकार अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की यह तामसी सृष्टि हुई। अब मैं तुमसे उनकी रुद्र सृष्टि को कहता हूँ, सुनो ॥१॥

उनके आठ पुत्र, पत्नी और अन्य समस्त पुत्र कल्प के आरम्भ में उनके आत्मतुल्य सुत का चिंतन करने के कारण उसी प्रकार के हुए ॥२॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! (उन आठों पुत्रों में) एक पुत्र नील लोहित तथा जो उनकी गोद में उच्च स्वर से रोने लगा, तब द्रवित होकर, ॥३॥

रोते हुए उससे ब्रह्माजी बोले 'क्यों रोते हो', तब उसने जगत् पति ब्रह्मा से कहा कि 'मुझे नाम प्रदान करो' ॥४॥

ब्रह्मा बोले —

हे देव ! तुम रुद्र नाम वाले हो, अब मत रोओ और धर्य धारण करो। (ब्रह्मा जी के) ऐसा कहने पर भी वह सात बार रोया ॥५॥

तब प्रभु ब्रह्माजी ने उसे अन्य सात नाम और दिये और हे द्विज ! इन आठों को (आठ) स्थान पत्नी और पुत्र प्रदान किये ॥६॥

पितामह ब्रह्माजी ने (उसे) रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव नाम दिये ॥७॥

ये आठ नाम प्रदान करने के बाद उन्होंने इनके स्थानों का निर्देश किया, सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, ॥८॥

दीक्षित—ब्राह्मण, सोम ये क्रमशः उनके शरीर थे। सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा, ॥९॥

स्वाहा, दिशा, दीक्षा, रोहिणी ये उनकी क्रमशः पत्नियाँ थीं। हे द्विजश्रेष्ठ ! रुद्रादि के नाम के साथ अब सूर्यादि के पुत्रों को (कहता हूँ, सुनो) ॥१०॥

शनैश्चारस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः।स्कन्दः सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात् सुताः ।।११
एवं प्रकारो रुद्रोऽसौ सतीं भार्यामविन्दत । दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वं कलेवरम् ।।१२
शम्भोरवज्ञा यत्रास्ते स्थातव्यं नैव सूरिभिः। एते च ब्राह्मणाः सर्वे ये द्विषंतो महेश्वरम् ।।१३
भवन्तु ते वेदबाह्याः पापोपहतचेतसः। पाखण्डाचारनिरताः सर्वे निरयगामिनः ।।१४
कलौ युगे तु सम्प्राप्ते दरिद्राः शूद्रजापकाः। हिमवद्दुहिता साऽभून्मेनायां द्विजसत्तम ।।
तस्या भ्राता तु मैनाकः सखाम्भोधेरनुत्तमः ।।१५
उपयेमे पुनश्चैनामनन्यां भगवान् भवः। देवौ धाता विधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत ।।१६
श्रियं च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या। आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः ।।१७
भार्ये धाता विधात्रोस्ते तयोर्जातौ सुतावुभौ। प्राणश्चैव मृकण्डुश्च पिता मम महायशाः १८
मनस्विन्यामहं तस्मात् पुत्रो वेदशिरा मम। धूम्रवत्यां समभवत् प्राणस्यापि निबोध मे ।।१९
प्राणस्य द्युतिमान् पुत्र उत्पन्नस्तस्य चात्मजः।अजराश्च तयोः पुत्राःपौत्राश्च बहवोऽभवन् ।।२०
पुत्री मरीचेः संभूतिः पौर्णमासमसूयत। विरजाः पर्वतश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः ।।२१

शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, संतान और बुध ये (आठ) क्रमशः (रुद्रादि) के पुत्र हैं ।।११।।

इस प्रकार उस रुद्र ने सती को भार्या के रूप में प्राप्त किया। पुनः दक्ष के क्रोध के कारण सती ने अपना शरीर त्याग दिया ।।१२।।

क्योंकि जहाँ शम्भु की अवज्ञा हो, वहाँ विद्वानों को नहीं रुकना चाहिए और ये सब ब्राह्मण जो महेश्वर से द्वेष करते हैं। वे सब पाप के कारण विनष्ट हुए चित्त वाले वेद से अधिकार बाह्य तथा पाखण्डी आचरणों में लगे हुए सब नरक गामी होंगे और कलियुग आने पर ये सब दरिद्र और शूद्रों का जप करने वाले होंगे (इस प्रकार शाप देकर) हे द्विजश्रेष्ठ! वह (सती) अगले जन्म में मेनका के गर्भ में हिमवान् की पुत्री हुई। समुद्र का उत्तम मित्र मैनाक उसका भाई था ।।१३-१५।।

भगवान् भव ने इस अन्य रूप वाली सती (पार्वती) से फिर विवाह किया। भृगु की पत्नी ख्याति के धाता और विधाता नामक दो देव पुत्र हुए ।।१६।।

और जो देवों के देव नारायण हैं, उनकी पत्नी लक्ष्मी हुईं तथा जो महात्मा मेरु की आयाति और नियति नाम की दो कन्याएँ थीं ।।१७।।

वे दोनों धाता और विधाता की पत्नी हुईं। उनके उन दोनों से दो पुत्र उत्पन्न हुए प्राण और महायशस्वी मेरे पिता मृकण्डु ।।१८।।

(उनकी पत्नी) मनस्विनी से मैं तथा मेरा वेदशिरा नामक पुत्र हुआ। प्राण की पत्नी धूम्रवती से जो पुत्र हुए, उन्हें भी मुझसे सुनो ।।१९।।

उस प्राण के (धूम्रवती से) द्युतिमान् और अजरा नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों के अनेक पुत्र और पौत्र हुए ।।२०।।

मरीचि की पत्नी सम्भूति ने पौर्ण मास को उत्पन्न किया उस (पौर्ण मास के) विरजा और पर्वत नामक दो महात्मा पुत्र हुए ।।२१।।

तयोः पुत्रांस्तु वक्ष्येऽहं वंशसंकीर्तने द्विज । स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूताः कन्याकास्तया ।।२२
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा । अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ।।२३
सोमं दुर्वाससंचैव दत्तात्रेयं च योगिनम् । प्रीत्यां पुलस्त्य भार्यायां दत्तोऽन्यस्तत् सुतोऽभवत् ।।२४
पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे । कर्दमश्चार्ववीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् ।।२५
क्षमा तु सुषुवे भार्या पुलहस्य प्रजापतेः । ऋतोस्तु सन्नतिर्भार्या बालखिल्यानसूयत ।। २६
षष्टिर्यानि सहस्राणि ऋषीणामूर्द्धरेतसाम् । ऊर्जयान्तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः ।।२७
रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्च सबलश्चानघस्तथा । सुतपाः शुक्ल इत्येते सर्वे सप्तर्षयः स्मृताः ।।२८
योऽसावग्निरभीमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः । तस्मात् स्वाहासुताँल्लेभे त्रीनुदारौजसो द्विज ।।२९
पावकं पवनं चैव शुचिं चापि जलाशिनम् । तेषां तु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च ।।३०
कथ्यन्ते बहुशश्चैते पितापुत्रत्रयं च यत् । एवमेकोनपञ्चाशद् दुर्जयाः परिकीर्तिताः ।।३१
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा ये व्याख्याता मया तव । अग्निष्वत्तार्बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ।।३२
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वैधारिणीं तथा । ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज ।।३३

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे रुद्र-र्गाभिधानो नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।

हे द्विज ! अब मैं उन दोनों के वंश-कीर्ति को कहूँगा अंगगिरा की पत्नी स्मृति ने, सिनिवाली, कुहू, राका और अनुमति नामक जो चार कन्यायें उत्पन्न कीं (उनमें) अनसूया ने उसी प्रकार अत्रि के सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक पाप रहित पुत्रों को उत्पन्न किया । पुलस्त्य की पत्नी प्रीति के दत्त नामक पुत्र हुआ ।।२२-२४।।

जो पूर्व जन्म में स्वायभुव मन्वन्तर में अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध था । प्रजापति पुलह की पत्नी क्षमा ने, कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया तथा ऋतु की पत्नी सन्नति ने बालखिल्यों को जन्म दिया । जो संख्या में साठ हजार थे एवं ऋषियों में उर्ध्वरेता थे ।

रजोगात्र, उर्ध्व, बाहू, सवक्ता, अनघ, सुतपा, शुक्ल, (ये) उर्जा से वसिष्ठ के सात पुत्र हुए, ये सभी सप्तर्षि कहलाए ।।२५–२८।।

हे द्विज ! ब्रह्मा जी के जो अभिमानी बड़ा पुत्र अग्नि था । (उसकी पत्नी) स्वाहा से उसके अत्यन्त प्रतापी और बलवान् तीन पुत्र हुए, ।।२९।।

पावक, पवन और शुचि, जो जल पीने वाले हैं । उनके, पैंतालीस अन्य पुत्र उत्पन्न हुए । ये प्रायः, ।।३०।।

पिता कहे जाते हैं । इस प्रकार से सब उनचास (अग्नि पौत्र) दुर्जय कहे गये हैं ।।३१।।

ब्रह्मा द्वारा निर्मित (उत्पन्न किये हुए) मैंने, तुमसे इनकी ही, पहले पितर नाम से व्याख्या की थी और जो अग्निष्वात्ता, वर्हिषद, अनग्नि, और साग्नि (पितर) हैं ।।३२।।

उन (पितरों) से स्वधा ने मेना और धारिणी नामक (दो कन्याएं) उत्पन्न कीं । हे द्विज ! वे दोनों कन्याएँ ब्रह्मवादिनी और योगिनी हुईं ।।३३।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में रुद्रसर्गाभिधान नामक उनचासवां अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच—

स्वायम्भुवं त्वया ख्यातमेतन्मन्वन्तरं च यत् । तदहं भगवन् सम्यक् श्रोतुमिच्छामि कथ्यताम् ॥१

मन्वन्तरप्रमाणं च देवादेवर्षयस्तथा । ये च क्षितीशा भगवन् देवेन्द्रश्चैव यस्तथा ॥२

मार्कण्डेय उवाच—

मन्वन्तराणां संख्याता साधिकाह्येकसप्ततिः । मानुषेण प्रमाणेन शृणु मन्वन्तरं च मे ॥३

त्रिंशत् कोट्यस्तु संख्याताः सहस्राणि च विंशतिः ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि च संख्यया ॥४

मन्वन्तरप्रमाणं च इत्येतत् साधिकं विना । अष्टौशतसहस्राणि दिव्यया संख्यया स्मृतम् ॥५

द्विपञ्चाशत् तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च । स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्तथा ॥६

औत्तमास्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा । षडेते मनवोऽतीतास्तथा वैवस्वतेऽधुना ॥७

सावर्णाः पञ्चरौच्याश्च भौत्याश्चागामिनस्त्वमी । एतेषां विस्तरं भूयो मन्वन्तरपरिग्रहे ॥८

वक्ष्ये देवानृषींश्चैव देवेन्द्राः पितरश्च ये । उत्पत्तिसंग्रहं ब्रह्मन् श्रूयतामस्य सन्ततिः ॥९

यच्च तेषामभूत् क्षेत्रं तत्पुत्राणां महात्मनाम् । मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दशपुत्रास्तु तत्समाः ॥१०

क्रौष्टुकि बोले—

हे भगवन् ! यह जो आपने स्वायंभुव मन्वन्तर का कथन किया उसे मैं सम्यक् प्रकार से सुनने का इच्छुक हूँ अतः आप विस्तार से कहिए ॥१॥

हे ब्रह्मन् ! मन्वन्तर का प्रमाण, देवता, देवर्षि, तथा जो राजा और देवेन्द्र (उसमें) हुए उनको विस्तार से कहिए ॥२॥

मार्कण्डेय बोले—

मन्वन्तरों की संख्या इकहत्तर से कुछ अधिक है । अब तुम इसे मानव प्रमाण से मुझसे सुनो ॥३॥

तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार मानवी वर्ष एक मन्वन्तर में व्यतीत होते हैं ॥४॥

यह मन्वन्तर प्रमाण आधिक्य रहित है । इस एक मन्वन्तर में दिव्य संख्या के अनुसार आठ सौ हजार वर्ष कहे गये हैं ॥५॥

तथा बावन हजार वर्ष एक मन्वन्तर में व्यतीत हो जाते हैं। प्रथम स्वायंभुव मनु हुए पुनः स्वारोचिष—॥६॥

औत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुस ये छः मनु व्यतीत हो चुके हैं तथा इस समय वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है ॥७॥

पाँच सावर्ण रौच्य और भौत्य ये मन्वन्तर भविष्य काल में होंगे। इन सब मन्वन्तरों के वर्णन को मैं तुमसे पुनः विस्तार से कहता हूँ ॥८॥

हे ब्रह्मन् ! (मन्वन्तरों में) जो देवता, ऋषि, देवेन्द्र, तथा पितर होते हैं, उनकी उत्पत्ति आदि का वर्णन सन्तान सहित सुनो ॥९॥

उन महात्माओं के पुत्रों का जो जो क्षेत्र (स्थान) हुए (वह भी कहता हूँ) स्वायंभुव मनु के उसी के समान दस पुत्र थे ॥१०॥

यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा स पर्वता । स समुद्राऽऽकरवती प्रतिवर्षं निवेशिता ॥११
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेता युगे तथा । प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य च ॥१२
प्रियव्रतात् प्रजावत्यां वीरात् कन्याव्यजायत । कन्या सतु महाभागा कर्द्दमस्य प्रजापतेः ॥१३
कन्ये द्वे दश पुत्रांश्च सम्राट कुक्षी च ते उभे । तयौर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापति समा दश ॥१४
आग्नीध्रो मेधातिथिश्च वपुष्मांश्च तथापरः ।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् भव्यः सवनः सप्त एव ते ॥१५
मेधाग्निबाहुमित्रास्तु त्रयो योगपरायणाः । जातिस्मरामहाभागा न राज्याय मनो दधुः ॥१६
प्रियव्रतोऽभ्यषिचत् तान् सप्तसप्तसु पार्थिवान् । द्वीपेषु तेन धर्मेण द्वीपांश्चैव निबोध मे ॥१७
जम्बुद्वीपे तथाग्नीध्रं राजानं कृतवान् पिता । प्लक्षद्वीपेश्वरुश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥१८
शाल्मलेस्तु वपुष्मन्तं ज्योतिष्मन्तं कुशाह्वये । क्रौंचद्वीपे द्युतिमन्तं भव्यं शाकाह्वयेश्वरम् ॥१९
पुष्कराधिपतिं चापि सवनं कृतवान् सुतम् । महावीतो धातकिश्च पुष्कराधिपतेः सुतौ ॥२०
द्विधा कृत्वा तयोर्वर्षं पुष्करे स न्यवेशयत् । भव्यस्य पुत्राः सप्तासन्नामतस्तान् निबोध मे ॥२१

जिनके द्वारा वर्षों तक यह सप्तद्वीपा पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, और खानों से युक्त बनायी गयी ॥११॥

पहले भी स्वायंभुव मन्वन्तर में कृतयुग तथा त्रेतायुग में, प्रियव्रत के पुत्रों अर्थात् स्वायंभुव के पौत्रों ने (भी ऐसा ही किया) ॥१२॥

महाभाग प्रजापति कर्दम की वीरा नामक पत्नी से प्रजावती नाम की सौभाग्यवती कन्या हुई, उससे प्रियव्रत के, ॥१३॥

दस पुत्र और दो कन्याएँ हुई । उन दोनों के नाम सम्राट् और कुक्षि थे । उन दोनों के दस भाई अत्यन्त शूरवीर और प्रजापति के समान थे ॥१४॥

अग्नीध्र, मेध तिथि, वपुमान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य, सातवाँ सवन, ॥१५॥

मेधाग्नि, बाहु और अग्निमित्र ये तीनों जातिस्मर थे । अतः इन महाभागों ने राज्य में मन नहीं लगाया, वरन् तीनों योग परायण हुए ॥१६॥

राजा प्रियव्रत ने शेष उन सात पुत्रों को सात द्वीपों का राजा नियुक्त किया । उन्होंने भी द्वीपों का धर्म पूर्वक पालन किया । अब मुझसे उन द्वीपों के सम्बन्ध में सुनो ॥१७॥

पिता (प्रियव्रत) ने जम्बू द्वीप में आग्नीध्र को राजा बनाया । प्लक्षद्वीप का राजा उसने मेधातिथि को नियुक्त किया ॥१८॥

शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान् को, कुशद्वीप में ज्योतिष्मान् को, क्रौंचद्वीप में द्युतिमान् को और शाकद्वीप का राजा भव्य को बनाया ॥१९॥

पुष्कर का अधिपति सवन नामक पुत्र को बनाया । पुष्कराधिपति के मेधावी और धातकी नाम के दो पुत्र हुए ॥२०॥

(पुष्कर द्वीप को सवन ने) दो भागों में विभाजित करके उन दोनों पर दोनों पुत्रों को नियुक्त किया । राजा भव्य के सात पुत्र हुए अब उनके नाम सुनो ॥२१॥

जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणिवकः । कुशोत्तरोऽथ मेधावी सप्तमस्तु महाद्रुमः ।।२२
तन्नामकानि वर्षाणि शाकद्वीपे चकार सः । तथा द्युतिमतः सप्तपुत्रारतांस्तु निबोध मे ।।२३
कुशलो मनुगश्चोष्णः प्राकारश्चार्थकारकः । मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तमः परिकीर्तितः ।।२४
तेषां स्वनामधेयानि क्रौंचद्वीपे तथाऽभवन् । ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे पुत्रनामाङ्कितानि वै ।।
(तत्रापि सप्तवर्षाणि तेषां नामानि मे शृणु) ।।२५
तस्यापि सप्तपुत्रास्तु ज्ञेयास्तेऽपि महौजसः । उद्भिदं वैणवं चैव सुरथं लम्बनं तथा ।।२६
धृतिमत्प्राकरं चैव कापिलं चापि सप्तमम् । वपुष्मतः सुताः सप्तशाल्मलेशस्य चाभवन् ।।२७
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा । वैद्युतो मानसश्चैव केतुमान् साप्तमस्तथा ।।२८
तथैव शाल्मले तेषां सम नामानि सप्त वै । सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै ।।२९
येषां नामाङ्कितैर्वर्षैः प्लक्षद्वीपस्तु सप्तधा । पूर्वं शाकभवं वर्षं शिशिरं तु सुखोदयम् ।।३०
आनन्दं च शिवं चैव क्षेमकं च ध्रुवं तथा । प्लक्षद्वीपादिभूतेषु शाकद्वीपान्तिमेषु वै ।।३१
ज्ञेयः पञ्चसुधर्मश्च वर्णाश्रमविभागजः । नित्यः स्वाभाविकश्चैव अहिंसा विधिवर्जितः ।।३२
(यानि किंपुरुषाद्यानि वर्जयित्वा हिमाह्वयम् । सुखमायुश्च रूपं च बलं धर्मश्च नित्यशः ।।)
पञ्चस्वेतेषु वर्षेषु सर्वसाधारणः स्मृतः । अग्नीध्राय पिता पूर्वं जम्बूद्वीपं ददौ द्विज ।।३३

जलद, कुमार, सुकुमार, मणीवक कुशोत्तर, मेधावी, और सातवाँ महाद्रुम था ।।२२।।

तब उस राजा (भव्य) ने शाक द्वीप के उन नामों के जितने भाग किये और उन सातों पुत्रों को दे दिये। वे सात भाग ही सप्त वर्ष कहलाकर इन्हीं के नाम से विख्यात हुए तथा राजा द्युतिमान् के सात पुत्र थे। उनको भी मुझसे सुनो ।।२३।।

(उसके) कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकार, अर्थकारक, मुनि और दुन्दुभि नामक सात पुत्र थे ।।२ ।।

उनके नामों के अनुसार ही क्रौंचद्वीप का विभाजन हुआ और ज्योतिष्मान् ने भी कुश द्वीप का पुत्रों के नामों के अनुसार ही विभाजन किया और उसके भी सात विभाग हुए, उनके नाम मुझसे सुनो ।।२५।।

उसके भी सात पुत्र जानने चाहियें और वे भी महान् बली उद्भिद्, वैणव, सुरथ, लम्बन, ।।२६।।

धृतिमान्, प्राकार और कापिल ये सात नाम हुए तथा शाल्मलि द्वीप के राजा वपुष्मान् के भी सात पुत्र हुए, ।।२७।।

श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, मानस, विद्युत मानस, और साँतवा केतुमान् हुआ ।।२८।।

उसी प्रकार शाल्मलि द्वीप के भी उनके नामों के बराबर भाग हुए। मेघातिथि प्लक्षद्वीप के राजा हुए। उन्होने भी प्लक्षद्वीप को सात भागों में विभक्त किया। इन्हीं सब के नाम से वर्ष प्रसिद्ध हुए, उनके नाम शाकभव शिशिर और सुखोदय, ।।२९-३०।।

आनन्द शिव, क्षेमक और ध्रुव तथा प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, तथा शाक इत्यादि ये नौ पाँच द्वीपों में वर्ष हुए ।।३१।।

इन पाँचों भागों में सदैव वर्णाश्रम धर्म बना रहता है। ऐसा जानना चाहिए तथा नित्य स्वभाव से ही उपहिंसा विधि वर्जित है ।।३२।।

हिमालय वर्ष को छोड़कर जो किम्पुरुपादि वर्ष हैं, उनमें सुख, आयु, रूप, बल एवं धर्म सदैव बना रहता है। हे द्विज ! इन पाँचों वर्षों में सम्पूर्ण धर्म साधारण रूप से विद्यमान है। आग्नीध्र को उसके पिता ने जम्बू द्वीप प्रदान किया था ।।३३।।

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमा नव । ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किंपुरुषोऽनुजः ॥३४
हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः । वश्यश्च पञ्चमः पुत्रो हिरण्यः षष्ठ उच्यते ॥३५
कुरुस्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वश्चाष्टमः स्मृतः । नवमः केतुमालश्च तन्नाम्ना वर्षसंस्थितिः ॥३६
यानि किंपुरुषाद्यानि वर्जयित्वा हिमाह्वयम् । तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥३७
विपर्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च । धर्माधर्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ॥३८
न वै चतुर्युगावस्था नाश्रमा ऋतवो न च । आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तु ऋषभोऽभूत् सुतौ द्विज ॥३९
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताद्वरः । सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राव्राज्यमास्थितः ॥४०
तपस्तेपे महाभागः पुलहाश्रमसंश्रयः । हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिता ददौ ॥४१
तस्मात्तु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः । भरतस्यान्वभूत् पुत्रः सुमतिर्नाम धार्मिकः ॥४२
तस्मिन् राज्यं समावेश्य भरतोऽपि वनं ययौ । एतेषां पुत्रपौत्रैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥४३

उसके प्रजापति के समान नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनमें बड़े का नाम नाभि और उससे छोटे का नाम किम्पुरुष था ॥३४॥

तीसरे का हरिवर्ष और चौथा इलावृत हुआ और पाँचवाँ वश्य तथा छटा पुत्र हिरण्य कहा जाता है ॥३५॥

उनमें सातवाँ कुरु और आठवाँ भद्राश्व कहा गया है तथा नवें का नाम केतुमाल हुआ । इन सबके नाम के अनुसार ही वर्षों की भी स्थिति हुई ॥३६॥

हिमालय वर्ष को छोड़कर जो किम्पुरुष आदि हैं उनको स्वभाव से बिना यत्न किये ही सुख प्राप्त होता है ॥३७॥

उनमें न तो विपर्यय है और न जरा तथा मृत्यु जनित भय ही है । एवं न ही उनमें धर्म, अधर्म है और न उत्तम, मध्यम और अधमादि विभाग ही ॥३८॥

तथा चारों युगों की विभिन्न अवस्था और ऋतु का विभाग भी नहीं होता । हे द्विज ! अग्नीध्र के पुत्र नाभि का ऋषभ नामक पुत्र हुआ । ३९॥

ऋषभ से सौ में श्रेष्ठ वीर पुत्र भरत उत्पन्न हुआ । ऋषभ ने अपने पुत्र (भरत, का राज्याभिषेक करके स्वयं सन्यासाश्रम को ग्रहण किया ॥४०॥

और इन महाभाग ने महर्षि पुलह के अश्रम में रहकर तपस्या करना प्रारम्भ किया । हिम नामक दक्षिण वर्ष को उसके पिता ने भरत को दिया ॥४१॥

इसलिए उन्हीं महात्मा भरत के नाम के अनुसार इसका नाम भारतवर्ष हुआ । राजा भरत का सुमति नामक धार्मिक पुत्र हुआ ॥४२॥

उसके ऊपर राज्य भार सौंपकर भरत ने भी वन को गमन किया । इस प्रकार (स्वायंभुव मनु) के इन पुत्र और पौत्रों ने सप्तद्वीपा वसुन्धरा का उपभोग किया ॥४३॥

प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तु भुक्ता स्वायम्भुवेऽन्तरे । एष स्वायम्भुवः सर्गः कथितस्ते द्विजोत्तम ॥४४
पूर्वमन्वन्तरे सम्यक् किमन्यत् कथयामि ते ॥४५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भवनकोशे स्वायंभुवमन्वन्तरकथनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

स्वायंभुव मन्वन्तर प्रियव्रत के पुत्रों ने इस पृथ्वी का उपभोग किया । हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने यह तुमसे पूर्व मन्वन्तर में स्वायंभुव मन्वन्तर का सम्यक् रूप से कथन किया । अब मैं तुम्हें क्या सुनाऊँ ? ॥४४–४५॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में भुवन कोश में स्वायंभुव मन्वन्तर कथन नामक पचासवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रोष्टुकिरुवाच—

कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति द्विज । कियन्ति चैव वर्षाणि तेषां नद्यश्च का मुने ॥१
महाभूतप्रमाणं च लोकालोकं तथैव च । पर्य्यासं परिमाणं च गतिं चन्द्रार्कयोरपि ॥२
एतत् प्रब्रूहि मे सर्वं विस्तरेणं महामुने ॥३

मार्कण्डेय उवाच—

शतार्द्धकोटिविस्तरा पृथिवी कृत्स्नशो द्विज । तस्याः संस्थानमखिलं कथयामि शृणुष्व तत् ॥४
ये ते द्वीपा मया प्रोक्ता जम्बुद्वीपादयो द्विज । पुष्करान्ता महाभाग शृण्वेषां विस्तरं पुनः ॥५
द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपो जम्बुः प्लक्षोऽथ शालमलिः ।
कुशः क्रौंचस्तथा शाकः पुष्करद्वीप एव च ॥६

क्रोष्टुकि बोले—

हे द्विज ! द्वीप समुद्र अथवा पर्वत कितनी संख्या वाले हैं । हे मुने ! कितने वर्ष और उनमें कितनी नदियाँ हैं ॥१॥

महाभूत और लोक तथा अलोकों का कितना प्रमाण है, सूर्य और चन्द्रमा के व्यास का परिमाण तथा गति कितनी है ॥२॥

हे महामुने ! यह सब मुझसे विस्तारपूर्वक कहिए ॥३॥

मार्कण्डेय बोले—

हे द्विज ! यह सम्पूर्ण पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तार वाली है । अब मैं उनके सब संस्थानों को कहता हूँ सुनो ॥४॥

हे द्विज ! जम्बु द्वीपादि पुष्कर पर्यन्त जो द्वीप मैंने तुमसे कहे, हे महाभाग ! इन सबको पुनः विस्तार पूर्वक सुनो ॥५॥

जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाल और पुष्कर द्वीप ये सब पूर्व-पूर्व से क्रमशः दुगने हैं ॥६॥

लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभिः । द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्धया सर्वतः परिवेष्टिताः ॥७
जम्बुद्वीपस्य संस्थान प्रवक्ष्येऽहं निबोध मे । लक्षमेकं योजनानां वृत्तो विस्तारदैर्ध्यतः ॥८
हिमवान् हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च । नीलः श्वेतस्तथा शृङ्गी सप्त तद्वर्षपर्वताः ॥९
द्विलक्षयोजनायामौ मध्ये तत्र महाचलौ । तयोर्दक्षिणतो यौ तु यौ तथोत्तरतो गिरी ॥१०
दशभिर्दशभिर्न्यूनैः सहस्रैस्ते परस्परम् । द्विसाहस्रोच्छ्रयाः सर्वे तावद्विस्तारिणश्च ते ॥११
समुद्रान्तः प्रविष्टाश्च षडस्मिन् वर्षपर्वताः। दक्षिणोत्तरतो निम्ना मध्ये तुङ्गा यथा क्षितिः ॥१२
वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणि त्रीणि वर्षाणि चोत्तरे । इलावृतं तयोर्मध्ये चन्द्रार्द्धाकारवत् स्थितम् ॥१३
ततः पूर्वेण भद्राश्वं केतुमालं च पश्चिमे । इलावृतस्य मध्ये तु मेरुः कनकपर्वतः ॥१४
चतुराशीतिसाहस्रस्तस्यौच्छ्रोया महागिरेः । प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तारः षोडशैव तु ॥१५
शरावसंस्थितत्वाच्च द्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः। शुक्लपोतोऽसितो रक्तः प्राच्यादिषु यथाक्रमम् ॥१६
विप्रो वैश्यस्तथा शूद्रः क्षत्रियश्च स्ववर्णतः । तस्योपरि तथैवाष्टौ पुर्यो दिक्षु यथाक्रमम् ॥१७

लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और जल समुद्र के द्वारा वह वृद्धिभाव से दुगना-दुगना चारों ओर परिवेष्टित है ॥७॥

अब मैं तुमसे जम्बू द्वीप की आकृति का परिमाप कहूँगा, सुनो । उसका विस्तार एक लाख योजन में चारों ओर फैला हुआ है ॥८॥

हिमवान्, हेमकूट, निषध, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत, और शृंगी ये सात उसके वर्ष पर्वत हैं ॥९॥

इसके मध्य में दो लाख योजन विस्तार वाले दो महागिरि उन दोनों की दक्षिण और उत्तर दिशा में दो-दो पर्वत स्थिति हैं ॥१०॥

वे सब परस्पर दस-दस हजार न्यून (कम से कम) संख्या से युक्त हैं । वे सब दो हजार योजन ऊँचे और उतने ही विस्तार वाले हैं ॥११॥

इसके अतिरिक्त समुद्र के अन्दर स्थित (प्रविष्ट) छः वर्ष पर्वत हैं । यह पृथ्वी आकाश के समान दक्षिण और उतर दिशा में नीची और मध्यस्थल में ऊँची है ॥१२॥

तीन वर्ष उत्तर में तथा तीन वर्ष दक्षिण में, तथा इन दोनों के बीच में इलावृत वर्ष अर्द्धचन्द्राकार के रूप में स्थित है ॥१३।

तथा उसके पूर्व में भद्राश्व तथा पश्चिम में केतुमाल है तथा इलावृत के मध्य में ही मेरु नाम का सोने का पर्वत है ॥१४॥

यह महागिरि चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है तथा सोलह हजार योजन पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट है । तथा वहाँ से सोलह हजार योजन विस्तार वाला है ॥१ ॥

इसकी सकोरे के समान चोटी बत्तीस हजार योजन चौड़ी है । यह गिरि पूर्व की दिशा में श्वेत और अन्य दिशाओं में क्रमशः (दक्षिण में) पीत (पश्चिम में) नीला, और (उत्तर में) लाल है ॥१६॥

उसके ऊपर तथा आठों दिशाओं में स्थित पुरों में अपने वर्ण के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं ॥१७॥

तस्योपरि सभादिव्याः पूर्वादिषु क्रमेण तु। इन्द्रादिलोकपालानां तन्मध्ये ब्रह्मणः सभा ।।
योजनानां सहस्राणि चतुर्दश समुच्छ्रिता ।।१८
अयुतोच्छ्रायास्तस्याधस्तथा विष्कम्भपर्वतः। प्राच्यादिषु क्रमेणैव मन्दरो गन्धमादनः ।।१९
विपुलश्च सुपार्श्वश्च केतुपादपशोभिताः। कदम्बो मन्दरे केतुर्जम्बु वैं गन्धमादने ।।२०
विपुले च तथाश्वत्थः सुपार्श्वे च वटो महान्। एकादशशतायामा योजनानामिमे नगाः ।।२१
जठरो देवकूटश्च पूर्वस्यां दिशि पर्वतौ। आनीलनिषधायातौ परस्परनिरन्तरौ ।।२२
निषधः पारियात्रश्च मेरोः पार्श्वे तु पश्चिमे। यथापूर्वौ तथा चैतावानीलनिषधायतौ ।।२३
कैलाशो हिमावांश्चैव दक्षिणेन महाचलौ। पूर्वतश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यदस्थितौ ।।२४
शृङ्गवान् जारुधिश्चैव तथैवोत्तरपर्वतौ। यथैव दक्षिणे तद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ।।२५
मर्यादापर्वता ह्येते कथ्यन्तेऽष्टौ द्विजोत्तम। हिमवद्धेमकूटादि पर्वतानां परस्परम् ।।२६
नवयोजनसाहस्रं प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम्। मेरोरिलावृते तद्वदन्तरं वैं चतुर्दिशम् ।।२७
फलानि यानि वै जम्ब्वा गन्धमादनपर्वते। गजदेहप्रमाणानि पतन्ति गिरिमूर्धनि ।।२८

उसके ऊपर पूर्वादि के क्रम से इन्द्र आदि लोकपालों की तथा मध्य में ब्रह्मा की चौदह हजार योजन क्षेत्र में फैली हुई दिव्य सभा स्थित है ।।१८।।

उसके नीचे दस हजार योजन तक पूर्व आदि के क्रम से मन्दार, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व आदि चार विष्कम्भ पर्वत हैं। (इनके ऊपर) केतु के समान (चार) वृक्ष सुशोभित हैं। मंदार, परकदम्ब, गंधमादन, परजम्बू (जामुन) ।।१९-२०।।

विपुल पर अश्वत्थ (पीपल) तथा सुपार्श्व के ऊपर विशाल वट वृक्ष हैं। ये पर्वत ११ (ग्यारह) सौ योजन प्रमाण वाले हैं ।।२१।।

पूर्व दिशा में जठर और देवकन्द दो पर्वत हैं। वे परस्पर नील और निषध पर्वत एक दूसरे से संश्लिष्ट हैं एवं ।।२२।।

मेरु के पश्चिम भाग में निषध और परियात्र हैं। ये दोनों भी पूर्व दिशा में नील और निषध पर्वतों तक फैले हुये हैं ।।२३।।

दक्षिण दिशा में कैलाश और हिमालय नामक विशाल पर्वत हैं। पूर्व और पश्चिम फैले हुये ये दोनों समुद्र में भी स्थित हैं ।।२४।।

तथा उत्तर दिशा में शृंगवान् और जारुधि हैं। दक्षिण दिशा के समान ये भी समुद्र पर्यन्त फैले हुये हैं ।।२५।।

हे द्विजोत्तम ! ये आठों पर्वत 'मर्यादा पर्वत' कहे जाते हैं। हिमालय और हेमकूट आदि चार पर्वतों का आपस में ।।२६।।

नौ हजार योजन विस्तार है तथा सुमेरु पर्वत की पूर्व और दक्षिण आदि चारों दिशाओं में। इलावृत के बीच में ये सब पर्वत हैं ।।२७।।

गन्धमादन पर्वत से हाथी के शरीर के समान विशाल (परिमाण वाले) जो जम्बू फल गन्धमादन पर्वत की चोटी पर गिरते हैं ।।२८।।

तेषां स्रावात् प्रभवति ख्याता जम्बूनदीति वै । यत्र जाम्बूनदं नाम कनकं सम्प्रजायते ॥२९
सा परिक्रम्य वै मेरुं जम्बूमूलं पुनर्नदी । विशति द्विजशार्दूल पीयमाना जनैश्च तैः ॥३०
भद्राश्वेऽश्वशिराविष्णुर्भारते कूर्मसंस्थितिः । वराहः केतुमाले च मत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥३१
तेषु नक्षत्रविन्यासाद् ऋषयः समवस्थिताः । चतुर्ष्वपि द्विजश्रेष्ठ ग्रहाभिभवपाठकाः ॥३२

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥

उनके स्राव (रस) से उत्पन्न होने वाली नदी जम्बू नदी के नाम से प्रसिद्ध है। जहाँ (नदी में) जाम्बूनद नामक स्वर्ण उत्पन्न होता है ॥२९॥

हे द्विज शार्दूल ! वह नदी सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करके पुनः उसी जामुन के वृक्ष के नीचे से होकर जाती है (बहती है।) वहाँ रहने वाले मनुष्य उसी का जलपान करते हैं ॥३०॥

भद्राश्व में अश्व के शिर वाले विष्णु भारत में कूर्म (रूप में, विष्णु और केतुमाल में वराह तथा उत्तर दिशा में मत्स्य रूप वाले नारायण स्थित है ॥३१॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! इन चारों पर्वतों में, नक्षत्रों के विन्यास से और ऋषि अवस्थित रहते हैं। ग्रहों का अच्छा बुरा फल भी होता है ॥३२॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में भुवनकोश में जम्बूद्वीप वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

शैलेषु मन्दराद्येषु चतुर्ष्वपि द्विजोत्तम । वनानि यानि चत्वारि सरांसि च निबोध मे ॥१
पूर्वे चैत्ररथं नाम दक्षिणे नन्दनं वनम् । वैभ्राजं पश्चिमे शैले सावित्रं चोत्तराचले ॥२
अरुणोदं सरः पूर्वे मानसं दक्षिणे तथा । शीतोदं पश्चिमे मेरोर्महाभद्रं तथोत्तरे ॥३
शीतार्तश्चक्रमुंजश्च कुलीनोऽश्वश्च कङ्कवान् । मणिशैलोऽथ वृषवान् महानीली भवाचलः ॥४
सुबिन्दुर्मन्दरो वेणुस्तामसो निषधस्तथा । देवशैलश्च पूर्वेण मन्दरस्य महाचलः ॥५

मार्कण्डेय बोले—

हे द्विजोत्तम ! मन्दराचल आदि चारों पर्वतों में जो चार वन एवं सरोवर हैं, उन्हें मुझसे सुनो—॥१॥

पूर्व दिशा के पर्वत में चैत्ररथ नाम का तथा दक्षिण दिशा के पर्वत में नन्दन नामक वन है। पश्चिम दिशा के पर्वत में वैभ्राज तथा उत्तर दिशा के पर्वत पर सावित्र नामक वन है ॥२॥

सुमेरु पर्वत की पूर्व दिशा में अरुणोद, दक्षिण में मानस, पश्चिम में शीतोद तथा उत्तर (दिशा) में महाभद्र नाम का (सरोवर) है ॥३॥

मन्दर नामक विशाल पर्वत की पूर्व दिशा में शीतार्त, चक्रमुंज, कुलीन, अश्व और कंकवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानीली, तथा भवाचल ॥४॥

सुबिन्दु, मन्दरवेणु, तामस, निषध और देवशैल (नामक पर्वत हैं) ॥५॥

त्रिकूटः शिखराद्रिश्च कलिङ्गोऽथ पतङ्गकः। रुचकः सानुमांश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथ विशाखवान् ॥६
श्वेतोदरः समूलश्च वसुधारश्च रत्नवान्। एकश्रृंगो महाशैलो राजशैलः पिपाठकः ॥७
पंचशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः। इत्येते दक्षिणे पार्श्वे मेरोः प्रोक्ता महाचलाः ॥८
सुरक्षः शिशिराक्षश्च वैदूर्यः पिङ्गलस्तथा। पिंजरोऽथ महाभद्रः सुरसः कपिलो मधु ॥६
अञ्जनः कुक्कुटः कृष्णः पाण्डुरश्चाचलोत्तमः। सहस्रशिखरश्चाद्रिः पारियात्रः स श्रृङ्गवान् ॥१०

पश्चिमेन तथा मेरोर्विष्कम्भात् पश्चिमाद् बहि।
ऐतेऽचलाः समाख्याताः श्रृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ॥११

शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसनाभस्तथाचलः। कपिलेन्द्रस्तथा शैलः सानुमान् नील एव च ॥१२
स्वर्णश्रृङ्गः शातश्रृङ्गः पुष्पको मेघपर्वतः। विरजाक्षौ वराहाद्रिर्मयूरो जारुधिस्तथा ॥१३
इत्येते कथिता ब्रह्मन् मेरोरुत्तरतो नगाः। एतेषां पर्वतानां तु द्रोण्योऽतीव मनोहराः ॥१४
वनैरमलपानीयैः सरोभिरूपशोभिताः। तासु पुण्यकृतां जन्म मनुष्याणां द्विजोत्तम ॥१५
एते भौमा द्विजश्रेष्ठ स्वर्गाः स्वर्गगुणाधिकाः। न तासु पुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ॥१६
पुण्योपभोग एवोक्तो देवानामपि तास्वपि। शीतान्ताद्येषु चैतेषु शैलेषु द्विजसत्तम ॥१७

तथा त्रिकूट, शिखर, कलिंग, पतंगक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान्, श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एकश्रृंग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक ॥६–७॥

पंचशैल, कैलास और पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय, ये सब महापर्वत सुमेरु पर्वत के दक्षिण भाग में कहे गये हैं ॥८॥

एवं सुरक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधुअंजन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्र शिखर, श्रृंगवान् और पारियात्र ॥६–१०॥

ये सब पर्वत मेरु और विष्कम्भ नामक पर्वत की पश्चिम दिशा से बाहर हैं। इस प्रकार मैंने तुमसे (पूर्व और पश्चिम दिशा के) पर्वतों को कहा और अब उत्तर के अन्य पर्वतों को सुनो ॥११॥

शंखकूट, वृषभ, हंसनाभ नामक पर्वत, कपिलेन्द्र पर्वत, सानुमान् तथा नील पर्वत, स्वर्ण श्रृंग, शात श्रृंग, पुष्पक एवं मेघ पर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि, मयूर तथा जारुधि, ॥१२–१३॥

हे ब्रह्मन्! ये सब सुमेरु पर्वत के उत्तर भाग के पर्वत कहे गये हैं। इन (सब) पर्वतों की कन्दरायें अत्यन्त मनोहर हैं ॥१४॥

(ये सभी पर्वत) वन और निर्मल जल से युक्त सरोवरों से अत्यधिक शोभायमान हैं। उनमें पुण्यवान् मनुष्यों का ही जन्म होता है ॥१५॥

हे द्विजश्रेष्ठ! स्वर्ण के गुणों से भी अधिक गुण युक्त ये सब स्थल भौम स्वर्ग हैं। उन स्थलों में अपूर्व पुण्यों तथा पापों का उपार्जन नहीं होता है ॥१६॥

हे द्विजोत्तम! शीतान्तादि इन पर्वतों में (निवासकर) उपभोग देवताओं के लिए भी पुण्योपभोग स्वरूप ही कहा गया है ॥१७॥

विद्याधराणां यक्षाणां किन्नरोरगरक्षसाम्। देवानां च महावासा गन्धर्वाणां च शोभनाः ॥१८
सभाः पुर्यो मनोज्ञाश्च सदैवोपवनैर्युताः । सरांसि च मनोज्ञानि सर्वर्तुसुखदोऽनिलः ॥१९
न चैतेषु क्लमो बाधा वैमनस्यं च कुत्रचित् । तद्वेतत् पार्थिवं पद्मं चतुष्पत्रं मयोदितम् ॥२०
भद्राश्वभारताद्यानि पत्राण्यस्य चतुर्दिशम् । भारतं नाम यद् वर्षं दक्षिणेन मयोदितम् ॥२१
तत्कर्मभूमिर्नान्यत्र संप्राप्तिः पुण्यपापयोः । एतत् प्रधानं विज्ञेयं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥२२
अस्मात् स्वर्गापवर्गौ च मानुष्यनारकावपि। तिर्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नरः प्राप्नोति वै द्विज ॥२३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भुवनकोशे जम्बूदीपान्तर्गत खण्डवर्णनं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

यहां पर विद्याधर, राक्षस, किन्नर, उरग यक्ष तथा देवता एवं गंधर्वों के विशाल निवास स्थल सुशोभित हैं ॥१८॥

पुण्य रूपा सदैव मनोहर उपवनों तथा मनहरण सरोवरों से युक्त अत्यन्त पुण्य रुपा इस भूमि में बहती हुई शीतल समीर सभी ॠतुओं में सुखदायिनी है ॥१९॥

इन सब स्थानों में कहीं भी मनुष्यों में न कोई कष्ट है, न बाधन है और न ही कहीं परस्पर वैमनस्य का भाव है । इसलिये मैंने इसे पृथ्वी का पद्म चतुष्पत्र कहा है ॥२०॥

भद्राश्व और भारत आदि इसकी चारों दिशाओं में चार पत्ते हैं और दक्षिण दिशा में स्थित एक वर्ष (देश) है जिसे मैंने भारतवर्ष कहा है ॥२१॥

वह कर्म भूमि है। अन्यत्र पाप पुण्यों की प्राप्ति नहीं है, इसीलिये इस (भारतवर्ष) को (पाप पुण्य) प्रधान कहा गया है, क्योंकि यहां पर सब कुछ प्रतिष्ठित है ॥२२॥

इस स्थान से मनुष्य स्वर्ग, अपवर्ग तथा नरक को भी प्राप्त कर सकता है । अथवा हे द्विज ! (यहां से) मनुष्य तिर्यकत्व अथवा अन्यान्य योनियों को प्राप्त कर सकता है ॥२३॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में भुवनकोश में जम्बूद्वीपांतर्गत खण्ड वर्णन नामक बावनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

धराधारं जगद्योनेः पदं नारायणस्य च । ततः प्रवृत्ता या देवी गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥१
सा प्रविश्य सुधा-योनिं सोममाधारमम्भसाम् । ततः संवर्धमानार्करश्मिसङ्गतिपावनी ॥२

मार्कण्डेय बोले —

जगद् योनि भगवान् नारायण का जो धराधार (ध्रुवाधार) पद है उससे जो त्रिपथगामिनी गंगा देवी निकली है ॥१॥

समस्त जल की आधार रूपिणी वह सुधा योनिचन्द्र मंडल में प्रवेश करके वहां की सूर्य की किरणों से संयुक्त होकर अत्यन्त पवित्र हो—॥२॥

पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्द्धा ततो ययौ । मेरुकूटतटा तेभ्यो निपतन्ती विवर्तिता ।।३
विकीर्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा । मन्दराद्येषु पादेषु प्रविभक्तोदका समम् ।।४
चतुर्ष्वपि पपाताम्बु विभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया । पूर्वा शीतेति विख्याता ययौ चैत्ररथं वनम् ।।५
तत् प्लावयित्वा च ययौ वरुणोदं सरोवरम् ।
शीतान्तं च गिरिं तस्मात् ततश्चान्यान्गिरीन् क्रमात् ।।६
गत्वा भुवं समासाद्य भद्राश्वे जलधिं गता । तथैवालकनन्दाख्या दक्षिणे गन्धमादने ।।७
मेरुपादवनं गत्वा नन्दनं देवनन्दनम् । मानसं च महावेगात् प्लावयित्वा सरोवरम् ।।८
आसाद्य शैलराजानं रम्यं त्रिशिखरं गता । तस्माच्च पर्वतान् सर्वान् दक्षिणे ये क्रमोदिताः ।।९
तान् प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् । दधार तत्र तां शम्भुर्न मुमोच वृषध्वजः ।।१०
भगीरथेनोपवासैः स्तुत्या चाराधितोविभुः । तत्र मुक्त्वा च शर्वेण सप्तधा दक्षिणोदधिम् ।।११
प्रविवेश त्रिधा प्राच्यां प्लावयन्ती महानदी । भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेन दक्षिणाम् ।।१२

सुमेरु पर्वत के ऊपर गिरी है । तब वहां से मेरुकूट के प्रान्त भागों से गिरती हुई, विवर्तित होकर आगे चार भागों में चली है ।।३।।

इस प्रकार बिखरते हुये (विस्तृत) जल वाली आलम्ब रहित वह (गंगा) मंदरादि पर्वत (वहां स्थित) वृक्षों में विभाजित होकर समान गति से गिरीं ।।४।।

उन चारों का जल पर्वत की विशाल शिलाओं को (विदीर्ण करता) हुआ गिरा । उनमें जो पूर्व में चैत्ररथ वन की ओर गयी । वह शीता इस नाम से प्रशिद्ध हुई ।।५।।

वह (शीता नामक गंगा) वरुणोदक सरोवर को आप्लावित करती हुई गयी । वहां से शीतान्त पर्वत तथा वहां से क्रम से अन्य पर्वतों का अतिक्रम करके, ।।६।।

पृथ्वी पर पहुँचकर भद्राश्व वर्ष को प्राप्त करके समुद्र में गयी । उसी प्रकार दक्षिण की ओर गंधमादन पर्वत में पतित हुई धारा अलकनन्दा नाम से प्रसिद्ध हुई ।।७।।

(फिर वह) सुमेरु पर्वत के पाद में स्थित देवताओं को प्रसन्न करने वाले नन्दन वन में जाकर फिर वेगपूर्वक मानसरोवर को प्लावित करके ।।८।।

रमणीय तीन शिखरों वाले पर्वत राज को प्राप्त करके, पुनः उस पर्वत से दक्षिण में स्थित सभी पर्वतों का अतिक्रमण करती हुई ।।९।।

उन सबको आप्लावित करके महागिरि हिमालय में आयी है । तब वहां उसे वृषभध्वज महाशिव ने धारण किया फिर उन्होंने उसे नहीं छोड़ा ।।१०।।

तदनन्तर जब महाराज भगीरथ ने उनकी उपवास और स्तुतियों के द्वारा आराधना की, तब शिव के द्वारा छोड़ी हुई (वह गंगा) सात भागों में विभक्त होकर दक्षिण समुद्र में ।।११।।

प्रविष्ट हुई (वहाँ) इसके तीन भाग हो गये । उन भागों से पूर्व दिशा में बहने वाली महानदी को आप्लावित किया तथा एक स्रोत से भगीरथ के रथ का अनुगमन करती हुई दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट हुई ।।१२।।

तथैव पश्चिमे पादे विपुले सा महानदी । सुचक्षुरिति विख्याता वैभ्राजं सा वनं ययौ ।।१३

शीतोदं च सरस्तस्मात् प्लावयन्ती महानदी। तस्मात् क्रमेण चाद्रीणां शिखरेषु निपत्य सा ।।

सुचक्षुः पर्वतं प्राप्ता ततश्च त्रिशिखं गता ।।१४

केतुमालं समासाद्य प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ।।१५

(गत्वोत्तरां दिशं गङ्गा दिव्या सा च महानदी। तस्माच्च ऋषभादींश्च क्रमादुत्तरजान्नगान् ।।

सुपार्श्वं तु तथैवाद्रि मेरुपादं हि सा गता । भद्रसोमेति विख्याता सा ययौ सवितुर्वनम् ।।१६

तत्पावयन्ती संप्राप्ता महाभद्रं सरोवरम् । ततश्च शङ्खकूटं सा प्रयाता वै महानदी ।।१७

तस्माच्च वृषभादीन् सा क्रमात् प्राप्य शिलोच्चयान् ।

महार्णवमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान् कुरून् ।।१८

एवमेषा मया गङ्गा कथिता ते द्विजर्षभ । जम्बूद्वीपनिवेशश्च वर्षाणि च यथातथम् ।।१९

वसन्ति तेषु सर्वेषु प्रजाः किंपुरुषादिषु । सुखप्राया निरातङ्कन्यूनतोत्कर्षवर्जिताः ।।२०

नवस्वपि च वर्षेषु सप्त सप्तकुलाचलाः । एकैकस्मिस्तथा देशे नद्यश्चाद्रि-विनिःसृताः ।।२१

यानि किंपुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ द्विजोत्तम ।

तेषूद्भिज्जानि तोयानि नैवं वार्यत्र भारते ।।२२ (मेघवार्यत्र भारते)

उसी प्रकार विस्तृत पश्चिम पाद में जो महानदी निकली है। वह 'सुचक्षु' इस नाम से प्रसिद्ध हुई। (वहां से) वह वैभ्राजवन को गयी ।।१३।।

वहां से वह महानदी शीतोदक सरोवर को प्लावित करती हुई फिर वहां से वह विविध पर्वतों के शिखरों पर गिरकर सुचक्षु नामक पर्वत पर आयी और उसके बाद शिखर नामक पर्वत पर गयी ।।१४।।

पुनः केतुमाल को प्राप्त करके दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट हुई ।।१५।।

(तत्पश्चात्) यह महादिव्य गंगा उत्तर दिशा में जाकर पुनः वहां से ऋषभ आदि उत्तर दिशा के पर्वतों को प्राप्त हुई ।। ६।।

पुनः वहां सुपार्श्व और सुमेरु पर्वत के पैरों से होती हुई सवितावन में गयी जहां वह भद्र सोमा नाम से प्रसिद्ध हुई।

उसे पवित्र करती हुई वह महाभद्र सरोवर पर पहुँची। उसके बाद वह महानदी शंखकूट पर्वत पर गयी वहां से वह विशाल शिलाओं वाले वृषभादि पर्वतों को क्रम से प्राप्त कर, उत्तर कुरु प्रदेश को प्लावित करती हुई महासमुद्र में गिरी (जा मिली) ।।१७-१८।।

हे द्विजवर ! इस प्रकार मैंने तुमसे गंगा के विषय का वर्णन किया । इस जम्बू द्वीप के निवेश (परिवेश) में जिन— ।।१९।।

किंपुरुष आदि उन सब में जो प्रजाएँ रहती हैं, वे सब प्रायः सुखी निरातंक एवं न्यूनता और अधिकता रहित हैं ।।२०।।

सभी नौ वर्षों में क्रमशः सात-सात कुलाचल (पर्वतों के कुल) हैं । उनके प्रत्येक प्रदेश में पर्वतों से निकली हुई नदियां विद्यमान हैं।।२१।।

हे द्विजोत्तम ! जो किंपुरुषादि आठ वर्ष हैं, उनमें जल उद्भिद मात्र हैं, क्योंकि इस भारत वर्ष में मेघ के जल की अधिकता है ।।२२।।

वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी तथा। कर्मजा च नृणां सिद्धिर्वर्षेष्वेतेषु चाष्टसु ।।२३

कामप्रदेभ्यो वृक्षेभ्यो वार्क्षी सिद्धिः स्वभावजा।
स्वाभाविकी समाख्याता तृप्तिर्देश्या च दैशिकी ।।२४
अपां सौक्ष्म्याच्च तोयोत्थाद्ध्यानोपेताच्च मानसी।
उपासनादिकार्यात्तु कर्मजा साप्युदाहृता ।।२५

न चैतेषुयुगावस्था नाधयो व्याधयो न च। पुण्यापुण्यसमारम्भा नैव तेषु द्विजोत्तम ।।२६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे गङ्गावतरणवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

और इन आठ वर्षों में वार्क्षी, स्वाभाविकी, देश्या, तोयोत्था, मानसी और कर्मजा ये छः प्रकार की मानसी सिद्धि हैं ।।२३।।

जिन कामना पूर्ण करने वाले वृक्षों से वार्क्षी नाम की सिद्धि स्वभावतः उत्पन्न होती है। वह स्वाभाविकी कही गयी है। दैशिकी तृप्ती देने वाली देश्या कही गयी है ।।२४।।

तथा जल की सूक्ष्मतावश जो सिद्धि होती है वह तोयोत्था तथा ध्यान के द्वारा मानसी सिद्धि प्राप्ति होती है। उपासनादि कार्यों से होने वाली सिद्धि कर्मजा कहलाती है ।।२५।।

हे द्विजोत्तम ! इन युगों में आधी, ब्याधि, युगभेद और पाप पुण्य कुछ नहीं होता है ।।२६।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में गङ्गावतरण वर्णनं नामक तिरेपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच —

भगवन् कथितं त्वेतज्जम्बूद्वीपं समासतः। यदेतद् भवता प्रोक्तं कर्मनान्यत्र पुण्यदम् ।।१
पापाय वा महाभाग वर्जयित्वा तु भारतम्। इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ।।२
न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते। तस्माद्विस्तरशो ब्रह्मन् ममैतद्भारतं वद ।।३
ये चास्य भेदा यावन्तो यथावत् स्थितिरेव च। वर्षोऽयं द्विजशार्दूल ये चास्मिन् देशपर्वताः ।।४

क्रौष्टुकि बोले—

हे भगवन् ! आपने जम्बू द्वीप का यह वर्णन संक्षेप में कहा (हे महाभाग) आपने जो कहा कि भारत-वर्ष के अतिरिक्त अन्य कहीं पाप पुण्य के लिये कर्म नहीं किया जाता। इसी स्थान से स्वर्ग, मोक्ष, मध्य, अन्त आदि सभी दशाओं को जाया जाता है ।।१-२।।

कहीं अन्यत्र भूमि पर मनुष्यों का कर्मानुष्ठान नहीं होता। इसलिये हे ब्रह्मन् ! आप इस भारतवर्ष के सम्बन्ध में मुझे विस्तार से बताइये ।।३।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! जो इसके विभाग हैं तथा जितनी उनकी संख्या है तथा जैसी स्थिति है। और इस भारत वर्ष में जितने देश और पर्वत हैं, (उन सबका विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये) ।।४।।

मार्कण्डेय उवाच—

भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोध मे । समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥५
इन्द्रद्वीपः कशेरूमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् । नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वो वारुणस्तथा ॥६
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः । योजनानां सहस्रं वै द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥७
पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तः स्थिता द्विज ॥८
इज्याध्यायवणिज्याद्यैः कर्मभिः कृत-पावनाः । तेषां संव्यवहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते ॥९
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापं च वै तदा । महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥१०
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैवात्र कुलाचलाः । तेषां सहस्रशश्चान्ये भूधरा ये समीपगाः ॥११
विस्तारोच्छ्रयिणो रम्या विपुलाश्चित्रसानवः । कोलाहलः सवैभ्राजो मन्दारो दर्दुराचलाः ॥१२
वातस्वनो वैद्युतश्च मैनाकः स्वसरस्तथा । तुंगप्रस्थो नागगिरी रोचनः पाण्डुराचलाः ॥१३
पुष्पोगिरिर्दुर्जयन्तो रैवतोऽर्बुद एव च । ऋष्यमूकः सगोमन्तः कूटशैलः कृतस्मरः ॥१४
श्रीपर्वतश्चकोरश्च शतशोऽन्ये च पर्वताः । तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाश्चार्याश्च भागशः ॥१५
तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठायास्ताः सम्यङ् निबोध मे । गङ्गा सरस्वती सिन्धुश्चन्द्रभागा तथापरा ॥१६

मार्कण्डेय बोले—

इस भारतवर्ष के नौ भेद हैं तुम उन सबको मुझसे सुनो। वे सब समुद्र के द्वारा छोटे हुये और परस्पर अगम्य हैं ॥५॥

इन्दुद्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गांधर्व, तथा वारुण ॥६॥

और यह सागर से आवृत नवाँ द्वीप भारतवर्ष है। यह द्वीप दक्षिण और उत्तर दिशा में एक सहस्र योजन तक फैला हुआ है ॥७॥

जिसके पूर्व में किरात और पश्चिम में यवन लोग (निवास करते हैं) और हे द्विज ! इसके मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं ॥८॥

जो यज्ञ, अध्ययन, अध्यापन, वाणिज्य आदि कर्मों के द्वारा पवित्र होते हैं। उनका व्यवहार इन्हीं कर्मों के द्वारा सम्पन्न होता है ॥९॥

स्वर्ग, अपवर्ग (मोक्ष) तथा पाप पुण्यों की प्राप्ति इन्हीं कर्मों से होती है। महेन्द्र, मलय, सह्य शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य और परिपात्र नामक सात कुल पर्वत इसी भारतवर्ष में वर्तमान हैं। इनके समीप में अन्य भी सहस्रों पर्वत हैं ॥१०–११॥

उनमें कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुर, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुंगप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुर, पुष्प, दुर्जयन्त, रैवतक, अब्बुर्द, ऋष्यमूक, गोमन्ता, कूटशैल, कृतस्मर, श्री पर्वत और कीर पर्वत अत्यन्त ऊंचे विस्तृत, रमणीय विस्तार युक्त तथा चित्र विचित्र चोटियों वाले अन्य भी सैकड़ों पर्वत हैं। इन सब पर्वतों से मिले हुये जनपद आर्य और म्लेच्छ इन दो भागों में विभक्त हैं ॥१२–१५॥

उन (मनुष्यों) के द्वारा जिन श्रेष्ठ सरिताओं का जल पिया जाता है, उन (सरिताओं) को मुझसे सुनो। गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, ॥१६॥

यमुना च शतद्रुश्च वितस्ते रावती कुहूः। गोमती धूतपापा च बहुदा च दृषद्वती ॥१७
विपाशा देविका रंक्षुर्निश्चीरा गण्डकी तथा। कौशिकी चापगा विप्र हिमवत् पादनिःसृताः ॥१८
वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च। वेणा सानन्दना चैव सदा नीरा मही तथा ॥१९
पारा चर्मण्वती, नूपी विदिशा वेत्रवत्यपि। क्षिप्रा ह्यवन्ती च तथा परियात्राश्रयाः स्मृताः ॥२०
शोणोमहानदश्चैव नर्मदासुरथाऽद्रि जा। मन्दाकिनोदशार्णा च चित्रकूटा तथापरा ॥२१
चित्रोत्पला सतमसा करमोदा पिशाचिका। तथान्या पिप्पलश्रोणिर्विपाशा वञ्जुला नदी ॥२२
सुमेरुजा शुक्तिमती सकुली त्रिदिवा क्रमुः। ऋक्षपादप्रसूता वै तथान्या वेगवाहिनी ॥२३
क्षिप्रा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी च निषधावती। वेण्या वैतरणी चैव सिनीवाली कुमुद्वती ॥२४
करतोया महागौरी दुर्गा चान्तः शिवा तथा। विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥२५
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेण्या तथापरा। तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापगा ॥२६
सह्यपादविनिष्क्रान्ता इत्येताः सरिदुत्तमाः। कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा सूत्पलावती ॥२७
मलयाद्रिसमुद्भूता नद्यः शीतजलास्त्विमाः। पितृसोमर्षिकुल्या च इक्षुका त्रिदिवा च या ॥२८
लाङ्गूलिनी वंशकरा महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः। ऋषिकुल्या कुमारी च मंदगा मन्दवाहिनी ॥२९

यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती कुहू, पापों को धोने वाली गोमती, बहुत पुण्य देने वाली (बहुदा) दृषद्वती ॥१७॥

विपाशा, देविका, रक्षु, निश्चीरा, गण्डकी, कौशिकी आदि। हे विप्र! ये सब नदियाँ हिमालय पर्वत के चरणों से निकलती हैं ॥१८॥

तथा वेद स्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु वेणा, सान्दनी, सदानीरा, मही, ॥१९॥

पारा, चर्मण्वती, नूपी, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा, अवर्णी, तथा ये सब पारियात्र- पर्वत से निकली हुई हैं ॥२०॥

शोण, महानद, नर्मदा ये सुरथाद्रि से निकली हुई हैं। मंदाकिनी और दशार्णनदी चित्रकूट पर्वत से निकली हैं ॥२१॥

चित्रोत्पला, तमसा, करमोद, पिशाचिका, पिटपल श्रेणी, विपाशा, वंजुला, सुमेरुजा, शुक्तिमती, सकुली, त्रिदिवा, क्रमु,

तथा अन्य वेग पूर्वक बहने वाली नदियां ऋक्षपाद नामक पर्वत से निकली हुई हैं ॥२२-२३॥

क्षिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेण्या वैतरणी सिनीवाली कुमुद्वती, करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्त शिवा—आदि पुण्य जलों वाली शुभ नदियां विंध्यपाद से निकली हैं ॥२४-२५।

गोदावरी, भगीरथी, कृष्णा, वेण्या, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या तथा कावेरी ये श्रेष्ठ नदियाँ भी सह्य पर्वत के चरणों से ही निकली हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्पजा तथा उत्पलावती ये नदियाँ शीतजल मलय नामक पर्वत से निकली हैं ॥२६-२७॥

पितृकुल्या, सोम कुल्या, और ऋषि कुल्या, इक्षुका और त्रिदिवा— ॥२८॥

लांगूलिनी, वंशकरा ये सब नदियां महेन्द्र पर्वत से निकली हुई मानी गयी हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा और मंदवाहिनी ॥२९॥

कुशा पलाशिनी चैव शुचिमत्प्रभवाः स्मृताः। सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा-गङ्गाः समुद्रगाः ॥३०
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः स्मृताः। अन्याः सहस्रश्चोक्ताः क्षुद्रनद्यो द्विजोत्तम ॥३१
प्रावृट्कालवहाः काश्चित् सर्वकालवहाश्च याः।
मत्स्याश्वकूटाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिकोशलाः ॥३२
अर्बुदाश्चार्कलिगाश्च मलकाश्च वृकैः सह। मध्यदेश्याजनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ॥३३
सह्यस्य चोत्तरे यास्तु यत्र गोदावरी नदी। पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥३४
गोवर्द्धनपुरं रम्यं भार्गवस्य महात्मनः। बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ॥३५
अपरान्ताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखाण्डिकाः। गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥३६
शतद्रुजाः कलिङ्गाश्च पारदा हारभूषिकाः। माठरा बहुभद्राश्च कैकेया दशमालिकाः ॥३७
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्य शूद्रकुलानि च। काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा अंग लौकिकाः ॥३८
चीनाश्चैव तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः। आत्रेयाश्च भरद्वाजाः पुष्कलाश्च कशेरुकाः ॥३९
लम्पाकाः शूलकाराश्च चुलिकाजागुडैः सह। औषधाश्चानिभद्राश्च किरातानां च जातयः ॥४०
तामसा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तुमणास्तथा। शूलिकाः कुहकाश्चैव ऊर्णादार्वास्तथैव च ॥४१

कुशा तथा पलाशिनी से सब शुचिमान् पर्वत से निकली हुई पुण्य जलों वाली ये सभी नदियाँ अन्ततः समुद्र की ओर गयी हैं ॥३०॥

सब पापों को हरने वाली ये सब नदियाँ विश्व की माता कही गयी हैं। हे द्विजोत्तम! अन्य भी सहस्रों छोटी-छोटी नदियाँ कही गयी हैं ॥३१॥

इनमें कुछ वर्षा काल में बहने वाली हैं और कुछ सभी कालों में बहने वाली हैं। मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोशल, ॥३२॥

अर्बुद, कलिंग, मलक और वृक ये सभी जनपद प्रायः मध्य देश भाग के कहे गये हैं ॥३३॥

सह्यपर्वत की उत्तर दिशा में जिस स्थान पर गोदावरी नदी बहती है, सम्पूर्ण पृथ्वी पर वह प्रदेश अत्यधिक सुन्दर है ॥३४॥

महात्मा भार्गव का गोवर्द्धन नामक रमणीय नगर है, बाह्लीक, वाटधान, आभीर तथा कालतोदक, ॥३५॥

ये सब अपरान्त देश हैं। शूद्रपल्लव, चर्मखाण्डिक, गांधार, यवनसिंधु, सौवीर मद्रक—॥३६॥

शतद्रुज, कलित्र, पारद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, कैकेय, दशमालिक इत्यादि ॥३७॥

सभी उपनिवेश हैं। उनमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का कुल निवास करते हैं। काम्बोज, दरद, बर्बर, अंगलौकिक ॥३८॥

चीन, खार, तुषार, पह्लव, इन सब प्रदेशों में उत्पन्न हुये मनुष्यों को बहिर्देशज कहा गया है। आत्रेय, भारद्वाज, पुष्कल, कशेरुक ॥३९॥

लम्पाक, शूलकार, चुलिक, जागुड, औषध, और अनिभद्र इत्यादि किरातों की ही (विविध) जातियां हैं ॥४०॥

तामस हंसमार्ग, काश्मीर, तुमण, शूलिक, कुहक, ऊर्ण, दार्व आदि ॥४१॥

एते देशा ह्युदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान् निबोध मे ।
अभ्रारका मुद्गरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः ॥४२
तथा प्लवङ्गारङ्गे या मालदा मलवर्त्तिकाः । ब्राह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा गेयमल्लकाः ॥४३
प्राग्ज्योतिषाश्च भद्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
मल्ला मगधगोमेदाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः ॥४४
अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः । पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुन्त्यास्तथैव च ॥४५
शैलूषा मूषिकाश्चैव कुमारा वना वासकाः । महाराष्ट्रा माहिषिका कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥४६
आभीराः सह वैशिक्या आटव्याः शबराश्च ये । पुलिन्दा विन्ध्यमालेया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥४७
पौरिका मौलिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धना । नैषिका कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा वनदारकाः ॥४८
दक्षिणात्यास्त्वमी देशा अपरांस्तान्निबोध मे । सूर्यारकाः कालिबला दुर्गाश्चामीकटैः सह ॥४९
पुलिन्दाश्च सुमीनाश्च रूपपाः स्वापदैः सह । तथा कुरुमिनश्चैव सर्वे चैव कठाक्षराः ॥५०
(कारस्करा लोहजंघा वा जेया राजभद्रकाः ।) तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा विदिशस्तथा ॥
(तुषारास्तुंबुराश्चैव सर्वे चैव करस्कराः । नासिक्यावाश्च ये चान्ये ये चैवोत्तरनर्मदाः ॥५१
भीरुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैरपि । काश्मीराश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चार्बुदैः सह ॥५२
इत्येते ह्यपरान्ताश्च शृणु विन्ध्यनिवासिनः । सरजाश्च करुषाश्च केरलाश्चोत्कलैः सह ॥५३
उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोज्याः किष्किन्धकैः सह । तुम्बरास्तुम्बलाश्चैव पटवीनैषधैः सह ॥५४

ये सब देश उत्तरीय हैं। अब मुझसे पूर्व के देशों को सुनो—अभ्रारक, मुद्गरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्लवंग, अंगेय, मालद, मलवर्तिक, उत्तर ब्रह्म, प्रविजय भार्गवगेय, मल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध और गोमेध आदि ये सभी जनपद पूर्वीय भाग के हैं ॥४२-४४॥

इसके बाद दक्षिण दिशा में स्थित जनपदों का (वर्णन करता हूँ) पाण्ड्य, केरल, चोल, कुन्त्य, शैलूष, मूषिक, कुमार, वना वासस, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग, ॥४५-४६॥

आभीर, वैशिक, और आरव्य, शवर, पुलिन्द विन्ध्यमालेय, वैदर्भ, दण्डक, पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैषिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिर और वनदारक ॥४७-४८॥

ये सभी देश दाक्षिणात्य हैं। अब मुझसे इन दूसरे देशों को भी सुनो। सूर्यारक कालिवल, दुर्ग आमी कट, ॥४९॥

पुलिद, सुमीन, रूपप स्वापद सहित कुरुमिन् आदि सभी (देश) कठाक्षर कहलाते हैं ॥५०॥

(कास्कर, लोह जंघा वाले जेय राजभद्र) तोसल, कोसल त्रिपुर और विदिशा (तुषार और तुम्बुर ये सब कास्कर हैं और जो नर्मदा के उत्तर में हैं तब नासिक्याव कहे गये हैं ॥५१॥

वे भीरुकच्छ, माहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, आवन्त और अर्बुद, सहित ये समस्त देश अपरान्त (पाश्चात्य) कहे जाते हैं ॥५२॥

अब विन्ध्य निवासियों को सुनो। सरज, करुष, केरल, उत्कल, ॥५३॥

उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य तथा किष्किन्धा सहित तुम्बर तुम्बुल, पटवी नैषध, ॥५४॥

अन्नजास्तुष्टिकाराश्च वीरहोत्रा ह्यवन्तयः। एते जनपदाः सर्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥५५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये। नीहारा हंसमार्गाश्च कुरवो गुर्गणाः खसाः ॥५६
कुन्तप्रावरणाश्चैव ऊर्णा दार्वाः सकृत्रकाः। त्रिगर्त्ता गालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥५७
कृतत्रेतादिकश्चात्र चतुर्युगकृतां विधिः। एतत्तु भारतं वर्षं चतुः संस्थानसंस्थितम् ॥५८
दक्षिणापरतो ह्यस्य पूर्वेण च महोदधिः। हिमवानुत्तरेणास्य कार्मुकस्य यथागुणः ॥५६
तदेतद् भारतं वर्षं सर्वबीजं द्विजोत्तम। ब्रह्मत्वममरेशत्वं देवत्वं मर्त्यतां तथा ॥६०
मृगपश्वप्सरो योनिस्तद्वत् सर्वे सरीसृपाः। स्थावराणां च सर्वेषामितो ब्रह्मञ्शुभाशुभैः ॥६१
प्रयान्ति कर्मभूर्ब्रह्मन् नान्यलोकेषु विद्यते। देवानामपि विप्रर्षे सदा एष मनोरथः ॥६२
अपि मानुष्यमाप्स्यामो देवत्वात् प्रच्युताः क्षितौ। मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः ॥६३
तत् कर्मनिगडग्रस्तैः स्वकर्मख्यापनोत्सुकैः। न किञ्चित् क्रियते कर्म सुखलेशोपबृंहितैः ॥६४

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे नद्यादिवर्णनपूर्वकजनपदवर्णनं नाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः।

अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति ये सब जनपद विन्ध्य के पृष्ठ भाग में हैं ॥५५॥

अब मैं उन देशों को कहूँगा जो पर्वताश्रयी हैं। नीहार, हंसमार्ग, कुरु गुर्गण, खस— ॥५६॥

कुन्त, प्रावरण, ऊर्ण, दार्व, कृत्रक, त्रिगर्त्त, गालव और तामस सहित किरात (ये सब पर्वतीय कहलाते हैं) ॥५७॥

तथा यह भारतवर्ष ही कृत तथा त्रेतायुग आदि चार युगों की विधि से युक्त होकर स्थित है। (यहीं इन चारों युगों की स्थिति है) ॥५८॥

इसके दक्षिण और पूर्व में महा समुद्र ने चारों ओर से घेरा हुआ है तथा इसकी उत्तर दिशा में हिमालय उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार धनुष को उसकी ज्या (डोरी) घेरे रहती है ॥५६॥

इसलिये हे द्विजोत्तम ! यह भारतवर्ष ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व, देवत्व और मानुष्यत्व उन सबका बीज स्वरूप है ॥६०॥

हे ब्रह्मन् ! यही (भारतवर्ष) मृग, पशु, अप्सराओं की योनि तथा उन्हीं के समान सभी बिच्छू आदि को स्थावर योनियों में शुभ एवं अशुभ कर्मों के द्वारा उत्पन्न करने वाला है ॥६१॥

हे ब्रह्मण ! हे विप्रर्षे ! समस्त लोकों में यह भारतवर्ष ही एक मात्र कर्मभूमि है। देवताओं का भी सदैव यही मनोरथ रहता है कि— ॥६२॥

देवत्व से प्रच्युत होने पर यदि हम मनुष्यत्व को प्राप्त करें तो भारतवर्ष में ही जन्म ग्रहण करें, क्योंकि (जिस कार्य को मनुष्य करने में समर्थ है, उसे देवता तथा असुर कोई नहीं कर सकता) ॥६३॥

देखिये, कर्मरूपी बेड़ियों से बंधे हुये, अपने कर्म की प्रसिद्धि के इच्छुक, सुख के लेश मात्र से मोहित होकर कुछ कर्म नहीं करते हैं ॥६४॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में नद्यादि वर्णन पूर्वक जनपद वर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच —

भगवन् कथितं सम्यग्भवता भारतं मम । सरितः पर्वता देशा ये च तत्र वसन्ति वै ॥१
किन्तु कूर्मस्त्वया पूर्वं भारते भगवान् हरिः । कथितस्तस्य संस्थानं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥२
कथं स संस्थितो देवः कूर्मरूपी-जनार्दनः । शुभाशुभं मनुष्याणां व्यज्यते च ततः कथम् ॥
यथामुखं यथापादास्तस्य तद्ब्रूह्यशेषतः ॥३

मार्कण्डेय उवाच —

प्राङ्मुखो भगवान् देवः कूर्मरूपीव्यवस्थितः । आक्रम्य भारतं वर्षं नवभेदमिदं द्विज ॥४
नवधा संस्थितान्यस्य नक्षत्राणि समन्ततः । विषयाश्च द्विजश्रेष्ठ ये सम्यक् तान्निबोध मे ॥५
वेदिमद्रारिमाण्डव्याः शाल्वानोपास्तथा शकाः ।
उज्जिहानास्तथा वत्स घोषसंख्यास्तथा खशाः ॥६
मध्ये सारस्वता मत्स्याः शूरसेनाः समाथुराः । धर्मारण्या ज्योतिषिका गौरग्रीवा गुडाश्मकाः ॥७
वैदेहकाः सपाञ्चालाः संकेताः कङ्कमारुताः । कालकोटिसपाषण्डाः पारियात्रनिवासिनः ॥८
कापिंजलाः कुरोर्बाह्यास्तथैवोदुम्बराजनाः । गजाह्वयाश्च कूर्मस्य जनामध्यनिवासिनः ॥९
कृत्तिका रोहिणी सौम्या एतेषां मध्यवासिनाम् । नक्षत्रत्रितयं विप्र शुभाशुभविपाकदम् ॥१०

क्रौष्टुकि बोले—

हे भगवन् ! आपने मुझसे भारतवर्ष तथा उसमें जो सरिताएं, पर्वत तथा देश स्थित हैं, उन सबका भली प्रकार वर्णन किया ॥१॥

किन्तु आपने पहले कहा था कि पूर्वकाल में भारतवर्ष में भगवान् श्री हरि कूर्म रूप में रहे । अतः मैं उनके निवास की बात को पूर्ण रूप से सुनने का इच्छुक हूँ ॥२॥

भगवान् जनार्दन देव किस प्रकार कूर्म रूप में स्थित रहे तथा उनका मुख किधर था और चरण कहाँ थे । उनके द्वारा मनुष्यों का शुभ और अशुभ किस प्रकार प्रकाशित किया जाता है । आप विस्तार से बताइये ॥३॥

मार्कण्डेय बोले —

हे द्विज ! कूर्म रूप में स्थित हुये वे देवाधिदेव भगवान् श्री हरि नौ भागों में विभक्त इस भारत भूमि को आक्रान्त करके पूर्वाभिमुख होकर स्थित रहते हैं ॥४॥

और नौ भागों में विभक्त होकर सम्पूर्ण नक्षत्र गण भी उसके चारों ओर स्थित रहते हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! आप उन भू-भागों के विषय में मुझसे भली प्रकार सुनिये ॥५॥

विमाण्डव्य, वेदमन्त्र, शाल्व, नीप, शक, उज्जिहान, घोष, संख्य, खश, सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर धर्मारण्य, ज्योतिषिक गौरग्रीव, गुडाश्मक, वैदेहक, पाञ्चाल, संकेत, कंक, मारुत, कालकोटि, पाखण्ड, पारियात्र निवासी गण का पिंगल, बाह्यकुरु, उडुम्वर, और गजाह्व ये सम्पूर्ण देश कूर्म के मध्य भाग में निवास करते हैं ॥६-९॥

हे विप्र ! कृतिका, रोहिणी और सौम्य (मृगशिरा) ये तीनों नक्षत्र इन (उक्त) मध्य निवासियों के शुभ-अशुभ की सूचना देते रहते हैं ॥१०॥

वृषध्वजोऽञ्जनश्चैव जम्ब्वाख्यो मानवाचलः। शूर्पकर्णो व्याघ्रमुखो मुर्वरः कर्वटाशनः ॥११
तथा चन्द्रेश्वराश्चैव खशाश्च मगधास्तथा। शिवयो मैथिलाः शुभ्रास्तथा वदनदन्तुराः ॥१२
प्राग्ज्योतिषाः सलौहित्याः सामुद्राः पुरुषादकाः। पूर्णोत्कटो भद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज ॥१३
काशयो मेखलामुष्टस्ताम्रलिप्तैक-पादपाः। वर्द्धमानाः कोसलाश्च मुखे कूर्मस्य संस्थिताः ॥१४
रौद्रः पुनर्वसुः पुष्यो नक्षत्रत्रितयं मुखे। पादे तद्दक्षिणे देशाः क्रौष्टुके वदतः शृणु ॥१५
कलिङ्गवङ्गजठराः कोशलामूषिकास्तथा। चेदयश्चोर्द्धकर्णाश्च मत्स्यांध्राविन्ध्यवासिनः ॥१६
विदर्भा नारिकेलाश्च धर्मद्वीपास्तथैलिकाः। व्याघ्रग्रीवा महाग्रीवास्त्रैपुराःश्मश्रुधारिणः ॥१७
कैष्किन्ध्या हैमकूटाश्च निषधाः कटकस्थलाः। दशार्णा हारिका नग्न.निषधाः काकुलालकाः ॥१८
तथैव पर्णशबराः पादे वै पूर्वदक्षिणे। आश्लेषर्क्षं तथा पैत्र्यं फाल्गुन्यः प्रथमास्तथा ॥१९
नक्षत्रत्रितयं पादमाश्रितं पूर्वदक्षिणम्। लंकाकालाजिनाश्चैव शैलिकानिकटास्तथा ॥२०
महेन्द्रमलयाद्रौ च दर्दुरे च वसन्ति ये। कर्कोटकवने ये च भृगुकच्छाः सकोङ्कणाः ॥२१
सर्वाश्चैव तथा भीरा वेण्यास्तीरनिवासिनः। अवन्तयो दासपुरास्तथैवाकारिणो जनाः ॥२२
महाराष्ट्राः सकर्णाटा गोनर्द्दाश्चित्रकूटकाः। चोलाः कौलगिराश्चैव क्रौंचद्वीपजटाधराः ॥२३
कावेरीऋष्यमूकस्था नासिक्याश्चैव ये जनाः। शंखशुक्त्यादिवैदूर्य्यशैलप्रान्तचराश्च ये ॥२४

वृषध्वज, अञ्जन, जम्बू नामक मानवाचल शूर्पकर्ण व्याघ्रमुख, मुर्वर, कर्वटाशन, चन्द्रेश्वर, खस, मगध, शिव, मैथिल, शुभ्र, और बदन तथा दन्तुर आदि (समस्त पर्वत) ॥११-१२॥

तथा प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्र, पुरुषादक पूर्णोत्कट, भद्रगोर, उदयाचल, काशेय, मेखलामुस्ट, ताम्रलिप्त, एकपादप, वर्धमान और कौशल, ये सब कूर्म रूपी भगवान् श्रीहरि के मुख में स्थित हैं ॥१३-१४॥

आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य ये तीनों नक्षत्र भी (उनके) मुख में ही स्थित हैं। अब मैं उनके दक्षिण चरण में जो देश हैं, उन्हें कहता हूँ, हे क्रौष्टुकि ! तुम सुनो—॥१५॥

कलिंग, बंग, जठर, कोशल, मूषिक, चेदि, उर्ध्वकर्ण और मत्स्य तथा आंध्र आदि सब विंध्यवासी (विंध्य पर्वत के निकट स्थित हैं) ॥१६॥

तथा विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक, व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर तथा श्मश्रुधारी, कैष्किन्ध्य (किष्किन्धा) हैमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिका, काकुलालक, नग्न तथा निषध और पर्णशबर (इत्यादि देश) तथा आश्लेष, मघा (ऋक्ष) पूर्व फाल्गुनी नक्षत्र भी उसके पूर्व दक्षिण चरण का आश्रय लेकर स्थित हैं ॥१७-१९॥

तथा लंका कालाजिन, शैलिक निकट, महेन्द्र, मलय और दर्दुर पर्वत पर स्थित सम्पूर्ण जनपद तथा कर्कोटक वन में स्थित सम्पूर्ण देश भृगुकच्छ, कोंकण तथा भीरा और वेणी नदी के किनारे पर स्थित सम्पूर्ण देश, अवन्ति दासपुर, आकार निवासी जन ॥२०-२२॥

महाराष्ट्र, कर्णाटक, गोनर्द, चित्रकूट, चोल, कोल-गिरी, क्रौंच द्वीप, जटाधर, कावेरी और ऋष्यमूक पर रहने वाले मनुष्य हैं। सम्पूर्ण देश तथा शंख शुक्ति इत्यादि वैदूर्य्य पर्वत तथा अन्य जो प्रान्तवर्ती पर्वत पर रहने वाले—॥२३-२४॥

तथा वारिचराः कोलाश्चर्मपट्टनिवासिनः । गणबाह्याः पुराः कृष्णाद्वीपवासनिवासिनः ॥२५
सूर्याद्रौ कुमुदाद्रौ च ते वसन्ति तथा जनाः । रौद्रस्वनाः सपिपिशिकास्तथा ये कर्मनायकाः ॥२६
दक्षिणाः कौरुषा ये च ऋषिकास्तापसाश्रमाः । ऋषभाः सिंहलाश्चैव तथा कांचीनिवासिनः ॥२७
त्रिलङ्गाः कुञ्जरदरीकच्छवासाश्च ये जनाः । ताम्रपर्णी तथा कुक्षिरिति कूर्मस्य दक्षिणः ॥२८
फाल्गुन्यश्चोत्तराहस्तश्चित्रा चर्क्षं त्रयं द्विज । कूर्मस्य दक्षिणे कुक्षौ बाह्यपादस्तथापरम् ॥२९
काम्बोजाः पह्लवाश्चैव तथैव वडवामुखाः । तथा च सिन्धुसौवीराः सानर्त्ता वनितामुखाः ॥३०
द्रावणाः सार्गिगाः शूद्राः कर्णप्राधेय बर्बराः । किराताः पारदाः पाण्ड्यास्तथा पारशवाः कलाः ॥३१
धूर्तका हैमगिरिकाः सिन्धुकालकवैरताः । सौराष्ट्रादरदाश्चैव द्राविडाश्च महार्णवाः ॥३२
एते जनपदाः पादे स्थिता वै दक्षिणेऽपरे । स्वात्योविशाखामैत्रं च नक्षत्रत्रयमेव च ॥३३
मणिमेघक्षुराद्रिश्च खंजयोऽस्तगिरिस्तथा । अपरान्तिका हैहयाश्च शान्तिका विप्रशस्तकाः ॥३४
कोंकणाः पञ्चनदका वमना ह्यवरास्तथा । तारक्षुरा ह्यङ्गतकाः शर्कराः शाल्मवेश्मकाः ॥३५
गुरुस्वराः फाल्गुणका वेणुमत्यां च ये जनाः । तथा फल्गुलुका घोरा गुरुहाश्च कलास्तथा ॥३६
एकेक्षणा वाजिकेशा दीर्घग्रीवाः सचूलिकाः । अश्वकेशास्तथा पुच्छेजनाः कूर्मस्य संस्थिताः ॥३७

तथा वारिचर, कोल, चर्मपट्ट गण बाह्य तथा कृष्ण द्वीप में निवास करने वाले मनुष्य ॥२५॥

एवं सूर्याद्रि, कुमुदाद्रि इन दोनों में निवास करने वाले मनुष्य तथा भयंकर शब्द करने वाले गोपिशिक और कर्म नायक हैं ॥२६॥

और दक्षिण कौरुष, ऋषिक, ताप, साश्रम, ऋषभ, सिंहल, कांची में निवास करने वाले ॥२७॥

तथा जोतिलंग, कुञ्जरदरी और कच्छ और ताम्रपर्णी के निवासी मनुष्य हैं। वे सब उस कूर्म की दक्षिण कुक्षि में स्थित रहते हैं ॥२८॥

हे द्विज ! उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा ये तीनों नक्षत्र भी कूर्म की दक्षिण कुक्षि में ही (विराजमान हैं) बाह्यपाद, ॥२९॥

काम्बोज, पह्लव तथा वडवामुख, सिन्धु, सौवीर आनर्त और वनितामुख, द्रावण, सार्गिग; शूद्र, कर्ण, प्राधेय, बर्बर, किरात, पारद, पाण्ड्य, पारशव, कलः, धूर्तक, हैमगिरिक, सिंधुकालक, वैरत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविड और महार्णव, ॥३०-३२॥

ये सभी जनपद कूर्म के दूसरे दक्षिण पैर में स्थित हैं। स्वाति, विशाखा और अनुराधा ये तीनों नक्षत्र (इन सब देशों के शुभ अशुभ की सूचना देते हैं) ॥३३॥

मणिमेघ, क्षुराद्रि, खंजय, अस्तगिरिः अपरांतिक, हैहय, शांतिका, विप्रशस्तक, ॥३४॥

कोंकण, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अंगतक, शर्कर, शाल्मवेश्मक, गुरुस्वर, फाल्गुनक तथा जो जन वेणुमती में रहते हैं ; फाल्गुलुक, घोर, गुरुह तथा कल ॥३५-३६॥

एक नेत्र वाले, वाजिकेश, दीर्घग्रीव, सचूलिक और अश्वकेश तथा ये सब मनुष्य (एकेक्षण) (कूर्म की पूँछ में स्थित हैं।) ॥३७॥

ऐन्द्रं मूलं तथा षाढा नक्षत्रत्रयमेव च। माण्डव्याश्चण्डखाराश्च अश्वकालनदास्तथा ॥३८
कुन्यतालडहाश्चैव स्त्रीबाह्या बालिकास्तथा। नृसिंहावेणुमत्यां च बलावस्थास्तथापरे ॥३९
धर्मबद्धास्तथोलूका उरु कर्मस्थिताजनाः।
(तथा फाल्गुल्का घोरा घुरला हेमतारकाः। एकेक्षणा वाजिकोशा दीर्घपादास्तथैव च)
बामे परे जनाः पादे स्थिताः कूर्मस्य भागुरे ॥४०
अषाढा श्रवणे चैव धनिष्ठा यत्र संस्थिता। कैलासो हिमवांश्चैव धनुष्मान्वसुमांस्तथा ॥४१
क्रौंचाः कुरुबकाश्चैव क्षुद्रवीणाश्च ये जनाः। रसालयाः सकैकेया भोगप्रस्थाः सयामुनाः ॥४२
अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्च अग्नीज्याः सार्दनाजनाः।तथैवाश्वमुखाः प्राप्ताश्चिबिडाः केशधारिणः ॥४३
दासेरका वाटधानाः शवधानास्तथैव च। पुष्पलाधमकैरातास्तथा तक्षशिलाश्रयाः ॥४४
अम्बष्ठामालवामद्रावेणुकाः स वदन्तिकाः। पिङ्गला गानकलहा हूणाः कोहलकास्तथा ॥४५
माण्डव्या भूतियुवकाः शातका हेमतारकाः। यशोमत्याः सगान्धाराः खरसागरराशयः ॥४६
यौधेया दासमेयाश्च राजन्याः स्यामकास्तथा। क्षेमधूर्त्ताश्च कूर्मस्य वामकुक्षिमुपाश्रिताः ॥४७
वारुणं चात्र नक्षत्रं तद्वत् प्रोष्ठपदाद्वयम्। येनकिन्नरराज्यं च पशुपालं सकीचकम् ॥४८
काश्मीरकं तथा राष्ट्रमभिसारजनस्तथा। दरदास्त्वंगणाश्चैव कुलटावनराष्ट्रकाः ॥४९
सैरिष्ठा ब्रह्मपुरकास्तथैव वनवाह्यकाः। किरातकौशिकानन्दा जनाः पह्लवलोलना ॥५०
दार्वादा मरकाश्चैव कुरटाश्चान्नदारकाः। एकपादाः खशाधोषाः स्वर्गभौमानवद्यकाः ॥५१
तथा सयवना हिङ्गाश्चीरप्रावरणाश्च ये। त्रिनेत्राः पौरवाश्चैव गन्धर्वाश्च द्विजोत्तम ॥५२

ज्येष्ठा, मूला तथा (पूर्वा) आषाढ़ः ये तीनों नक्षत्र भी तथा माण्डव्यः. चण्डखार, अश्मक (अश्वकाल) लनद, कुशान्त, लडह, स्त्रीबाह्य, नलिक, नृसिंह, वेणुमति, नलावस्था तथा धर्मबद्ध, उलूक; ऊरुकर्म आदि स्थलों (देशों) में रहने वाले मनुष्य (तथा फल्गुलक, घोर, घूरल, हैमतारकः, एकेक्षणः, वाजिकोश तथा दीर्घपाद) हे भागुरे ! इन सब देशों में रहने वाले मनुष्य कूर्म के बाम पैर में स्थित है ।३८-४०॥

उत्तराषाढ़ा, श्रवण और घनिष्ठा ये तीनों नक्षत्र भी वहीं स्थित हैं । कैलाश, हिमालय, धनुष्मान् और वसुमान् ॥४१॥

क्रौंच, कुराबक, क्षुद्रवीण, रसालय, भोगप्रस्थः, यामुनः, अन्तद्वीप, त्रिगर्त, अग्निज, अर्दनः, अश्वमुख, प्राप्त; चिविड़, केशधारी, दासेरक, वाटधान, पुष्पल, अधमकिरात, तक्षशिला में रहने वाले तथा अम्बष्ठ, मालव, भद्र, वेणुकं, वदन्तिन, पिगंल, गानकलह, हूर्णकोहल, माण्डण्य, भूतियुवक, शातक, हैमतारक, यशोमत्यः, गान्धार, स्वरस, गर, राशि, योधेय, दासमेय, राजन्य, स्यामक और क्षेम धूर्त ये सब कूर्म की बाम कुक्षि में निवास करते हैं ॥४२-४७॥

शतभिषाः, पूर्वा-भाद्रपद और उत्तरा. भाद्रपद नक्षत्र उन स्थानों के शुभ तथा अशुभ की सूचना देने वाले हैं ॥४८॥

और जो किन्नर राज्य, पशुपाल, कीचक, काश्मीर, अभिसारजन, दरद, त्वंगण, कुलट, वनराष्ट्र, सैरिष्ठ, ब्रह्मपुरक, वन वाह्यक; किरात, कौशिकानन्द, पह्लव, लोलन, दार्वाद, मरक, कुरट, अन्न, दारक, एक पाद, खस, घोष, स्वर्ग भौम, अनबन्धक, तथा यवन, हिंग, चिरप्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव, और गन्ध है। हे द्विजोत्तम ! —॥४९-५२॥

पूर्वोत्तरं तु कूर्मस्य पादमेते समाश्रिता: । रेवत्यश्चाश्विदैवत्यं याम्यं चर्क्षमिति त्रयम् ।।५३
तत्र पादे समाख्यातं पाकाय मुनिसत्तम । देशेष्वेतेषु चैतानि नक्षत्राण्यपि वै द्विज ।।५४
एतत् पीडाअमीदेशा:पीड्यन्ते ये क्रमोदिता: ।यान्तिचाभ्युदयं विप्र ग्रहै: सम्यगवस्थितै: ।।५५
यस्यर्क्षस्य पतिर्यो वै ग्रहस्तद्भावितोभयम् । तद्देशस्य मुनिश्रेष्ठ तदुत्कर्षे शुभागम: ।।५६
प्रत्येकं देशसामान्यं नक्षत्रग्रहसम्भवम् । भयं लोकस्य भवति शोभनं वा द्विजोत्तम ।।५७
स्वर्क्षैरशोभनैर्जन्तो: सामान्यमिति भीतिदम्। ग्रहैर्भवति पीडोत्थमल्पायासमशोभनम् ।।५८
तथैव शोभन: पाको दु:स्थितैश्च तथाग्रहै: । अल्पोपकाराय नृणां देशज्ञैश्चात्थनो बुधै: ।।५९
द्रव्ये गोष्ठेऽथ भृत्येषु सुहृत्सुतनयेषु वा । भार्यायां च ग्रहे दु:स्थे भयं पुण्यवतां नृणाम् ।।६०
आत्मन्यथाल्पपुण्यानां सर्वत्रैवातिपापिनाम् । नैकत्रापि ह्यपापानां भयमस्ति कदाचन ।।६१
दिग्देशजनसामान्यं नृपसामान्यमात्मजम् । नक्षत्रग्रहसामान्यं नरो भुङ्क्ते शुभाशुभम् ।।६२
परस्पराभिरक्षा च ग्रहदौस्थ्येन जायते। एतेभ्य एव विप्रेन्द्र शुभहानिस्तथाशुभै: ।।६३

ये सब कूर्म भगवान् के पूर्वोत्तर पाद के आश्रित रहते हैं तथा रेवती, अश्विनी और भरणी तीनों नक्षत्र शुभ अशुभ सूचक हैं ।।५३।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! हे द्विजोत्तम ! जैसा कि मैंने आपसे कथन किया । इन देशों में इतने ही नक्षत्र, मनुष्य और पर्वत हैं ।।५४।।

हे विप्र ! इन देशों में क्रमश: उदित हुये ये नक्षत्र ही मनुष्यों को पीड़ा देते हैं । और हे विप्र ! सम्यक् प्रकार स्थित हुये वे ग्रह ही मनुष्यों को अभ्युदय प्रदान करते हैं ।।५५।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस नक्षत्र का जो स्वामी है, उसी के उस (निकृष्ट) भाव में आने पर, उस देश के मनुष्यों को भय (या दु:ख) होता है और उसके उत्कर्ष काल में कल्याणों की प्राप्ति होती है ।।५६।।

प्रत्येक देश में लोगों को सामान्य रूप से नक्षत्र, ग्रहों से भय अथवा शुभ की प्राप्ति होती है ।।५७।।

सभी प्राणियों को अपने-अपने नक्षत्र के बिगड़ने पर सामान्य रूप से भय प्राप्त होता है । इस प्रकार ग्रहों के द्वारा ही पीड़ा प्राप्ति अल्प, असम अथवा अशोभन की प्राप्ति होती है ।।५८।।

उसी प्रकार श्रेष्ठ ग्रहों के द्वारा शोभन फल की प्राप्ति और नक्षत्रों की स्थिति बिगड़ने पर अशोभन की भी प्राप्ति होती है । इसीलिये मनुष्यों को ग्रहों के भय को दूर करने के लिये बुद्धिमान् देशज्ञों के पास जाना चाहिये ।।५९।।

ग्रह के बिगड़ने पर पुण्यवान् मनुष्यों को भी द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, हित, पुत्र और स्त्री के सहित पीड़ा होती है ।।६०।।

अल्प पुण्यात्माओं को अपने शरीर में पापियों को सर्वत्र ग्रह पीड़ा का भय होता है । किन्तु पुण्यशालियों को किसी एक स्थान पर भी कभी भय नहीं होता ।।६१।।

दिशा, देश, जन, नृप, पुत्र, सुख तथा दु:ख आदि को मनुष्य ग्रहों के शुभ तथा अशुभ होने पर ही भोगता है ।।६२।।

हे विप्रेन्द्र ! नक्षत्र, ग्रहों के शुभ स्थिति होने से परस्पर अभिरक्षा (सुख) की प्राप्ति होती है । और इन्हीं के अशुभ होने से ही शुभ की हानि होती है ।।६३।।

यदेतत् कूर्मसंस्थानं नक्षत्रेषु मयोदितम् । एतत् तु देशसामान्यमशुभं शुभमेव च ।।६४
तस्माद्विज्ञाय देशर्क्षं ग्रहपीडां तथात्मनः । कुर्वीत शान्ति मेधावी लोकवादांश्चसत्तम् ।।६५
आकाशाद् देवतानाञ्च दैत्यादीनां च दौर्हृदाः ।
पृथिव्यां पतन्ति ते लोके लोकवादा इति श्रुताः ।।६६
तां तथैव बुधः कुर्याल्लोकवादान्न हापयेत् । तेषां तत्करणान्नृणां युवतो दुष्टागमक्षयः ।।६७
शुभोदयं प्रहानि च पापानां द्विजसत्तम । प्रज्ञा हानि प्रकुर्युस्ते द्रव्यादीनां च कुर्वते ।।६८
तस्माच्छान्तिपरः प्राज्ञो लोकवादरतस्तथा । लोकवादांश्च शान्तीश्च ग्रहपीडासु कारयेत् ।।६९
अद्रोहानुपवासांश्च शस्तं देवादिवन्दनम् । जपो होमस्तथा दानं स्नानं क्रोधादिवर्जनम् ।।७०
अद्रोहं सर्वभूतेषु मैत्रीं कुर्याच्च पण्डितः । वर्जयेदसतीं वाचमतिवादांस्तथैव च ।।७१
ग्रहपूजां च कुर्वीत सर्वपीडासु मानवः । एवं शाम्यन्त्यशेषाणि घोराणि द्विजसत्तम ।।७२
प्रयतानां मनुष्याणां ग्रहर्क्षोत्थान्यशेषतः । एष कूर्मो मया ख्यातो भारते भगवान् विभुः ।।७३
नारायणो ह्यचिन्त्यात्मा यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अत्र देवाः स्थिताः सर्वे प्रतिनक्षत्र संश्रया ।।७४

मैंने ये जो नक्षत्रों में कूर्म संस्थान का वर्णन किया । यह तो प्रायः सभी देशों में शुभ और अशुभ को प्रदान करने वाला है ।।६४।।

हे श्रेष्ठ ! इसलिए बुद्धिमान् मनुष्य को देश नक्षत्र और ग्रहों द्वारा उत्पन्न की हुई, अपनी पीड़ा को जानकर उसकी शान्ति करानी चाहिये ।।६५।।

देवताओं और दैत्यों के शत्रु जब आकाश से पृथ्वी पर गिरते हैं, वे लोकों में लोकवाद (शुभ और अशुभ) फैलाते हैं । ऐसा कहा गया है ।।६६।।

इसलिये बुद्धिमान् को उन दोनों के लिये वैसा करना चाहिये कि जिससे लोकवाद आदि हानि न करें. क्योंकि मनुष्यों को वैसा उपाय करने से ही दुष्ट ग्रहों का निवारण होता है ।।६७।।

हे द्विजसत्तम ! इनके शुभ रूप में उदित होने पर शुभ का उदय और पाप की हानि होती है । बुरी स्थिति में होने पर ये ही द्रव्य और बुद्धि आदि को हानि पहुँचाते हैं ।।६८।।

इसलिये लोक व्यवहार में अभिरत बुद्धिमान् मनुष्यों कों लोकवाद और ग्रह पीड़ा की शान्ति अवश्य करनी चाहिये ।।६९।।

तथा अद्रोह, उपवास, शान्तिस्तोत्र का पाठ, देवादि का वंदन, जप, होम, दान, स्नान आदि आचरण तथा क्रोधादि का त्याग करना चाहिये ।।७०।।

पण्डित (बुद्धिमान्) व्यक्ति को सभी प्राणियों में मैत्री तथा अद्रोह (अद्वेषभाव) करना चाहिये तथा असत्य वाणी तथा अति विवाद का भी त्याग करना चाहिये ।।७१।।

मनुष्यों को सभी प्रकार की पीड़ाओं में ग्रहों की पूजा करनी चाहिये । क्योंकि इस प्रकार करने से सम्पूर्ण भयंकर ग्रह शान्त हो जाते हैं ।।७२।।

संयमी मनुष्यों को भी सम्पूर्ण ग्रहों के कारण से शुभ अशुभ फल की प्राप्ति होती है । इस प्रकार मैंने यह भारतवर्ष में भगवान् सर्वव्यापक कूर्म का कथन किया ।।७३।।

यह (कूर्म रूप) नारायण और अचिन्त्य का रूप है । जिनमें प्रत्येक नक्षत्र से आश्रित समस्त देव प्रतिष्ठित रहते हैं ।।७४।।

तथा मध्ये हुतवहः पृथ्वी सोमश्च वै द्विज । मेषादयस्त्रयो मध्ये मुखे द्वौ मिथुनादिकौ ।।७५
प्राग् दक्षिणे तथा पादे कर्किसिंहौ व्यवस्थितौ ।
सिंहकन्यातुलाश्चैव कुक्षौ राशित्रयं स्थितम् ।।७६
तुलाय वृश्चिकश्चोभौ पादे दक्षिणपश्चिमे । पृष्ठे च वृश्चिकेनैव सहधन्वी व्यवस्थितः ।।७७
वायव्ये चास्य वै पादे धनुर्ग्राहादिकं त्रयम् । कुम्भमीनौ तथैवास्य उत्तरां कुक्षिमाश्रितौ ।।७८
मीनमेषौ द्विजश्रेष्ठ पादे पूर्वोत्तरे स्थितौ । कूर्मे देशास्तथर्क्षाणि देशेष्वेतेषु वै द्विज ।।७९
राशयश्च तथर्क्षेषु ग्रहराशिष्ववस्थिताः । तस्माद् ग्रहर्क्षपीडासु देशपीडां विनिर्दिशेत् ।।८०
तत्र स्नात्वा प्रकुर्वीत दानहोमादिकं विधिम् । स एष वैष्णवः पादो ब्रह्मन् मध्ये ग्रहस्य यः ।।८१
(नारायणाख्यो चिन्त्यातमा कारणं जगतः प्रभुः)

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भारतीय कूर्मनिवेशो नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

तथा उनके मध्य में अग्नि, पृथ्वी और चन्द्रमा रहते हैं । मेष आदि तीन राशियां उनके मध्य भाग में तथा मिथुनादि दो राशियां उनके मुख में अवस्थित हैं ।।७५।।

कर्क और सिंह राशि उनके पूर्व दक्षिण चरण में विद्यमान हैं । सिंह, कन्या एवं तुला ये तीन राशियाँ उनकी कुक्षि में स्थित हैं ।।७६।।

तुला और वृश्चिक दोनों राशियाँ दक्षिण पश्चिम के चरण में तथा वृश्चिक और धनु राशि उनके पृष्ठ भाग में स्थित हैं ।।७७।।

धनु और मकर आदि तीन राशियां उनके वायव्य चरण में तथा कुम्भ और मीन राशियां उनकी उत्तर कुक्षि में आश्रित रहती हैं ।।७८।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वोत्तर चरण में मीन और मेष स्थित हैं । हे द्विज ! इस प्रकार इस कूर्म में देश तथा उन देशों में नक्षत्र, ।।७९।।

तथा नक्षत्रों में ग्रह और ग्रह में राशि स्थित हैं । इस कारण ग्रह और नक्षत्रादि की पीड़ा में देश पीड़ा माननी चाहिये ।।८०।।

उस (देशादि की पीड़ा होने पर) समय में स्नान करके दान और होमादिविधि को करना चाहिये । इस प्रकार यह जो विष्णु के चरण रूप में ब्रह्मा जी ग्रहों के बीच स्थित रहते हैं । (वे ही) नारायण, अचिन्त्य आत्मा, जगत् के कारण और जगत् के स्वामी हैं ।।८१।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में भारतीय कूर्म निवेश नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षट्पञ्चशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

एवं तु भारतं वर्षं यथावत् कथितं मुने। कृतं त्रेता द्वापरं च तथा तिष्यं चतुष्टयम् ॥१
अत्रैतद्युगानान्तु चातुर्वर्ण्यं च वै द्विज। चत्वारि त्रीणि द्वे चैव तथैकं च शरच्छतम् ॥२
जीवन्त्यत्र नरा ब्रह्मन् कृतत्रेतादिषु क्रमात् ॥३
देवकूटस्य पूर्वस्य शैलेन्द्रस्य महात्मनः। पूर्वेण यत्स्थितं वर्षं भद्राश्वं तन्निबोध मे ॥
श्वेतपर्णश्च नीलश्च शैवालश्चाचलोत्तमः ॥४
कौरञ्जः पर्णशालाग्रः पञ्चैते तु कुलाचलाः। तेषां प्रसूतिरन्ये ये बहवः क्षुद्रपर्वताः ॥५
तैर्विशिष्टा जनपदा नाना रूपाः सहस्रशः। ततः कुमुदसंकाशाः शुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥६
इत्येवमादयोऽन्येऽपि शतशोऽथ सहस्रशः। सीताशङ्खावती भद्रा चक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥७
नद्योऽथ बह्वयो विस्तीर्णाः शीततोयौघवाहिकाः। अत्र वर्षे नराः शङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥८
दिव्यसंगमिनः पुण्या दशवर्षशतायुषः। अधमोत्तमं न तेष्वस्ति सर्वे ते समदर्शनाः ॥९
तितिक्षादिभिरष्टाभिः प्रकृत्यात्मगुणैर्युताः। तत्राप्यश्वशिरादेवश्चतुर्बाहुर्जनार्दनः ॥१०
शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रिहस्तैश्चाक्षित्रयान्विताः। तस्याप्यथैवं विषया विज्ञेया जगतः प्रभोः ॥११

मार्कण्डेय बोले—

हे मुने! इस प्रकार मैंने तुमसे भारत के वास्तविक रूप का यथावत् वर्णन किया। इसी में सत्युग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलि युग, चारों युग स्थित होते हैं ॥१॥

हे द्विज! इन चारों युगों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चतुर्वर्ण है तथा (युगों के अनुसार मनुष्यों की आयु) कृतत्रेतादि युगों में मनुष्य क्रमशः चार, तीन, दो और एक सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं ॥२-३॥

हे महात्मन्! पूर्व दिशा में देवकूट नामक पर्वत की पूर्व दिशा में जो वर्ष स्थित है, वह भद्राश्व है। अब उसकी कथा मुझसे सुनो। श्वेत पर्ण नील, शैवाल नामक श्रेष्ठ पर्वत, ॥४॥

तथा कौरञ्ज (क्रौञ्च) पर्णशालाग्र ये पांच श्रेष्ठ कुलाचल (कुल पर्वत) इस वर्ष में स्थित हैं। तथा उनमें उत्पन्न हुये जो बहुत से क्षुद्र पर्वत हैं ॥५॥

यथा कुमुद संकाश, शुद्धसानु, सुमंगल इत्यादि तथा अन्य भी सैंकड़ों तथा हजारों जनपद विविध छोटे बड़े पर्वतों से युक्त होकर नाना भांति से अवस्थान करते हैं। सीता, शंखवती, भद्रा, चक्रावर्त आदि, ॥६-७॥

बहुत सी नदियां शीतल जल समूह के साथ विस्तीर्ण होकर बहती हैं। इस वर्ष में उत्पन्न होने वाले मनुष्य निर्मल शंख और स्वर्ण के समान आभा वाले हैं ॥८॥

दिव्य संगति वाले तथा पवित्र हुये वे एक हजार वर्ष तक की आयु वाले होते हैं। उनमें अधम अथवा उत्तम नहीं हैं। वे सब समदर्शन (समान दृष्टि) वाले हैं ॥९॥

वे सब प्रकृति से ही तितिक्षा आदि आठ गुणों से युक्त हैं। इस भाद्राश्व वर्ष में ही भगवान् जनार्दन चार भुजाओं वाले अश्व शिरदेव कहे जाते हैं ॥१०॥

हयग्रीव रूप से सिर, हृदय में चरण तथा हस्त एवं तीनों नैनों से युक्त होकर स्थित हैं उन जगत् प्रभु (हयग्रीव) का भी विषय इसी प्रकार जानना चाहिए ॥११॥

केतुमालमतो वर्षं निबोध मम पश्चिमम् । विशालः कम्बलः कृष्णो जयन्तो हरिपर्वतः ।।१२
विशोको वर्द्धमानश्च सप्तैते कुलपर्वताः । अन्ये सहस्रशः शैला येषु लोकगणः स्थितः ।।१३
मौलयस्ते महाकायाः शाकपोतकरम्भकाः । अचलाः प्रमुखाश्चापि वसन्ति शतशो जनाः ।।१४
ये पिबन्ति महानद्यो वंक्षुश्यामांस्वकम्बलाम् । अमोघां कामिनीं श्यामां तथैवान्याः सहस्रशः ।।१५
अत्राप्यायुः समं पूर्वैरत्रापि भगवान् हरिः । वराहरूपीपादास्य हृत्पृष्ठे पार्श्वतस्तथा ।।१६
(मुखेनासादंतश्चैव कण्ठतः पुच्छतस्तथा)
त्रिनक्षत्रयुतेदेशे नक्षत्राणि युतानि च । इत्येतत् केतुमालं ते कथितं मुनिसत्तम् ।।१७
अतः परं कुरून् वक्ष्ये निबोधेह ममोत्तरान् । तत्र वृक्षा मधुफलानित्यपुष्पफलोपगाः ।।१८
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च । सर्वकामप्रदास्ते हि सर्वकालफलप्रदाः ।।१९
भूमिर्मणिमयी वायुः सुगन्धः सर्वदासुखः । जायन्ते मानवास्तत्र देवलोकपरिच्युताः ।।२०
मिथुनानि प्रसूयन्ते समकालस्थितानि वै । अन्योन्यमनुरक्तानि चक्रवाकोपमानि च ।।२१

इसके बाद (सुमेरु) के पश्चिम भाग में स्थित केतुमाल वर्ष का वर्णन मुझसे सुनो । इसमें विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त तथा, हरिपर्वत ।।१२।।

विशोक, वर्धमान आदि ये सात कुल पर्वत हैं । और भी हजारों पर्वत हैं जिनके ऊपर जन समूह रहते हैं ।।१३।।

पृथ्वी के मौलि स्वरूप उनमें शाक, पोत काम्भक आदि प्रमुख पर्वत हैं । जिनके ऊपर सैंकड़ों मनुष्य निवास करते हैं ।।१४।।

तथा इनमें, वंक्षु श्यामा, स्वकम्बला, अमोघा, कामिनी, श्यामा तथा अन्य भी सैंकड़ों नदियां हैं । जिनका जल मनुष्य पीते हैं ।।१५।।

यहां पर भी मनुष्यों की आयु पूर्व के समान ही है तथा वराह रूपी भगवान् श्री हरि विराजमान हैं । इनके चरण, हृदय, पीठ, पार्श्व ।।१६।।

मुख नासिका, कष्ट से निकले हुये दांत तथा पूंछ से तीनों नक्षत्रों से युक्त होकर सम्पूर्ण देश में स्थित हैं । वहां भी नक्षत्रों से शुभ और अशुभ फल विदित होता है । हे मुनिसत्तम ! यह मैंने तुमसे केतुमाल का वर्णन किया ।।१७।।

इसके पश्चात् अब मैं तुमसे कुरु देशों को कहता हूं । सुनो, इस उत्तर कुरु प्रदेशों में हमेशा (नित्य) पुष्प और फलों से युक्त मधुर फल वाले वृक्ष हैं ।।१८।।

जो फलों में आभरण और वस्त्र उत्पन्न करते हैं । सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्णता प्रदान करने वाले वे ही सभी कालों में फल प्रदान करने वाले हैं ।।१९।।

तथा वहां की मणिमय भूमि पर सर्वदा सुख देने वाली सुगन्धित वायु बहती है । देवलोक से भ्रष्ट हुये देवता (प्राणी) ही वहां मनुष्य रूप में उत्पन्न होते हैं ।।२०।।

तथा कुछ समय तक वहां पर स्थित हुये चक्रवाक के समान परस्पर एक दूसरे पर अनुरक्त होकर मिथुनों को साथ उत्पन्न करते हैं ।।२१।।

चतुर्दशसहस्राणि तेषां सार्द्धानि वै स्थितिः । चन्द्रकान्तश्च शैलेन्द्रः सूर्यकान्तस्तथापरः ॥२२
तस्मिन् कुलाचले वर्षे तन्मध्ये च महानदी । भद्रसोमा प्रयात्युर्व्यां पुण्यामलजलौघिनी ॥२३
सहस्रशस्तथैवान्या नद्यो वर्षेऽपि चोत्तरे । तथान्याः क्षीरवाहिन्यो घृतवाहिन्य एव च ॥२४
दध्नो ह्रदास्तथा तत्र तथान्ये चानुपर्वताः । अमृतास्वादकल्पानि फलानि विविधानि च ॥२५
वनेषु तेषु रम्याणि शतशोऽथ सहस्रशः । तत्रापि भगवान् विष्णु प्राक्छिरामत्स्यरूपवान् ॥२६
विभक्तो नवधा विप्र नक्षत्राणां त्रयं त्रयम् । देशास्तत्रापि नवधा विभक्ता मुनिसत्तम ॥२७
चन्द्रद्वीपः समुद्रे च मद्रद्वीपस्तथापरः । तत्रापि पुण्यो विख्यातः समुद्रान्तर्महामुने ॥२८
इत्येतत् कथितं ब्रह्मन् कुरुवर्षं मयोत्तरम् । शृणु किं पुरुषादीनि वर्षाणि गदतो मम ॥२९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे उत्तरकुरुकथनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

उनकी स्थिति (जीवन) साढ़े चौदह हजार वर्ष होता है। (इस वर्ष में) वहां एक चन्द्रकान्त तथा दूसरा सूर्यकान्त नामक शैलेन्द्र स्थित है ॥२२॥

उस वर्ष के इन कुलाचलों के बीच में पवित्र और निर्मल जल समूह से युक्त भद्रशोभा नामक महानदी पृथ्वी की ओर बहती है ॥२३॥

उसी प्रकार अन्य भी हजारों नदियां इस वर्ष में बहती हैं। और अन्य क्षीर वाहिनी और घृत वाहिनी नदियां भी इसी में हैं ॥२४॥

तथा वहां पर दधि के तालाब भी स्थित है और भी कुल पर्वत वहां स्थित हैं। तथा उनमें अमृत के समान स्वाद युक्त विविध फल—॥२५॥

उन रमणीय वनों में सहस्रों और हजारों की संख्या में मिलते हैं। वहां भी भगवान् विष्णु पहले की भांति मत्स्य रूप धारण कर मस्तक पर धारण करते हैं ॥२६॥

हे विप्र ! इस उत्तर कुरु देश में सभी नक्षत्र नौ भागों में विभक्त होकर तीन-तीन के क्रम से स्थित हैं। हे मुनिसत्तम ! वहां के देश भी नौ भागों में विभक्त हैं ॥२७॥

वहां समुद्र के मध्य चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप स्थित हैं। हे महामुने ! वे दोनों ही पवित्र द्वीप समुद्र के मध्य में हैं' ऐसा प्रसिद्ध है ॥२८॥

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार मैंने यह तुमसे उत्तर कुरुदेश का वर्णन किया। अब किंपुरुष आदि वर्ष को मैं तुमसे कहता हूँ तुम सुनो—॥२९॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में उत्तरकुरुकथन नामक छप्पनवा अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

यत्तु किं पुरुषं वर्षं तत्प्रवक्ष्याम्यहं द्विज। तत्रायुर्दशसाहस्रं पुरुषाणां वपुष्मताम् ॥१
अनामया ह्यशोकाश्च नरा यत्र तथा स्त्रियः। प्लक्षः खण्डश्च यत्रोक्तः सुमहान्नन्दनोपमः ॥२
तस्य ते वै फलरसं पिबन्तः पुरुषाः सदा। स्थिरयौवननिष्पन्नाः स्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥३
अतः परं किं पुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्षते। महारजतसंकाशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥४
देवलोकच्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः। हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम् ॥५
न जरा बाधते तत्र न जीर्यन्ते च कर्हिचित्। तावन्तमेव ते काले जीवन्त्यथ निरामयाः ॥६
मेरुवर्षं मया प्रोक्तं मध्यमं यदिलावृतम्। न तत्र सूर्यस्तपति न ते जीर्यन्ति मानवाः ॥७
लभन्ते नात्मलाभं च रश्मयश्चन्द्रसूर्ययोः। नक्षत्राणां ग्रहाणां च मेरोस्तत्र पराद्युतिः ॥८
पद्मप्रभा पद्मगन्धा जम्बूफलरसाशिनः। पद्मपत्रायताक्षास्तु जायन्ते तत्र मानवाः ॥९
वर्षाणान्तु सहस्राणि तत्राप्यायुस्त्रयोदश। शरावाकार संस्तारो मेरुमध्ये इलावृते ॥१०

मार्कण्डेय बोले—

हे द्विज! जो किंपुरुष वर्ष है उसे मैं तुमसे कहूंगा, उसमें शरीर धारी पुरुषों की दस सहस्र वर्ष आयु होती है ॥१॥

तथा उसमें पुरुष एवं सभी स्त्रियां नीरोग और शोक रहित होते हैं तथा वहां पर नन्दन वन के समान एक प्लक्ष खण्ड कहा गया है ॥२॥

वहां के सभी मनुष्य सदैव उसके फलों का रस पीते हुये ही स्थिर यौवन को प्राप्त हुये हैं तथा वहां की स्त्रियां कमल के समान गंध वाली हैं ॥३॥

किंपुरुष वर्ष के पीछे हरि वर्ष नामक वर्ष कहा जाता है। वहां पर मनुष्य श्रेष्ठ चांदी के समान रग वाले उत्पन्न होते हैं ॥४॥

जहाँ देवलोक से च्युत हुये सभी देव रूपी मनुष्य हरि वर्ष में चारों ओर जन्म लेते है। और वहां वे सब कल्याणकारी इक्षुरस का पान करते हैं ॥५॥

वहाँ न तो किसी को बुढ़ापा पीड़ित करता है और न ही कोई कभी जीर्ण होता है। अपनी पूर्ण आयु पर्यन्त नीरोग रह कर ही जीवित रहते हैं ॥६॥

और जो मेरु वर्ष है, जिसे पहले मैंने इलावृत्त कहा है वहाँ न तो सूर्य अधिक तपता है और न ही मनुष्य वृद्ध होते हैं ॥७॥

तथा वहाँ पर सुमेरु पर्वत की अनुपम द्युति प्रकाशनमान रहती है इसलिये वहां चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र और ग्रह आदि की किरणें उज्ज्वलता प्राप्त नहीं करती हैं ॥८॥

तथा वहां पर पद्म के समान प्रभा वाले, पद्म के समान गन्ध वाले तथा जम्बू फल के रस को पीने वाले एवं कमल के समान चौड़े नेत्रों वाले मनुष्य उत्पन्न होते हैं ॥९॥

वहां पर भी मनुष्यों की आयु तेरह हजार वर्ष की होती है मेरु के मध्य में स्थित इलावृत का आकार सकोरे के समान है ॥१०॥

मेरुस्तत्र महाशैलस्तदाख्यातमिलावृतम् । रम्यकं वर्षमस्माच्च कथयिष्ये निबोध तम् ।।११
वृक्षस्तत्रापि चोत्तुङ्गो न्यग्रोधो हरितच्छदः ।।१२
तस्यापि ते फलरसं पिवन्तो वर्तयन्ति वै । वर्षायुतायुषस्तत्र नरास्तत् फलभोगिनः ।।
रतिप्रधानविमला जरा दौर्गन्ध्य वर्जिताः ।।१३
तस्मादथोत्तरं वर्षं नाम्नाख्यातं हिरण्मयम् । हिरण्वती नदी यत्र प्रभूतकमलोज्ज्वला ।।१४
महाबलाः सतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः । महाकाया महासत्त्वा धनिनः प्रियदर्शनाः ।।१५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भुवनकोशवर्णनसमाप्ति नाम सप्तपञ्चशत्तमोऽध्यायः ।

वहाँ मेरु नामक विशाल पर्वत ही इलावृत के नाम से प्रसिद्ध है। अब मैं इससे रमणीय वर्ष का वर्णन करूँगा । सुनो — ।।११।।

वहाँ भी न्यग्रोध नामक एक बहुत ऊँचा वृक्ष है जो हरे-हरे पत्तों से युक्त है ।।१२।।

वहाँ के मनुष्य उसके फलों का रस पीकर ही जीवित रहते हैं तथा उसके फलों को खाने वाले वे दस हजार वर्ष की आयु वाले होते हैं । वे सब रतिप्रधान सुन्दर तथा बुढ़ापा और दुर्गन्ध रहित होते हैं ।।१३।।

उसके उत्तर में जो वर्ष है । वहां हिरण्मय वर्ष के नाम से प्रसिद्ध है । जहां पर कमल के समान उज्ज्वल हिरण्यवती नदी है जिसमें बहुत से उज्ज्वल कमल हैं ।।१४।।

तथा वहां पर महाबली और तेजस्वी, विशालकाय, बलिष्ठ धनी और प्रियदर्शी होते हैं ।।१५ ।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में भुवन कोश वर्णन समाप्ति नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच—

कथितं भवता सम्यग्यत् पृष्टोऽसि महामुने । भूसमुद्रादि संस्थानं प्रमाणानि तथा ग्रहाः ।।१
तेषां चैव प्रमाणं यन्नक्षत्राणां च संस्थितिः । भूरादयस्तथा लोकाः पातालान्यखिलान्यपि ।।२
स्वायम्भुवं तथा ख्यातं मुने मन्वन्तरं मम । तदन्तराण्यहं श्रोतुमिच्छे मन्वन्तराणि वै ।।
मन्वन्तराधिपान् देवानृषींस्तत्तनयान् नृपान् ।।३

कौष्टुकि बोले—

हे महामुने ! मैंने जो आपसे पूछा था उसे भलीभांति वर्णन किया है । तथा पृथ्वी समुद्रादि की स्थिति तथा परिमाण ।।१।।

तथा नक्षत्रादि की जैसी स्थिति और परिमाण है । और पृथ्वी आदि सप्तलोक तथा सम्पूर्ण पाताल ।।२।।

हे मुने ! प्रसिद्ध स्वायम्भुव मन्वन्तर का भी आपने मेरे सामने वर्णन किया । अब मैं उस मन्वन्तर के भी पश्चात् जो मन्वन्तर हुए उन्हें तथा उनके मन्वन्राधिपति, देवों, ऋषियों तथा राज पुत्रों को सुनना चाहता हूँ ।।३।।

मार्कण्डेय उवाच —

मन्वन्तरं मया ख्यातं तव स्वायम्भुवं च यत् । स्वारोचिषाख्यमन्यत्तु शृणु तस्मादनन्तरम् ।।४
कश्चिद् द्विजातिप्रवरः पुरेऽभूदरुणास्पदे । वरुणायास्तटे विप्रो रूपेणात्यश्विनावपि ।।५
मृदुस्वभावः सद्वृत्तो वेदवेदाङ्गपारगः । सदातिथिप्रियो राजावागतानां समाश्रयः ।।६
तस्य बुद्धिरियं त्वासीदहं पश्ये वसुन्धराम् । अतिरम्यवनोद्यानां नाना नगरशोभिताम् ।।७
अथागतोऽतिथिः कश्चित् कदाचित्तस्य वेश्मनि । नानौषधिप्रभावज्ञो मन्त्रविद्याविशारदः ।।८
अभ्यर्थितस्तु तेनासौ श्रद्धापूतेन चेतसा । तस्याचख्यौ सदेशांश्चरम्याणि नगराणि च ।।९
नदी वनानि शैलाश्च पुण्यान्यायतनानि च । सततो विस्मयाविष्टः प्राह तं द्विजसत्तमम् ।।१०
अनेक देश दर्शित्वेनातिश्रमसमन्वितः । त्वं नातिवृद्धो वयसा नातिवृत्तश्च यौवनात् ।।
कथमल्पेन कालेन पृथिवीमटसि द्विज ।।११

ब्राह्मण उवाच —

मन्त्रौषधिप्रभावेण विप्राप्रतिहता गतिः । योजनानां सहस्रं हि दिनार्द्धेन व्रजाम्यहम् ।।१२

मार्कण्डेय बोले—

अब तक मैंने तुमसे जो प्रसिद्ध स्वायंभुवमन्वन्तर कहा अतः अब तुम इसके बाद 'स्वारोचिष' नामक अन्य मन्वन्तर को सुनो ।।४।।

वरुणा नदी के तट पर सौन्दर्य में अश्विनी कुमारों से भी अधिक सुन्दर (रूपवान्) मृदुल स्वभाव, सदाचारी वेदों तथा वेदांगों में पारंगत तथा सदैव अतिथि प्रिय तथा रात्रिकाल में आने वालों का एक मात्र आश्रय, कोई ब्राह्मण, प्राचीन काल में वरुणा नदी के तट पर स्थित अरुणास्पदं नामक नगर में रहता था ।।५-६।।

उसकी यह इच्छा थी कि मैं अत्यन्त रमणीय वन और उद्यानों से युक्त नाना प्रकार के नगरों से शोभित इस पृथ्वी को देखूं ।।७।।

तदन्तर कभी उसके घर पर विविध औषधियों के प्रभाव को जानने वाला, मंत्रविद्या में प्रवीण कोई अतिथि आया ।।८।।

श्रद्धा से पवित्र चित्त वाले उसने इस (आगन्तुक) से (विविध प्रश्नों को) पूछा—तब उस (अतिथि) ने उसे अनेक देश रमणीय नगर, नदी, वन, पर्वत और अन्य पवित्र स्थलों का वर्णन किया । तब आश्चर्य युक्त हुआ वह ब्राह्मण उस (आगन्तुक) द्विजोत्तम से बोला — ।।९-१०।।

हे द्विज ! अनेक देशों का दर्शन करने पर भी तुम थके हुए नहीं हो । न तुम अधिक वृद्ध हो और न अधिक तरुण ही हो, तुम्हारी आयु भी अधिक नहीं दीख पड़ती । फिर इस थोड़े से समय में तुम सम्पूर्ण पृथ्वी पर कैसे घूम लिये ।।११।।

ब्राह्मण बोला—

हे विप्र ! मंत्रोषधियों के प्रभाव से अप्रतिहत गति वाला मैं आधे दिन में ही एक हजार योजन चला जाता हूँ ।।१२।।

मार्कण्डेय उवाच —

ततः स विप्रस्तं भूयः प्रत्युवाचेदमादरात् । श्रद्धधानो वचस्तस्य ब्राह्मणस्य विपश्चितः ॥१३
मम प्रसादं भगवन् कुरु मन्त्रप्रभावजम् । द्रष्टुमेतां मम महीमतीवेच्छा प्रवर्तते ॥१४
प्रादात् स ब्राह्मणश्चास्मै पादलेपमुदारधीः । अभिमन्त्रयामास दिशं तेनाख्यातां च यत्नतः ॥१५
तेनानुलिप्तपादोऽथ स द्विजो द्विजसत्तम । हिमवन्तमगाद् द्रष्टुं नाना प्रस्रवणान्वितम् ॥१६
सहस्रं योजनानां हि दिनार्धेन व्रजामि यत् । आयास्यामीति संचिन्त्य तदर्द्धेनापरेण हि ॥१७
संप्राप्तो हिमवत्पृष्ठं नातिश्रान्त तनुर्द्विज । विचचार तत स्तत्र तुहिनाचल भूतले ॥१८
पादाक्रान्तेन तस्याथ तुहिनेन विलीयता । प्रक्षालितः पादलेपः परमौषधि सम्भवः ॥१९
ततो जडगतिः सोऽथ इतश्चेतश्च पर्यटन् । ददर्शातिमनोज्ञानि सानूनि हिमभूभृतः ॥२०
सिद्धगन्धर्वजुष्टानि किन्नराभिरतानि च । क्रीडाविहाररम्याणि देवादीनामितस्ततः ॥२१
दिव्याप्सरो गणशतै राकीर्णान्यवलोकयन् । नातृप्यत द्विजश्रेष्ठः प्रोद्भूतपुलको मुने ॥२२

मार्कण्डेय बोले —

उसके बाद उस विद्वान् ब्राह्मण के वचनों पर श्रद्धा करता हुआ वह ब्राह्मण (विप्र) उससे फिर आदर पूर्वक इस प्रकार बोला— ॥१३॥

हे भगवान् ! आप मेरे ऊपर भी औषधियों से उत्पन्न मंत्र प्रभाव को कीजिये । इस सम्पूर्ण पृथ्वी को देखने की मेरी प्रबल इच्छा है ॥१४॥

तब उस उदार बुद्धि ब्राह्मण ने इसके पैरों पर एक प्रकार का लेप किया और यत्न पूर्वक उससे बतायी गयी दिशा को अभिमन्त्रित किया ॥१५॥

हे द्विजोत्तम ! पैर पर लेप हो जाने के बाद वह ब्राह्मण 'मैं' दिन के पहले आधे भाग में एक हजार योजन जाऊँगा तथा उस (दिन) के शेष आधे भाग में (वापस) आऊँगा । इस प्रकार सोचकर विविध झरनों से युक्त हिमालय पर्वत को देखने के लिये चल पड़ा ॥१६-१७॥

तब हे द्विज ! बिना किसी थकावट के हिमालय के पृष्ठ भाग पर पहुंच गये तथा वहाँ पहुंचकर हिमालय के पृथ्वी तल पर विचरण करने लगा ॥१८॥

उसके चरणों द्वारा घूमने के कारण वहाँ स्थित हिम से उत्तम औषधियों द्वारा निर्मित वह लेप धुल जाने के कारण उस ब्राह्मण की गति जड़ हो गयी ॥१९॥

तब उसने (मन्द गति से) इधर उधर घूमते हुए हिमालय के हिम से ढके हुये मनोहर शिखरों को देखा ॥२०॥

सिद्ध, गन्धर्व तथा किन्नर समूहों से सेवित तथा इधर-उधर बने देवताओं के रमणीय क्रीड़ा बिहारों को ॥२१॥

सैकड़ों दिव्य अप्सराओं के समूहों से आकीर्ण हिमालय के सुन्दर शिखरों को देखते हुये उसकी तृप्ति नहीं हुई और हे मुनि ! उसका शरीर (आनन्द से) पुलकित हो गया ॥२२॥

क्वचित् प्रस्रवणाद् भ्रष्टजलपातमनोरमम् । प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्च निनादितम् ।।२३
दात्यूहकोयष्टिकाद्यः क्वचिच्चातिमनोहरैः । पुंस्कोकिलकलालापैः श्रुतिहारिभिरन्वितम् ।।२४
प्रफुल्लतरुगन्धेन वासितानिलवीजितम् । मदायुवतः स ददृशे हिमवन्तं महागिरिम् ।।२५
दृष्ट्वा चैतं द्विजसुतो हिमवन्तं महाचलम् । श्वो द्रक्ष्यामीति संचिन्त्य मतिं चक्रे गृहं प्रति ।।२६
विभ्रष्टपादलेपोऽथ चिरेण जडितक्रमः । चिन्तयामास किमिदं मयाऽज्ञानादनुष्ठितम ।।२७
यदि प्रलेपो नष्टो मे विलीनो हिमवारिणा । शैलोऽतिदुर्गमश्चायं दूरं चाहमिहागतः ।।२८
प्रयास्यामि क्रियाहानिमग्नि शुश्रूषणादिकम् । कथमत्र करिष्यामि संकटं महदागतम् ।।२९
इदं परमिद रम्यमित्यस्मिन् वर पर्वते । सक्तदृष्टिरहं तृप्ति न यास्येऽब्दशतैरपि ।।३०
किन्नराणां कलालापः समन्ताच्छ्रोत्रहारिणः । प्रफुल्लतरुगन्धांश्च घ्राणमत्यन्तमृच्छति ।।३१
सुखस्पर्शस्तथा वायुः फलानि रसवन्ति च । हरन्ति प्रसभं चेतो मनोज्ञानसरांसि च ।।३२
एवं गते तु पश्येयं यदि कंचित्तपोनिधिम् । स ममोपदिशेन्मार्गं गमनाय गृहं प्रति ।।३३

कहीं झरने से गिरता हुआ अत्यन्त मनोरम जल प्रपात तथा अन्य स्थल पर केका शब्द करते हुए मोरों की ध्वनि से निनादित हो रहा था ।।२३।।

और कहीं अत्यन्त मनोहर दात्यूह (पपीहा), तीतर, कोयष्टि, टिटहरी इत्यादि पक्षियों से परिवृत हो रहा था। तथा कानों को मधुर लगने वाले पुर किलों के आलापों से युक्त था ।।२४।।

(कहीं) वृक्षों पर खिले हुये पुष्पों की उत्कृष्ट गन्ध से सुवासित वायु बह रही थी। इस प्रकार आनन्द से युक्त उसने महान् पर्वत को देखा ।।२५।।

इस प्रकार उस ब्राह्मण कुमार ने महागिरि हिमवान् पर्वत को देखकर 'शेष कल देखूँगा' यह सोच कर अपने घर जाने का विचार किया ।।२६।।

तब पैरों के लेप के छूट जाने के कारण उसकी गति मन्द हो गयी। वह सोचने लगा 'अरे अज्ञान के कारण यह मैंने क्या किया' ।।२७।।

बर्फ जल से मेरा लेप घुलकर नष्ट हो गया है और पर्वत भी अत्यन्त दुर्गम है जिस पर मैं अपने घर से अति दूर आ गया हूँ ।।२८।।

अब मेरी अग्नि शुश्रूषणादि (अग्निहोत्र आदि) क्रियाओं को हानि होगी अब मैं कैसे करूँगा यह तो महान् संकट आ गया है ।।२९।।

यह पर्वत अति रमणीय है, इसको देखते हुए सैंकड़ों वर्षों तक भी मैं तृप्ति प्राप्त नहीं कर सकूँगा ।।३०।।

तथा चारों ओर कानों को अच्छे लगने वाले (हरने वाले) किन्नरों के मधुरालाप तथा पुष्पित वृक्षों की गंध से नासिका अत्यन्त तृप्ति प्राप्त कर रही है ।।३१।।

तथा वायु का स्पर्श सुखद और फल रस युक्त है तथा मनोज्ञ सरोवर मानो बलपूर्वक मेरा चित्त हरण कर रहे हैं ।।३२।।

इस प्रकार समय बीतते हुए यदि किसी तपोनिधि को देखूँ तो सम्भवतः वह घर जाने के मार्ग का मुझे उपदेश करे ।।३२।।

मार्कण्डेय उवाच –

स एवं चिन्तयन् विप्रो बभ्राम च हिमाचले । भ्रष्टपादौषधिबलो वैक्लवं परमं गतः ।।३४
तं ददर्श भ्रमन्तं च मुनि-श्रेष्ठं वरूथिनी । वराप्सरा महाभागा मौलेया रूपशालिनी ।।३५
तस्मिन् दृष्टे ततः साभूद्द्विजवर्ये वरूथिनी । मदनाकृष्टहृदया सानुरागा हि तत्क्षणात् ।।३६
चिन्तयामास को न्वेष रमणीयतमाकृतिः । सफलं मे भवेज्जन्म यदि मां नावमन्यते ।।३७
अहोऽस्य रूपमाधुर्यमहोऽस्य ललितागतिः । अहो गम्भीरता दृष्टेः कुतोऽस्य सदृशो भुवि ।।३८
दृष्टा देवास्तथा दैत्याः सिद्धगन्धर्वपन्नगाः । कथमेकोऽपि नास्त्यस्य तुल्यरूपो महात्मनः ।।३९
यथाहमस्मिन् मय्येष सानुरागस्तथा यदि । भवेदत्र मया कार्यस्तत्कृतः पुण्यसंचयः ।।४०
यद्यैष मयि सुस्निग्धां दृष्टिमद्य निपातयेत् । कृतपुण्या न मत्तोऽन्या त्रैलोक्ये वनिता ततः ।।४१

मार्कण्डेय उवाच—

एवं संचिन्तयन्ती सा दिव्ययोषित्स्मरातुरा । आत्मानं दर्शयामास कमनीयतराकृतिम् ।।४२
तां तु दृष्ट्वा द्विजसुतश्चारुरूपां वरूथिनीम् । सोपचारं समागम्य वाक्यमेतदुवाच ह ।।४३

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार चिंतन करता हुआ वह ब्राह्मण हिमाचल पर घूमता रहा । पैरों से लगी हुई औषधि के छूटने से उसकी शक्ति नष्ट हो गयी और वह अत्यधिक दुःखी हुआ ।।३४।।

तब परम रूपशालिनी महाभागा, वरूथिनी नामक श्रेष्ठ अप्सरा ने वहाँ घूमते हुए उस मुनिश्रेष्ठ को देखा ।।३५।।

उस द्विज श्रेष्ठ को देखते ही बरुथिनी नामक अप्सरा उसी क्षण कामदेव से आकृष्ट हृदय वाली होकर अनुराग युक्त हो गयी ।।३६।।

और सोचने लगी मनोहर आकृति वाला यह पुरुष कौन है, यदि यह मेरा तिरस्कार न करे तो मेरा जन्म सफल हो जाए ।।३७।।

अहो इसका रूपमाधुर्य अपूर्व है तथा इसकी चाल कैसी मनोहर है । इसकी दृष्टि कितनी गम्भीर है, इस भूमंडल में इसके समान कौन पुरुष है ।।३८।।

मैंने बहुत से देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व और पन्नगों को देखा है, परन्तु इस महापुरुष के रूप के समान उनमें एक भी नहीं है ।।३९।।

जिस प्रकार मैं इसमें अनुरागवती हूँ उसी प्रकार यदि यह भी मुझसे अनुराग युक्त हो तो समझना चाहिए कि मेरे पूर्वजन्म के किए हुए पुण्यों का फल प्राप्त हो गया ।।४०।।

यदि आज यह मुझपर अपनी सुस्निग्ध दृष्टि डाले तो तीनों लोकों में मेरे समान पुण्यवती दूसरी कौन स्त्री होगी ।।४१।।

मार्कण्डेय बोले —

इस प्रकार सोचती हुई उस कामातुर दिव्य स्त्री ने (उसके सामने) अपनी अति सुन्दर आकृति प्रकट की ।।४२।।

तब सुन्दर रूप वाली उस बरूथिनी को देखकर उस ब्राह्मण पुत्र ने उसके पास आकर औपचारिक रूप से यह बात कही— ।।४३।।

का त्वं कमलगर्भाभे कस्य किं वानुतिष्ठसि । ब्राह्मणोऽहमिहायातो नगरादरुणास्पदात् ।।४४
पादलेपोऽत्र मे ध्वस्तो विलीनो हिमवारिणा । यस्यानुभावादत्राहमागतो मदिरेक्षणे ।।४५

वरूथिन्युवाच—

मौलेयाहं महाभागा नाम्नाख्याता वरूथिनी । विचरामि सदैवात्र रमणीये महाचले ।।४६
साहं त्वद्दर्शनाद्विप्र कामवैक्लव्यतां गता । प्रशाधि यन्मया कार्यं त्वदधीनास्मि साम्प्रतम् ।।४७

ब्राह्मण उवाच—

येनोपायेन गच्छेयं निजगेहं शुचिस्मिते । तन्ममाचक्ष्व कल्याणि हानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ।।४८
नित्यनैमित्तिकानां तु महाहानिर्द्विजन्मनः । भवत्यतस्त्वं हे भद्रे मामुद्धरहिमालयात् ।।४९
प्रशस्यते न प्रवासो ब्राह्मणानां कदाचन । अपराध्यति मे भीरु देशदर्शनकौतुकम् ।।५०
सतोगृहे द्विजाग्रयस्य निष्पत्तिः सर्वकर्मणाम् । नित्यनैमित्तिकानां च हानिरेवं प्रवासिनः ।।५१
सा त्वं किं बहुनोक्तेन तथा कुरु यशस्विनि । यथा नास्तं गते सूर्ये पश्यामि निजमालयम् ।।५२

कमल गर्भ के समान आभा वाली तुम कौन हो ? किसकी हो ? (यहाँ अकेली) क्या कर रही हो। मैं ब्राह्मण हूँ और दारुणास्पद नामक नगर से यहाँ आया हूँ ।।४४।।

हे मदिरेक्षणे ! मैं जिसके प्रभाव से यहाँ आया था वह मेरा पाद-लेप हिम जल के कारण छूटकर विलीन हो गया है ।।४५।।

वरूथिनी बोली —

मैं मौलि वंश की कुलीन नारी हूँ, वरूथिनी नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ, मैं सदैव हीं इस रमणीय महापर्वत पर भ्रमण करती हूँ ।।४६।।

हे विप्र ! वह (वरूथिनी) मैं आपके दर्शनों से काम की विकलता को प्राप्त हो गयी हूँ । आज्ञा दीजिए, मैं क्या करूँ ? क्योंकि इस समय मैं आपके अधीन हूँ ।।४७।।

ब्राह्मण बोला—

हे शुचिस्मिते, जिस उपाय से मैं अपने घर चला जाऊँ वह (उपाय) मुझे बताओ। हे कल्याणि ! क्योंकि यहाँ रहने से हमारे नित्य कर्मों में बाधा पड़ रही है ।।४८।।

और ब्राह्मण के लिए नित्य नैमित्तिक कर्मों की बड़ी हानि होती है। इसलिए हे भद्रे ! तुम इस हिमालय से मेरा उद्धार करो ।।४९।।

ब्राह्मणों के लिए प्रवास कभी भी प्रशस्य नहीं है। हे भीरु ! देश दर्शन का कौतूहल ही मेरा अपराध है ।।५०।।

ब्राह्मण के घर में रहने पर ही सभी प्रकार के कर्म सम्पन्न होते हैं, किन्तु इस प्रकार प्रवासी होने पर सभी प्रकार के नित्य नैमित्तिक कर्मों की हानि होती है ।।५१।।

अथवा तुमसे बहुत कहने से क्या लाभ ? हे यशस्विनि तुम वैसा करो, जिससे मैं सूर्यास्त से पूर्व ही अपने घर को देख सकूँ ।।५२।।

वरूथिन्युवाच—

मैवं ब्रूहि महाभाग माभूत् स दिवसो मम । मां परित्यज्य यत्रत्वं निजगेहमुपैष्यसि ।।५३
अहो रम्यतरः स्वर्गो न यतो द्विजनन्दन । अतो वयं परित्यज्य तिष्ठामोऽत्र सुरालयम् ।।५४
स त्वं सह मया कान्त कान्तेऽत्र तुहिनाचले । रममाणो न मर्त्यानां बान्धवानां स्मरिष्यसि ।।५५
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान् भक्ष्यभोज्यानुलेपनम् । दास्याम्यत्र तथाहं ते स्मरेणवशगा हृता ।।५६
वीणा वेणुस्वनं गीतं किन्नराणां मनोरमम् । अङ्गाह्लादकरो वायुरुष्णान्नमुदकं शुचि ।।५७
मनोभिलषिता शय्या सुगन्धमनुलेपनम् । इहासतो महाभाग गृहे किं ते निजेऽधिकम् ।।५८
इहासतो नैव जरा कदाचित् ते भविष्यति । त्रिदशानामियं भूमिर्यौवनोपचयप्रदा ।।५९
इत्युक्त्वा सानुरागा सा सहसा कमलेक्षणा । आलिलिङ्ग प्रसीदेति वदन्ती कलमुन्मनाः ।।६०

ब्राह्मण उवाच—

मा मां स्प्राक्षीर्व्रजान्यत्र दुष्टे यः सदृशस्तव । मयान्यथा याचिता त्वमन्यथैवाभ्युपैषि माम् ।।६१

वरूथिनी बोली—

हे महाभाग ! ऐसा मत कहो । मेरे लिए वह दिन उपस्थित न हो जिस दिन आप मुझे छोड़कर अपने घर को चले जाएँ ।।५३।।

क्योंकि हे द्विजनन्दन ! स्वर्ग भी इस (स्थान) से अधिक रमणीय नहीं है। इसलिए हम स्वर्ग को छोड़कर यहीं पर निवास करते हैं ।।५४।

हे कान्त ! इस सुन्दर तुहिनाचल पर मेरे साथ रमण करते हुए आप अपने मर्त्य (मरणशील) बन्धुओं का स्मरण ही करेंगे ।।५५।।

कामदेव के वशीभूत हुई और हरण की गयी मैं तुम्हें यहीं पर माला, वस्त्र, आभूषण, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य और अनुलेपन दूँगी ।।५६।।

हे महाभाग ! इस स्थान पर निवास करने से आपको वीणा और वेणु का स्वर किन्नरों का मनोरम संगीत, शरीर के अंगों को आह्लाद प्रदान करने वाला वायु, उष्ण अन्न तथा पवित्र जल तथा मनोवांछित शय्या तथा सुगंधित अंगराग आदि सभी भोग्य पदार्थ सुलभ होंगे। इन सबकी अपेक्षा आपके घर में अधिक क्या है ? ।।५७-५८।।

इस स्थान पर रहते हुए आप पर बुढ़ापा कभी नहीं आएगा क्योंकि देवताओं की यह भूमि यौवन समृद्धि को प्रदान करने वाली है ।।५९।।

ऐसा कहकर कमल के समान नेत्रों वाली, अनुराग युक्त होकर उसने 'प्रसन्न हो जाओ' इस प्रकार मधुर स्वर में कहती हुई, उसने सहसा उसका आलिंगन कर लिया ।।६०।।

ब्राह्मण बोला—

हे दुष्टे ! मेरा स्पर्श मत कर जो तेरे समान हो उसी के पास जा । मैंने तुझसे अन्य प्रकार से प्रार्थना की और तू अन्य प्रकार से मुझसे मिल रही है ।।६१।।

सायं प्रातर्हुतं हव्यं लोकान् यच्छति शाश्वतान् । त्रैलोक्यमेतदखिलं मूढे हव्ये प्रतिष्ठितम् ।।
तमुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ।।६२

वरूथिन्युवाच —

किं ते नाहं प्रिया विप्र रमणीयो न किं गिरिः । गन्धर्वान् किन्नरादींश्च त्यक्त्वाऽभीष्टो हि कस्तव ।।६३
निजमालयमप्यस्माद् भवान् यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान् सुदुर्लभान् ।।६४

ब्राह्मण उवाच —

अभीष्टा गार्हपत्याद्याः सततं मे त्रयोऽग्नयः । रम्यं ममाग्निशरणं वेदी विष्टरिणीप्रिया ।।६५

वरूथिन्युवाच —

अष्टावात्मगुणा ये हि तेषामादौ दया द्विज । तां करोषि कथं न त्वं मयि सद्धर्मपालक ।।६६
त्वद्विमुक्ता न जीवामि तथा प्रीतिमती त्वयि । नैतद् वदाम्यहं मिथ्या प्रसीद कुलनन्दन ।।६७

ब्राह्मण उवाच —

यदि प्रीतिमती सत्यं नोपचाराद् ब्रवीषि माम् । तदुपायं समाचक्ष्व येन यामि स्वमालयम् ।।६८

नित्य प्रातः काल और सायंकाल हवन में डाला हुआ द्रव्य शाश्वत लोकों की प्राप्ति कराता है। अरी मूढ़े ! ये सम्पूर्ण तीनों लोक यज्ञ में ही प्रतिष्ठित हैं। वह उपाय बताओ जिससे मैं अपने घर पहुँच जाऊँ ।।६२।।

वरूथिनी बोली—

हे विप्र ! क्या मैं तुम्हें प्रिय नहीं हूँ ? क्या यह पर्वत रमणीय नहीं है। गन्धर्वों और किन्नरों को छोड़कर तुम्हें क्या अभीष्ट है ।।६३।।

तुम इस स्थान से निःसंदेह अपने घर भी जाओगे। केवल थोड़े समय के लिये मेरे साथ दुर्लभ भोगों का उपभोग कर लो ।।६४।।

ब्राह्मण बोला—

गार्हपत्य आदि (आवहनीय और दक्षिणाग्नि) तीन अग्नियाँ ही मुझे अभीष्ट हैं। अग्नि-गृह ही रमणीय स्थान है तथा विष्टरिणी वेदी ही मुझे प्रिय है ।।६५।।

वरूथिनी बोली—

हे द्विज ! जो आठ आत्मा के गुण हैं, उनमें दया ही सर्वप्रथम है, इसलिए हे सद्धर्म पालक ! तुम उसे मेरे प्रति क्यों नहीं करते हो ।।६६।।

मैं तुममें उस प्रकार अनुरागवती हो गयी हूँ कि तुम्हारे द्वारा परित्यक्त मेरा जीवित रहना कठिन है। हे कुलनन्दन ! यह मैं तुमसे मिथ्या नहीं कह रही हूँ, अतः तुम कृपा करो ।।६७।।

ब्राह्मण बोला—

यदि तुम सचमुच मेरे प्रति प्रीतिमती हो और मुझसे कुछ भी उपचार वश नहीं कह रही हो तो मुझे उस उपाय को बताओ, जिससे मैं अपने घर चला जाऊँ ।।६८।।

वरूथिन्युवाच —

निजमालयमप्यस्माद् भवान् यास्यत्यसंशयम् ।
स्वल्पकालं मया सार्द्धं भुङ्क्ष्व भोगान् सुदुर्लभान् ॥६९

ब्राह्मण उवाच—

न भोगार्थाय विप्राणां शस्यते हि वरूथिनि । इह क्लेशाय विप्राणां चेष्टा प्रेत्यफलप्रदा ॥७०

वरूथिन्युवाच—

सन्त्राणं म्रियमाणाया मम कृत्वा परत्र ते । पुण्यस्यैव फलं भावि भोगाश्चान्यत्र जन्मनि ॥७१
एवं च द्वयमप्यत्र तवोपचयकारणम् । प्रत्याख्यानादहं मृत्युं त्वञ्च पापमवाप्स्यसि ॥७२

ब्राह्मण उवाच—

परस्त्रियं नाभिलषेदित्यूचुर्गुरवो मम । तेन त्वां नाभिवाञ्छामि कामं विलप शुष्य वा ॥७३

मार्कण्डेय उवाच —

इत्युक्त्वा स महाभागः स्पृष्ट्वापः प्रयतः शुचिः । प्राहेदं प्रणिपत्याग्नि गार्हपत्यमुपांशुना ॥७४
भगवन् गार्हपत्याग्ने योनिस्त्वं सर्वकर्मणाम् । त्वत्त आहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्च नान्यतः ॥७५
युष्मदाप्यायनाद्देवावृष्टि सस्यादिहेतवः । भवन्ति सस्यादखिलं जगद् भवति नान्यतः ॥७६

वरूथिनी बोली —

आप इस स्थान से निःसंदेह अपने घर भी चले जाओगे । केवल थोड़े से समय के लिए मेरे साथ दुलभ भोगों को भोग लो ॥६९॥

ब्राह्मण ने कहा—

हे वरूथिनी ! ब्राह्मणों को शास्त्र, भोगों की आज्ञा नहीं देता क्योंकि ब्राह्मणों की क्रिया जिससे यहाँ क्लेश होता है, परलोक में फलप्रद होती हैं ॥७०॥

वरूथिनी बोली—

मरती हुई मेरा त्राण करके तुमको परलोक में उसी पुण्य फल की प्राप्ति होगी तथा दूसरे जन्म में भी तुम अनेक भोग प्राप्त करोगे ॥७१॥

इस प्रकार ये दोनों (परलोक में पुण्य और इस जन्म में भोग) ही तुम्हारे लिए लाभदायक हैं किन्तु परित्याग से मैं मृत्यु को और तुम पाप को प्राप्त करोगे ॥७२॥

ब्राह्मण बोला—

मेरे गुरुओं ने कहा है कि 'परस्त्री की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए' इसलिए मैं तुझे नहीं चाहता हूँ चाहे तुम विलाप करो अथवा शुष्क (यौवन रहित) हो जाओ ॥७३॥

मार्कण्डेय बोले —

इस प्रकार कहकर उस महाभाग ने प्रयत्नपूर्वक जल का स्पर्श करके पवित्र होकर जप द्वारा गार्हपत्य अग्नि को प्रणाम करके इसप्रकार कहा—॥७४॥

हे भगवन् गार्हपत्य अग्ने ! तुम्हीं सब कर्मों की योनि हो। आहवनीय और दक्षिण ये दोनों अग्नियाँ तुम से ही उत्पन्न होती हैं अन्य कहीं से नहीं ॥७५॥

तुम्हारे तृप्त होने से ही सस्य (धान्यादि आदि) के लिए वृष्टि होती है। सस्य से ही सम्पूर्ण जगत् प्रतिष्ठित है अन्य किसी से नहीं ॥७६॥

एवं त्वत्तो भवत्येतद्येन सत्येन वै जगत् । तथाहमद्य स्वं गेहं पश्येयं सति भास्करे ।।७७
यथा वै वैदिकं कर्म स्वकाले नोज्झितं मया । तेन सत्येन पश्येयं गृहस्थोऽद्य दिवाकरम् ।।७८
यथा च न परद्रव्ये परदारे च मे मतिः । कदाचित् साभिलाषाऽभूत् तथैतत् सिद्धिमेतु मे ।।७९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे ब्राह्मणवाक्यवर्णनं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।

तथा जिस सत्य के द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् तुम में जिस प्रकार प्रतिष्ठित है, उसी सत्य के द्वारा मैं आज सूर्य के रहते-रहते अपने घर को देख लूँ ।।७७।।

जिस सत्य के द्वारा मैंने समस्त वैदिक कर्मों का यथोचितकाल में त्याग नहीं किया उसी सत्य के द्वारा मैं आज अपने घर में स्थित होकर ही दिवाकर के दर्शन करूँ ।।७८।।

जिस प्रकार दूसरे के धन के प्रति अथवा दूसरे की भार्या के प्रति मेरा मन कभी चलायमान नहीं हुआ है, कभी उनकी अभिलाषा नहीं रही है तो (इस सत्य से) मेरे संकल्प की सिद्धि हो ।।७९।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में स्वारोचिष मन्वन्तर में ब्राह्मण वाक्य वर्णन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

एवं तु वदतस्तस्य द्विजपुत्रस्य पावकः । गार्हपत्यः शरीरे तु सन्निधानमथाकरोत् ।।१
तेन चाधिष्ठितः सोऽथ प्रभामण्डलमध्यगः । व्यदीपयत तं देशं मूर्तिमानिव हव्यवाट् ।।२
तस्यास्तु सुतरां तत्र तादृग्रूपे द्विजन्मनि । अनुरागोऽभवद् विप्रं पश्यन्त्या देव योषितः ।।३
ततः सोऽधिष्ठितस्तेन हव्यवाहेन तत्क्षणात् । यथापूर्वं तथा गन्तुं प्रवृत्तो द्विजनन्दनः ।।४

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार कहते हुए उस ब्राह्मण पुत्र के शरीर में गार्हपत्य अग्नि ने साक्षात् शरीर धारण कर लिया ।।१।।

उससे अधिष्ठित तथा प्रभामण्डल के मध्य में स्थित वह ब्राह्मण मूर्तिमान् अग्नि के समान उस देश को प्रकाशित करने लगा ।।२।।

हे प्रिय ! तब वह देव स्त्री (अप्सरा) उस ब्राह्मण पुत्र को उस रूप में देखकर उसके प्रति अत्यधिक अनुरागवती हो गयी ।।३।।

तब उस अग्नि से अधिष्ठित हुआ वह ब्राह्मण कुमार उसी क्षण जिस प्रकार पहले था (अर्थात् लेप लगाने पर तीव्र गति वाला था) उसी प्रकार गतिमान् (गमन में प्रवृत्त) हो गया ।।४।।

जगाम च त्वरायुक्तस्तया सास्रं निरीक्षितः ।
आदृष्टिपातात् तन्वङ्ग्या निश्वासोत्कम्पिकन्धरम् ।।५

ततः क्षणेनैव तदा निजगेहमवाप्य सः । यथा प्रोक्तं द्विजश्रेष्ठश्चकार सकलाः क्रियाः ।।६
अथ सा चारुसर्वांगी तत्रासक्तात्ममानसा । निश्वासपरमा निन्ये दिनशेषं तथा निशाम् ।।७
निश्वसन्त्यनवद्याङ्गी हा हेति रुदती मुहुः । मन्दभाग्येति चात्मानं निनिन्द मदिरेक्षणा ।।८
न विहारेनचाहारे रमणीये न वा वने । न कन्दरेषु रम्येषु सा बबन्ध तदा रतिम् ।।९
चकार रममाणे च चक्रवाकयुगे स्पृहाम् । मुक्ता तेन वरारोहा निनिन्द निजयौवनम् ।।१०
क्वागताहमिमं शैलं दुष्टदैवबलात् कृता । क्व च प्राप्तः समे दृष्टेर्गोचरं तादृशो नरः ।।११
यद्य स महाभागो न मे संगमुपैष्यति तत्कामाग्निरवश्यं मां क्षपयिष्यति दुःसहः ।।१२
रमणीयमभूद्यत्तत् पुंस्कोकिलनिनादितम् । तेन हीनं तदेवैतद् दहतीवाद्य मामलम् ।।१३

मार्कण्डेय उवाच —

इत्थं सा मदनाविष्टा जगाम मुनिसत्तमम् । ववृधे च तदा रागस्तस्यास्तस्मिन् प्रतिक्षणम् ।।१४

इस प्रकार उस (अप्सरा) के द्वारा अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा जाता हुआ वह अत्यन्त वेगपूर्वक चला गया और वह तन्वंगी भी दृष्टि से ओझल होने तक खड़ी देखती रही फिर लम्बे-लम्बे श्वास लेने से उसके कंधे काँपने लगे ।।५।।

तब उसी क्षण ही वह (ब्राह्मण) अपने घर पर आ गया और उस द्विज श्रेष्ठ ने जैसा कहा था, उसी प्रकार सभी क्रियायें सम्पन्न कीं ।।६।।

इसके बाद उसमें आसक्त हुए चित्त वाली तथा सुन्दर अंगों वाली उस (अप्सरा) ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते-छोड़ते उस दिन का शेष भाग तथा रात्रि व्यतीत की ।।७।।

इसके बाद अनिन्द्य अंगों वाली वह मदिरेक्षणा दीर्घ निःश्वास लेती हुई तथा बार-बार हा-हाकार करके रोती हुई मैं परम मन्द भाग्या हूँ । इस प्रकार (कहकर) अपनी निन्दा करने लगी ।।८।।

अब उसे न आहार से, न विहार से, न रमणीय वन से, न पर्वतों की रमणीय कन्दराओं में ही प्रीति उत्पन्न होती है ।।९।।

रमण करते हुए चक्रवाक युगल को देखकर उसे अच्छा लगा । उस श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा त्यागी जाने पर उसने अपने सौन्दर्य की निन्दा की ।।१०।।

दुष्ट दैव के वशीभूत हुई मैं इस पर्वत पर कहाँ आ गयी और यहाँ आने के साथ ही उस प्रकार का वह मनुष्य मुझे क्यों दृष्टिगोचर हुआ ।।११।।

यदि आज वह महाभाग की संगति मुझे प्राप्त नहीं होगी तो दुःसह कामाग्नि मुझे अवश्य ही नष्ट कर देगी ।।१२।।

जो कोयल का स्वर पहले अत्यधिक रमणीय प्रतीत होता था । उस (ब्राह्मण) के अभाव में वही स्वर मानो आज मुझे अग्नि के समान अत्यधिक दग्ध कर रहा है ।।१३।।

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार कामासक्त हुई वह मुनिश्रेष्ठ के पास गयी तब उसके प्रति उसका प्रेम प्रतिक्षण बढ़ता गया ।।१४।।

कलिर्नाम्ना तु गन्धर्वः सानुरागो निराकृतः । तया पूर्वमभूत् सोऽथतदवस्थां ददर्श ताम् ।।१५
स चिन्तयामास तदा किन्वेषा गजगामिनी । निश्वासपवनम्लाना गिरावत्र वरूथिनी ।।१६
मुनिशापक्षता किं नु केनचित् किं विमानिता । वाष्पवारिपरिक्लिन्नमियं धत्ते यतो मुखम् ।।१७
ततः स दध्यौ सुचिरं तमर्थं कौतुकात् कलिः । ज्ञातवांश्च प्रभावेण समधिः स यथातथम् ।।१८
पुनः स चिन्तयामास तद्विज्ञाय मुनेः कलिः । ममोपपादितं साधुभाग्यैरेतत् पुरा कृतैः ।।१९
मयैषा सानुरागेण बहुशः प्रार्थिता सती । निराकृतवती सेयमद्य प्राप्या भविष्यति ।।२०
मानुषे सानुरागेयं तत्र तद्रूपधारिणि । रंस्यते मय्यसन्दिग्धं किं कालेन करोमि तत् ।।२१

मार्कण्डेय उवाच—

आत्मप्रभावेण ततस्तस्य रूपं द्विजन्मनः । कृत्वा चचार यत्रास्ते निषण्णा स वरूथिनी ।।२२
सा तं दृष्ट्वा वरारोहा किञ्चिदुत्फुल्ललोचना । समेत्य प्राह तन्वंगी प्रसीदेति पुनःपुनः ।।२३
त्वया त्यक्ता न सन्देहः परित्यक्ष्यामि जीवितम् । तत्राधर्मः कष्टतरः क्रियालोपो भविष्यति ।।२४

उसके द्वारा पूर्वकाल में अनादृत किया हुआ एक कलिनाम का गन्धर्व इसके प्रति अनुराग युक्त था। जब उसने उसकी उस अवस्था को देखा तो—।।१५।।

उसने सोचा कि इस पर्वत पर निश्वास से परिम्लान हुए मुख वाली क्या वही यह गजगामिनी वरूथिनी है ।।१६।।

क्या यह किसी मुनि के शाप से ग्रसित हुई है अथवा किसी के द्वारा अपमानित हुई है जो यह आँसुओं के जल से म्लान हुए मुख को धारण कर रही है ।।१७।।

इसके बाद उस कलि नामक गन्धर्व ने कौतुकवश उस बात को जानने के लिए चिरकाल तक ध्यान लगाया और समाधि के प्रभाव से सम्पूर्ण वृतान्त को यथार्थ रूप से जान लिया ।।१८।।

तब मुनि के वृतान्त को जानकर कलि ने सोचा कि मेरे सौभाग्य से ही पूर्वजन्म के किए हुए पुण्यों के कारण यह अभिलषित प्राप्त हुआ है ।।१९।।

अनुरक्त हुए मेरे द्वारा यह अनेक बार प्रार्थना करने पर भी मेरा तिरस्कार करती रही किन्तु वही यह आज मुझे अवश्य प्राप्त होगी ।।२०।।

उस मनुष्य के प्रति यह अनुराग युक्त हुई है, अतः मुझे उस मनुष्य का ही रूप धारण कर लेना चाहिए। तब यह मेरे साथ निःसन्देह रमण करेगी, अतः अब देर करने से क्या लाभ ? अतः वही करता हूँ ।।२१।।

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद वह गन्धर्व कलि अपने प्रभाव से उस ब्राह्मण का रूप धारण करके उस स्थान पर विचरने लगा जहाँ दुःखी हृदयवाली वह वरूथिनी बैठी हुई थी ।।२२।।

तब उस श्रेष्ठ ब्राह्मण को देखकर उस अप्सरा के नेत्र प्रफुल्लित हो गये। उसके समीप जाकर बार-बार कहने लगी—मेरे ऊपर कृपा करो, कृपा करो ।।२३।।

तुम्हारे द्वारा त्यक्त हुई मैं निःसंदेह अपने प्राणों को त्याग दूँगी तब कष्टदायी विधर्म से तुम्हारी धार्मिक क्रियाओं का भी लोप हो जाएगा ।।२४।।

मया समेत्य रम्येऽस्मिन् महात्मन् वनकन्दरे । मत्परित्राणजं धर्ममवश्यं प्रतिपत्स्यसे ।।२५
आयुषः सावशेषं मे नूनमस्ति महामते । निवृत्तस्तेन नूनं त्वं हृदयाह्लादकारकः ।।२६

कलिरुवाच—

किं करोमि क्रियाहानिर्भवत्यत्र सतो मम । त्वमप्येवं विधं वाक्यं ब्रवीषि तनुमध्यमे ।।२७
तदहं सङ्कटं प्राप्तो यद् ब्रवीमि करोषि तत् । यदि स्यात् संगमो मेऽद्य भवत्या सह नान्यथा ।।२८

वरूथिन्युवाच—

प्रसीद यद् ब्रवीषि त्वं तत्करोमि न ते मृषा । ब्रवीम्येतदनाशङ्कं यत्तत् कार्यं मयाधुना ।।२९

कलिरुवाच —

नाद्य संभोगसमये द्रष्टव्योऽहं त्वया वने । निमीलिताक्ष्याः संसर्गस्तव सुभ्रु मया सह ।।३०

वरुथिन्युवाच—

एवं भवतु भद्रं ते यथेच्छसि तथास्तु तत् । मया सर्वप्रकारं हि वशे स्थेयं तवाधुना ।।३१

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे कलिवरूथिनीसंवादवर्णनं नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ।

हे महात्मन् ! यदि तुम मेरे साथ इस हिमालय की वन और कन्दराओं में रमण करोगे तो मेरी रक्षा से उत्पन्न धर्म के अवश्यमेव भागी होंगे ।।२५।।

हे महामते ! अभी मेरी आयु निश्चय ही शेष है इसी कारण तो मेरे हृदय को आह्लाद प्रदान करने वाले तुम वापस आ गये हो ।।२६।।

कलि बोला—

क्या करूँ, यद्यपि यहाँ रहने से मेरी क्रियाओं की हानि हो रही है किन्तु, हे कृशकरि ! तुम भी तो इस प्रकार के वाक्य (वचन) कह रही हो ।।२७।।

इसलिए मैं संकट में फंस गया हूँ, यदि तुम चाहती हो कि मैं तुम्हारे साथ संभोग आज करूँ तो, जैसा मैं कहूँ तुम वैसा करो ।।२८।।

वरूथिनी बोली —

तुम प्रसन्न होओ । जैसा तुम कहोगे मैं वैसा ही करूँगी यह मैं तुमसे झूठ नहीं बोल रही हूँ । इसमें किञ्चिद् भी सन्देह नहीं है कि जो तुम मुझसे कहोगे मैं उसे निश्चित रूप से करूँगी ।।२९।।

कलि बोला —

वन में आज संभोग के समय तुम मुझे नहीं देखोगी, आँखें बन्द करके ही तुम मेरे साथ संभोग करोगी ।।३०।।

वरूथिनी बोली —

तुम्हारा कल्याण हो, जैसा तुम चाहते हो वैसा ही हो । इस समय सब प्रकार से मैं तुम्हारे अधीन हूँ ।।३१।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में स्वरोचिष मन्वन्तर में कलिवरूथिनी संवाद वर्णन का उनसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततः सह तया सोऽथ रराम गिरिसानुषु । फुल्लकाननहृद्येषु मनोज्ञेषु सरःसु च ॥१

कन्दरेषु च रम्येषु निम्नगापुलिनेषु च । मनोज्ञेषु तथान्येषु देशेषु मुदितो द्विज ॥२

वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्रूपं तस्य तेजसा । अचिन्तयद् भोगकाले निमीलितविलोचना ॥३

ततः कालेन सा गर्भमवाप मुनिसत्तम । गन्धर्ववीर्यतो रूपं चिन्तनाच्च द्विजन्मनः ॥४

तां गर्भधारिणीं सोऽथ सांत्वयित्वा वरूथिनीम् । विप्ररूपधरो यातस्तया प्रीत्या विसर्जितः ॥५

जज्ञे सा बालो द्युतिमाञ्ज्वलन्निव विभावसुः । स्वरोचिभिर्यथा सूर्य्यो भासयन् सकला दिशः ॥६

स्वरोचिभिर्यतो भाति भास्वानिव स बालकः । ततः स्वरोचिरित्येवं नाम्ना ख्यातो बभूव सः ॥७

ववृधे च महाभागो वयसानुदिनं तथा । गुणौघैःश्च यथा बालः कलाभिः शशलाञ्छनः ॥८

स जग्राह धनुर्वेदं वेदांश्चैव यथाक्रमम् । विद्याश्चैव महाभागस्तदा यौवनगोचरः ॥९

मन्दराद्रौ कदाचित् स विचरंश्चारुचेष्टितः । ददर्शैकां तदा कन्यां गिरिप्रस्थे भयातुराम् ॥१०

मार्कण्डेय बोले

हे द्विज ! तब वह ब्राह्मणरूपधारी कलि भी उसके साथ, पर्वत के शिखरों पर पुष्पित कानन में, सरोवरों में तथा मनोज्ञ झीलों में, रमणीय कन्दराओं में, नदियों के तटों पर तथा अन्य मनोज्ञ देशों में, प्रसन्न चित्त से रमण करने लगा ॥१-२॥

अग्नि के अधिष्ठित होने पर उस ब्राह्मण का जैसा रूप था संभोग के समय उसी स्वरूप का नेत्र बन्द किये हुए, उस वरूथिनी ने ध्यान किया ॥३॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! तदनन्तर कुछ समय के बाद उस अप्सरा ने उस ब्राह्मण के स्वरूप का चिन्तन करने के कारण गन्धर्व के वीर्य से गर्भ धारण किया ॥४॥

इसके पश्चात् गर्भ धारण की हुई, उस वरूथिनी को सान्त्वना देकर विप्ररूपधारी वह कलि उससे प्रीतिपूर्वक विदा होकर चला गया ॥५॥

इसके बाद उसने द्युतिमान् शिशु को जन्म दिया, जो मानो अग्नि के तेज के समान जल सा रहा था तथा जिस प्रकार भगवान् सूर्य चमकते हुए अपनी किरणों से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार वह भी अपने तेज की किरणों से चारों दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था ॥६॥

क्योंकि वह बालक अपने तेज की किरणों से सूर्य के समान प्रतीत हो रहा था, इसलिए वह 'स्वरोचि' इस नाम से विख्यात हुआ ॥७॥

जिस प्रकार शुक्ल पक्ष का बाल चन्द्र दिनों दिन अपनी कलाओं के साथ बढ़ता है उसी प्रकार वह बालक भी अपने गुण समूह के साथ प्रति दिन आयु से बढ़ने लगा ॥८॥

हे महाभाग ! तब उसने क्रमशः धनुर्वेद और वेदों की विद्याओं तथा अन्य विद्याओं को ग्रहण किया । तब उसमें यौवन आया ॥९॥

सुन्दर चेष्टा करने वाले उसने कभी मन्दर नामक पर्वत पर घूमते हुए, पर्वत के प्रान्त भाग में, भय से आतुर हुई एक कन्या को देखा ॥१०॥

त्रायस्वेति निरीक्ष्यैनं सा तदा वाक्यमब्रवीत् । मा भैषीरिति स प्राह भयविलुप्तलोचनाम् ॥११
किमेतदिति तेनोक्ते वीरवाक्ये महात्मना । ततः सा कथयामास श्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥१२

कन्योवाच –

अहमिन्दीवराख्यस्य सुता विद्याधरस्य वै । नाम्ना मनोरमा जाता सुतायां मरुधन्वनः ॥१३
मन्दारविद्याधरजा सखी मम विभावरी । कलावती चाप्यपरा सुता पारस्य वै मुनेः ॥१४
ताभ्यां सह मया यातं कैलासतटमुत्तमम् । तत्र दृष्टो मुनिः कश्चित् तपसातिकृशाकृतिः ॥१५
क्षुत्क्षामकण्ठो निस्तेजा दूरपाताक्षितारकः । मयावहसितः क्रुद्धः स तदा मां शशाप ह ॥१६
क्षामक्षामस्वरः किंचित् कम्पिताधरपल्लवः । त्वयावहसितो यस्मादनार्य्ये दुष्टतापसि ॥१७
तस्मात्त्वामचिरेणैव राक्षसोऽभिभविष्यति । दत्ते शापे मत्सखीभ्यां स तु निर्भर्त्सितो मुनिः ॥१८
धिक् ते ब्राह्मण्यमक्षान्त्या हतं ते निखिलं तपः । अमर्षणैर्धर्षितोऽसि तपसा नातिकर्शितः ॥१९
क्षान्त्यास्पदं वै ब्राह्मण्यं क्रोधसंयमनं तपः । एतच्छ्रुत्वा ददौ शापं तयोरप्यमितद्युतिः ॥२०

तब इसे देखकर उसने 'रक्षा करो' ऐसा कहा । इसने भी भयभीत नेत्रों वाली, उस कन्या को कहा—'मत डरो' ॥११॥

तत्पश्चात्, उन महात्मा स्वरोचि ने वीर जनोचित वाक्यों में कहा—'क्या बात है' ? तब श्वाँस के तीव्र वेग के कारण अस्पष्ट अक्षरों में उसने कहा—॥१२॥

कन्या बोली—

हे महाभाग ! मैं इन्दीवर नामक विद्याधर की पुत्री मनोरमा हूँ । मरुधन्वा की पुत्री से मेरा जन्म हुआ है ॥१३॥

मन्दार नामक विद्याधर की पुत्री विभावरी और पार मुनि की कन्या कलावती मेरी दूसरी सखी हैं ॥१४॥

उन दोनों के साथ मैं (एक बार) कैलाश पर्वत के उत्तम शिखर पर गयी, वहाँ पर मैंने तपस्या से अत्यधिक दुबली आकृति वाला कोई मुनि देखा ॥१५॥

भूख और प्यास से सूखे कण्ठ वाला, निस्तेज तथा उसकी आँखों की पुतलियाँ मानो बाहर निकल पड़ रही थीं (उसे देखकर) मैंने उसकी खिल्ली उडाई, तब क्रुद्ध होकर ॥१६॥

दुर्बलता के कारण कृश स्वर वाले तथा क्रोध से किञ्चित् काँपते हुए अधर रूपी पल्लव से युक्त (उस मुनि ने) मुझे शाप दिया हे अनार्ये ! हे दुष्टे ! क्योंकि तुमने मुझ तपस्वी का उपहास किया है ॥१७॥

इसलिए तुम शीघ्र ही राक्षस से अभिभूत होगी । शाप देने पर मेरी दोनों सखियों ने उस मुनि की भर्त्सना की ॥१८॥

तुम जैसे शान्ति (क्षमा युक्त ब्राह्मण को धिक्कार है । तुम्हारा सब तप नष्ट हो गया । तुम तप के कारण इतने अधिक दुर्बल नहीं हुए हो, अपितु अमर्ष के कारण ही दुबले हो गये हो ॥१९॥

ब्राह्मण निश्चय ही क्षमा के आश्रय होते हैं, क्रोध का संयमन ही उनका तप है, यह सुनकर अतुल द्युतिमान् उस मुनि ने उन दोनों को भी शाप दे दिया ॥२०॥

एकस्याः कुण्ठमङ्गेषु भाव्यन्यस्यास्तथा क्षयः । तयोस्तथैव तज्जातं यथोक्तं तेन तत्क्षणात् ॥२१
ममाप्येवं महद्रक्षः समुपैति पदानुगम् । न शृणोषि महानादं तस्यादूरेऽपि गर्जतः ॥२२
तृतीयमद्य दिवसं यन्मे पृष्ठं न मुञ्चति । अस्त्रग्रामस्य सर्वस्य हृदयज्ञाहमद्य ते ॥२३
तं प्रयच्छामि मां रक्ष रक्षसोऽस्मान्महामते । प्रादात् स्वायम्भुवस्यादौ स्वयं रुद्रः पिनाकधृक् ॥२४
स्वायम्भुवो वसिष्ठाय सिद्धवर्याय दत्तवान् । तेनापि दत्तं मन्मातुः पित्रे चित्रायुधाय वै ॥२५
प्रादादौद्वाहिकं सोऽपि मत्पित्रे श्वशुरः स्वयम् । मयापि शिक्षितं वीर सकाशाद् बालया पितुः ॥२६
हृदयं सकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् । तदिदं गृह्यतां शीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥२७
ततो जहि दुरात्मानमेनं राक्षसमागतम् ॥२८

मार्कण्डेय उवाच —

तथेत्युक्ते ततस्तेन वार्य्युपस्पृश्य तस्य तत् । अस्त्राणां हृदयं प्रादात् सरहस्यनिवर्तनम् ॥२९
एतस्मिन्नन्तरे रक्षस्तत्तदा भीषणाकृति । नर्दमानं महानादमाजगाम त्वरान्वितम् ॥३०
मयाभिभूता किं त्राणमुपैति द्रुतमेहि मे । भक्षाय किञ्चिरेणेति ब्रुवाणं तं ददर्श सः ॥३१

(तुम दोनों में से) एक के अंगों में कुष्ठ होगा और दूसरी को क्षय रोग । तब उन दोनों सखियों को उसी क्षण वैसा ही हो गया जैसा उमने कहा था ॥२१॥

मेरा पीछा करते हुए एक महान् राक्षस आ रहा है, क्या तुम समीप ही गर्जते हुए उस राक्षस के महानाद को नहीं सुन रहे हो ? ॥२२॥

आज तीसरा दिन है, किन्तु यह मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है । समस्त अस्त्र समूह से निर्मित, अस्त्रों का हृदय रूप यह अस्त्र आज मैं तुम्हें, ॥२३॥

उन्हें प्रदान करती हूँ । हे महामते ! आप इस शस्त्र के द्वारा उस राक्षस से मेरी रक्षा कीजिए । इसे पिनाकधारी रुद्र ने स्वयं स्वायंभुव मनु को दे दिया था ॥२४॥

फिर स्वायंभुव ने सिद्धों में श्रेष्ठ वसिष्ठ को इसे प्रदान किया । उसने भी मेरी माता के पिता चित्रायुध को इसे प्रदान किया ॥२५॥

मेरे पिता के श्वसुर ने भी विवाह के दहेज के रूप में वह अस्त्र मेरे पिता को प्रदान किया । हे वीर ! मैंने भी बाल्यावस्था में ही पिता के समीप से सम्पूर्ण अस्त्रों के हृदय स्वरूप तथा सभी रिपुओं को नष्ट करने वाले इस अस्त्र की शिक्षा पायी थी । अतः तुम सम्पूर्ण अस्त्रों से युक्त इस अस्त्र को शीघ्र ग्रहण करो । फिर इससे पीछे आते हुए उस दुरात्मा राक्षस का वध करो ॥२६-२८॥

मार्कण्डेय बोले —

इसके बाद स्वरोचि के 'अच्छा' इस प्रकार कहने पर उस (विद्याधरी) ने जल का स्पर्श करके उसको सम्पूर्ण अस्त्रों का हृदय रूप वह अस्त्र रहस्य और निवर्तन सहित प्रदान किया ॥२९॥

इसी बीच भयंकर आकृति वाला महानाद से गर्जता हुआ वह राक्षस शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचा ॥३०॥

तब उसने मुझसे अभिभूत होने पर कौन तुम्हारी रक्षा के लिए आता है, वह शीघ्र मेरे सामने आये अथवा अब भक्षण करने में क्या विलम्ब, इस प्रकार कहते हुए उस राक्षस को देखा ॥३१॥

स्वरोचिश्चिन्तयामास दृष्ट्वा तं समुपागतम् । गृह्णात्येष वचः सत्यं तस्यास्त्विति महामुनेः ।।३२
जग्राह समुपेत्यैनां त्वरया सोऽपि राक्षसः । त्राहि त्राहीति करुणं विलपन्तीं सुमध्यमाम् ।।३३
ततः स्वरोचिः संक्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् । दृष्ट्वा निवेश्य तद्रक्षो ददर्शानिमिषेक्षणः ।।३४
तदाभिभूतः स तदा तामुत्सृज्य निशाचरः । प्रसीद शाम्यतामस्त्रं श्रूयतां चेत्यभाषत ।।३५
मोक्षितोऽहं त्वया शापादतिघोरान्महाद्युते । प्रदत्तादतितीव्रेण ब्रह्ममित्रेण धीमता ।।३६
उपकारो न मे त्वत्तो महाभागाधिकोऽपरः । येनाहं सुमहाकष्टान् महाशापाद्विमोक्षितः ।।३७

स्वरोचिरुवाच –

ब्रह्ममित्रेण मुनिना किं निमित्तं महात्मना । शप्तस्त्वं कीदृशश्चैव शापो दत्तोऽभवत् पुरा ।।३८

राक्षस उवाच —

ब्रह्ममित्रोऽष्टधा भिन्नमायुर्वेदमधीतवान् । त्रयोदशाधिकारं च प्रगृह्याथर्वणो द्विजः ।।३९
अहं चेन्दीवराक्षेति ख्यातोऽस्या जनकोऽभवम् । विद्याधरपतेः पुत्रो नलनाभस्य खड्गिनः ।।४०
मया च याचितः पूर्वं ब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः । आयुर्वेदमशेषं मे भगवन् दातुमर्हसि ।।४१

तब 'स्वरोचि' ने उसे पास आया हुआ देखकर सोचा, यदि यह राक्षस इस कन्या को पकड़ लेता है, तभी उस महामुनि का वचन सत्य होगा ।।३२।।

और तब उस राक्षस ने भी शीघ्रता से उसके पास जाकर 'बचाओ, बचाओ' इस प्रकार करुणा पूर्वक विलाप करती हुई, सुन्दर कटिभाग वाली, इस कन्या को पकड़ लिया ।।३३।।

तदनन्तर स्वरोचि ने क्रुद्ध होकर अपने धनुष में अत्यन्त भयंकर प्रचण्ड भैरव नामक अस्त्र को चढ़ाया, तथा उस राक्षस की ओर निर्निमेष नेत्रों से देखा ।।३४।।

तब उस (अस्त्र) के द्वारा, अभिभूत हुए, उस राक्षस ने उसे छोड़कर 'प्रसन्न होइये' इस अस्त्र को शान्त कीजिए, कुछ सुनिये, इस प्रकार कहा ।।३५।।

हे महाद्युते ! श्रीमान् ब्रह्ममित्र ने मुझे जो अत्यन्त तीव्र शाप दिया था, उस महान् शाप से मैं आपके द्वारा मुक्त किया गया हूँ ।।३६।।

हे महाभाग ! मेरा आपके समान अधिक उपकार करने वाला अन्य कोई नहीं हैं क्योंकि आपके द्वारा ही मैं महान् कष्टदायक महाशाप से छुडाया गया हूँ ।।३७।।

स्वरोचिष ने कहा —

पुराकाल में महात्मा ब्रह्ममित्र मुनि के द्वारा तुम किस कारण शप्त हुए और उन्होंने तुम्हें कैसा शाप दिया था ? ।।३८।।

राक्षस बोला—

मुनि ब्रह्ममित्र ने आठ प्रकार के आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन किया था तथा उस द्विज ने अथर्ववेद के तेरहों अधिकारों का ज्ञान प्राप्त किया था ।।३९।।

इन्दीवराक्ष नाम से प्रसिद्ध मैं इस कन्या का पिता हुआ तथा खड्गधारी नलनाभ नामक विद्याधरों के स्वामी का मैं पुत्र हूँ ।।४०।।

मैंने पहले उन ब्रह्ममित्र नामक मुनि से प्रार्थना की थी । हे भगवन् ! आप मुझे सम्पूर्ण आयुर्वेद की शिक्षा प्रदान कीजिए ।।४१।।

यदा तु बहुशो वीर प्रश्रयावनतस्य मे । न प्रादाद्याचितो विद्यामायुर्वेदात्मिकां मम ॥४२
शिष्येभ्यो ददतस्तस्य मयान्तर्धानगेन हि । आयुर्वेदात्मिका विद्या गृहीताभूत् तदानघ ॥४३
गृहीतायां तु विद्यायां मासैरष्टाभिरन्तरात् । ममातिहर्षादभवद् हासोऽतीव पुनः पुनः ॥४४
प्रत्यभिज्ञाय मां हासान्मुनिः कोपसमन्वितः । विकम्पिकन्धरः प्राह मामिदं परुषाक्षरम् ॥४५
राक्षसेनेव यस्मान्मे त्वयाऽदृश्येन दुर्मते । हृता विद्यावहासश्च मामवज्ञाय वै कृतः ॥४६
तस्मात्त्वं राक्षसः पापमच्छापेन निराकृतः । भविष्यसि न सन्देहः सप्तरात्रेण दारुणः ॥४७
इत्युक्ते प्रतिपाताद्यैरुपचारैः प्रसादितः । स मामाह पुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानसः ॥४८
यन्मयोक्तमवश्यं तद्भावि गन्धर्व नान्यथा । किन्तु त्वं राक्षसो भूत्वा पुनः स्वं प्राप्स्यसे वपुः ॥४९
नष्टस्मृतिर्यदा क्रुद्धः स्वमपत्यं चिखादिषुः । निशाचरत्वे गन्तासि तदस्त्रानलतापितः ॥५०
पुनः संज्ञामवाप्य स्वामवाप्स्यसि निजं वपुः । तथैव स्वमधिष्ठानं लोके गन्धर्वसंज्ञिते ॥५१
सोऽहं त्वया महाभाग मोक्षितोऽस्मान्महाभयात् । निशाचरत्वाद्यद्वीर तेन मे प्रार्थनां कुरु ॥५२

हे वीर ! तब अनेक बार मेरे विनय से अवनत होकर याचना करने पर भी मुझे आयुर्वेद की शिक्षा प्रदान नहीं की ॥४२॥

तो हे अनघ ! शिष्यों को शिक्षा प्रदान करते समय ही पर्दे के पीछे छिपकर, वह आयुर्वेद सम्बन्धी विद्या मैंने भी ग्रहण कर ली ॥४३॥

आठ महीनों के भीतर ही सम्पूर्ण आयुर्वेद विद्या के ग्रहण कर लेने पर मुझे अत्यन्त हर्ष के कारण बार-बार अत्यधिक हँसी आने लगी ॥४४॥

मेरी हँसी के कारण को जानकर क्रोध से युक्त हुए, काँपते कंधों वाले वे मुनि मुझसे इस प्रकार कठोर वचन बोले—॥४५॥

हे दुर्मते ! क्योंकि तूने मुझसे राक्षस के समान अदृश्य होकर विद्या ग्रहण की है तथा मेरी अवज्ञा करते हुए यह हास्य किया है ॥४६॥

इसलिए हे पापी ! तू मेरे शाप से अपमानित होकर सात रात्रियों के भीतर ही महादारुण राक्षस बन जायेगा इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥४७॥

उनके ऐसा कहने पर पुनः प्रणिपात प्रणाम) आदि उपचारों के द्वारा प्रसन्न हुए मृदुल मन वाले, उन मुनि ने, उसी क्षण फिर कहा—॥४८॥

हे गन्धर्व, मैंने जो कहा है, वह अवश्यंभावी है, वह अन्यथा नहीं हो सकता। किन्तु तुम राक्षस होकर भी फिर (कुछ समय बाद) अपने (उसी पुराने) शरीर को प्राप्त करोगे ॥४९॥

राक्षसत्व को प्राप्त होने पर, स्मृति के नष्ट हो जाने पर, जब क्रुद्ध होकर अपनी पुत्री को खाने की इच्छा करोगे तो अस्त्र की अग्नि से तापित हुए तुम ॥५०॥

पुनः स्मृति प्राप्त करके अपने शरीर को फिर प्राप्त करोगे तथा उसी प्रकार गन्धर्व लोक में भी अपने अधिकार को प्राप्त करोगे ॥५१॥

हे महाभाग ! वह मैं आपके द्वारा इस निशाचरत्व रूप महान् भय से छुड़ा दिया गया हूँ, अतः हे वीर ! तुम अभिलषित वर माँगो ॥५२॥

इमां ते तनयां भार्यां प्रयच्छामि प्रतीच्छताम् । आयुर्वेदश्च सकलस्त्वष्टाङ्गो यो मयाततः ।।
मुनेः सकाशात् संप्राप्तस्तं गृह्णीष्व महामते ।।५३

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्त्वा प्रददौ विद्यां स च दिव्याम्बरोज्ज्वलः। स्रग्भूषणधरो दिव्यं पौराणं वपुरास्थितः ।।५४
दत्त्वा विद्यां ततः कन्यां स दातुमुपचक्रमे। तमाह सा तदा कन्या जनितारं स्वरूपिणम् ।।५५
अनुरागो ममाप्यत्र तातातीव महात्मनि । दर्शनादेव संजातो विशेषेणोपकारिणि ।।५६
किन्त्वेषा मे सखी सा च मत्कृते दुःखपीडिते। अतो नाभिलषे भोगान् भोक्तुमेतेन वै समम् ।।५७
पुरुषैरपि नो शक्या कर्तुमित्थं नृशंसता । स्वभावरुचिरैर्मादृक्कथं योषित् करिष्यति ।।५८
साहं यथा ते दुःखार्त्ते मत्कृते कन्यके पितः। तथा स्थास्यामि दुःखार्त्ता तच्छोकानलतापिता ।।५९

स्वरोचिरुवाच —

आयुर्वेदप्रसादेन ते करिष्ये पुनर्नवे । सख्यौ तव महाशोकं समुत्सृज्य सुमध्यमे ।।६०

मार्कण्डेय उवाच —

ततः पित्रा स्वयं दत्तां तां कन्यां सविधानतः।
उपयेमे गिरौ तस्मिन् स्वरोचिश्चारुलोचनाम् ।।६१

मैं अपनी इस पुत्री को आपको भार्या के रूप में प्रदान करता हूँ, अतः तुम इसे ग्रहण करो और हे महामते ! मैंने जो अष्टांगों से युक्त आयुर्वेद का ज्ञान उन मुनि के सामीप्य से प्राप्त किया था, उसे भी ग्रहण करो ।।५३।।

मार्कण्डेय बोले —

इस प्रकार कहकर उस गन्धर्व ने वह विद्या उसे प्रदान कर दी तथा दिव्य वस्त्रों, माला और आभूषणों से युक्त उज्ज्वल अपना पुराना शरीर पुनः धारण किया ।।५४।।

जब उसने विद्या देकर कन्या प्रदान करने का उपक्रम किया तो वह कन्या, स्वरूपधारी अपने पिता से बोली ।।५५।।

हे तात ! इन महापुरुष के प्रति मेरा भी अत्यधिक अनुराग इनके दर्शन से ही हो गया था और विशेष रूप से इनके मेरे प्रति उपकार के कारण ।।५६।।

किन्तु मेरी यह और वह दोनों सखियाँ मेरे लिए दुःख से पीड़ित हो रही हैं, अतः मेरी इनके साथ भोगों को भोगने की अभिलाषा नहीं हो रही है ।।५७।।

पुरुषों के द्वारा भी इस प्रकार की नृशंसता का आचरण करना सम्भव नहीं है। फिर स्वभाव से ही कोमल मेरे जैसी स्त्री इस प्रकार का आचरण कैसे करेगी ।।५८।।

इसलिए हे पिता ! जिस प्रकार वे दोनों कन्याएँ मेरे लिए दुःख भोग रही हैं। उसी प्रकार मैं भी शोकानल से तप्त होकर दुःख से दुःखी होकर उन्हीं की जैसी अवस्था में रहूँगी ।। ९।।

स्वरोचिष ने कहा—

हे सुमध्यमे ! मैं आयुर्वेद के प्रसाद से, तुम्हारी दोनों सखियों के महान् शोक का परित्याग कराके, पुनः नवीन बना दूँगा ।।६०।।

मार्कण्डेय बोले —

उसके पश्चात् स्वरोचिष ने उस मन्दर पर्वत में ही सुन्दर नेत्रों वाली स्वयं पिता द्वारा दी गयी, उस कन्या का विधि विधान के साथ प्राणि ग्रहण किया ।।६१।।

दत्तां तु तां तदा कन्यामभिसान्त्व्य च भाविनीम् ।
जगाम दिव्यया गत्या गन्धर्वः स्व पुरं ततः ।।६२

स चापि सहितस्तन्व्या तदुद्यानं तदा ययौ । कन्यका-युगलं यत्र तच्छापोत्थगदातुरम् ।।६३

ततस्तयोः स तत्त्वज्ञो रोगघ्नैरौषधैरसैः । चकार नीरुजे देहे स्वरोचिरपराजितः ।।६४

ततोऽतिशोभने कन्ये विमुक्ते व्याधितः शुभे ।
स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागं चक्राते तन्महीधरम् ।।६५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे कलिगन्धर्ववरूथिन्योर्विहारवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ।

और वह गन्धर्व भी उस (स्वरोचिष) को वह कन्या प्रदान करके तथा उसे सान्त्वना देकर दिव्य गति से (विमान पर आरूढ़ होकर) अपने गन्धर्व लोक को चला गया ।।६२।।

और फिर वह (स्वरोचिष) भी उस तन्वंगी के साथ उस उद्यान में गया जहाँ पर उसकी दोनों सखियाँ मुनि के शाप से रोग ग्रस्त होकर रह रही थीं ।।६३।।

तब उस तत्त्वज्ञ एवं अपराजित स्वरोचिष ने भी उन दोनों के शरीर को रोग को नष्ट करने वाली औषधियों के रसों से नीरोग किया ।।६४।।

तब व्याधि से मुक्त हुई उन दोनों कन्याओं ने अपने अंगों की काँति से उस मन्दर पर्वत की समस्त दिशाओं को दीपित कर दिया ।।६५।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में स्वारोचिषमन्वन्तर में कलिगन्धर्व वरूथिनी विहार वर्णन नामक साठवां अध्याय समाप्त हुआ ।।

एकषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

एवं विमुक्तरोगा तु कन्यका तं मुदान्विता । स्वरोचिषमुवाचेदं शृणुष्व वचनं प्रभो ।।१

मन्दारविद्याधरजा नाम्ना ख्याता विभावरी ।
उपकारिन् स्वमात्मानं प्रयच्छामि प्रतीच्छ माम् ।।२

मार्कण्डेय बोले —

इस प्रकार रोग से मुक्त हुई और प्रसन्न हुई, वह कन्या स्वरोचिष से बोली — हे प्रभो ! मेरे इन वचनों को सुनो ।।१।।

मन्दर विद्याधर की मैं विभावरी नाम की कन्या हूँ । हे उपकारिन् ! मैं अपने आपको तुम्हें सौंप रही हूँ, तुम मुझे स्वीकार करो ।।२।।

विद्यां च तुभ्यं दास्यामि सर्वभूतरुतानि ते । ययाभिव्यक्तिमेष्यन्ति प्रसादप्रवणो भव ।।३

मार्कण्डेय उवाच—

एवमस्त्विति तेनोक्ते धर्मज्ञेन स्वरोचिषा । द्वितीया तु तदा कन्या इदं वचनमब्रवीत् ।।४
कुमारब्रह्मचार्यासीत् पारो नाम पिता मम । ब्रह्मर्षिः सुमहाभागो वेदवेदाङ्गपारगः ।।५
तस्य पुंस्कोकिलालापरमणीये मधौ पुरा । आजगामाप्सरोऽभ्याशं प्रख्याता पुञ्जिकस्थला ।।६
कामवैक्लव्यतां नीतः स तदा मुनिपुङ्गवः । तत्संयोगेऽहमुत्पन्ना तस्यामत्र महाचले ।।७
विहाय मां गता सा च माताऽस्मिन्निर्जने वने । बालामेकां महीपृष्ठे व्यालश्वापदसंकुले ।।८
ततः कलाभिः सोमस्य वर्द्धन्तीभिरहः क्षये । आप्यायमानाहरहो वृद्धिं यातास्मि सत्तम ।।९
ततः कलावतीत्येतन्मम नाम महात्मना । गृहीतायाः कृतं पित्रा गन्धर्वेण शुभात्मना ।।१०
न दत्ताऽहं तदा तेन याचितेन महात्मना । देवारिणा निशासुप्तस्ततो मे घातितः पिता ।।११
ततोऽहमति निर्वेदादात्मव्यापादनोद्यता । निवारिता शम्भुपत्न्या सत्या सत्यप्रतिश्रवा ।।१२
मा शुचः सुभ्रु भर्त्ता ते महाभागो भविष्यति । स्वरोचिर्नाम पुत्रश्च मनुस्तस्य भविष्यति ।।१३

सभी प्राणियों के स्वर का ज्ञान कराने वाली मैं तुमको (ऐसी) विद्या दूँगी जिससे सब प्राणियों की आवाजों की स्पष्टता हो सकती है । इसलिये तुम प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करो ।।३।।

मार्कण्डेय बोले—

धर्मज्ञ स्वरोचिष के 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहने पर तब दूसरी कन्या ने इस प्रकार वचन कहे ।।४।।

कुमारावस्था से ही ब्रह्मचारी पारं नामक मेरे पिता थे जो वेद वेदांगों के ज्ञाता एवं अति भाग्यवान् थे ।।५।।

पूर्व काल में बसन्त ऋतु में, पुंसकोकिल के मधुर स्वर (से युक्त वातावरण) में पुञ्जिकस्थला नाम की प्रसिद्ध अप्सरा उनके समीप आयी ।।६।।

तब वे मुनि श्रेष्ठ काम के वशीभूत हो गये, उनके संयोग से मैं उसके गर्भ से इसी महापर्वत पर उत्पन्न हुई ।।७।।

फिर मेरी माता मुझे हिंसक प्राणियों से परिपूर्ण इस निर्जन वन में भूमि पर एकाकी पड़ी छोड़कर चली गयी ।।८।।

हे श्रेष्ठ ! इसके पश्चात् मेरे पिता मुझे वहाँ से उठाकर ले गये । दिन की समाप्ति पर चन्द्रमा की बढ़ती हुई कलाओं के समान मैं भी प्रतिदिन पालन-पोषण से बढ़ती गयी । (चन्द्रमा की कलाओं के समान बढ़ने के कारण ही) मेरे श्रेष्ठ गन्धर्व पिता ने मेरा नाम कलावती रखा ।।९-१०।।

देवों के शत्रु (असुर) के मुझे मांगने पर भी मेरे महापुरुष पिता के न देने पर, रात्रि में सोये हुये मेरे पिता की उस (दैत्य) ने हत्या कर दी ।।११।।

तब अत्यन्त दुःख के कारण, अपनी हत्या करने उद्यत हुई मुझको भगवान् शिव की भार्या सदैव ही असत्य का परिहार करने वाली सती ने मरने से रोका ।।१२।।

(उन्होंने कहा—) हे सुभ्रू ! शोक मत करो, महाभाग स्वरोचिष तुम्हारे पति होंगे और उनका पुत्र मनु होगा ।।१३।।

आज्ञां च निधयः सर्वेकरिष्यन्ति तवाहृताः। यथाभिलषितं वित्तं प्रदास्यन्ति च ते शुभे ।।१४
यस्य वत्से प्रभावेण विद्यायास्तां गृहाण मे । पद्मिनी नाम विद्येयं महापद्माभिपूजिता ।।१५
इत्याह मां दक्ष सुता सती सत्यपरायणा। स्वरोचिस्त्वं ध्रुवं देवी नान्यथा सा वदिष्यति ।।१६
साऽहं प्राणप्रदायाद्य तां विद्यां स्वं तथा वपुः । प्रयच्छामि प्रतीच्छ त्वं प्रसाद सुमुखो भव ।।१७

मार्कण्डेय उवाच—

एवमस्त्ववति तामाह स तु कन्यां कलावतीम् ।
विभावर्याः कलावत्याः स्निग्धदृष्ट्यानुमोदितः ।।१८

जाग्रह च ततः पाणी स तयोरमरद्युतिः । न दत्सु देवतूर्येषु नृत्यन्ती स्वप्सरःसु च ।।१९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे विभावरीकलावती पाणिग्रहणवर्णनं नामेकषष्टितमोऽध्यायः ।

सभी आवृत्त निधियां आदरपूर्वक तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगी और हे शुभे ! तुमको मनोवांछित धन प्रदान करेंगी ।।१४।।

हे वत्से ! जिस विद्या के प्रभाव से यह सब होगा उस विद्या को तुम मुझसे ग्रहण कर लो। महापद्म से अभिपूजित यह पद्मिनी नाम की विद्या है ।।१५।।

सदैव सत्य परायण दक्ष की पुत्री (सती) ने मुझको इस प्रकार कहा इसलिए तुम निश्चय ही स्वरोचिष हो, क्योंकि देवी कभी असत्य नहीं बोल सकती ।।१६।।

वही मैं प्राण प्रदान करने वाले (अपने प्रिय को) आज उस विद्या, धन और शरीर को तुम्हें समर्पित करती हूँ। अतः हे सुमुख ! तुम प्रसन्न होकर ग्रहण करो ।।१७।।

मार्कण्डेय बोले —

तब उस (स्वरोचिष) ने कलावती कन्यां से कहा कि 'ऐसा ही हो' तब विभावरी और कलावती की स्निग्ध दृष्टि से अनुमोदित हुए अमर दीप्ति वाले उस (स्वरोचिष) ने उन दोनों कान्तिमान् कन्याओं का पाणिग्रहण कर लिया। उस समय दिव्य वाद्य बजने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं ।।१८-१९।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में स्वारोचिषमन्वन्तर में विभावरी कलावती पाणिग्रहण वर्णन नामक इकसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

द्विषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स ताभिः सहितः पत्नीभिरमरद्युतिः । रराम तस्मिञ्छैलेन्द्रे रम्यकाननिर्झरे ।।१

मार्कण्डेय बोले—

तब अमर दीप्ति वाले उस (स्वरोचिष) ने उन पत्नियों के साथ, रमणीय कानन और झरणों वाले उस शैलेन्द्र पर विहार किया ।।१।।

सर्वोपभोगरत्नानि मधूनि मधुराणि च । निधयः समुपाजग्मुः पद्मिन्यावशवर्तिनः ।।२
स्रजो वस्त्राण्यलङ्कारान् गन्धाढ्यमनुलेपनम् । आसनान्यतिशुभ्राणि कांचनानि यथेच्छया ।।३
सौवर्णानि महाभाग करकान् भाजनानि च । तथा शय्याश्च विविधा दिव्यैरास्तरणैर्युताः ।।४
एवं स ताभिः संहितो दिव्यगन्धाधिवासिते । रराम स्वरुचिर्भाभिर्भासिते वर पर्वते ।।५
ताश्चापि सह तेनेति लेभिरे मुदमुत्तमाम् । रममाणा यथा स्वर्गे तथा तत्र शिलोच्चये ।।६
कलहंसी जगादैकां चक्रवाकीं जले सतीम् । तस्य तासां च ललिते सम्बन्धे च स्पृहावती ।।७
धन्योऽयमतिपुण्योऽहं योऽयं यौवनगोचरः । दयिताभिः सहैताभिर्भुंङ्क्ते भोगानभीप्सितान् ।।८

सन्ति यौवनिनः श्लाघ्यास्तत्पत्न्यो नातिशोभनाः ।
जगत्यामल्पकाः पत्न्यः पतयश्चातिशोभनाः ।।९
अभीष्टा कस्यचित् कान्ता कान्तः कस्याश्चिदीप्सितः ।
परस्परानुरागाढ्यं दाम्पत्यमतिदुर्लभम् ।।१०

धन्योऽयं दयिताभीष्टो ह्य ताश्चास्यातिबल्लभाः। परस्परानुरागो हि धन्यानामेव जायते ।।११
एतन्निशम्य वचनं कलहंसी समीरितम् । उवाच चक्रवाकी तां नातिविस्मितमानसा ।।१२

पद्मिनी विद्या के वशवर्ती हुई निधियाँ, सभी प्रकार के भोग्य रत्न, मधुर-मद्य, माला, वस्त्र, आभूषण, सुगन्धित उबटन (अगराग) अत्यन्त शुभ्र आसन, मनोवांछित स्वर्ण, स्वर्ण के विविध पात्र एव दिव्य बिछौनों स युक्त शय्या आदि विविध प्रकार के भोग्य पदार्थ उपस्थित करने लगीं ।।२-४।।

इस प्रकार उनके साथ उस (स्वरोचिष) ने दिव्य सुगन्धों से सुवासित परिपूरित, अपनी कान्ति से दीप्ति युक्त (शोभायमान) उस उत्तम पर्वत पर रमण किया ।।५।।

स्वर्ग के समान उस पर्वत पर उसके साथ विहार करती हुई उन तीनों पत्नियों ने भी अतीव सुख प्राप्त किया ।।६।।

उसके उन पत्नियों) में मधुर सम्बन्ध को देखकर जल में स्थित, स्पृहायुक्त एक कलहंसी ने चक्रवाकी से कहा—।।७।।

न्उन पत्नियों के साथ अभिलषित भागों को भोगने वाला, यह युवक धन्य है, अति पुण्यवान् है ।।८।।

प्रशंसनीय यौवन सम्पन्न (अनेक पुरुष) हैं, लेकिन उन सबकी पत्नियाँ सुन्दर नहीं है। इस जगत् में ऐसे पति और पत्नि बहुत कम हैं जो दोनों ही सुन्दर हों ।।९।।

किसी को पत्नी अभीष्ट है तो किसी पत्नी को पति प्रिय है, परन्तु दम्पतियों में परस्पर के अनुराग से प्रगाढ़ दाम्पत्य प्रेम अत्यन्त दुर्लभ है ।।१०।।

अपनी प्रियतमाओं का प्रिय यह धन्य है, और अतिप्रिय इसकी ये पत्नियाँ भी धन्य हैं क्योंकि परस्पर समान अनुराग धन्य दम्पतियों में होता है ।।११।।

कलहंसी के कहे इन वचनों को सुनकर आश्चर्य रहित मन वाली चक्रवाकी ने उससे कहा ।।१२।।

नायं धन्यो यतो लज्जा नान्यस्त्री सन्निकर्षतः ।
अन्यां स्त्रियमयं भुङ्क्ते न सर्वास्वस्य मानसम् ।।१३

चित्तानुराग एकस्मिन्नधिष्ठाने यतः सखि । ततोऽतिप्रीतिमानेष भार्या सुभविता कथम् ।।१४
एता न दयिताः पत्युर्नैतासां दयितः पतिः । विनोदमात्रमेवैता यथापरिजनो परः ।।१५
एतासां च यदीष्टोऽयं तत्किं प्राणान्न मुञ्चति ।
आलिङ्गत्यपरां कान्तां ध्यातो वै कान्तयान्यया ।।१६
विद्याप्रदानमूल्येन क्रीतो ह्येष सुभृत्यवत् । प्रवर्त्ततो न हि प्रेमसमं बह्वीषु तिष्ठति ।।१७
कलहंसि पतिर्धन्यो मम धन्याहमेव च । यस्यैकस्यां चिरं चित्तं यस्याश्चैकत्र संस्थितम् ।।१८
वहुपत्नीपतिर्लोकः शरणं पुण्यपापयोः । गृहाशनासनाद्यैश्च भूषणैश्च सहागमैः ।।१९
विषमैः क्रियमाणो हि युज्यते महदेन सा । ज्येष्ठां कनीयभावेन कनिष्ठां ज्येष्ठतां नयेत् ।।२०
गुरवे तु वरं दत्त्वा हुत्वान्यां समिधं यथा । ऊढया सह कर्त्तव्या नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ।।
जगादाथान्यभावेन पापीयाञ्जायते नरः ।।२१

यह पुरुष धन्य नहीं हैं, क्योंकि अन्य स्त्रियों के पास रहते हुए भी अन्य स्त्री के साथ रमण करते हुए भी इसको लज्जा नहीं है और न ही इसका मन सब स्त्रियों में समान प्रेम रखता है ।।१३।।

क्योंकि हे सखि ! चित्त केवल एक (व्यक्ति) का एक अधिष्ठान में ही अनुरक्त हो सकता है तो अनुराग करता हुआ यह सभी पत्नियों में समान अनुराग कैसे कर सकता है ? ।।१४।।

ये सब पति की प्रिय नहीं हैं और न इन सबको पति ही प्रिय है, यह तो इनका परस्पर बिनोद (मनोरंजन) मात्र हैं जिस प्रकार अन्य परिजनों के साथ भी होता है ।।१५।।

यदि यह इनका समान रूप से प्रिय है तो यह प्राण क्यों नहीं छोड देता । इसका ध्यान कोई अन्य स्त्री करती है और यह आलिंगन किसी अन्य का करता है ।।१६।।

वस्तुतः विद्या के देने के मूल्य से एक अच्छे सेवक के समान यह खरीदा हुआ है क्योंकि प्रेम बहुत सी स्त्रियों में समान रूप से व्यवहार करता हुआ नहीं रहता ।।१७।।

हे कलहंसि ! मेरा पति धन्य है और मैं भी धन्य हूं. जिसका चिरकाल से एक स्त्री में ही मन है और मेरा मन भी उन्हीं में अनुरक्त है ।।१८।।

बहुत सी पत्नियों को रखने वाला पुरुष संसार में पाप और पुण्य को शरण देने वाला होता है । घर में भोजन (अशन) आसन, सह गमन, और आभूषण आदि के द्वारा, विषम क्रियाएँ करता हुआ, महान् पापों से संयुक्त होता है । बड़ो में छोटी और छोटी में बड़ी की भावना करके, बड़ी को उत्कृष्टता प्रदान करके अन्य समिधाओं से हवन करने के समान आचरण करता है । (पति को) विवाहित पत्नी के साथ प्रतिदिन नित्य नैमित्तिक क्रियाएँ करनी चाहिएँ । अन्य प्रकार की भावना से आचरण करता हुआ व्यक्ति पाप का भागी होता है ।।१९–२१।।

मार्कण्डेय उवाच—

सर्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौ स्वरोचिरपराजितः । निशम्य लज्जितो दध्यौ सत्यमेव हि नानृतम् ॥२२
ततो वर्षशते याते रममाणो महागिरौ । रममाणः समन्ताभिर्ददर्श पुरतो मृगम् ॥२३
सुस्निग्धपीनावयवं मृगीयूथविहारिणम् । वासिताभिः स्वरूपाभिर्मृगीभिः परिवारितम् ॥२४
आकृष्टघ्राणपुटका जिघ्रन्तीस्तास्ततो मृगीः । उवाच स मृगोऽलं वो लज्जात्यागेन गम्यताम् ॥२५
नाहं स्वरोचिस्तच्छीलो न चैवाहं सुलोचनाः । निर्लज्जा बहवाः सन्ति तादृशास्तत्र गच्छत ॥२६
एका त्वनेकानुगता यथा हासास्पदं जने । अनेकाभिस्तथैवैको भोगदृष्ट्या निरीक्षितः ॥२७
तस्य धर्मक्रियाहानिरहन्यहनि जायते । सक्तोऽन्यभार्यया चान्यकामासक्तः सदैव सः ॥२८
यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलः परलोकपराङ्मुखः । तं कामयत भद्रं वो नाहं तुल्यः स्वरोचिषा ॥२९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे मृगेणमृगीणां पुरतः स्वरोचिर्गर्हण-वर्णनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेय बोले—

सभी प्राणियों के स्वरों को जानने वाले, किसी के द्वारा पराजित न होने वाले, स्वरोचिष यह सुनकर अत्यन्त लज्जित हुए (और विचारने लगे) यह सत्य ही है झूठ नहीं है ॥२२॥

उस महागिरि पर रमण करते हुए, उसके बाद सौ वर्ष बीत गये । रमण करते हुए उन्होंने रमण करते हुए अपने सामने एक मृग को देखा ॥२३॥

सुगन्धित, पुष्ट. अवयवों वाले मृगीयूथ बहुत सी मृगियों के साथ विहार करते हुए (उस मृग को) जो चारों ओर से अपने अनुकूल एवं रूपवाली मृगियों से घिरा हुआ था ॥२४॥

तब नासिका सिकोड़कर सूंघती हुई उन मृगियों से उस मृग ने कहा—तुम सब बस करो क्योंकि तुमने लज्जा त्याग दी है। इसलिए (तुम सब) चली जाओ ॥२५॥

हे सुलोचनाओं ! मैं स्वरोचिष नहीं हूँ और न उसके जैसा मेरा स्वभाव है। उसके जैसे बहुत से निर्लज्ज (पुरुष) हैं । तुम वहीं जाओ । जैसे अनेक पुरुषों से अनुगत एक स्त्री उपहासास्पद होती हैं, उसी प्रकार एक पुरुष अनेक स्त्रियों से भोग की दृष्टि से उपहासास्पद होता है ॥२६-२७॥

उसकी प्रतिदिन धार्मिक क्रियाओं की हानि होती है, जो पुरुष एक पत्नी में आसक्त होते हुए भी दूसरी में सदैव कामासक्त रहता है ॥२८॥

इसलिए उसके जैसा या समान शील वाला, परलोक से पराङमुख होता है। उसी की तरह तुम्हारा कल्याण हो, मैं स्वरोचिष के जैसा नहीं हूँ ॥२९॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में स्वारोचिषमन्वन्तर में मृगियों के सामने मृग द्वारा स्वरोचिष निन्दा वर्णन नामक बासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

एवं निरस्यमानास्ता हरिणेन मृगाङ्गना । श्रुत्वा स्वरोचिरात्मानं मेने स पतितं यथा ।।१
त्यागे चकार च मनः स तासां मुनिसत्तम । चक्रवाकीमृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सितः ।।२
समेत्य ताभिर्भूयश्च वर्द्धमान मनोभवः । आक्षिप्त निर्वेदकथो रेमे वर्षशतानि षट् ।।३
किन्तु धर्माविरोधेन कुर्वन् धर्माश्रिताः क्रियाः । भुङ्क्ते स्वरोर्चिविषयान् सह ताभिरुदारधीः ।।४
ततश्च जज्ञिरे तस्य त्रयः पुत्राः स्वरोचिषः । विजयो मेरुनन्दश्च प्रभावश्च महाबलाः ।।५
मनोरमा च विजयं प्रासूतेन्दीवरात्मजा । विभावरी मेरुनन्दं प्रभावं च कलावती ।।६
पद्मिनी नाम या विद्या सर्वभोगोपपादिका । स तेषां तत्प्रभावेण पिता चक्रे पुरत्रयम् ।।७
प्राच्यां तु विजयं नाम कामरूपे नगोत्तमे । विजयाय सुतायादौ स ददौ पुरमुत्तमम् ।।८
उदीच्यां मेरुनन्दस्य पुरी नन्दवतीमिति । ख्यातां चकार प्रोत्तुङ्ग वप्रप्राकारमालिनीम् ।।९
कलावतीसुतस्यापि प्रभावस्य निवेशितम् । पुरं तालमिति ख्यातं दक्षिणापथमाश्रितम् ।।१०

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार उस मृग के द्वारा वे हिरणियाँ अत्यन्त तिरस्कृत हुईं और उस स्वरोचिष ने भी उसको सुनकर अपने आपको पतित माना ।।१।।

हे मुनिश्रेष्ठ ! चक्रवाकी और मृग के कहने पर और मृग के आचरण से घृणा का अनुभव करते हुए उसने उन स्त्रियों का त्याग करने का विचार किया ।।२।।

किन्तु उन पत्नियों से पुनः मिलने पर उसमें काम की वृद्धि हुई और समस्त निर्वेद समाप्त हो गया। (अतः) उसने पुनः छः सौ वर्षों तक रमण किया ।।३।।

किन्तु धर्ममार्गानुसार सभी धार्मिक क्रियाएँ करते हुए, उदार बुद्धि वाले उन स्वरोचिष ने उन पत्नियों के साथ विषयों का भोग किया ।।४।।

तो उस स्वरोचिष के विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नामक महाबलशाली तीन पुत्र उत्पन्न हुए ।।५।।

इन्दीवर की पुत्री मनोरमा ने विजय को उत्पन्न किया, विभावरी ने मेरुनन्द को और कलावती ने प्रभाव को जन्म दिया ।।६।।

सभी भोगों को प्रस्तुत करने वाली यामिनी नाम की जो विद्या थी, उसके प्रभाव से, उनके पिता स्वरोचिष ने तीन पुरों का निर्माण किया ।।७।।

पहले पूर्व दिशा में कामरूप नाम के उत्तम पर्वत पर विजय नामक उत्तम नगर बनाकर, उसने अपने विजय नामक पुत्र को दे दिया ।।८।।

उत्तर दिशा में मेरुनन्द की ऊँची प्राचीरों से युक्त, नन्दवती नगरी को इसी नाम से प्रसिद्ध किया (मेरुनन्द को दी) ।।९।।

कलावती के पुत्र प्रभाव के लिए भी, दक्षिण दिशा में स्थित, ताल, इस नाम से प्रसिद्ध नगरी प्रदान की ।।१०।।

एवं निवेश्य पुत्रान् स पुरेषु पुरुषर्षभः । रेमे ताभिः समं विप्र मनोज्ञास्वद्रिभूमिषु ।।११

एकदा तु गतोऽरण्ये विहरन् स धनुर्द्धरः । चकर्ष धनुरालोक्य वराहमतिदूरगम् ।।१२

अथाह काचिदभ्येत्य तं तदा हरिणाङ्गना । मय्येव पात्यतां बाणः प्रसीदेति पुनः पुनः ।।१३

किमनेन हतेनाद्य मामाशु विनिपातय । त्वया निपातितो बाणो दुःखान् मां मोक्षयिष्यति ।।१४

स्वरोचिरुवाच –

न ते शरीरं सरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते । किन्तु तत्कारणं येन त्वं प्राणान् हातुमिच्छसि ।।१५

मृग्युवाच —

अन्यास्वासक्तहृदये यस्मिंश्चेतः कृतास्पदम् । मम तेन विना मृत्युरौषधं किमिहापरम् ।।१६

स्वरोचिरुवाच—

कस्त्वां नाभिलषेद् भीरुसानुरागासि कुत्र वा ।
यदप्राप्तौ निजान् प्राणान् परित्यक्तुं व्यवस्यसि ।।१७

मृग्युवाच —

त्वामेवेच्छामि भद्रं ते त्वया मेऽपहृतं मनः । वृणोम्यहमतो मृत्युं मयि बाणोनिपात्यताम् ।।१८

इस प्रकार पुत्रों को विविध नगरियों में बसाकर उस पुरुष श्रेष्ठ (स्वरोचिष) ने उन पत्नियों के साथ मनोहर पर्वत भूमियों में विहार किया ।।११।।

एक बार वह धनुर्धर घूमता हुआ जगल में गया और अत्यधिक दूर जाते हुए वराह को देखकर धनुष चढ़ाया ।।१२।।

तब कोई हरिणी वहाँ आकर बार-बार उससे बोली—आप मेरे ऊपर ही कृपा करके बाण चलाइये ।।१३।।

इसके मारने से क्या (होगा) आज मुझको शीघ्र ही मार डालिए तुम्हारे द्वारा मारा गया बाण मेरे दुःखों को दूर कर देगा ।।१४।।

स्वरोचिष बोला—

हमें तुम्हारा शरीर रोग से पीड़ित दिखाई नहीं दे रहा है, फिर क्या कारण है जिससे तुम प्राण त्यागना चाहती हो ।।१५।।

मृगी बोली—

अन्य स्त्रियों में आसक्त हृदय वाले जिस (पुरुष) में मेरा चित्त आसक्त है । उसके बिना मेरे लिए अब मृत्यु को छोड़कर अन्य औषधि क्या हो सकती है ? ।।१६।।

स्वरोचिष बोले—

हे भीरु ! तुमको कौन नहीं चाहता अथवा किसके प्रति तुम्हारा प्रेम हो गया है । जिसके प्राप्त न होने पर तुम अपने प्राणों को त्यागने का प्रयास कर रही हो ।।१७।।

हरिणी बोली—

हे भद्र ! तुमने मेरा मन हर लिया है, मैं तुमको ही चाहती हूँ । इसलिए मैं मृत्यु का ही वरण कर रही हूँ । अतः मुझ पर शीघ्र बाण चलाओ ।।१८।।

स्वरोचिरुवाच—

त्वं मृगी चंचलापाङ्गी नररूपधरावयम् । कथं त्वया समं योगो मद्विधस्य भविष्यति ।।१९

मृग्युवाच—

यदि सापेक्षितं चित्तं मयि ते मां परिष्वज । यदि वा साधु चित्तं ते करिष्यामि यथेप्सितम् ।।
एतावताहं भवता भविष्याम्यति–मानिता ।।२०

मार्कण्डेय उवाच—

आलिलिङ्ग ततस्तां स स्वरोचिर्हरिणाङ्गनाम् ।।२१
तेन चालिङ्गिता सद्यः साऽभूद् दिव्यवपुर्धरा। ततः स विस्मयाविष्टः का त्वमित्यभ्यभाषत ।।२२
सा चास्मै कथयामास प्रेम-लज्जा जडाक्षरम् । अहमभ्यर्थिता देवैः काननस्यास्य देवता ।।२३
उत्पादनीयो हि मनुस्त्वया मयि महामते । प्रीतिमत्यां मयि सुतं भूलोकपरिपालकम् ।।
तमुत्पादय देवानां त्वामहं वचनाद् वदे ।।२४

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स तस्यां तनयं सर्वलक्षणलक्षितम् । तेजस्विनमिवात्मानं जनयामास तत्क्षणात् ।।२५
जातमात्रस्य तस्याथ देववाद्या निसस्वनुः । जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरो गणाः ।।२६

स्वरोचिष बोले—

हे चपलापांगी ! तुम मृगी हो और हम पुरुष रूपधारी हैं । मेरे समान पुरुष का तुम्हारे साथ संयोग कैसे हो सकता है ? ।।१९।।

मृगी बोली—

यदि तुम्हारा चित्त मेरे प्रति अनुराग युक्त है तो मेरा आलिंगन करो और यदि तुम्हारा चित्त साधु है, तो मैं अभिप्सित कार्य करूँगी । इतने से ही मैं तुम्हारे द्वारा अत्यन्त सम्मानित हो सकूँगी ।।२०।।

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद स्वरोचिष ने उस हरिणी का आलिंगन किया। उसके द्वारा आलिंगन की गयी वह शीघ्र ही दिव्य शरीर सम्पन्न हो गयी। तब विस्मय युक्त होकर उसने (स्वरोचिष ने) पूछा कि तुम कौन हो ? ।।२१–२२।।

तब प्रेम और लज्जा से जड़ हुई गद् गद् स्वर में उसने इससे कहा कि—देवताओं द्वारा अभ्यर्थित मैं इस वन की देवी हूँ ।।२३।।

हे महामते ! तुमको मुझ में मनु उत्पन्न करना चाहिए। प्रीतिमति मुझमें भू लोक का पालन करने वाले पुत्र को उत्पन्न करो। यह सब मैंने तुमसे देवताओं के वचनों के अनुसार ही कहा है ।।२४।।

मार्कण्डेय बोले—

तब उसने उसमें (उस वन देवी के गर्भ से) उसी समय अपने समान तेजस्वी सर्व लक्षण सम्पन्न पुत्र उत्पन्न किया ।।२५।।

उसके उत्पन्न होते ही देवताओं ने बाजे बजाए और गन्धर्व पतियों ने गाना गाया तथा अप्सराओं ने नृत्य किया ।।२६।।

सिषिचुः शीकरैर्मेघा ऋषयश्च तपोधनाः । देवाश्च पुष्पवर्षं च मुमुचुश्च समन्ततः ॥२७
तस्य तेजः समालोक्य नाम चक्रे पिता स्वयम् । द्युतिमानिति येनास्य तेजसा भासिता दिशः ॥२८
स बालो द्युतिमान् नाम महाबलपराक्रमः ।
स्वरोचिषः सुतो यस्मात्तस्मात् स्वारोचिषोऽभवत् ॥२९
स चापि विचरन् रम्ये कदाचिद् गिरिनिर्झरे । स्वरोचिर्ददृशे हंसं निजपत्नीसमन्वितम् ॥३०
उवाच स तदा हंसीं साभिलाषां पुनः पुनः । उपसंह्रियतामात्मा चिरं ते क्रीडितं मया ॥३१
किं सर्वकालं भोगैस्ते आसन्नं चरमं वयः । परित्यागस्य कालो मे तव चापि जलेचरि ॥३२

हंस्युवाच—

अकालः को हि भोगानां सर्वभोगात्मकं जगत् । यज्ञाः क्रियन्ते भोगार्थं ब्राह्मणैः संयतात्मभिः ॥
दृष्टादृष्टांस्तथा भोगान् वाञ्छमाना विवेकिनः ॥३३
दानानि च प्रयच्छन्ति पूतान्धर्मांश्च कुर्वते ।
स त्वं नेच्छसि किं भोगान् भोगश्चेष्टफलं नृणाम् ॥३४
विवेकिनां तिरश्चां च किं पुनः संयतात्मनाम् ॥३५

हंस उवाच—

भोगेष्वासक्तचित्तानां परमार्थान्विताममतिः । भविष्यति कदा सङ्गमुपेतानां च बन्धुषु ॥३६

मेघों ने जल बिन्दुओं से पृथ्वी का सिंचन किया। तपोधनी ऋषियों और देवताओं ने चारों ओर से पुष्प वर्षा की। उसके तेज को देखकर (उसके) पिता ने स्वयं द्युतिमान् नाम रखा, क्योंकि उसके तेज से सभी दिशाएँ प्रकाशित हो उठी थीं ॥२७–२८॥

महाबली और पराक्रमी द्युतिमान् नामक वह बालक क्योंकि स्वरोचिष का पुत्र था, इसलिए स्वारोचिष भी हुआ ॥२९॥

कभी किसी झरणों से युक्त रमणीय पर्वत पर विचरण करते हुए, उसने भी अपनी पत्नी से युक्त हंस को देखा ॥३०॥

वह अभिलाषा (सम्भोगेच्छा) सम्पन्न अपनी पत्नी से बार-बार कह रहा था, हे हंसी ! अब तुम अपने आप को नियन्त्रित करो। मैंने बहुत समय तक तुम्हारे साथ रमण कर लिया है। हर समय के भोग से क्या ? अब तुम्हारी वृद्धावस्था भी आ गयी है। हे जलचरि ! 'यह मेरे और तुम्हारे लिए सम्भोग के परित्याग का समय है ॥३१–३२॥

हंसी बोली—

भोगों का असमय क्या है, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् ही भोगमय है। आत्मसंयमी ब्राह्मण भी भोगों के लिए ही यज्ञ करते हैं और विवेकी जन भी दृष्ट, अदृष्ट भोगों की ही इच्छा करते हैं ॥३३॥

दान देते और पवित्र धर्मों को करते हैं। इस प्रकार संयत आत्मा वाले विवेकी मनुष्य जैसे प्राणी भी क्या कर्मफल और अभीष्ट भोगों की कामना नहीं करते हैं, तब यदि पक्षी करते हैं तो क्या आश्चर्य है ?॥३४-३५॥

हंस बोला—

भोगों में आसक्त चित्त वाले को एवं बन्धु बान्धुओं के संसर्ग वाले मनुष्य की बुद्धि क्या कभी परमात्मा की अनुगामिनी हो सकती है ? ॥३६॥

पुत्रमित्रकलत्रेषु सवता: सीदन्ति जन्तवः । सर: पङ्कार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव ।।३७
किं न पश्यसि वा भद्रे जातसङ्गं स्वरोचिषम् । आबाल्यात् कामसंसक्तं मग्नं स्नेहाम्बुकर्दमे ।।३८
यौवनेऽतीवभार्या सुसाम्प्रतं पुत्र नप्तृषु । स्वरोचिषो मनो मग्नमुद्धारं प्राप्स्यते कुतः ।।३९
नाहं स्वरोचिषस्तुल्यः स्त्रीवश्यो वा जलेचरि ।
विवेकवांश्च भोगानां निवृत्तोऽस्मि च साम्प्रतम् ।।४०

मार्कण्डेय उवाच—

स्वरोचिरे तदाकर्ण्य जातोद्वेगः खगेरितम् । आदाय भार्यास्तपसे ययावन्यत्तपोवनम् ।।४१
तत्र तप्त्वा तपो घोरं सह ताभिरुदारधीः । जगाम लोकानमलान् निवृताखिलकल्मषः ।।४२

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे स्वारोचिषे मन्वन्तरे स्वरोचिषालिङ्गने मृग्यादिव्याङ्गनात्व-प्राप्ति वर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।

पुत्र, मित्र और पत्नियों में आसक्त चित्त वाले प्राणी, तालाब की कीचड़ रूपी समुद्र में फंसे हुए, जंगल के बूढ़े हाथी के समान दुःखित रहते हैं। अथवा हे भद्रे ! क्या तुम बाल्यावस्था से ही काम में आसक्त स्नेह रूपी जल की कीचड़ में फंसे हुए स्वरोचिष को नहीं देखती हो ? ।।३७-३८।।

यौवनकाल में और इस समय भी पत्नी, पुत्र और नातियों में अत्यधिक आसक्त स्वरोचिष का मन किस प्रकार उद्धार को प्राप्त हो सकेगा ? ।।३९।।

हे जलचरि ! मैं स्वरोचिष के समान स्त्रियों के अधीन नहीं हूँ। अब मैं विवेकवान् और भोगों से निवृत्त हो गया हूँ ।।४०।।

मार्कण्डेय बोले—

पक्षी द्वारा कहे गये इन वचनों को सुनकर निर्वेद उत्पन्न हो जाने के कारण स्वरोचिष पत्नियों को साथ लेकर तपस्या के लिए दूसरे तपोवन में चला गया ।।४१।।

वहाँ उन्होंने उन पत्नियों के साथ अत्यन्त कठोर तप करके सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर वह मल रहित लोकों को चला गया ।।४२।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में स्वरोचिष मन्वन्तर में स्वरोचिष के द्वारा मृगी के आलिंगन से दिव्याङ्गना प्राप्ति वर्णन नामक तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स्वारोचिषं नाम्ना द्युतिमन्तं प्रजापतिम् । मनुं चकार भगवांस्तस्य मन्वन्तरं शृणु ।।१

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद भगवान् ने स्वारोचिष नाम के कान्तिमान् प्रजापति को मनु बना दिया। अब आप उनके मन्वन्तर (के विषय में) सुनिये ।।१।।

तत्रान्तरे तु ये देवा मुनयस्तत्सुताश्च ये । भूपालाः क्रोष्टुके ये तान् गदतस्त्वं निशामय ।।२
देवाः पारावतास्तत्र तथैव तुषिता द्विज । स्वारोचिषेऽन्तरे चेन्द्रो विपश्चिदिति विश्रुतः ।।३
ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राणो दत्तोलिर्ऋषभस्तथा । निश्चरश्चार्ववीराश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ।।४
चैत्रकिंपुरुषाद्याश्च सुतास्तस्य महात्मनः । सप्तासन् सुमहावीर्याः पृथिवीपरिपालकाः ।।५
तस्य मन्वन्तरं यावत्तावत्तद्वंशविस्तरे । भुक्तेयमवनिः सर्वा द्वितीयं वै तदन्तरम् ।।६
स्वरोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य च । निशम्य मुच्यते पापैः श्रद्दधानो हि मानवः ।।७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे स्वरोचिषकथानकसमाप्तिवर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।

हे क्रोष्टुके ! उस मन्वन्तर में जो देवता, मुनि और उनके पुत्र राजा आदि हुए मैं उनको कहता हूँ, तुम सुनो ।।२।।

हे द्विज ! उस स्वरोचिष मन्वन्तर में देवताओं को पारावत एवं तुषितों तथा इन्द्र को विपश्चित् कहा जाता था ।।३।।

उस (मन्वन्तर में) ऊर्ज, स्तम्ब, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्चर, अर्ववीरः आदि सात ऋषि हुए ।।४।।

उन महात्मा (स्वरोचिष) मनु के चैत्र और किम्पुरुष आदि सात पुत्र हुए जो अति बलशाली थे और जिन्होंने पृथ्वी का परिपालन किया ।।५।।

उनका मन्वन्तर जितने दिन का था, तब तक उनके वंश का विस्तार हुआ एवं इस समस्त पृथ्वी को भोगा । सभी मन्वन्तरों में स्वारोचिष मन्वन्तर दूसरा है और उसके बाद अन्य आता है ।।६।।

स्वरोचिष के चरित और स्वारोचिष के जन्म को जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक सुनता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है ।।७।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में स्वरोचिष कथानक समाप्ति वर्णन नामक चौसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चषष्टितमोऽध्याय

क्रौष्टुकिरुवाच—
भगवन् कथितं सर्वं विस्तरेण त्वया मम । स्वरोचिषस्तु चरितं जन्म स्वारोचिषस्य तु ।।१
या तु सा पद्मिनी नाम विद्या भोगोपपादिका । तत्संश्रया ये निधयस्तान् मे विस्तरतो वद ।।२

क्रौष्टुकि बोले —

हे भगवन् ! आपने जो मुझसे स्वरोचिष का चरित्र और स्वारोचिष के जन्म (के विषय में) सब कुछ विस्तार से कहा ।।१।।

किन्तु सब भोगों का सम्पादन करने वाली जो पद्मिनी नाम की विद्या थी तथा उसके आश्रित जो निधियाँ थीं, उनको मुझसे विस्तार पूर्वक बताइये ।।२।।

अष्टौ ये निधयस्तेषां स्वरूपं द्रव्यसंस्थितिः। भवताभिहितं सम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ।।३

मार्कण्डेय उवाच—

पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याश्च देवता। तदाधाराश्च निधयस्तन्मे निगदतः शृणु ।।४

यत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ। मुकुन्दो नंदकश्चैव नीलः शङ्खोऽष्टमो निधिः ।।५

सत्यामृद्धौ भवन्त्येते सिद्धिस्तेषां हि जायते। एते ह्यष्टौ समाख्याता निधयस्तव क्रौष्टुके ।।६

देवतानां प्रसादेन साधु-संसेवनेन च। एभिरालोकितं वित्तं मानुषस्य सदा मुने ।।७

यादृक् स्वरूपं भवति तन्मे निगदतः शृणु। पद्मो नाम निधिः पूर्वं स यस्य भवति द्विज ।।८

स तस्य तत्सुतानां च तत्पौत्राणां च नित्यशः। दाक्षिण्यसारः पुरुषस्तेन चाधिष्ठितो भवेत् ।।९

सत्त्वाधारो महाभागो यतोऽसौ सात्त्विको निधिः। सुवर्णरूप्यताम्रादिधातूनां च परिग्रहम् ।।१०

करोत्यतितरां सोऽथ तेषां च क्रयविक्रयम्। करोति च तथा यज्ञान् दक्षिणां च प्रयच्छति ।।११

(संपादयति कामांश्च सर्वानेव यथाक्रमम्)। सभां देवनिकेतांश्च स कारयति तन्मनाः ।।१२

सत्त्वाधारो निधिश्चान्यो महापद्म इतिश्रुतः। सत्त्वप्रधानो भवति तेन चाधिष्ठितो नरः ।।
करोति पद्मरागादि रत्नानां च परिग्रहम् ।।१३

हे गुरु ! जो आठ निधियाँ हैं मैं उनके स्वरूप और द्रव्य संस्थिति को सम्यक् प्रकार से आपके मुख से सुनना चाहता हूँ ।।३।।

मार्कण्डेय बोले—

पद्मिनी नाम की जो विद्या है उसकी अधिष्ठातृ देवी लक्ष्मी है जो उनका आधार है। अतः अब तुम मुझसे उन निधियों के विषय में सुनो ।।४।।

जहाँ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नंदक, नील और शंख ये आठ निधियाँ हैं ।।५।।

ऋद्धि होने पर ही उनकी उत्पत्ति होती है और इन निधियों की सिद्धि होती है। हे क्रौष्टुकि ! ये ही आठ निधियाँ मैंने तुमसे कहीं ।।६।।

हे मुने ! देवताओं की कृपा और साधुओं की सम्यक् सेवा से प्राप्त इन निधियों के द्वारा मनुष्य का चित्त सदैव आलोकित रहता है ।।७।।

इन निधियों का जैसा स्वरूप होता है वह मैं तुम्हें बता रहा हूँ—पहले पद्म नामक निधि को सुनो। हे द्विज ! यह निधि जिसके पास रहती है ।।८।।

उदारचेता वह पुरुष और उसके पुत्र, पौत्र सभी सदैव ही उससे अधिष्ठित (युक्त) रहते हैं ।।९।।

हे महाभाग ! यह निधि सतोगुण के आधार वाली है, अतः उत्तम सतोगुणी निधि है इससे युक्त मनुष्य स्वर्ण, चांदी और तांबा आदि धातुओं को धारण करता है ।।१०।।

और वह पुरुष इनका अत्यधिक क्रय-विक्रय भी करता है। वह यज्ञ करता है और (ब्राह्मणों को) दक्षिणा प्रदान करता है ।।११।।

क्रमानुसार यह निधि मनुष्य की सभी प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करती है और वह पुरुष ऐश्वर्य-चित्त से देव तुल्य सभा भवन का निर्माण कराता है ।।१२।।

और सत्त्व आधार वाली दूसरी निधि महापद्म इस नाम से सुनी गयी है। उससे युक्त पुरुष सतोगुण प्रधान एवं पद्मराग आदि रत्नों का परिग्रह करने वाला होता है ।।१३।।

मौक्तिकानां प्रवालानां तेषां च क्रयविक्रयान् । ददाति योगशीलेभ्यस्तेषामावसथांस्तथा ॥१४
स कारयति तच्छीलः स्वयमेव च जायते । तत्प्रसूतास्तथा शीलः पुत्रपौत्रक्रमेण च ॥१५
पूर्वर्द्धिमात्रः सप्तासौ पुरुषांश्च न मुञ्चति । तामसो मकरो नाम निधिस्तेनावलोकितः ॥१६
पुरुषोऽथ तमः प्रायः सुशीलोऽपि हि जायते । वाणखड्गर्ष्टिधनुषां चर्मणां च परिग्रहम् ॥१७
दंशनानां च कुरुते, याति मैत्रीं च राजभिः । ददाति शौर्यवृत्तीनां भूभुजां ये च तत्प्रियाः ॥१८
क्रयविक्रये च शस्त्राणां नान्यत्र प्रीतिमेति च । एकस्यैव भवत्येष नरस्य न सुतानुगः ॥१९
द्रव्यार्थं दस्युतो नाशं संग्रामे वापि स व्रजेत् । कच्छपश्च निधिर्योऽसौ नरस्तेनाभिवीक्षितः ॥२०
तमः प्रधानो भवति यतोऽसौ तामसो निधिः । व्यवहारानशेषांस्तु पुण्यजातैः करोति च ॥२१
कर्मस्थानखिलांश्चैव न विश्वसिति कस्यचित् । समस्तानि यथाङ्गानि संहरत्येव कच्छपः ॥२२
तथाविष्टभ्य रत्नानि तिष्ठत्याकुलमानसः । न ददाति नवा भुङ्क्ते तद्विनाशभयाकुलः ॥२३
निधानमुर्व्यां कुरुते निधिः सोऽप्येकपूरुषः । रजोगुणमयश्चान्यो मुकुन्दो नाम यो निधिः ॥२४

और प्रवालादि मोतियों का क्रय विक्रय करता है तथा योगियों के लिए यथा योग्य आवास स्थान की व्यवस्था करता है ॥१४॥

और उसका भी आचरण उनके समान बन जाता है। उससे उत्पन्न पुत्र और पौत्रादि भी उसी प्रकार के आचरण वाले होते हैं ॥१५॥

पूर्व में प्राप्त यह निधि पुरुषों को सात पीढियों तक नहीं छोड़ती हैं तथा जो तमोगुण प्रधान मकर नाम की निधि है, उससे अधिष्ठित पुरुष तमोगुण प्रधान और सुशील होता है। ऐसा मनुष्य बाण, खड्ग, ऋष्टि ,धनुष और ढाल आदि का तथा काटने वाले आयुधों का संचय करने वाला होता है ॥१६-१७॥

राजाओं के साथ मैत्री स्थापित करता है और शौर्य वृत्ति वाले जो राजा उसको प्रिय हैं, उनको सहायता देता है ॥१८॥

शस्त्र-अस्त्रों के क्रय-विक्रय के अतिरिक्त अन्यत्र उसकी प्रीति नहीं होती। यह निधि एक मनुष्य को ही प्राप्त होती है। पुत्रों का अनुकरण करने वाली नहीं होती ॥१९॥

धन के लिए वह दस्यु से मृत्यु प्राप्त करता है अथवा युद्ध में नाश को प्राप्त करता है और जो कच्छप नामक निधि है, उससे युक्त मनुष्य, ॥२०॥

तमोगुण प्रधान होता है क्योंकि यह तामसी निधि है। (तमोगुण प्रधान वह पुरुष) पुण्य-शील पुरुषों के साथ सम्पूर्ण व्यवहार करता है तथा कर्म स्थानों का निर्माण करता है। वह किसी का विश्वास नहीं करता। जिस प्रकार कछुआ अपने सम्पूर्ण अंगों को सिकोड़ लेता है ॥२१-२२॥

उसी प्रकार रत्नों को एकत्र करके (यह कच्छप निधि वाला मनुष्य) व्याकुल मन से उसके ऊपर बैठा रहता है और विनाश के भय से बेचैन हुआ वह न तो किसी को देता है और न ही उसका भोग करता है ॥२३॥

धन को पृथ्वी में गाड़ कर रखता है, वह निधि भी केवल एक पुरुष तक ही पृथ्वी पर रहती है और रजोगुण प्रधान जो अन्य निधि है, उसका नाम मुकुन्द है ॥२४॥

नरोऽवलोकितस्तेन तद्गुणोभवति द्विज । वीणावेणुमृदङ्गानामातोद्यस्य परिग्रहम् ।।२५
करोति, गायतां वित्तं नृत्यतां च प्रयच्छति । बन्दिमागधसूतानां विटानां लास्यपाटिनाम् ।।२६
ददात्यहर्निशं भोगान् भुङ्क्ते तैश्च समं द्विज । कुलटासु रतिश्चास्य भवत्यन्यैश्च तद्विधैः ।।
प्रयाति सङ्गमेकं च यं निधिर्भजते नरम् ।।२७
रजस्तमोमयश्चान्यो नन्दो नाम महानिधिः ।।२८
उपैति स्तम्भमधिकं नरस्तेनावलोकितः । समस्तधातुरत्नानां पुण्यधान्यादिकस्य च ।।
परिग्रहं करोत्येष तथैव क्रयविक्रयम् ।।२९
आधारः स्वजनानां च आगताभ्यागतस्य च । सहते नापमानोक्तिं स्वल्पामपि महामुने ।।३०
स्तूयमानश्च महतीं प्रीतिं बध्नाति च यच्छति ।।३१
यं यमिच्छति वै कामं मृदुत्वमुपयाति च ।
बह्व्यो भार्य्या भवन्त्यस्य सूतिमत्योऽतिशोभनाः ।।३२
भजते सप्त च नरान्निधिर्नन्दोऽवनुर्तते । प्रवर्द्धमानोऽथ नरमष्टभागेन सत्तम ।।३३
दीर्घायुष्ट्वं च सर्वेषां पुरुषाणां प्रयच्छति । बन्धूनामेव भरणं ये च दूरादुपागताः ।।३४

उसके द्वारा देखा गया मनुष्य, हे द्विज ! उसके गुण से युक्त हो जाता है तथा वीणा, वेणु, मृदङ्ग, आदि आतोद्य वाद्यों का संग्रह करता है ।।२५।।

गायकों, नर्तकों, बंदी, मागध, सूत, विट, लास्यपाठी (सुन्दर पाठ करने वालों) को धन प्रदान करता है ।।२६।।

हे द्विज ! दिन रात उन सबके साथ भोगों को भोगता एवं उनको भी देता है तथा इसी (प्रीति) कुलयक्त्रियों अथवा उनके समान अन्यों के साथ सुरत व्यापार में रहती है । यह निधि जिस मनुष्य के पास रहती है केवल उसी का अनुसरण करती है ।।२७।।

नन्द नाम की अन्य महानिधि रजोगुण और तमोगुण सम्पन्न है ।।२८।।

जिस मनुष्य पर इस (निधि) की कृपा दृष्टि होती है, वह अत्यधिक स्तम्भित रहता है और समस्त धातु, रत्नों, पुण्य द्रव्य और धान्यादि का जिस प्रकार संग्रह करता है, उसी प्रकार उनका क्रय-विक्रय भी करता है ।।२९।।

स्वजनों, अतिथियों और अभ्यागतों का आधार (आश्रय) होता है । और हे महामुने ! (इस निधि से सम्पन्न पुरुष) अपमान की बात को तनिक भी सहन नहीं करता है । प्रशंसा किये जाने पर अति प्रसन्न होता है और दान देता है ।।३०-३१।।

जिस-जिस को वह बहुत चाहता है उसके प्रति अत्यधिक मृदुलता का व्यवहार करता है । इसकी संतति अत्यन्त सुन्दर तथा बहुत सी पत्नियाँ होती हैं । नन्द नाम की यह निधि क्रमशः अष्टमांश होती हुई मनुष्य का सात पीढ़ियों तक अनुसरण करती है । हे सज्जन ! इसके आठवें भाग से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, मनुष्य भोगों को भोगता है ।।३२-३३।।

सभी पुरुषों को यह दीर्घ आयुष्य प्रदान करती है । वह मनुष्य बन्धुओं और दूर से आये हुए सब मनुष्यों का परिपालक होता है ।।३४।।

तेषां करोति वै नन्दः परलोकेन चादृतः । भवत्यस्य न च स्नेहः सहवासिषु जायते ॥३५
पूर्व-मित्रेषु शैथिल्यं प्रीतिमन्यैः करोति च । तथैव सत्त्वरजसी यो बिभर्ति महानिधिः ॥३६
स नीलसंज्ञस्तत्सङ्गी नरस्तच्छीलवान् भवेत् । वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥३७
मुक्ताविद्रुमशङ्खानां शुक्त्यादीनां तथा मुने । काष्ठादीनां करोत्येष यच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥
क्रयविक्रयमन्येषां नान्यत्र रमते मनः ॥३८
तडागान्पुष्करिण्योऽथ तथा रामान् करोति च ॥३९
बन्धं च सरितां वृक्षांस्तथारोपयते नरः । अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वाभिजायते ॥४०
त्रिपौरुषश्चापि निधिर्नीलो नामैष जायते । रजस्तमोमयश्चान्यः शङ्खसंज्ञो हि यो निधिः ॥४१
तेनापि नीयते विप्र तद्गुणोत्वं निधीश्वरः । एकस्यैव भवत्येष नरं नान्यमुपैति च ॥४२
यस्य शंखो निधिस्तस्य स्वरूपं क्रौष्टुके शृणु । एक एवात्मना सृष्टमन्नं भुङ्क्ते तथाम्बरम् ॥४३
कदन्नभुक्परिजनो न च शोभनवस्त्रधृक् । न ददाति सुहृद्भार्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ॥४४
स्वपोषणपरः शङ्खी नरो भवति सर्वदा । इत्येते निधयः ख्याता नराणामर्थदेवताः ॥४५

नन्द सिद्धि से युक्त मनुष्य न तो परलोक में आदर प्राप्त करता है और न ही साथ में रहते हुए (नगरवासियों) पर ही इसका स्नेह हो पाता है ॥३५॥

पहले मित्रों की मित्रता में शिथिलता और दूसरों में प्रीति करता है। उसी प्रकार जो महानिधि सतोगुण और रजोगुण को धारण करती है, वह निधि नील नाम वाली है। उससे सम्पन्न पुरुष उसके गुणों (सतोगुण और रजोगुण) से मुक्त हो जाता है और वस्त्र, कपास, फल, पुष्प और धान्य आदि का परिग्रह करता है ॥३६-३७॥

और हे मुने ! यह मोती, विद्रुम, शंख, शुक्ति, काष्ठ, और दूसरी जो जल से उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ हैं उन सबका क्रय-विक्रय करता है। इनके अतिरिक्त अन्यत्र इसका मन ही नहीं लगता ॥३८॥

वह पुरुष तालाबों, पुष्पों से सम्पन्न सरोवर एवं सुन्दर उद्यानों का निर्माण कराता है। नदियों के पुल बनवाता है और वृक्षों को लगवाता है तथा अंगराग पुष्प आदि का सेवन करता रहता है ॥३९-४०॥

नील नाम की यह निधि तीन पीढ़ियों तक रहती है। रजोगुण और तमोगुण सम्पन्न जो अन्य शंख नामक निधि है ॥४१॥

हे विप्र ! उसके द्वारा भी इस निधि का स्वामी पुरुष उन गुणों से सम्पन्न करा दिया जाता है। यह निधि केवल एक पुरुष की ही होती है, दूसरे के पास नहीं जाती है ॥४२॥

हे क्रौष्टुकि ! जिसके पास शंख निधि है, अब उस पुरुष के स्वरूप को सुनो। वह पुरुष अकेला ही स्वोपार्जित अन्न एवं वस्त्रों का भोग करता है ॥४३॥

लेकिन उसके परिजन निकृष्ट अन्न का भोग करने वाले और अशोभन वस्त्रों को धारण करने वाले होते हैं। वह अपने मित्र, पत्नी और भ्राता, पुत्र, पुत्रवधू आदि के भरण-पोषण के लिए कुछ भी नहीं देता है ॥४४॥

शंख निधि सम्पन्न पुरुष सदैव केवल अपने पोषण में ही लगा रहता है। इस प्रकार ये निधियाँ मनुष्यों की अर्थ देवी के रूप में प्रसिद्ध हैं ॥४५॥

मिश्रावलोकनान्मिश्राः स्वभावफलदायिनः । यथाख्यातस्वभावस्तु भवत्येव विलोकनात् ।।
सर्वेषामाधिपत्ये च श्रीरेषां द्विज पद्मिनी ।।४६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे निधिवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ।

संयुक्त रूप से देखने वाले पुरुषों को ये निधियाँ संयुक्त रूप से फल प्रदान करती हैं। इनका जैसा स्वभाव कहा गया है, उनको वैसा ही देखने से मनुष्य उनके समान हो जाता है। हे द्विज ! श्री रूपिणी पद्मिनी विद्या इन निधियों के आश्रय में ही अधिष्ठित हैं ।।४६।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में निधि वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षट्षष्टितमोऽध्यायः

क्रोष्टुकिरुवाच —

विस्तरात् कथितं ब्रह्मन् मम स्वारोचिषं त्वया । मन्वन्तरं तथैवाष्टौ ये पृष्टा निधयो मया ।।१
स्वायम्भुवं पूर्वमेव मन्वन्तरमुदाहृतम् । मन्वन्तरं तृतीयं मे कथयौत्तमसंज्ञितम् ।।२

मार्कण्डेय उवाच—

उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमो नाम नामतः । सुरुच्यास्तनयः ख्यातो महाबलपराक्रमः ।।३
धर्मात्मा च महात्मा च पराक्रमधनो नृपः । अतीत्य सर्वभूतानि बभौ भानुपराक्रमः ।।४
समः शत्रौ च मित्रे च परे पुत्रे च धर्मवित् । दुष्टे च यमवत् साधौ सोमवच्च महामुने ।।५
बाभ्रव्यां बहुलां नाम उपयेमे स धर्मवित् । उत्तानपादतनयः शचीमिन्द्र इवोत्तमः ।।६

क्रोष्टुकि बोले—

हे ब्रह्मन् आपने मुझसे स्वरोचिष मन्वन्तर एवं मेरे द्वारा पूछी गयी आठों निधियों के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक कहा ।।१।।

स्वायम्भुव मन्वन्तर का पहले ही वर्णन कर दिया गया है, अतः अब आप मुझे औत्तम नाम वाले तृतीय मन्वन्तर को कहिये ।।२।।

मार्कण्डेय बोले—

राजा उत्तानपाद का महाबली और अत्यन्त पराक्रमी उत्तम नाम का पुत्र सुरुचि के गर्भ से हुआ ।।३।।

धर्मात्मा, महात्मा और पराक्रमी उस राजा ने सभी प्राणियों को अतिक्रान्त करके सूर्य के समान पराक्रम को प्राप्त हुए ।।४।।

हे महामुने ! वह धर्मज्ञ राजा शत्रु, मित्र, पर और पुत्र में समान व्यवहार करते थे। वे दुष्ट के लिए यमराज के समान, साधु (सज्जन) के लिए चन्द्रमा के समान थे ।।५।।

जिस प्रकार इन्द्र ने शची के साथ विवाह किया उसी प्रकार राजा उत्तानपाद के पुत्र धर्मवेत्ता ने बभ्रूसुता बहुला नाम की कन्या के साथ विवाह किया ।।६।।

तस्यामतीव तस्यासीद् द्विजवर्य मनः सदा । स्नेहवच्छशिनो यद्वद्रोहिण्यां निहितास्पदम् ॥७
अन्यप्रयोजनासक्तिमुपैति न हि तन्मनः । स्वप्ने चैव तदालम्बिमनोऽभूत्तस्य भूभृतः ॥८
स च तस्याः सुचार्वङ्ग्या दर्शनादेव पार्थिवः । ददाह लोचनैर्गात्रे गात्रस्पर्शश्च तन्मयः ॥९
श्रोत्रोद्वेगकरं वाक्यं प्रियमप्यवनीपतेः । तस्यापि भूरि सन्मानं मेने परिभवं ततः ॥१०
अवमेने स्रजं दत्तां शुभान्याभराणानि च । उत्तस्थावर्धपीतेव पिबतोऽस्य वरासवम् ॥११
भुञ्जता च नरेन्द्रेण क्षणमात्रं करे धृता । बुभुजे स्वल्पकं भक्ष्यं द्विज नातिमुदावती ॥१२
एवं तस्यानुकूलस्य नानुकूला महात्मनः । प्रभूततरमत्यर्थं चक्रे रागं महीपतिः ॥१३
अथ पानगतो भूपः कदाचित्तां मनस्विनीम् । सुराभृतं पानपात्रं ग्राहयामास स सादरः ॥१४
पश्यतां भूमिपालानां वारमुख्यासमन्वितः । प्रगीयमानो मधुरैर्गेयगायन तत्परैः ॥१५
सा तु नेच्छति तत्पात्रमादातुं तत्पराङ्मुखी । समक्षमवनीशानां ततः क्रुद्धः स पार्थिवः ॥१६
उवाच द्वाःस्थमाहूय निश्वसन्नुरगो यथा । निराकृतस्तया देव्या प्रियया पतिरप्रियः ॥१७
द्वाःस्थैनां दुष्टहृदयामादाय विजने वने । परित्यज्याशु नैतत्ते विचार्यं वचनं मम ॥१८

हे द्विजश्रेष्ठ ! जिस प्रकार चन्द्रमा का चित्त रोहिणी में सदैव अनुरक्त रहता है, उसी प्रकार उस उत्तम का मन उस बहुला नामक कन्या में अत्यधिक आसक्त था ॥७॥

उसका मन अन्य किसी प्रयोजन की ओर आसक्त नहीं होता था, यहाँ तक कि स्वप्न में भी उस राजा का मन उसी में आसक्त रहता था ॥८॥

और वह राजा सुन्दर अंगों वाली उसके दर्शन से ही अपने नेत्रों को तृप्त करता रहता था और उसके शरीर से अपने शरीर का स्पर्श करके तन्मय हो जाता था ॥९॥

लेकिन बहुला को उस राजा के प्रिय वाक्य भी कटु (उद्वेग कर) प्रतीत होते थे और उसके द्वारा किये गये अत्यधिक सम्मान को भी वह अपना अपमान मानती थी ॥१०॥

और वह उनके द्वारा दिये गये मनोहर आभूषणों और मालाओं के प्रति भी अवज्ञा व्यक्त करती थी और इस (राजा) के उत्तम आसव पान करते हुए, आधा पीने पर ही वह उठ जाती थी और हे द्विज ! भोजन करते हुए राजा के द्वारा हाथ पकड़कर बैठायी गयी भी वह अप्रसन्न मन से क्षण मात्र में ही अल्पाहार करती थी ॥११-१२॥

इस प्रकार अनुकूल आचरण वाले उस महात्मा के प्रति प्रतिकूल आचरण करने वाली उस बहुला के प्रति भी राजा अत्यधिक अनुराग करता था ॥१३॥

एक बार कभी मद्यशाला में गये हुए राजा ने उस मनस्विनी (बहुला) को आदर पूर्वक सुरा से भरा हुआ पान पात्र पकड़ाया ॥१४॥

राजाओं के देखते हुए, मधुर स्वर से उत्तम गीतों के गायन में तत्पर, वराङ्गनाओं से घिरे हुए, ॥१५॥ उसने उस पात्र को लेने की इच्छा नहीं की और उससे मुँह फेर लिया (तथा) अन्य राजाओं के सामने ही वह राजा क्रुद्ध हुआ । सर्प के समान, निःश्वास छोड़ते हुए क्रुद्ध हुए उस राजा ने द्वारपाल को बुलाकर कहा— मुझे प्रिय होते हुए भी उस देवी ने मुझे अप्रिय मान कर मेरा तिरस्कार किया है ॥१६-१७॥

हे द्वारपाल ! दुष्ट हृदय वाली इसको शीघ्र ही यहाँ से ले जाकर निर्जन वन में छोड़ आओ । मेरे वचन तुम्हारे लिए विचारणीय (शंका योग्य) नहीं हैं ॥१८॥

मार्कण्डेय उवाच—

ततो नृपस्य वचनमविचार्यमवेक्ष्य सः । द्वास्थस्तत्याज तां सुभ्रूमारोप्य स्यन्दने वने ।।१९
सा च तं विपने त्यागं नीता तेन महीभृता । अपश्यमाना तं मेने परं कृतमनुग्रहम् ।।२०
सोऽपि तत्रानुरागार्ति दह्यमानात्ममानसः । औत्तानपादिर्भूपालो नान्यां भार्यामविन्दत ।।२१
सस्मार तां सुचार्वंगीमहर्निशमनिर्वृतः । चकार च निजं राज्यं प्रजाधर्मेण पालयन् ।।२२
प्रजाः पालयतस्तस्य पितुः पुत्रानिवौरसान् । आगत्य ब्राह्मणः कश्चिदिदमाहार्त्तमानसः ।।२३

ब्राह्मण उवाच—

महाराज भृशार्त्तोऽस्मि श्रूयतां गदतो मम । नृणामार्तिपरित्राणमन्यतो न नराधिपात् ।।२४
मम भार्या प्रसुप्तस्य केनाप्यपहृता निशि । गृहद्वारमनुद्घाट्य तां समानेतुमर्हसि ।।२५

राजोवाच —

न वेत्सि केनापहृता क्व वा नीता तु सा द्विज । यतामि विग्रहे कस्य कुतो वाप्यानयामि ताम् ।।२६

ब्राह्मण उवच —

तथैव स्थगिते द्वारि प्रसुप्तस्य गृहे मम । हृता हि भार्या किं केनेत्येतद्विज्ञायते भवान् ।।२७

मार्कण्डेय बोले—

तब राजा के वचनों को विचारणीय न मानते हुए उस द्वारपाल ने सुन्दर भौंहों वाली उस (बहुला) को रथ पर बैठाकर वन में छोड़ दिया ।।१९।।

राजा द्वारा रानी को वन में छोड़े जाने पर, अब राजा का दर्शन नहीं होता, ऐसा सोचकर रानी ने राजा का अनुग्रह ही माना, ।।२०।।

वह राजा भी उसमें अनुराग के कारण दुःखित हो अपने मन को जलाते हुए उत्तानपाद के पुत्र उस राजा ने किसी अन्य पत्नी का ग्रहण नहीं किया ।।२१।।

और रात-दिन चारु अंगों वाली, उसको स्मरण करते हुए, अशान्त चित्त उस राजा ने धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करते हुए, अपना राज्य चलाया ।।२२।।

औरस पुत्र के समान प्रजा का पालन करते हुए पिता तुल्य उस राजा के पास दुःखित हृदय कोई ब्राह्मण आकर (इस प्रकार) बोला, ।।२३।।

ब्राह्मण बोला —

हे महाराज ! मैं अत्यन्त दुःखी हूँ, मेरी कही हुई बात को सुनिये, क्योंकि राजा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी दुःखी मनुष्यों का त्राण सम्भव नहीं है ।।२४।।

रात्रि में सोते हुए मेरी पत्नी का घर के द्वार को खोले बिना ही किसी ने हरण कर लिया है। आप उसे लाकर देने में समर्थ हैं ।।२५।।

राजा बोला—

हे द्विज ! क्या तुम नहीं जानते हो कि उसका किसने हरण किया है ? कहाँ ले जाया गया है ? मैं किसके बन्धन से छुड़ाने का प्रयत्न करूँ ? अथवा उसको किस स्थान पर ले आऊँ ? ।।२६।।

ब्राह्मण बोला —

द्वार के उसी प्रकार बन्द रहने पर और घर में मेरे सोते रहने पर मेरी पत्नी किस प्रकार और किसके द्वारा हरण कर ली गयी, यह तो आप ही जानते हैं ।।२७।।

त्वं रक्षिता नो नृपते षड्भागादानवेतनः। धर्मस्य तेऽतो निश्चिन्ताः स्वपन्ति मनुजा निशि ।।२८

राजोवाच—

न ते दृष्टा मया भार्या यादृग् रूपा च देहतः। वयश्चैव समाख्याहि किं शीला ब्राह्मणी च ते ।।२९

ब्राह्मण उवाच—

कठोरनेत्रा सात्युच्चा ह्रस्ववाहुः कृशानना।
(लम्बोदरीं ह्रस्वस्फिचं तथा ह्रस्वस्तनीं नृप)
विरूपरूपा भूपाल न निन्दामि तथैव ताम् ।।३०

वाचि भूपातिपरुषा न सौम्या सा च शीलतः। इत्याख्याता मया भार्या सा करालनिरीक्षणा ।।३१

मनागतीतं भूपाल तस्याश्च प्रथमं वयः। तादृग्रूपा हि मे भार्या सत्यमेतन्मयोदितम् ।।३२

राजोवाच—

अलं ते ब्राह्मण तया भार्यामन्यां ददामि ते। सुखाय भार्या कल्याणी दुःखहेतुर्हि तादृशी ।।३३

अल्पाकुरूपता विप्र कारणं शीलमुत्तमम्। रूपशीलविहीनाया त्याज्या सा तेन हेतुना ।।३४

ब्राह्मण उवाच—

रक्ष्या भार्या महीपाल इति च श्रुतिरुत्तमा। भार्यायां रक्ष्यमाणायां प्रजा भवति रक्षिता ।।३५

हे राजन्! धर्म के छठे भाग को वेतन स्वरूप ग्रहण करने वाले आप ही हमारे रक्षक हैं। इसीलिए वे सब मनुष्य रात्रि में निश्चिन्त होकर सोते हैं ।।२८।।

राजा बोला—

मैंने तुम्हारी पत्नी को कभी देखा भी नहीं है, अतः तुम्हारी ब्राह्मणी जिस स्वरूप, शरीर, वयस् एवं आचरण वाली है, यह तुम बताओ ।।२९।।

ब्राह्मण बोला—

मेरी पत्नी शुष्क नयन, दीर्घ आकार, छोटी भुजा, कृशमुख, लम्बा उदर और सूक्ष्म हाथ, छोटे स्तन वाली अत्यन्त कुरूप है। हे राजन्! फिर भी मैं उसको निन्दनीय नहीं मानता हूँ ।।३०।।

हे राजन्! वह वाणी से अति कठोर है और शील स्वभाव से भी वह सौम्य नहीं है। उसकी प्रथम आयु थोड़ी-थोड़ी ढल चुकी है। हे भूपाल! इस प्रकार की कठोर दृष्टि वाली मेरी भार्या है। यह सब यथार्थ रूप में मैंने आपको बता दिया है ।।३१-३२।।

राजा बोला—

हे विप्र! उस प्रकार की उस पत्नी से बस करो (रखने से क्या लाभ है?) मैं तुम्हें दूसरी पत्नी देता हूँ क्योंकि कल्याणकारी पत्नी सुख देती है और उस प्रकार की मात्र दुःख का ही कारण होती है ।।३३।।

हे विप्र! अल्प कुरूपता, उत्तम शील का कारण है। रूप और शील से रहित पत्नी त्याज्य होती है ।।३४।।

ब्राह्मण बोला—

हे महीपाल! 'स्त्री की रक्षा करनी चाहिए', यह उत्तम श्रुति कही गयी है। पत्नी की रक्षा किये जाने पर ही सन्तान की रक्षा होती है ।।३५।।

आत्मा हि जायते तस्यां सा रक्ष्याऽतो नरेश्वर। प्रजायां रक्ष्यमाणायामात्मा भवति रक्षितः ॥३६
तस्यामरक्ष्यमाणायां भविता वर्णसङ्करः। स पातयेन्महीपाल पूर्वान्स्वर्गादधः पितृन् ॥३७
अनुज्ञाय गुरुं राजन् दत्त्वान्यां जातवेदसे ॥३८
समिधं तु मया भार्या वृत्तेयं कर्कशायतः। कथमेतां विहायान्यभार्यया सह संचरे ॥३९
गृह्यधर्मो यतो ब्रह्म प्राप्यते शाश्वतं नरैः। पूर्वोढया तु धर्मेण गृही कुर्वन्न सीदति ॥४०
त्यक्त्वा तां च क्रियां कुर्वन्नेव कर्मफलं लभेत्। आग्निना सह या नूनं साऽऽजगाम गृहं शुभा ॥४१
धर्मस्य ग्रहणे सा तु पूर्वोढैव प्रशस्यते। शठायाचारणात्तस्या जायते वर्णसंकरः ॥४२
धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्य भवेन्मम। नित्यक्रियाणां विभ्रंशात् स चापि पतनाय मे ॥४३
तस्यां च पृथिवीपाल भवित्री मम सन्ततिः। तव षड्भागदात्री सा भवित्री धर्महेतुकी ॥४४
तदेतत्ते मया ख्याता पत्नी या मे हृता प्रभो। तां समानय रक्षायां भवानधिकृतो यतः ॥४५
मार्कण्डेय उवाच—
स तस्यैवं वचः श्रुत्वा विमृश्य च नरेश्वरः। सर्वोपकरणैर्युक्तमारुरोह महारथम् ॥४६

हे नरेश्वर! क्योंकि पत्नी में अपनी आत्मा ही उत्पन्न होती है। अतः पत्नी की भली प्रकार रक्षा करनी चाहिए। संतान की रक्षा करने पर ही अपनी भी रक्षा होती है (आत्मा रक्षित होता है) ॥३६॥

उसकी रक्षा न होने पर उससे वर्णसंकर होता है। वह (वर्णसंकर) ही हे महीपाल! पूर्व पितरों का स्वर्ग से पतन कराता है ॥३७॥

हे राजन्! गुरुजनों की अनुमति से अग्नि में समिधा डालकर (अर्थात् अग्नि को साक्षी बनाकर) ॥३८॥

इस कर्कश पत्नी का मैंने वरण किया है, इसलिए मैं इस भार्या को छोड़कर दूसरी पत्नी के साथ कैसे यह संचरण करूँ? ॥३९॥

क्योंकि गृहस्थ धर्म ही है जिसमें स्थित रहते हुए मनुष्य, शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। पूर्व विवाहित स्त्री के साथ धर्म कार्य करता हुआ, गृहस्थी दुःख को प्राप्त नहीं होता ॥४०॥

उसको त्याग कर (अन्य स्त्री के साथ) क्रियाओं को करते हुए मनुष्य कर्म को प्राप्त नहीं करता है। जो निश्चय ही अग्नि के साथ साक्षी मानकर घर पर लायी गयीं है— वही शुभ होती है ॥४१॥

प्रथम विवाहिता ही धर्म के ग्रहण में प्रशंसनीय है। जो शठ है उसके त्याग से वर्णसंकर होता है ॥४२॥

पत्नी न होने से मेरी प्रतिदिन धर्म की हानि हो रही है क्योंकि नित्य क्रियाओं का विभ्रंश (त्याग) भी मेरे पतन के लिए ही होगा ॥४३॥

हे पृथ्वीपाल! उस (पत्नी) से होने वाली मेरी संतान, तुमको अपनी आय का छठा भाग देने वाली और धर्म का कारण होगी ॥४४॥

अतः हे प्रभो! यह मैंने तुमसे अपनी पत्नी के चुराये जाने की बात कही है। उस मेरी पत्नी को आप लाकर दीजिए, क्योंकि हमारी रक्षा के कार्य में आप ही नियुक्त हैं ॥४५॥

मार्कण्डेय बोले—

उसके इन वचनों को सुनकर और सोचकर वह राजा सभी प्रकार के उपकरणों (आयुधों) से सम्पन्न हो, विशाल रथ पर चढ़ा ॥४६॥

इतश्चेतश्च तेनासौ परिबभ्राम मेदिनीम् । ददर्श च महारण्ये तापसाश्रममुत्तमम् ॥४७
अवतीर्य च तत्रासौ प्रविश्य ददृशे मुनिम् । कौश्यां वृष्यां समासीनं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥४८
स दृष्ट्वा नृपतिं प्राप्तं समुत्थाय त्वरान्वितः । सम्मान्य स्वागतेनैव शिष्यमाहार्घ्यमानय ॥४९
तमाह शिष्यः शनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्य किं मुने । तदाज्ञापय संचिन्त्य तवाज्ञां हि करोम्यहम् ॥५०
ततोऽवगतवृत्तान्तो भूपतेस्तस्य स द्विजः । सम्भाषासनदानेन चक्रे सम्मानमात्मवान् ॥५१

ऋषिरुवाच —

किं निमित्तमिहायातो भवान् किं ते चिकीर्षितम् । उत्तानपादतनयं वेद्मि त्वामुत्तमं नृप ॥५२

राजोवाच —

ब्राह्मणस्य गृहाद् भार्या केनाप्यपहृता मुने । अविज्ञातस्वरूपेण तामन्वेष्टुमिहागतः ॥५३
पृच्छामि यत्तेतन्मे त्वं प्रणतस्यानुकम्पया । अभ्यागतस्याथ गृहं भगवन् वक्तुमर्हसि ॥५४

ऋषिरुवाच—

पृच्छ मामवनीपाल यत्प्रष्टव्यमशंकितः । वक्तव्यं चेत्तव मया, कथयिष्यामि तत्त्वतः ॥५५

इधर-उधर पृथ्वी पर घूमते हुए, उसने एक महावन में तपस्वियों का उत्तम आश्रम देखा ॥४७॥

और उतर कर उसने वहाँ (उस आश्रम में) प्रवेश करके कुशा के आसन पर बैठे हुए, तेज से मानों जलते हुए, मुनि को देखा ॥४८॥

राजा को आया हुआ देखकर, शीघ्र उठकर उसने उसका स्वागत सत्कार किया और शिष्य को अर्घ्य लाने की आज्ञा दी ॥४९॥

शिष्य ने उस (मुनि) से धीरे से कहा— हे मुनिवर ! क्या इनको अर्घ्य देना उचित होगा ? इसलिए आप विचार करके आज्ञा दीजिए तब मैं निश्चय ही आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ॥५०॥

तब राजा के वृत्तान्त से अवगत हुए उस आत्मवान् द्विज ने (मात्र) सम्भाषण और आसनादि के द्वारा उसका सम्मान किया ॥५१॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! आप राजा उत्तानपाद के पुत्र हैं (यह मैं भली प्रकार) जानता हूँ । किस कारण से आप यहाँ आये हैं और आपका अभिलषित क्या है ? ॥५२॥

राजा बोले —

हे मुने ! ब्राह्मण के घर से (उसकी) पत्नी को किसी ने चुरा लिया है । अज्ञातस्वरूप वाली उसी को खोजने के लिए मैं यहाँ आया हूँ ॥५३॥

हे भगवन् ! आपके घर पर आया हुआ, विनम्र होकर मैं जो कुछ आपसे पूछता हूँ, वह सब आप कृपा करके मुझसे कहिए ॥५४॥

ऋषि बोले —

हे अवनिपाल ! जो भी तुम पूछना चाहते हो, निःशंक होकर वह सब मुझसे पूछो । यदि वह कहने योग्य होगा तो मैं निश्चय ही तुमसे कहूँगा ॥५५॥

राजोवाच—

गृहागताययो मह्यं प्रथमे दर्शने मुने । त्वया समुद्यतो दातुं कथं सोऽर्घ्यो निर्वर्तितः ।।५६

ऋषिरुवाच -

त्वद्दर्शनेन रभसादाज्ञप्तोऽयं मया नृप । यदा तदाहमेतेन शिष्येण प्रतिबोधितः ।।५७
एष वेत्ति जगत्यत्र मत्प्रसादादनागतम् । यथाहं समतीतं च वर्त्तमानं च सर्वतः ।।५८
आलोच्याज्ञापयेत्युक्ते ततोऽज्ञातं मयापि तत् । ततो न दत्तवानर्घ्यमहं तुभ्यं विधानतः ।।५९
सत्यं राजंस्त्वमर्घ्यार्हः कुले स्वायम्भुवस्य च । तथापि नार्घ्य-योग्यं त्वां मन्यामो-वयमुत्तमम् ।।६०

राजोवाच—

किं कृतं हि मया ब्रह्मन् ज्ञानादज्ञानतोऽपि वा । येन त्वत्तोऽर्घ्यमर्हामि नाहमभ्यागतश्चिरात् ।।६१

ऋषिरुवाच—

किं विस्मृतं ते यत्पत्नी त्वया त्यक्ता च कानने । परित्यक्तस्तया सार्द्धं त्वया धर्मो नृपाखिलः ।।६२
पक्षेण कर्मणो हान्या प्रयात्यस्पृशतां नरः । किमत्र वार्षिकी यस्य हानिस्ते नित्यकर्मणः ।।६३

राजा बोला—

हे मुने ! प्रथम बार आपके दर्शन होने पर आपके घर पर आये हुए मुझको आप जो अर्घ्यादि देने को उद्यत थे आपने वह अर्घ्य क्यों लौटा दिया है ? ।।५६।।

ऋषि बोले—

हे राजन् ! तुम्हारे दर्शन से मैंने जब इसको अर्घ्य लाने के लिए शीघ्रता से आज्ञा दे दी, तो मुझे इस शिष्य ने सावधान किया ।।५७।।

जिस प्रकार मैं अतीत और वर्तमान की चारों ओर की सभी बातें जानता हूँ, उसी प्रकार मेरी अनुकम्पा से (मेरा) यह (शिष्य) भी अनागत (भूत, भविष्य वर्तमान) को जानता है ।।५८।।

'विचार करके ही आज्ञा दें' (उसके) ऐसा कहने पर, मैंने भी उसको जान लिया । इसलिए मैंने तुमको विधिपूर्वक अर्घ्य नहीं दिया ।।५९।।

हे राजन ! स्वायम्भुव के कुल में उत्पन्न आप निश्चय ही अर्घ्य के योग हैं तथापि हम तुमको अर्घ्य प्रदान करने योग्य नहीं मानते हैं ।।६०।।

राजा बोला—

हे ब्रह्मन् ! जाने अनजाने में मैंने क्या (पाप) कर दिया जिसके कारण चिरकाल में आया हुआ भी मैं आपसे अर्घ्य के योग्य नहीं हूँ ? ।।६१।।

ऋषि बोले -

क्या तुम भूल गये हो कि जो पत्नी तुमने जंगल में छोड़ी थी, हे राजन् ! उसके त्यागने के साथ ही तुमने सम्पूर्ण धर्म का त्याग कर दिया था ।।६२।।

एक पक्ष के कर्मों की हानि से ही मनुष्य अस्पृश्य हो जाता है और जिसके नित्य कर्मों की एक वर्ष तक हानि हुई हो, उसका तो कहना ही क्या ? ।।६३।।

पत्न्यानुकूलया भाव्यं यथा शीलेऽपि भर्त्तरि। दुःखशीलापि तथा भार्य्या पोषणीया नरेश्वर ॥६४
प्रतिकूला हि सा पत्नी तस्य विप्रस्य या हृता ।
तथापि धर्मकामोऽसौ त्वामुद्द्योतितवान् नृप ॥६५
चलतः स्थापयस्यन्यान् स्वधर्मेषु महीपते । त्वां स्वधर्माद्विचलितं कोऽपरः स्थापयिष्यति ॥६६
(द्वीपे कडंगरीये वा राज्ञि चान्यायवर्तिनि । पापकृत्सु च विद्वत्सु नियन्ता जन्तुरत्र कः) ॥

मार्कण्डेय उवाच—

विलक्ष्यः स महीपाल इत्युक्तस्तेन धीमता । तथेत्युक्त्वा च पप्रच्छ हृतां पत्नीं द्विजन्मनः ॥६७
भगवन् केन नीता सा पत्नी विप्रस्य कुत्र वा । अतीतानागतं वेत्ति जगत्यवितथं भवान् ॥६८

ऋषिरुवाच —

तां जहाराद्रितनयो बलाको नाम राक्षसः । द्रक्ष्यते चाद्य तां भूप उत्पलावतके वने ॥६९
गच्छ संयोजयाशु त्वं भार्यया हि द्विजोत्तमम् ।
मा पापास्पदतां यातु त्वमिवासौ दिने दिने ॥७०

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे औत्तमे मन्वन्तरे ऋषिदर्शनं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ।

जिस प्रकार पति के दुराचारी होने पर भी पत्नी को उसके अनुकूल ही होना चाहिए । उसी प्रकार हे नरेश्वर ! दुःशील पत्नी भी पोषण योग्य है ॥६४॥

उस ब्राह्मण की जो पत्नी चुरा ली गयी वह उसके प्रतिकूल ही थी, फिर भी हे राजन् ! धर्म कामी उस ब्राह्मण ने ही आपको (पत्नी खोजने के लिए) प्रेरित किया है ॥६५॥

हे महीपते ! आप धर्म से विचलित हुए, दूसरे मनुष्यों को धर्म में प्रवृत्त करते हैं। किन्तु धर्म से विचलित हुए आपको दूसरा कौन धर्म में प्रवृत्त करेगा ? ॥६६॥

बलवान् सेठ का हाथी धान्य भक्षण कर ले अथवा राजा अन्याय में प्रवृत्त हो जाए, तो ऐसी स्थिति में इनको रोकने वाला कौन हो सकता है ?

मार्कण्डेय बोले—

उन बुद्धिमान् मुनि द्वारा इस प्रकार कहने पर लज्जित हुए उस राजा ने, ठीक है, इस प्रकार कहकर, ब्राह्मण की चुरायी गयी पत्नी के बारे में पूछा ॥६७॥

हे भगवन् ! ब्राह्मण की उस पत्नी को कौन और कहाँ ले गया है ? आप संसार के अतीत, अनागत को सत्य रूप से जानते हैं ॥६८॥

ऋषि बोले —

उसका आद्रि पुत्र बलाक नामक राक्षस ने हरण कर लिया है और हे राजन् ! मैं उसको इस समय उत्पलावत नाम के वन में देख रहा हूँ ॥६९॥

अतः तुम शीघ्र जाओ और ब्राह्मण को उसकी पत्नी के साथ शीघ्र मिला दो । जिससे उसको प्रतिदिन तुम्हारे समान पाप का भागी न होना पड़े ॥७०॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डे महापुराण में औत्तम मन्वन्तर में ऋषि दर्शन नामक छ्यासटवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच –

अथारुरोह स्वरथं प्रणिपत्य महामुनिम् । तेनाख्यातं वनं तच्च प्रययावुत्पलावतम् ।।१
यथा ख्यातस्वरूपां च भार्यां भर्त्रा द्विजस्य ताम् । भक्षयन्तीं ददर्शाथ श्रीफलानि नरेश्वरः ।।२
पप्रच्छ च कथं भद्रे त्वमेतद्वनमागता ।। स्फुटं ब्रवीहि वैशालेरपि भार्या सुशर्मणः ।।३

ब्राह्मण्युवाच –

सुताहमतिरात्रस्य द्विजस्य वनवासिनः । पत्नीविशालपुत्रस्य यस्य नाम त्वयोदितम् ।।४
साहं हृता बलाकेन राक्षसेन दुरात्मना । प्रसुप्ता भवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिता ।।५
भस्मी भवतु तद्रक्षो येनास्म्येवं वियोजिता । मात्रा भ्रातृभिरन्यैश्च तिष्ठाम्यत्र सुदुःखिता ।।६
अस्मिन् वनेऽतिगहने येनानीयाहमुज्झिता । न वेद्मि कारणं किं तन्नोपभुङ्क्ते न खादति ।।७

राजोवाच –

अपि तज्ज्ञायते रक्षस्त्वामुत्सृज्य क्व वै गतम् । अहं भर्त्रा तवैवात्र प्रेषितो द्विजनन्दिनि ।।८

मार्कण्डेय बोले—

इसके बाद (वह राजा) महामुनि को प्रणाम करके अपने रथ पर चढ़ा और उनके द्वारा बताये गये उत्पलावत नामक वन में गया ।।१।।

तब राजा ने ब्राह्मण पति द्वारा जिस प्रकार के स्वरूप का वर्णन किया था, उस प्रकार की उस ब्राह्मण पत्नी को श्रीफल खाते हुए देखा ।।२।।

और पूछा कि हे भद्रे ! तुम इस वन में किस प्रकार आ गयी हो और स्पष्ट रूप से बताओ कि तुम विशाल के पुत्र सुशर्मा ब्राह्मण की पत्नी हो ।।३।।

ब्राह्मणी बोली—

मैं अतिरात्र नामक वनवासी ब्राह्मण की पुत्री हूँ और जिनका नाम तुमने कहा, उन्हीं विशाल के पुत्र की पत्नी हूँ ।।४।।

और घर के अन्दर सोती हुई, वह मैं दुरात्मा बलाक नाम के राक्षस द्वारा हरकर भाई और माता से अलग कर दी गई हूँ ।।५।।

वह राक्षस भस्म हो जाए जिसके द्वारा मैं इस प्रकार अपनी माता, भाईयों और अन्यों से वियुक्त कर दी गयी हूँ, मैं यहाँ बहुत अधिक दुःखी हूँ ।।६।।

जिसके द्वारा मैं इस गहन वन में उठाकर लायी गयी हूँ मैं नहीं जानती कि क्या कारण है ? क्योंकि वह (राक्षस) न तो (मेरा) उपभोग करता है और न ही खाता है ।।७।।

राजा बोला—

क्या तुम जानती हो कि तुमको यहाँ छोड़कर वह राक्षस कहाँ गया है ? हे द्विजनन्दिनि ! तुम्हारे पति द्वारा ही मैं यहाँ भेजा गया हूँ ।।८।।

ब्राह्मण्युवाच—

अस्यैव काननस्यान्तः स तिष्ठति निशाचरः। प्रविश्य पश्यतु भवान् न बिभेति ततो यदि ॥९

मार्कण्डेय उवाच —

प्रविवेश ततः सोऽथ तया वर्त्मनिर्दशिते। ददृशे परिवारेण समवेतं च राक्षसम् ॥१०

दृष्टमात्रे ततस्तस्मिंस्त्वरमाणः स राक्षसः। दूरादेव महीं मूर्ध्ना स्पृशन् पादान्तिकं ययौ ॥११

राक्षस उवाच —

ममात्रागच्छता गेहं प्रसादस्ते महान् कृतः। प्रशाधि किं करोम्येष वसामि विषये तव ॥१२

अर्घ्यं चेमं प्रतीच्छ त्वं स्थयितां चेदमासनम्। वयं भृत्या भवान् स्वामी दृढ़माज्ञापयस्व माम् ॥१३

राजोवाच—

कृतमेव त्वया सर्वं सर्वा मेऽपचितिः कृता। किमर्थं ब्राह्मणवधूस्त्वयानीता निशाचर ॥१४

नेयं सुरूपा सन्त्यन्या भार्यार्थं चेद्धृता त्वया। भक्ष्यार्थं चेत्कथं नात्ता त्वयैतत् कथ्यतां मम ॥१५

राक्षस उवाच—

न वयं मानुषाहारा अन्ये ते नृप राक्षसाः। सुकृतस्य फलं यत्तु तदश्नीमो वयं नृप ॥

(सुकृतस्य फलं यत्तु तत्ते वक्ष्याम्यहं नृप। राक्षसीं योनिमापन्नः क्रूरां लोकभयंकरीम् ॥)१६

ब्राह्मणी बोली—

वह निशाचर इस जंगल में ही रहता है, यदि आप उससे डरते नहीं हैं तो जंगल में प्रवेश करके उसको देख लें ॥९॥

मार्कण्डेय बोले

उसके बाद उसने उसके द्वारा दिखाये हुए मार्ग से (जंगल में) प्रवेश किया और अपने परिवार से घिरे हुए राक्षस को देखा ॥१०॥

तब उस (राजा) को देखते ही उस राक्षस ने शीघ्र ही दूर से ही मस्तक से पृथ्वी को स्पर्श करते हुए चरणों में नमस्कार किया ॥११॥

राक्षस बोला—

मेरे इस घर पर आकर आपने मुझपर महान् कृपा की है। मैं आपके राज्य में निवास करता हूँ। आप इस सेवक को आज्ञा दीजिए कि मैं आपका क्या कार्य करूँ ॥१२॥

इस आसन पर बैठिये और इस अर्घ्य को ग्रहण कीजिए। हम सेवक हैं और आप हमारे स्वामी हैं। अतः आप निःसंकोच होकर मुझे आज्ञा दीजिए ॥१३॥

राजा बोला—

तुमने मेरे प्रति अपने सभी कर्त्तव्यों का पालन किया है और साथ ही तुमने मेरी सब प्रकार से पूजा की है। किन्तु हे निशाचर ! तुमने ब्राह्मण की पत्नी का हरण क्यों कर लिया है ॥१४॥

क्योंकि यह रूपवती नहीं है। यदि भार्या बनाने के लिये इसका हरण किया तो और भी (सुन्दर) स्त्रियाँ हैं और यदि भक्षण के लिए किया तो अब तक इसे खाया क्यों नहीं ? यह सब मुझे बताओ ॥१५॥

राक्षस बोला—

हे राजन् ! हम नरभक्षी नहीं हैं, वे राक्षस तो दूसरे हैं। हम तो केवल पुण्यों के फलों को ही खाते हैं (उपभोग करते हैं)। हे राजन् ! पुण्यों का जो फल होता है, उसको मैं तुमसे कहता हूँ, जिसके अभाव में, मैं संसार को भयभीत करने वाली क्रूर राक्षसी योनि को प्राप्त हुआ हूँ ॥१६॥

स्वभावं च मनुष्याणां योषितां च विमानितः। नामिषं च समश्नीमो न वयं जन्तु-खादकाः ॥१७
यदस्माभिर्नृणां क्षान्तिर्भुक्ता क्रुध्यन्ति ते तदा। भुक्ते दुष्टे स्वभावे च गुणवन्तो भवन्ति च ॥१८
सन्ति नः प्रमदा भूप रूपेणाप्सरसां समाः। राक्षस्यस्तासु तिष्ठत्सु मानुषीषु रतिः कथम् ॥१९

राजोवाच—

यद्येषा नोपभोगाय नाहाराय निशाचर। गृहं प्रविश्य विप्रस्य तत्किमेषा हृता त्वया ॥२०

राक्षस उवाच—

मंत्रवित् स द्विजश्रेष्ठो यज्ञे यज्ञे गतस्य मे। रक्षोघ्नमन्त्रपठनात् करोत्युच्चाटनं नृप ॥२१
वयं बुभुक्षितास्तस्य मन्त्रोच्चाटनकर्मणा। क्व यामः सर्वयज्ञेषु स ऋत्विग् भवति द्विजः ॥२२
ततोऽस्माभिरिदं तस्य वैकल्यमुपपादितम्। पत्न्या विना पुमानिज्याकर्मयोग्यो न जायते ॥२३

मार्कण्डेय उवाच—

वैकल्योच्चारणात्तस्य ब्राह्मणस्य महामतेः। ततः स राजाऽतिभृशं विषण्णः समजायत ॥२४
वैकल्यमेष विप्रस्य वदन् मामेव निन्दति। अनर्हमर्घस्य च गां सोऽप्याह मुनिसत्तमः ॥२५

(और) अपमानित मनुष्यों और स्त्रियों के स्वभाव का ही भक्षण करता हूँ, न तो हम माँस खाते हैं और न ही प्राणियों का भक्षण करने वाले हैं ॥१७॥

जब हम मनुष्यों के क्षमा का भक्षण कर लेते हैं, तब वे क्रुद्ध होते हैं और दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर लेने पर वे गुणवान् हो जाते हैं ॥१८॥

हे राजन् ! हमारे पास अप्सराओं के समान रूपवती स्त्रियाँ हैं तब उन राक्षस स्त्रियों के रहते हुए (हमारी) मानव स्त्रियों में रति कैसे हो सकती है ॥१९॥

राजा बोला—

हे निशाचर ! यदि यह न उपभोग के लिए है और न ही आहार के लिए, तब ब्राह्मण के घर में घुस-कर इसका हरण क्यों कर लिया है ? ॥२०॥

राक्षस बोला—

हे राजन् ! वह द्विजश्रेष्ठ मन्त्रविद् है और प्रत्येक यज्ञ में जाकर राक्षस विनाशक मन्त्रों का पाठ करके मेरा उच्चाटन करता है ॥२१॥

उसके मन्त्रोच्चाटन कर्म से भूखे हम कहाँ जाएँ ? क्योंकि सभी यज्ञों में वह ब्राह्मण ऋत्विक् बनकर उपस्थित रहता है ॥२२॥

तब हमने इस प्रकार उसमें विकलता का उपपादन कर दिया है, क्योंकि पत्नी के विना पुरुष यज्ञ करने में समर्थ नहीं होता है ॥२३॥

मार्कण्डेय बोले—

हे महामते ! उस ब्राह्मण की विकलता (उत्पन्न की है) इस पद के उच्चारण से वह राजा अत्यधिक क्षुभित हुआ ॥२४॥

ब्राह्मण की विकलता को कहकर यह मेरी ही निन्दा कर रहा है। इसलिए उस मुनिवर ने मुझे अर्घ्य के अयोग्य बताया था ॥२५॥

वैकल्यं तस्य विप्रस्य राक्षसोऽप्याह मे यथा। अपत्नीकतया सोऽहं सङ्कटं महदास्थितः ॥२६

मार्कण्डेय उवाच—

एवं चिन्तयतस्तस्य पुनरप्याह राक्षसः। प्रणामनम्रो राजानं बद्धाञ्जलिपुटो मुने ॥२७

नरेन्द्राज्ञाप्रदानेन प्रसादः क्रियतां मम। भृत्यस्य प्रणतस्येत्थं युष्मद्विषयवासिनः ॥२८

राजोवाच -

स्वभावं वयमश्नीमस्त्वयोक्तं यन्निशाचर। तदर्थिनो वयं येन कार्येण शृणु तन्मम ॥२९

अस्यास्त्वयाद्य ब्राह्मण्या दौःशील्यमुपभुज्यताम्। येनत्वयात्त दौःशील्या तद्विनीता भवेदियम् ॥३०

नीयतां यस्य भार्य्येयं तस्य वेश्म निशाचर। अस्मिन् कृते कृतं सर्वं गृहमभ्यागतस्य मे ॥३१

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स राक्षसस्तस्याः प्रविश्यान्तः स्वमायया।
भक्षयामास दौःशील्यं निजशक्त्या नृपाज्ञया ॥३२

दौः शील्येनातिरौद्रेण पत्नी तस्य द्विजन्मनः। तेन सा सम्परित्यक्ता तमाह जगतीपतिम् ॥३३

स्वकर्मफलपाकेन भर्तुस्तस्य महात्मनः। वियोजिताऽहं तद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ॥३४

और यह राक्षस भी उस पत्नी राहित्य के कारण उत्पन्न हुई उस ब्राह्मण की विकलता को कहकर मुझे ही लक्ष्य कर रहा है। इसलिए मैं बड़ी संकटापन्न स्थिति में फस गया हूँ ॥२६॥

मार्कण्डेय बोले—

राजा इस प्रकार सोच ही रहा था कि राक्षस ने विनम्र प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर राजा से कहा—॥२७॥

आज्ञा देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिए, मैं विनम्र आपका सेवक हूँ और आपके राज्य में रहता हूँ ॥२८॥

राजा बोला —

हे निशाचर ! जो तुमने कहा है कि हम स्वभाव का भक्षण करते हैं, हम जिस कार्य के लिए आये हैं उसको भी तुम सुनो, ॥२९॥

आज तुम उस ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव का भक्षण करो, जिससे तुम्हारे द्वारा दुष्ट स्वभाव का भक्षण की गयी, यह ब्राह्मण पत्नी विनम्र स्वभाव वाली हो जाए ॥३०॥

और फिर हे निशाचर ! जिसकी यह पत्नी है, उसके घर पर इसको पहुंचा दो। इस (कार्य) के करने पर, तुम घर आये हुए मेरा सब कार्य पूर्ण हुआ मानो ॥३१॥

मार्कण्डेय बोले —

इसके बाद राजा की आज्ञा से उस राक्षस ने अपनी शक्ति और माया से अन्तःकरण में प्रवेश करके उसके दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर लिया ॥३२॥

अत्यधिक रौद्र स्वभाव से उसके द्वारा मुक्त हुई, उस ब्राह्मण पत्नी ने उस राजा से कहा—॥३३॥

अपने कर्म फल के पाक से ही मैं उस महात्मा पति से वियुक्त हुई हूँ। यह निशाचर तो उसका निमित्त मात्र था ॥३४॥

नास्य दोषो न वा तस्य मम भर्तुर्महात्मनः । ममैव दोषो नान्यस्य स्वकृतं ह्युपभुज्यते ।।३५
अन्यजन्मनि कस्यापि विप्रयोगः कृतो मया। सोऽयं मयाऽभ्युपगतः को दोषोऽस्य महात्मनः ।।३६

राक्षस उवाच—

प्रापयामि तवादेशादिमां भर्तृगृहं प्रभो । यदन्यत् करणीयं ते तदाज्ञापय पार्थिव ।।३७

राजोवाच—

अस्मिन् कृते कृतं सर्वं त्वया मे रजनीचर । आगन्तव्यं च ते वीर कार्यकाले स्मृतेन मे ।।३८

मार्कण्डेय उवाच –

तथेत्युक्त्वा तु तद्रक्षस्तामादाय द्विजाङ्गनाम् । निन्ये भर्तृगृहं शुद्धां दौःशील्यापगमात्तदा ।।३९

इति श्रीमार्कण्यमहपुराणे औत्तममन्वन्तरे ब्राह्मण भार्यानयनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।

न तो इस (राक्षस) का दोष है और न ही मेरे उन महात्मा पति का ही । यह तो मात्र मेरा ही दोष था, अन्य किसी का नहीं । निश्चय ही मैंने अपने किये का फल भोगा है ।।३५।।

(सम्भवतः) किसी दूसरे जन्म में मैंने किसी का वियोग कराया होगा, इसलिए यह वियोग मैंने भी प्राप्त कर लिया । इस महात्मा का (इसमें) क्या दोष ? ।।३६।।

राक्षस बोला—

हे प्रभो ! आपके आदेश से इस ब्राह्मणी को मैं (इसके) घर पर पहुँचा देता हूँ । राजन् इसके अतिरिक्त और जो भी कार्य मेरे करने योग्य हो, मुझको उसकी आज्ञा दीजिए ।।३७।।

राजा बोला —

हे रजनीचर ! यह कार्य करने पर तुमने मेरा समस्त कार्य कर दिया है (फिर भी) हे वीर ! कार्यकाल में स्मरण करने पर तुम मेरे पास उपस्थित हो जाना ।।३८।।

मार्कण्डेय बोले –

'ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर, उस राक्षस ने, दुष्ट स्वभाव से मुक्त हुई,उस पवित्र ब्राह्मणी को लेकर उसके पति के घर पर पहुँचा दिया ।।३९।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में औत्तम मन्वन्तर में ब्राह्मण भार्या नयनं नामक सड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

तां प्रेषयित्वा राजापि स्वभर्तृगृहमङ्गनाम् । चिन्तयामास निःश्वस्य किमत्र सुकृतं भवेत् ।।१

मार्कण्डेय बोले –

उस स्त्री को भेज कर राजा ने भी दीर्घ श्वास लेते हुए सोचा कि मुझे इस समय क्या करना चाहिए, जिससे पुण्य हो ।।१।।

अनर्घयोग्यताकष्टं स यामाह महामनाः । वैकल्यं विप्रमुद्दिश्य तथाहायं निशाचरः ॥२

सोऽहं कथं करिष्यामि त्यक्ता पत्नी मया हि सा ।
अथवा ज्ञान-दृष्टि तं पृच्छामि मुनिसत्तमम् ॥३

संचिन्त्येत्थं स भूपालः समारुह्य च तं रथम् । ययौ यत्र स धर्मात्मा त्रिकालज्ञो महामुनिः ॥४

अवरुह्य रथात् सोऽथ तं समेत्य प्रणम्य च । यथावृत्तं समाचख्यौ राक्षसेन समागमम् ॥५

ब्राह्मण्या दर्शनं चैव दौःशील्यापगमं तथा । प्रेषणं भर्तृगेहे च कार्यमागमने च यत् ॥६

ऋषिरुवाच—

ज्ञातमेतन्मया पूर्वं यत्कृतं ते नराधिप । कार्यमागमने चैव मत्समीपे तवाखिलम् ॥७

प्रष्टुं मामिह किं कार्यं मयेत्युद्विग्नमानसः । त्वमागतो महीपाल शृणु कार्यं च यत्त्वया ॥८

पत्नी धर्मार्थकामानां कारणं प्रबलं नृणाम् । विशेषतश्च धर्मश्च सन्त्यक्तस्त्यजता हि ताम् ॥९

अपत्नीको नरो भूप न योग्यो निजकर्मणाम् । ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यः शूद्रोऽपि वा नृप ॥१०

त्यजता भवता पत्नीं न शोभनमनुष्ठितम् ।
अत्याज्यो हि यथा भर्त्ता स्त्रीणां भार्या तथा नृणाम् ॥११

जैसा कि महात्मा ने कहा है (कि मैं अर्घ्य के अयोग्य हूँ), अर्घ्य की योग्यता का न होना भी कष्टकारक है और ब्राह्मण की विकलता को लक्ष्य करके, इस निशाचर ने भी वैसा ही कहा है ॥२॥

इसलिए अब मैं कैसे (नित्य नैमित्तिक कर्म आदि) करूँगा, क्योंकि मैंने भी तो पत्नी को त्याग दिया है अथवा ज्ञान चक्षुओं वाले उन्हीं मुनि श्रेष्ठ से पूछता हूँ ॥३॥

यह सोचकर वह राजा रथ पर चढ़कर वहाँ गया जहाँ कि त्रिकालज्ञ धर्मात्मा महामुनि रहते थे ॥४॥

तत्पश्चात् रथ से उतरकर, पास जाकर, प्रणाम करके, ब्राह्मणी का दर्शन, राक्षस से मिलना और उसके दुष्ट स्वभाव की समाप्ति एवं उसको पति के घर भेजना तथा पुनः उनके पास आने का उद्देश्य आदि सभी वृत्तान्तों को भली प्रकार कह सुनाया ॥५-६॥

ऋषि बोले—

हे राजन् ! जो-जो कार्य तुमने किये और जिस उद्देश्य से तुम मेरे पास आये हो, वह सब कुछ मैंने पहले ही जान लिया है ॥७॥

उद्विग्न मन वाले तुम मुझसे यह पूछने के लिए यहाँ आये हो कि अब मुझे क्या करना उचित है ? हे महीपाल ! जो तुम्हारे लिए करने योग्य है, उसको सुनो, ॥८॥

मनुष्य के धर्म, अर्थ और काम साधनत्रय की प्राप्ति में भार्या ही प्रबल हेतु होती है । विशेष रूप से धर्म कार्य में। पत्नी को त्यागते हुए वह (धर्म) तो तुमने छोड़ ही दिया ॥९॥

हे राजन् ! पत्नी रहित पुरुष अपने धर्म-कार्यों को सम्पन्न करने में समर्थ नहीं होता है । हे नृप ! चाहे वह ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय हो, वैश्य हो या शूद्र ॥१०॥

पत्नी का त्याग करके तुमने अच्छा कार्य नहीं किया। जिस प्रकार स्त्रियों के लिए पति अत्याज्य होता है उसी प्रकार पुरुषों को भी पत्नी का त्याग नहीं करना चाहिए ॥११॥

राजोवाच —

भगवन् किं करोम्येष विपाको मम कर्मणाम् । नानुकूलानुकूलस्य यस्मात्त्यक्ता ततो मया ।।१२
यद्यत् करोति तत्क्षान्तं दह्यमानेन चेतसा । भगवंस्तद्वियोगातिविभीतेनान्तरात्मना ।।१३
साम्प्रतं तु वने त्यक्ता न वेद्मि क्व नु सा गता । भक्षिता वापि विपिने हिंसव्याघ्रनिशाचरैः ।।१४

ऋषिरुवाच —

न भक्षिता सा भूपाल सिंहव्याघ्रनिशाचरैः । सा त्वविप्लुतचारित्रा साम्प्रतं तु रसातले ।।१५

राजोवाच —

सा नीता केन पातालमास्ते साऽदूषिता कथम् । अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन् यथावद्वक्तुमर्हसि ।।१६

ऋषिरुवाच —

पाताले नागराजोऽस्तिप्रख्यातश्च कपोतकः । तेन दृष्टा त्वया त्यक्ता भ्रममाणा महावने ।।१७
सा रूपशालिनी तेन सानुरागेण पार्थिवः । वेदितार्थेन पातालं नीता सा युवती तदा ।।१८
ततस्तस्य सुता सुभ्रूर्नन्दा नाम महीपते । भार्या मनोरमा चास्य नागराजस्य धीमतः ।।१९
तया मातुः सपत्नीयं सा भवित्रीतिशोभना । दृष्टा स्वगेहं सा नीता गुप्ता चान्तः पुरे शुभा ।।२०

राजा बोला—

हे भगवन् ! क्या करूँ, यह तो मेरे कर्मों का परिणाम है क्योंकि वह (मेरी पत्नी) मेरे अनुकूल होने पर भी प्रतिकूल रहती थी, इसलिए मैंने उसका त्याग कर दिया ।।१२।।

हे भगवन् ! उसके वियोग से तपते हुए हृदय से मैंने सब क्षमा कर दिया है, उसके वियोग जनित अति भय के कारण ऐसा किया है, अन्तरात्मा से नहीं ।।१३।।

अब तो वन में छोड़ी गयी वह इस समय कहाँ चली गयी होगी, यह भी मैं नहीं जानता हूँ अथवा क्या वह जंगल में सिंह, व्याघ्र और निशाचरों द्वारा खा ली गयी होगी ? ।।१४।।

ऋषि बोले—

हे भूपाल ! उसको सिंह, व्याघ्र अथवा निशाचरों में से किसी ने भी नहीं खाया है, वह तो विशुद्ध चरित्र युक्त होकर रसातल में रह रही है ।।१५।।

राजा बोला —

पाताल में वह किसके द्वारा ले जायी गयी ? वहाँ वह अदूषित किस प्रकार है ? हे ब्रह्मन् ! यह तो अति आश्चर्यजनक है । इसे आप ठीक-ठीक बताइए ।।१६।।

ऋषि बोले—

पाताल में कपोतक नाम से प्रसिद्ध नागराज रहता है । उसने तुम्हारे द्वारा त्यागे जाने पर, महावन में घूमती हुई उसको देखा ।।१७।।

हे पार्थिव ! वह सुन्दरी थी । उसके प्रति कपोतक का अनुराग हुआ और वास्तविक स्थिति को जानकर वह उस युवती को पाताल ले गया ।।१८।।

हे राजन् ! उस बुद्धिमान् नागराज की सुन्दर पुत्री नन्दा है और उसकी पत्नी मनोरमा है ।।१९।।

उस (नन्दा) ने अत्यन्त सुन्दर यह स्त्री मेरी माता की सपत्नी होगी यह सोचकर उसे वह अपने घर ले गयी और वहाँ अन्तःपुर में उसको छिपा दिया ।।२०।।

यदा तु याचिता नन्दा न ददाति नृपोत्तरम् । मूका भविष्यसीत्याह तदा तां तनयां पिता ।।२१
एवं शप्ता सुता तेन सा चास्ते तत्र भूपते । नीता तेनोरगेन्द्रेण धृता तत्सुतया सती ।।२२

मार्कण्डेय उवाच—

ततो राजा परं हर्षमवाप्य तमपृच्छत । द्विजवर्यं स्वदौर्भाग्यकारणे दयितां प्रति ।।२३

राजोवाच—

भगवन् सर्वलोकस्य मयि प्रीतिरनुत्तमा । किन्नु तत्कारणं येन स्वपत्नी नातिवत्सला ।।२४
मम चासावतीवेष्टा प्राणेभ्योऽपि महामुने । सा च मां प्रति दुःशीला ब्रूहि तत्कारणं द्विज ।।२५

ऋषिरुवाच—

पाणिग्रहणकाले त्वं सूर्यभौमशनैश्चरैः । शुक्रवाचस्पतिभ्यां च तव भार्यावलोकिता ।।२६
तन्मुहूर्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याः सोमसुतस्तथा । परस्परविपक्षौ तौ ततः पार्थिव ते भृशम् ।।२७
तद्गच्छ त्वं स्वधर्मेण परिपालय मेदिनीम् । पत्नीसहायः सर्वाश्च कुरु धर्मवतीः क्रियाः ।।२८

जब राजा ने नन्दा से उसको माँगा तो हे राजन् ! उसने कोई उत्तर नहीं दिया । तब उस पुत्री को पिता (नागराज) ने कहा कि 'तुम गूंगी हो जाओगी' ।।२१।।

हे भूपते ! इस प्रकार उसने पुत्री को शाप दिया । (अतः) उस (नन्दा) के द्वारा (तुम्हारी पत्नी) वहीं पर छिपाकर रखी गयी है । इस प्रकार नागेन्द्र द्वारा ले जायी गयी, उसके सतीत्व की उस पुत्री ने रक्षा की है ।।२२।।

मार्कण्डेय बोले—

तब अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा ने उन मुनिवर से पत्नी के सम्बन्ध में अपने दुर्भाग्य का कारण पूछा ।।२३।।

राजा बोले—

हे भगवन् ! सभी पुरुषों का मुझ में अतीव अनुराग है । किन्तु क्या कारण है जिससे कि मेरी पत्नी मुझमें अनुरक्त नहीं है ।।२४।।

हे महामुने ! मैं तो उसको प्राणों से भी बढ़कर चाहता हूँ । हे द्विज ! फिर भी वह मेरे प्रति दुष्ट आचरण वाली है, आप उसका कारण बताइये ।।२५।।

ऋषि बोले—

पाणिग्रहण के समय तुम सूर्य, मंगल और शनि के द्वारा और तुम्हारी पत्नी शुक्र और बृहस्पति ग्रह के द्वारा देखी गयी थी ।।२६।।

हे राजन् ! उस मुहूर्त में तुम्हारे चन्द्रमा और उसके चन्द्रमा के पुत्र बुध, ये दोनों परस्पर अत्यधिक विरोधी थे (इसलिए तुम्हारी पत्नी और तुम्हारा विरोध रहा) ।।२७।।

इसलिए तुम अब जाओ और स्वधर्म पूर्वक पृथ्वी का पालन करो तथा पत्नी के साथ सभी धार्मिक क्रियाओं का अनुष्ठान करो ।।२८।।

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्ते प्रणिपत्यैनमारुह्य स्यन्दनं ततः । उत्तमः पृथिवीपाल आजगाम निजं पुरम् ।।२९

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे औत्तम मन्वन्तरे उत्तमेन ऋषिमुखात् पातालस्थस्वभार्यावृत्तज्ञान-वर्णनं नामाऽस्टषाष्टितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय बोले—

उनके इस प्रकार कहने पर इन मुनि को प्रणाम करके, रथ पर चढ़कर राजा उत्तम अपने नगर में आ गया ।।२९।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में औत्तम मन्वन्तर में उत्तम के द्वारा ऋषि मुख ने पाताल स्थित अपनी पत्नी का वृत्तान्त ज्ञान वर्णन नामक अडसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स्वनगरं प्राप्य तं ददर्श द्विजं नृपः । समेतं भार्यया चैव शीलवत्या मुदान्वितम् ।।१

ब्राह्मण उवाच -

राजवर्यं कृतार्थोऽस्मि यतो धर्मो हि रक्षितः ।। धर्मज्ञेनेह भवता भार्यामानयता मम ।।२

राजोवाच—

कृतार्थस्त्वं द्विजश्रेष्ठ निजधर्मानुपालनात् । वयं सङ्कटिनो विप्र येषां पत्नी न वेश्मनि ।।३

ब्राह्मण उवाच—

नरेन्द्र सा हि विपिने भक्षिता श्वापदैर्यदि । क्रोधस्य वशमागम्य धर्मो नावेक्षितस्त्वया ।।४

मार्कण्डेय बोले—

तब अपने नगर में जाकर राजा ने शीलवती पत्नी के साथ प्रसन्न हुए उस ब्राह्मण को देखा ।।१।।

ब्राह्मण बोला—

हे नृप श्रेष्ठ ! 'मैं कृतार्थ हो गया हूँ' क्योंकि धर्म के ज्ञाता आपके द्वारा मेरी पत्नी यहाँ ला दी गयी है, अतः निश्चय ही धर्म की रक्षा हुई है ।।२।।

राजा बोला—

हे द्विज ! अपने धर्म का पालन करने के कारण तुम धन्य हो, हे विप्र ! हम संकट में हैं जिसकी पत्नी घर में नहीं है ।।३।।

ब्राह्मण बोला—

हे नरेन्द्र ! क्रोध के वशीभूत होकर आपने धर्म नहीं देखा (कहीं ऐसा न हो कि) यदि वह जंगल में पशुओं द्वारा खा ली गयी हो ।।४।।

अलं तया किमन्यस्या न पाणिर्गृ ह्यते त्वया । सन्ति राज्ञां गृहे कन्याः शोभना नृपनन्दन ।।५

राजोवाच —

न भक्षिता मे दयिता श्वापदैः सा हि जीवति । अविदूषितचारित्रा कथमेतत् करोम्यहम् ।।६

ब्राह्मण उवाच —

यदि जीवति ते भार्या न चैव व्यभिचारिणी । अपत्नीकत्वतो जन्म किं पापं क्रियते त्वया ।।७

राजोवाच —

आनीताऽपि हि सा विप्र प्रतिकूला सदैव मे । दुःखाय न सुखायालं तस्या मैत्री न वै मयि ।।८

यथा ते ब्राह्मणी विप्र वशगा तव सुन्दरी । तथा त्वं कुरु यत्नं मे यथा सा वशगामिनी ।।९

ब्राह्मण उवाच —

त्वयि संप्रीतये तस्या वरेष्टिरपकारिणी । क्रियते मित्रकामैर्या मित्रविन्दां करोमि ताम् ।।१०

अप्रीतयोः प्रीतिकरी सा हि संजननी परम् । भार्यापत्योर्मनुष्येन्द्र तां तवेष्टिं करोम्यहम् ।।११

यत्र तिष्ठति सा सुभ्रूस्तव भार्या महीपते । तस्मादानीयतां सा ते परां प्रीतिमुपैष्यति ।।
(तस्यास्तव हितार्थाय धर्मो यत्र न सीदति ।।)१२

उससे बस कीजिए, अन्य किसी दूसरी कन्या के साथ आप पाणिग्रहण क्यों नहीं कर लेते हैं ? हे नृपनंदन ! राजाओं के महलों में तो बहुत सी सुन्दर कन्याएँ होती हैं ।।५।।

राजा बोला—

मेरी पत्नी को पशुओं ने नहीं खाया है, अपितु पवित्र चरित्र सम्पन्न वह अभी जीवित है । फिर मैं यह (अन्य कन्या का ग्रहण) कैसे करूँ ।।६।।

ब्राह्मण बोला—

यदि आपकी पत्नी अभी जीवित है और व्यभिचारिणी भी नहीं है तो पत्नी रहित रहते हुए, आप पाप क्यों कर रहे हैं ।।७।।

राजा बोला —

हे विप्र ! मेरे द्वारा लायी गयी भी वह सदैव मेरे प्रतिकूल ही रहेगी, उसका और मेरा सम्पर्क दुःख के लिए है न कि सुख के लिए ।।८।।

हे विप्र ! जिस प्रकार तुम्हारी सुन्दर ब्राह्मणी तुम्हारे वश में हो गयी है । इसलिए तुम वैसा प्रयत्न करो, जिससे वह मेरी वशवर्तिनी होकर मेरा अनुगमन करे ।।९।।

ब्राह्मण बोला—

अपकारिणी उसका आपके प्रति प्रेम करने के लिए मैं मित्रता की कामना करने वाले पुरुषों द्वारा की गयी 'मित्र विन्दा' नामक इष्टि का आयोजन करूँगा ।।१०।।

हे मनुष्येन्द्र ! परस्पर प्रीति न करने वाले पति और पत्नी में वह इष्टि निश्चय ही प्रेम करने वाली है, उस इष्टि को मैं तुम्हारे लिए करूँगा ।।११।।

हे महीपते ! सुन्दर भौंहो वाली आपकी वह पत्नी, जहाँ भी है । आप उनको उस स्थान से ले आइये । वह आपसे परम प्रीति को प्राप्त करेगी । उसके और तुम्हारे हित के लिए धर्म की हानि न हो ।।१२।।

मार्कण्डेय उवाच —

इत्युक्तः स तु सम्भारानशेषानवनीपतिः । आनिनाय चकारेष्टिं स च तां द्विजसत्तमः ।।१३
सप्तकृत्वः स तु तदा चकारेष्टिं पुनः पुनः । तस्य राज्ञो द्विजश्रेष्ठो भार्या सम्पादनाय वै ।।१४
यदारोपितमैत्रां तामभन्यत महामुनिः । स्वभर्त्तरि तदा विप्रस्तमुवाच नराधिपम् ।।१५
आनीयतां नरश्रेष्ठ या तवेष्टात्मनोऽन्तिकम् । भुंक्ष्व भोगांस्तया सार्द्धं यज यज्ञांस्तथादृतः ।।१६

माकण्डेय उवाच —

इत्युक्तस्तेन विप्रेण भूपालो विस्मितस्तदा । सस्मार तं महावीर्यं सत्यसन्धं निशाचरम् ।।१७
स्मृतस्तेन तदा सद्यः समुपेत्य नराधिपम् । किं करोमीति सोऽप्याह प्रणिपत्य महामुने ।।१८
ततस्तेन नरेन्द्रेण विस्तरेण निवेदिते । गत्वा पातालमादाय राजपत्नीमुपाययौ ।।१९
आनीता चातिहार्देन सा ददर्श तदा पतिम् । उवाच च प्रसीदेति भूयो-भूयो मुदान्विता ।।२०
ततः स राजा रभसात् परिष्वज्याह मानिनीम् । प्रिये प्रसन्न एवाहं भूयोऽप्येवं ब्रवीषि किम् ।।२१

पत्न्युवाच —

यदि प्रसादप्रवणं नरेन्द्र मयि ते मनः । तदेतदभियाचे त्वां तत्कुरुष्व ममार्हणम् ।।२२

मार्कण्डेय बोले —

ब्राह्मण के ऐसा कहने पर उस राजा ने यज्ञ की सम्पूर्ण सामग्रियों को एकत्र किया और उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने उस इष्टि का अनुष्ठान किया। तब उन राजा की पत्नी के स्वभाव को उत्तम करने के लिए उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने उस इष्टि का बार-बार सात बार यजन किया ।।१३–१४।।

जब महामुनि ने उस (राजपत्नी) को अपने पति के प्रति अनुरक्त चित्तवाली माना, तब वह ब्राह्मण राजा से बोला—।।१५।।

हे नरश्रेष्ठ ! जो स्त्री आपको प्रिय है, उसको आप अपने पास ले आइये और (उससे) आदर प्राप्त करके उसके साथ (सांसारिक) भोगों का उपभोग और यज्ञों का यजन कीजिए ।।१६।।

मार्कण्डेय बोले —

विप्र के द्वारा इस प्रकार कहने पर, राजा विस्मित हुआ। उसने सत्यवादी, महापराक्रमी उस निशाचर का स्मरण किया ।।१७।।

हे महामुने ! तब उसके द्वारा स्मरण किया गया वह राक्षस शीघ्र ही उपस्थित होकर, उस राजा को प्रणाम करके बोला कि कहिए, मैं क्या करूँ ? ।।१८।।

तब राजा के द्वारा विस्तार से कहने पर पाताल में जाकर राजपत्नी को लेकर उपस्थित हो गया ।।१९।।

और (पाताल से) लायी गयी (उस राजपत्नी) ने पति को अत्यन्त प्रेम पूर्वक देखा और प्रसन्नता से युक्त हुई वह 'हे प्रिय ! प्रसन्न होओ' इस प्रकार बार-बार कहने लगी ।।२०।।

उसके बाद राजा ने उस मानिनी का वेग पूर्वक आलिंगन करके कहा—'हे प्रिय ! मैं प्रसन्न ही हूँ।' तुम बार-बार इस प्रकार क्यों कह रही हो ? ।।२१।।

पत्नी बोली—

हे नरेन्द्र ! यदि आपका मन मुझ पर प्रसन्नता से युक्त है तो मैं आपसे एक वर माँगती हूँ, आप मेरे वाञ्छित को पूर्ण कीजिए ।।२२।।

राजोवाच —

निःशङ्कं ब्रूहि मत्तो यद्भवत्या किञ्चिदीप्सितम्। तदलभ्यं न ते भीरु तवायत्तोऽस्मि नान्यथा ।।२३

पत्न्युवाच —

मदर्थं तेन नागेन सुता शप्ता सखी मम । मूका भविष्यसीत्याह सा च मूकत्वमागता ।।२४

तस्याः प्रतिक्रियां प्रीत्या मम शक्नोति चेद्भवान् ।
वाग्विघातप्रशान्त्यर्थं ततः किं न कृतं मम ।।२५

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स राजा तं विप्रमाहास्मिन् कीदृशी क्रिया। तन्मूकतापनोदाय स च तं प्राह पार्थिवम् ।।२६

ब्राह्मण उवाच —

भूप सारस्वतीमिष्टिं करोमि वचनात्तव । पत्नी तवेयमानृण्यं यातु तद्वाक्प्रवर्तनात् ।।२७

मार्कण्डेय उवाच—

इष्टिं सारस्वतीं चक्रे तदर्थं स द्विजोत्तमः । सारस्वतानि सूक्तानि जजाप च समाहितः ।।२८
ततः प्रवृत्तवाक्यां तां गर्गः प्राह रसातले । उपकारः सखी भर्त्रा कृतोऽयमतिदुष्करः ।।२९
इत्थं ज्ञानं समासाद्य नन्दा शीघ्रगतिः पुरम् । ततो राज्ञीं परिष्वज्य स्वसखीमुरगात्मजा ।।३०

राजा बोला—

हे मदवाली (मतवाली) ! तुम्हारा जो भी अभीष्ट है उसे शंका रहित होकर कहो। हे भीरु ! वह तुम्हारे लिए अलभ्य नहीं होगा। मैं तुम्हारे ही अधीन हूँ, अन्यथा नहीं ।।२३।।

पत्नी बोली —

उस नागराज ने मेरे कारण ही मेरी सखी अपनी पुत्री को शाप दिया और कहा— 'कि जाओ तुम गूंगी हो जाओगी' ऐसा कहने पर वह गूंगी हो गयी ।।२४।।

यदि आप मुझसे प्रेम करते हैं और मेरे प्रति प्रेम के कारण यदि उसकी प्रतिक्रिया (वाणी के आघात की शान्ति) के लिए यदि आप समर्थ हैं तो आपने मेरा क्या कार्य नहीं किया ? ।।२५।।

मार्कण्डेय बोले —

तब वह राजा ब्राह्मण से बोला कि उसके गूंगेपन को दूर करने के लिए क्या कोई उपाय है ? तब उसने राजा से कहा—।।२६।।

ब्राह्मण बोला—

हे भूप ! आपके वचनों को मानकर मैं सरस्वती इष्टि का यजन करूँगा। तब उसकी वाणी के प्रवर्तन के कारण, आपकी यह पत्नी भी उऋण हो जायेगी ।।२७।।

मार्कण्डेय बोले—

तब उस ब्राह्मण ने सरस्वती इष्टि का यजन किया और स्थिर चित्त होकर सारस्वत सूक्त का जाप किया ।।२८।।

तब बोलने में प्रवृत्त हुई, उससे रसातल में गर्ग मुनि ने कहा—(तुम्हारी) सखी ने पति के द्वारा यह अत्यन्त दुष्कर कार्य कराया है ।।२९।।

इस बात को जानकर नागराज की पुत्री नन्दा शीघ्र ही (उसके) नगर में गयी और उसने अपनी सखी राजपत्नी का आलिंगन किया ।।३०।।

तं च संस्तूय भूपालं कल्याणोक्त्या पुनः पुनः । उवाच मधुरं नागी कृतासनपरिग्रहा ।।३१
उपकारः कृतो वीर भवता यो ममाधुना। तेनास्म्याकृष्टहृदया यद् ब्रवीमि शृणुष्व तत् ।।३२
तव पुत्रो महावीर्य्यो भविष्यति नराधिप । तस्याप्रतिहतं चक्रमस्यां भुवि भविष्यति ।।३३
सर्वार्थशास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मानुष्ठानतत्परः । मन्वन्तरेश्वरो धीमान् भविष्यति स वै मनुः ।।३४

मार्कण्डेय उवाच —

इति दत्त्वा वरं तस्मै नागराजसुता ततः । सखीं तां संपरिष्वज्य पातालमगमन्मुने ।।३५
तत्र तस्य तया सार्द्धं रमतः पृथिवीपतेः । जगाम कालः सुमहान् प्रजाः पालयतस्तथा ।।३६
ततः स तस्यां तनयो जज्ञे राज्ञो महात्मनः । पौर्णमास्या यथा कान्तश्चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः ।।३७
तस्मिन जाते मुदं प्रापुः प्रजाः सर्वाः सहामराः । देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिः पपात च ।।३८
तस्य दृष्ट्वा वपुः कान्तं भविष्यं शीलमेव च । औत्तमश्चेति मुनयो नाम चक्रुः समागताः ।।३९
जातोऽयमुत्तमे वंशे बालः काले तथोत्तमे । उत्तमावयवस्तेन औत्तमोऽयं भविष्यति ।।४०

और उस राजा को भी कल्याणमयी उक्तियों से बार-बार स्तुति करके आसन पर बैठकर, वह नाग-पुत्री मधुर वचन बोली—।।३१।।

हे वीर ! इस समय आपने जो मेरा उपकार किया है, उससे मैं आपकी ओर आकृष्ट चित्तवाली हो गयी हूँ। अब मैं जो कहती हूँ उसको सुनिए ।।३२।।

हे नराधिप ! आपका पुत्र अति शक्तिशाली होगा तथा इस पृथ्वी पर उसका चक्र अप्रतिहत रहेगा ।।३३।।

सभी अर्थशास्त्र के तत्त्वों का ज्ञाता, धर्मानुष्ठान में संलग्न वह मेधावी पुत्र निश्चय ही मन्वन्तर का स्वामी मनु होगा ।।३४।।

मार्कण्डेय बोले—

हे मुने ! इस प्रकार वर देकर वह नाग पुत्री उस अपनी सखी का प्रगाढ़ आलिंगन करके पाताल लोक में चली गयी ।।३५।।

तब राजा का अपनी पत्नी के साथ वहाँ रमण करते हुए और प्रजापालन करते हुए, बहुत समय व्यतीत हो गया ।।३६।।

उसके बाद उस महान् आत्मा वाले राजा ने उस रानी के गर्भ से पूर्णमासी के चन्द्र-मण्डल के समान श्रेष्ठ कान्ति युक्त मुख वाले पुत्र को जन्म दिया ।।३७।।

उसके उत्पन्न होने पर देवताओं सहित समस्त प्रजा आनन्दमग्न हो गयी और देवताओं ने दुन्दुभिवादन किया और पुष्प वृष्टि की ।।३८।।

उसके सुन्दर शरीर, भविष्य और शील को देखकर वहाँ आये हुए मुनियों ने (उसका) औत्तम यह नाम रखा ।।३९।।

(मुनियों ने कहा कि) यह बालक उत्तम कुल में उत्पन्न, उत्तम समय और उत्तम अंगों से युक्त उत्पन्न हुआ है, इसलिए यह 'औत्तम' होगा ।।४०।।

मार्कण्डेय उवाच—

उत्तमस्य सुतः सोऽथ नाम्नाख्यातस्तथौत्तमः। मनुरासीत्तत्प्रभावो भागुरे श्रूयतां मम ॥४१
उत्तमाख्यानमखिलं जन्म चैवौत्तमस्य यः। नित्यं शृणोति विद्वेषं स कदाचिन्न गच्छति ॥४२
इष्टैर्दारैस्तथा पुत्रैर्बन्धुभिर्वा कदाचन। वियोगो नास्य भविता शृण्वतः पठतोऽपि वा ॥४३
तस्य मन्वन्तरं ब्रह्मन् वदतो मम विस्तरात्। श्रूयतां तत्र यश्चेन्द्रो ये च देवास्तथर्षयः ॥४४

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे औत्तममन्वन्तरे औत्तमजन्मवर्णनं नाम एकोनसप्ततितमोऽध्यायः।

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद राजा उत्तम का वह पुत्र औत्तम इस नाम से प्रसिद्ध होकर मनु हुआ, हे भागुरि! अब मैं उसके प्रभाव को कहता हूँ, सुनो ॥४१॥

जो उत्तम के सम्पूर्ण आख्यान एवं औत्तम के जन्म का नित्य श्रवण करता है वह कभी विद्वेष को प्राप्त नहीं करता ॥४२॥

तथा इसका श्रवण अथवा पठन करने वाला व्यक्ति भी कभी इष्ट मित्र पुत्र, स्त्री और बन्धुओं से वियुक्त नहीं होता ॥४३॥

हे ब्रह्मन्! उस मन्वन्तर में जो देवता, ऋषि और इन्द्र हुए उन सबको, उस मन्वन्तर को विस्तार से कहते हुए मुझसे सुनो ॥४४॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में औत्तम मन्वन्तर में औत्तम जन्म वर्णन नामक उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

सप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

मन्वन्तरे तृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्य प्रजापतेः। देवानिन्द्रमृषीन् भूपान् निबोध गदतो मम ॥१
स्वधामानस्तथा देवा यथा नामानुकारिणः। सत्याख्यश्च द्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानां तथा गणः ॥२
तृतीये तु गणे देवाः शिवाख्या मुनिसत्तम। शिवाः स्वरूपतस्ते तु श्रुताः पापप्रणाशनाः ॥३

मार्कण्डेय बोले—

औत्तम प्रजापति के इस तीसरे मन्वन्तर के देवताओं, राजाओं, इन्द्र और ऋषियों को मैं कहता हूं सुनो ॥१॥

नाम का अनुकरण करने वाले स्वधा वाले देवता तथा 'सत्य' नाम से प्रसिद्ध देवों का दूसरा गण है ॥२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! 'शिव' नाम वाला देवताओं का तीसरा गण है। 'शिव' (कल्याण) स्वरूप वाले ही वे सुने गये हैं। उनके नामोच्चारण से ही पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३॥

प्रतर्दनाख्यश्च गणो देवानां मुनिसत्तम । चतुर्थस्तत्र कथित औत्तमस्यान्तरे मनोः ।।४
वशवर्तिनः पञ्चमेऽपि देवास्तत्र गणे द्विज । यथाख्यातस्वरूपास्तु सर्वे एव महामुने ।।५
एते देवगणाः पंच स्मृता यज्ञभुजस्तथा । मन्वन्तरे मनुश्रेष्ठे सर्वे द्वादशका गणाः ।।६
तेषामिन्द्रो महाभागस्त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् । शतंक्रतूनामाहृत्य सुशान्तिर्नाम नामतः ।।७
यस्योपसर्ग-नाशाय नामाक्षरविभूषिता । अद्यापि मानवैर्गाथा गीयते तु महीतले ।।८
सुशान्तिर्देवराट् कान्तः सुशान्ति संप्रयच्छति । सहितः शिवसत्याद्यैस्तथैव वशवर्तिभिः ।।९
अजः परशुचिर्दिव्यो महाबलपराक्रमः । पुत्रास्तस्य मनोरासन् विख्यातास्त्रिदशोपमाः ।।१०
तत्सूति सम्भवैर्भूमिः पालिताभून्नरेश्वरैः । यावन्मन्वन्तरं तस्य मनोरुत्तमतेजसः ।।११
चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः । कृतत्रेतादिसंज्ञानि यान्युक्तानि पुरा मया ।।१२
स्वतेजसा हि तपसो वरिष्ठस्य महात्मनः । तनयाश्चान्तरे तस्मिन् सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ।।१३
तृतीयमेतत्कथितं तव मन्वन्तरं मया । तामसस्य चतुर्थं तु मनोरन्तरमुच्यते ।।१४

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस औत्तम मन्वन्तर के मनु के देवताओं का चतुर्थ गण प्रतर्दन नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।४।।

और हे मुने ! अपने नाम के अनुरूप कार्य करने वाले 'वशवर्ती' नामक देवता इस (मन्वन्तर) में देवताओं के पाँचवें गण कहे गये हैं ।।५।।

इस प्रकार ये देवताओं के पाँच गण यज्ञ भोगी कहे गये हैं और श्रेष्ठ औत्तम मनु के मन्वन्तर में इन गणों में बारह-बारह देवता हैं ।।६।।

हे महाभाग ! उन सब गणों में 'सुशान्ति' नाम से प्रसिद्ध इन्द्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके तीनों लोकों का स्वामी हुआ ।।७।।

जिसके नाम के अक्षरों से सुशोभित गाथाएँ आज भी मनुष्यों के द्वारा, विपत्तियों के नाश के लिए, पृथ्वी तल में गायी जाती हैं ।।८।।

सुशान्ति नाम का देवराज सुन्दर है, वशवर्ती, शिव, सत्य आदि अन्य देवगणों के सहित परम शान्ति प्रदान करने वाला है ।।९।।

उन मनु के देवताओं के समान, महाबली और पराक्रमी अज, परशुचि और दिव्य नाम के तीन पुत्र थे ।।१०।।

उत्तम तेजस्वी उन मनु का जब तक मन्वन्तर रहा तब तक उनके पुत्रों से उत्पन्न राजाओं ने पृथ्वी का पालन किया ।।११।।

चार युगों की संख्या वाले इस मन्वन्तर में इकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक काल का एक मन्वन्तर होता है । कृत, त्रेता आदि नाम वाले होते हैं, यह पहले ही मैंने बता दिया है ।।१२।।

और अपने तेज तथा तप की वरिष्ठता से युक्त महात्मा के सात पुत्र इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हुए ।।१३।।

यह मैंने तुमसे तीसरे मन्वन्तर (के वृतान्त) को कहा । अब मैं तामस मनु के चौथे मन्वन्तर को कहता हूँ ।।१४।।

वियोनिजन्मनो यस्य यशसा द्योतितं जगत् । जन्म तस्य मनोर्ब्रह्मन् छ्रूयतां गदतो मम ।।१५
अतीन्द्रियमशेषाणां मनूनां चरितं तथा । तथा जन्मापि विज्ञेयं प्रभावश्च महात्मनाम् ।।१६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे औत्तममन्वन्तरसमाप्तिवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ।

विभिन्न योनियों में जन्म लेने वाले जिन मनु के सुयश से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान हुआ है ! हे ब्रह्मन् ! उस मनु के जन्म के सम्बन्ध में मुझसे सुनो, ।।१५।।

इन सभी महापुरुष मनुओं के अतीन्द्रिय चरित्र एवं जन्म तथा प्रभाव को अवश्य जानना चाहिए ।।१६।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में औत्तम मन्वन्तर समाप्ति वर्णन नामक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकसप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

राजाऽभूद् भुविविख्यातःस्वराष्ट्रो नाम वीर्यवान् । अनेक यज्ञकृत्प्राज्ञः संग्रामेष्वपराजितः ।।१

तस्यायुः सुमहद्दत्तं सूर्येण सुमहाद्युतेः ।
(पुरा भगवता विप्र मंत्रिणाराधितेन वै ।।)
पत्नीनां च शतं तस्य धन्यानामभवद् द्विज ।।२

तस्य दीर्घायुषः पत्न्यो नातिदीर्घायुषो मुने । कालेन जग्मुर्निधनं भृत्यमन्त्रिजनास्तथा ।।३
स भार्याभिस्तथा मुक्तो भृत्यैश्च सहजन्मभिः । उद्विग्नचेताः संप्राप वीर्यहानिमहर्निशम् ।।४
तं वीर्यहीनं निभृतैर्भृत्यैस्त्यक्तं सुदुःखितम् । अनन्तरो विमर्दाख्यो राज्याच्च्यावितवांस्तदा ।।५

मार्कण्डेय बोले—

इस पृथ्वी पर अनेक यज्ञों को करने वाला, युद्ध में कभी पराजित न होने वाला, अत्यन्त पराक्रमी, स्वराष्ट्र नाम से प्रसिद्ध ज्ञानी राजा हुआ ।।१।।

हे विप्र ! पूर्वकाल में मंत्रियों की आराधना से सूर्य (भगवान्) ने उस परम तेजस्वी की बहुत दीर्घ आयु दी । उसकी भाग्यशालिनी सौ पत्नियाँ थीं ।।२।।

किन्तु हे मुने ! दीर्घ आयु वाले उस (राजा) की पत्नियाँ दीर्घ आयु वाली नहीं थीं । इसलिए समय के साथ ही भृत्यगण, मन्त्रिगण तथा अन्य परिजन मृत्यु को प्राप्त हुए ।।३।।

साथ उत्पन्न हुए भृत्यों एवं भार्याओं से वियुक्त हुए उस राजा का मन उद्विग्न हो गया और प्रतिदिन दुर्बल होने लगा ।।४।।

तब वीर्यहीन विनीत भृत्यों से परित्यक्त तथा अति दुःखी हुए उसको पड़ोसी विमर्द नाम के राजा ने राज्य से हटा दिया ।।५।।

राज्याच्च्युतः सोऽपि वनं गत्वा निर्विण्णमानसः। तपस्तेपे महाभागो वितस्तापुलिने स्थितः ॥६
ग्रीष्मे पञ्चतपा भूत्वा वर्षास्वभ्रंकषाशिकः । जलशायी च शिशिरे निराहारो यतव्रतः ॥७
ततस्तपस्यतस्तस्य प्रावृट्काले महान् प्लवः । बभूवानुदिनं मेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥८
न दिग् विज्ञायते पूर्वा दक्षिणा वा न पश्चिमा । नोत्तरा तमसा सर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥९
ततोऽतिपूरेण नृपः स नद्या प्रेरितस्तटम् । प्रार्थयन्नपि नावाप ह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥१०
अथ दूरे जलौघेन ह्रियमाणो महीपतिः । आससाद जले रौहीं स पुच्छे जगृहे च ताम् ॥११
तेन प्लवेन स यथावूह्यमानो महीतले । इतश्चेतश्चान्धकारे आससाद तटं ततः ॥१२
विस्तारि पङ्कमत्यर्थं दुस्तरं स नृपस्तरन् । तथैव कृष्यमाणोऽन्यद् रम्यं वनमवाप सः ॥१३
तत्रान्धकारे सा रौही चकर्ष वसुधाधिपम् । पुच्छे लग्नं महाभागं कृशं धमनिसन्ततम् ॥१४
तस्याश्च स्पर्शसंभूतामवाप मुदमुत्तमाम् । सोऽन्धकारे भ्रमन् भूपो मदनाकृष्टमानसः ॥१५
विज्ञाय सानुरागं तं पृष्ठस्पर्शनतत्परम् । नरेन्द्रं तं वृषस्यन्तं सा मृगी तमुवाच ह ॥१६
किं पृष्ठं वेपथुमता करेण स्पृशसे मम । अन्यैवास्य कार्यस्य सञ्जाता नृप ते गतिः ॥१७

राज्य से हटाए गये दुःखी चित्त वाले उसने भी वन में जाकर वितस्ता नदी के तट पर रहते हुए तपस्या करने लगा ॥६॥

वह ग्रीष्म काल में पञ्चाग्नि में, वर्षा काल में खुले आकाश में, शिशिर ऋतु में जल में रहकर आहार त्यागकर संयम पूर्वक तप करता था ॥७॥

उसके बाद उसके तपस्या करते हुए ही वर्षा काल में मेघों के निरन्तर बरसते रहने से महा प्रलय हुई ॥८॥

और सभी कुछ मानो अंधकार से ढक गयी । इस घोर अंधकार में न तो पूर्व दिशा का, न पश्चिम का, न उत्तर का और न दक्षिण दिशा का ज्ञान हो पाता था ॥९॥

तब नदी के जल के अत्यधिक वेग से खिंचते हुए, तट की ओर जाने की इच्छा रखते हुए भी जल वेग के द्वारा हरे जाते हुए तट को नहीं पा सके ॥१०॥

तब जल का वेग राजा को अत्यधिक दूर ले गया तब उन्होंने जल में हरिणी को देखा और उन्होंने उसकी पूँछ को पकड़ लिया ॥११॥

इस प्रकार पृथ्वी पर फैले हुए उस जल प्लवन से उस हरिणी के द्वारा खींचे जाते हुए इधर-उधर अंधकार में भटकते हुए राजा तट पर पहुँच गये ॥१२॥

चारों ओर फैली हुई, अत्यन्त दुस्तर उस पंक को पार करते हुए, उस राजा ने तट प्राप्त कर लिया और उसके द्वारा उसी प्रकार खींचे जाते हुए, राजा एक अन्य रमणीय वन में पहुँचे ॥१३॥

तब पूँछ पकड़े हुए दुर्बल, दृष्टि शून्य, महापुरुष, उस राजा को उस रौही ने अंधकार में खींचा ॥१४॥

इसके बाद उस अंधकार में घूमते हुए राजा का मन कामदेव द्वारा प्रभावित हुआ और उसने उस (हरिणी) के स्पर्श से परम सुख प्राप्त किया ॥१५॥

पीठ का स्पर्श करने में तत्पर उसके अनुराग को जानकर, वह (हरिणी) उस राजा से बोली—॥१६॥

हे नृपते ! कांपते हुए हाथ से मेरी पीठ का स्पर्श क्यों कर रहे हैं ? आपके इस कार्य की सम्पन्नता तो अन्यथा हो गयी है ॥१७॥

नास्थाने वो मनो यातं नागम्याऽहं तवेश्वर। किंतु त्वत्सङ्गमे विघ्नमेष लोलः करोति मे ॥१८

मार्कण्डेय उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तस्या मृग्याश्च जगतीपतिः। जातकौतूहलो रौहीमिदं वचनमब्रवीत् ॥१९

का त्वं ब्रूहि मृगी वाक्यं कथं मानुषवद् वदेत्।
कश्चैव लोलो यो विघ्नं त्वत् संगमे कुरुते मम ॥२०

मृग्युवाच—

अहं ते दयिता भूप प्रागासमुत्पलावती। भार्या शताग्रमहिषी दुहिता दृढधन्वनः ॥२१

राजोवाच—

किन्तु यावत्कृतं कर्म येनेमां योनिमागता। पतिव्रता धर्मपरा सा चेत्थं कथमीदृशी ॥२२

मृग्युवाच—

अहं पितृगृहे बाला सखीभिः सहिता वनम्। रन्तुं गता ददर्शैकं मृगं मृग्या-समागतम् ॥२३
ततः समीपवर्तिन्याः मया सा ताडिता मृगी। मया त्रस्ता गताऽन्यत्र क्रुद्धः प्राह ततो मृगः ॥२४
मूढे किमेवं मत्तासि धिक् ते दौःशील्यमीदृशम्। आधानकालो येनायं त्वया मे विफलीकृतः ॥२५
वाचं श्रुत्वा ततस्तस्य मानुषस्येव भाषतः। भीता तमब्रवं कोऽसीत्येतां योनिमुपागतः ॥२६

हे राजन्! आपका मन अस्थान पर नहीं गया है। मैं आपके लिए अगम्य नहीं हूँ। किन्तु आपके संगम में यह लोल विघ्न कर रहा है ॥१८॥

मार्कण्डेय बोले—

उस मृगी के इस प्रकार वचन सुनकर उत्पन्न कौतूहल वाले राजा ने रौही से ये वचन कहे— ॥१९॥

हे मृगी! तुम कौन हो और इस प्रकार की मानुषी वाणी कैसे बोल रही हो और यह लोल कौन है, जो तुम्हारे संग में मुझको बाधा करेगा ॥२०॥

मृगी बोली—

हे राजन्! दृढ़धन्वा की पुत्री, सौ पत्नियों में अग्रणी मैं पहले आपकी उत्पलावती नाम की पत्नी थी ॥२१॥

राजा बोला—

किन्तु मेरी वह पत्नी तो पतिव्रता धर्मपरायणा थी फिर तुमने ऐसा क्या कर्म किया, जिससे इस प्रकार की योनि को प्राप्त हो गयी हो? ॥२२॥

मृगी बोली—

बाल्यकाल में पिता के घर में मैं एक बार सखियों के साथ वन में विहार करने के लिए गयी और वहाँ मैंने मृगी से समागम करते हुए मृग को देखा ॥२३॥

तब पास में स्थित उस मृगी पर मैंने प्रहार किया। मुझसे भयभीत हुई वह (मृगी) अन्यत्र चली गयी, तब क्रुद्ध हुए मृग ने कहा— ॥२४॥

हे मूढ़े! क्यों इस प्रकार मत्त हो रही हो, तुम्हारी इस प्रकार की दुःशीलता को धिक्कार है। जो कि तूने मेरे इस गर्भाधान का काल विफल कर दिया ॥२५॥

तब मनुष्य के समान बोलते हुए उसकी वाणी को सुनकर भयभीत हुई मैं उससे बोली आप कौन हैं और इस योनि में किस प्रकार आ गये हैं? ॥२६॥

ततः स प्राह पुत्रोऽहमृषेर्निर्वृ तिचक्षुषः । सुतपा नाम मृग्यां तु साभिलाषो मृगोऽभवम् ।।२७
इमांचानुगतः प्रेम्णा वाञ्छितश्चानया वने। त्वया वियोजिता दुष्टे तस्माच्छापं ददामि ते ।।२८
मया चोक्तं तवाज्ञानादपराधः कृतो मुने । प्रसादं कुरु शापं मे न भवान् दातुमर्हति ।।२९
इत्युक्तः प्राह मां सोऽपि मुनिरित्थं महीपते । न प्रयच्छामि शापं ते यद्यात्मानं ददासि मे ।।३०
मया चोक्तं मृगी नाहं मृगरूपधरा वने । लप्स्यसेऽन्यां मृगीं तावन्मयि भावो निवर्त्यताम् ।।३१
इत्युक्तः कोपरक्ताक्षः स प्राह स्फुरिताधरः । नाहं मृगी त्वयेत्युक्तं मृगी मूढे भविष्यसि ।।३२
ततो भृशं प्रव्यथिता प्रणम्य मुनिमब्रुवम् । स्वरूपस्थमतिक्रुद्धं प्रसीदेति पुनः पुनः ।।३३
बालानभिज्ञावाक्यानां ततः प्रोक्तमिदं मया । पितर्यसति नारीभिर्व्रियते हि पतिः स्वयम् ।।३४
सति ताते कथं चाहं वृणोमि मुनिसत्तम । सापराधाथवा पादौ प्रसीदेषा नमाम्यहम् ।।३५
प्रसीदेति प्रसीदेति प्रणतायां महामते । इत्थं लालप्यमानायाः स प्राह मुनिपुङ्गवः ।।३६
न भवत्यन्यथा प्रोक्तं मम वाक्यं कदाचन । मृगी भविष्यसि मृता वनेऽस्मिन्नेव जन्मनि ।।३७

उसके बाद वह बोला—मैं निर्वृ त्ति चक्षु मुनि का पुत्र हूँ, सुतपा नाम की मृगी में अभिलाषा होने से मृग हुआ हूँ ।।२७।।

और इसकी इच्छा से ही मैं इस वन में इसका अनुगामी हुआ हूँ और वह मेरी । किन्तु हे दुष्टे ! तूने मुझसे इसको अलग कर दिया, इसलिए अब मैं तुझको शाप देता हूँ ।।२८।।

तब मैंने कहा हे मुने ! मुझसे अज्ञानवश आपका अपराध हो गया है। आप प्रसन्न होइये और कृपया शाप न दीजिए ।।२९।।

ऐसा कहने पर, हे महीपते ! वह मुनि भी मुझसे इस प्रकार बोला - यदि तुम अपने को मुझे सौंपती हो तो मैं तुम्हें शाप नहीं दूँगा ।।३०।।

तब मैंने कहा—मृग रूपधारी मैं मृगी नहीं हूँ इसलिए आप अन्य मृगी की इच्छा कीजिए । मेरे प्रति इस भाव को त्याग दीजिए ।।३१।।

ऐसा कहने पर क्रोध से लाल हुए नेत्रों वाला, कंपित ओठों से वह बोला—'मैं मृगी नहीं हूँ' तुमने इस प्रकार कहा है (इसलिए) हे मूढ़े ! तुम मृगी होओगी ।।३२।।

तब अत्यधिक व्यथित हुई मैंने अपने रूप में स्थित, अति क्रुद्ध उन मुनि को प्रणाम करके बार-बार 'प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' इस प्रकार कहा ।।३३।।

अबोधता के कारण मैं बात कहना भी नहीं जानती हूँ, इसीलिए मैंने आपके प्रति इस प्रकार वह दिया। पिता के अभाव में ही नारी स्वयं पति का वरण कर सकती है ।।३४।।

तब हे मुनिश्रेष्ठ ! पिता के रहते (मैं आपका) वरण कैसे करूँ ? आपके प्रति अपराधिनी मैं आपके चरणों में नमस्कार करती हूँ। आप प्रसन्न होइये ।।३५।।

हे महामते ! प्रणाम पूर्वक 'प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये' इस प्रकार प्रलाप करती हुई, मुझसे अब मुनि श्रेष्ठ ने कहा ।।३६।।

मेरा कहा गया वचन कभी अन्यथा नहीं होता। इस जन्म में मरने पर तुम इसी वन में मृगी बनोगी ।।३७।।

मृगत्वे च महाबाहुस्तव गर्भमुपैष्यति । लोलो नाम मुनेः पुत्रः सिद्धवीर्यस्य भाविनि ।।३८
जातिस्मराभवित्री त्वं तस्मिन् गर्भमुपागते। स्मृतिं प्राप्य तथा वाचं मानुषीमीरयिष्यसि ।।३९
तस्मिञ्जाते मृगत्वात्त्वं विमुक्ता पतिनार्चिता । लोकानवाप्स्यसि प्राप्या येन दुष्कृतकर्मभिः ।।४०
सोऽपि लोलो महावीर्यः पितृशत्रून् निपात्य वै। जित्वा वसुन्धरां कृत्स्नां भविष्यति ततो मनुः ।।४१
एवं शापमहं लब्ध्वा मृता तिर्य्यक्त्वमागता । त्वत्संस्पर्शाच्च गर्भोऽसौ संभूतो जठरे मम ।।४२
अतो ब्रवीमि नास्थाने तव यातं मनो मयि ।न चाप्यगम्या गर्भस्थो लोलो विघ्नं करोत्यसौ ।।४३

मार्कण्डेय उवाच—

एवमुक्तस्ततः सोऽपि राजा प्राप्य परां मुदम्। पुत्रो ममारीञ्जित्वेति पृथिव्यां भविता मनुः ।।४४
ततस्तं सुषुवे पुत्रं सा मृगी-लक्षणान्वितम् । तस्मिञ्जाते च भूतानि सर्वाणि प्रययुर्मुदम् ।।४५
विशेषतश्च राजाऽसौ पुत्रे जाते महावने। सा विमुक्ता मृगी शापात् प्राप लोकाननुत्तमान् ।।४६
ततस्तस्यर्षयः सर्वे समेत्य मुनिसत्तम । अवेक्ष्य भाविनीमृद्धिं नाम चक्रुर्महात्मनः ।।४७

और मृग योनि प्राप्त करने पर महाबाहु लोल तेरे गर्भ में आयेंगे। तब सिद्धवीर्य मुनि के पुत्र को उत्पन्न करने वाली होओगी ।।३८।।

और लोल के उस गर्भ में आने पर तुम पूर्व जन्म की बातें स्मरण करने लगोगी एवं स्मृति पाकर मनुष्य वाणी का उच्चारण करोगी ।।३९।।

उसके उत्पन्न होने पर, मृग योनि से मुक्त होकर एवं पति द्वारा सम्मानित होकर तुम उन लोकों को प्राप्त करोगी जिन्हें पापी लोग प्राप्त नहीं कर पाते ।।४०।।

और महापराक्रमी वह लोल भी अपने पिता के शत्रुओं को मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर मनु होगा ।।४१।।

इस प्रकार शाप प्राप्त करके मैं मरकर इस तिर्यक् योनि में आ गयी हूँ और आपके स्पर्श के कारण ही मेरे पेट में वह गर्भ उत्पन्न हुआ है ।।४२।।

इसीलिए मैंने कहा कि मुझमें अनुरक्त आपका मन अनुचित स्थान में नहीं गया है और न ही मैं आपके लिए गम्या हूँ क्योंकि गर्भस्थ यह लोल विघ्नकारी है ।।४३।।

मार्कण्डेय बोले—

ऐसा कहने पर, यह पुत्र मेरे शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी पर मनु होगा, यह सोचकर राजा भी परम हर्ष को प्राप्त हुए ।।४४।।

फिर उस मृगी ने उत्तम लक्षण सम्पन्न पुत्र को जन्म दिया और उसके उत्पन्न होने पर सभी जीव आनन्द मग्न हो गये ।।४५।।

विशेष रूप से पुत्र के उत्पन्न होने पर वह राजा बहुत अधिक प्रसन्न हुआ और उस महावन में शाप से मुक्त हुई उस मृगी ने उत्तमोत्तम लोकों को प्राप्त किया ।।४६।।

हे मुनिवर ! तब उन सभी ऋषियों ने आकर भविष्य में होने वाली ऋद्धि को देखकर उसका नामकरण किया ।।४७।।

तामसीं भजमानायां योनिं मातर्यजायत । तमसा चावृते लोके तामसोऽयं भविष्यति ।।४८
ततः स तामसस्तेन पित्रा संवर्द्धितो वने । जात बुद्धिरुवाचेदं पितरं मुनिसत्तम ।।४९
कस्त्वं तात कथं वाहं पुत्रो माता च का मम । किमर्थमागतश्च त्वमेतत् सत्यं ब्रवीहि मे ।।५०

मार्कण्डेय उवाच—

ततः पिता यथावृत्तं स्वराज्यच्यावनादिकम् । तस्याचष्टे महाबाहुः पुत्रस्य जगतीपतिः ।।५१
श्रुत्वा तत्सकलं सोऽपि समाराध्य च भास्करम् । अवाप दिव्याण्यस्त्राणि स संहाराण्यशेषतः ।।५२
कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वा पितुरानीय चान्तिकम् । अनुज्ञातान् मुमोचाथ स च स्वं धर्ममास्थितः ।।५३

पितापि तस्य स्वाँल्लोकांस्तपोयज्ञसमार्जितान् ।
विसृष्टदेहः संप्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रमुखं सुखम् ।।५४

जित्वा समस्तां पृथिवीं तामसाख्यः स पार्थिवः । तामसाख्यो मनुरभूत् तस्यमन्वन्तरं शृणु ।।५५
ये देवास्तत्पतिर्यश्च देवेन्द्रो ये तथर्षयः । ये पुत्राश्च मनोस्तस्य पृथिवीपरिपालकाः ।।५६
सत्यास्तथान्ये सुधियः सुरूपा हरयस्तथा । एते देवगणास्तत्र सप्तविंशतिका मुने ।।५७
महाबलो महावीर्य्यः शतयज्ञोपलक्षितः । शिखिरिन्द्रस्तथा तेषां देवानामभवद्विभुः ।।५८

यह बालक अंधकार से विश्व के ढके जाने पर तामसी योनि में उत्पन्न, माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। इसलिए यह तामस नाम वाला होगा ।।४८।।

हे मुनि ! तब वह तामस पिता द्वारा वन में पालित हुआ। विचारशील होने पर पिता से बोला, ।।४९।।

हे तात ! आप कौन हैं ? अथवा मैं कैसे आपका पुत्र हूँ ? मेरी माता कौन है ? मैं यहाँ किस लिए आया हूँ ? यह सब आप मुझसे यथार्थ रूप में बताइये ।।५०।।

मार्कण्डेय बोले—

तब पिता महाबाहु राजा ने, उस पुत्र से, अपने राज्य से च्युत होने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ।।५१।।

उसने भी उस सब वृत्तान्त को सुनकर भगवान् भास्कर की आराधना करके संहार ज्ञान के साथ सम्पूर्ण दिव्य अस्त्र प्राप्त किये ।।५२।।

पुनः अस्त्र प्रयोग में निपुणता प्राप्त करके, शत्रुओं को जीतकर, पिता के समीप लाकर, अपने धर्म में तत्पर हुए, उसने पिता की आज्ञा से, उन सबको छोड़ दिया ।।५३।।

फिर उसके पिता ने भी सुखी पुत्र के मुख को देखकर सुख पूर्वक देह का त्याग किया और तप यज्ञादि से अर्जित पुण्यों के प्रभाव से उच्च लोकों को प्राप्त किया ।।५४।।

तामस नामक राजा समस्त पृथ्वी को जीतकर 'तामस' नाम का मनु हुआ। अब उस मन्वन्तर के देवता और उनके स्वामी देवेन्द्र, तथा ऋषि एवं उस मनु के पृथ्वीपालक पुत्रों का सुनो ।।५५-५६।।

हे मुने ! इस मन्वन्तर में सत्य, सुधी, सुरूप और हरि ये चार प्रकार के देव गण हुए और प्रत्येक गण में सत्ताईस देवता हुए ।।५७।।

महाबली और महापराक्रमी शिखि नामक इन्द्र सौ यज्ञों का सम्पादन करके उन देवताओं का स्वामी हुआ ।।५८।।

ज्योतिर्धर्मापृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा । पीवरश्च तथा ब्रह्मन् सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ।।५९
नरः क्षान्तिः शान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा । पुत्रास्तु तापसस्यासन् राजनः सुमहाबलाः ।।६०
इत्येतत्तामसं विप्र मन्वन्तरमुद.हृतम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि तमसा स न बाध्यते ।।६१

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे तामस मन्वन्तरे नाना राज्ञां वर्णनं नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः ।

और उस मन्वन्तर में जो सात ऋषि हुए वे ज्योति धर्म, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर नाम वाले थे ।।५९।।

और उस तामस मनु के नर, क्षान्ति, शान्त, दान्त, जानु, जंघ आदि पुत्र महाबली राजा हुए ।।६०।।

इस प्रकार हे विप्र ! मैंने तुम्हें तामस मन्वन्तर का वृत्तान्त यथार्थ रूप से कहा, जो तामस (मन्वन्तर के वृत्तान्त) को पढ़ता अथवा सुनता है, उसको कभी अज्ञानान्धकार बाधित नहीं करता ।।६१।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में तामस मन्वन्तर में नाना राजाओं का वर्णन नामक इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

पञ्चमोऽपि मनुर्ब्रह्मन् रैवतो नाम विश्रुतः । तस्योत्पत्तिं विस्तरशः शृणुष्व कथयामि ते ।।१
ऋषिरासीन्महाभाग ऋतवागिति विश्रुतः । तस्यापुत्रस्य पुत्रोऽभूद् रेवत्यन्ते महात्मनः ।।२
स तस्य विधिवच्चक्रे जातकर्मादिकः क्रियाः । तथोपनयनादींश्च स चाशीलोऽभवन्मुने ।।३
यतः प्रभृति जातोऽसौ ततः प्रभृति सोऽप्यृषिः । दीर्घरोगपरामर्शमवाप मुनिपुङ्गवः ।।४
माता तस्य परामार्तिं कुष्ठरोगादिपीडिता । जगाम स पिता चास्य चिन्तयामास दुःखितः ।।५

मार्कण्डेय बोले—

हे ब्रह्मन् ! रैवत नाम के पाँचवें मनु कहे जाते हैं । उनके जन्मादि के विषय में मैं तुमसे विस्तार पूर्वक कहता हूँ, सुनो ।।१।।

हे महाभाग ! ऋतवाक् नाम से प्रसिद्ध ऋषि थे । निःसन्तान उन महात्मा को रेवती नक्षत्र के अन्त में पुत्र प्राप्ति हुई ।।२।।

उन्होंने उसकी जातकर्म और उपनयनादि क्रियाएँ विधिवत् कीं किन्तु हे मुने ! वह पुत्र शीलवान् नहीं था ।।३।।

जबसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ तब से लेकर वे मुनि पुङ्गव ऋषि दीर्घ काल तक रहने वाले रोग से ग्रस्त हो गये ।।४।।

और उसकी माता भी अत्यन्त कष्टकारक कुष्ट रोग से पीड़ित हो गयी । इस दुःख से दुःखी पिता ने विचार किया ।।५।।

किमेतदिति सोऽप्यस्य पुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः । जग्राह भार्यामन्यस्य मुनिपुत्रस्य सम्मुखीम् ॥६
ततो विषण्णमनसा ऋतवागिदमुक्तवान् । अपुत्रता मनुष्याणां श्रेयसे न कुपुत्रता ॥७
कुपुत्रो हृदयायासं सर्वदा कुरुते पितुः । मातुश्च स्वर्गसंस्थांश्च स्वपितृन् पातयत्यधः ॥८
सुहृदां नोपकाराय पितृणां च न तृप्तये । पित्रोर्दुःखाय धिग् जन्म तस्य दुष्कृतकर्मणः ॥९
धन्यास्ते तनया येषां सर्वलोकाभिसम्मताः । परोपकारिणः शान्ता साधुकर्मण्यनुव्रताः ॥१०
अनिर्वृतं तथा मन्दं परलोकपराङ्मुखम् । नरकाय न सद्गत्यै कुपुत्रालम्बिजन्मनः ॥११
करोति सुहृदां दैन्यमहितानां तथा मुदम् । अकाले च जरां पित्रोः कुसुतः कुरुते ध्रुवम् ॥१२

मार्कण्डेय उवाच—

एवं सोऽत्यन्तदुष्टस्य पुत्रस्य चरितैर्मुनिः । दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तं गर्गमपृच्छत ॥१३

ऋतवागुवाच—

सुव्रतेन पुरा वेदा गृहीता विधिवन्मया । समाप्य वेदान् विधिवत् कृतो दारपरिग्रहः ॥१४
सदारेण क्रियाः कार्याः श्रौताः स्मार्त्तविषट्क्रियाः ।
न मे न्यूनाः कृताः काश्चिद्यावदद्य महामुने ॥१५

इस सबका क्या कारण है ? इस (मुनि) का वह पुत्र भी अत्यन्त दुर्मति था। (उसने एक बार) सामने आयी हुई अन्य मुनि पुत्र की भार्या को पकड़ लिया ॥६॥

तब ऋतवाक् मुनि ने दुःखी चित्त से इस प्रकार कहा;— मनुष्यों का निःसंतान होना श्रेयष्कर है; कुपुत्रवान् होना नहीं ॥७॥

कुपुत्र सर्दव माता-पिता के हृदय को दुःख देता है और स्वर्ग में स्थित (माता और पिता के) पितरों को पतित करता है ।'८ ।

मित्रों के उपचार और पितरों की तृप्ति के लिए उसका जन्म नहीं होता वह तो केवल माता-पिता को दुख देने के लिए ही होता है, दुष्कृत कर्मा ऐसे पुत्र के जन्म को धिक्कार है ॥९॥

वे धन्य हैं जिसके पुत्र सभी लोगों के प्रिय, परोपकारी, शान्त प्रकृति और उत्तम कर्मों को करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं ॥१०॥

कुपुत्रावलम्वी हमारा जन्म, अशान्त चित्त, मन्दभाग्य एवं परलोक से पराङ्मुख, नरक के लिए ही हुआ है (श्रेष्ठ) संगति प्राप्त करने के लिए नहीं ॥११॥

कुपुत्र सर्दव सज्जनों को कष्ट तथा अपकार करने वालों को प्रसन्न और माता-पिता को निश्चय ही असमय में वृद्धावस्था प्राप्त कराने वाला होता है ॥१२॥

मार्कण्डेय बोले —

इस प्रकार अत्यन्त दुष्ट उस पुत्र के चरित्रों से मन में दग्ध होते हुए, उन मुनि ने गर्ग जी से उसके विषय में पूछा —॥१३॥

ऋतवाक् बोले —

उत्तम व्रतों का पालन करते हुए मैंने पहले सभी वेदों का विधिवत् अध्ययन किया और वेदों के अध्ययन को समाप्त करके, विधिपूर्वक ही पत्नी का ग्रहण किया ॥१४॥

और पत्नी सहित करने योग्य श्रौत, स्मार्त और वषट् कियाएँ कीं। हे महामुने ! इन सब क्रियाओं में से कोई भी मैंने न्यूनाधिक रूप में नहीं की (अपितु शास्त्रोक्त रीति से ही कीं) ॥१५॥

गर्भाधान विधानेन न काममनुरुध्यता । पुत्रार्थं जनितश्चायं पुन्नाम्नो बिभ्यता मुने ॥१६
सोऽयं किमात्मदोषेण मम दोषेण वा मुने ।
अस्मद् दुःखावहो जातो दौःशील्याद् बन्धुशोकदः ॥१७

गर्ग उवाच –

रेवत्यन्ते मुनिश्रेष्ठ जातोऽयं तनयस्तव । तेन दुःखायते दुष्टे काले यस्मादजायत ॥१८
न तेऽपचारो नैवास्य मातुर्नायं कुलस्य ते । तस्य दौःशील्यहेतुत्वं रेवत्यन्तमुपागतम् ॥१९

ऋतवागुवाच –

यस्मान्ममैकपुत्रस्य रेवत्यन्तसमुद्भवम् । दौःशील्यमेतत् सा तस्मात् पततामाशुरेवती ॥२०

मार्कण्डेय उवाच –

तेनैवं व्याहृते शापे रेवत्यृक्षं पपात ह । पश्यतः सर्वलोकस्य विस्मयाविष्टचेतसः ॥२१
रेवत्यृक्षं च पतितं कुमुदाद्रौ समन्ततः । भासयामास सहसा वनकन्दरनिर्झरान् ॥२२
कुमुदाद्रिश्च तत्पातात् ख्यातो रैवतकोऽभवत् । अतीव रम्यः सर्वस्यां पृथिव्यां पृथिवीधरः ॥२३
तस्यर्क्षस्य तु या कान्तिर्जाता पङ्कजिनीसरः । ततो जज्ञे तदा कन्या-रूपेणातीव शोभना ॥२४

हे मुने ! पुंनाम के नरक से डरते हुए, काम को न रोक सकने के कारण इस पुत्र की उत्पत्ति नहीं की, अपितु पुत्र के लिए ही विधिवत् गर्भाधान द्वारा ही इसे उत्पन्न किया ॥१६॥

हे मुने ! वही यह पुत्र क्या अपने दोष से अथवा मेरे दोष से दुश्चरित्रता के कारण, बन्धुओं को शोक देने वाला यह पुत्र हमारे लिए दुःखदायी हो गया है ॥१७॥

गर्ग बोले—

हे मुनिश्रेष्ठ ! आपका यह पुत्र रेवती नक्षत्र के अन्त में उत्पन्न हुआ है। क्योंकि यह दुष्ट समय में (बुरे मुहूर्त में) उत्पन्न हुआ है, इसलिए तुम्हारे लिए दुःखदायी है ॥१८॥

इस सम्बन्ध में न तो तुम्हारा, न इसकी माता का और न ही तुम्हारे कुल का कोई अपचार (व्यतिक्रम) है। उसकी दुःशीलता का हेतु तो उसका रेवती नक्षत्र के अन्तिम समय में उत्पन्न होना है ॥१९॥

ऋतवाक् बोले—

क्योंकि रेवती के अन्तिम समय में उत्पन्न होने से मेरा यह एकमात्र पुत्र दुश्चरित्र हो गया है, इसलिए वह रेवती नक्षत्र शीघ्र ही गिर जाए ॥२०॥

मार्कण्डेय बोले—

आश्चर्यचकित चित्त से सभी लोगों के देखते हुए ही उनके द्वारा इस प्रकार शाप देने पर रेवती नक्षत्र शीघ्र ही गिर पड़ा ॥२१॥

गिरते हुए रेवती नक्षत्र ने कुमुद पर्वत के सभी वन, कन्दरा और झरनों को चारों ओर से सहसा प्रकाशित कर दिया ॥२२॥

और उसके गिरने के कारण पृथ्वी पर स्थित सभी पर्वतों में अत्यधिक रमणीय कुमुद पर्वत ही रैवतक नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥२३॥

उस रेवती नक्षत्र से जो कान्ति उत्पन्न हुई, उससे कमल युक्त सरोवर उत्पन्न हुआ और उस सरोवर से एक अति रूपवती कन्या उत्पन्न हुई ॥२४॥

रेवतीकान्तिसम्भूतां तां दृष्ट्वा प्रमुचो मुनिः । तस्य नाम चकारेत्थं रेवती नाम भागुरे ॥२५
पोषयामास चैवैतां स्वाश्रमाभ्याशसम्भवाम् । प्रमुचः स महाभागस्तस्मिन्नेव महाचले ॥२६
तां तु यौवनिनीं दृष्ट्वा कन्यकां रूपशालिनीम् ।
स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या भर्ता भवेदिति ॥२७
एवं चिन्तयतस्तस्य ययौ कालो महान् मुने । न चाससाद सदृशं वरं तस्या महामुनिः ॥२८
ततस्तस्या वरं प्रष्टुमग्निं स प्रमुचो मुनिः । विवेश वह्निशालां वै पृष्टस्तं प्राह हव्यभुक् ॥२९
महाबलो महावीर्यः प्रियवाग्धर्मवत्सलः । दुर्गमो नाम भविता भर्त्ता ह्यस्या महीपतिः ॥३०

मार्कण्डेय उवाच—

अनन्तरश्च मृगया प्रसङ्गेनागतो मुने । तस्याश्रमपदं धीमान् दुर्गमः स नराधिपः ॥३१
प्रियव्रतान्वयभवो महाबलपराक्रमः । पुत्रो विक्रमशीलस्य कालिन्दी जडरोद्भवः ॥३२
स प्रविश्याश्रमपदं तां तन्वीं जगतीपतिः । अपश्यमानस्तमृषिं प्रियेत्यामन्त्र्य पृष्टवान् ॥३३

राजोवाच—

क्व गतो भगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः । तं प्रणेतुमिहेच्छामि तत्त्वं प्रब्रूहि शोभने ॥३४

हे भागुरे ! रेवती (नक्षत्र) की कान्ति से उत्पन्न हुई, उस कन्या को देखकर, प्रमुच मुनि ने उसका नाम रेवती रखा ॥२५॥

और अपने आश्रम के समीप उत्पन्न हुई उस कन्या का उन महाभाग प्रमुच ने उसी महापर्वत में पालन-पोषण किया ॥२६॥

तब उसके बाद रूपवती एवं यौवन सम्पन्न उस कन्या को देखकर उन मुनि ने सोचा— कौन इसका पति होगा ॥२७॥

हे मुने ! उनके ऐसा सोचते हुए ही बहुत समय व्यतीत हो गया किन्तु महामुमि ने उसके योग्य कोई वर प्राप्त नहीं किया ॥२८॥

तब प्रमुच मुनि ने उसके वर को अग्नि से पूछने के लिए अग्निशाला में प्रवेश किया और पूछने पर अग्निदेव ने कहा—॥२९॥

महाबली, महा शक्तिशाली, प्रियवक्ता, धर्मवत्सल, दुर्गम नाम का राजा इस (कन्या) का पति होगा ॥३०॥

मार्कण्डेय बोले —

हे मुने ! इसके बाद प्रियव्रत के वंश में कालिन्दी के उदर से उत्पन्न महाबल और पराक्रम से युक्त, विक्रमशील का पुत्र दुर्गम नाम का वह बुद्धिमान् राजा शिकार के प्रसंग से उस आश्रम में आया ॥३१–३२॥

आश्रम में प्रवेश करके उस राजा ने ऋषि को न देखते हुए उस कृशांगी से 'प्रिये' इस प्रकार सम्बोधन करके पूछा—॥३३॥

राजा बोला—

हे शोभने ! मुनि पुङ्गव भगवान् इस आश्रम से कहाँ गये हैं क्योंकि मैं उन्हें प्रणाम करने की इच्छा से यहाँ आया हूँ । तुम मुझे ठीक-ठीक बताओ ॥३४॥

मार्कण्डेय उवाच—

अग्निशालां गतो विप्रस्तच्छ्रुत्वा तस्य भाषितम्। प्रिये त्यामन्त्रणं चैव निश्चक्राम त्वरान्वितः ॥३५
स ददर्श महात्मानं राजानं दुर्गमं मुनिः । नरेन्द्रचिह्नसहितं प्रश्रयावनतं पुरः ॥३६
तस्मिन् दृष्टे ततः शिष्यमुवाच स तु गौतमम् । गौतमानीयतां शीघ्रमर्घोऽस्य जगतीपतेः ॥३७
एकस्तावदयं भूपश्चिरकालादुपागतः । जामाता च विशेषेण योग्योऽर्घस्य मतो मम ॥३८

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स चिन्तयामास राजा जामातृकारणम् । विवेद च न तन्मौनी जगृहेऽर्घं च तन्नृपः ॥३९
तमासनगतं विप्रो गृहीतार्घं महामुनिः । स्वागतं प्राह राजेन्द्रमपि ते कुशलं गृहे ॥४०
कोशे बलेऽथ मित्रेषु भृत्यामात्ये नरेश्वर । तथात्मनि महाबाहो यत्तत्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥४१
पत्नी च ते कुशलिनीयत एवानुतिष्ठति । पृच्छाम्यस्यास्ततो नाहं कुशलिन्योऽपरास्तव ॥४२

राजोवाच –

त्वत्प्रसादादकुशलं न क्वचिन्मम सुव्रत । जातकौतूहलश्चास्मि मम भार्यात्र का मुने ॥४३

मार्कण्डेय बोले –

'प्रिये' उस राजा के इस सम्बोधन को सुनकर अग्निशाला में गये हुए मुनि शीघ्रता से (अग्निशाला से) निकले ॥३५॥

तब उन मुनि ने राज-लक्षणों से युक्त विनय से अवनत हुए, अपने सामने महान् (आत्मा वाले) राजा दुर्गम को देखा ॥३६॥

उसे देखने पर उन्होंने गौतम (नामक) शिष्य से कहा गौतम, इस राजा के लिए शीघ्र ही अर्घ्य ले आओ ॥३७॥

प्रथम तो यह राजा चिरकाल के बाद यहाँ आया है और फिर जामाता होने से मेरे विचार में विशेष रूप से अर्घ्य के योग्य पात्र है ॥३८॥

मार्कण्डेय बोले —

तब राजा ने जामातृ (शब्द) के कारण पर विचार किया किन्तु कुछ समझ नहीं पाये, तब राजा ने चुपचाप वह अर्घ्य ग्रहण किया ।३९॥

अर्घ्य ग्रहण करने के बाद, आसन पर बैठे हुए, राजा से महामुनि ने सम्मान पूर्वक कहा—हे राजन् ! क्या तुम्हारे घर पर कोषागार, सेना, मित्र, भृत्य, अमात्य और स्वयं सब कुशल तो हैं जिससे यह सब प्रतिष्ठित है ? ॥४०-४१॥

तुम्हारी पत्नी तो यहाँ कुशल पूर्वक रह रही है इसलिए मैंने उसका कुशल क्षेम नहीं पूछा, आपकी दूसरी पत्नियाँ तो कुशल हैं ? ॥४२॥

राजा बोला —

हे सुव्रती ! आपकी कृपा से मेरा कहीं भी अकुशल नहीं है । परन्तु हे मुनिवर ! मुझे कुतूहल हो रहा है कि यहाँ मेरी कौनसी पत्नी है ? ॥४३॥

ऋषिरुवाच—

रेवती सुमहाभागा त्रैलोक्यस्यापि सुन्दरी।
तव भार्या वरारोहा तां त्वं राजन् न वेत्सि किम् ।।४४

राजोवाच—

सुभद्रां शान्ततनयां कावेरीतनयां विभाम्। सुराष्ट्रजां सुजातां च कदम्बां च वरूथजाम् ।।४५
विपाठां नन्दिनीं चैव वेद्मि भार्यां गृहे द्विज। तिष्ठन्ति मे न भगवन् रेवतीं वेद्मि का न्वियम् ।।४६

ऋषिरुवाच—

प्रियेति साम्प्रतं येयं त्वयोक्ता वरवर्णिनी। किं विस्मृतं ते भूपाल श्लाघ्येयं गृहिणी तव ।।४७

राजोवाच—

सत्यमुक्तं मया किन्तु भावो दुष्टो न मे मुने। नात्र कोपं भवान् कर्तुमर्हत्यस्मासु याचितः ।।४८

ऋषिरुवाच—

यत्त्वं ब्रवीषि भूपाल न भावस्तव दूषितः। व्याजहार भवानेतद् वह्निना नृपचोदितः ।।४९
मया पृष्टो हुतवहः कोऽस्या भर्त्तेति पार्थिव। भविता तेन चाप्युक्तो भवानेवाद्य वै वरः ।।५०
तद्गृह्यतां मया दत्ता तुभ्यं कन्या नराधिप। प्रियेत्यामन्त्रिता चेयं विचारं कुरुषे कथम् ।।५१

ऋषि बोले—

हे राजन्! क्या तुम नहीं जानते हो, कि तीनों लोकों में अद्वितीय ऐश्वर्यवती परम सुन्दरी रेवती नाम की आपकी श्रेष्ठ पत्नी यहाँ रह रही है ।।४४।।

राजा बोला—

हे द्विज! मैं शुभद्रा, शान्त तनया, कावेरी तनया, विभा, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरुथजा, विपाठा और नन्दिनी—इन पत्नियों को जानता हूँ, वे मेरे घर में रहती हैं। किन्तु हे भगवन्! मैं रेवती को तो नहीं जानता, यह कौन है? ।।४५-४६।।

ऋषि बोले—

जो सुन्दरी अभी अभी तुम्हारे द्वारा 'प्रिये' इस पद द्वारा सम्बोधित की गयी है, भूपाल! क्या तुम इसको भूल गये हो, यह तुम्हारी श्लाघनीय गृहिणी है ।।४७।।

राजा बोले—

हे मुने! वास्तव में मैंने (उसको प्रिये) कहा है किन्तु उसमें मेरी भावना दुष्ट नहीं थी, इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस सम्बन्ध में क्रोध न करें ।।४८।।

ऋषि बोले—

हे भूपाल! जैसा कि तुम कह रहे हो (वास्तव में) तुम्हारी भावना दूषित नहीं थी, अपितु हे राजन्! तुमने तो अग्नि से प्रेरित होकर ही इस पद को कहा है ।।४९।।

हे पार्थिव! मैंने अग्नि से पूछा कि इसका पति कौन होगा? उसने भी तुम्हें ही इसका वर होने की बात आज ही कही थी ।।५०।।

इसलिये हे नराधिप! 'प्रिये' इस प्रकार सम्बोधित की गयी यह कन्या मैंने तुम्हें देदी है। इसे तुम ग्रहण करो। इसे तुमने 'प्रिये' कहकर सम्बोधन भी किया है। अब क्या विचार कर रहे हो ।।५ ।।

मार्कण्डेय उवाच—

ततोऽसावभवन्मौनी तेनोक्तः पृथिवीपतिः। ऋषिस्तथोद्यतः कर्तुं तस्या वैवाहिकं विधिम् ।।५२
तमुद्यतं सा पितरं विवाहाय महामुने। उवाच कन्या यत्किञ्चित् प्रश्रयावनतानना ।।५३
यदि मे प्रीतिमांस्तात प्रसादं कर्तुमर्हसि। रेवत्यृक्षे विवाहं मे तत्करोतु प्रसादितः ।।५४

ऋषिरुवाच—

रेवत्यृक्षं न वै भद्रे चन्द्रयोगिव्यवस्थितम्। अन्यानि सन्ति ऋक्षाणि सुभ्रु वैवाहिकानि ते ।।५५

कन्योवाच—

तात तेन विना कालो विफलः प्रतिभाति मे। विवाहो विफले काले मद्विधायाः कथं भवेत् ।।५६

ऋषिरुवाच—

ऋतवागिति विख्यातस्तपस्वी रेवतीं प्रति। चकार कोपं क्रुद्धेन तेनर्क्षं विनिपातितम् ।।५७
मया चास्मै प्रतिज्ञाता भार्येति मदिरेक्षणा। न चेच्छसि विवाहं त्वं संकटं नः समागतम् ।।५८

कन्योवाच—

ऋतवाक् स मुनिस्तात किमेवं तप्तवांस्तपः।
न त्वया मम तातेन ब्रह्मबन्धोः सुताऽस्मि किम् ।।५९

मार्कण्डेय बोले—

तब मुनि के द्वारा ऐसा कहने पर वह राजा मौन हो गया और ऋषि उसके विवाह की क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिये उद्यत हुए ।।५२।।

हे महामुने ! पिता को विवाह के लिए उद्यत देखकर विनय से मुख को झुकाए हुए वह कन्या पिता से बोली—।।५३।।

हे तात ! यदि आपकी मुझपर प्रीति है तो आप मुझपर कृपा करें और प्रसन्न होकर मेरा विवाह रेवती नक्षत्र में ही कीजिए ।।५४।।

ऋषि बोले—

हे भद्रे ! रेवती नक्षत्र चन्द्र योग में स्थित नहीं है। हे सुभ्रू ! दूसरे शुभ वैवाहिक नक्षत्र तुम्हारे विवाह काल में पड़ रहे हैं ।।५५।।

कन्या बोली—

हे तात ! उसके बिना तो मुझे विवाह काल व्यर्थ प्रतीत हो रहा है। मेरी जैसी कन्या का विवाह विफल काल में कैसे होगा ? ।।५६।।

ऋषि बोले—

ऋतवाक् इस नाम से प्रसिद्ध ऋषि ने रेवती पर क्रोध किया और क्रुद्ध हुए उन्होंने उसे (आकाश से पृथ्वी पर) गिरा दिया ।।५७।।

मैंने इस राजा को वचन दे दिया है कि यह मदिरेक्षणा तुम्हारी पत्नी होगी और तुम इस समय विवाह करना नहीं चाहती हो, तब तो हमारे लिये संकट उत्पन्न हो गया है ।।५८।।

कन्या बोली—

हे तात ! ऋतवाक् मुनि ने ऐसा कौन सा तप किया था जो मेरे पिता आपके द्वारा सिद्ध नहीं हो सका है तो क्या मैं किसी ब्रह्मबन्धु की कन्या हूँ ? ।।५९।।

ऋषिरुवाच—

ब्रह्मबन्धोः सुता न त्वं बाले नैव तपस्विनः। सुता त्वं मम यो देवान् कर्त्तुमन्यान् समुत्सहे ॥६०

कन्योवाच –

तपस्वी यदि मे तातस्तत्किमृक्षमिदं दिवि । समारोप्य विवाहो मे तदृक्षे क्रियते न तु ॥६१

ऋषिरुवाच—

एवं भवतु भद्रं ते भद्रे प्रीतिमती भव । आरोपयामीन्दुमार्गे रेवत्यृक्षकृते तव ॥६२

मार्कण्डेय उवाच –

ततस्तपः प्रभावेण रेवत्यृक्षं महामुनिः । यथापूर्वं तथा चक्रे सोमयोगि द्विजोत्तम ॥६३
विवाहं चैव दुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम् । निष्पाद्य प्रीतिमान् भूयो जामातरमथाब्रवीत् ॥६४

ऋषिरुवाच—

औद्वाहिकं ते भूपाल कथ्यतां किं ददाम्यहम् । दुर्लभ्यमपि दास्यामि ममाप्रतिहतं तपः ॥६५

राजोवाच—

मनोः स्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नः सन्ततौ मुने। मन्वन्तराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाद् वृणोम्यहम् ॥६६

ऋषि बोले

हे बाले ! न तो तुम ब्रह्मबन्धु और न ही किसी साधारण तपस्वी की कन्या हो, अपितु जो दूसरे देवताओं को भी उत्पन्न कर सकता है, उसी मुझ ऋषि की तुम पुत्री हो ॥६०॥

कन्या बोली-—

यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी हैं तो वे इस नक्षत्र को आकाश में स्थित करके, उसी नक्षत्र में मेरा विवाह संस्कार क्यों नहीं कर सकते ? ॥६१॥

ऋषि बोले —

हे भद्रे ! ऐसा ही होगा, तुम्हारा कल्याण हो, तुम प्रीतिमती होओ, तुम्हारे हित के लिए रेवती नक्षत्र को मैं चन्द्र मार्ग में स्थापित किये देता हूँ ॥६२॥

मार्कण्डेय बोले —

तब, हे द्विजोत्तम ! उन महामुनि ने अपने तप के प्रभाव से उस रेवती नक्षत्र को पहले के समान ही चन्द्र मार्ग से सम्बन्धित कर दिया ॥६३॥

और वैवाहिक मन्त्रों से अपनी पुत्री का विधिवत् विवाह संस्कार करके, अत्यन्त प्रसन्न मन से अपने जामाता के प्रति कहा, ॥६४॥

ऋषि बोले —

हे भूपाल ! कहो, विवाह में दान स्वरूप तुमको मैं क्या दूँ ? मेरा तप अप्रतिहत है (इसलिए) मैं दुर्लभ वस्तु भी प्रदान कर सकता हूँ ॥६५॥

राजा बोला—

हे मुने ! मैं स्वायंभुव मनु के वंश में उत्पन्न हुआ हूँ। इसलिए मैं आपकी कृपा से मन्वन्तराधिपति पुत्र माँगता हूँ ॥६६॥

ऋषिरुवाच—

भविष्यत्येष ते कामो मनुस्त्वत्तनयो महीम् । सकलां भोक्ष्यते भूप धर्मविच्च भविष्यति ।।६७

मार्कण्डेय उवाच—

तामादाय ततो भूपः स्वमेव नगरं ययौ । तस्मादजायत सुतो रेवत्यां रैवतो मनुः ।।६८

समेतः सकलैर्धर्मैर्मानवैरपराजितः । विज्ञाताखिलशास्त्रार्थो वेदविद्यार्थशास्त्रवित् ।।६९

तस्य मन्वन्तरे देवान् मुनि-देवेन्द्रपार्थिवान् । कथ्यमानान् मया ब्रह्मन् निबोध सुसमाहितः ।।७०

सुमेधसस्तत्र देवास्तथा भूतनया द्विज । वैकुण्ठश्चामिताभाश्च चतुर्दश चतुर्दश ।।७१

तेषां देवगणानां तु चतुर्णामपि चेश्वरः । नाम्ना विभुरभूदिन्द्रः शतयज्ञोपलक्षका ।।७२

हिरण्यलोमा वेदश्री रूर्ध्वबाहुस्तथापरः । वेदबाहुः सधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ।।७३

वसिष्ठश्च महाभागो वेदवेदांगपारगः । एते सप्तर्षयश्चासन् रैवतस्यान्तरे मनोः ।।७४

बलबन्धुर्महावीर्यः सुयष्टव्यस्तथापरः । सत्यकाद्यास्तथैवासन् रैवतस्य मनोः सुताः ।।७५

रैवतान्तास्तु मनवः कथिता ये मया तव । स्वायम्भुवाश्रया ह्येते स्वारोचिषमृते मनुम् ।।७६

(य एषां शृणुयान्नित्यं पठेदाख्यानमुत्तमम् । विमुक्तः सर्वपापेभ्यो लोकं प्राप्नोत्यभीप्सितम् ।।)७७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे रैवतमन्वन्तरसमाप्तिवर्णनं नामद्विसप्ततितमोऽध्यायः ।

ऋषि बोले—

हे राजन् ! तुम्हारी यह अभिलाषा पूर्ण होगी । तुम्हारा पुत्र मनु होकर सम्पूर्ण पृथ्वी का उपभोग करेगा और धर्म का ज्ञाता होगा ।।६७।।

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद राजा उस (रेवती) को लेकर अपने नगर में गया और तब उस रेवती के गर्भ से जो पुत्र हुआ, वह रैवत मनु बना ।।६८।।

जो समस्त धर्मों का ज्ञाता, मनुष्यों द्वारा पराजित न होने वाला, सभी शास्त्रों और वेद विद्या तथा अर्थशास्त्र का ज्ञाता था ।।६९।।

हे ब्रह्मन् ! मैं उस मन्वन्तर के देवता, मुनि, इन्द्र और राजाओं को कहता हूँ । तुम ध्यानपूर्वक उनको सुनो ।।७०।।

हे द्विज ! उस मन्वन्तर के सुमेध, भूतनय, वैकुण्ठ और अमिताभ ये चार देवगण हैं और प्रत्येक गण के चौदह-चौदह देवता हैं ।।७१।।

उन चारों देवगणों का स्वामी सौ यज्ञों का कर्त्ता विभु नाम का इन्द्र हुआ ।।७२।।

हिरण्यलोमा, वेद श्री, उर्ध्वबाहु, सुधामा और महामुनि पर्जन्य एवं वेद वेदांगों में 'निपुण' वसिष्ठ नाम के मुनि ये इस रैवत मनु के मन्वन्तर में सप्त ऋषि थे ।।७३-७४।।

और बलबन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य और सत्यक आदि रैवत मनु के पुत्र थे ।।७५।।

मैंने तुमसे रैवत मनु तक के सभी मनुओं को कह दिया । स्वारोचिष मनु को छोड़ कर ये सब (मनु) स्वायंभुव मनु के वंशज थे ।।७६।।

जो मनुष्य इस श्रेष्ठ आख्यान को नित्य पढ़ता या सुनता है वह सभी पापों से छूटकर अभिप्सित लोकों को प्राप्त करता है ।।७७।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में रैवत मन्वन्तर समाप्ति वर्णन नामक बहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

इत्येतत् कथितं तुभ्यं पञ्चमं मन्वन्तरं मया । चाक्षुषस्य मनोः षष्ठं श्रूयतामिदमन्तरम् ।।१
अन्य जन्मनि जातोऽसौ चक्षुषः परमेष्ठिनः । चाक्षुषत्वमतस्तस्य जन्मन्यस्मिन्नपि द्विज ।।२
अनमित्रस्य राजर्षेर्भद्रा भार्या महात्मनः । जज्ञे सुतं सुविद्वांसं शुचिं जातिस्मरं विभुम् ।।३
जातं माता निजोत्सङ्गे स्थितमुल्लाप्यतं पुनः । परिष्वजति हार्देन पुनरुल्लापयत्यथ ।।४
जातिस्मरः स जातो वै मातुरुत्सङ्गमास्थितः । जहास तं तदा माता संक्रुद्धा वाक्यमब्रवीत् ।।५
भीतास्मि किमिदं वत्स हासो यद्वदने तव । अकालबोधः सञ्जातः कच्चित् पश्यसि शोभनम् ।।६
(तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा प्रहस्येदमथाब्रवीत्)

पुत्र उवाच—

मामत्तुमिच्छति पुरो मार्जारी किं न पश्यसि । अन्तर्द्धानगता चेयं द्वितीया जातहारिणी ।।७
पुत्र-प्रीत्या च भवती सहार्द्रा मामवैक्षती । उल्लाप्योल्लाप्य बहुशः परिष्वजति मां यतः ।।८
उद्भूतपुलका स्नेहसम्भवा स्राविलेक्षणा । ततो ममागतो हासः शृणु चाप्यत्रकारणम् ।।९

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार मैंने पञ्चम मन्वन्तर को तुमसे कहा, अब इसके बाद तुम चाक्षुष मनु के छठे मन्वन्तर को सुनो ।।१।।

हे द्विज ! अन्य जन्म में परमेष्ठी ब्रह्मा के चक्षु से उत्पन्न होने के कारण, इस जन्म में भी इनका नाम चाक्षुष हुआ ।।२।।

राजर्षि अनमित्र की भद्रा नामक पत्नी ने परम विद्वान्, पवित्र, जातिस्मर, और विभु पुत्र को जन्म दिया ।।३।।

उत्पन्न हुए (उस पुत्र को) माता अपनी गोदी में बैठाकर बतियाने लगी और बार-बार आलिंगन करने लगी तथा हृदय में आनन्दपूर्वक फिर बतियाने लगी ।।४।।

माता की गोद में बैठा हुआ वह जातिस्मर (पुत्र) हँस पड़ा । तब क्रुद्ध होकर माता उससे इस प्रकार वचन बोली—।।५।।

हे वत्स ! तुम्हारे मुख पर आयी हुई, इस हँसीयुक्त मुख को देखकर मैं भयभीत हो गयी हूँ। क्या असमय में ही उत्पन्न हुए बोध वाले तुमको कुछ शुभ दिखायी दे रहा है ।।६।।

(माता के उन वचनों को सुनकर वह हँसकर इस प्रकार बोला- —)

पुत्र बोला—

क्या तुम सामने ही मुझे खाने की इच्छा वाली इस मार्जारी को नहीं देख रही हो और दूसरी यह जातहारिणी भी छिपी हुई बैठी है ।।७।।

क्योंकि तुमने पुत्र-वात्सल्य से स्नेहमयी दृष्टि से देखते हुए अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक मेरा बार-बार आलिंगन किया और तोतली वाणी में बातें कीं ।।८।।

और पुत्र वात्सल्य से तुमको रोमाञ्च हो गया एवं तुम्हारी आँखें भर आयीं तभी मुझे हँसी आ गयी अब इसके कारण को भी सुनो ।।९।।

स्वार्थे प्रसक्ता मार्जारी प्रसक्तं मामवेक्षते । तथान्तर्द्धानगा चैव द्वितीया जातहारिणी ॥१०
स्वार्थाय स्निग्धहृदये यथैवैते ममोपरि । प्रवृत्ते स्वार्थमास्थाय तथैव प्रतिभासि मे ॥११
किन्तु मदुपभोगाय मार्जारी जातहारिणी । त्वं तु क्रमेणोपभोग्यं मत्तः फलमभीप्ससि ॥१२
न मां जानासि कोऽप्येष न चैवोपकृतं मया। सङ्गतं नातिकालीनं पञ्चसप्तदिनात्मकम् ॥१३
तथापि स्निह्यसे सास्रा परिष्वजसि चाप्यति। तातेति वत्स भद्रेति निर्व्यलीकं ब्रवीषि माम् ॥१४

मातोवाच—

न त्वाहमुपकारार्थं वत्स प्रीत्या परिष्वजे । न चेदेतद्भवत्प्रीत्यै परित्यक्तास्म्यहं त्वया ॥१५
स्वार्थो मया परित्यक्तो यस्त्वत्तो मे भविष्यति ।
इत्युक्त्वा सा तमुत्सृज्य निष्क्रान्ता सूतिका गृहात् ॥१६
जडाङ्गबाह्यकरणं शुद्धान्तःकरणात्मकम् । जहार तं परित्यक्तं सा तदा जातहारिणी ॥१७
सा हित्वा तं तदा बालं विक्रान्तस्य महीभृतः। प्रसूतपत्नीशयने न्यस्य तस्याददे सुतम् ॥१८
तमप्यन्यगृहे नीत्वा गृहीत्वा तस्य चात्मजम्। तृतीयं भक्षयामास सा क्रमाज्जातहारिणी ॥१९

स्वार्थ के वशीभूत यह मार्जारी और दूसरी छिपी जातहारिणी अत्यन्त प्रेमपूर्वक मुझे देख रही हैं ॥१०॥

जिस प्रकार ये दोनों अपने स्वार्थ के लिए मेरे ऊपर स्निग्ध हृदया हुई हैं। उसी प्रकार तुम्हारी यह प्रवृत्ति भी मुझको स्वार्थ के वशीभूत ही प्रतीत हो रही है ॥११॥

किन्तु मार्जारी और जातहारिणी मुझे खाने की इच्छा करती हैं और तुम मुझसे क्रमिक उपभोग्य फल को चाहती हो ॥१२॥

और तुम मुझको जानती भी नहीं हो कि यह कौन है और न ही मैंने तुम्हारा कोई उपकार ही किया है। सम्पर्क भी बहुत समय का नहीं है। केवल पांच सात दिन का परिचय है ॥१३॥

फिर भी अश्रुपूर्ण नेत्रों से मुझे स्नेहकर रही हो और अत्यधिक आलिगन कर रही हो और कष्ट रहित हृदय से मुझे तात, वत्स और भद्र आदि निर्व्याज भाव से कह रही हो ॥१४॥

माता बोली —

हे वत्स ! मैंने उपकार के लिए प्रीतिपूर्वक तुम्हारा आलिगन नहीं किया है। यदि यह तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा तो मैं तुम्हारे द्वारा परित्यक्त हो गयी हूँ ॥१५॥

तुम मेरे जिस स्वार्थ की पूर्ति करोगे, मैंने उसको छोड़ दिया, ऐसा कहकर उसको वहीं छोड़कर वह प्रसूतिका गृह से बाहर निकल गयी ॥१६॥

तब जड़ बाह्य अंगों वाले एवं शुद्ध अन्तःकरण से युक्त (माता द्वारा) परित्यक्त उसका जातहारिणी ने हरण कर लिया ॥१७॥

तब उस बालक को राजा विक्रान्त की प्रसूता पत्नी की शय्या पर छोड़कर उस (जातहारिणी) ने उसके नवोत्पन्न शिशु को ले लिया ॥१८॥

और उसको भी अन्य के घर पर ले जाकर उसके पुत्र को ले लिया । क्रम से प्राप्त उस तीसरे को जातहारिणी ने खा लिया ॥१९॥

हृत्वा हृत्वा तृतीयं तु भक्षयत्यतिनिर्घृणा । करोत्यनुदिनं सा तु परिवर्तन् तथान्ययोः ॥२०
विक्रान्तोऽपि ततस्तस्य सुतस्यैव महीपतिः। कारयामास संस्कारान् राजन्यस्य भवन्ति ये ॥२१
आनन्देति च नामास्य पिता चक्रे विधानतः । मुदा परमया युक्तो विक्रान्तः स नराधिपः ॥२२
कृतोपनयनं तं तु गुरुराह कुमारकम् । जनन्याः प्रागुपस्थानं क्रियतां चाभिवादनम् ॥२३
स गुरोस्तद्वचः श्रुत्वा विहस्यैवमथाब्रवीत् ॥

आनन्द उवाच—

वंद्या मे कतमा माता जननी पालनी नु किम् ॥२४

गुरुरुवाच—

नन्वियं ते महाभाग जनित्री जारुजात्मजा । विक्रान्तस्याग्रमहिषी हैमिनी नाम नामतः ॥२५

आनन्द उवाच—

इयं जनित्री चैत्रस्य विशालग्रामवासिनः। विप्राग्र्यबोधपुत्रस्य योऽस्यां जातोऽन्यतो गतः ॥२६

गुरुरुवाच—

कुतस्त्वं कथयानन्द चैत्रः को वा त्वयोच्यते। संकटं महदाभाति क्व जातोऽत्र ब्रवीषि किम् ॥२७

इस प्रकार अत्यन्त निर्दय वह नव प्रसूत शिशुओं का हरण करती और पहले दो शिशुओं का परिवर्तन करके तीसरे को खा लेती थी ॥२०॥

तब राजा विक्रान्त ने भी उस पुत्र के जो राज्योचित संस्कार होते हैं, उन संस्कारों को कराया ॥२१॥

(उस पुत्र को पाकर) राजा विक्रान्त अत्यधिक प्रसन्नता से युक्त हुए। इसलिए प्रसन्नता प्रदान करने वाले, इस पुत्र का नाम पिता ने आनन्द रखा ॥२२॥

तब उपनयन संस्कार करने पर उस कुमार से गुरु ने कहा—(जाओ) पहले माता के पास जाकर (उन्हें) प्रणाम करो ॥२३॥

तब गुरु के उन वचनों को सुनकर और हँसकर वह इस प्रकार बोला—

आनन्द बोला—

मुझे किस माता को प्रणाम करना चाहिए, जन्मदात्री को अथवा पालन करने वाली को ? ॥२४॥

गुरु बोले—

हे महाभाग ! जारुजा की पुत्री राजा विक्रान्त की हैमिनी नाम वाली यह पटरानी तुम्हारी माता (जननी) है ॥२५॥

आनन्द बोला—

अग्रबोध नामक ब्राह्मण के पुत्र, यह (रानी) तो विशाख ग्राम में रहने वाले चैत्र की जन्मदात्री है। इससे उत्पन्न हुआ वह अन्यत्र चला गया है ॥२६॥

गुरु बोले—

हे आनन्द ! तुम कौन हो ? यह बताओ तुमने जिस चैत्र का नाम लिया वह कौन है ? तुम कहाँ उत्पन्न हुए हो और यह क्या कह रहे हो ? मुझे तो इस सबमें महान् संकट प्रतीत हो रहा है ॥२७॥

आनन्द उवाच—

जातोऽहमनमित्रस्य क्षत्रियस्य गृहे द्विज । तत्पत्न्यां गिरिभद्रायामाददे जातहारिणी ।।२८

तयात्र मुक्तो हैमिन्या गृहीत्वा च सुतं च सा । बोधस्य द्विजमुख्यस्य गृहे नीतवती पुनः ।।२९

भक्षयामास च सुतं तस्य बोधद्विजन्मनः । स तत्र द्विज संस्कारैः संस्कृतो हैमिनीसुतः ।।३०

वयमत्र महाभाग संस्कृता गुरुणा त्वया । मया तव वचः कार्य्यमुपैमि कतमां गुरो ।।३१

गुरुरुवाच—

अतीवगहनं वत्स संकटं महदागतम् । न वेद्मि किञ्चिन्मोहेन भ्रमन्तीव हि बुद्धयः ।।३२

आनन्द उवाच—

मोहस्यावसरः कोऽत्र जगत्येवं व्यवस्थिते । कः कस्य पुत्रो विप्रर्षे को वा कस्य न बान्धवः ।।३३

आरभ्य जन्मनो नृणां सम्बन्धित्वमुपैति यः । अन्यसम्बन्धिनो विप्र मृत्युनासन्निवर्तिताः ।।३४

अत्रापि जातस्य सतः सम्बन्धो योऽस्य बान्धवैः । सोऽप्यस्तमन्ते देहस्य प्रयात्येषोऽखिलक्रमः ।।३५

अतो ब्रवीमि संसारे वसतः को न बान्धवः ।
को वापि सततं बन्धुः किं वो विभ्राम्यते मतिः ।।३६

आनन्द बोला—

हे द्विज ! मैं अनमित्र ! नामक क्षत्रिय के घर में उसकी गिरिभद्रा नामक पत्नी से उत्पन्न हुआ हूँ (और पुनः वहाँ से मेरा) जातहारिणी ने हरण कर लिया ।।२८।।

उसने मुझे यहाँ छोड़कर, हैमिनी के पुत्र को यहाँ से लेकर, पुनः उस पुत्र को बोध के घर पर ले गयी ।।२९।।

और बोध ब्राह्मण के पुत्र को खा लिया । जहाँ हैमिनी के उस पुत्र का द्विज संस्कार किया गया है ।।३०।।

हे महाभाग ! यहाँ गुरु बनकर मेरा संस्कार आपने किया, मुझे आपकी आज्ञा स्वीकार्य है । हे गुरो ! आप मुझे आज्ञा दीजिए, मैं किस माता के पास (प्रणाम के लिए) जाऊँ ।।३१।।

गुरु बोले—

हे वत्स ! यह तो अत्यन्त घोर संकट आ गया है । बुद्धि मोह से भ्रमित हो रही है । मैं कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ ।।३२।।

आनन्द बोला—

संसार में इस प्रकार की व्यवस्था रहने पर, मोह का क्या अवसर है । हे विप्रर्षे ! कौन किसका पुत्र है और कौन किसका बन्धु नहीं है ।।३३।।

जन्म से लेकर जो व्यक्ति मनुष्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है । हे विप्र ! दूसरे सम्बन्धी भी मृत्यु द्वारा समाप्त कर दिये जाते हैं ।।३४।।

यहाँ भी उत्पन्न हुए उस जीव का जो इसके बन्धुओं के साथ सम्बन्ध है । वह सम्बन्ध भी इस शरीर के समाप्त होने पर ही टूट जाता है, यही (संसार का) समस्त क्रम है ।।३५।।

इसलिए मैं कहता हूँ कि संसारी जीवों का कोई बन्धु नहीं है । हमेशा कौन किसका बन्धु है ? इसलिए आपकी बुद्धि किस कारण भ्रमित हो रही है ? ।।३६।।

पितृद्वयं मया प्राप्तमस्मिन्नेव हि जन्मनि । मातृद्वयं किं चित्रं यदन्यद्देहसम्भवे ॥३७
सोऽहं तपः करिष्यामि त्वया यो ह्यस्य भूपतेः । विशालग्रामतः पुत्रश्चैत्र आनीयतामिह ॥३८

मार्कण्डेय उवाच —

ततः स विस्मितो राजा सभार्यः सहबन्धुभिः । तस्मान्निवर्त्य ममतामनुमेने वनाय तम् ॥३९
चैत्रमानीय तनयं राज्ययोग्यं चकार सः । सम्मान्य ब्राह्मणं येन पुत्र बुद्धया स पालितः ॥४०
सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपे बाल एव महावने । कर्मणां क्षपणार्थाय विमुक्तेः परिपन्थिनाम् ॥४१
तपस्यन्तं ततस्तं च प्राह देवः प्रजापतिः । किमर्थं तप्यसे वत्स तपस्तीव्रं वदस्व तत् ॥४२

आनन्द उवाच—

आत्मनः शुद्धिकामोऽहं करोमि भगवंस्तपः । बन्धाय मम कर्माणि यानि तत्क्षपणोन्मुखः ॥४३

ब्रह्मोवाच —

क्षीणाधिकारो भवति मुक्ति योग्यो न कर्मवान् ।
सत्त्वाधिकारवान् मुक्तिमवाप्स्यति ततो भवान् ॥४४

भवता मनुना भाव्यं षष्ठेन व्रज तत्कुरु । अलं ते तपसा तस्मिन् कृते मुक्तिमवाप्स्यसि ॥४५

इसी जन्म में मैंने दो पिता प्राप्त किये, दो माताएँ भी प्राप्त कीं (इसमें क्या आश्चर्य है कि) अन्य शरीर में जन्म लेने पर तीन भी हो सकते हैं ॥३७॥

इसलिए मैं तो अब तप करूँगा । राजा का जो वास्तविक पुत्र है, आप विशाल ग्राम से उस चैत्र को यहाँ ले आइये ॥३८॥

मार्कण्डेय बोले —

तब पत्नी और बन्धुओं सहित वह राजा अत्यधिक विस्मित हुआ और उससे मोह को रोककर उसे वन जाने की आज्ञा दी ॥३९॥

उस ब्राह्मण को जिसने अपना पुत्र समझकर उसका पालन किया था, सम्मानित, करके अपने पुत्र चैत्र को लाकर राज्य के योग्य बनाया ॥४०॥

उस आनन्द ने भी, मुक्ति के विरोधी कर्मों के विनाश के लिए शैशव में ही उस महावन में तप किया ॥४१॥

तब तप करते हुए उससे प्रजापति ब्रह्मदेव ने कहा—हे वत्स ! यह घोर तप किस लिए कर रहे हो ? मुझे बताओ ॥४२॥

आनन्द बोला—

हे भगवन् ! संसार के कर्मबन्धनों को नष्ट करने के लिए मैं आत्म-शुद्धि की कामना से तप कर रहा हूँ ॥४३॥

ब्रह्मा बोले—

क्षीण अधिकार वाला मनुष्य ही मुक्ति के योग्य होता है । कर्मवान् नहीं (क्योंकि वे कर्मवान् नहीं होते) तब तुम जीवों पर अधिकार करने वाले होकर ही कैसे मुक्ति प्राप्त करोगे ?॥४४॥

तुम मनु बनोगे और (प्रजा की रक्षा करते हुए) जो षष्ठ भाग कर के रूप में प्राप्त करोगे, उसी से तुम मुक्ति प्राप्त करोगे । बस, तप मत करो ॥४५॥

मार्कण्डेय उवाच —

इत्युक्तो ब्रह्मणा सोऽपि तथेत्युक्त्वा महामतिः। तत्कर्माभिमुखो यस्तुतपसो विरराम ह ॥४६
चाक्षुषेत्याह तं ब्रह्मा तपसो विनिवर्तयन्। पूर्वं नाम्ना बभूवाथ प्रख्यातश्चाक्षुषो मनुः ॥४७
उपयेमे विदर्भां स सुतामुग्रस्य भूभृतः। तस्यां चोत्पादयामास पुत्रान् प्रख्यातविक्रमान् ॥४८
तस्य मन्वन्तरेशस्य येऽन्तरे त्रिदशा द्विज। ये चर्षयस्तथैवेन्द्रो ये सुताश्चास्य ताञ्छृणु ॥४९
आप्या नाम सुरास्तत्र तेषामेकोऽष्टको गणः। प्रख्यातकर्मणां विप्र यज्ञे हव्यभुजामयम् ॥५०
प्रख्यातबलवीर्याणां प्रभामण्डलदुर्दशाम्। द्वितीयश्च प्रसूताख्यो देवानामष्टको गणः ॥५१
तथैवाष्टक एवान्यो भव्याख्यो देवतागणः। चतुर्थश्च गणस्तत्र यूथगाख्यस्तथाष्टकः ॥५२
लेखसंज्ञास्तथैवान्ये तत्र मन्वन्तरे द्विज। पञ्चमे च गणे देवास्तत् संज्ञा ह्यमृताशिनः ॥५३
शतं क्रतूनामाहृत्य यस्तेषामधिपोऽभवत्। मनोजवस्तथैवेन्द्रः संख्यातो यज्ञभागभुक् ॥५४
सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुन्नतो मधुः। अतिनामासहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः ॥५५
उरूपुरुशतद्युम्नप्रमुखाः सुमहाबलाः। चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ॥५६

मार्कण्डेय बोले—

ब्रह्मा के ऐसा कहने पर वह महामति भी 'ऐसा ही हो' कहकर उस कर्म के अभिमुख (प्रवृत्त) उसने तपस्या का परित्याग किया ॥४६॥

तब उसको तप से रोकते हुए ब्रह्मा ने पुनः चाक्षुष नाम दिया। तब वही चाक्षुष मनु के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥४७॥

फिर उसने राजा उग्र की पुत्री विदर्भा से विवाह किया और उसके गर्भ से उसने प्रख्यात पराक्रम वाले अनेक पुत्र उत्पन्न किये ॥४८॥

हे द्विज ! इस मन्वन्तराधिपति के मन्वन्तर में जो देवता, ऋषि, इन्द्र और पुत्र हुए उनको सुनो ॥४९॥

हे ब्रह्मन् ! इस मन्वन्तर में 'आप्या' नाम का प्रथम देवगण हुआ और उस गण में कर्म और यज्ञ में हव्यभोजी आठ प्रसिद्ध देवता थे ॥५०॥

बल और पराक्रम में प्रख्यात प्रभामण्डल के मध्यवर्ती होने के कारण कठिनता से देखे जा सकने योग्य (दुर्दर्श) आठ देवताओं से युक्त प्रसूत नामक दूसरा देवगण हुआ ॥५१॥

उसी प्रकार 'भव्य' नाम वाले तीसरे देवगण में भी आठ ही देवता थे और चौथा यूथग नामक देवगण भी आठ देवताओं से युक्त था ॥५२॥

हे द्विज ! पाँचवें गण में 'अमृताशी' नामक विख्यात अमृतभोजी देवता है और उस मन्वन्तर में अन्य देवता 'लेख' नाम वाले हैं ॥५३॥

सौ यज्ञ करके मनोजव नामक, यज्ञ भाग भोगी, इन्द्र उन देवताओं का अधिपति हुआ ॥५४॥

सौ यज्ञ करके मनोजव नामक, यज्ञ भाग भोगी, इन्द्र उन देवताओं का अधिपति हुआ ॥५४॥ और इस मन्वन्तर में सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्मत्त, मधु, अति सहिष्णु नाम वाले सप्तऋषि हुए ॥५५॥

और उरु, पुरु, शतद्युम्न आदि राजा उन चाक्षुस मनु के महापराक्रमी पुत्र हुए ॥५६॥

एतत्ते कथितं षष्ठं मया मन्वन्तरं द्विज । चाक्षुषस्य तथा जन्मचरितं च महात्मनः ।।५७
साम्प्रतं वर्त्तते योऽयं नाम्ना वैवस्वतो मनुः । सप्तमो येऽन्तरे तस्य देवाद्यास्ताञ्छृणुष्व मे ।।५८
य इदं कीर्तयेद्धिमांश्चाक्षुषस्यांतरं भुवि । शृणुते च लभेत् पुत्रानारोग्यसुखसम्पदम् ।।५९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे षष्ठचाक्षुषमन्वन्तरसमाप्तिवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।

हे द्विज ! यह मैंने तुमसे छठे मन्वन्तर से सम्बन्धित महात्मा चाक्षुष मनु के जन्म और चरित्र को कहा ।।५७।।

अब वैवस्वत नामक सातवें मनु वर्तमान हैं, उनके मन्वन्तर के जो देवता आदि हैं, उनको सुनो ।।५८।।

जो बुद्धिमान् मनुष्य भूलोक में इस चाक्षुष मन्वन्तर को कहेंगे या श्रवण करेंगे, उन्हें पुत्र आरोग्य सुख और सम्पत्ति की प्राप्ति होगी ।।५९।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में छठा चाक्षुष मन्वन्तर समाप्ति वर्णन नामक तिहेत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

मार्त्तण्डस्य रवेर्भार्या तनया विश्वकर्मणः । संज्ञा नाम महाभाग तस्यां भानुरजीजनत् ।।१
मनुं प्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् । विवस्वतः सुतो यस्मात् तस्माद्वैवस्वतस्तु सः ।।२
संज्ञा च रविणा दृष्टा निमीलयति लोचने । यतस्ततः सरोषोऽर्कः संज्ञां निष्ठुरमब्रवीत् ।।३
मयि दृष्टे सदा यस्मात् कुरुषे नेत्रसंयमम् । तस्माज्जनिष्यसे मूढे प्रजासंयमनं यमम् ।।४

मार्कण्डेय उवाच—

ततः सा चपलां दृष्टिं देवी चक्रे भयाकुला । विलोलित दृशं दृष्ट्वा पुनराह च तां रविः ।।५

मार्कण्डेय बोले—

हे महाभाग ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा रवि की पत्नी थीं। उन्होंने उसमें परम यशस्वी, अनेक शास्त्रों के ज्ञान में पारंगत मनु को भानु ने उत्पन्न किया क्योंकि वह विवस्वान् का पुत्र था, इसलिए वह वैवस्वत था ।।१-२।।

सूर्य को देखते ही संज्ञा अपने नेत्रों को बंद कर लेती थी । इसलिये एक बार क्रुद्ध होकर सूर्य ने संज्ञा से इस प्रकार कठोर वचन कहा—।।३।।

हे मूढ़े ! क्योंकि तुम मुझे देखने पर सदा ही नेत्र बंद कर लेती हो । इसलिए तुम प्रजा का संयमन करने वाले, यम को उत्पन्न करोगी ।।४।।

मार्कण्डेय बोले—

तब भय से व्याकुल हुई उस देवी ने अपनी दृष्टि को चंचल कर लिया। चंचल दृष्टि वाली उस (संज्ञा) को देखकर सूर्य ने कहा— ।।५।।

यस्माद्विलोलिता दृष्टिर्मयि दृष्टे त्वयाधुना । तस्माद्विलोलां तनयां नदीं त्वं प्रसविष्यसि ।।६

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्तस्यां तु संजज्ञे भर्तृशापेन तेन वै । यमश्च यमुना चेयं प्रख्याता सुमहानदी ।।७
सापि संज्ञा रवेस्तेजः सेहे दुःखेन भामिनी । असहन्ती च सा तेजश्चिन्तयामास वै तदा ।।८
किं करोमि क्व गच्छामि क्व गतायाश्च निर्वृतिः। भवेन्मम कथं भर्ता कोपमर्कश्च नैष्यति ।।९
इति संचिन्त्य बहुधा प्रजापति सुता तदा । बहुमेने महाभागा पितृसंश्रयमेव सा ।।१०
ततः पितृगृहे गन्तुं कृतबुद्धिर्यशस्विनी । छायामयीमात्मतनुं निर्ममे दयितां रवेः ।।११
तां चोवाच त्वया वेश्मन्यत्र भानोर्यथा मया । तथा सम्यगपत्येषु वर्तितव्य यथा रवौ ।।१२
पृष्टयापि न वाच्यं ते तथैतद्गमनं मम । सैवास्मि नाम संज्ञेति वाच्यमेतत् सदा वचः ।।१३

छायासंज्ञोवाच—

आकेशग्रहणाद् देवि आशापाच्च वचस्तव । करिष्ये, कथयिष्यामि वृत्तं तु शापकर्षणात् ।।१४
इत्युक्ता सा तदा देवी जगाम भवनं पितुः । ददर्श तत्र त्वष्टारं तपसा धूतकल्मषम् ।।१५

क्योंकि अब तुम मुझको चंचल दृष्टि से देखती हो, इसलिए तुम चंचल नदी रूप वाली कन्या को उत्पन्न करोगी ।।६।।

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद पति के शाप के कारण उस (संज्ञा) के गर्भ से यम और यमुना नाम की विख्यात नदी भी उत्पन्न हुई ।।७।।

उस संज्ञा ने (इतने समय तक) अत्यन्त कष्टपूर्वक सूर्य के तेज को सहन किया लेकिन जब उससे तेज सहन नहीं हुआ तो उसने सोचा ।।८।।

क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ जाने पर शान्ति मिलेगी ? मेरे पति सूर्य कैसा करने से क्रोध नहीं करेंगे ।।९।।

इस प्रकार बहुत अधिक सोचने के बाद, प्रजापति सुता उस संज्ञा ने पिता के घर जाने का ही निश्चय किया ।।१०।।

तब उस यशस्विनी ने पिता के घर जाने के लिए निश्चय करके अपनी छाया रूप एक देह को सूर्य की पत्नी (के रूप में) बनाया ।।११।।

और उससे कहा कि जिस प्रकार मैं सूर्य देव के घर में निवास करती हूँ, उसी भाव से यहाँ रहती हुई मेरे पुत्र और पति सूर्य के प्रति सम्यक् रूप से आचरण करना ।।१२।।

तुम सूर्य द्वारा पूछने पर भी मेरे जाने की बात (उनसे) न कहना, मैं वही संज्ञा हूँ, उनसे सदा ये वचन ही कहना ।।१३।।

छाया संज्ञा बोली—

हे देवि ! केश पकड़ने और शाप देने तक मैं आपके वचनों का पालन करूँगी, किन्तु केश पकड़ने या शाप देने के लिए उद्यत होने पर मैं सब वृत्तान्त कह दूँगी ।।१४।।

यह कहकर वह देवी अपने पिता के घर चली गयी और वहाँ उसने तप के द्वारा पाप रहित त्वष्टा को देखा ।।१५।।

बहुमानाच्च तेनापि पूजिता विश्वकर्मणा । तस्थौ पितृगृहे सा तु कंचित्कालमनिन्दिता ॥१६
ततस्तां प्राह चार्वङ्गीं पिता नातिचिरोषिताम् । स्तुत्वा च तनयां प्रेमबहुमानपुरः सरम् ॥१७
त्वां तु मे पश्यतो वत्से दिनानि सुबहून्यपि । मुहूर्त्तार्द्धसमानि स्युः किन्तु धर्मो विलुप्यते ॥१८
बान्धवेषु चिरं वासो नारीणां न यशस्करः । मनोरथो बान्धवानां नार्य्या भर्तृगृहे स्थितिः ॥१९
सा त्वं त्रैलोक्यनाथेन भर्त्रा सूर्य्येण सङ्गता । पितृगेहे चिरं कालं वस्तुं नार्हसि पुत्रिके ॥२०
सा त्वं भर्तृगृहं गच्छ तुष्टोऽहं पूजितासि मे । पुनरागमनं कार्यं दर्शनाय शुभे मम ॥२१

मार्कण्डेय उवाच —

इत्युक्ता सा तदा पित्रा तथेत्युक्ता च सा मुने । संपूजयित्वा पितरं जगामाथोत्तरान् कुरून् ॥२२
सूर्यतापमनिच्छन्ती तेजसस्तस्य बिभ्यती । तपश्चचार तत्रापि वडवारूपधारिणी ॥२३
संज्ञेयमिति मन्वानो द्वितीयायामहस्पतिः । जनयामास तनयौ कन्यां चैकां मनोरमाम् ॥२४
छायासंज्ञात्वपत्येषु यथा स्वेष्वतिवत्सला । तथा न संज्ञाकन्यायां पुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ॥२५

तब विश्वकर्मा ने उसका बहुत आदर सत्कार किया और फिर प्रसन्न मन से उसने कुछ समय तक पिता के घर निवास किया ॥१६॥

उसके बाद उसके पिता ने अधिक समय तक न रहने वाली उस (संज्ञा) से अत्यधिक प्रेम और सम्मानपूर्वक मधुर वचनों में कहा— ॥१७॥

हे वत्से ! यद्यपि बहुत समय तक तुमको देखते रहने पर भी वे (दिन) मुझे आर्ध मुहूर्त के ही बराबर प्रतीत हो रहे हैं किन्तु इससे धर्म का लोप होता है ॥१८॥

स्त्रियों का बन्धु वर्ग में चिरकाल तक रहना यश देने वाला नहीं होता । नारी पति के घर में रहे यही बान्धवों की इच्छा रहती है ॥१९॥

तीनों लोकों के स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं, उन्हीं के साथ तुम विवाह सूत्र में बंधी हो । इसलिए हे पुत्रि ! तुम्हारा, पिता के घर में चिरकाल तक निवास उचित नहीं है ॥२०॥

इसलिए पति के घर जाओ (तुम्हारे आगमन से) मैं संतुष्ट हुआ हूँ और तुम भी (मेरे द्वारा) सत्कृत हुई हो । हे शुभे ! मुझे देखने के लिए पुनः चली आना ॥२१॥

मार्कण्डेय बोले—

हे मुने ! पिता द्वारा इस प्रकार कही गयी वह 'अच्छा ठीक है' इस प्रकार कहकर, पिता का पूजन करके उत्तर कुरु प्रदेश की ओर गयी ॥२२॥

तब सूर्य के ताप को न चाहती हुई, उसके तेज से भयभीत उस संज्ञा ने वहाँ घोड़ी का रूप धारण करके तप करना प्रारम्भ किया ॥२३॥

यह संज्ञा ही है, इस प्रकार मानते हुए, सूर्य ने दूसरी (छाया) संज्ञा में दो पुत्र और एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया ॥२४॥

छाया संज्ञा जितनी अपनी संतान में प्रीतिवती थी, संज्ञा की कन्या और दोनों पुत्रों में उतनी स्नेहवती नहीं थीं ॥२५॥

लालनाद्युपभोगेषु विक्षेपमनुवासरम् । मनुस्तत्क्षान्तवानस्या यमस्तस्या न चक्षमे ।।२६
ताडनाय च वै कोपात् पादस्तेन समुद्यतः । तस्याः पुनः क्षान्तिमता न तु देहेनिपातितः ।।२७
ततः शशाप तं कोपाच्छायासंज्ञा यमं द्विज । किञ्चित् प्रस्फुरमाणौष्ठी विचलत्पाणिपल्लवा ।।२८
पितुः पत्नीममर्य्यादं यन्मां तर्जयसे पदा । भुवि तस्मादयं पादस्तवाद्यैव पतिष्यति ।।२९

मार्कण्डेय उवाच—

इत्याकर्ण्य यमः शापं मात्रा दत्तं भयातुरः । अभ्येत्य पितरं प्राह प्रणिपातपुरः सरम् ।।३०

यम उवाच—

तातैतन्महदाश्चर्य्यं न दृष्टमिति केनचित् । माता वात्सल्यमुत्सृज्य शापं पुत्रे प्रयच्छति ।।३१
यथा मनुर्ममाचष्टे नेयं माता तथा मम । विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा भवेत् ।।३२

मार्कण्डेय उवाच—

यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा भगवांस्तिमिरापहः । छायासंज्ञां समाहूय पप्रच्छ क्व गतेति सा ।।३३
सा चाह तनयात्वष्टुरहं संज्ञा विभावसो । पत्नी तव त्वयापत्यान्येतानि जनितानि मे ।।३४

वह लालन-पालन में भेदभाव प्रतिदिन दिखाती थी। इसके लिए मनु ने तो उसे क्षमा कर दिया किन्तु यम ने उसे क्षमा नहीं किया ।।२६।।

(उसने क्रोधवश) उसको मारने के लिये एक बार अपना पैर उठाया। किन्तु शरीर पर लगने से पहले ही उसने (क्रोध रोक कर) उसे क्षमा कर दिया ।।२७।।

उसके बाद हे द्विज ! क्रुद्ध होकर, काँपते हुए अधरोष्ठों वाली छाया संज्ञा ने हाथ उठाकर, यम को शाप दे दिया ।।२८।।

पिता की पत्नी मुझको तू अमर्यादित होते हुए पैर से तर्जना दे रहा है। इसलिए तेरा यह पैर आज ही पृथ्वी पर गिर पड़ेगा ।।२९।।

मार्कण्डेय बोले —

इस प्रकार माता द्वारा दिये गये शाप को सुनकर भय से दुःखी यम पिता के पास जाकर प्रणाम-पूर्वक बोला—।।३०।।

यम बोला—

हे तात ! मैंने इस प्रकार का महान् आश्चर्य कहीं नहीं देखा है, जो वात्सल्य त्याग कर माता पुत्र को शाप दे ।।३१।।

मनु ने मुझसे जैसा कहा था वैसी यह मेरी माता नहीं है। माता दुष्ट पुत्र में भी दुष्ट आचरण नहीं करती है (पुत्र के असद्गुणी होने पर भी माता उसके अमंगल की बात नहीं करती है) ।।३२।।

मार्कण्डेय बोले —

यम के उन वचनों को सुनकर अन्धकार को दूर करने वाले भगवान् सूर्य ने छाया संज्ञा को बुलाकर पूछा—कि वह (संज्ञा) कहाँ चली गयी है ।।३३।।

हे भगवन् ! त्वष्टा की पुत्री आपकी पत्नी मैं ही संज्ञा हूँ और आपने मेरे ही गर्भ से ये सन्तानें उत्पन्न की हैं ।।३४।।

इत्थं विवस्वतः सा तु वहुशः पृच्छतो यदा। नाचचक्षे ततः क्रुद्धो भास्वांस्तां शप्तुमुद्यतः ।।३५
ततः सा कथयामास यथावृत्तं विवस्वतः । विदितार्थश्च भगवान्जगाम त्वष्टुरालयम् ।।३६
ततः स पूजयामास तदा त्रैलोक्यपूजितम् । भास्वन्तं परया भक्त्या निजगेहमुपागतम् ।।३७
संज्ञां पृष्टस्तदा तस्मै कथयामास विश्वकृत् । आगतैवेह मे वेश्म भवतः प्रेषितेति वै ।।३८
दिवाकरः समाधिस्थो वडवारूपधारिणीम् । तपश्चरन्तीं ददृशे उत्तरेषु कुरुष्वथ ।।३९
सौम्यमूर्तिः शुभाकारो मम भर्त्ता भवेदिति । अभिसन्धिश्च तपसो बुबुधेऽस्या दिवाकरः ।।४०
शातनं तेजसो मेऽद्य क्रियतामिति भास्करः । तं चाह विश्वकर्माणं संज्ञायाः पितरं द्विज ।।४१
संवत्सरभ्रमेस्तस्य विश्वकर्मा रवेस्ततः । तेजसः शातनं चक्रे स्तूयमानश्च दैवतैः ।।४२

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे संज्ञोपाख्यानवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।

जब भगवान् सूर्य के इस प्रकार बार-बार पूछने पर भी वह नहीं बोली, तब क्रुद्ध हुए भगवान् उसे शाप देने के लिए तत्पर हुए ।।३५।।

तब उसने सूर्य से सम्पूर्ण घटना कर्म कह डाला । सब बात जानकर भगवान् सूर्य विश्वकर्मा के घर पहुँचे ।।३६।।

तब उन्होंने अपने घर आये हुए, तीनों लोकों में पूजित, भगवान् भास्कर का अत्यधिक भक्तिपूर्वक पूजन किया ।।३७।।

(तब उन्होंने) संज्ञा को पूछा––तो विश्वकर्मा ने उनसे कहा––कि, (संज्ञा) यहाँ आयी थी और फिर मैंने उसको आपके घर ही भेज दिया ।।३८।।

तब सूर्य ने समाधिस्थ होकर उसे उत्तर कुरुओं में घोड़ी का रूप धारण करके तप करते हुए देखा ।।३९।।

सूर्य ने जान लिया कि यह 'मेरे पति सुन्दर आकृति और सौम्य मूर्ति वाले हो जाएँ' यह मन में कामना करके ही तप कर रही है ।।४०।।

तब हे द्विज ! भगवान् भास्कर ने संज्ञा के पिता विश्वकर्मा से कहा––कि, आप मेरे तेज को कुछ छाँट दीजिए ।।४१।।

तब एक संवत्सर चक्र के बीतने पर एवं देवताओं द्वारा स्तुति करने पर उन विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज को कुछ छाँट दिया (शान पर चढ़ाकर कम कर दिया) ।।४२।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में वैवस्वतमन्वन्तर में संज्ञोपाख्यान वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्तं तुष्टुवुर्देवास्तथा देवर्षयो रविम् । वाग्भिरीड्यमशेषस्य त्रैलोक्यस्य समागताः ।।१

देवाऊचुः—

नमस्ते ऋक्स्वरूपाय सामरूपाय ते नमः । यजुः स्वरूपरूपाय साम्नां धामवते नमः ।।२

ज्ञानैकधामभूताय निर्धूततमसे नमः । शुद्धज्योतिः स्वरूपाय विशुद्धायामलात्मने ।।३

(चक्रिणे शंखिने धाम्ने शार्ङ्गिणे पद्मिने नमः ।)

वरिष्ठाय वरेण्याय परस्मै परमात्मने । नमोऽखिलजगद्व्यापि स्वरूपायात्ममूर्त्तये ।।४

सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ।।५

नमः सूर्यस्वरूपाय प्रकाशात्मस्वरूपिणे । भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा दिनकृते नमः ।।६

शर्वरीहेतवे चैव सन्ध्या ज्योत्स्नाकृते नमः । त्वं सर्वमेतद् भगवञ् जगदुद्भ्रमता त्वया ।।७

भ्रमत्याविद्धमखिलं ब्रह्माण्डं स चराचरम् । त्वदंशुभिरिदं स्पृष्टं सर्वं संजायते शुचि ।।८

मार्कण्डेय बोले—

तब वहाँ आये हुए देवता और ऋषियों ने समग्र तीनों लोकों के वाणी से स्तुत्य पूज्य भगवान् भास्कर की स्तुति की ।।१।।

देवता बोले—

ऋक् स्वरूप आपको नमस्कार है । हे सामरूप ! आपको नमस्कार है । हे द्युतिमान् ! आप ही यजुः स्वरूप और सामरूप वाले हैं, आपको नमस्कार है ।।२।।

आप ही प्राणियों के लिये ज्ञान के एक मात्र धाम हैं । अन्धकार के नाशक आपको नमस्कार है । हे ज्योतिस्वरूप ! विशुद्ध एवं विमल आत्मा वाले आपको नमस्कार है ।।३।।

हे शंख, चक्र ! पद्म और शार्ङ्ग धारण करने वाले आपको नमस्कार है । आपके वरिष्ठ, वरेण्य, पर और परमात्मा, आत्ममूर्ति (स्वरूप) एवं जगद् व्यापी, स्वरूप को नमस्कार है ।।४।।

आप ही सभी प्राणियों के कारण और ज्ञानचित्त वाले पुरुषों के लिए निष्ठा स्वरूप हैं ।।५।।

आप ही सूर्य रूपी प्रकाश और आत्म रूपी भास्कर हैं, अतः आपको नमस्कार है और हे दिन को बनाने वाले ! आपको नमस्कार है ।।६।।

रात्रि के कारण संध्या एवं ज्योत्स्ना को प्रकट करने वाले, आपके लिए नमस्कार है । हे भगवान् ! आपके घूमने से ही यह विश्व घूमता है और चर एवं अचर यह सारा ब्रह्माण्ड घूमता है एवं तुमसे ही आविद्ध है और तुम्हारी किरणों के स्पर्श से ही शुद्ध हो जाता है ।।७-८।।

क्रियते त्वत्करैः स्पर्शाज्जलादीनां पवित्रता । होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते ।।९
तावद्यावन्न संयोगि जगदेतत्त्वदंशुभिः । ऋचस्ते सकला ह्येता यजूंष्येतानि चान्यतः ।।१०
सकलानि च सामानि निपतन्ति त्वदङ्गतः । ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः ।।११
यतः साममयश्चैव ततो नाथत्रयीमयः । त्वमेव ब्रह्मणो रूपं परं चापरमेव च ।।१२
मूर्त्तामूर्त्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपस्तथा स्थितः । निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः ।।
प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजः शमनं कुरु ।।१३
(इदं स्तोत्रवरं रम्यं श्रोतव्यं श्रद्धया नरैः । शिष्यो भूत्वा समाधिस्थो दत्त्वा देयं गुरोरपि ।।)१४

मार्कण्डेय उवाच —

एवं संस्तूयमानस्तु देवैर्देवर्षिभिस्तथा । मुमोच स्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः ।।१५
यत्तस्य ऋङ्मयं तेजो भविता तेन मेदिनी । यजुर्मयेनापि दिवं स्वर्गः साममयं रवेः ।।१६
शातितास्तेजसो भागा ये त्वष्ट्रा दशपञ्च च । त्वष्ट्रैव तेन शर्वस्य कृतं शूलं महात्मना ।।१७
चक्रं विष्णोर्वसूनां च शंकवोऽथ सुदारुणाः । पावकस्य तथा शक्तिः शिबिका धनदस्य च ।।१८
अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणि यानि वै । यक्षविद्याधराणाञ्च तानि चक्रे स विश्वकृत् ।।१९
ततश्च षोडशं भागं बिभर्ति भगवान् विभुः । तत्तेजः पञ्चदशधा शातितं विश्वकर्मणा ।।२०

आपकी किरणों के स्पर्श से ही जलादि पवित्र होते हैं तथा तब तक होम दानादि क्रियाएँ उपकार करने में सक्षम नहीं होतीं, जब तक यह विश्व आपकी रश्मियों का संयोग प्राप्त नहीं करता । आपके अंग से उद्भूत रश्मियाँ ऋक्, यजुः और साममय ही है । इसलिये हे जगन्नाथ ! तुम्हीं ऋक्मय, साममय और यजुर्मय हो क्योंकि हे नाथ ! तुम्हीं वेदत्रयी स्वरूप हो । तुम्हीं ब्रह्म स्वरूप (पर और अपर) हो ।।९-१२।।

और तुम्हीं मूर्त, अमूर्त, स्थूल, सूक्ष्म स्वरूप से स्थित हो और तुम्हीं निमेष, काष्ठ (दिशा) आदि से युक्त एवं क्षयात्मक काल हो (निमेष काष्ठा आदि जो काल के छोटे-छोटे विभाग हैं, वे सब तुम्हारे ही स्वरूप हैं) तुम प्रसन्न होओ और अपनी इच्छा से अपने तेज को शान्त करो ।।१३।।

सभी मनुष्य इन उत्तम रमणीय स्तोत्रों को श्रद्धापूर्वक सुनें और समाधिस्थ होकर शिष्य भी और गुरु को भी देने योग्य देना चाहिए ।।१४।।

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार देवता और देवर्षियों द्वारा स्तुति किये जाते हुए तेजोराशि भगवान् सूर्य ने अपने अव्यय तेज को क्षीण कर दिया ।।१५।।

उसके ऋक्मय तेज से पृथ्वी की (उत्पत्ति) हुई और यजुर्मय तेज से आकाश तथा साममय (तेज) से स्वर्ग हुआ ।।१६।।

त्वष्ठा ने सूर्य के तेज के जिन पन्द्रह भागों को छाँटा उन्हीं भागों से त्वष्टा ने भगवान् शिव का शूल, विष्णु का चक्र, वसुओं के भयंकर शंकु, अग्नि और वरुण की शक्ति, कुबेर की शिविका तथा अन्यान्य देवता, यक्ष एवं विद्याधरों के लिये भयंकर अस्त्र शस्त्रों का निर्माण किया ।।१७-१९।।

इसके पश्चात् भगवान् सूर्य ने अपने तेज का केवल सोलहवां भाग धारण किया । विश्वकर्मा ने उसके तेज को पन्द्रह भागों में छाँट दिया ।।२०।।

ततोऽश्वरूपधृग् भानुरुत्तरानगमत् कुरून् । ददृशे तत्र संज्ञां च बडवारूपधारिणीम् ॥२१
सा च दृष्ट्वा तमायन्तं परपुंसो विशङ्कया । जगाम सम्मुखं तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ॥२२
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः । नासत्यदस्रौ तनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥२३
रेतसोऽन्ते चरेवन्तः खड्गीचर्म्मीतनुत्रधृक् । अश्वारूढः समुद्भूतो बाणतूणसमन्वितः ॥२४
ततः स्वरूपमतुलं दर्शयामास भानुमान् । तस्यैषा च समालोक्य स्वरूपं मुदमाददे ॥२५
स्वरूपधारिणीं चेमामानिनाय निजाश्रमम् । संज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः ॥२६
ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः । द्वितीयश्च यमः शापाद् धर्मदृष्टिरभूत् सुतः ॥२७
कृमयो मांसमादाय पादतोऽस्य महीतले । पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ॥२८
धर्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते । ततो नियोगं तं याम्ये चकार तिमिरापहः ॥२९
यमुना च नदी जज्ञे कलिन्दान्तरवाहिनी । अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ॥३०
गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तोऽपि नियोजितः । छाया-संज्ञा-सुतानां च नियोगः श्रूयतां मम ॥३१

तदनन्तर अश्व का रूप धारण करके सूर्य भगवान् उत्तर कुरु प्रदेश की ओर गये और वहाँ उन्होंने संज्ञा को घोड़ी के रूप में देखा ॥२१॥

और उसे आता देखकर पर पुरुष की आशंका से वह अपनी पीठ की रक्षा करती हुई सामने से उसके पास पहुँची ॥२२॥

फिर उन दोनों की नासिका मिलने के कारण, अश्वी के मुख से नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र निकले ॥२३॥

फिर वीर्यपात के अनन्तर रेवन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो ढाल, तलवार और ध्वज धारण किए, बाण और तरकस से सुसज्जित हो घोड़े पर चढ़ा हुआ ही प्रकट हुआ था ॥२४॥

तत्पश्चात् सूर्य ने अपना अनुपम स्वरूप दिखाया । संज्ञा (घोड़ी) उसके स्वरूप को देखकर अत्यधिक प्रसन्न हुई ॥२५॥

तब जल का शोषण करने वाले, भगवान् भास्कर, संज्ञा नाम वाली, उस प्रीतिमती एव अपने वास्तविक स्वरूप धारण करने वाली अपनी पत्नी को अपने आश्रम में ले आये ॥२६॥

जो इसका ज्येष्ठ पुत्र था वही वैवस्वत् मनु हुआ और दूसरा पुत्र यम शाप के कारण धर्म-दृष्टि हुआ ॥२७॥

कृमि इसके पैर से मांस लेकर पृथ्वी पर गिरेंगे इस प्रकार कहकर उसके पिता ने स्वयं इसके शाप का निवारण कर दिया ॥२८॥

और मित्र और शत्रु दोनों में इसकी धर्म दृष्टि देखकर (अन्धकार विनाशक) सूर्य ने उनको यमत्व के कार्य में नियुक्त किया ॥२९॥

उनकी कन्या यमुना नदी के रूप में उत्पन्न होकर कालिंद देश के मध्य में बहने लगी और महात्मा पिता के द्वारा घोड़ी के दोनों पुत्र (अश्विनी कुमार) स्वर्ग के वैद्य नियुक्त किये गये ॥३०॥

और रेवन्त को भी गुह्यक का अधिपतित्व नियुक्त किया । अब आप मुझसे छाया संज्ञा के पुत्रों के नियोग को सुनो ॥३१॥

पूर्वजस्य मनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रजः । ततः सार्वणिकीं संज्ञामवाप तनयो रवेः ।।३२
भविष्यति मनुः सोऽपि बलिरिन्द्रो यदा तदा । शनैश्चरो ग्रहाणां च मध्ये पित्रा नियोजितः ।।३३
तयोस्तृतीया कन्या तु तपती नाम सा कुरुम् । नृपात् संवरणात् पुत्रमवाप मनुजेश्वरम् ।।३४
तस्य वैवस्वतस्याहं मनोः सप्तममन्तरम् । कथयामि सुतान् भूपानृषीन् दैवान् सुराधिपम् ।।३५

इति श्रीमार्कण्डेयमह पुराणे वैवस्वतमन्वन्तरे वैवस्वतोत्पत्तिवर्णनं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।

छाया संज्ञा का बड़ा पुत्र पूर्व के मनु के समान था । इसलिए रवि के उस पुत्र ने सार्वणिक नाम प्राप्त किया ।।३२।।

जब बलि इन्द्र होगा तभी यह सार्वणिक मनु होगा और शनिश्चर को उनके पिता ने ग्रहों के मध्य स्थापित किया ।।३३।।

उन दोनों (छाया, संज्ञा और सूर्य) की तीसरी कन्या का नाम 'तपती' हुआ और राजा संवरण से उसने एक पुत्र प्राप्त किया ।।३४।।

अब मैं तुमसे उसी वैवस्वत मनु के सातवें मन्वन्तर को और उसके ऋषि, देवता, राजा और पुत्रों को कहता हूँ ।।३५।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में वैवस्वत मन्वन्तर में वैवस्वतोत्पत्ति वर्णन नामक छिहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वे मरुद्गणाः । भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौ यत्र देवगणाः स्मृता ।।१
आदित्या वसवो रुद्रा विज्ञेयाः कश्यपात्मजाः । साध्याश्च वसवो विश्वे धर्मपुत्रगणास्त्रयः ।।२
भृगोस्तु भृगवो देवा पुत्रा ह्यङ्गिरसः सुताः । एष सर्गश्च मारीचो विज्ञेयः साम्प्रताधिपः ।।३

मार्कण्डेय बोले—

जिस मन्वन्तर में (जहाँ) आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, मरुद्गण, भृगु और अंगिरा ये आठ देवगण कहे गये हैं ।।१।।

इनमें आदित्य, वसु, और रुद्र कश्यप के पुत्र कहे गये हैं तथा साध्यवसु और विश्वेदेव ये देवत्रय धर्म के पुत्र हैं ।।२।।

और भृगु के पुत्र भृगु देवता (गण) और अंगिरा के पुत्र हैं । यह मारीच सर्ग कहा गया है । हे राजन् ! जिसका अधिपति सम्प्रति है ।।३।।

उर्ज्जस्वी नाम चैवैन्द्रो महात्मा यज्ञभागभुक् । अतीतानागता ये च वर्तन्ते साम्प्रतं च ये ।।४

सर्वे ते त्रिदशेन्द्रास्तु विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ।

सहस्राक्षाः कुलिशिनः सर्व एव पुरन्दराः ।।५

मघवन्तो वृषाः सर्वे शृङ्गिणो गजगामिनः । ते शतक्रतवस्सर्वे भूताभिभवतेजसः ।।६

धर्माद्यैः कारणैः शुद्धैराधिपत्यगुणान्विताः । भूतभव्यभवन्नाथाः शृणु चैतत् त्रयं द्विज ।।७

भूर्लोकोऽयं स्मृता भूमिरन्तरिक्षं दिवः स्मृतम् । दिव्याख्यश्च तथा स्वर्गस्त्रैलोक्यमिति गद्यते ।।८

अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपश्च महानृषिः । गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ कौशिकः ।।९

तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः । जमदग्निस्तु सप्तैते मुनयोऽत्र तथान्तरे ।।१०

इक्ष्वाकुर्नाभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभागोदिष्ट एव च ।।११

करुषश्च पृषध्रश्च वसुमाँल्लोकविश्रुतः । मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्तिताः ।।१२

वैवस्वतमिदं ब्रह्मन् कथितं ते मयान्तरम् । अस्मिन् श्रुतेनरः सद्यः पठिते चैव सत्तम ।।

मुच्यते पातकैः सर्वैः पुण्यं च महदश्नुते ।।१३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुणे वैवस्वतमन्वन्तरे देवर्षिगणवर्णनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।

और उस मन्वन्तर में महात्मा, उर्जस्वी और यज्ञभाग को भोगने वाला इन्द्र हुआ । जो पूर्वकाल, भविष्य और वर्तमान में इन्द्र थे, होंगे अथवा हैं । तुल्य लक्षणों वाले वे सभी देवेन्द्र इस नाम से जाने जायेंगे वे सभी सहस्र नेत्रों वाले, वज्र से युक्त और पुरन्दर हैं ।।४-५।।

वे सभी; मघवा, वृषा, शृंगी और हाथी पर गमन करने वाले हैं । वे सौ यज्ञ करने वाले और सभी भूतों को पराजित करने वाले तथा तेजोमय हैं ।।६।।

वे सभी इन्द्र धर्मादि (कार्यों) के कारण, पवित्र, आधिपत्य के गुणों से युक्त एवं भूत, भविष्य और वर्तमान के अधीश्वर हैं । हे द्विज ! तीनों लोकों से सम्बद्ध हैं, उनको सुनो ।।७।।

यह भूमि, भूलोक के नाम से कही गयी है और अन्तरिक्ष दिव कहा गया है तथा स्वर्ग को दिव्य (लोक) कहते हैं । इन सबको (सम्मिलित रूप से) त्रैलोक्य कहा जाता है ।।८।।

अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भारद्वाज, कौशिक, विश्वामित्र एवं महात्मा ऋचीक के पुत्र भगवान् जमदग्नि ये सप्त मुनि इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं ।।९-१०।।

इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभागोद्दिष्ट, करुष, और लोकप्रसिद्ध वसुमान्, पृषध्र लोक प्रख्यात ये नौ वैवस्वत मनु के पुत्र कहे गये हैं ।।११-१२।।

हे ब्रह्मन् ! यह मैंने तुमसे वैवस्वत मन्वन्तर का कथन किया । हे सज्जन ! इसके पढ़ने और सुनने पर मनुष्य शीघ्र ही सभी पापों से छूट जाता है और महान पुण्य प्राप्त करता है ।।१३।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में वैवस्वत मन्वन्तर में देवर्षिगण वर्णन नामक छियत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच—

स्वायम्भुवाद्याः कथिताः सप्तैते मनवो मम । तदन्तरेषु ये देवा राजानो मुनयस्तथा ॥१
अस्मिन् कल्पे सप्त येऽन्ये भविष्यन्ति महामुने । मनवस्तान् समाचक्ष्व तथा देवादयश्च ये ॥२

मार्कण्डेय उवाच—

कथितस्तव सावर्णिश्छायासंज्ञा सुतश्च ये । पूर्वजस्य मनोस्तुल्यः स मनुर्भविताऽष्टमः ॥३
रामो व्यासो गालवश्च दीप्तिमान् कृप एव च । ऋष्यशृङ्गस्तथा द्रोणस्तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥४
सुतपाश्चामिताभाश्च मुख्याश्चैव त्रिधासुराः । विंशकः कथिताश्चैषां त्रयाणां त्रिगुणो गणः ॥५
तपस्तपश्च शक्रश्च द्युतिर्ज्योतिः प्रभाकरः । प्रभासो दयितो धर्मस्तेजोरश्मिश्च वक्रतुः ॥६
इत्यादिकस्तु सुतपा देवानां विंशको गणः । प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्यो विंशको गणः ॥७
सुराणाममितानां तु तृतीयमपि मे शृणु । दमो दान्तऋतः सोमो विन्ताद्याश्चैव विंशतिः ॥८
मुख्या ह्येते समाख्याता देवामन्वन्तराधिपाः । मारीचस्यैव ते पुत्राः काश्यपस्य प्रजापतेः ॥९

क्रौष्टुकि बोले—

स्वायम्भुव आदि ये सात मनु, इनके मन्वन्तर, देवता, ऋषि और राजाओं का आपने मुझ से वर्णन किया ॥१॥

हे महामुने ! इस सातवें कल्प में जो दूसरे मनु, देवता आदि होंगे, उन सबको मुझे बताइये ॥२॥

मार्कण्डेय बोले—

संज्ञा की छाया के जिस पुत्र सावर्णि के विषय में तुमसे कहा गया, पूर्व में उत्पन्न मनुओं के समान वह आठवाँ मनु होगा ॥३॥

उस मन्वन्तर के राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्यशृंग और द्रोण यह सात ऋषि होंगे ॥४॥

सुतपा, अमिताभ और मुख्य ये तीन देवगण हैं और इन तीनों का 'विंशक' बीस-बीस का गण हैं और यह विंशक त्रिगुणित अर्थात् साठ है ॥५॥

उनमें तपस्तप, शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेजस, रश्मि और वक्रतुः इत्यादि सुतपा नाम के देवताओं का विंशक गण है। प्रभु, विभु, विभासादि देवता उसी प्रकार अन्य विंशक गण हैं ॥६-७॥

अमित देवताओं के तृतीय विंशक को भी मुझसे सुनो, दम, दान्त, ऋतु, सोम, विन्द आदि बीस देवगण उसके अन्तर्गत हैं ॥८॥

ये सभी मुख्य देवता जो मैंने तुम्हें बताये हैं मन्वन्तराधिपति हैं। वे सब मारीच के पुत्र प्रजापति कश्यप की ही प्रजा हैं ॥९॥

भविष्याश्च भविष्यन्ति सावर्णस्यान्तरे मनोः ।तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु बलिर्वैरोचनिर्मुने ॥१०
पाताल आस्ते योऽद्यापि दैत्यः समयबन्धनः। विरजाश्चार्ववीरश्च निर्मोहः सत्यवाक्कृतिः ॥
विष्णवाद्याश्चैव तनयाः सावर्णस्य मनोर्नृपाः ॥११

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरेऽष्टमे देवर्षिगणवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।

हे मुने ! सावर्णि के इस मन्वन्तर में ये देवता और विरोचन पुत्र बलि इन्द्र होगा ।१०॥

जो दैत्य आज भी प्रतिज्ञा बन्धन से पाताल में रहता है । वे विरजा, अर्ववीर, निर्मोह, सत्यवाक्, कृति, विष्णु आदि मनु सावर्णि के पुत्र राजा होंगे ॥११॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर आठवें में देवर्षिगण वर्णन नामक सतत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय उवाच—

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः । निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥१
महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः । स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥२
स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः । सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले ॥३
तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥४
तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः । न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥५

ॐ चण्डिका देवी को नमस्कार है ।

मार्कण्डेय बोले—

सूर्यपुत्र सावर्णि जो आठवें मनु कहे जाते हैं । उनकी उत्पत्ति को मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ तुम सुनो ॥१॥

सूर्यपुत्र वह महाभाग सावर्णि महामाया के अनुग्रह (प्रसाद) से जिस मन्वन्तर के स्वामी हुए ॥२॥

प्राचीन काल में स्वारोचिष मन्वन्तर में पूर्व के समान चैत्र वंश में उत्पन्न, समस्त क्षिति मण्डल पर सुरथ नाम का राजा हुआ ॥३॥

प्रजा का औरस पुत्रों के समान भली प्रकार पालन करते हुए भी कोलाविध्वंशी नामक राजा उसके शत्रु हो गये ॥४॥

अति प्रबल दण्ड वाले उस (सुरथ) का उन (कोलाविध्वंशी वंश वालों) के साथ युद्ध हुआ । (संख्या में) न्यून होने पर भी वह उन कोलाविध्वंशी शत्रुओं से युद्ध में जीत लिया गया ॥५॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् । आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥६
अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः । कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥७
ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः । एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥८
स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यः सुमेधसः । प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥९
तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः । इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥१०
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टमानसः । मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ॥११
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः । मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते ॥१२
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः । अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ॥१३
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् । संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ॥१४
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः । तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ॥१५

तत्पश्चात् अपनी राजधानी में आकर, अपने देश का राजा हुआ किन्तु वहाँ भी वह महाभाग उन प्रबल शत्रुओं के द्वारा आक्रान्त हो गया ॥६॥

तदनन्तर वहाँ भी, अपनी राजधानी में, उस दुर्बल के बलवान्, दुष्ट और दुरात्मा मंत्रियों के द्वारा कोश और सैन्य का अपहरण कर लिया गया ॥७॥

उसके बाद नष्ट हुए प्रभुत्व वाला वह राजा शिकार के बहाने अश्व पर चढ़कर अकेला ही गहन वन में चला गया ॥८॥

वहाँ उसने शांत हिंसक पशुओं से आकीर्ण मुनि के शिष्यों से शोभित, विप्रवर सुमेधा मुनि के आश्रम को देखा ॥९॥

उन मुनि द्वारा सत्कृत वह मुनिवर के उस आश्रम पर, इधर-उधर विचरण करते हुए, कुछ समय तक ठहरा ॥१०॥

उसके बाद (आश्रम में) ममत्व के कारण आकृष्ट चित्त वह सोचने लगा कि मेरे पूर्वजों ने जिसका पूर्व काल में पालन किया था वही नगर आज मुझसे रहित है। मेरे दुराचारी उन भृत्य गणों के द्वारा (उसका) धर्मपूर्वक पालन किया जा रहा है अथवा नहीं ? ॥११॥

सदैव मद-युक्त एवं शूर शत्रु के वश में गया हुआ वह मेरा प्रधान हाथी न जाने किन भोगों को भोगता होगा ॥१२॥

और जो मेरी कृपा, धन और भोजन के द्वारा सदैव मेरे अनुचर थे वे आज निश्चय ही, दूसरे राजाओं का अनुसरण करते होंगे ॥१३॥

अनुचित प्रकार से व्यय करने वाले, निरन्तर व्यय करते हुए, उनके द्वारा अत्यन्त दुःख से संचित वह मेरा कोश रिक्त हो जायेगा ॥१४॥

राजा ने यह और अन्य भी कई बातें निरन्तर सोचीं। एक बार उसने वहाँ मुनि के आश्रम के समीप में एक वैश्य को देखा ॥१५॥

स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः। सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ॥१६

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्। प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१७

वैश्य उवाच

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले। पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ॥१८

विहीनः स्वजनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्। वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ॥१९

सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्। प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ॥२०

किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु मे साम्प्रतम्।
कथं किं ते नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥२१

राजोवाच—

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः। तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥२२

वैश्य उवाच—

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः। किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ॥२३

यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः। पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः ॥२४

और उसने उससे पूछा—अरे! तुम कौन हो? और तुम्हारे यहाँ आने का क्या कारण है? तथा तुम किस कारण शोकग्रस्त और अनमने से दिखाई दे रहे हो? ॥१६॥

प्रेमपूर्वक कहे गये, उस राजा के इन वचनों को सुनकर उस वैश्य ने विनीत भाव से प्रणाम करके उस राजा से कहा—॥१७॥

वैश्य बोला—

(हे राजन्!) मैं धनियों के कुल में उत्पन्न समाधि नाम का वैश्य हूँ। (मेरे) दुष्ट स्त्री तथा पुत्रों ने धन के लोभ से (मुझे) निकाल दिया है ॥१८॥

मेरा धन लेकर स्त्री, पुत्र और स्वजनों से विहीन अपने विश्वसनीय बन्धुओं के द्वारा (घर से) निकाला गया, मैं दुःखी होकर वन में आ गया हूँ ॥१९॥

यहाँ पर स्थित हुआ वह मैं, स्वजनों, स्त्री, पुत्रों की कुशलता और अकुशलता के समाचार को नहीं जानता हूँ ॥२०॥

उनके घर में इस समय क्षेम है अथवा अक्षेम अथवा वे मेरे पुत्र कैसे हैं? क्या सदाचार का पालन करने वाले हैं अथवा दुराचारी हो गये हैं? ॥२१॥

राजा ने कहा—

धन के लोभी जिन स्त्री पुत्रों ने आपको (घर से) निकाल दिया है, क्या आपका मन अब भी उनमें स्नेह से बंधा है? ॥२२॥

वैश्य बोला—

मेरे विषय में इस प्रकार जो वचन आपने कहे वे सब ठीक हैं। किन्तु क्या करूँ मेरा मन निष्ठुर नहीं बन पा रहा है ॥२३॥

जिन धन के लोभियों ने पिता के स्नेह, पति के प्रेम, स्वजनों के प्रति अनुराग को त्यागकर मेरा अपमान किया है। उन्हीं में मेरा मन आसक्त है ॥२४॥

किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते । यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।।२५

तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते । करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ।।२६

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ । समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।।२७

कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् । उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ।।२८

राजोवाच—

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् । दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।।२९

ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि । जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ।।३०

अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः । स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ।।३१

एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यंतदुःखितौ । दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।।३२

तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि । ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ।।३३

हे महामते ! मैं इस बात को जानते हुए भी नहीं जान पा रहा हूँ । कि गुणहीन बन्धुओं के प्रति भी जो यह मेरा चित्त प्रेम मग्न हो रहा है (यह सब क्या है ?) ।।२५।।

उनके लिए मुझे (लम्बे) निःश्वास आ रहे हैं और हृदय अत्यन्त दुःखी हो रहा है। प्रीति रहित उनके प्रति जो यह मेरा मन निष्ठुरता ग्रहण नहीं कर रहा है ।।२६।।

मार्कण्डेय बोले—

हे ब्रह्मन् ! उसके बाद समाधि नाम का वह वैश्य और राजाओं में श्रेष्ठ (सुरथ) वे दोनों साथ-साथ उस मुनि के पास उपस्थित हुए ।।२७।।

और वे दोनों उनके साथ यथा योग्य न्यायानुकूल विनयपूर्ण बर्ताव करके बैठ गये। तत्पश्चात् वैश्य और राजा ने कुछ वार्तालाप करना प्रारम्भ किया ।।२८।।

राजा बोला—

हे भगवन् ! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ (आप) उसे बताइये । मेरा चित्त मेरे अधीन न होने के कारण जो मेरे चित्त को बहुत दुःख दे रही है ।।२९।।

हाथ से गये हुए राज्य के प्रति और राज्य के सम्पूर्ण अंगों में मेरी ममता बनी हुई है । (वह अब मेरा नहीं है, यह) जानते हुए भी अज्ञ की भाँति उसमें मेरी ममता बनी हुई है । हे मुनिवर ! यह क्या है ?।।३०।।

और यह (वैश्य) स्त्री, पुत्र और सेवकों द्वारा छोड़ा गया और अपमानित हुआ है । स्वजनों के द्वारा त्यक्त होने पर भी यह उनके प्रति अत्यन्त हार्दिक स्नेह रखता है ।।३१।।

इस प्रकार यह और मैं दोनों ही अत्यधिक दुःखी हैं और प्रत्यक्ष रूप से दोष दिखायी देने पर भी हमारे मन में ममता जनित आकर्षण उत्पन्न हो रहा है ।।३२।।

तो हे महाभाग ! ज्ञानी होने पर भी जो मोह है, वह यह क्या है ? मुझमें और इसमें विवेक शून्य की यह मूढ़ता हो रही है ।।३३।।

ऋषिरुवाच —

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे । विषयाश्च महाभाग यान्ति चैवं पृथक् पृथक् ॥३४
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धस्तथापरे। केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥३५
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं नु ते न हि केवलम् । यतोहि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ॥३६
ज्ञानं न तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् । मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ॥३७
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु । कणमोक्षादृतान्मोहात् पीडयमानानपि क्षुधा ॥३८
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति । लोभात् प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यसि ॥३९
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः । महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा ॥४०
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः । महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत् ॥४१
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा । बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥४२
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् । सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ॥४३
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी । संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥४४

ऋषि बोले —

हे महाभाग ! विषय मार्ग का समस्त जीवों को ज्ञान है और विषय भी अलग- अलग हैं ॥३४॥

कुछ प्राणी दिन में अन्धे होते हैं और अन्य प्राणी रात्रि में नहीं देख सकते हैं तथा कुछ प्राणियों की दिन और रात में समान दृष्टि होती है ॥३५॥

यह सत्य है कि मनुष्य ज्ञानी होते हैं किन्तु वे ही (ज्ञानी) हों ऐसा नहीं है क्योंकि सभी पशु, पक्षी और मृग आदि भी ज्ञानी होते हैं ॥३६॥

मनुष्यों का ज्ञान वैसा नहीं होता है जैसा कि उन पशु-पक्षियों का तथा अन्य बातें मनुष्यों और पशु -पक्षियों दोनों में समान होती हैं ॥३७॥

इन पक्षियों को देखो ये ज्ञान होने पर भी, भूख से पीड़ित होते हुए भी, मोहवश, बड़े चाव से अन्न के कण अपने बच्चों की चोंच में डाल रहे हैं ॥३८॥

और हे मनुज व्याघ्र ! मनुष्य भी अपने पुत्रों के प्रति लोभ के कारण उपकार का बदला पाने के लिए पुत्रों की अभिलाषा करते हैं क्या तुम इन सब को नहीं देखते हो ? ॥३९॥

(यद्यपि वे इस बात को जानते हैं) फिर भी वे संसार की स्थिति के कारणभूत महामाया के प्रभाव से ममता रूपी भँवर और मोह रूपी गर्त में गिराये गये हैं ॥४०॥

इसलिए इस विषय में विस्मय नहीं करना चाहिए, जगत् के स्वामी भगवान् विष्णु की योग निद्रा रूपी जो महामाया है, उसी से यह सम्पूर्ण जगत् मोहित हो रहा है ॥४१॥

और वह भगवती महामाया देवी ज्ञानियों के चित्त को भी बलपूर्वक खींचकर मोह में डाल देती हैं ॥४२॥

उन्हीं के द्वारा इस सम्पूर्ण चराचर जगत् की सृष्टि की जाती है और वही यह प्रसन्न होकर मनुष्यों की मुक्ति के लिये वर प्रदान करने वाली हैं ॥४३॥

वही (परा) विद्या, संसार बंधन और मोह की कारणभूत सनातनी देवी और सम्पूर्ण ईश्वर हैं ॥४४॥

राजोवाच —

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्। ब्रवीति कथमुत्पन्ना कर्मचास्याश्च किं द्विज ।।४५
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ।तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ।।४६

ऋषिरुवाच —

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् । तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।।४७
देवानां कार्यसिद्धयर्थमाविर्भवति सा यदा । उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।।४८
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते । आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।।४९
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ । विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।।५०
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः। दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।।५१
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः । प्रबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ।।५२

ब्रह्मोवाच —

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्। स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः ।।५३

राजा बोले—

हे भगवन् ! वह देवी कौन है जिसे आप महामाया इस प्रकार कह रहे हैं। हे ब्रह्मन् ! उनका आविर्भाव कैसे हुआ और इसके क्या-क्या कार्य हैं ?।।४५।।

हे ब्रह्म वेत्ताओं में श्रेष्ठ ! उन देवी का जो प्रभाव हो, जो स्वरूप हो और जैसे उनका उद्भव (प्रादुर्भाव) हुआ हो, वह सब मैं आपसे तत्वतः सुनने का इच्छुक हूँ ।।४६।।

ऋषि बोले—

हे राजन् वह जगत् मूर्ति वस्तुतः नित्य ही है और यह सम्पूर्ण जगत् उन्हीं से व्याप्त है। फिर भी उनकी उत्पत्ति कई प्रकार से कही गयी हैं, वह मुझसे सुनो ।।४७।।

जब वह देवताओं के कार्य के लिए प्रकट होती हैं। उस समय वह उत्पन्न हैं। इस प्रकार से सदैव ही संसार में कही जाती हैं ।।४८।।

कल्प के अन्त में जब योग निद्रा में स्थित भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण संसार को एकार्णवीकृत करने पर और शेषनाग की शय्या को बिछाकर योग निद्रा में स्थित होने पर ।।४९।।

उस समय ब्रह्मा की हत्या के लिए उद्यत, मधु कैटभ नाम के प्रसिद्ध दो भयंकर असुर विष्णु के कान के मैल से उत्पन्न हुए ।।५०।।

भगवान् विष्णु के नाभि कमल में स्थित, उन प्रजापति ब्रह्मा ने उन दोनों भयानक असुरों को (अपने पास आया) तथा जनार्दन भगवान् को सोते हुए देखकर ।।५१।।

उन्होंने भगवान् को जगाने के लिए, एकाग्र चित्त होकर, विष्णु के नेत्रों में निवास करने वाली उस योगनिद्रा का स्तवन आरम्भ किया ।।५२।।

ब्रह्मा बोले—

सम्पूर्ण संसार की अधीश्वरी, संसार को धारण करने वाली, संसार का पालन और संहार करने वाली, विष्णु भगवान् की अतुल शक्ति भगवती निद्रा देवी की मैं स्तुति करता हूँ ।।५३।।

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका ।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता ॥५४
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः। त्वमेव संध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ॥५५
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् । त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ॥५६
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने । तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ॥५७
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः । महामोहा भगवती महादेवी महेश्वरी ॥५८
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी । कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ॥५९
त्वं श्रीस्त्वमोश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ॥६०
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा। शङ्खिनी चापिनी बाणा भुशुंडी परिघायुधा ॥६१
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वति सुन्दरी । परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ॥६२

हे देवी ! स्वर रूपी आत्मा वाली, तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार तथा तुम्हीं (जीवन-दायिनी) सुधा हो, नित्य अक्षर (प्रणव) में तुम्हीं तीनों मात्राओं अ, उ, म के रूप में स्थित हो ॥५४॥

(और तीनों मात्राओं के अतिरिक्त प्रणव में) जो विन्दु रूपा नित्य अर्द्धमात्रा हैं। जो विशेष रूप से अनुच्चार्य हैं (वह भी तुम ही हो)। हे देवी ! तुम्हीं संध्या सावित्री तथा परम जननी हो ॥५५॥

तुम्हारे द्वारा ही यह सम्पूर्ण जगत् धारण किया जा रहा है और तुम्हारे द्वारा ही इसका सृजन किया जाता है और हे देवी ! तुम्हीं इसका पालन कर रही हो और तुम्हारे द्वारा ही यह सम्पूर्ण जगत् कल्प के अन्त में सदैव ग्रास बना लिया जाता है ॥५६॥

हे ज़गन्मयी देवी ! इस जगत् की सृष्टि होने पर तुम सृष्टि रूपा हो, पालन करने में स्थिति रूपा तथा कल्पान्त के समय संहार रूप धारण करने वाली हो ॥५७॥

हे भगवती ! तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी और महेश्वरी हो ॥५८॥

तुम्हीं तीनों गुणों को उत्पन्न करने वाली सबकी प्रकृति हो और तुम्हीं भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और दारुण मोहरात्रि हो ॥५९॥

तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्री और तुम्हीं ज्ञान लक्षण वाली बुद्धि हो तथा तुम्हीं लज्जा, पुष्टि, तुष्टि एवं शान्ति और क्षांति हो ॥६०॥

भयंकर रूपवाली, घोर रूपा तुम्हीं खड्ग, शूल, गदा, चक्र, धनुष, बाण, शंख, भुशुंडी और परिघ आदि हथियारों को धारण करने वाली हो ॥६१॥

सौम्य और सौम्यतर तुम संसार की सम्पूर्ण सुन्दर वस्तुओं से अधिक सुन्दरी हो और हे परमेश्वरी ! पर और अपर सबसे परे रहने वाली हो ॥६२॥

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥६३
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् । सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ॥६४
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च । कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ॥६५
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता । मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ॥६६
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु । बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥६७

ऋषिरुवाच—

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा । विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ॥६८
नेत्रास्य नासिकाबाहूहृदयेभ्यस्तथोरसः । निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥६९
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः । एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ॥७०
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ । क्रोधरक्तेक्षणौ हन्तु ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ॥७१
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः । पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥७२

और हे अखिलात्मके ! जो कुछ भी और कहीं भी सदसद् वस्तुएं है तथा उन सबकी जो शक्ति है वह तुम ही हो । तब फिर तुम्हारी मैं कैसे स्तुति कर सकता हूँ ॥६३॥

और जिस तुम्हारे द्वारा जो जगत् के सृष्टा, रक्षक और संहारक हैं ऐसे उन भगवान् विष्णु को भी जब निद्रा के अधीन कर दिया है । तब तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ॥६४॥

क्योंकि मुझको, भगवान् विष्णु को तथा शंकर को भी तुमने ही शरीर धारण कराया है। इसलिए तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति किसमें है ? ॥६५॥

हे देवी ! इस प्रकार वह तुम अपने उदार प्रभावों से ही विशेषतया प्रशसित होती हुई इन दोनों दुर्धर्ष मधु और कैटभ को मोह में डाल दो ॥६६॥

और जगत्पति भगवान् विष्णु को शीघ्र ही जगा दो तथा इनमें इन दोनों महाअसुरों को मार डालने की मति उत्पन्न कर दो ॥६७॥

ऋषि बोले—

तब ब्रह्मा जी ने, मधु और कैटभ को मार डालने के उद्देश्य से विष्णु को जगाने के लिए, तमोगुणमयी निद्रा (देवी) की इस प्रकार स्तुति की ॥६८॥

तो वह भगवान् के नेत्र, नासिका, बाहू, हृदय, और वक्षस्थल से निकलकर अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की दृष्टि के समक्ष खड़ी हो गयीं ॥६९॥

तत्पश्चात् उस (निद्रा) से मुक्त हुए जगत्पति भगवान् जनार्दन एकार्णव जल में शेष शय्या से उठ खड़े हुए फिर उन्होंने अत्यन्त बलवान्, पराक्रमी, दुरात्मा, क्रोधपूर्वक, लाल नेत्रों से ब्रह्मा जी को मारने के लिए प्रयत्न करने वाले, उन दोनों मधु कैटभ (नामक) राक्षसों को (देखा) ॥७०-७१॥

और उठकर वैभवयुक्त भगवान् श्री हरि ने उन दोनों के साथ पांच हजार वर्षों तक बाहु-युद्ध किया ॥७२॥

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ । उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥७३

श्रीभगवानुवाच—

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि । किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया ॥७४

ऋषिरुवाच—

वंचिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत् । विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः ॥७५

प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः । आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥७६

ऋषिरुवाच—

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता । कृत्वा चक्रेण वैच्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥७७

एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् । प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ॥७८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिकेमन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।

अत्यन्त बल से उन्मत्त और महामाया से मोहित उन दोनों ने भगवान् केशव से कहा—'हमसे वर माँगो' ॥७३॥

श्री भगवान् ने कहा—

यदि तुम दोनों ही मुझ पर प्रसन्न हो तो आज मेरे हाथों से मारे जाओ। मैंने तुमसे केवल इतना ही वर माँगा है, यहाँ किसी दूसरे वर से क्या लेना है ॥७४॥

ऋषि बोले—

(विष्णु द्वारा) ठगे गये उन दोनों ने, सम्पूर्ण जगत् को जलमय देखकर भगवान् कमल नयन से कहा—॥७५॥

हम दोनों तुम्हारे युद्ध से प्रसन्न हैं, तुमसे हमारी मृत्यु श्लाघ्य है। तुम हम दोनों को वहाँ न मारना जहाँ पर पृथ्वी जल से डूबी हो ॥७६॥

ऋषि बोले—

'ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले, भगवान् (विष्णु) ने उन दोनों के सिरों को अपनी जाँघ पर रखकर चक्र से काट डाला ॥७७॥

इस प्रकार यह (देवी महामाया) ब्रह्मा जी के द्वारा स्तुति करने पर स्वयं प्रकट हुई थी। अब पुनः मैं तुम्हारे समक्ष उसके प्रभाव का वर्णन करता हूँ, सुनो ॥७८॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी माहात्म्य के अन्तर्गत 'मधु-कैटभ-वध नामक' अठत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच—

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा । महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥१
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् । जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥२
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् । पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजो ॥३
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् । त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥४
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च । अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥५
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि । विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥६
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् । शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥७

ऋषिरुवाच –

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः । चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटी कुटिलाननौ ॥८
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः । निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च ॥ ९

ऋषि बोले—

पूर्व काल में असुरों के स्वामी महिषासुर और देवों के स्वामी इन्द्र में पूरे सौ वर्षों तक देवासुर संग्राम हुआ ॥१॥

उसमें महाबली असुरों ने देव सेना को पराजित कर दिया और सभी देवताओं को जीतकर महिषासुर इन्द्र बन बैठा ॥२॥

उसके बाद पराजित देवता पद्म योनि प्रजापति (ब्रह्मा को) आगे करके वहाँ पर गये जहाँ शंकर और विष्णु विराजमान् थे ॥३॥

देवताओं ने महिषासुर के पराक्रम और अपनी पराजय का वृत्तांत यथावत उन दोनों को विस्तार-पूर्वक सुनाया ॥४॥

(हे भगवन् ! वह महिषासुर) सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, वरुण और अन्य सभी देवताओं के अधिकारों (को हस्तगत करके) स्वयं ही (इन्द्र) बन बैठा है ॥५॥

उस दुरात्मा महिषासुर के द्वारा स्वर्ग से निकाले गये सभी देवगण पृथ्वी पर मनुष्यों के समान विचरण कर रहे हैं ॥६॥

यह सब देवताओं के शत्रुओं की कुचेष्टाएँ हमने आपसे कह दी हैं और हम आप लोगों की शरण में आये हैं अतः (आप) उसके वध का उपाय सोचिये ॥७॥

ऋषि बोले —

इस प्रकार देवताओं के वचनों को सुनकर भगवान् विष्णु और शिव ने क्रोध किया, उनकी भौंहें तन गयीं और मुँह टेढ़ा हो गया ॥८॥

उसके बाद अत्यन्त क्रोध से भरे हुए चक्रपाणी भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और शंकर के मुख से एक महान् तेज प्रकट हुआ ॥९॥

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः । निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ।।१०
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् । ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ।।११
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् । एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ।।१२
यदभूच्छांभवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् । याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा ।।१३
सौम्येनस्तनयोर्युग्मं मध्यमैंद्रेण चाभवत् । वारुणेन च जंघोरूनितम्बस्तेजसा भुवः ।।१४
ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा । वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ।।१५
तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा । नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ।।१६
भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च । अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ।।१७
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् । तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ।।१८
ततो देवा ददुस्तस्यै स्वानि स्वान्यायुधानि च । ऊचुर्जय जयेत्युच्चैर्जयन्तीं ते जयैषिणः ।।१९
शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकभृत् । चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाट्य स्वचक्रतः ।।२०

और अन्य इन्द्रादि देवताओं के शरीर से भी महान् तेज निकला जो मिलकर एक हो गया ।।१०।।

अत्यन्त तेजवान् वह पुञ्ज जलते हुए पर्वत के समान प्रतीत होता था । उन देवताओं ने देखा कि वहाँ उसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त हो रही हैं ।।११।।

सभी देवताओं के शरीर से उत्पन्न वह अतुल तेज वहाँ एकत्र होकर अपनी कान्ति से तीनों लोकों को व्याप्त करके नारी रूप में परिणत हो गया ।।१२।।

भगवान् शंकर से उत्पन्न जो तेज था उससे उस (नारी) का मुख प्रकट हुआ और यम के तेज से केश तथा विष्णु के तेज से बाहु (उत्पन्न हुई) ।।१३।।

चन्द्रमा (के तेज) से दोनों स्तन युगल और इन्द्र के तेज से मध्य भाग, वरुण के तेजं से जंघा तथा पिंडली एवं पृथ्वी के तेज से नितम्ब भाग प्रकट हुआ ।।१४।।

ब्रह्मा के तेज से चरण युगल और सूर्य के तेज से उसकी अंगुलियाँ (उत्पन्न) हुई । वसुओं के तेज से हाथों की अंगुलियाँ तथा कुवेर के तेज से नासिका प्रकट हुई ।।१५।।

और प्रजापति के तेज से उसके दाँत प्रकट हुए तथा अग्नि के तेज से तीनों नेत्र उत्पन्न हुए ।।१६।।

उसकी दोनों भौहें संध्या के और दोनों कान बायु के तेज से (उत्पन्न हुए) इसी प्रकार अन्य देवताओं के तेज से भी उस कल्याणी की उत्पत्ति हुई ।।१७।।

उसके बाद समस्त देवताओं के तेजोपुञ्ज राशि से उत्पन्न उस (देवी) को देखकर, महिषासुर से पीड़ित देवता बहुत प्रसन्न हुए ।।१८।।

तत्पश्चात् सभी देवताओं ने अपने-अपने आयुध उसको दे दिये और उच्च स्वर से, उसकी जय की कामना करते हुए जय हो, जय हो, इस प्रकार कहने लगे ।।१९।।

पिनाकधारी शिव ने अपने शूल से एक (अन्य) शूल निकालकर उसको दे दिया । कृष्ण ने अपने चक्र से (अन्य) चक्र उखाड़कर दे दिया ।।२०।।

शंखं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः । मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥२१
वज्रमिन्द्रः समुत्पाट्य कुलिशादमराधिपः । ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥२२
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ । प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥२३
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः । कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्यैचर्म च निर्मलम् ॥२४
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे । चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥२५
अर्द्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु । नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥
अंगुलीयकररत्नानि समस्तास्वंगुलीषु च ॥२६
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् । अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ॥२७
अम्लानपंकजां मालां शिरस्युरसि चापराम् । अददाज्जलधिस्तस्यै पंकजं चातिशोभनम् ॥२८
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च । ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ॥२९
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् । नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ॥३०
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा । सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ॥३१

वरुण ने शंख और अग्नि ने उसको शक्ति दी तथा वायु ने धनुष और बाण से भरे हुए दो तरकस प्रदान किये ॥२१॥

सहस्र नेत्रों वाले देवराज इन्द्र ने अपने वज्र से वज्र उखाड़कर और ऐरावत हाथी से एक घंटा भी उतार कर दिया ॥२२॥

यमराज ने कालदण्ड से दण्ड, वरुण ने पाश और प्रजापति ने स्फटिकाक्ष की माला तथा ब्रह्मा जी ने कमण्डल प्रदान किया ॥२३॥

सूर्य ने अपनी किरणों से देवी के समस्त रोमकूपों में अपनी रश्मियाँ भर दीं । काल ने उनको चमकती हुई ढाल और तलवार दी ॥२४॥

समुद्र ने निर्मल हार और कभी जीर्ण न होने वाले दो वस्त्र चूडामणि, दो कुण्डल, कड़े, उज्ज्वल अर्द्ध-चन्द्र सब बाहुओं के लिए केयूर, दोनों चरणों के लिए निर्मल नूपुर, गले में सुन्दर हसुली और सब अंगुलियों में पहनने के लिए रत्न निर्मित अंगूठियाँ भी प्रदान कीं ॥२५-२६॥

विश्वकर्मा ने उनको अत्यन्त निर्मल फरसा भेंट किया तथा अनेक रूपों वाले अस्त्र और अभेद्य कवच प्रदान किये ॥२७॥

इसके अतिरिक्त मस्तक और वक्षस्थल पर धारण करने के लिए, कभी न मुर्झाने वाले कमलों की मालाएँ दीं । जलधि ने उनको अत्यन्त सुन्दर कमल का फूल भेंट किया ॥२८॥

हिमालय ने वाहन सिंह और विविध प्रकार के रत्न दिये तथा धनों के अधिपति (कुबेर) ने सुरा से भरा हुआ पानपात्र दिया ॥२९॥

जो इस पृथ्वी को धारण करते हैं, सभी नागों के स्वामी शेष ने, उन्हें महामणियों से विभूषित नाग हार प्रदान किया ॥३०॥

और अन्य देवताओं के द्वारा भी आभूषण और अस्त्र शस्त्रों से सम्मानित देवी ने बार-बार अट्टहास पूर्वक उच्च स्वर से निनाद किया ॥३१॥

तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः । अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।।३२
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे । चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ।।३३
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् । तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।।३४
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः । सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।।३५
आ किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः । अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।।३६
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा । पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।।३७
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वेन ताम् । दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम् ।।३८
ततः प्रववृते युद्धंतया देव्या सुरद्विषाम् । शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम् ।।३९
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः । युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ।।४०
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः । अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।।४१
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः । अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ।।४२

उनकी भयंकर गर्जना से (नाद से) सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा । नापे न जा सकने वाले अत्यन्त महान् (उस निनाद की) महान् प्रतिध्वनि हुई ।।३२।।

सभी लोक क्षुभित हो गये और समुद्र काँप उठे । पृथ्वी डोलने लगी । सभी पर्वत चलायमान हो गये ।।३३।।

प्रसन्न होकर देवताओं ने उस सिंहवाहिनी (देवी) से कहा—हे देवी ! तुम्हारी जय हो । साथ ही महर्षियों ने भक्ति भाव से विनम्र होकर उनका स्तवन किया ।।३४।।

सम्पूर्ण तीनों लोकों को संक्षुब्ध देखकर, देवताओं के शत्रु (दैत्य गण) अपनी समस्त सेना को आयुधों से युक्त करके तैयार हो गये ।।३५।।

महिषासुर ने, अरे ! यह क्या हो रहा है ? इस प्रकार से बड़े क्रोध में भरकर कहा, फिर सम्पूर्ण असुरों से घिरा हुआ वह उस (सिंह नाद) शब्द की ओर दौड़ा ।।३६।।

उसके बाद अपनी कांति से तीनों लोकों को व्याप्त करने वाली उस देवी को उसने देखा । उनके चरणों के आक्रमण से पृथ्वी झुकी जा रही थी और मुकुट से आकाश में रेखा सी खिंच गयी थी ।।३७।।

धनुष की टंकार से सम्पूर्ण पातालों को क्षुभित करने वाली वह देवी अपनी सहस्रों भुजाओं से सम्पूर्ण दिशाओं को व्याप्त करके खड़ी थी ।।३८।।

तदनन्तर उनके साथ दैत्यों का युद्ध प्रारम्भ हो गया । बहुत प्रकार से प्रयोग किये गये, शस्त्रास्त्रों से दिशाएँ उद्भासित होने लगीं ।।३९।।

उस समय महिषासुर का सेनापति चिक्षुर नामक महा असुर एवं चामर नामक असुर चतुरंगिणी सेना (हस्ती, अश्व, रथ और पदाति) से युक्त होकर युद्ध में प्रवृत्त हुआ ।।४०।।

उदग्र नामक महासुर छः अयुत (अर्थात् साठ हजार) रथ (सेना, लेकर और महाहनु एक सहस्र अयुत् (अर्थात् एक करोड़) रथ सेना लेकर युद्ध करने लगे ।।४१।।

पाँच करोड़ रथियों के साथ असिलोमा नामक महाअसुर और साठ लाख रथियों से युक्त होकर बाष्कल नाम का असुर उसके साथ युद्ध क्षेत्र में आ डटा ।।४२।।

गजवाजिसहस्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः । वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।।४३
बिडालाख्यो महादैत्यः पञ्चाशद्भिरथायुतैः । युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।।४४
वृतः कालो रथानां च रणे पञ्चशतायुतैः । युयुधे संयुगे तत्र तावद्भिः परिवारितः ।।४५
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः । युयुधः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।।४६
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा । हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।।४७
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा । युयुधः सयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।।४८
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे । देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।।४९
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका । लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।।५०
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः । मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।।५१
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी । चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।।५२
निश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका । त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।।५३

सहस्रों की संख्या में हाथी, घोड़ों और करोड़ों रथों से घिरा हुआ उग्रदर्शन उस युद्ध में (संग्राम भूमि में) युद्ध करने लगा ।।४३।।

पाँच लाख रथियों से युक्त होकर (घिर कर) बिडाल नाम का महा दैत्य उस क्षण क्षेत्र में युद्ध करने लगा ।।४४।।

और पाँच लाख रथियों से घिरकर, काल नामक राक्षस भी उस संघर्ष में युद्ध करने लगा ।।४५।।

और भी हजारों महादैत्य रथ, हाथी और घोड़ों की सेना से घिरे हुए, वहाँ उस संघर्ष में देवी के साथ युद्ध करने लगे ।।४६।।

कोटि-कोटि सहस्र रथ, हाथी और घोड़ों (की सेना) से घिरा हुआ महिषासुर भी उस युद्ध में स्थित था ।।४७।।

वे दैत्य देवी के साथ तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, खड्ग, परशु और पट्टिश आदि अस्त्र शस्त्रों से युद्ध करने लगे ।।४८।।

कुछ (दैत्यों) ने उन पर शक्ति फेंकीं और कुछ अन्यों ने पाशों का क्षेपण किया तथा वे उस देवी को खड्ग के प्रहार से मारने के लिए उद्यत हुए ।।४९।।

उसके बाद अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने वाली उस चण्डिका देवी ने भी खेल ही खेल में उनके उन शस्त्रास्त्रों को काट डाला ।।५०।।

प्रसन्न मुख देवी की देवता और ऋषि लोग स्तुति कर रहे थे । और वह ईश्वरी असुरों के शरीर पर शस्त्रास्त्रों का प्रहार करती रही ।।५१।।

हिलते हुए आयालों (गर्दन के बाल) वाला देवी का वाहन वह केसरी भी क्रुद्ध होकर, असुरों की सेनाओं (के बीच) में वन में अग्नि के समान विचरने लगा ।।५२।।

रण भूमि में युद्ध करते हुए अम्बिका देवी ने जिन श्वासों को छोड़ा, उनसे सौ सहस्र गण शीघ्र ही उत्पन्न हो गये ।।५३।।

युयुधस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः । नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिता ॥५४
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे । मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ॥५५
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शरवृष्टिभिः । खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ॥५६
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् । असुरान्भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ॥५७
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे । विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ॥५८
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः । केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ॥५९
निरन्तरशरौघेण कृत्ताः केचिद्रणाजिरे । शैलानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ॥६०
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे । शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ॥६१
विच्छिन्नजंघास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः । एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः ॥६२
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः । कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ॥६३
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः । कबन्धश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ॥६४
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः । रुधिरौघविलुप्तांगाः संग्रामे लोमहर्षणे ॥६५

और उन्होंने परशु, भिन्दीपाल, तलवार और पट्टिश (आदि आयुध सम्पन्न होकर) युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया । इस प्रकार देवी की शक्ति से बढ़े हुए वे गण असुरों का नाश करते हुए, उस युद्ध रूपी महोत्सव में, अन्य गण नगाड़े, शंख और मृदंग बजाने लगे ॥५४-५५॥

तदनन्तर देवी ने त्रिशूल, गदा, बाणों की वर्षा और खड्गादि से सैकड़ों महादैत्यों का संहार कर डाला ॥५६॥

और दूसरे असुरों को घंटे की ध्वनि से मूर्छित करके मार गिराया एवं अन्य बहुतेरे दैत्यों असुरों को पासों से बांध कर पृथ्वी पर खींचा ॥५७॥

कुछ के तो अपने तीक्ष्ण खड्ग के प्रहार से दो टुकड़े कर डाले, और कितने ही गदा के प्रहार से घायल होकर धरती पर सो गये ॥५८॥

और कुछ मूसल से अत्यधिक आहत होकर रुधिर का वमन करने लगे । कुछ शूल से वक्षस्थल के विदीर्ण होने से भूमि पर गिर पड़े ॥५९॥

और कुछ असुर उस युद्ध में निरंतर बाणों की वर्षा से कट गये । इस प्रकार देवताओं को पीड़ित करने वाले शैल का अनुकरण करने वाले वे दैत्यगण प्राणों को त्यागने लगे ॥६०॥

उनमें किसी की बाहें छिन्न हो गयीं, कुछ की गर्दन कट गयी, दूसरे असुरों के सिर कटकर गिरने लगे और कुछ मध्यभाग से विदीर्ण हुए ॥६१॥

जंघा कटे हुए कितने ही महादैत्य पृथ्वी पर गिर पड़े और कुछ को देवी ने एक बाहु, आँख और पैर वाला बना दिया तथा कुछ के दो टुकड़े कर दिये ॥६२॥

और दूसरे दैत्य सिर के कटने पर भी गिर गये और पुनः खड़े हो गये तथा उत्तम हथियार ग्रहण किये हुए वे कबन्ध देवी के साथ युद्ध करने लगे ॥६३॥

और वहाँ युद्ध में दूसरे (कबन्ध) युद्ध के तूर्य आदि बाजों की लय पर नाचने लगे और कितने ही अन्य खड्ग, शक्ति और ऋष्टि हाथों में लिए हुए, कटे हुए सिर वाले कबन्ध, कितने ही रुधिर समूह से लिप्त अंगों वाले अन्य महादैत्य उस रोमहर्षक संग्राम में, देवी को ठहरो, ठहरो, इस प्रकार कहते हुए, देवी के पीछे दौड़ते थे ॥६४-६५॥

पातितैरथ नागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा। अगम्या साऽभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥६६
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र विसुस्रुवुः। मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६७
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका। निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६८
स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः। शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥६९
देव्यागणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः। यथैनां तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥७०

इति श्रीमार्कंडेयमहापुराणे सार्वणिके मन्वन्तरे देवीमहात्म्ये महिषासुरसैन्यवधो नामेकोनाशीतितमोध्यायः।

तत्पश्चात् जहाँ वह महान् युद्ध हुआ, वहाँ की पृथ्वी देवी के द्वारा मार कर गिराये, हाथी, घोड़े और असुरों से अगम्य (चलने फिरने के अयोग्य) हो गयी ॥६६॥

असुरों की सेना के हाथी, घोड़े और असुरों के रक्त समूह से वहाँ शीघ्र ही बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने लगीं ॥६७॥

जगदम्बिका ने दैत्यों की उस विशाल सेना को क्षण भर में, इस प्रकार नष्ट कर दिया, जिस प्रकार अग्नि, तृण और काष्ठ समूह को क्षण भर में नष्ट कर देती है ॥६८॥

और अपने गर्दन के बालों को हिलाते हुए, वह सिंह, महानाद (जोर-जोर से गर्जन) करता हुआ देवताओं के शत्रुओं के शरीर से मानों प्राणों को चुन लेता था ॥६९॥

वहाँ उन महादैत्यों के साथ देवी के गणों ने भी ऐसा युद्ध किया, जिससे प्रसन्न होकर देवताओं ने स्वर्ग से पुष्प वृष्टि की ॥७०॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सार्वणिक मन्वन्तर में देवी महात्म्य में महिषासुर की सेना का वध नामक उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अशीतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच—

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः। सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥१
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः। यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥२
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्। जघान तुरगान्बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥३

ऋषि बोले—

तदनन्तर उस सेना को मारे जाते हुए देखकर, महादैत्य सेनापति चिक्षुर क्रोध से भर कर अम्बिका देवी से युद्ध के लिए आगे बढ़ा ॥१॥

उस असुर ने युद्ध में देवी के ऊपर बाणों की इस प्रकार वर्षा की जिस प्रकार बादल मेरु गिरि के शिर पर जल वर्षा करते हैं ॥२॥

तत्पश्चात् देवी ने खेल-खेल में उसके बाणों को अपने बाणों से काटकर, उसके घोड़ों और घोड़ों के नियन्ता (सारथि) को मार डाला ॥३॥

चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् । विव्याध चैनं गात्रेषु च्छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥४
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः । अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥५
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि । आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥६
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन । ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥७
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः । जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्ब त् ॥८
दृष्ट्वा तदा पतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत । तेन तच्छतधा नीतं शूलं स च महासुरः ॥९
हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ । आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥१०
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।
हुँकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥११
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः । चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥१२
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः । बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१३
युध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१४

और अत्यन्त ऊँची ध्वजा और धनुष को भी तत्काल काट डाला तथा छिन्न हुए धनुष वाले उसके अंगों को (अपने) बाणों से वेध दिया ॥४॥

टूटे धनुष वाला, रथ रहित, अश्व और सारथि के नष्ट हो जाने पर वह असुर, ढाल और तलवार लेकर उस देवी की ओर दौड़ा ॥५॥

तीक्ष्ण धार वाली तलवार से सिंह के सिर पर प्रहार करके, देवी की बायीं भुजा पर अति वेगपूर्वक प्रहार किया ॥६॥

हे राजन् ! उसकी वह तलवार देवी की भुजा के पास पहुँचते ही टूट गयी । तत्पश्चात् क्रोध से लाल नेत्रों वाले उसने शूल (हाथ में) ले लिया ॥७॥

और उसके बाद उस (शूल) को उस महादैत्य ने भद्रकाली के ऊपर फेंका । आकाश से गिरता हुआ (वह शूल) सूर्य बिम्ब के समान अपने तेज से प्रज्ज्वलित हो उठा ॥८॥

तब गिरते हुए शूल को देखकर देवी ने भी अपना शूल छोड़ा । देवी के उस शूल ने उसके शूल और उस महान् असुर को सैकड़ों टुकड़ों में विभक्त कर दिया ॥९॥

महिषासुर के सेनापति, महा पराक्रमी उस (चिक्षुर) के मर जाने पर, हाथी पर चढ़ा हुआ, देवताओं को पीड़ित करने वाला चामर दैत्य आया ॥१०॥

तदनन्तर उसने भी देवी के ऊपर शक्ति को छोड़ा, किन्तु अम्बिका ने उसको हुंकार मात्र से ही निष्प्रभ करके पृथ्वी पर गिरा दिया ॥११॥

भग्न हुई शक्ति को गिरती देखकर, क्रोधित चामर ने शूल फेंका; उसे भी देवी ने बाण से काट डाला ॥१२॥

इसके पश्चात् (देवी का वाहन) सिंह उछल कर हाथी के मस्तक पर स्थित हो गया और उस देवशत्रु के साथ बाहु युद्ध से लड़ने लगा ॥१३॥

इसके बाद वे दोनों युद्ध करते-करते उस हाथी के ऊपर से पृथ्वी पर आ गये और अत्यन्त क्रोध में भरकर परस्पर बड़े भयंकर प्रहार करते हुए, युद्ध करने लगे ॥१४॥

ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा । करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक् कृतम् ।।१५
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः । दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ।।१६
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् । बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ।।१७
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् । त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ।।१८
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः । दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।।१९
"कालं च कालदण्डेन कालरात्रिरपातयत् । उग्रदर्शनमत्युग्रैः खड्गपातैरताडयत् ।।
असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सा रणोत्सवे । गणैः सिंहेन देव्या च जयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः" ।।२०
एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः । माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ।।२१
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लाङ्गूलताड्रितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान् ।।२२
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च । निश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ।।२३
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः । सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ।।२४

तत्पश्चात् सिंह ने वेग पूर्वक आकाश में उछल कर और (ऊपर से) गिरकर, अपने पंजों के प्रहार से चामर का सिर धड़ से अलग कर दिया ।।१५।।

और उदग्र भी रणभूमि में देवी (के हाथ) से वृक्ष और शिला आदि से मारा गया और कराल (नामक-दैत्य) भी दाँत, मुक्कों और थप्पड़ों की चोट से मारा गया ।।१६।।

क्रुद्ध हुई देवी ने गदा के प्रहार से उद्धत का कचूमर निकाल दिया । भिन्दीपाल (आयुध) से वाष्कल को और बाणों से ताम्र तथा अंधक को, ।।१७।।

तथा उग्रास्य (भयंकर मुख वाले) उग्रवीर्य और महाहनु (नामक दैत्य) को भी, तीन नेत्रों वाली परमेश्वरी ने अपने त्रिशूल से मार डाला ।।१८।।

विडाल (नामक) दैत्य का सिर, तलवार के प्रहार से, शरीर से अलग कर दिया । दुर्धर और दुर्मुख इन दोनों को भी बाणों के द्वारा यमलोक भेज दिया ।।१९।।

काल को कालदण्ड से मार गिराया और उग्रदर्शन (नामक दैत्य) को तलवार के अत्यन्त भयंकर प्रहार से मारा । असिलोमा को भी तलवार से ही रणोत्सव में काट डाला, इस प्रकार देवी के गणों और सिंह ने रणोत्सव से जयहिंद नाद किया ।।२०।।

इस प्रकार अपनी सेना के संहार होने पर, महिषासुर महिष (भैंसे का रूप) का धारण करके उन गणों को पीड़ित करने लगा ।।२१।।

किन्हीं को नथुनों के प्रहार से और अन्यों को खुरों की मार से, कुछ को पूंछ से मारकर एवं सींगों से फाड़कर ।।२२।।

और कुछ को वेग से, किन्हीं को सिंहनाद और चक्कर देकर और अन्यों को अपने श्वाँस की वायु से धराशायी कर दिया ।।२३।।

इस प्रकार (देवी के) गणों को गिराकर वह असुर महादेवी के सिंह को मारने के लिए दौड़ा । इससे अम्बिका को बड़ा क्रोध आया ।।२४।।

सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः । श्रृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥२५
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत। लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥२६
धुतश्रृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं-खण्डं ययुघनाः।श्वासानिलास्ताःशतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥२७
इति क्रोधसमाध्यातमापतन्तं महासुरम् । दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥२८
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् । तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥२९
ततः सिंहोऽभवत् सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः । छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः । तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥३१
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च । कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥३२
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुराश्रितः । तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३३
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् । पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥३४
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः। विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ॥३५

महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोध में भरकर धरती को खुरों से खोदने लगा और अपने सींगों से बड़े-बड़े पर्वतों को उठाकर फेंकने लगा और गर्जने लगा ॥२५॥

उसके वेग पूर्वक भ्रमण से पृथ्वी क्षुब्ध होकर फटने लगी। और पूँछ के प्रहार से समुद्र में चारों ओर (पृथ्वी को) डुबोने लगा ॥२६॥

काँपते हुए सींगों के आघात से बादल टुकड़े-टुकड़े होकर छितर गये। उसके श्वाँस की वायु से सैकड़ों पर्वत आकाश से गिरने लगे ॥२७॥

इस प्रकार क्रोध से भरे हुए उस महा असुर को अपनी ओर आते देखकर, उस चण्डी देवी ने उसके वध के लिए महान् क्रोध किया ॥२८॥

उस (देवी) ने पाश फेंककर उस महादैत्य को बांध लिया। उस महापाश में बंध जाने पर उसने भी उस युद्ध क्षेत्र में भैंसे का रूप त्याग दिया ॥२९॥

उसके बाद तत्काल सिंह हो गया जब तक अम्बिका उसके सिर को (तलवार से) काटती तब तक वह तलवार हाथ में धारण किये हुए पुरुष रूप में दिखायी पड़ा ॥३०॥

तदनन्तर बाणों के द्वारा देवी ने ढाल, तलवार के साथ उस पुरुष को भी काट डाला, उसके बाद उसने महान् गजराज का रूप धारण कर लिया ॥३१॥

और अपनी सूंड से उस भयंकर सिंह को खींचने लगा तथा गर्जने लगा। उसी समय देवी ने तलवार से उसकी सूंड को काट डाला ॥३२॥

तब उस महादैत्य ने पुनः भैंसे का शरीर धारण कर लिया और वह उसी प्रकार से चराचर प्राणियों सहित तीनों लोकों को पीड़ित करने लगा ॥३३॥

तब क्रुद्ध हुई जगत् माता चंडिका ने उत्तम पान पिया और लाल नेत्रों वाली वह बार-बार अट्टहास करने लगी ॥३४॥

वह असुर भी बल और पराक्रम से उन्मत्त होकर गर्जने लगा और अपने दोनों सींगों से चण्डिका की ओर पर्वतों को फेंकने लगा ॥३५॥

सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः। उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥३६

देव्युवाच—

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्। मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥३७

ऋषिरुवाच—

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्। पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥३८

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः। अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥३९

अर्द्धनिष्क्रांत एवासौ युध्यमानो महासुरः। तया महासिना देव्या शिरश्छित्वा निपातितः ॥४०

एवं स महिषो नाम सैन्यः ससुहृद्गणः। त्रैलोक्यं मोहयित्वा तु तया देव्या विनाशितः ॥४१

त्रैलोक्यस्थैस्तदा भूतैर्महिषे विनिपातिते। जयेत्युक्तं ततः सर्वैः सदेवासुरमानवैः ॥४२

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यंननाशयत्। प्रहर्षं च परं जग्मुः सकलादेवतागणाः ॥४३

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः। जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नामाशीतितमोऽध्यायः।

और वह (देवी) अपने बाणों के समूहों से पर्वतों को चूर्ण करती हुई उससे बोली—बोलते समय उसका मुख मधु के मद से लाल हो रहा था और वाणी लड़खड़ा रही थी ॥३६॥

देवी बोली—

ओ मूढ़, तू क्षण भर के लिए तब तक गर्ज ले जब तक मैं मधु पीती हूँ। मेरे द्वारा यहीं पर तेरा वध होने पर शीघ्र ही देवता भी गर्जना करेंगे ॥३७॥

ऋषि ने कहा—

यह कहकर उछलकर वह देवी उस महादैत्य के ऊपर चढ़ बैठी और फिर पैर से आक्रमण कर शूल से इसके कण्ठ पर आघात किया ॥३८॥

उसके बाद उनके पैर से दबा हुआ होने पर भी वह अपने मुख को अभी आधा ही निकाल पाया था कि देवी ने अपने प्रभाव से वशीभूत कर दिया ॥३९॥

आधा निकला हुआ ही युद्ध करते हुए वह महादैत्य उस देवी की महान् तलवार से सिर कट कर भूमि पर गिरा दिया गया ॥४०॥

इस प्रकार उस महिषा नामक दैत्य का सेना और सुहृद गणों सहित, तीनों लोकों को मोहित करके, उस देवी के द्वारा नष्ट कर दिया गया ॥४१॥

तब महिषासुर के मर कर भूमि पर गिर जाने पर, तीनों लोकों के प्राणियों एवं सभी देवताओं और मानवों ने जय-जय कार किया ॥४२॥

तदनन्तर दैत्यों की सम्पूर्ण सेना हाहाकार करती हुई, नष्ट हो गयी और सभी देवताओं के समूह अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥४३॥

देवताओं ने दिव्य महर्षियों के साथ उस देवी का स्तवन किया और गन्धर्व राजों ने गान और अप्सराओं ने नृत्य किया ॥४४॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में देवी माहात्म्य में महिषासुर वध नामक अस्सीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकाशीतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच—

ततः सुरगणाः सर्वे देव्या इन्द्रपुरोगमाः । स्तुतिमारेभिरे कर्तुं निहते महिषासुरे ॥१

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।

तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरां सा वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥२

देवा ऊचुः—

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।

तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥३

यस्याः प्रभावमतुलं भगवानन्तो ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।

सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥४

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।

श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्यलज्जा तां त्वां नताः स्म परिपालय देवी विश्वम् ॥५

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत् किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि ।

किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६

ऋषि बोले—

तत्पश्चात् महिषासुर के मारे जाने पर इन्द्र को आगे करके सभी देवताओं ने देवी की स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१॥

देवी द्वारा अत्यन्त पराक्रमी, दुरात्मा (महिषासुर) और असुरों की सेना के मारे जाने पर, हर्ष के कारण सुन्दर देहों पर रोमांच से युक्त, नम्रता से सिर को झुकाकर प्रणाम करके, इन्द्रादि देवताओं ने उस देवी का स्तवन किया ॥२॥

देवता बोले—

सम्पूर्ण देव के शक्ति समूह से युक्त रूप वाली, जिस देवी ने इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है। सभी देवर्षियों द्वारा पूजित उस अम्बिका को हम भक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं। वह हम सबका कल्याण करे ॥३॥

जिसके अतुल प्रभाव और बल को कथन करने में भगवान् शेषनाग, ब्रह्मा और महादेव भी समर्थ नहीं हैं। वह भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत् का पालन करने के लिए एवं अशुभभय के नाश का विचार करे ॥४॥

और जो पुण्यात्माओं के घरों में स्वयं ही लक्ष्मी रूप में और पापियों के लिए दरिद्रता रूप में एवं शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदयों में बुद्धि रूप में और सत्पुरुषों में श्रद्धा तथा कुलीन मनुष्यों में लज्जा रूप से निवास करती है, इस प्रकार की तुमको हम नमस्कार करते हैं। हे देवि ! विश्व का पालन करो ॥५॥

हे देवी ! तुम्हारे इस अचिन्त्य रूप का, असुरों का नाश करने वाले भारी पराक्रम का तथा समस्त देवताओं और दैत्यों के समक्ष युद्ध में प्रकट किये हुए तुम्हारे अद्भुत चरित्रो का हम किस प्रकार वर्णन करें ॥६॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ।।७
यस्याः समस्तसुरताः समुदीरणेन तृप्तिं प्रयान्ति सकलेषु मखेषु देवि ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतुरुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ।।८
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवी ।।९
शब्दात्मिका सुविमलर्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय वार्त्तासि सर्वजगतां परमार्त्तिहन्त्री ।।१०
मेधासि देवी विदिताखिलशास्त्रसारा दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ।।११
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्रबिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरूषा तथापि वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ।।१२

आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति में कारण हैं। तीनों गुणों से युक्त होने पर भी दोषों के साथ तुम्हारा संसर्ग नहीं जान पड़ता भगवान् विष्णु और शिव भी तुम्हारा पार नहीं पा सकते। तुम्हीं इस सम्पूर्ण जगत् का आश्रय हो और यह जगत् तुम्हारा अंशभूत है, क्योंकि तुम सबकी आदि भूत अव्याकृता परा प्रकृति हैं ।।७।।

हे देवी ! जिसके उच्चारण से सब देवता (यज्ञों में) तृप्ति लाभ करते हैं। सभी के मुखों में वह स्वाहा तुम्हीं हो और तुम्हीं पितृगणों की तृप्ति का कारण हो। अतः सभी लोग तुम्हारा ही स्वधा (पद) से उच्चारण करते हैं ।।८।।

हे देवि ! तुम्हीं मोक्ष प्राप्ति का साधन हो, अचिन्त्य महाव्रत स्वरूपा हो, जितेन्द्रिय तत्त्व को ही सार वस्तु मानने वाले, समस्त दोषों से रहित, मोक्ष की अभिलाषा वाले मुनिजन जिसका अभ्यास (ध्यान) करते हैं, वह भगवती परा विद्या तुम्हीं हो ।।९।।

हे देवि ! तुम शब्द स्वरूपा हो, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्गीथ के मनोहर पदों के पाठ से युक्त सामवेद का आधार भी तुम्हीं हो। तुम त्रयी (वेदत्रयी) और ऐश्वर्य शालिनी तुम्हीं हो। इस संसार की उत्पत्ति एवं पालन के लिए तुम्हीं कर्त्ता रूप में प्रकट हुई हो और तुम्हीं सम्पूर्ण जगत् की घोर पीड़ा का हनन करने वाली हो ।।१०।।

देवि, जिससे समस्त शास्त्रों के सार का ज्ञान होता है वह मेधा शक्ति तुम्हीं हो। दुर्गम भय सागर से पार उतरने वाली नौका रूपी दुर्गा देवी भी तुम्हीं हो। तुम्हारी कहीं भी आसक्ति नहीं है। कैटभ राक्षस के शत्रु भगवान् विष्णु के वक्षस्थल पर निवास करने वाली एक मात्र भगवती लक्ष्मी और चन्द्रमा को मुकुट रूप में प्रयोग करने वाले शिव द्वारा सम्मानित गौरी देवी भी तुम्हीं हो ।।११।।

यद्यपि तुम्हारा मुख मंद मुस्कान से युक्त निर्मल पूर्ण चन्द्र बिंब का अनुकरण करने वाला और उत्तम स्वर्ण की कान्ति के समान कमनीय है तथापि यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उसको देखकर महिषासुर को क्रोध हुआ और उसने सहसा उस पर प्रहार कर दिया ।।१२।।

दृष्ट्वा तु देवी कुपितं भ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१३
देवी प्रसीद परमा भवती भवाय सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेतन्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१४
ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां तेषां यशांसि न च सीदति बन्धुवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१५
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्माण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादाल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१६
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥१७
एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१८

हे देवी ! (वही मुख) जब क्रोध से युक्त होकर उगते हुए, चन्द्रमा की भाँति लाल और तनी हुई भौहों से युक्त होकर विकराल हो उठा, ऐसी उस छवि को देखकर महिषासुर के प्राण शीघ्र ही नहीं निकले, यह उससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात है क्योंकि क्रुद्ध यम राज को देखकर कौन जीवित रह सकता है ? ॥१३॥

हे देवि ! तुम प्रसन्न होओ। परमात्म स्वरूपा तुम्हारे प्रसन्न होने पर जगत् का अभ्युदय होता है। क्रोध से भर जाने पर तुम तत्काल ही कितने कुलों का सर्वनाश कर डालती हो। यह बात अभी ज्ञात हुई है क्योंकि महिषासुर की यह विशाल सेना क्षण भर में तुम्हारे क्रोध से नष्ट हो गयी है ॥१४॥

सदैव अभ्युदय प्रदान करने वाली तुम जिस पर प्रसन्न रहती हो। वे ही जनपदों में सम्मानित है, उन्हीं को धन एवं यश की प्राप्ति होती है। उनका बन्धुवर्ग कभी पीड़ित नहीं होता, पुत्र, भृत्य और पत्नी को प्राप्त किये हुए, वे ही धन्य हैं ॥१५॥

हे देवी ! तुम्हारी कृपा से पुण्यात्मा पुरुष अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक सदैव सब प्रकार के धर्मानुकूल कर्म करता है और फिर स्वर्ग लोक जाता है। इसलिए तुम तीनों लोकों में निश्चय ही मनो वाञ्छित फल देने वाली हो ॥१६॥

माँ दुर्गे ! स्मरण की गयी तुम सभी प्राणियों का भय हर लेती हो और स्वस्थ पुरुषों द्वारा चिंतन करने पर उन्हें परम कल्याण मयी बुद्धि प्रदान करती हो। दुःख, दरिद्रता और भय को हरने वाली तुम्हारे सिवा दूसरी कौन हैं जो दूसरों को उपकार करने के लिए सदैव आर्द्र चित्त रहती हो ॥१७॥

हे देवी ! इन राक्षसों को मारने से संसार को सुख प्राप्त हो तथा ये राक्षस चिरकाल तक नरक में रहने के लिए भले ही पाप करते रहे हों। इस संग्राम में मृत्यु प्राप्त करके, स्वर्ग लोक में जायें निश्चय ही तुम यह सोचकर शत्रुओं का वध करती रही हो ॥१८॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽति साध्वी ॥१९
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्डयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवी शीलं रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्ट्वा त्वय्येव देवी वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२२
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२३
शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके । घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्या निःस्वनेन च ॥२४
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे । भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२५

तुम जो शत्रुओं पर शस्त्रों से प्रहार करती हो सभी असुरों को दृष्टिपात से ही भस्म क्यों नहीं करती (इसमें भी एक रहस्य है) शत्रु भी शस्त्रों से पवित्र होकर स्वर्ग लोक में जाएँ इस प्रकार उनके प्रति भी तुम्हारा उत्तम विचार रहता है ॥१९॥

खड्ग के तेज पुञ्ज से निकलती हुई भयंकर किरणों से और त्रिशूल के अग्रभाग से निकलने वाले कान्ति समूह के देखने से असुरों की आँखें फूट नहीं गयीं (उसमें भी कारण था) कि वे मनोहर रश्मियों से युक्त चन्द्रमा के समान आनन्द प्रदान करने वाले तुम्हारे इस सुन्दर मुख का दर्शन करते थे ॥२०॥

हे देवि ! तुम्हारा शील, दुराचारियों के बुरे कर्मों का शमन करने वाला है और तुम्हारा यह रूप अचिन्त्य और अनुपम है । तुम्हारा बल तो उनको भी मारने वाला है जो देवताओं के पराक्रम को भी नष्ट कर चुके थे । इस प्रकार तुमने शत्रुओं पर भी दया ही प्रकट की है ॥२१॥

हे वर दायिनी देवी ! तुम्हारे इस पराक्रम की किससे उपमा की जा सकती है ? शत्रुओं को भय प्रदान करने वाला अतीव मनोहारी रूप भी कहाँ मिल सकता है । हृदय में कृपा और युद्ध में निष्ठुरता, तीनों भुवनों में भी केवल तुम्हीं में देखी गयी है ॥२२॥

शत्रुओं का नाश करके, तुमने इस सम्पूर्ण तीनों लोकों की रक्षा की है और उन शत्रुओं को भी समरांगण में मारकर स्वर्ग लोक में पहुँचाया है तथा उन्मत्त दैत्यों से प्राप्त होने वाले हमारे भय को भी दूर किया है । तुम्हें नमस्कार है ॥२३॥

हे देवि ! हमारी शूल से रक्षा करो । हे अम्बिके ! खड्ग से भी हमारी रक्षा करो । घंटे की ध्वनि और धनुष की टंकार से भी तुम हमारी रक्षा करो ॥२४॥

हे चण्डिके ! तुम पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा में हमारी रक्षा करो और हे ईश्वरि ! अपने शूल को घुमाकर उत्तर दिशा में भी हमारी रक्षा करो ॥२५॥

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यन्तघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ।।२६
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके। करपल्लवसंगीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ।।२७

ऋषिरुवाच —

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः । अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ।।२८
भवत्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूपैः सुधूपिता । प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ।।२९

श्री देव्युवाच —

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवांछितम् । ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता ।।३०
कर्त्तव्यमपरं यच्च दुष्करं तन्न विद्महे । इत्याकर्ण्य वचो देव्याः प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः ।।३१

देवा ऊचुः—

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते । यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।।३२
यदि चापि वरो देयस्त्वयाऽस्माकं महेश्वरि । संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसीथाः परमापदः ।।३३
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने । तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।।
बृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ।।३४

और तीनों लोकों में तुम्हारे जो सौम्य एवं अत्यन्त भयंकर रूप विचरण करते हैं। उनसे भी तुम हमारी एवं इस भू लोक की रक्षा करो ।।२६।।

हे अम्बिके ! तुम्हारे पल्लवरूपी कर में शोभा पाने वाले जो खड्ग, शूल, गदा आदि अस्त्र हैं, उनसे तुम सब ओर से हमारी रक्षा करो ।।२७।।

ऋषि बोले—

इस प्रकार जब देवताओं ने जगन्माता दुर्गा की स्तुति की । नन्दन वन के दिव्य पुष्पों एवं गन्धचंदन आदि से उनका पूजन किया ।।२८।।

फिर सभी देवताओं ने भक्ति पूर्वक दिव्य धूपों से धूप दी, तब देवी ने प्रसन्न मुख से प्रणाम करते हुए सभी देवताओं से कहा—।।२९।।

श्री देवी बोली—

हे देवताओं ! तुम सब हमसे जिस वस्तु की अभिलाषा करते हो, उसे माँगों । इन स्तोत्रों से पूजी गयी मैं प्रसन्न होकर वह वस्तु प्रदान करूँगी ।।३०।।

अन्य जो भी दुष्कर कार्य मेरे करने योग्य हो, जिसे हम नहीं जानते हैं। इस प्रकार देवी के वचनों को सुनकर, उन द्युलोक वासियों ने कहा—।।३१।।

देवता बोले—

भगवती ने सब कुछ कर दिया है, अब कुछ भी शेष नहीं है । कि हमारा शत्रु यह महिषासुर आपने मार दिया है ।।३२।।

हे महेश्वरि ! यदि फिर भी तुम हमें वर देना चाहती हो तो जब-जब हम तुम्हारा स्मरण करें (तब-तब दर्शन देकर) तुम हमारी परमापत्तियों को दूर किया करो ।।३३।।

हे अमलानने ! जो मनुष्य इन स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करे, उसके धन सम्पत्ति और स्त्री आदि की वृद्धि के लिए आप सदा हम पर प्रसन्न रहें ।।३४।।

ऋषिरुवाच—

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः । तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३५

इत्येतत् कथितं भूप संभूता सा यथा पुरा । देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥३६

पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् । वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥३७

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी । तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥३८

इति श्री मार्कंडेयमहापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी माहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नामैकाशीतितमोऽध्यायः ।

ऋषि ने कहा—

हे राजन् ! देवताओं द्वारा इस प्रकार से अपने तथा संसार के (कल्याण) के लिए, प्रसन्न हुई भद्र काली देवी 'तथाऽस्तु' इस प्रकार कह कर अन्तर्धान हो गयी ॥३५॥

हे भूपाल ! लोक त्रय का हित चाहने वाली वह देवी पूर्व काल में जिस प्रकार देवताओं के शरीर से उत्पन्न हुई थी, सब मैंने कह सुनाया ॥३६॥

पुनः दुष्ट दैत्यों एवं शुम्भ निशुम्भ के वध के लिये, संसार की रक्षा के लिये देवताओं का उपकार करने वाली, वह (देवी) जिस गौरी के शरीर से उत्पन्न हुई । उसको मैं तुमसे यथावत् कहता हूँ, वह आख्यान तुम मुझ से सुनो ॥३७-३८॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी माहात्म्य के अन्तर्गत इन्द्रादिस्तुतिनामक इक्यासीवां अध्याय समाप्त हुआ ।

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच—

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः । त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥१

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् । कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥२

तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च । अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥३

ऋषि ने कहा—

पूर्व काल में शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरों ने अपने बल के घमण्ड में आकर इन्द्र के यज्ञ भाग और तीनों लोकों का राज्य छीन लिया ॥१॥

और उन दोनों ने ही सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर, यम तथा वरुण के अधिकारों का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया ॥२॥

उन दोनों ने ही पवन, अग्नि के कर्मों एवं अन्यों के अधिकारों का भी स्वयं ही प्रयोग करना प्रारम्भ किया और इस प्रकार वह शासन करता था ॥३॥

ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः। हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ॥४
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरंत्यपराजिताम्। तयाऽस्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताऽखिलाः ॥
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥५
इतिकृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्। जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥६

देवा ऊचुः—
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः। नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥७
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्य्यै धात्र्यै नमो नमः। नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥८
ज्योत्स्नायै चन्द्ररूपिण्यै सुखायै सततं नमः। कल्याण्यै प्रणतामृद्धयै सिद्धयै कूर्म्यै नमो नमः ॥९
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः। दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ॥
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥१०
अतिसौम्यातिरौद्रायै नमस्तस्यै नमो नमः। नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥११
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१२

तत्पश्चात अपमानित, राज्यभ्रष्ट, पराजित और अधिकार रहित सभी देवताओं को उन दोनों ने स्वर्ग से निकाल दिया। (उसके बाद) उन दोनों महान् असुरों से (तिरस्कृत) देवताओं ने अपराजित उन (दुर्गा) देवी का स्मरण किया और सोचा कि उन देवी ने हमें वरदान दिया था कि आपत्ति काल में स्मरण करने पर मैं तुम्हारी सम्पूर्ण विपत्तियों को तत्काल नष्ट कर दूंगी ॥४-५॥

इस प्रकार विचार करके देवता पर्वतराज हिमालय पर गये, वहां पहुँचने के बाद भगवान् विष्णु की माया देवी की स्तुति करने लगे ॥६॥

देवता बोले—

देवी को नमस्कार है, महादेवी शिवा को निरन्तर नमस्कार है, प्रकृति एवं भद्रा को नमस्कार है, नियम-पूर्वक उस माँ जगदम्बा को नमस्कार है ॥७॥

रौद्रा को नमस्कार है। नित्या, गौरी और धात्री को बारम्बार नमस्कार है। जगत की प्रतिष्ठा करने वाली देवी कृत्या को नमस्कार है ॥८॥

ज्योत्सनामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुख स्वरूपा देवी को सतत प्रणाम है। नमस्कार करने वालों को कल्याण देने वाली ऋषि सिद्धि स्वरूपा देवी को हम बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥९॥

नैर्ऋति, पर्वतों की लक्ष्मी, शर्वाणी स्वरूपा जगदम्बा को बारम्बार प्रणाम है। दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकट से पार उतारने वाली), सारा (सबकी सार-तत्त्व रूप) सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा तथा धूम्रा देवी को सतत प्रणाम है ॥१०॥

अत्यन्त सौम्य एवं अत्यन्त रौद्ररूप वाली देवी को हम नमस्कार करते हैं। उसको हमारा बारम्बार प्रणाम है। जगत् की आधारभूता कृति देवी को बार-बार नमस्कार है ॥११॥

जो देवी सभी प्राणियों में विष्णु माया इस नाम से कही जाती है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बारम्बार नमस्कार है ॥१२॥

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१३
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१४
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१५
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१६
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१७
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१८
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥१९
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२०
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२१
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता। नमरतस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२२
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२३

जो देवी सभी प्राणियों की चेतना इस नाम से कहलाती है, उसको नमस्कार है, उसको नमस्कार है, उसको बारम्बार नमस्कार है ॥१३॥

जो देवी सभी प्राणियों में बुद्धि रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बारम्बार नमस्कार है ॥१४॥

जो देवी सभीं प्राणियों में निद्रा रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बारम्बार नमस्कार है ॥१५॥

जो देवी सभी प्राणियों में क्षुधा रूप में स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बारम्बार नमस्कार है ॥१६॥

जो देवी सभी प्राणियों में छाया रूप से रहती है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥१७॥

जो देवी सभी प्राणियों में शक्ति रूप से स्थित है, उसको नमस्कार है, उसको नमस्कार है, उसको बार-बार नमस्कार है। १८॥

जो देवी सभी प्राणियों में तृष्णा रूप में स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥१९॥

जो देवी सभी प्राणियों में क्षमा रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२०॥

जो देवी सभी प्राणियों में जाति रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२१॥

जो देवी प्राणियों में लज्जा रूप से स्थित है। उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२२॥

जो देवी सभी प्राणियों में शान्ति रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार. उसको बार-बार नमस्कार है ॥२३॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२४
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२५
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२६
या देवी सर्वभूतेषु धृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२७
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२८
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥२९
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३०
या देवी सर्वभूतेषु नीतिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३१
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३२
या देवी सर्वभूतेषु पुष्टिरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३३
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता । नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३४

जो देवी सभी प्राणियों में श्रद्धा रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२४॥

जो देवी सभी प्राणियों में कान्ति रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२५॥

जो देवी सभी प्राणियों में लक्ष्मी रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२६॥

जो देवी सभी प्राणियों में धैर्य रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२७॥

जो देवी सभी प्राणियों में वृत्ति रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२८॥

जो देवी सभी प्राणियों में स्मृति रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥२९॥

जो देवी सभी प्राणियों में दयारूप से स्थित है। उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार ॥३०॥

जो देवी सभी प्राणियों में नीति रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥३१॥

जो देवी सभी प्राणियों में तुष्टि रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥३२॥

जो देवी सभी प्राणियों में पुष्टि रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥३३॥

जो देवी सभी प्राणियों में मातृ रूप से स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥३४॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३५
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानामखिलेषु या। भूतेषु सततं व्याप्तौ देव्यै नमो नमः ॥३६
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥३७

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी शुभानी भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥३८
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥३९

ऋषिरुवाच —

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती। स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥४०

साऽब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥४१

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः। देवैः समस्तैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥४२
शरीरकोशाद्यात्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका। कोशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥४३

जो देवी सभी प्राणियों में भ्रान्ति रूप से स्थित है। उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बार-बार नमस्कार है ॥३५॥

जो देवी सम्पूर्ण प्राणियों में, इन्द्रियों की अधिष्ठात्री (देवी) है। सब प्राणियों में सदैव व्याप्त रहने वाली, उस व्याप्ति देवी को बार-बार नमस्कार है ॥३६॥

जो देवी चिति (चैतन्य) रूप से इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित है, उसको नमस्कार, उसको नमस्कार, उसको बारम्बार नमस्कार है ॥३७॥

पूर्व काल में अपने अभिप्सित की (कार्य की पूर्ति) प्राप्ति होने के कारण, देवताओं के द्वारा स्तुति की गयी और इन्द्र के द्वारा बहुत दिनों तक जिसकी सेवा की गयी। वह कल्याण की साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मंगल करे और हमारी आपत्ति को नष्ट कर डाले ॥३८॥

उद्दण्ड दैत्यों के द्वारा पीड़ित हुए हम सभी देवताओं के द्वारा जिन ईश्वरी देवी को इस समय नमस्कार किया जा रहा है तथा भक्ति से विनम्र हुए पुरुषों के द्वारा स्मरण की गयी जो तत्काल ही (उनकी) सम्पूर्ण विपत्तियों का नाश कर देती है। वह हमारी सभी आपत्तियों से रक्षा करे ॥३९॥

ऋषि ने कहा —

हे राजन् (जहाँ) देवता इस प्रकार स्तुति कर रहे थे वहाँ पर पार्वती देवी गंगा जी के जल में स्नान करने के लिए आयीं ॥४०॥

उन्हीं के शरीर कोश से उत्पन्न हुई, सुन्दर भौंहों वाली वह शिवा देवी उन देवताओं से बोली— आपके द्वारा यहाँ किसकी स्तुति की जा रही है ॥४१॥

शुम्भ दैत्य से अपमानित और युद्ध में निशुम्भ (नामक असुर) से पराजित हुए, इन सभी देवताओं के द्वारा मेरी ही स्तुति की जा रही है ॥४२॥

क्योंकि उन पार्वती के शरीर कोश से अम्बिका देवी प्रादुर्भूत हुई थीं इसलिए सम्पूर्ण लोकों में उन्हें कौशिकी इस (नाम) से कहा जाता है ॥४३॥

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती। कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥४४
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्। ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥४५
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥४६
नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्। ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥४७
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा। सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥४८
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो। त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं तानि ते गृहे ॥४९
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्। पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥५०
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे। रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥५१
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्। किंजल्किनीं ददौ चाब्धिमीलामम्लानपङ्कजाम् ॥५२
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति। तथाऽयं स्यंदनवरो यः पुराऽऽसीत् प्रजापतेः ॥५३

वही पार्वती देवी उस (कौशिकी) के निकलने पर कृष्ण (वर्ण से युक्त शरीर वाली) हो गयीं अतः हिमालय पर निवास करने वाली वह कालिका देवी नाम से प्रसिद्ध हुईं ॥४४॥

तदनन्तर वहाँ पर आये हुए शुम्भ और निशुम्भ के सेवक चण्ड और मुण्ड ने परम मनोहर रूप धारण करने वाली अम्बिका देवी को देखा ॥४५॥

फिर उन दोनों ने शुम्भ (के पास आकर) कहा कि हे महाराज ! कोई अत्यन्त मनोहर स्त्री अपनी दिव्य कान्ति से हिमालय को प्रकाशित करती हुई स्थित है ॥४६॥

वैसा उत्तम रूप किसी ने कहीं भी नहीं देखा होगा। हे असुरेश्वर ! ज्ञात कीजिए, वह देवी कौन है ? और उसे ग्रहण कीजिए ॥४७॥

अत्यन्त सुन्दर अंगों वाली वह स्त्रियों में रत्न है और अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित कर रही है। हे दैत्येन्द्र ! अभी तो वह यहीं पर स्थित है, आप उसे देख सकते हैं ॥४८॥

हे प्रभो ! तीनों लोकों में जो मणि, हाथी, घोड़े आदि जितने भी रत्न हैं, वे सभी इस समय आपके घर में हैं ॥४९॥

ऐरावत के समान गजरत्न, यह पारिजात वृक्ष और उच्चैःश्रवा घोड़ा, ये सब आपने इन्द्र से लिए हैं ॥५०॥

और जो यह हंसों से युक्त अद्भुत विमान आपके आंगन में है और जो पहले ब्रह्मा के पास था, वह भी अब आपके पास लाया गया है ॥५१॥

और यह महापद्म नामक निधि आप कुबेर से ले आये हैं और समुद्र ने भी (आपको) कभी न मुर्झाने वाले कमलों की किञ्जल्किनी नामक माला दी है ॥५२॥

और स्वर्ण की वर्षा करने वाला वरुण का छत्र और वह उत्तम रथ जो पहले प्रजापति (ब्रह्मा) के पास था आपके घर में स्थित है ॥५३॥

मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता। पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥५४
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः। वह्निश्चापि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥५५
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते। स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ॥५६

ऋषिरुवाच—

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः। प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरः ॥५७

शुम्भ उवाच—

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम। यथा चाभ्येति संप्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु ॥५८
स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने। तां च देवीं ततः प्राहश्लक्ष्णं मधुरया गिरा ॥५९

दूत उवाच—

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः। दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥६०
अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु। निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ॥६१
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः। यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥६२

हे स्वामी ! मृत्यु से उत्क्रान्ति दिलाने वाली शक्ति भी आपने छीन ली है। जलों के स्वामी वरुण का पाश एवं समुद्र से उत्पन्न सभी प्रकार के रत्न भी आपके भाई निशुम्भ के अधिकार में हैं और अग्नि ने भी स्वतः शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपको भेंट दिये हैं ॥५४-५५॥

हे दैत्यराज ! इस प्रकार आपने सभी रत्न एकत्र कर लिये हैं। फिर सम्पूर्ण स्त्रियों में रत्नस्वरूप यह कल्याणी (देवी) आपके द्वारा किस कारण ग्रहण नहीं की जा रही है ॥५६॥

ऋषि ने कहा —

तब चण्ड मुण्ड के इन वचनों को सुनकर उस महादैत्य शुम्भ ने सुग्रीव को दूत बनाकर देवी के पास भेजा ॥५७॥

शुम्भ ने कहा —

मेरी आज्ञा से वहाँ जाकर तुम मेरी ओर से यह कहना और ऐसा उपाय करना, जिससे वह प्रसन्न होकर शीघ्र ही यहाँ आ जाए ॥५८॥

वह (दूत) जहाँ देवी मोजूद थी वहाँ पर्वत के अत्यन्त रमणीय प्रदेश में जाकर उस देवी से मधुर वाणी में कोमल वचन बोला— ॥५९॥

दूत ने कहा—

हे देवी ! दैत्यराज शुम्भ ही तीनों लोकों के परमेश्वर हैं, मैं उन्हीं का भेजा हुआ दूत तुम्हारे समीप आया हूँ ॥६०॥

जिनकी आज्ञा सभी देव योनियों में अव्याहत है और जिसने सभी देवताओं को जीत लिया है, उन्होंने जो कहा उसको आप सुन लीजिए ॥६१॥

सम्पूर्ण तीनों लोक मेरे अधिकार में हैं और देवता भी मेरी आज्ञा के अधीन चलते हैं। सभी यज्ञों के भागों को मैं ही अलग-अलग भोगता हूँ ॥६२॥

त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः । तथैव गजरत्नं च हृतं देवेन्द्रवाहनम् ।।६३
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः । उच्चैःश्रवससंज्ञं तु प्रणिपत्य समर्पितम् ।।६४
यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च । रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ।।६५
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् । सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ।।६६
मां वा ममानुजंवापि निशुम्भमुरुविक्रमम् । भज त्वं चञ्चलापांगि रत्नभूताऽसि वै यतः ।।६७
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् । एतद् बुद्धया समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ।।६८

ऋषिरुवाच —

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तः स्मिता जगौ । दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ।।६९
सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ।।७०
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् । श्रूयतामल्पबुद्धित्वात् प्रतिज्ञा या कृता पुरा ।।७१
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति । यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति ।।७२

जैसे कि तीनों लोकों के सर्वोत्तम रत्न मेरे अधिकार में हैं उसी प्रकार हाथियों में रत्न स्वरूप देवराज इन्द्र का वाहन भी मेरे अधिकार में है ।।६३।।

क्षीर सागर के मंथन से उत्पन्न हुआ उच्चैःश्रवा नाम का वह अश्व-रत्न भी देवताओं के द्वारा मुझको पैरों में पड़कर समर्पित कर दिया गया है ।।६४।।

हे शोभने ! इसके अतिरिक्त अन्य भी जो रत्नभूत पदार्थ देवताओं, गन्धर्वों और नागों के पास थे, वे सब अब मेरे पास ही हैं ।।६५।।

देवि, हम तुमको इस संसार की स्त्रियों में रत्न मानते हैं । अतः तुम हमारे पास आ जाओ, क्योंकि हम ही रत्नों का भोग करने वाले हैं ।।६६।।

हे चंचल अपांगों वाली ! क्योंकि तुम रत्न स्वरूप हो, इसलिए मुझको अथवा महा पराक्रमी मेरे छोटे भाई निशुम्भ को स्वीकार करो ।।६७।।

मेरे साथ विवाह करके तुम परम ऐश्वर्य प्राप्त करोगी । अपनी बुद्धि से विचार कर तुम मेरी पत्नी बन जाओ ।।६८।।

ऋषि बोले —

जब देवी से इस प्रकार कहा गया तो कल्याणमयी भगवती दुर्गा देवी जो इस संसार को धारण करती है, मन ही मन गम्भीर भाव से मुस्कराती हुई बोली ।।६९।।

तुमने सत्य ही कहा है, तुमने जो कहा है उसमें किञ्चिद् भी मिथ्या नहीं है । शुम्भ तीनों लोकों का स्वामी है और निशुम्भ भी उसी के समान पराक्रमी है ।।७०।।

किन्तु इस विषय में मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसको मिथ्या कैसे किया जाए । पूर्व काल में अल्प बुद्धि के कारण मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसको सुनो, ।।७१।।

जो मुझको संग्राम में जीत लेगा और जो मेरे दर्प को दूर कर देगा तथा संसार में जो मेरे समान बलवान् होगा वही मेरा पति होगा ।।७२।।

तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः। मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ।।७३

दूत उवाच—

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः। त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ।।७४

अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि। तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ।।७५

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे। शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् ।।७६

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः। केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ।।७७

श्री देव्युवाच—

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्। किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ।।७८

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः। तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ।।७९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूत संवादो नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः।

इसलिए शुम्भ अथवा महादैत्य निशुम्भ (स्वयं) यहाँ आयें और मुझे जीतकर शीघ्र ही मेरा पाणिग्रहण कर लें, इस विषय में विलम्ब की क्या आवश्यकता है ।।७३।।

दूत बोला—

देवि ! तुम घमण्ड में भरी हो। मेरे सामने तुम ऐसी बातें मत बोलो। तीनों लोकों में कौन व्यक्ति है, जो शुम्भ निशुम्भ के सामने ठहर सकता है ।।७४।।

हे देवि ! युद्ध में दूसरे (शुम्भ, निशुम्भ को छोड़कर) दैत्यों के सामने भी सारे देवता युद्ध में नहीं ठहर सकते हैं फिर तुम अकेली स्त्री उनके सामने कैसे ठहर सकती हो ? ।।७५।।

युद्ध में जिसके आगे इन्द्रादि सभी देवता नहीं ठहर पाते हैं। (उन) शुम्भ आदि के सामने तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी ? ।।७६।।

अतः तुम मेरे कहने से शुम्भ निशुम्भ के पास चलो अन्यथा केश खींचने के कारण गौरव खोकर भी वहाँ जाओगी ।।७७।।

श्री देवी बोली—

यह ऐसा ही है कि शुम्भ बलवान् है और निशुम्भ भी अति वीर्यवान् है लेकिन मैं क्या करूँ। पहले बिना सोचे समझे मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है ।।७८।।

अतः तुम जाओ, मैंने जो तुमसे कहा है दैत्यराज से वह सब आदरपूर्वक कह दो और वह जो उचित हो उसे करे ।।७९।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी माहात्म्य के अन्तर्गत देव्या दूत संवाद नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच—

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः । समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ।।१

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः । सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ।।२

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः । तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ।।३

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः । स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ।।४

ऋषिरुवाच—

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः । वृतः षष्टया सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ।।५

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् । जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ।।६

न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्त्तारमुपैष्यति । ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ।।७

श्री देव्युवाच—

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः । बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ।।८

ऋषि बोले—

देवी के इस प्रकार वचनों को सुनकर क्रोध से भरे हुए उस दूत ने दैत्यराज के पास जाकर विस्तारपूर्वक कह सुनाया।।१।।

तदनन्तर उस दूत के उन वचनों को सुनकर असुरों के राजा ने क्रुद्ध होकर दैत्यों के राजा धूम्रलोचन से कहा—।।२।।

हे धूम्रलोचन ! अपनी सेना को साथ लेकर तुम केशों के खींचने से व्याकुल हुई उस दुष्टा को शीघ्र ही बलपूर्वक यहाँ ले आओ ।।३।।

उसकी रक्षा करने के लिए यदि कोई दूसरा वहाँ उठ खड़ा हो, तो भले ही वह देवता, यक्ष या गन्धर्व ही क्यों न हो उसे अवश्य मार डालना ।।४।।

ऋषि बोले —

उससे आज्ञा प्राप्त करके वह धूम्रलोचन (नामक) दैत्य शीघ्र ही साठ हजार असुरों की सेना लेकर वेग से चल दिया ।।५।।

तत्पश्चात् उसने हिमालय पर स्थित उस देवी को देखकर उच्च स्वर से कहा—तुम शुम्भ, निशुम्भ की अधीनता में चलो ।।६।।

यदि तुम आज प्रसन्नतापूर्वक मेरे स्वामी के पास नहीं चलोगी तो मैं बालों को खींचने से विह्वल हुई तुमको बलपूर्वक (घसीटते) हुए ले जाऊँगा ।।७।।

श्री देवी बोली—

तुम दैत्यों के राजा के द्वारा भेजे गये हो और सैन्य बल से युक्त तुम स्वयं भी बलशाली हो। यदि तुम मुझको बलपूर्वक ले जाते हो तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ ।।८।।

ऋषिरुवाच—

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः । हुँकारेणैव तं भस्मसाच्चकाराम्बिका ततः ॥९
अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका । ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१०
ततो धुतसटः कोपात् कृत्वा नादं सुभैरवम् । पपातासुरसेनायां सिंहो देव्यास्तु वाहनः ॥११
कांश्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् । आक्रम्य च रणेनान्यान्निजघान महासुरान् ॥१२
केषांचित् पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी । तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१३
विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे । पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१४
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना । तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१५
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् । बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवी-केसरिणा ततः ॥१६
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः । आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥१७
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ । गच्छतं तत्र गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥१८

ऋषि बोले—

(देवी के द्वारा) इस प्रकार कहने पर वह असुर धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ा । उसके बाद अम्बिका ने हुंकार मात्र से ही उसको भस्मसात् कर दिया ॥९॥

तत्पश्चात् क्रुद्ध अम्बिका ने असुरों की विशाल सेना पर तीक्ष्ण बाणों, शक्ति एवं फरसों की वर्षा आरम्भ की ॥१०॥

उसके बाद क्रोध से भयंकर गर्जना करके, आयालों को हिलाता हुआ, देवी का वाहन सिंह असुरों की सेना में कूद पड़ा ॥११॥

कुछ असुरों को अपने पञ्जे के प्रहार से और दूसरों को मुख से और अन्य महादैत्यों को आक्रमण करके युद्ध द्वारा मार डाला ॥१२॥

और उस सिंह ने कितनों के पेट अपने नखों से फाड़ डाले और पंजा मारकर, कितनों के ही सिर धड़ से अलग कर दिये ॥१३॥

और उसने कितनों के ही बाहु और सिर अलग कर डाले, तथा हिलते हुए आयालों वाले उसने कुछ (दूसरे दैत्यों) के पेट से रक्तपान किया ॥१४॥

अत्यन्त क्रोध से युक्त, देवी के वाहन उस महान् आत्मा केसरी ने क्षण भर में ही दैत्यों की उस सम्पूर्ण सेना को नष्ट कर डाला ॥१५॥

तत्पश्चात् देवी द्वारा उस असुर धूम्रलोचन की मृत्यु के समाचार को सुनकर और देवी के सिंह के द्वारा सम्पूर्ण दैत्य सेना को नष्ट हुई सुनकर, ॥१६॥

(क्रोध से) काँपते हुए अधरों वाले दैत्याधिपति शुम्भ को बड़ा क्रोध आया और (उसने) चण्ड, मुण्ड (नामक) दो महादैत्यों को आज्ञा दी ॥१७॥

हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम दोनों बहुत बड़ी सेना लेकर जाओ और वहाँ जाकर उस (देवी) को शीघ्र ही, बालों से खींचकर अथवा बाँधकर (जैसे भी सम्भव हो) ले आओ ॥१८॥

केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि। तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥१९
तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ॥२०

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमहात्म्ये धूम्रलोचनवधो नाम त्र्याशीतितमोऽध्यायः ।

यदि तुमको (इस प्रकार लाने में) तनिक भी संदेह हो तो युद्ध में सब प्रकार के शस्त्रास्त्रों और समस्त आसुरी (सेना) का उपयोग करके उसे मार डालना ॥१९॥

उस दुष्टा की हत्या होने और सिंह के मारे जाने पर उस अम्बिका को पकड़कर और बाँधकर शीघ्र (यहाँ) आ जाओ ॥२०॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर के अन्तर्गत देवी माहात्म्य में धूम्रलोचनवध नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुरशीतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच—

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः । चतुरंगबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥१
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् । सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥२
ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः । आकृष्ट चापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥३
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति । कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥४
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकादद्रुतम् । काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥५

ऋषि ने कहा —

तदनन्तर आज्ञा पाकर आगे चले हुए वे चण्ड और मुण्ड आदि दैत्य चतुरंगिणी सेना के साथ अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर चल दिये ॥१॥

फिर पर्वतराज हिमालय के स्वर्णमय ऊँचे शिखर पर पहुँच कर, उन्होंने सिंह के ऊपर बैठी हुई स्मित हास्य वाली देवी को देखा ॥२॥

उसे देखकर उन्होंने उसको पकड़ने के लिए प्रयत्न किया । धनुष खींचे हुए, तलवार धारण किये हुए उसके समीप गये ॥३॥

तब अम्बिका ने उन शत्रु दैत्यों के प्रति बड़ा कोप किया । उस समय क्रोध से उनका मुख काला पड़ गया ॥४॥

उनकी भ्रकुटियों के कुटिल होने से तत्काल ही लाल विकराल मुख वाली काली देवी प्रकट हुई, असि और पाश धारण किये हुए ॥५॥

विचित्रखट्वांगधरा नरमालाविभूषणा । द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥६
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा । निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥७
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् । सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥८
पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहयोधघण्टसमन्वितान् । समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥९
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह । निःक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥१०
एकं जग्राह केशेषु ग्रावायामथ चापरम् । पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥११
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः । मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥१२
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् । ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥१३
असिनानिहताः केचित्केचित् खट्वाङ्गताडिताः । जग्मुर्विनाशमसुरा दंताग्राभिहता रणे ॥१४
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां निपातितम् । दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥१५
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः । छादयामास चक्रैश्च मुण्डक्षिप्तैः सहस्रशः ॥१६

विचित्र खट्वांग धारण किए हुए, नरमुण्डों की माला से विभूषित, चीते के चर्म वाले, परिधान को धारण किए हुए, मांस के सूखने से अत्यन्त भयंकर, ॥६॥

विशाल मुख वाली, जिह्वा के लपलपाने के कारण अत्यन्त भयंकर, धंसे हुए लाल नेत्रों वाली, गर्जना से सम्पूर्ण दिशाओं को व्याप्त कर देने वाली ॥७॥

महादैत्यों का वध करती हुई वह देवी, वेगपूर्वक दैत्यों की सेना पर टूट पड़ी और उस सेना का भक्षण करने लगी ॥८॥

(उसने) पार्श्व रक्षकों, अंकुशधारी महावतों योद्धाओं और घण्टे सहित कितने ही हाथियों को, एक हाथ से ही पकड़कर, मुँह में डाल लिया ॥९॥

उसी प्रकार घोड़े, रथ, सारथि सहित योद्धाओं को मुँह में डालकर उनको दाँतों से बड़े भयानक रूप से चबा डालती थी ॥१०॥

उसने एक को केशों से और दूसरे को गर्दन से पकड़ा तथा अन्य को पैरों से कुचल कर और किसी को छाती के धक्के से गिराकर (मार डाला) ॥११॥

और उन असुरों के द्वारा छोड़े हुए, बड़े-बड़े अस्त्रों को क्रुद्ध होकर मुख से पकड़ा और दाँतों से चबा डाला ॥१२॥

(इस प्रकार काली ने) बलवान् और दुरात्मा दैत्यों की उस सम्पूर्ण सेना को रौंद डाला और कुछ को खा लिया तथा अन्यों को मार भगाया ॥१३॥

(उनमें) कुछ दैत्यों को तलवार से मार डाला और कुछ को खट्वांग से पीट दिया (और) कितने ही असुर उस युद्ध में दाँतों के अग्रभाग से मृत्यु को प्राप्त हुए ॥१४॥

इस प्रकार असुरों की उस विशाल सेना को (उस देवी ने) क्षण भर में मार गिराया। (यह) देखकर चण्ड अत्यन्त भयानक उस काली देवी की ओर दौड़ा ॥१५॥

और महा असुर मुण्ड ने भी भयंकर वाणों की वर्षा से एवं सैकड़ों बार चलाये गये चक्रों से भयंकर नेत्रों वाली उस देवी को आच्छादित कर दिया ॥१६॥

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् । बभुर्यथाऽर्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ।।१७
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी । काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ।।१८
उत्थाय च महासिंहं देवी चण्डमधावत । गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ।।१९
छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रश्चक्रे नादं सुभैरवम् । तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम् ।।२०
अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् । तमप्यपातयद्‌भूमौ खट्वांगाभिहतं रुषा ।।२१
हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् । मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ।।२२
शिरश्चण्डस्य काली सा गृहीत्वा मौंडमेव च । प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ।।२३
मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू । युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ।।२४

ऋषिरुवाच—

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ । उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः ।।२५

उसके मुख में प्रवेश करते हुए वे अनेकों चक्र इस प्रकार प्रतीत हुए जैसे कि बहुत से सूर्यबिम्ब बादलों के उदर में प्रवेश कर रहे हों ।।१७।।

उसके बाद भयंकर गर्जना करने वाली उस देवी ने क्रोध में भरकर भयंकर अट्टहास किया । उस समय वे विकराल मुख के भीतर, कठिनता से देखे जा सकने वाले, दाँतों की प्रभा से अत्यन्त उज्ज्वल दिखाई देती थीं ।।१८।।

(तब) देवी महा सिंह के ऊपर खड़ी होकर चण्ड (असुर) की ओर दौड़ी और उसे बालों से पकड़कर अपनी तलवार से उसने उसका सिर काट दिया ।।१९।।

सिर कटने पर (उस) दैत्यराज (चण्ड) ने महा भयंकर शब्द किया । उस गर्जना से तीनों लोक बहुत अधिक व्याकुल हो गये ।।२०।।

उसके बाद चण्ड को मरा हुआ देखकर मुण्ड भी उस (देवी) की ओर दौड़ा (तब देवी ने) क्रोध में भरकर उसको भी खट्वांग के प्रहार से भूमि पर गिरा दिया ।।२१।।

तदनन्तर महापराक्रमी चण्ड और मुण्ड को मारा गया देखकर, बची हुई सेना भय से व्याकुल होकर चारों ओर भाग गयी ।।२२।।

(तब) वह काली देवी चण्ड और मुण्ड का मस्तक हाथ में लेकर चण्डिका के पास जाकर प्रचण्ड अट्टहास करते हुए बोली— ।।२३।।

मैंने चण्ड, मुण्ड (नामक) इन महापशुओं को तुम्हारी भेंट चढ़ा दिया है । अब तुम शुम्भ और निशुम्भ को स्वयं ही युद्ध रूपी यज्ञ में मारोगी ।।२४।।

ऋषि ने कहा —

तत्पश्चात् वहाँ लाये गये उन चण्ड और मुण्ड महा असुरों को देखकर, कल्याण प्रदान करने वाली चण्डी (देवी) ने काली से मधुर वाणी में कहा— ।।२५।।

श्री देव्युवाच—

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता। चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ।।२६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवी माहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम चतुरशीतितमोऽध्याय. ।

श्री देवी बोली—

हे देवी ! क्योंकि तुम चण्ड और मुण्ड को लेकर (मेरे) पास आयी हो इसलिए तुम संसार में चामुण्डा इस नाम से प्रसिद्धि पाओगी ॥२६॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी महात्म्य के अन्तर्गत चण्डमुण्डवध नामक चौरासीवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्याय:

ऋषिरुवाच—

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते । बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वर: ।।१

तत: कोपपराधीनचेता: शुम्भ: प्रतापवान् । उद्यागं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ।।२

अद्य सर्वबलैर्दैत्या: षडशीतिरुदायुधा: । कम्बूनां चतुराशीतिर्नियान्तु स्वबलैर्वृता: ।।३

कोटिवीर्याणि पन्चाशदसुराणां कुलानि वै । शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ।।४

कालका दौर्हृदा मौर्या: कालकेयास्तथासुरा: । युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ।।५

इत्याज्ञाप्यासुरपति: शुम्भो भैरवशासन: । निर्जगाम महासैन्यसहस्त्रैर्बहुभिर्वृत: ।।६

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् । ज्यास्वनै: पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ।।७

ऋषि बोले—

तत्पश्चात् चण्ड-मुण्ड नामक दैत्यों के मारे जाने पर और बहुत सी सेना के नष्ट हो जाने पर, क्रुद्ध चित्त वाले प्रतापी दैत्यराज शुम्भ ने, दैत्यों की सम्पूर्ण सेना को (युद्ध के लिए) उद्योग का आदेश दिया ॥१-२॥

(और कहा) आज शस्त्र उठाये हुए छियासी दैत्य (सेनापति अपनी) सेना के साथ, और अपनी सेना से घिरे हुए, कम्बु (नाम वाले) दैत्यों के चौरासी सेनापति प्रस्थान करें ॥३॥

और पचास करोड़ वीर्यकुल के और सौ धूम्रकुल के मेरी आज्ञा से प्रस्थान करें ॥४॥

तथा युद्ध के लिए तैयार हुए, कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय असुर भी मेरी आज्ञा से शीघ्र प्रस्थान करें ॥५॥

इस प्रकार आज्ञा देकर, भयंकर शासन करने वाले सहस्र संख्या वाली, विशाल सेना सहित असुरराज शुम्भ ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया ॥६॥

अत्यन्त भीषण उस सेना को आती हुई देखकर चण्डिका ने (अपने) धनुष की टंकार से पृथ्वी और आकाश के मध्य भाग को भर दिया ॥७॥

स च सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप । घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका चाप्यबृंहयत् ॥८
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा । निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥९
तन्निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् । देवी सिंहस्तथा काली शरोघैः परिवारिताः ॥१०
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् । भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥११
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः । शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥१२
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् । तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥१३
हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलुः । आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥१४
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी । महाहिवलया प्राप्ता चन्द्रलेखाविभूषणा ॥१५
कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना । योद्धमभ्याययौ दैत्यानम्बिकागु हरूपिणी ॥१६
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता । शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१७
जज्ञे वाराहमतुलं रूपं या बिभ्रती हरेः । शक्तिःसाप्याययौ तत्र बाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥१८

हे राजन् ! उस सिंह ने भी अतीव भयंकर गर्जना की और उस गर्जना को अम्बिका ने घंटे के शब्द से और भी बढ़ा दिया ॥८॥

धनुष की टंकार, सिंहनाद और घंटे की ध्वनि से दिशाएँ भर गयीं (उस समय) भयंकर शब्द से मुख को विशाल बनाए हुए, वह देवी विजयिनी हुई ॥९॥

उस भयंकर निनाद को सुनकर दैत्यों की सेनाओं ने देवी, सिंह और काली को (अपने) बाणों के समूह से घेर लिया ॥१०॥

हे राजन् ! इसी बीच दैत्यों के विनाश एवं देवताओं के अभ्युदय के लिये अत्यन्त बलयुक्त ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु और इन्द्र की शक्तियाँ उनके शरीर से निकल कर उन्हीं के रूप में चण्डिका के पास गयीं ॥११-१२॥

जिस देवता के जैसा रूप, आभूषण एवं वाहन हैं ठीक वैसे ही साधन सम्पन्न होकर (उन देवताओं की) शक्तियाँ असुरों से युद्ध करने के लिए आयीं ॥१३॥

(सर्व प्रथम) अक्षसूत्र और कमण्डल से युक्त हंसों वाले विमान पर बैठी हुई, ब्रह्माजी की शक्ति उपस्थित हुई उसे ब्राह्मणी कहा जाता है ॥१४॥

वृषभ पर चढ़ी हुई, उत्तम त्रिशूल धारण किये हुए, महानाग का कंकन पहने हुए चन्द्रलेखा से सुशोभित (शिव की शक्ति) माहेश्वरी वहाँ आयी ॥१५॥

गुह रूप वाली, शक्ति हाथ में धारण किये हुए, उत्तम मयूर के वाहन वाली कुमार (कार्तिकेय) की शक्ति दैत्यों से युद्ध करने के लिए आयी ॥१६॥

और उसी प्रकार शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग, धनुष और खड्ग हाथ में धारण किये हुए, गरुड़ के ऊपर बैठी हुई, भगवान् विष्णु की शक्ति भी वहाँ आयी ॥१७॥

और भगवान् विष्णु की जो शक्ति अतुल वराह रूप को धारण करती है, वह शक्ति भी वराह शरीर धारण किये हुए वहाँ उपस्थित हुई ॥१८॥

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः । प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥१६
वज्रहस्ता तथैवैंद्री गजराजोपरि स्थिता । प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥२०
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः । हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥२१
ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा । चण्डिकाशक्तिरत्युग्राशिवाशतनिनादिनी ॥२२
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता । दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥२३
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ । ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२४
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः । यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२५
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः । तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२६

यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता ॥२७

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः । अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२८

नृसिंह के समान शरीर को धारण करने वाली नृसिंह भगवान् की शक्ति जिनके गर्दन के बालों (आयालों) के क्षेपण से, नक्षत्र समूह को भी बिखेरती हुई आयीं ॥१६॥

उसी प्रकार गजराज (ऐरावत) पर बैठी हुई वज्र हाथ में लिए हुए, सहस्र नेत्रों से युक्त जैसा शक्र है वैसा ही उसका भी रूप था (युद्ध क्षेत्र) में आयी ॥२०॥

उसके पश्चात् उन देव शक्तियों से घिरी हुई चण्डिका से भगवान् शिव ने कहा—मेरी प्रसन्नता के लिए तुम शीघ्र ही उन असुरों का संहार करो ॥२१॥

तत्पश्चात् देवी के शरीर से सैंकड़ों गीदड़ियों के समान नाद (आवाज) करने वाली, अत्यन्त भयानक और परम उग्र चण्डिका शक्ति प्रकट हुई ॥२२॥

उस अपराजिता देवी ने, धूमिल जटा वाले शिव से कहा—हे भगवन्! आप दूत बनकर शुम्भ-निशुम्भ के पास जाइये ॥२३॥

और अत्यन्त गर्व युक्त, दैत्य शुम्भ-निशुम्भ और अन्य भी जो दानव वहाँ युद्ध के लिए उपस्थित हों, उनसे कहिये—॥२४॥

हे दैत्यों! यदि तुम जीवित रहने की इच्छा करते हो तो तुम सब पाताल में चले जाओ और तीनों लोकों का राज्य प्राप्त करो जिससे देवताओं को यज्ञ भाग की प्राप्ति हो ॥२५॥

और बल के घमण्ड के कारण यदि तुम सब युद्ध की अभिलाषा रखते हो तो आओ मेरी शिवाएँ (योगिनियाँ) तुम सबके माँस से तृप्त हों ॥२६॥

क्योंकि उस देवी ने स्वयं भगवान् शिव को दूत कार्य के लिए नियुक्त किया था, इसलिए इस लोक में वह शिव दूती इस नाम से प्रसिद्ध हुई ॥२७॥

वे असुर भी भगवान् शिव द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर क्रोध से भर गये और (उस स्थान पर) गये जहाँ कात्यायनी विराजमान थी ॥२८॥

ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः । ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥२९
सा च तत्प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् । चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३०
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् । खट्वांगपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥३१
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः । ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥३२
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी । दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३३
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः । पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३४
तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः । वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३५
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् । नारसिंही चचाराजौ नादापूर्ण दिगन्तरा ॥३६
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः । पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥३७
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् । दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३८
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् । योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥३९

तदनन्तर उद्धत क्रोध में भरकर दैत्यों ने पहले ही उस देवी के ऊपर बाण शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्रों की वर्षा करना प्रारम्भ कर दिया ॥२९॥

तब उस (देवी) ने भी (दैत्यों द्वारा) छोड़े गये । उन बाण, शूल, शक्ति और फरसों को अपने धनुष द्वारा छोड़े गये बड़े-बड़े बाणों द्वारा खेल-खेल में ही काट डाला ॥३०॥

और काली शूल के प्रहार से शत्रुओं को विदीर्ण करती हुई और खट्वाङ्ग से उनका कचूमर निकालती हुई उस (देवी) के आगे-आगे विचरण करने लगी ॥३१॥

और ब्रह्माणी भी जहाँ-जहाँ जाती थी (वहाँ-वहाँ पर) अपने कमण्डल के जल को छिड़क कर शत्रुओं को पराक्रम और ओज से रहित करने लगी ॥३२॥

माहेश्वरी ने त्रिशूल से, वैष्णवी ने चक्र से और उत्पन्न क्रुद्ध हुई कुमार की शक्ति कौमारी ने शक्ति से दैत्यों को मारा ॥३३॥

ऐन्द्री के वज्र के प्रहार से विदीर्ण होकर सैकड़ों दैत्य एवं दानव रक्त की धारा गिराते हुए, पृथ्वी पर गिर पड़े ॥३४॥

और वराह की मूर्ति (शक्ति) ने कुछ दैत्यों को थूथन के प्रहार से और कुछ को अपनी दाढ़ों के अग्र-भाग से वक्षस्थल पर प्रहार करके मार डाला और कुछ उनके चक्र से विदीर्ण होकर पृथ्वी पर गिर पड़े ॥३५॥

और नारसिंही भी नखों से विदीर्ण करती हुई और दूसरे दैत्यों को खाती हुई । सिंहनाद से दिशाओं को भरती हुई युद्ध क्षेत्र में विचरने लगी ॥३६॥

और शिवदूती के भयंकर अट्टहास से अत्यन्त भयभीत हुए कितने ही असुर पृथ्वी पर गिर पड़े, गिरे हुए उनको उसने खा डाला ॥३७॥

इस प्रकार क्रोध में भरे हुए, मातृगणों को, विविध प्रकार के उपायों से, महादैत्यों को मर्दन करते हुए देख कर, देवताओं के शत्रुओं (दैत्यों) के सैनिक भाग खड़े हुए ॥३८॥

मातृगणों से पीड़ित दैत्यों को युद्ध से भागते हुए देखकर रक्तबीज (नामक) महा असुर क्रोध में भर कर युद्ध के लिए आया ॥३९॥

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः । समुत्पतति मेदिन्यास्तत्प्रमाणो महासुरः ॥४०
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः । ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४१
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्रावशोणितम् । समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४२
यावंतः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः । तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४३
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः । समं मातृभिरत्युग्रं शस्त्रपातातिभीषणम् ॥४४
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा । ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४५
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह । गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४६
वैष्णवी-चक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः । सहस्रो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४७
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना । माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥४८
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् । मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥४९
तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि । पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥५०

इसके शरीर से जब भी कोई रक्त की बूँद पृथ्वी पर गिर जाती थी, उसी के समान शक्तिशाली अन्य महादैत्य पृथ्वी पर पैदा हो जाता था ॥४०॥

वह महा असुर गदा हाथ में लेकर इन्द्र शक्ति से युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्री ने अपने वज्र से रक्त बीज पर प्रहार किया ॥४१॥

वज्र से घायल हुए उसके शरीर से शीघ्र ही बहुत सा रक्त बहने लगा, उसके बाद उससे उसी के समान रूप एवं पराक्रम वाले योद्धा उत्पन्न होने लगे ॥४२॥

उसके शरीर से जितनी रक्त की बूंदें गिरीं उसी के समान बल और पराक्रम वाले उतने ही पुरुष (उनसे) उत्पन्न हो गये ॥४३॥

और रक्त से उत्पन्न हुए वे पुरुष भी अत्यन्त भयंकर अस्त्र शस्त्रों से प्रहार करते हुए मातृगणों के साथ युद्ध करने लगे ॥४४॥

पुनः वज्र के प्रहार से जब इसका मस्तक घायल हुआ तब रक्त बहने लगा और उससे हजारों पुरुष उत्पन्न हो गये ॥४५॥

वैष्णवी ने युद्ध में इस (रक्तबीज) के ऊपर चक्र से प्रहार किया और ऐन्द्री ने उस असुर राज को गदा मारी ॥४६॥

वैष्णवी के चक्र से कटे हुए भागों से जो रक्त बहना प्रारम्भ हुआ, उनसे उसी (रक्तबीज) के समान पराक्रम वाले सहस्रों की संख्या में महादैत्यों ने जगत् को व्याप्त कर लिया ॥४७॥

कौमारी (देवी) ने शक्ति से, वाराही ने तलवार से और माहेश्वरी ने त्रिशूल से महा असुर रक्तबीज को मारा ॥४८॥

और क्रोध से भरे हुए, महाअसुर रक्तबीज ने भी सभी मातृ शक्तियों पर पृथक्-पृथक् गदा से प्रहार किया ॥४९॥

(इस प्रकार) बहुत प्रकार से शक्ति, शूल आदि से आहत हुए उसके शरीर से बड़ा रक्त समूह पृथ्वी पर गिरा और उससे भी सैंकड़ों असुर (उत्पन्न) हुए ॥५०॥

तैश्चासुरासृक्संभूतैरसुरैः सकलं जगत् । व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५१

तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥५२

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून महासुरान् । रक्तबीजात् प्रतीच्छत्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥५३

भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् । एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ॥५४

ऋषिरुवाच—

इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् । मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ॥५५

ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् । न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ॥५६

तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम् । यतस्ततः स्ववक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ॥५७

मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान् महासुराः ।
तांश्च खादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ॥५८

देवी शूलेन चक्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः । जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ॥५९

और रक्त से उत्पन्न हुए उन असुरों से सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया तब देवताओं को बड़ा भय हुआ ॥५१॥

उदास हुए उन देवताओं को देखकर चंडिका देवी ने शीघ्र ही काली देवी से कहा—हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फैलाओ ॥५२॥

मेरे शस्त्र के प्रहार से उत्पन्न हुए रक्त बिन्दुओं और रक्तबीज से (उत्पन्न होने वाले) महा असुरों को तुम अपने इस वेग युक्त मुख से खा जाओ ॥५३॥

इस प्रकार उस (रक्त) से उत्पन्न होने वाले महा असुरों को खाती हुई तुम युद्ध क्षेत्र में विचरण करो। इसी प्रकार क्षीण हुए रक्त वाला यह दैत्य (स्वयं) ही नष्ट हो जायेगा। इस प्रकार तुम्हारे द्वारा खाये जाते हुए उन भयंकर दैत्यों से दूसरे उत्पन्न नहीं हो सकेंगे ॥५४॥

ऋषि बोले—

उसको इस प्रकार कहने के बाद देवी ने भाले से उस (रक्तबीज) को मारा और काली देवी ने (अपने) मुख से रक्तबीज के खून को पी लिया ॥५५॥

तब वहाँ उसने चण्डिका के ऊपर गदा से प्रहार किया। किन्तु उस गदा-पात ने इस (देवी) को तनिक भी वेदना नहीं पहुँचायी ॥५६॥

(उसके बाद) उस (रक्तबीज) के घायल शरीर से बहुत सा रक्त गिरा किन्तु ज्यों ही वह गिरा उसे चामुण्डा ने अपने मुख में ले लिया ॥५७॥

मुख में गिरे हुए रक्त से, जो महाअसुर उत्पन्न हुए, उनको भी चामुण्डा ने खा डाला और उस (चामुण्डा) ने उस (रक्तबीज) का रक्त भी पी लिया ॥५८॥

(उसके बाद) चामुण्डा के द्वारा पिये गये रक्त वाले उस रक्तबीज को देवी ने शूल, चक्र, बाण, असि, ऋष्टि आदि आयुधों से मार डाला ॥५९॥

स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसंहतितो हतः । नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ॥६०
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप । तेषां मातृगणो मत्तो ननर्त्तसृङ्मदोद्धतः ॥६१
इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये रक्तबीजवधो नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।

हे राजन् ! इस प्रकार शस्त्रों के समूह से घायल एवं रक्तहीन हुआ महादैत्य रक्तबीज पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥६०॥

हे नृप ! (उसके मरने से) देवताओं को महान् हर्ष हुआ और मत्त बना मातृगण उनके खून के मद से उद्धत होकर नृत्य करने लगा ॥६१॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी महात्म्य में रक्तबीज-वध नामक पिचासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षडशीतितमोऽध्यायः

राजोवाच —

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम । देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥१
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतं रक्तबीजे निपातिते । चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥२

ऋषिरुवाच -

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातित । शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥३
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् । अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥४
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः । संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥५

राजा बोला—

हे भगवन् ! रक्तबीज के वध के आश्रित देवी चरित का यह अद्भुत माहात्म्य आपने मुझको बतलाया ॥१॥

रक्तबीज के मारे जाने पर अत्यन्त क्रोध में भरे हुए शुम्भ और निशुम्भ ने जो कर्म किया अब मैं उसको सुनना चाहता हूँ ॥२॥

ऋषि बोले—

रक्तबीज और अन्य असुरों के युद्ध में मारे जाने पर शुम्भासुर और निशुम्भ ने अत्यधिक क्रोध किया ॥३॥

अपनी विशाल सेना को मारी जाती हुई देख कर क्रोध से भरा हुआ निशुम्भ असुरों की प्रधान सेना सहित (देवी की ओर) दौड़ा ॥४॥

उसके आगे पीछे और बराबर में क्रोध से होठों को चबाते हुए बड़े-बड़े असुर थे, जो देवी को मारने आये थे ॥५॥

आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः। निहन्तुं चण्डिकां कोपात् कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥६
ततो युद्धमतीवासीद् देव्याः शुम्भनिशुम्भयोः । शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥७
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः। ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥८
निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् । अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥९
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् । निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१०
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः। तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥११
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः। आयान्तं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१२
अथादाय गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति। सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१३
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् । आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१४
तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे । भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१५
स रथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः । भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१६

अपनी सेना के साथ महापराक्रमी शुम्भ भी क्रोधवश चण्डिका को मारने के लिए और मातृगणों के साथ युद्ध करने के लिए आ पहुँचा ॥६॥

तब देवी और शुम्भ का (परस्पर) घोर युद्ध हुआ। (मेघों के समान) बाणों की अत्यन्त भयंकर वर्षा करते हुए चण्डिका ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उन दोनों के बाणों को काट डाला। और उन दोनों दैत्यपतियों पर शस्त्र समूह से प्रहार किया ॥७-८॥

उसके बाद निशुम्भ ने तीक्ष्ण खड्ग और चमकती हुई ढाल लेकर, देवी के श्रेष्ठ वाहन सिंह के मस्तक पर प्रहार किया ॥९॥

वाहन के ऊपर प्रहार करने पर देवी ने निशुम्भ की श्रेष्ठ तलवार एवं अष्ट चन्द्रों वाली ढाल को क्षुरप्र नामक आयुध से तुरन्त ही काट डाला ॥१०॥

ढाल एवं तलवार के कटने पर उस असुर ने शक्ति फेंकी। किन्तु देवी ने सामने आयी हुई उसको, इस (शक्ति) के भी चक्र से दो टुकड़े कर दिये ॥११॥

तब क्रोध से जलते हुए निशुम्भ दैत्य ने शूल उठाया, किन्तु देवी ने (अपनी ओर) आते हुए उसको भी मुष्टि के प्रहार से चूर-चूर कर दिया ॥१२॥

तब उस (निशुम्भ) ने भी गदा लेकर चण्डिका की ओर फेंकी, वह भी देवी के त्रिशूल से काटकर भस्म हो गयी ॥१३॥

तदनन्तर उस दैत्य पुंगव को फरसा हाथ में लिए आते हुए देखकर देवी ने बाणों के समूह से घायल करके (उसे) भूमि पर गिरा दिया ॥१४॥

भयंकर पराक्रमी भाई निशुम्भ के उस (युद्ध) भूमि में गिर जाने पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ उसका भाई शुम्भ अम्बिका को मारने के लिए दौड़ा ॥१५॥

तब रथ पर बैठे हुए उसने बड़े-बड़े उत्तम आयुधों को पकड़े हुए बड़ी-बड़ी अनुपम आठ भुजाओं से सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त करके अतीव शोभा धारण की ॥१६॥

समायान्तं तमालोक्य देवी शंखमवादयत् । ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१७
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च । समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥१८
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः । पूरयामास गगनं गां तथैव दिशो दश ॥१९
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् । कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२०
अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह । तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२१
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा । तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२२

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥२३

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् । निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२४
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् । चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथसहस्रशः ॥२५
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् । स तदाभिहतो भूमौ मूर्छितो निपपात ह ॥२६
ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः । आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥२७

उसको आते हुए देखकर देवी ने शख बजाया और धनुष की प्रत्यञ्चा का भी सुदुस्सह शब्द किया ॥१७॥

और दैत्यों की सम्पूर्ण सेना के तेज को नष्ट करने वाले अपने घंटे के शब्द से सम्पूर्ण दिशाओं को भर दिया ॥१८॥

तदनन्तर सिंह ने महागजों के भी मद को दूर करने वाली अपनी भयंकर दहाड़ से आकाश, पृथ्वी और उसी प्रकार दसों दिशाओं को भर दिया ॥१९॥

अपने दोनों हाथों से तब काली (देवी) ने आकाश में उछलकर प्रहार किया। उस निनाद से पहले के सभी शब्द तिरोहित हो गये ॥२०॥

शिव दूती ने (दैत्यों के लिए) अमंगल अट्टहास किया। उस शब्द से सभी दैत्य थर्रा उठे, परन्तु शुम्भ अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥२१॥

जब अम्बिका ने (शुम्भ को) कहा—हे दुरात्मन् ! खड़ा रह, खड़ा रह, तब आकाश में स्थित देवताओं ने देवी का जय-जयकार किया ॥२३॥

शुम्भ ने (वहाँ) आकर ज्वालाओं से युक्त जो अत्यधिक भयंकर शक्ति छोड़ी, अग्निपुंज के समान आती हुई उसको (देवी ने) भारी लूके से दूर हटा दिया ॥२३॥

शुम्भ के सिंहनाद से तीनों लोक व्याप्त हो गये। हे राजन् ! जिसकी प्रतिध्वनि ने वज्र के समान भयंकर शब्द किया (जिसने अन्य सभी शब्दों को) जीत लिया ॥२४॥

शुम्भ के द्वारा छोड़े गये बाणों को देवी ने और उस (देवी) के द्वारा छोड़े गये बाणों को शुम्भ ने अपने भयंकर बाणों से सैकड़ों और हजारों टुकड़ों से काट डाला ॥२५॥

उसके बाद क्रुद्ध हुई चण्डिका ने उस पर शूल से प्रहार किया। उसके आघात से वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा ॥२६॥

तदनन्तर निशुम्भ ने चेतना प्राप्त करके धनुष लेकर बाणों से काली देवी और (उनके) सिंह को घायल कर दिया ॥२७॥

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः । चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥२८
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी। चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥२९
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् । अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥३०
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका । खड्गेण शितधारेण, स च शूलं समाददे ॥३१
शूलहस्तं तमायान्तं निशुम्भममरार्दनम् । हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥३२
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः । महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ॥३३
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः । शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥३४
ततः सिंहश्चखादोग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् । असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान् ॥३५
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः । ब्रह्माणी-मन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥३६
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे । वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥३७
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः । वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ॥३८

फिर उस दैत्यराज ने अपनी बाहुओं को दस हजार की संख्या वाली करके, चक्रों के प्रहार से चण्डिका को आच्छादित कर दिया ॥२८॥

तब कठोर पीड़ा का नाश करने वाली क्रुद्ध हुई भगवती दुर्गा ने अपने बाणों से उन बाणों तथा चक्रों को काट डाला ॥२९॥

तब दैत्य सेना से घिरा हुआ निशुम्भ गदा लेकर चण्डिका को मारने के लिए वेगपूर्वक दौड़ा ॥३०॥

अपनी ओर उसको आते देखकर चन्डिका ने तेज धार वाली खड्ग से गदा को शीघ्र ही काट डाला तब उसने शूल (हाथ में) ले लिया ॥३१॥

देवताओं को पीड़ा देने वाले उस निशुम्भ को शूल हाथ में लिए आते हुए देखकर चण्डिका ने वेग से चलाए हुए अपने शूल से उसका हृदय बींध दिया ॥३२॥

शूल से विदीर्ण हुए उस (निशुम्भ) के हृदय से, महान् बलवान् और परम पराक्रमी दूसरा पुरुष, जरा ठहर जा, जरा ठहर जा कहता हुआ निकाला ॥३३॥

निकलते हुए उस (पुरुष) की बात सुनकर हंसती हुई देवी ने उसका खड्ग से सिर काट डाला। तब वह भूमि पर गिर पड़ा ॥३४॥

तदनन्तर सिंह अपनी भयंकर दाढ़ों से पृथ्वी पर पड़ी हुई असुरों की गर्दन कुचलकर खाने लगा और काली तथा शिवदूती ने भी दूसरे असुरों का भक्षण करना प्रारम्भ किया ॥३५॥

और कुछ महादैत्य कौमारी की शक्ति से विदीर्ण होकर नष्ट हो गये और कुछ ब्रह्माणी देवी के मंत्रपूत जल से निस्तेज हो गये ॥३६॥

और दूसरे कुछ माहेश्वरी के त्रिशूल से छिन्न-छिन्न होकर धराशायी हो गये तथा कुछ वाराही ने अपने तुण्ड (थूथन) के प्रहार से पृथ्वी पर चूर-चूर कर दिये ॥३७॥

और कुछ दानव वैष्णवी के चक्र के द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये तथा दूसरे (दैत्य) ऐन्द्री के हस्ताग्र से छूटे हुए वज्र से और कुछ वैष्णवी के चक्र से खण्ड-खण्ड कर दिये गये ॥३८॥

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् । भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥३९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ।

कुछ असुर नष्ट हो गये और कुछ उस महायुद्ध में भाग खड़े हुए और कितने ही काली शिवदूती तथा मृगपति (सिंह) के द्वारा खा लिये गये ॥३९॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी माहात्म्य में निशुम्भ वध नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच—

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम् । हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥१

बलावलेपाद् दुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमावह । अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे यातिमानिनी ॥२

श्रीदेव्युवाच—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा । पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥३

ऋषिरुवाच —

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखालयम् । तस्यां देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥४

श्रीदेव्युवाच—

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता । तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ॥५

ऋषि बोले—

अपने प्राणों के समान अपने भाई निशुम्भ को और नष्ट हुई सेना को सुनकर क्रुद्ध हुआ शुम्भ ये वचन बोला— ॥१॥

हे दुष्ट दुर्गे ! बल के अभिमान से तू घमण्ड मत कर। तुम अन्य स्त्रियों के बल का सहारा लेकर लड़ती हो और अपने को मानिनी मानती हो ॥२॥

श्री देवी बोली—

इस संसार में मैं अकेली ही तो हूँ मेरे अतिरिक्त दूसरी कौन है ? हे दुष्ट ! देख, मेरी विभूतियाँ मुझमें ही प्रवेश कर रही हैं ॥३॥

ऋषि ने कहा —

तब ब्रह्माणी आदि वे सभी देवियाँ उस देवी (अम्बिका) के शरीर में ही प्रवेश कर गयीं। उस समय अम्बिका देवी अकेली ही थी ॥४॥

श्री देवी बोली—

जब मैं अपने ही ऐश्वर्य से यहाँ पर अनेक रूपों से उपस्थित हुई थी। उनको मैंने (अपने में) समेट लिया है अब मैं अकेली ही युद्ध में खड़ी हूँ ॥५॥

ऋषिरुवाच —

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः । पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥६
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथा चास्त्रैः सुदारुणैः । तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥७
दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका । बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥८
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी । बभञ्ज लीलयैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः ॥९
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः । सा च तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः ॥१०
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे । चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम् ॥११
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् । अभ्यधावत्तां हन्तुं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥१२
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका । धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥१३
अश्वांश्च पातयामास रथं सारथिना सह । हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ॥
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥१४
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः । तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ॥१५

ऋषि ने कहा —

इसके पश्चात् देवता और असुरों के देखते देखते देवी और शुम्भ दोनों का अति दारुण युद्ध आरम्भ हुआ ॥६॥

वाणों की वर्षा, अति तीक्ष्ण शस्त्र और अस्त्रों से समस्त संकार को भयभीत करने वाला, दोनों का पुनः युद्ध हुआ ॥७॥

अम्बिका ने सैकड़ों प्रकार के जिन दिव्य अस्त्रों को छोड़ा, दैत्येन्द्र (शुम्भ) ने प्रतीघात (काटने वाले) अस्त्रों से उन्हें काट दिया और ॥८॥

उसने जो दिव्यास्त्र छोड़े उन्हें परमेश्वरी (चामुण्डा) ने उग्र हुंकार करते हुए बड़ी सरलता से ही उन्हें काट डाला ॥९॥

इसके पश्चात् उस असुर (शुम्भ) ने सैकड़ों बाणों से देवी को आच्छादित कर दिया और क्रुद्ध हुई देवी ने वाणों से उसके धनुष को काट दिया ॥१०॥

धनुष के कट जाने पर दैत्यराज ने शक्ति हाथ में ली । देवी ने उसके हाथ में पकड़ी उसकी शक्ति को भी चन्द्र से काट दिया ॥११॥

अनन्तर दैत्याधिपति (शुम्भ) हाथ में तलवार एवं चमकती हुई ढाल लेकर देवी पर आक्रमण करने के लिए दौड़ा ॥१२॥

तब सामने से आते हुए ही देवी ने धनुष से छोड़े गये तीक्ष्ण बाणों से उसकी तलवार और सूर्य की किरणों के समान उज्ज्वल ढाल को काट दिया ॥१३॥

सारथि के साथ रथ और घोड़ों को भी गिरा दिया । (इसके पश्चात्) घोड़ों के मर जाने पर और धनुष के कट जाने पर, अम्बिका को मारने के लिए उद्यत, सारथि रहित उस दैत्य ने मुद्गर हाथ में लिया ॥१४॥

सामने आते हुए उसके मुदगर को (देवी ने) तेज बाणों से काट डाला । तो भी वह (दैत्य) मुष्टि उठाकर वेग के साथ (देवी की ओर) दौड़ा ॥१५॥

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुंगवः । देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ।।१६
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले । स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ।।१७
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः । तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ।।१८
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् । चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ।।१९
ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह । उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ।।२०
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः । अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ।।२१
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् । जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ।।२२
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः । चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम् ।।२३
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि । जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ।।२४
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः । सरितो मार्गवाहिन्यस्तथा शुम्भे निपातिते ।।२५
ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः । बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ।।२६

उस दैत्य श्रेष्ठ ने देवी के हृदय के ऊपर मुष्टि से आक्रमण किया । देवी ने भी उसके हृदय पर पाद प्रहार किया ।।१६।।

पादतल के प्रहार से आहत वह पृथ्वी पर गिर पड़ा । वह दैत्यराज सहसा ही पुनः उठ खड़ा हुआ ।।१७।।

और वह उछलकर जोर से देवी को पकड़कर आकाश में स्थित हो गया । वहाँ भी उस निराधार चण्डिका ने उसके साथ युद्ध किया ।।१८।।

दैत्य (शुम्भ) और चण्डिका ने परस्पर आकाश में ऐसा युद्ध किया जो प्रथम बार सिद्ध और मुनियों के लिए विस्मय कारक था ।।१९।।

इसके पश्चात् बहुत देर तक अम्बिका ने उसके साथ युद्ध किया और उसे ऊपर को उठाकर देर तक (आकाश में) घुमाया तथा पृथ्वी पर पटक दिया ।।२०।।

फेंकने पर पृथ्वी पर आकर (भी) उसने अपना मुक्का तान कर, वह दुष्टात्मा चण्डिका को मारने की इच्छा से वेग से उसकी ओर दौड़ा ।।२१।।

देवी ने सर्वदैत्याधिपति उसको अपनी ओर आता देखकर शूल से उसके हृदय पर प्रहार करके उसे पृथ्वी पर गिरा दिया ।।२२।।

देवी के शूल के अग्र भाग से विक्षत (घायल) होकर वह गतप्राण (मृत) होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । (उसके गिरने के साथ) समुद्र और पर्वतों के सहित सारी पृथ्वी चलायमान हो गयी ।।२३।।

उस दुरात्मा के मारे जाने पर समग्र संसार प्रसन्न हो उठा और स्वस्थ हुआ तथा आकाश निर्मल हो गया ।।२४।।

(शुम्भ के रहते) पहले जो बादल उल्काओं सहित उत्पात सूचक थे, वे अब शान्त हो गये । शुम्भ के मारे जाने पर नदियाँ अपने मार्ग पर चलने लगीं ।।२५।।

उसके मारे जाने पर सब देवगण अत्यन्त हर्षित हुए और गन्धर्वों ने मधुर गीत गाये ।।२६।।

अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः । ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥२७
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः ॥२८

इतिश्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।

कुछ लोग बाजे बजाने लगे और अप्सराओं ने नृत्य किया। सुन्दर पवन चलने लगी और सूर्य भी अच्छी प्रभा युक्त हो गया। शान्त हुई अग्नि जलने लगी। दिशाओं की (साँय-साँय) की ध्वनि शान्त हो गयी ॥२७-२८॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी माहात्म्य में शुम्भ-वध नामक सतासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच —

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद् विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥१

देवाऊचुः—

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥२
आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैतदाप्यायते कृत्स्नमलंघ्यवीर्ये ॥३

ऋषि ने कहा—

वहाँ (युद्ध में) देवी द्वारा महादैत्य के मारे जाने पर इन्द्र सहित सभी देवता अग्नि को आगे करके उस कात्यायनी की स्तुति करने लगे। अभीष्ट की प्राप्ति के कारण उनके मुख कमल दमक उठे थे, उनसे दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं ॥१॥

देवों ने कहा—

शरण में आये हुए, दुखियों की पीड़ा का हरण करने वाली, देवि, (हम पर) प्रसन्न होओ। सम्पूर्ण जगत् की माता ! प्रसन्न होओ। हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न होओ, विश्व की रक्षा करो। हे देवि ! तुम ही चराचर जगत् की अधीश्वरी हो ॥२॥

और तुम ही इस जगत् का एक मात्र आधार हो क्योंकि तुम ही पृथ्वी रूप में स्थित हो। हे अलंघनीय पराक्रम वाली, देवि ! जल रूप में स्थित तुम्हारे द्वारा ही यह सम्पूर्ण जगत् तृप्त किया जा रहा है ॥३॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ।।४
विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकलं जगच्च ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ।।५
सर्वभूता यदा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी । त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्ति परमोक्तयः ।।६
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते । स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।७
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि । विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ।।८
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके । शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।९
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि । गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१०
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे । सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।११
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि । कौशांभः क्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१२
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि । माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१३

तुम अनन्त बल सम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो और विश्व की बीजरूप परामाया हो। हे देवि ! तुमने इस सम्पूर्ण जगत् को मोहित कर रखा है। प्रसन्न हुई तुम्हीं इस पृथ्वी पर मुक्ति का (एक मात्र) हेतु हो ।।४।।

हे देवि ! सम्पूर्ण विद्याएँ, स्त्रियाँ और यह सारा संसार तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। एक मात्र तुमने ही इस (जगत्) को व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है ? तुम तो स्तवन करने योग्य पदार्थों से परे एव परावाणी हो ।।५।।

जब तुम सर्व रूपा देवी एवं मुक्ति तथा भुक्ति प्रदान करने वाली हो, तब तो (इसी रूप में) तुम्हारी स्तुति हो गयी है। तुम्हारी इससे उत्तम शक्तियाँ और क्या हो सकती है ? ।।६।।

सभी मनुष्यों के हृदय में बुद्धि रूप से स्थित रहने वाली, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करने वाली हे देवि! नारायणी तुमको बारम्बार नमस्कार है ।।७।।

कला काष्ठादि के रूप से क्रमशः अवस्था परिवर्तन की ओर ले जाने वाली और विश्व का उपसंहार करने में समर्थ हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।।८।।

हे नारायणि ! तुम सब प्रकार के मंगल को देने वाली, हे मंगलमयी कल्याणि ! सभी पुरुषार्थों (चतुष्ट्य) को सिद्ध करने वाली, शरणागत वत्सला, तीन नेत्रों वाली एवं गौरी हो, तुमको नमस्कार है ।।९।।

(तुम) संसार की सृष्टि, स्थिति एवं संहार की शक्ति भूता सनातनी देवी, गुणों की आश्रय और सर्व गुणमयी हो। हे नारायणि तुमको नमस्कार है ।।१०।।

शरणागत, दीन एवं पीड़ितों (दुखियों) की रक्षा में संलग्न रहने वाली, सबकी पीड़ाओं का हरण करने वाली हे नारायणि देवि ! तुमको नमस्कार है ।।११।।

हंसों से युक्त वाहन पर स्थित, विराजमान, ब्रह्माणी का रूप धारण करने वाली, अभिमन्त्रित कुशों से जल छिड़कने वाली हे नारायणि देवि, तुमको नमस्कार है ।।१२।।

माहेश्वरी रूप से त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्प को धारण करने वाली, महान् वृषभ के वाहन वाली, हे नारायणि ! तुम्हें नमस्कार है ।।१३।।

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे । कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१४
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे । प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१५
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे । वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१६
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे । त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१७
किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले । वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१८
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्ये महाबले । घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१९
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे । चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते ।।२०
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टे स्वधे ध्रुवे । महारात्रे महामाये नारायणि नमोऽस्तु ते ।।२१
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि । नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।२२
सर्वत: पाणिपादां ते सर्वतोऽक्षिशिरोमुखे । सर्वत: श्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।२३
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते । भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ।।२४

मोरों एवं कुक्कुरों से घिरी रहने वाली, महाशक्ति धारण करने वाली, पाप रहित कौमारी रूप धारिणी, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।।१४।।

शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग, धनुषरूप उत्तम आयुधों को धारण करने वाली, वैष्णवी रूपा नारायणी प्रसन्न होओ, तुम्हें नमस्कार है ।।१५।।

हाथ में भयानक महाचक्र धारण करने वाली और दाढ़ों पर धरती को उठाए हुए, वराह रूप वाली, कल्याणमयी, नारायणि, तुम्हें नमस्कार है ।।१६।।

भयंकर नृसिंह के रूप से दैत्यों को मारने के लिए उद्योग करने वाली, तीनों लोकों की रक्षा करने में संलग्न, हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।।१७।।

किरीट और महावज्र धारण करने वाली, सहस्र नेत्रों से युक्त उज्ज्वल कान्तिमति वृत्र के प्राणों का हरण करने वाली, इन्द्र शक्ति रूपा नारायणी देवी तुमको नमस्कार है ।।१८।।

शिवदूती के स्वरूप से दैत्यों और (उनकी) विशाल सेना का संहार करने वाली, भयंकर रूप और विकट गर्जना करने वाली नारायणी देवि तुमको नमस्कार है ।।१९।।

दाढ़ों के कारण विकराल मुख वाली, मुण्डमाला से विभूषित मुण्डमर्दिनी, चामुण्डा रूपा नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।।२०।।

लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महामाया रूपा नारायणि ! तुमको नमस्कार है ।।२१।।

मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठ), भूति, (ऐश्वर्य रूपा), बाभ्रवी (भूरे रंग की), तामसी, नियंता (संयम परायणा) तथा ईशा (सबकी अधीश्वरी) नारायणि ! तुम प्रसन्न होओ, तुमको नमस्कार है ।।२२।।

हे नारायणि ! तुम्हारे चारों ओर हाथ और पैर हैं और सब ओर ही आँखें, सिर और मुख हैं। सब कान और नाक हैं इस प्रकार की तुम्हें नमस्कार है ।।२३।।

सर्व स्वरूपा, सर्वेश्वरी और सब प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न, दुर्गे देवि, तुम सब भयों से हमारी रक्षा करो, तुमको नमस्कार है ।।२४।।

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् । पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥२५
ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् । त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते ॥२६
हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् । सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योनः सुतानिव ॥२७
असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः । शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥२८

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा ददासि कामान् सकलानभीष्टान् ।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥२९
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥३०
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषु वाक्येषु क का त्वदन्या ।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे विभ्रामयस्येतदतीव विश्वम् ॥३१
रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।
दावानलो यत्र तथाऽब्धिमध्ये तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥३२
विश्वेश्वरी त्वं परिपासि विश्वं विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥३३

हे कात्यायानि ! तीन नेत्रों से विभूषित, तुम्हारा यह सौम्य मुख सभी भयों से हमारी रक्षा करे, तुमको नमस्कार है ।।२ ।।

ज्वालाओं के कारण अत्यन्त भयंकर और सम्पूर्ण असुरों को विनष्ट करने वाला, तुम्हारा त्रिशूल भयों से हमारी रक्षा करे, हे भद्र काली ! तुमको नमस्कार है ।।२६।।

हे देवि ! जो दैत्यों के तेजों को नष्ट कर देता है और अपने शब्द से जगत् को व्याप्त कर लेता है, वह घण्टा पुत्र की तरह पापों से हमारी रक्षा करें ।।२७।।

हे चण्डिके ! असुरों के रक्त एवं वसा की पंक से सना हुआ आपके हाथों में स्थित उज्ज्वल खडग हमारे कल्याण के लिए होवे । हम तुमको नमस्कार करते हैं ।।२८।।

हे देवि ! प्रसन्न हुई तुम, सम्पूर्ण रोगों को नष्ट कर देती हो और सम्पूर्ण मनोवाञ्छित अभिलाषाओं को पूर्ण करती हो । तुम्हारी शरण में स्थित (मनुष्य) दूसरों को आश्रय देने वाले हो जाते हैं ।।२९।।

हे देवि ! यह जो आज तुमने अपने शरीर को अनेक भागों में विभक्त करके, नाना प्रकार के रूपों से, धर्मद्रोही दैत्यों का संहार किया है । हे अम्बिके ! वह सब तुमको छोड़कर अन्य दूसरी कौन कर सकती थी ।।३०।।

विद्याओं में ज्ञान को प्रकाशित करने वाले शास्त्रों में, आद्य (वेद) वाक्यों में, तुम्हारे अतिरिक्त दूसरी किसका वर्णन है । (तुम्हीं) इस विश्व को (अज्ञान के) घोर अंधकार से परिपूर्ण ममता रूपी गड्ढे में निरन्तर अत्यधिक भटका रही हो ।।३१।।

जहाँ राक्षस, भयंकर विष वाले सर्प; शत्रु लुटेरों की सेना, दावानल हों वहाँ एवं समुद्र के बीच में भी रहकर तुम सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करती हो ।।३२।।

हे देवि ! क्योंकि तुम विश्व का पालन करती हो इसलिए विश्वेश्वरी हो । संसार को धारण करती हो, इसलिए विश्वात्मिका हो । तुम भगवान् विश्वनाथ की भी वन्दनीया हो । जो (मनुष्य) तुम्हारे सामने भक्ति पूर्वक मस्तक झुकाते हैं, वे विश्व को भी आश्रय देने वाले होते हैं ।।३३।।

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥३४
प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि। त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥३५

श्री देव्युवाच—

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ । तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ॥३६

देवा ऊचुः—

सर्वबाधाप्रशमनं त्रैलोकस्याखिलेश्वरि । एवमेतत्त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥३७

श्री देव्युवाच —

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे। शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ ॥३८
नन्दगोपकुलेजाता यशोदागर्भसम्भवा। ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचल निवासिनी ॥३९
पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले । अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥४०
भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्सुदानवान्। रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥४१

हे देवि ! प्रसन्न हो जाओ और जिस प्रकार तुमने आज असुरों का वध करके शीघ्र ही रक्षा की है। उसी प्रकार सदैव हमारी शत्रु भय से रक्षा करो। सम्पूर्ण जगत् के पापों के एवं पापों के फल स्वरूप प्राप्त होने वाले (महामारी आदि) महान् उपद्रवों को शीघ्र शान्त कर दो ॥३४॥

विश्व की पीड़ा का हरण करने वाली हे देवि, तुम पैरों में पड़े हुए हम पर प्रसन्न होओ। तीनों लोकों के निवासियों की पूजनीया लोकों को वरदान देने वाली होओ ॥३५॥

श्री देवी ने कहा –

हे देवताओ ! मैं वर देने को तैयार हूँ, तुम जिस वर की अभिलाषा करते हो, उसको मांगो, जगत् का उपकार करने वाले, उस वर को मैं अवश्य दूंगी ॥३६॥

देवों ने कहा—

सर्वेश्वरि ! तुम इसी प्रकार तीनों लोकों की समस्त बाधाओं को शान्त करो और हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो ॥३७॥

श्री देवी ने कहा —

देवताओं ! वैवस्वत मन्वन्तर के अट्ठाइसवें युग में शुम्भ निशुम्भ नाम के दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे ॥३८॥

तब नन्द गोप के कुल में यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई, विन्ध्याचल में निवास करने वाली मैं उन दोनों का नाश करूंगी ॥३९॥

फिर अत्यन्त रौद्र रूप से पृथ्वी तल पर अवतीर्ण होकर मैं विप्रचित्त नाम वाले दानवों को 'मारूंगी' ॥४०॥

उन भयंकर विप्रचित्त आदि महादैत्यों को खाती रहने से मेरे दांत अनार के फूल के समान हो जायेंगे ॥४१॥

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः। स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ।।४२
भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि । मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा ।।४३
ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्। कीर्त्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः ।।४४
ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः । भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ।।४५
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि। तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ।।
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।।४६
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले । रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।।४७
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः । भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।।४८
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति । तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम् ।।४९
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम्। भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।।५०
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति । तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ५१

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमहात्म्ये नारायणस्तुति नामाष्टाशीतिमोऽध्यायः।

तब स्वर्ग लोक में देवता और मृत्युलोक में मनुष्य, सदैव (मेरी) स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे ।।४२।।

फिर जब पृथ्वी पर सौ वर्षों तक अनावृष्टि रहेगी तो पानी के अभाव के समय मुनियों के द्वारा स्तुति की गयी मैं अयोनिजा के रूप में पृथ्वी पर अवतीर्ण होऊँगी ।।४३।।

और तब मैं सौ नेत्रों से मुनियों को देखूंगी, तब मनुष्य 'शताक्षी' इस नाम से मेरा कीर्तन करेंगे ।।४४।।

हे देवताओं ! तब मैं अपने शरीर से उत्पन्न हुए, वृष्टि होने तक प्राण धारण कराने वाले शाकों द्वारा समस्त संसार का भरण पोषण करूंगी ।।४५।।

इसलिए तब मैं पृथ्वी पर 'शाकम्भरी' इस नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करूंगी । और तब (उसी अवतार में) मैं दुर्गम नामक महादैत्य का भी वध करूंगी । तब मेरा नाम 'दुर्गा देवी' इस रूप से प्रसिद्ध होगा ।।४६।।

फिर जब मैं भीम रूप धारण करके हिमालय पर, मुनियों की रक्षा के लिए, राक्षसों का भक्षण करूंगी ।।४७।।

उस समय सब मुनिगण भक्ति से नतमस्तक होकर मेरी स्तुति करेंगे । तब मेरा नाम 'भीमा देवी' इस प्रकार प्रसिद्ध होगा ।।४८।।

जब अरुण नामक (महादैत्य) तीनों लोकों में भारी उत्पात मचाएगा तब मैं छः पैरों वाले भ्रमरों का रूप (धारण) करके तीनों लोकों के हित के लिए, उस महाअसुर का वध करूंगी । उस समय सब लोक 'भ्रामरी' इस नाम से चारों ओर मेरी स्तुति करेंगे ।।४९-५०।।

इस प्रकार जब-जब दानवों के द्वारा उत्पन्न हुई बाधा, उपस्थित होगी, तब-तब मैं अवतीर्ण होकर शत्रुओं का संहार करूंगी ।।५१।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी माहात्म्य में 'नारायणी-स्तुति' नामक अठासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकोननवतितमोऽध्यायः

श्री देव्युवाच—

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम् ॥१
मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् । कीर्त्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥२
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।स्तोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥३
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्दुष्कृतोत्थानचापदः । न भविष्यति दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥४
शत्रुतो न भयं तेषां दस्युतो वा न राजतः । न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित् सम्भविष्यति ॥५
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥६
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् । तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥७
यत्रैतत्पठ्यते सम्यक् नित्यमायतने मम।सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम् ॥८
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे । सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥९

श्री देवी ने कहा—

इन स्तुतियों से जो (व्यक्ति) एकाग्र चित्त होकर प्रतिदिन मेरा स्तवन करेगा। मैं उसकी सारी बाधाएँ निश्चय ही दूर करूंगी इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१॥

और जो (मनुष्य) मधु कैटभ का नाश तथा महिषासुर का संहार एवं उसी प्रकार शुम्भ, निशुम्भ का वध (इस प्रसंग का) कीर्तन करेंगे, ॥२॥

तथा अष्टमी, चतुर्दशी और नवमी को एकाग्र चित्त से जो भक्ति पूर्वक मेरे माहात्म्य का स्तवन करेंगे, ॥३॥

उन्हें कोई पाप न छू सकेगा और नहीं पाप जनित आपत्तियाँ ही होगी न हीं (उनके घर में) दरिद्रता होगी और न इष्ट जनों का वियोग ही होगा ॥४॥

और उनको शत्रुओं, लुटेरों, राजा, शस्त्र, अग्नि तथा जल राशि (नदी तालाब आदि) से भी कभी भय नहीं होगा ॥५॥

इसलिए सबको एकाग्र चित्त होकर भक्तिपूर्वक मेरे इस माहात्म्य को सदैव पढ़ना, सुनना चाहिए। यह परम कल्याणकारक है ॥६॥

मेरा माहात्म्य, महामारियों से उत्पन्न, सभी प्रकार के उत्पातों और त्रिविध तापों को शान्त करने वाला है। ७॥

मेरे जिस मंदिर में प्रतिदिन विधिपूर्वक इसका पाठ किया जाता है, वहाँ मेरा सान्निध्य सदैव बना रहता है। मैं उस स्थान को कभी नहीं छोड़ती हूँ ॥८॥

बलिदान, पूजा, हवन (होम) तथा महोत्सव (के अवसर) पर मेरे इस सम्पूर्ण चरित्र का पाठ एवं श्रवण करना चाहिए ॥९॥

जानताऽजानता वापि बलिं पूजां तथा कृताम् ।
प्रतोच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥१०
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी । तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥११
सर्वबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसमन्वितः । मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥१२
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथोत्पत्तीः पृथक् शुभाः । पराक्रमांश्च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥१३
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते । नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥१४
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने । ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥१५
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः । दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥१६
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् । संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥१७
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् । रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥१८
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ॥१९
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः । विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रेक्षणीयैरहर्निशम् ॥२०
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या । प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृदुच्चरितश्रुते ॥२१

ऐसा करने पर जाने या अनजाने में बलि, पूजा, या होम आदि विधि जानकर या बिना जाने भी मेरे लिए करेगा, उसे मैं बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण करूँगी ॥१०॥

शरद् काल में जो वार्षिकी महापूजा की जाती है, उस (अवसर) पर (जो मनुष्य) मेरे इस माहात्म्य को भक्ति युक्त होकर सुनेगा ॥११॥

सभी बाधाओं से युक्त वह मनुष्य धन धान्य सम्पन्न होगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥१२॥

मेरे इस माहात्म्य और प्रादुर्भाव की अलग-अलग सुन्दर कथाएँ एवं युद्ध में किये हुए मेरे पराक्रमों को सुनकर मनुष्य निर्भय हो जाता है ॥१३॥

मेरे माहात्म्य का श्रवण करने वाले पुरुषों के शत्रु नष्ट हो जाते हैं और उन्हें कल्याण की प्राप्ति होती है तथा उनका कुल आनन्दित रहता है ॥१४॥

सर्वत्र शान्ति कार्यों में एवं बुरे स्वप्नों के दिखायी देने पर उग्र ग्रहों की पीड़ा होने पर, मेरे माहात्म्य का श्रवण करना चाहिए ॥१५॥

(इससे) सब विघ्न (उत्पात) और भयंकर ग्रह पीड़ाएं भी शान्त हो जाती हैं और मनुष्यों द्वारा जो दुःस्वप्न देखे जाते हैं। देखे गये दुःस्वप्न भी सुस्वप्न में परिवर्तित हो जाते हैं ।:१६॥

(यह माहात्म्य) बालग्रहों से अभिभूत बालकों के लिए शान्ति कारक है तथा मनुष्यों के संगठन में फूट होने पर (यह माहात्म्य) अच्छी प्रकार मित्रता कराने वाला है ॥१७॥

(यह) समस्त दुराचारियों के बल का भली प्रकार नाश करने वाला है, राक्षस, भूत एवं पिशाचों का इसके पढ़ने मात्र से ही नाश हो जाता है ॥१८॥

मेरा यह सब माहात्म्य मेरे सामीप्य की प्राप्ति कराने वाला है। पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध, आदि उत्तम सामग्रियों द्वारा एवं ब्राह्मणों को भोजन कराने और होम करने से तथा प्रतिदिन प्रोक्षण करने से एवं नाना प्रकार के अन्य भोगों का अर्पण करने से, दान देने से एक वर्ष तक मेरी जो पूजा की जाती है, उससे मुझे जो प्रसन्नता होती है वह प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्र का एक बार श्रवण मात्र से हो जाती है ॥१९-२१॥

श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति । रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्त्तनं मम ॥२२
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् । तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ॥२३
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ।
ब्रह्मणा च कृता यास्ताः प्रयच्छन्ति शुभां गतिम् ॥२४
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः । दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ॥२५
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ।
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ॥२६
आघूर्णितो वा बातेन स्थितः पोते महार्णवे । पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ॥२७
सर्वा बाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा । स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात् ॥२८
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा । दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥२९

ऋषिरुवाच—

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिकाचण्डविक्रमा । पश्यतामेव देवानां तत्रैवांतरधीयत ॥३०

श्रवण करने पर यह चरित्र पापों को हरता है और आरोग्य प्रदान करता है तथा मेरे जन्मों का कीर्तन समस्त भूतों से रक्षा करता है ॥२२॥

और जो मेरा युद्ध विषयक चरित्र है वह दुष्ट दैत्यों का संहारक है, उसके सुनने पर मनुष्यों को शत्रु जनित भय नहीं रहता ॥२३॥

हे देवो ! तुमने, महर्षियों ने और ब्रह्मा ने मेरी जो स्तुतियाँ की हैं, वे सब कल्याण मयी गति प्रदान करती हैं ॥२४॥

वन में, सूने मार्ग में अथवा दावाग्नि से घिरे हुए एवं लुटेरों द्वारा निर्जन स्थान से घिर जाने पर अथवा शत्रुओं द्वारा पकड़ लिए जाने पर ॥२५॥

अथवा वन में सिंह, व्याघ्र, या जंगली हाथियों के द्वारा पीछा किये जाने पर, क्रुद्ध राजा के आदेश से वध या बन्धन स्थान में ले जाने पर, ॥२६॥

अथवा महा समुद्र में नाव पर बैठने के बाद भारी तूफान (आंधी) से डगमगा जाने पर, अत्यन्त भयंकर युद्ध में शस्त्रों का प्रहार होने पर, ॥२७॥

सभी प्रकार की भयंकर बाधाओं में अथवा कठिन वेदना से पीड़ित होने पर भी, मेरे इस चरित्र का स्मरण करता हुआ, मनुष्य संकट से छूट जाता है ॥२८॥

मेरे चरित्र का स्मरण करने वाले (मनुष्य से) सिंह, दस्यु, अथवा वैरी मेरे प्रभाव के कारण दूर भाग जाते हैं ॥२९॥

ऋषि ने कहा—

यह कहकर प्रचण्ड पराक्रम वाली वह भगवती चण्डिका, देवताओं के देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं ॥३०॥

तेऽपि देव्या निरातंकाः स्वाधिकारान्यथा पुरा । यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ॥३१
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि । जगद्विध्वंसके तस्मिन्महोग्रेऽतुलविक्रमे ॥३२
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः । सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३३
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते । सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥३४
व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर । महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३५
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा । स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥३६
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे । सैवाभावे तथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥३७
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्गंधधूपादिभिस्तथा । ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं शुभाम् ॥३८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिकमन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये फलस्तुतिर्नामैकोननवतितमोऽध्यायः ।

देवी के द्वारा निर्भय किये गये, नष्ट हुए शत्रुओं वाले वे सभी देवता भी अपने-अपने अधिकारों एवं यज्ञ भाग का उपभोग करने लगे ॥३१॥

जगत् का विध्वंस करने वाले उस युद्ध में देवी द्वारा महाभयंकर, अतुल पराक्रमी, देव शत्रु शुम्भ और महा बलवान्, निशुम्भ के मारे जाने पर, शेष दैत्य पाताल (लोक) में चले गये ॥३२॥

हे राजन् ! इस प्रकार वह भगवती देवी शाश्वत रूप होती हुई भी, बार-बार प्रकट होकर, जगत् का पालन करती है ॥३३॥

उन्हीं के द्वारा इस विश्व को मोहित किया जा रहा है और वही विश्व को उत्पन्न करती है और प्रार्थना करने पर वह विज्ञान देती है तथा प्रसन्न होकर वही ऋद्धि प्रदान करती है ॥३४॥

हे राजन् ! उसी महाकाली, महामारी स्वरूपिणी के द्वारा ही प्रलय काल में इस समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर लिया जाता है ॥३५॥

वही अजन्मा प्रलय काल में महामारी और वही सृष्टि होती है तथा वह सनातनी देवी समयानुसार समस्त प्राणियों की स्थिति करती है (उसी से इस जगत् का अस्तित्व बना रहता है ।) ॥३६॥

मनुष्यों के अभ्युदय (भव) के समय घर में वृद्धि प्रदान करने वाली वह ही लक्ष्मी है और वही अभाव के समय दरिद्रता के रूप में विनाश के लिए उत्पन्न होती है ॥३७॥

पुष्प, गंध एवं धूप आदि के द्वारा, पूजी एवं स्तुति की गई वह ही धन, पुत्र, धर्म में मति तथा शुभगति प्रदान करती है ॥३८॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी माहात्म्य में
फलस्तुति नामक नवासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

नवतितमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच—

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥१

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया । तथा त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥

मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ॥२

तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् । आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥३

मार्कण्डेय उवाच –

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः । प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ॥४

निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च । जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ॥५

संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः । स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ॥६

तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीन् । अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥७

निराहारौ यतात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ । ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥८

ऋषि ने कहा —

हे राजन् ! (इस प्रकार) यह मैंने तुमसे देवी के उत्तम माहात्म्य का वर्णन किया । जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया जाता है, यह देवी इस प्रकार के प्रभाव वाली है ॥१॥

तथा भगवान् विष्णु की माया स्वरूपा उन्हीं के द्वारा विद्या प्रदान की जाती है (और उनके द्वारा ही) तुम, यह वैश्य तथा अन्य विवेकी जन मोहित किये जाते हैं और मोहित हुए हैं तथा (आगे) दूसरे भी मोहित होंगे ॥२॥

हे महाराज ! उन्हीं परमेश्वरी की शरण में जाओ । आराधना की गयी वही, मनुष्यों को भोग स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली है ॥३॥

मार्कण्डेय ने कहा —

उस (मेधामुनि) के इस प्रकार वचनों को सुनकर राजा सुरथ ने प्रशंसित आचार वाले उन महाभाग ऋषि को प्रणाम करके, ॥४॥

हे महामुने ! अत्यन्त ममत्व एवं राज्यापहरण से खिन्न हुए वह राजा और वैश्य (दोनों) शीघ्र ही तपस्या के लिए चले गये ॥५॥

वह (राजा, और वैश्य जगदम्बा के दर्शन के लिए, नदी तट पर बैठकर उत्तम देवी सूक्त, का जप करते हुए, तपस्या करने लगे ॥६॥

और वे दोनों उस तट पर देवी की मृण्मयी मूर्ति बनाकर, पुष्प, धूप, हवन आदि के द्वारा उसकी आराधना करने लगे ॥७॥

निराहार रहते हुए एवं संयम का जीवन बिताते हुए, देवी में ही मन लगाए हुए उन दोनों ने एकाग्र-चित्त उसका (देवी का) चिन्तन करना प्रारम्भ किया । वे दोनों (देवी को) अपने शरीर के रक्त से अक्षित (प्रोक्षित) बलि देते थे ॥८॥

एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः । परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥९

श्री देव्युवाच –

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन । मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥१०

मार्कण्डेय उवाच –

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यग्रजन्मनि । अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥११

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः । ममेत्यहमिति प्राज्ञः संगविच्युतिकारकम् ॥१२

श्री देव्युवाच –

स्वल्पैरहोभिनृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् । हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥१३

मृतश्च भूयः संप्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः । सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति ॥१४

वैश्यवर्य त्वयाऽस्मत्तो वरो यश्चाभिवाञ्छितः । तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥१५

मार्कण्डेय उवाच –

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् । बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥१६

संयत आत्मा वाले तीन वर्षों तक इस प्रकार आराधना करते हुए, उन दोनों से प्रसन्न हुई, जगन्माता चण्डिका देवी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा – ॥९॥

श्री देवी ने कहा –

हे राजन् तुम जिस वस्तु की कामना करते हो तथा अपने कुल को आनन्दित करने वाले वैश्य तुम दोनों जिस वस्तु की अभिलाषा करते हो वह सब मुझसे प्राप्त करो। मैं प्रसन्न हुई हूँ, वह सब तुमको दूंगी ॥१०॥

मार्कण्डेय बोले—

तब राजा ने अगले जन्म में भी नष्ट न होने वाला एवं इस (जन्म) में भी शत्रुओं की सेना को बल पूर्वक नष्ट करके अपना राज्य माँगा ॥११॥

फिर वैराग्य युक्त मन वाले उस वैश्य ने भी 'यह मेरा, यह मैं' इस प्रकार की ममता और अहम् रूप आसक्ति का नाश करने वाला ज्ञान माँगा ॥१२॥

श्री देवी बोली -

हे राजन् ! तुम थोड़े ही दिनों में अपना राज्य प्राप्त करोगे। और वहाँ शत्रुओं को मारकर तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा ॥१३॥

मृत्यु के बाद तुम भगवान् विवस्वान् (सूर्य के अंश) से जन्म प्राप्त करके इस पृथ्वी पर सावर्णिक मनु के नाम से (विख्यात) होओगे ॥१४॥

हे वैश्यवर्य ! तुमने मुझसे जिस वर की अभिलाषा की है (मैं) उसे देती हूँ, तुम्हें मोक्ष के लिए ज्ञान प्राप्त होगा ॥१५॥

मार्कण्डेय ने कहा—

इस प्रकार उन दोनों को मनोवाञ्छित वरदान प्रदान करके एवं उनके द्वारा भक्ति पूर्वक स्तुति की गयी, देवी (अम्बिका) तत्काल अन्तर्धान हो गयीं ॥१६॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः । सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥१७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सावर्णिकमन्वन्तरे देवीमाहात्म्येसुरथवैश्ययोर्वर-
प्रदानं नाम नवतितमोऽध्यायः ।

इस तरह देवी से वरदान पाकर क्षत्रियों में श्रेष्ठ सुरथ (राजा) सूर्य से जन्म लेकर सावर्णि (नामक) मनु होंगे ॥१७।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में सावर्णिक मन्वन्तर में देवी माहात्म्य में 'सुरथ वैश्य वर प्रदान' नामक नब्बेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकनवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

सावर्णिकमिदं सम्यक् प्रोक्तं मन्वन्तरं तव । तथैव देवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम् ॥१

उत्पत्तयश्च या देव्या मातृणाञ्च महाहवे । तथैव सम्भवो देव्याश्चामुण्डाया यथाभवः ॥२

शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधः शुम्भनिशुम्भयोः । रक्तबीजवधश्चैव सर्वमेतत्तवोदितम् ॥३

श्रूयतां मुनिशार्दूल सावर्णिकमथापरम् । दत्तपुत्रश्च सावर्णिर्भावी यो नवमो मनुः ॥४

कथयामि मनोस्तस्य ये देवा मुनयो नृपाः । पारामरीचिभर्गाश्च सुधर्माणस्तथा सुराः ॥५

एते त्रिधा भविष्यन्ति सर्वे द्वादशका गणाः । तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु सहस्राक्षो महाबलः ॥६

साम्प्रतं कार्तिकेयो यो वह्निपुत्रः षडाननः । अद्भुतो नाम शक्रोऽसौ भावी तस्यान्तरे मनोः ॥७

मार्कण्डेय बोले—

यह तुमसे सावर्णिक मन्वन्तर का भली प्रकार प्रवचन किया और उसी प्रकार देवी माहात्म्य, महिषासुर वध और महारण में मातृ देवियों की उत्पत्ति तथा वैसे ही चामुण्डा देवी की उत्पत्ति, शिवदूती माहात्म्य तथा शुम्भ, निशुम्भ (नामक दैत्यों) का वध एवं रक्तबीज का वध इन सबका मैंने तुमसे कथन कर दिया ॥१-३॥

हे मुनिवर! अब आप दूसरे सावर्णिक मन्वन्तर को सुनिये। जो कि दत्त पुत्र सावर्णि नवम मनु होगा ॥४॥

और उस मन्वन्तर के जो देवता मुनि तथा राजागण हैं, उनको भी कहता हूँ, पाराशर, मरीचि भर्ग और सुधर्मा ये उसके देवता हैं ॥५॥

ये तीन गण हैं और इनमें प्रत्येक में बारह-बारह देवता होंगे तथा उस मन्वन्तर में जो इस समय वह्नि पुत्र छः मुखों वाले परम, पराक्रमी, सहस्र आँखों वाले कार्तिकेय ही 'अद्भुत' नाम के इन्द्र होंगे (और उस मन्वन्तर में) ॥६-७॥

मेघातिथिर्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान्द्युतिमांस्तथा। सप्तर्षयोऽन्यः सबलस्तथाऽन्यो हव्यवाहनः ॥८
धृष्टकेतुर्बर्हकेतुः खड्गहस्तो निरामयः। पृथुश्रवास्तथाऽर्चिष्मान् भूरिद्युम्नो बृहद्भयः ॥९
एते नृपसुतास्तस्य दत्तपुत्रस्य वै नृपाः। मनोस्तु दशमस्यान्यच्छृणु मन्वन्तरं द्विज ॥१०
मन्वन्तरे च दशमे ब्रह्मपुत्रस्य धीमतेः। सुखासीना निरुद्धाश्च द्विप्रकाराः सुराः स्मृताः ॥११
शतं संख्या हि ते देवा भविष्या भाविनो मनोः। यत्पुत्राणां शतं भावि तद्देवानां तदा शतम् ॥१२
शान्तिरिन्द्रस्तथा भावी सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः। सप्तर्षींस्तान्निबोधत्वं ये भविष्यन्ति वै तदा ॥१३
आपोमूर्तिर्हविष्माश्च सुकृति सत्य एव च। नाभागोऽप्रतिमश्चैव वासिष्मैश्चैव सप्तमः ॥१४
सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरियेणश्च वीर्यवान्। शतानीकोऽथ वृषभो ह्यनमित्रो जयद्रथः ॥१५
भूरिद्युम्नः सुपर्वा च तस्यैते तनया मनोः। भविष्या धर्मपुत्रस्य सावर्णस्यान्तरं श्रृणु ॥१६
विहंगमाः कामगाश्च निर्माणरतयस्तथा। त्रिः प्रकारा भविष्यन्ति एकैकस्त्रिशको गणाः ॥१७
मासर्तुदिवसा ये तु निर्माणपतयस्तु ते। विहङ्गमा रात्रयोऽथ मौहूर्त्ताः कामगा गणा ॥१८
इन्द्रोवृषाख्यो भविता तेषां प्रख्यातविक्रमः। हविष्माश्च वरिष्ठश्च ऋषिरन्यस्तथारुणिः ॥१९
निश्चरश्चानघश्चैव विष्टिश्चान्यो महामुनिः। सप्तर्षयोऽन्तरे तस्मिन्नग्नितेजाश्च सप्तमः ॥२०

मेघातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्. हव्यवाहन एवं सबल ये सात ऋषि हैं ॥८॥

और धृष्टकेतु, बर्हकेतु खड्गहस्त. निरामया, पृथुश्रवा, अर्चिष्मान् भूरिद्युम्न एवं वृहदमय उस दत्त पुत्र के ये सब राजकुमार ही नृप होंगे। हे द्विज ! अब आप दूसरे दसवें मनु के मन्वन्तर को सुनिये ॥९-१०॥

इस मन्वन्तर में महाबुद्धिमान् ब्रह्माजी के पुत्र दसवें मनु होंगे और सुखासीन एवं अनिरुद्ध दो प्रकार के देवता कहे गये हैं ॥११॥

भावि मनु के मन्वन्तर में देवता सौ की संख्या वाले होंगे। जिसमें पुत्रों की संख्या भी सौ होगी और उसी में देवताओं की संख्या भी सौ ही होगी ॥१२॥

उस समय सकस्त इन्द्र गुणों से युक्त शांति इन्द्र होंगे और उस मन्वन्तर में जो सप्तर्षि होंगे उनको आप मुझसे सुनिये ॥१३॥

आपोमूर्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम, और वसिष्ठ ये सप्तर्षि होगे ॥१४॥

सुक्षेत्र, उत्तमोजा, भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ एवं, ॥१५॥

भूरिद्युम्न और सुपर्वा उस दसवें मनु के ये . दस) पुत्र होंगे। (अब आप) धर्म पुत्र के होने वाले मन्वन्तर को सुनिये ॥१६॥

विहंगम, कामग और निर्माण रति ये तीन देवताओं के गण होगे और इनमें प्रत्येक में तीस देवता होंगे ॥१७॥

मास, ऋतु और दिवस ये निर्माण पति हैं और रात्रि विहंगम देव तथा सम्पूर्ण मुहूर्त जन्य कामग सुरों के हैं ॥१८॥

उस मन्वन्तर में प्रसिद्ध पराक्रम वाले, पृषाख्य नाम के इन्द्र होंगे और हविष्मान्, वसिष्ठ, आरुणि, निश्चर, अनघ, और विष्टि तथा अग्नि तेजा ये सात उस मन्वन्तर के सप्तर्षि होंगे ॥१९-२०॥

सर्वत्रगः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः । हेमधन्वा दृढायुश्च भाविनस्तत्सुता नृपाः ॥२१
द्वादशे रुद्रपुत्रस्य प्राप्ते मन्वन्तरे मनोः । सावर्णाख्याश्च ये देवा मुनयश्च शृणुष्व तान् ॥२२
सुधर्माणः सुमनसो हरितो रोहितस्तथा । सुवर्णाश्च सुरास्तत्र पञ्चैतेदशका गणाः ॥२३
तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महाबलः । सर्वैरिन्द्रगुणैर्युक्ताः सप्तर्षीनपि मे शृणु ॥२४
द्युतिस्तपस्वी सुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः । तपोरतिस्तथैवान्यः सप्तमस्तु तपोधृतिः ॥२५
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः । मित्रवान् मित्रविन्दश्च भाविनस्तत्सुतानृपाः ॥२६
त्रयोदशस्य पर्य्याये रौच्याख्यस्य मनोः सुरान् । सप्तर्षींश्च नृपांश्चैव गदतो मे निशामय ॥२७
सुधर्माणः सुरास्तत्र सुकर्माणस्तथापरे । सुशर्माणः सुरा ह्येते समस्ता मुनिसत्तम ॥२८
महाबलो महावीर्यस्तेषामिन्द्रो दिवस्पतिः । भविष्यानथ सप्तर्षीन् गदतो मे निशामय ॥२९
घृतिमानव्ययश्चैव तत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः । निर्मोहः सुतपाश्चान्यो निष्प्रकम्पश्च सप्तमः ॥३०
चित्रसेनो विचित्रश्च निर्यातिर्निर्भयो दृढः । सुनेत्रः क्षत्रबुद्धिश्च सुव्रतश्चैव तत्सुताः ॥३१

इति श्रीमार्कंडेयमहापुराणे भाविरौच्यमन्वन्तरे भविष्यदिन्द्रादीनां वर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ।

एवं सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरुद्वह, हेमधन्वा, दृढ़ायु, उस मनु के ये पुत्र और राजा होंगे ॥२१॥

बारहवें मनु रुद्र पुत्र के सावर्ण नामक मन्वन्तर में जो देवता और ऋषि होंगे अब तुम उनको सुनो ॥२२॥

(उस मवन्तर में) सुधर्मा, सुमनस, हरित, रोहित तथा सुवर्ण ये पांच देवगण हैं तथा इनमें दस-दस देवता होंगे ॥२३॥

और उसमें सब इन्द्र गुणों से युक्त महाबली, ऋतधामा इन्द्र होंगे, अब मुझसे सप्तर्षियों को भी सुनो ॥२४॥

द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोनिधि, तपोरति, और तपोधृति ये सात सप्तर्षि हैं ॥२५॥

और देववान् उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्र, विन्द, उस मनु के ये पुत्र भावी नृप होंगे ॥२६॥

अब रौच्य नामक तेरहवें मनु के देवता सप्तर्षि और राजाओं को मुझसे सुनो ॥२७॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! उस मन्वन्तर में सुधर्मा, सुकर्मा, और सुशर्मा ये ही समस्त देवता होंगे ॥२८॥

और उसमें महाबली एवं महा पराक्रमी दिवस्पति इन्द्र होंगे अब होने वाले सप्तर्षियों के विषय में भी मुझसे सुनिये ॥२९॥

घृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी , निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और सातवें निष्प्रकम्प ये सप्तर्षि होंगे ॥३०॥

एवं रौच्य मनु के चित्रसेन, विचित्र, नियति, निर्भय, दृढ़, सुनेत्र, क्षत्र बुद्धि एवं सुव्रत ये पुत्र होंगे ॥३१॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में भाविरौच्यमन्वन्तर में भविष्य में होने वाले इन्द्रादिकों का वर्णन नामक इक्यानवेंवां अध्याय समाप्त हुआ ।

द्विनवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

रुचिः प्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहंकृतः । यत्रास्त मितशायी च चचार पृथिवीमिमाम् ।।१
अनाग्निमनिकेतं तमेकाहारमनाश्रमम् । विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरो मुनिम् ।।२

पितर ऊचुः—

वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः । स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद् बन्धस्तेनाऽनिशं विना ।।३
गृही समस्तदेवानां पितॄणाञ्च तथार्हणाम् । ऋषीनामतिथीनाञ्च कुर्वन् लोकानुपाश्नुते ।।४
स्वाहोच्चारणतो देवान् स्वधोच्चारणतः पितॄन् । विभजत्यन्नदानेन नूनं भूताद्यार्नातिथीनपि ।।५
स त्वं दैवादृणाद् बन्धं बन्धमस्मदृणादपि । अवाप्नोषि मनुष्यर्षिभूतेभ्यश्च दिने दिने ।।६
अनुत्पाद्य सुतान् देवानसन्तर्प्य पितॄंस्तथा । भूतादींश्च कथमौढचात्सुगतिं गन्तुमिच्छसि ।।७
क्लेमेवैहिकं पुत्र मन्यामोऽत्र भवेत्तव । मृतस्य नरकं तद्वत् क्लेशमेवान्यजन्मनि ।।८

रुचिरुवाच—

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतेस्तथा । भवत्यतो मया पूर्वं न कृतो दारसंग्रहः ।।९

मार्कण्डेय बोले—

प्राचीनकाल में प्रजापति रुचि ने समस्त ममता और अहंकार का त्याग कर दिया और जहाँ भी सूर्य छिप जाता था वहीं वे सो जाते थे । (इस प्रकार) अस्तमिशायी होकर इस पृथ्वी पर विचरण करने लगे ।।१।।

अग्नि और गृहरहित, एकाहारी, निराश्रय, विमुक्त राग उसको देखकर, पितरों ने उस मुनि से कहा—।।२।।

पितर बोले—

हे वत्स ! तुमने पुण्य युक्त दार संग्रह (विवाह) क्यों नहीं किया हैं स्वर्ग और मोक्ष का हेतु होने से उसके विना तुमने बंधन कर लिया है ।।३।।

सभी देवता, पितर, ऋषि, अतिथि, आदि का सत्कार करके ही गृहस्थी को स्वर्गादि लोकों के सुख की प्राप्ति होती है ।।४।।

मनुष्यों को स्वाहा के उच्चारण से, देवताओं को स्वधा के उच्चारण से, पितरों के और अन्न देकर अतिथियों के ऋण से मुक्ति मिलती है ।।५।।

लेकिन तुम तो मनुष्य, ऋषि, देव और हमारे ऋण में भी दिन प्रतिदिन बंधते जा रहे हो ।।६।।

सन्तानोत्पत्ति किये बिना देवताओं को, पितरों को अन्य प्राणियों को तृप्त किये बिना श्रेष्ठ गति पाने की किस प्रकार आशा करते हो ।।७।।

हे पुत्र हमारे विचार से (इस स्थिति में) तुमको इस लोक में भी क्लेश की ही प्राप्ति होगी और मरने पर नरक तथा उसी प्रकार अन्य जन्मों में भी कष्ट मिलेगा ।।८।।

रुचि ने कहा—

स्त्री ग्रहण अत्यन्त दुःख और पाप एवं अधोगति देने वाला होता है। इसीलिए मैंने पहले ही स्त्री परिग्रह नहीं किया ।।९।।

आत्मनः संयमो योऽयं क्रियतेक्षनियन्त्रणात् । स मुक्ति हेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ।।१०
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं यदात्मा निष्परिग्रहैः । ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि चित्ताम्भोभिर्वरं हि तत् ।।११
अनेकभवसंभूतकर्मपङ्काङ्कितो बुधैः । आत्मा सद्वासनातोयैः प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियैः ।।१२

पितर ऊचुः—

युक्तं प्रक्षालनं कर्तुमात्मनो नियतेन्द्रियैः । किन्तु लेपाय मार्गोऽयं यत्र त्वं पुत्र वर्तसे ।।१३
पञ्चर्णदीनैरशुभं नुद्यतेऽनभिसन्धितैः । फलैस्तथोपभोगश्च पूर्वं कर्मशुभाशुभैः ।।१४
एवं न बन्धो भवति कुर्वतः कारणात्मकम् । न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनभिसन्धितम् ।।१५
पूर्वकर्मकृतं भोगैः क्षीयतेऽहर्निशं तथा । सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकैर्नृणाम् ।।१६
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते । न त्वेवमविवेकेन पापपङ्केन लिप्यते ।।१७

रुचिरुवाच

अविद्या पठ्यते वेदैः कर्ममार्गः पितामहाः । तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् ।।१८

इन्द्रिय निग्रह से आत्म संयम ही जिसका मैं आचरण कर रहा हूँ, मोक्ष का कारण है। दार परिग्रह से कभी-भी मोक्ष नहीं मिल सकता ।।१०।।

ममता रूपी कीचड़ में लिप्त होने वाले आत्मा को जो परिग्रह हीन पुरुष नित्य प्रति चित्त रूपी जल से धोते हैं, वही पुरुष श्रेष्ठ है ।।११।।

अनेक जन्मों में उत्पन्न कर्म रूप कीचड़ में सने हुए आत्मा को सद्वासना रूपी जल से स्वच्छ करना ही संयतेन्द्रिय बुद्धिमानों का कर्तव्य है ।।१२।।

पितर बोले—

यह ठीक है कि संयतेन्द्रिय पुरुष को अपनी आत्मा का प्रक्षालन करना चाहिये। किन्तु हे पुत्र ! जिस मार्ग पर तुम चल रहे हो वह तो लिप्त करने वाला मार्ग है ।।१३।।

जिस प्रकार निष्काम दान से अमंगल का नाश होता है वैसे ही शुभाशुभ फल के भोग से पूर्व जन्म के संचित कर्मों का नाश होता है ।।१४।।

इस प्रकार कारणात्मक कर्म करते हुए कर्म बन्धन नहीं होता और निष्काम कर्म से भी कर्म बन्धन नहीं होता है ।।१५।।

हे वत्स ! मनुष्यों के पूर्व जन्मों के किये गये पुण्य और पाप युक्त अथवा सुख दुःखात्मक कर्म भोगों के द्वारा ही दिन रात क्षीण होते रहते हैं ।।१६।।

इसलिए बुद्धिमान् को इस प्रकार अपनी आत्मा का प्रक्षालन करना चाहिए। यह नहीं कि इस प्रकार के अविवेक और पाप रूपी कीचड़ में अलग लिप्त पड़े ।।१७।।

रुचि बोला—

हे पितामह ! (पितरगणों) वेद में कर्म मार्ग को ही अविद्या कहा गया है। तब फिर आप मुझे क्यों कर्म मार्ग में प्रवृत्त कर रहे हैं ? ।।१८।।

पितर ऊचुः —

अविद्या सत्यमेवैतत्कर्म नैतन्मृषावचः । किन्तु विद्या परिप्राप्तौ हेतुः कर्म न संशयः ॥१९
विहिताकरणात् पुंभिरसद्भिः क्रियते तु यः । संयमो मुक्तये नासौ प्रत्युताऽधोगतिप्रदः ॥२०
प्रक्षालयामीति भवान् वत्सात्मानं तु मन्यते । विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वन्तु विलिप्यसे ॥२१
अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् । अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्या यतो हि सा ॥२२
तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम् । मा जन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्य तु लौकिकम् ॥२३

रुचिरुवाच —

वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः सम्प्रदास्यति । भार्यां तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः ॥२४

पितर ऊचुः—

अस्माकं पतनं वत्स भवतश्चाप्यधोगतिः । नूनं भावी भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः ॥२५

मार्कण्डेय उवाच —

इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम । बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वाता हता इव ॥२६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे रुच्युपाख्यानवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ।

पितर बोले —

कर्म ही अविद्या है, यह सत्य है किन्तु कर्म के द्वारा ही यह वचन असत्य हो जाता है क्योंकि विद्या की प्राप्ति में कर्म ही एक मात्र कारण है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१९॥

किन्तु मनुष्य के द्वारा जो विहित कर्म नहीं किये जाते हैं । उनको संयम से मुक्ति प्राप्ति नहीं होती अपितु वह तो अधोगति प्रदान करने वाला होता है ॥२०॥

हे वत्स ! जो तुम अपने को मान रहे हो कि मैं शुद्ध चित्त हो रहा हूँ किन्तु तुम तो विहित कर्मों के न करने से उनके पापों में लिप्त होते जा रहे हो ॥२१॥

कभी-कभी अविद्या भी विष के समान मनुष्यों के उपकार के लिए हो जाती है । यदि उचित उपाय से उसका अनुष्ठान किया जाए । जब अनुचित प्रकार से उसका उपयोग किया जाता है तो उससे बन्धन होता है ॥२२॥

इसलिए हे वत्स ! तुम विधिवत् दार संग्रह करो । जिससे सांसारिक धर्म की प्राप्ति न होने से तुम्हारा जन्म विफल न हो ॥२३॥

रुचि बोला —

मैं इस समय बूढ़ा हो गया हूँ । कौन पिता मुझे पत्नी देगा और दरिद्र के लिए तो दार संग्रह और भी दुष्कर कार्य है ॥२४॥

पितर बोले —

हे वत्स ! यदि तुम हमारे वचनों को नहीं मानते हो, तो हमारा पतन और तुम्हारी अधोगति होनी निश्चित है ॥२५॥

मार्कण्डेय बोले —

हे मुनिवर ! इस प्रकार कहकर, पितरगण उसके देखते-देखते इस प्रकार अदृश्य हो गये, जैसे वायु के झोकों से दीप बुझ जाता है ॥२६॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में रुच्युपाख्यानवर्णन नामक बानवेंवां अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रिनवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः । कन्याभिलाषी-विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम् ॥१
कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्याग्निदीपितः । चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥२
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः । क्षिप्रं भवेत् पितृणां यो ममाभ्युदयकारकः ॥३
इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः । तपसाराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥४
ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे स वेधसम् । दिदृक्षुः सुचिरं कालं परं नियममास्थितः ॥५
ततः स्वं दर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः । उवाच तं प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम् । पितृणां वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥
ब्रह्मा चाह रुचिं विप्रं श्रुत्वा तस्याभिवाञ्छितम् ॥७

ब्रह्मोवाच —

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः ।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान् विप्र समुत्पाद्य क्रियास्तथा ॥८
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि । स त्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥९

मार्कण्डेय ने कहा—

तब उन पितर वाक्यों से कन्या की अभिलाषा करने वाला वह विप्रर्षि अत्यधिक उद्विग्न मन होकर पृथ्वी पर विचरण करने लगा ॥१॥

पितरों की वाणी रूपी अग्नि से जलते हुए कन्या प्राप्त न होने से अत्यन्त उद्विग्न मन वाले उसको अत्यधिक चिन्ता हुई ॥२॥

क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? पितरों का और मेरा अभ्युदय करने वाला दार संग्रह शीघ्र ही कैसे होवे ॥३॥

यह विचार करते हुए उसके मस्तिष्क में यह विचार आया कि इसके लिए मैं कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा की तपस्या द्वारा आराधना करूँ ॥४॥

उसके बाद ब्रह्मा के दर्शन के लिए, चिरकाल तक अत्यन्त कठोर नियमों का पालन करते हुए, दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या की ॥५॥

तब लोक के पितामह ब्रह्माजी ने स्वयं उनको दर्शन दिये और बोले—'मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, जो चाहते हो उसे कहो' ॥६॥

तदनन्तर उसने जगत् पति ब्रह्मा जी को प्रणाम करके पितरों के वचनानुसार जो अभिलषित था, उनसे निवेदन किया। उस विप्र की अभीष्ट रुचि को सुनकर ब्रह्माजी बोले— ॥७॥

ब्रह्मा बोले—

हे ब्रह्मन् ! तुम प्रजापति होओगे। अतः तुम्हें सन्तानों की उत्पत्ति करनी चाहिए। प्रजा की सृष्टि करके एवं पुत्रों को उत्पन्न कर तथा इस प्रकार समस्त क्रियाएँ करके, अधिकृत होकर ही तुम सिद्धि प्राप्त करोगे। इसलिए तुम जैसा पितरों ने कहा है, विवाह करो ॥८-९॥

कामञ्चेयमधिध्याय क्रियतां पितृपूजनम् । त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितान् ।।
पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किं न दद्युः पितामहाः ।।१०

मार्कण्डेय उवाच—

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । नद्या विविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम् ।।११
तुष्टाव च पितॄन् विप्रः स्तवैरेभिस्तथादृतः । एकाग्रः प्रयतो भूत्वा भक्ति-नम्रात्मकन्धरः ।।१२

रुचिरुवाच—

नमस्येऽहं पितॄच्छ्राद्धे ये वसंन्त्यधिदेवताः । देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः ।।१३
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः । श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ।।१४
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान् । श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ।।१५
नमस्येऽहं पितॄन्भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैरपि ।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम् ।।१६
नमस्येऽहं पितॄन् मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ।।१७
नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्य प्रदायिनः ।।१८

और इस कामना का ध्यान करके पितरों का पूजन करो। संतुष्ट हुए वे पितर ही तुम्हारा अभीष्ट प्रदान करेंगे। संतुष्ट हुए पितर पत्नी और पुत्र क्या नहीं देंगे ? ।।१०।।

मार्कण्डेय ने कहा—

अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा जी के इन वचनों को सुनकर, उसने नदी के एकान्त तट पर जाकर पितरों का तर्पण किया ।।११।।

तब उन्होंने अत्यन्त आदर पूर्वक, एकाग्रचित्त से, भक्तिभाव से कंधे झुकाकर इन स्तोत्रों के द्वारा पितरों की स्तुति की ।।१२।।

रुचि बोला—

श्राद्धकाल में जो अधिदेवता के रूप में निवास करते हैं एवं श्राद्ध में देवगण भी जिनको स्वाहोत्तरों से तर्पण करते हैं। उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१३।।

स्वर्ग में भुक्ति मुक्ति के अभिलाषी महर्षिगण भक्तिसहित जिनका मनोमय श्राद्ध करके तृप्त करते हैं। उन पितृगणों को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१४।।

जिनको सिद्धगण दिव्य और उत्तम उपहारों से श्राद्ध के दिनों में स्वर्ग से भली प्रकार तृप्त करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ।।१५।।

मैं उन पितरों को भक्ति पूर्वक नमस्कार करता हूँ जो अत्युत्कृष्ट ऋद्धि की कामना वाले गुह्यकों के द्वारा भी भक्ति से तन्मय होकर पूजे जाते हैं ।।१६।।

अभीष्ट लोकों के दाता जो पितरगण सदैव पृथ्वी पर श्राद्धों में मनुष्यों द्वारा भक्ति पूर्वक पूजे जाते हैं। उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१७।।

मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ, प्रजापत्य प्रदान करने वाले जो पृथ्वी पर इच्छित विषय की प्राप्ति के लिए सदैव पृथ्वी पर ब्राह्मणों द्वारा पूजे जाते हैं ।।१८।।

नमस्येऽहं पितॄन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः । वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः ॥१९
नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः । ये संयतात्मभिर्नित्यं संतर्प्यन्ते समाधिभिः ॥२०
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैः राजन्यास्तर्पयन्ति यान् । कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥२१
नमस्येऽहं पितॄन्वैश्यैरच्चर्यन्ते भुवि ये सदा । स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥२२
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैर्ये शूद्रैरपि भक्तितः । सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्नाख्याताः सुकालिनः ॥२३
नमस्येऽहं पितॄच्छ्राद्धैः पाताले ये महासुरैः । सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥२४
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले । भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ॥२५
नमस्येऽहं पितॄञ्छ्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा । तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥२६

पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोके च तथान्तरिक्षे ।
महीतले ये च सुरादिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥२७
पितॄन्नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः ।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८

जो पितर गण, तप के कारण जिनके पाप धुल गये हैं, मिताहार वाले उन वन वासियों द्वारा वन्य वस्तुओं से तृप्त किये जाते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१९॥

नैष्ठिक व्रतों का आचरण करने वाले जो संयतात्मा विप्रों के द्वारा समाधि से नित्य तृप्त किये जाते हैं । उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०॥

तीनों लोकों में फल देने वाले जिन पितरों को क्षत्रिय गण श्रद्धापूर्वक विधिवत् कव्य (श्राद्धान्न) प्रदान करके तृप्त करते हैं । उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२१॥

मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ जो अपने कर्म में लगे हुए वैश्यों के द्वारा पुष्प, धूप, अन्न और जलादि पूजा सामग्री से पृथ्वी पर सदैव पूजे जाते हैं ॥२२॥

इस संसार में जो सुकालीन नामक प्रसिद्ध पितृगण शूद्रों के द्वारा भी भक्ति पूर्वक श्राद्धों में तृप्त किये जाते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३॥

जिन स्वधाहारी पितरों को पातालवासी महासुर दम्भ और मद का त्याग करके श्राद्ध के द्वारा सदैव तृप्त किये जाते हैं, मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ॥२४॥

जो रसातल में काम की अभिलाषा वाले नागों के द्वारा सम्पूर्ण भोगों से विधिवत् श्रद्धा पूर्वक पूजा किये जाते हैं, मैं उन पितरों को नमस्कार करता हूँ ॥२५॥

जिन पितरों को वे सर्पगण मंत्र भोग और सम्पत्ति आदि सामग्रियों से वहीं पर विधिवत् श्राद्धों द्वारा सदैव तृप्त करते हैं, उन पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२६॥

जो पितरगण देवलोक और अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी तल पर प्रत्यक्ष रूप से रहते हैं, जो देवताओं द्वारा भी पूजनीय हैं । वे मेरे समीप आकर अभीष्ट प्रदान करें ॥२७॥

परमात्मा स्वरूप उन पितरों को नमस्कार है जो मूर्तिमान् होकर विमान में निवास करते हैं एवं योगी जन कष्टों की मुक्ति के लिए जिनका अपने निर्मल चित्तों से ध्यान करते हैं ॥२८॥

पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदायेऽनभिसंहितेषु ॥२९
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान्पशून्स्वानिबलं गृहाणि ॥३०
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति ।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिनापुष्टिमितो व्रजन्तु ॥३१
एषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः ।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥३२
ये खड्गिमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
कालेन शाकेन महर्षिवर्यैः संप्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥३३
कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषाममरार्चितानाम् ।
तेषां तु सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धान्नभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्च्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु ।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तृप्तिम् ॥३५
पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां च नवार्कवर्णाः ।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च ॥३६

उन पितरों को नमस्कार है जो स्वर्ग में मूर्तिमान् रहकर काम्य फल के निमित्त स्वधा का आहार करते हैं और प्रार्थियों को इच्छित फल देने में समर्थ हैं और निष्काम कर्म में मोक्ष प्रदान करते हैं ॥२९॥

जो समस्त प्रार्थियों को उनकी इच्छित वस्तु प्रदान करते हैं और जो देवत्व, इन्द्रत्व अथवा इससे भी बढ़कर हैं तथा जो पुत्र, धन, पशु, बल, घर आदि कामना के अनुसार देते हैं, वे पितृगण (इस पूजन) में तृप्त हों ॥३०॥

और जो सोम-किरणों, सूर्य बिम्ब और श्वेत विमान में सदैव निवास करते हैं, वे पितृगण मेरे द्वारा तृप्त होते हुए अन्न, जल, गन्धादि से पुष्टि को प्राप्त होवें ॥३१॥

जो अग्नि में घृताहुति देने से तृप्त होते हैं जो ब्राह्मणों के शरीर में स्थित होकर भोजन करते हैं तथा जो पिण्ड दान से प्रसन्न होते हैं, वे पितरगण इस यजन में अन्न और जल से तृप्त होवें ॥३२॥

देवता गैण्डे के मांस और अभीष्ट दिव्य मनोहर काले तिलों से जिनको प्रसन्न करते हैं और महर्षि श्रेष्ठ काल और शाक द्वारा जिनको तृप्त करते हैं, वे पितृगण मेरे स्तवन् से प्रसन्न हों ॥३३॥

देवताओं द्वारा पूजित उन पितरों के लिए जो कव्य अभीष्ट हैं उन्हीं पुष्प, गन्ध, अन्नादि पदार्थों को मैंने संग्रह किया है, इसलिए वे इनके निकट आवें ॥३४॥

जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं और प्रतिमाह के अन्तिम अष्टकों में पूजे जाते हैं। तथा वर्ष के अन्त में अभ्युदय के लिए जिनका पूजन होता है वे पितरगण मेरे इस पूजन द्वारा तृप्त हों ॥३५॥

कुमुद और चन्द्रमा की कान्ति के समान जो पितरगण ब्राह्मणों द्वारा पूजे जाते हैं और नवोदित सूर्य के समान वर्ण वाले होकर जो क्षत्रियों द्वारा पूजित होते हैं तथा कनक जैसी कान्ति वाले होकर जो वैश्यों द्वारा पूजित होते हैं एवं नीली आभायुक्त होकर शूद्रों द्वारा पूज्य हैं ॥३६॥

तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगंधधूपान्नतोयादि निवेदनेन ।
तथाग्निहोमेन च यान्तु तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ।।३७
ये देवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहुतानि ।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ।।३८
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवं प्रजानाम् ।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ।।३९
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा । व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन् पितरस्तर्पिता मया ।।४०
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् । तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः ।।४१
प्रतीचीमाज्यपा स्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः । रक्षो भूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ।।४२
सर्वतश्चाधिपस्तेषां यमो रक्षां करोतु मे । विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः ।।
भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितृणां ये गणा नव ।।४३
कल्याणः कल्यतां कर्त्ताकल्यः कल्यतराश्रयः । कल्यताहेतुरनघः षडिमेते गणाः स्मृताः ।।४४
वरो वरेण्यो वरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा । विश्वपाता तथा धाता सप्तैवैते तथा गणाः ।।४५
महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः ।।४६
गणाः पञ्च तथैवैते पितृणां पापनाशनाः । सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः ।।४७

वे सभी पितृगण मेरे द्वारा किये गये पुष्प, धूप, अन्न तथा जलादि की भेंट और अग्नि होत्र से तृप्त होवें तथा मैं उन पितरों के प्रति सदैव प्रणत हूँ ।।३७।।

जो अत्यन्त तृप्ति के लिए देवताओं के समक्ष होमे गये सब श्रेष्ठ अन्न रूप कव्य का आहार करके तृप्त होते हैं और अणिमा आदि आठों सिद्धि (ऐश्वर्य) प्रदान करने वाले हैं । वे इस यजन में तृप्त हों, मैं उनके प्रति प्रणत हूँ ।।३८।।

जो पितरगण राक्षस, भूत, विकराल असुरों को नष्ट करने वाले तथा प्रजाओं के अमंगल का नाश करने वाले हैं और जो देवताओं के स्वामी इन्द्र के पूजनीय हैं वे देवों के आदि पुरुष पितृगण मेरे द्वारा किये गये यजन में तृप्त हों, मैं उनको प्रणाम करता हूँ ।।३९।।

अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, आज्यपा और सोमपा पितृगण मेरे द्वारा तर्पण किये गये इस श्राद्ध में तृप्ति को प्राप्त करें ।।४०।।

अग्निष्वात्ता, पितृगण मेरी पूर्व दिशा में रक्षा करें और बर्हिषद पितृगण दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें तथा स्मरण किये गये आज्यपा पितृगण पश्चिम दिशा में और सोमपा उत्तर दिशा में उसी प्रकार राक्षस, भूत, पिशाच और असुरों के द्वारा उत्पन्न किये गये दोषों से मेरी रक्षा करें ।।४१-४२।।

जिन पितरों के विश्व विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य शुभानन, भूतिद्, भूतिकृत् और भूति जो नौ गण हैं और उन सबके जो अधिपति यम हैं। वे मेरी रक्षा करें ।।४३।।

कल्याण, कल्यता, कर्त्ताकल्य, कल्यताश्रय, कल्यता हेतु, और अनग ये छः भी पितरों के गण कहे गये हैं और वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपाता, और धाता ये सातों भी उनके गण हैं तथा महान्, महात्मा, महित, महिमावान्, महाबल, ये पांचों एवं सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद् ये चारों भी पापों का नाश करने वाले पितरों के गण कहे जाते हैं ।।४४-४७।।

पितृणां कथ्यते चैतत्तथा गणचतुष्टयम् । एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥
ते मेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तु यच्छतु च सदा हितम् ॥४८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे रौच्यमन्वन्तरे रुच्युपाख्याने पितृस्तवनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ये इकतीस पितृगण हैं जिनसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है वे मेरी स्तुतियों से संतुष्ट हों और तुष्ट होकर सदैव हित प्रदान करें ॥४८॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में रौच्यमन्वन्तर में रुच्युपाख्यान में पितृस्तवन नामक तिरानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

एवं तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः । प्रादुर्बभूवः सहसा गगनव्याप्तिकारकः ॥१

तदृष्ट्वा सुमहत्तेजः समासाद्य स्थितं जगत् । जीनुभ्यामवनिं गत्वा रुचिः स्त्रोत्रमिदं जगौ ॥२

रुचिरुवाच —

अमूर्तानां च मूर्त्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम् । नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥३

इन्द्रादीनां च नेतारो दक्ष-मारीचयोस्तथा । सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ॥४

मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा । तान्नमस्याम्यहं सर्वान् पितरश्चार्णवेषु ये ॥५

नक्षत्राणां ग्रहाणां च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा । द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥६

मार्कण्डेय बोले —

उनके ऐसा स्तवन करने पर उनके समीप उच्च शिखा युक्त एवं आकाश को व्याप्त करने वाली, तेजो राशि प्रकट हुई ॥१॥

सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित करने वाले उस महान् तेज को देखकर, अपनी जानुओं से पृथ्वी का स्पर्श करके, रुचि ने इस स्तोत्र का कीर्तन किया ॥२।

रुचि ने कहा—

मूर्त एवं अमूर्त, उज्ज्वल तेज वाले, ध्यान सम्पन्न, दिव्य दृष्टि वाले, उन पितरों को मैं सदैव नमस्कार करता हूँ ॥३॥

दक्ष, मारीच, सप्तर्षि तथा इन्द्रादि तथा अन्यों के नेता स्वरूप काम (अभीष्ट) प्रदानं करने वाले पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

मनु प्रभृति मुनीश्वरों तथा सूर्य चन्द्रमा (आदि के नेता) समुद्र के जल में अवस्थित, उन सभी पितरों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥५॥

नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथ्वी (के नेता) स्वरूप पितरों को मैं हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ ॥६॥

देवर्षीणां ग्रहाणां च सर्वलोकनमस्कृतान् । अक्षय्यस्य सदा दातृन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ।।७
प्रजायतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च । योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ।।८
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु । स्वयंभुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ।।९
सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरांस्तथा । नमश्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ।।१०
अग्निरूपांस्तथैवान्यान् नमस्यामि पितृनहम् । अग्नीषोममय विश्वं यत एतदशेषतः ।।११
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्त्तयः । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ।।१२
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः । नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ।।१३

मार्कण्डेय उवाच –

एवं स्तुतास्ततस्तेन तेजसा मुनिसत्तम । निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशोदश ।।१४
निवेदितं च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् । तद्भूषितानथ स तान् ददृशे पुरतः स्थितान् ।।१५
प्रणिपत्य पुनर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ।।१६
ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् । वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः ।।१७

देवर्षियों, ग्रहों और सबलों के द्वारा नमस्कृत, सदैव अक्षय फल प्रदान करने वाले पितरों को मैं कर-बद्ध नमस्कार करता हूँ ।।७।।

प्रजापतियों में कश्यप, सोम, वरुण, योगेश्वर स्वरूप उन पितरों को मैं सदैव हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ ।।८।।

उन सातों गणों को नमस्कार है जो सातों गणों के साथ सातों लोकों में अवस्थित है और योगचक्षु सम्पन्न ब्रह्मा स्वरूप है । उन पितरों को (मैं) नमस्कार करता हूँ ।।९।।

जो पितर, सोम के आधार, योग मूर्ति, सोम स्वरूप तथा जगत् के पिता हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ ।।१०।।

जिनसे यह अग्नि और सोममय सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ उन अग्नि रूपी सभी (उसी प्रकार दूसरे) पितृ गणों को नमस्कार करता हूँ ।।११।।

जो चन्द्र, सूर्य, अग्नि स्वरूप तेजों में स्थित होकर जगत् स्वरूप और ब्रह्म स्वरूप है । उन समस्त योगी पितरों को मैं सयतमन से बार-बार नमस्कार करता हूँ । स्वधा का आस्वादन करने वाले वे पितर मुझ पर प्रसन्न होवें ।।१२-१३।।

मार्कण्डेय बोले—

हे मुनि श्रेष्ठ ! उसके द्वारा इस प्रकार स्तवन किये जाने पर उस तेज (पुंज) से, दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुये पितृ गण प्रकट हुए ।।१४।।

फिर जो पुष्प, गन्ध और अनुलेप उनको अर्पित किया गया था, उससे विभूषित हुए, पितरों को रुचि ने अपने सामने खड़े हुए देखा ।।१५।।

पुनः भक्ति पूर्वक प्रणाम करके, फिर हाथ जोड़कर सबको अलग-अलग तुम्हें नमस्कार है, तुम्हें नमस्कार है । इस प्रकार कहा ।।१६।।

तब प्रसन्न हुए पितरों ने मुनिवर रुचि से कहा, वर मांगों तब झुके हुए कन्धों वाले उसने उन्हे कहा ।।१७।।

ऋषिरुवाच—

साम्प्रतं सर्गकर्तृ त्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम। सोऽहं पुत्रीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥१८

पितर ऊचुः —

अद्यैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा। तस्यां च पुत्रो भविता भवतो मनुरुत्तमः ॥१९

मन्वन्तराधिपो धीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः। रुचे रौच्य इति ख्यातिं यो यास्यति जगत्त्रये ॥२०

तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः। भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥२१

त्वं च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः। क्षीणाधिकारो धर्मज्ञ ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥२२

स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मान्स्तोष्यति भक्तितः।
तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मज्ञान् तथोत्तमम् ॥२३

शरीरारोग्यमर्थं च पुत्रपौत्रादिकं तथा। प्रदास्यामो न संदेहो यच्चान्यदभिवाञ्छितम् ॥२४

तस्मात् पुण्यफलं लोके वाञ्छद्भिः सततं नरैः।
पितृणां चाक्षयां तृप्ति स्तव्याः स्तोत्रेण मानवै ॥२५

वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः।
श्राद्धे च य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ॥२६

पठिष्यन्ति द्विजाग्र्याणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः। स्त्रोत्रश्रवणसम्प्रीत्या सन्निधाने परे कृते ॥२७

रुचि बोले—

इस समय मुझको ब्रह्मा जी ने सृष्टि उत्पन्न करने का आदेश दिया है, इसलिये मैं धन्य, दिव्य और सन्तति उत्पन्न करने वाली पुत्री की इच्छा करता हूँ ॥१८॥

पितर बोले —

अभी तुमको शीघ्र ही अत्यन्त मनोरम पत्नी की प्राप्ति होगी और उसके गर्भ से तुमको मनु बनने वाले उत्तम पुत्र की प्राप्ति होगी ॥१९॥

हे रूचे ! तुम्हारा वह पुत्र बुद्धिमान् मन्वन्तराधि होगा और तुम्हारे नाम से ही, रुचि से रौच्यइ स नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्धि प्राप्ति करेगा ॥२०॥

फिर उसके भी महाबली, पराक्रमी, महात्मा, पृथ्वी का पालन करने वाले बहुत से पुत्र होंगे ॥२१॥

और तुम भी प्रजापति होकर, चार प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करके धर्मज्ञाता तथा अधिकार से क्षीण होकर, सिद्धि प्राप्त करोगे ॥२२॥

इन स्तोत्रों से जो मनुष्य हमारा भक्तिपूर्वक स्तवन करेगा उस पर सन्तुष्ट हुए हम उसको भोग तथा श्रेष्ठ आत्मज्ञान ॥२३॥

शरीर की निरोगता, धन, पुत्र, पौत्रादि और अन्य भी जो वाञ्छित होगा प्रदान करेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥२४॥

इसलिये संसार में पुण्य फल प्राप्ति की कामना वाले मनुष्यों को पितरों की अक्षय तृप्ति के लिये हमेशा इन स्तोत्रों के द्वारा स्तुति करनी चाहिए ॥२५॥

हमें प्रसन्न करने वाले व्यक्ति इन्हीं स्तोत्रों से हमारी सदैव स्तुति करें। जो (मनुष्य) श्राद्धों में, भोजन करते हुए ब्राह्मणों के समक्ष खड़े होकर, हमारी प्रीति उत्पन्न करने वाले इन स्तोत्रों को भक्तिपूर्वक पढ़ेंगे और स्तोत्रों के सुनने से उत्पन्न हुई प्रीति के द्वारा निकट में स्थित इष्ट मानेगा ॥२६-२७॥

अस्माकमक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयम् । यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ॥२८
अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा । अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतम् ॥२९
अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापि वा । अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य वा कृतम् ॥३०
अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात् । यत्रैतत् पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ॥३१
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी । हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥३२
शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिस्तोत्रमिदं शुभम् । वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि ॥३३
ग्रीष्मे च षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् । विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते ॥३४
वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे । शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ॥३५
अस्माकमेतत् पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् । यस्मिन्गृहे च लिखितमेतत् तिष्ठति नित्यदा ॥३६
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति । तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः ॥३७
श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिहेतुकम् । इत्युक्त्वा पितरस्तस्य स्वर्गता मुनिसत्तम ॥३८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे रौच्य मन्वन्तरे पितृवरप्रदानं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ।

उसके द्वारा हमारा अक्षय श्राद्ध अवश्य ही सम्पन्न होगा । इसमें कोई संशय नहीं है । भले ही वह (श्राद्ध) दोषयुक्त एवं अश्रोत्रिय हो ॥२८॥

चाहे वह श्राद्ध अन्याय से प्राप्त धन द्वारा अथवा किसी अन्य विधि से, अश्रद्धापूर्वक, दूषित उपहारों से, असमय में या विपरीत स्थान में अथवा विधिहीन या श्रद्धारहित दम्भी पुरुषों के द्वारा किया जाए, फिर भी जहाँ जिस श्राद्ध में हमें सुख प्रदान करने वाले ये स्तोत्र पढ़े जाते हैं । इनके पढ़ने से वह श्राद्ध हमें तृप्ति प्रदान करने वाला होता है ॥२९-३०॥

(ऐसा करने पर) हमें बारह वर्षों तक तृप्ति रहती है । हेमन्त ऋतु में (यह स्तोत्र पाठ) हमें बारह वर्षों तक तृप्ति प्रदान करता है ॥३२।

और शिशिर ऋतु में यह कल्याण कारक स्तोत्र दुगने वर्षों तक तृप्ति देता है और बसन्त ऋतु में यह श्राद्ध कर्म सोलह वर्षों के बराबर तृप्ति दायक होता है ॥३३॥

ग्रीष्म ऋतु में इसको पढ़ने से सोलह वर्षों तक तृप्ति रहती है । किसी कारण वश श्राद्ध के दूषित होने पर भी, इस स्तोत्र पाठ से वह श्रेष्ठ हो जाता है ॥३४॥

हे रुचि ! वर्षा ऋतु में (श्राद्ध के समय इस स्तोत्र पाठ से) हमारी अक्षय तृप्ति होती है । यदि मनुष्य शरद ऋतु में इस स्तोत्र पाठ सहित श्राद्ध के समय जल तर्पण करे तो हमें पन्द्रह वर्षों तक तृप्ति रहती है । जिस घर में लिखा हुआ यह स्तोत्र-श्रेष्ठ स्थान पर सदैव रखा रहता है । उसकी सन्निधि में, उस घर में श्राद्ध करने से हमारी सन्निधि प्राप्त होती है ॥३५-३६॥

इस लिये हे महाभाग ! तुम श्राद्ध के समय भोजन करते हुए ब्राह्मणों के सामने हमारी तृप्ति के हेतुभूत इन स्तोत्रों का पाठ करके सुनाओ । हे ! मुनिवर उससे इस प्रकार कहकर उसके पितर स्वर्ग चले गये ॥३७-३८॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में रौच्य मन्वन्तर में पितृवर प्रदान नामक चौरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्तस्मान्नदीमध्यात् समुत्तस्थौमनोरमा । प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सराः ।।१

सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् । प्रश्रयावनता सुभ्रूः प्रम्लोचा वै वराप्सराः ।।२

अतीवरूपिणी कन्या मत्सुता तपतां वर । जाता वारुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ।।३

तां गृहाण मया दत्तां भार्यार्थे वरवर्णिनीम् । मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः ।।४

मार्कण्डेय उवाच—

तथेति तेन साऽप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् । उज्जहार ततः कन्यां मालिनीं नाम नामतः ।।५

नद्याश्च पुलिने तस्मिन् सरुचिर्मुनिसत्तमः । जग्राह पाणिं विधिवत् समानाय्य महामुनीन् ।।६

तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्यो महामतिः । रौच्योऽभवत् पितुर्नाम्ना ख्यातोऽत्र वसुधातले ।।७

तस्य मन्वन्तरे देवास्तथा सप्तर्षयश्च ये । तनयाश्च नृपाश्चैव ते सम्यक् कथितास्तव ।।८

धर्मवृद्धिस्तथारोग्यं धनधान्यसुतोद्भवः । नृणां भवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वन्तरे श्रुते ।।९

मार्कण्डेय बोले —

इसके पश्चात् उस नदी के बीच से प्रम्लोचा नाम की मनोहर तन्वंगी श्रेष्ठ अप्सरा उसके पास ही ऊपर आयी ।।१।।

तब विनय से अवनत प्रम्लोचा नाम की श्रेष्ठ अप्सरा रुचि से मधुर वाणी में बोली ।।२।।

हे तपस्वी श्रेष्ठ ! मुझे वरुण पुत्र महात्मा पुष्कर से अत्यन्त रूपवती कन्या उत्पन्न हुई थी ।।३।।

मेरे द्वारा दी गयी वरवर्णिनी-कन्या को आप पत्नी बनाने के लिये ग्रहण कीजिये । उससे आपको बुद्धिमान् मनु पुत्र उत्पन्न होगा ।।४।।

मार्कण्डेय बोले—

'ऐसा ही हो' उसने उस अप्सरा से कहा और उस (प्रम्लोचा) ने भी नदी जल से सुन्दर शरीर वाली मालिनी नाम की कन्या को ऊपर निकाला ।।५।।

(तब) मुनि श्रेष्ठ उन रुचि ने, उसी नदी के तट पर, मुनियों को एकत्र करके विधिवत् पाणि ग्रहण किया ।।६।।

तब उन्हें उससे महा पराक्रमी और बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ जो इस पृथ्वी पर पिता के नाम के अनुसार ही रौच्य नाम से प्रसिद्ध हुआ ।।७।।

उस मन्वन्तर में जो देवता सप्त ऋषि, पुत्र, राजा हुए मैंने तुमसे (पहले ही भली प्रकार बता दिये ।।८।।

इस मन्वन्तर के सुनने पर मनुष्यों को निःसन्देह धर्म वृद्धि, आरोग्य, धन-धान्य और पुण्य प्राप्ति होती है ।।९।।

पितॄस्तवं तथा श्रुत्वा पितॄणां च तथा गणान्। सर्वान् कामानवाप्नोति तत्प्रसादान्महामुने ॥१०

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे मालिनीपरिणयपूर्वकं रौच्यमन्वन्तरसमाप्तिः नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः।

हे महामुने ! पितरों तथा पितृ गणों की इस स्तुति को सुनकर (मनुष्य) उनकी कृपा से सभी कामनाओं को पूर्ण करता है ॥१०॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मालिनी परिणयपूर्व रौच्य मन्वन्तर समाप्ति नामक पिचानवेंवां अध्याय समाप्त हुआ।

षण्णवतितमोऽध्यायः

इति रौच्यमन्वन्तरं समाप्तम् ॥

मार्कण्डेय उवाच—

ततः परं तु भौत्यस्य समुत्पत्तिं निशामय। देवानृषींस्तथा पुत्रांस्तथैव वसुधाधिपान् ॥१
बभूवाङ्गिरसः शिष्यो भूतिर्नाम्नातिकोपनः। चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थे मुनिरागस्य सौम्यवाक् ॥२
तस्याश्रमे मातरिश्वा न ववावतिनिष्ठुरम्। नातितापं रविश्चक्रे पर्ज्जन्यो नातिकर्दमम् ॥३
नातिशीतं च शीतांशुः परिपूर्णोऽपि रश्मिभिः। चकार भीत्या वै तस्य कोपनस्यातितेजसः ॥४
ऋतवश्चक्रमं त्यक्त्वा वृक्षेष्वाश्रमजन्मसु। तस्य पुष्पफलं चक्रुराज्ञया सार्वकालिकम् ॥५
ऊहुरापश्च छन्देन तस्याश्रमसमीपगाः। कमण्डलुगताश्चैव तस्य भीता महात्मनः ॥६

इस प्रकार रौच्यमन्वन्तर समाप्त हुआ।

मार्कण्डेय बोले—

तत्पश्चात् भौत्य मनु की उत्पत्ति और (उस मन्वन्तर के) देव, ऋषि, पुत्र एवं राजाओं के विषय में सुनो ॥१।

अंगिरस मुनि के भूति नामक अत्यन्त क्रोधी शिष्य हुए। अनुरागी और विनीत वाणी वाले मुनि को भी वे थोड़े से अपराध से प्रचण्ड शाप देने वाले थे ॥२॥

उनके आश्रम में वायु भी अधिक वेग से नहीं चलती थी और न ही सूर्य अधिक तपता था तथा बादल भी अधिक कींचड़ नहीं करते थे ॥३॥

पूर्ण यौवन वाला (सम्पूर्ण किरणों से युक्त) चन्द्रमा भी अत्यन्त तेजस्वी उन मुनि के क्रोध के भय से अधिक शीतलता प्रदान नहीं करता था ॥४॥

अपने क्रम को त्याग कर ऋतुएं भी उनके आश्रम में उत्पन्न होने वाले वृक्षों पर उनको आज्ञा से सभी ऋतुओं के पुष्प एवं फल प्रदान करती थी ॥५॥

उनके आश्रम के समीप बहता हुआ नदी का जल भी उन महात्मा के भय से उनकी इच्छानुसार क्षण मात्र में कमण्डल में आ जाता था ॥६॥

नातिक्लेशसहो विप्रः सोऽभवत् कोपनोभृशम् । अपुत्रश्च महाभागः स तपस्यकरोन्मनः ।।७
पुत्रकामो यताहारः शीतवातानलाहतः । तपस्यामि विचिन्त्येति तपस्येव मनोदधे ।।८
तस्येन्दुर्नातिशीताय नातितापाय भास्करः । अभवन्मातरिवा च ववौ नाति महामुने ।।९
आपीड्यमानो द्वन्द्वैश्च स भूतिर्मुनिसत्तमः । अनवाप्याभिलाषं तं तपसः स न्यवर्त्तत ।।१०
तस्य भ्राता सुवर्च्चाऽभद्यज्ञे तेनाभिमन्त्रितः । यियासुः शान्तिनामानं शिष्यमाह महामतिम् ।।११
प्रशान्तमक्षप्रतिमं विनीतं गुरूकर्मणि । सदोद्युक्तं शुभाधारमुदारं मुनिसत्तमम् ।।१२

भूतिरुवाच —

अहं यज्ञं गमिष्यामि भ्रातुः शान्ते सुवर्च्चसः । तेनाहूतस्त्वया चेह यत्कर्त्तव्यं शृणुष्व तत् ।।१३
अतिजागरणं वह्निस्त्वया कार्यं ममाश्रमे । तथा तथा प्रयत्नेन यथाग्निर्न शमं व्रजेत् ।।१४

मार्कण्डेय उवाच —

इत्याज्ञाप्य तथेत्युक्तो गुरुः शिष्येण शान्तिना । जगाम यज्ञं तं भ्रातुराहुतः स यवीयसः ।।१५
स च शान्तिर्वनाद्यावत् समित्पुष्पफलादिकम् । उपानयति भूत्यर्थं गुरोस्तस्य महात्मनः ।।१६

हे विप्र ! अत्यन्त कोधी वे ऋषि अधिक कष्ट सहन नहीं कर पाते थे । पुत्र हीनता के कारण उन्होंने तप करने का विचार किया ।।७।।

पुत्र की अभिलाषा के करने वाले उसने, संयत आहार होकर, शीत, वायु और अग्नि की वेदना सहकर ही मैं तप करूंगा, यह विचार कर, तपस्या में चित्त लगाया ।।८।।

हे महामुने ! उनके क्रोध के कारण न तो चन्द्रमा अधिक शीतलता देता था और न सूर्य अधिक तपता था और नहीं वायु ही अधिक वेग से प्रवाहित हुआ ।।९।।

शीत और ताप से पीड़ित होते हुए, मुनि श्रेष्ठ भूति ने अपनी मनोकामना प्राप्त न करके ही उस तपस्या से विराम किया ।।१०।।

उनके भाई सुवर्च्चा ने उनको यज्ञ में आमन्त्रित किया । अतः वहाँ जाने के इच्छुक उन्होंने अपने बुद्धिमान् शान्त, क्रोध मूर्ति के प्रति भी अत्यन्त विनीत एवं गुरु कार्यों में सदैव उद्यत रहने वाला उदार, मुनि श्रेष्ठ, उदारचित्त, एवं सदाचारी शान्ति नामक शिष्य से कहा ।।११।।१२।।

भूति बोले —

हे शान्ते ! मैं अपने भाई सुवर्चस् के यज्ञ में जाऊँगा । उसने मुझको आमन्त्रित किया है और तुम्हें यहाँ जो-जो कार्य करने हैं, उन्हें तुम सुनो ।।१३।।

तुमको आश्रम में हमेशा अग्नि को प्रज्वलित रखना है और वैसा-वैसा प्रयत्न करना जिससे अग्नि शान्त न हो ।।१४।।

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार आज्ञा प्राप्त करके शिष्य शान्ति ने कहा—'ऐसा ही होगा तब छोटे भाई द्वारा आमन्त्रित किये हुए वे मुनि उस यज्ञ में गये ।।१५।।

और वह शान्ति जब तक वन से, उन महात्मा गुरु की अग्नि प्रज्वलित करने के लिए समिधा, पुष्प, फलादि सामग्री लेकर आये ।।१६।।

अन्यच्च कुरुते कर्म गुरुभक्तिवशानुगः । प्रशान्तस्तावदनलो योऽसौ भूतिपरिग्रहः ।।१७
तं दृष्ट्वाऽसौऽनलं शान्तं शान्तिरत्यन्तदुःखितः। भीतश्च भूतेर्बहुधा चिन्तामाप महामतिः ।।१८
किं करोमि कथं वात्र भवितागमनं गुरोः । मयाद्य प्रतिपत्तव्यं किं कृते सुकृतं भवेत् ।।१९
प्रशान्ताग्निमिमं धिष्ण्यं यदि पश्यति मे गुरुः । ततो मां विषमे ह्यद्य व्यसने सन्नियोक्ष्यति ।।२०
यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निस्थाने करोमि तत्। सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्म सोऽवश्यं मां करिष्यति ।।२१
सोऽहं पापो गुरोस्तस्य निमित्तं कोपशापयोः। तथात्मानं न शोचामि यथा पापं कृतं गुरोः ।।२२
दृष्ट्वा प्रशान्तमनलं नूनं शप्स्यति मां गुरुः। यथा वा पावकः क्रुद्धस्तथा वीर्यो हि स द्विजः ।।२३
यस्य प्रभावाद्बिभ्यन्तो देवास्तिष्ठन्ति शासने। कृतागसं स मां युक्त्या कया नोधर्षयिष्यति ।।२४

मार्कण्डेय उवाच—

बहुधैवं विचिन्त्यासौ भीतस्तस्य सदा गुरोः। ययौ मतिमतां श्रेष्ठः शरणं जातवेदसम् ।।२५
स चकार तदास्तोत्रं सप्तार्च्चेर्यतमानसः। स चैकचित्तो मेदिन्यां न्यस्त जानुः कृताञ्जलिः ।।२६

और गुरु भक्ति के वश में होकर अन्य कर्म करते थे, तब तक भूति द्वारा प्रज्वलित रखी गयी जो अग्नि थी, वह शान्त हो गयी ।।१७।।

उस शान्त अग्नि को देखकर वह शान्ति अत्यधिक दुःखी हुआ और भूति मुनि से भयभीत वह महामति अत्यधिक चिन्तित हुआ ।।१८।।

क्या करूँ अथवा इस सम्बन्ध में अब कैसे हो जो गुरु का आगमन मेरे लिए आज क्या उपलब्धि कराएगा। इस समय क्या करना चाहिए, जिससे भला हो ।।१९।।

यदि मेरे गुरु प्रशान्त हुई इस यज्ञ की अग्नि (हवन कुण्ड) को देखते हैं तो मुझे क्षण भर में विषम आपत्ति में डाल देंगे ।।२ ।।

और यदि मैं इस अग्नि के स्थान पर दूसरी अग्नि का न्यास करता हूँ तो सर्वज्ञानी गुरु मुझे निश्चय ही भस्म कर देंगे ।।२१।।

इसलिए मैं पापात्मा, उन गुरु के क्रोध और शाप का वैसा शोक नहीं करता हूँ जैसा कि गुरु के प्रति किये गये पाप का शोक ।।२२।।

इस शान्त हुई अग्नि को देखकर, गुरु निश्चय ही मुझे शाप दे देंगे अथवा (उनसे भय भीत) अग्नि भी क्रुद्ध होकर शाप दे सकती हैं। क्योंकि मेरे गुरु का पराक्रम ही ऐसा है ।।२३।।

जिसके प्रभाव से भयभीत होकर देवता भी उनके शासन में रहते हैं। वे मुझ अपराधी को देखकर किस प्रकार मुझे दण्डित नहीं करेंगे ।।२४।।

मार्कण्डेय बोला—

इस प्रकार अनेक प्रकार विचार करते हुए, गुरु के भय से भीत हुआ बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वह शिष्य अग्नि की शरण में गया ।।२५।।

इसके केश्चात् वह संयत एकाग्रचित्त होकर, पृथ्वी पर घुटने टेककर, हाथ जोड़कर सप्तशिखा युक्त अग्नि स्तोत्र का पाठ करने लगा ।।२६।।

शान्तिरुवाच—

ॐ नमः सर्व्वभूतानाँ साधनाय महात्मने । एकद्विपञ्चधिष्ण्याय राजसूये षडात्मने ।।२७
नमः समस्तदेवानां वृत्तिदाय सुवर्च्चसे । शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः ।।२८
त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वयात्तं भगवन् हविः । प्रीणयस्यखिलान् देवांस्त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः ।।२९
हुतं हविस्त्वय्यनलमेधत्वमुपगच्छति । ततश्च जलरूपेण परिणाममुपैति यत् ।।३०
तेनाखिलौषधी जन्म भवत्यनिलसारथे । औषधीभिरशेषाभिः सुखं जीवन्ति जन्तवः ।।३१
वितन्वते नरा यज्ञांस्त्वत्सृष्टास्वोषधीषु च । यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक ।।३२
आप्याय्यन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन । अतः सर्वस्य योनिस्त्वं वह्ने सर्वमयस्तथा ।।३३
देवता दानवा यक्षा दैत्या गन्धर्वराक्षसाः । मानुषाः पशवो वृक्षा मृग-पक्षि-सरीसृपाः ।।३४
आप्यायन्ते त्वया सर्वे संवर्ध्यन्ते च पावक । त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथा लयम् ।।३५
अपः सृजसि देव त्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः । पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ।।३६
देवेषु तेजोरूपेण कान्त्या सिद्धेष्ववस्थितः । विरूपेण नागेषु वायुरुपः पतत्रिषु ।।३७

शान्ति बोला—

ॐ समस्त प्राणियों के साधन, महात्मा यज्ञों के लिए एक, दो और पाँच तथा राजसूय यज्ञ के लिए छः मूर्ति धारण करने वाले (अग्नि देव) को नमस्कार है ।।२७।।

समस्त देवगण को वृत्ति प्रदान करने वाले सुवर्चस् और सम्पूर्ण विश्व को स्थिति प्रदान कर्त्ता शुक्र रूप (अग्नि देव) को नमस्कार है ।।२८।।

हे भगवान् ! तुम देवताओं के मुख हो और तुम ही हवि का भक्षण करके समस्त देवताओं को प्रसन्न करते हो और तुम्हीं समस्त देवताओं के प्राण रूप हो ।।२९।।

तुम ही हवि आहुत होकर अमल मेघत्व प्राप्त करती है और उसके बाद ही जल रूप परिणाम वाली हो जाती है ।।३०।।

हे अनिल सारथे ! तुम से ही सम्पूर्ण औषधियों का जन्म होता है । जिन औषधियों से ही सभी प्राणी सुख से जीते हैं ।।३१।।

हे पावक ! तुम्हारे द्वारा उत्पन्न औषधियों से प्राणी जो यज्ञ करते हैं उन यज्ञों से ही देवता, दैत्य और उन्हीं के समान राक्षस भी ।।३२।।

तृप्त होते हैं ! हे हुताशन ! वे यज्ञ तुम्हारे ही आधार वाले हैं । इसलिए हे वह्ने ! सभी योनियाँ तुम मय हैं ।।३३।।

हे पावक ! सुर, असुर, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी, सूर्यगण, ये सब तुमसे ही तृप्त होते हैं एवं तुमसे ही पोषित होते हैं । तुमसे ही इनका जन्म होता है । एवं अन्त में ये तुममें ही लीन हो जाते हैं ।।३४–३५।।

हे देव ! तुम्हीं जल के सृष्टा हो फिर तुम्हीं उन्हें पीते हो और तुम्हारे द्वारा पचाए गये वे प्राणियों के लिए पुष्टि के कारण बनते हैं ।।३६।।

देवताओं में तेज रूप से, सिद्ध पुरुषों में कान्ति रूप से, नागों में विष रूप से, पक्षियों में वायु रूप से ।।३७।।

मनुजेषु भवान् क्रोधो मोहः पत्त्रिमृगादिषु। अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति । ३८
जले द्रवस्त्वं भगवाञ्जवरूपी तथाऽनिले । व्यापित्वेन तथैवाग्ने नभसि त्वं व्यवस्थितः ।।३९
त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन् । त्वामेकमाहुः कवयस्त्वामाहुस्त्रिविधं पुनः ।।४०
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञवाहमकल्पयन् । त्वया सृष्टमिदं विश्वं वदन्ति परमर्षयः ।।४१
त्वामृते हि जगत्सर्वं सद्यो नश्येद्धुताशन। तुभ्यं कृत्वा द्विजः पूजां स्वकर्मविहितां गतिम् ।।४२
प्रयाति हव्यकव्याद्यैः स्वधास्वाहाभ्युदीरणात् । परिणामात्मवीर्य्या हि प्राणिनाममरार्चित ।।४३
दहन्ति सर्वभूतानि ततो निष्क्रम्य हेतयः । जातवेदस्त्वयै वेदं विश्वं सृष्टं महाद्युते ।।४४
तवैव वैदिकं कर्म सर्वभूतात्मकं जगत् । नमस्तेऽनलपिङ्गाक्ष नमस्तेऽस्तु हुताशन ।।४५
पावकाद्य नमस्तेऽस्तु नमस्ते हव्यवाहन । त्वमेव सर्वभूतानां पावनाद्विश्वपावनः ।।
त्वमेव भुक्तपीतानां पाचनाद्विश्वपाचकः ।।४६
सस्यानां पाककर्त्ता त्वं पोष्टा त्वं जगतस्तथा । त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वं बीजं सस्यहेतुकम् ।।४७

मनुष्य, पक्षी और मृग आदि में तुम क्रोध और मोह (रूप से) हो। तुम्हीं वृक्षों के आधार हो और पृथ्वी में कठोरता हो ।।३८।।

हे भगवन् ! तुम जल में तरलता, वायु में वेग रूप में और उसी प्रकार हे ? अग्ने, आकाश में व्याप्त रूप में आत्मा द्वारा अवस्थित हैं ।।३९।।

हे अग्ने ! तुम्हीं पोषण करते हुए, उन प्राणियों में विचरते हो 'यद्यपि' कवि तुमको निर्देश एक से ही करते हैं फिर भी तुम त्रिविध कहलाते हो ।।४०।।

महर्षि यज्ञवाह की कल्पना करते हुए, तुम्हारी आठ प्रकार से कल्पना करते हैं। तुम्हीं ने इस विश्व की सृष्टि की हैं, ऐसा ऋषि लोग कहते हैं ।।४१।।

हे हुताशन ! तुम्हारे बिना यह सम्पूर्ण जगत् शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। विप्रगण, हव्य, कव्यादि द्वारा स्वाहा, स्वधा आदि के उच्चारण से तुम्हारी पूजा करके स्वकर्म विहित गति प्राप्त करते हैं। हे अमरार्चित ! प्राणियों को परिणाम आत्म वीर्य स्वरूप ।।४२-४३।

तुम से निकलकर सम्पूर्ण अग्नि शिखाएँ सभी प्राणियों को भस्म करती हैं। हे महाद्युते, जातवेद तुमने ही इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि की है ।।४४।।

सर्वभूतात्मक यह विश्व एवं वैदिक कर्म तुम्हारे ही अधीन हैं। हे पिङ्गाक्ष अनल ! तुमको नमस्कार है। हे हुताशन ! तुमको नमस्कार है ।।४५।।

हे पावक ! आज तुमको नमस्कार है। हे हव्यवाहन ! तुमको नमस्कार है। सभी प्राणियों को पवित्र करने के कारण तुम ही विश्व पावन हो और तुम्हीं भोज्य और पेय को पचाने के कारण विश्व पाचक हो ।।४६।।

तुम्हीं धान्यों को पकाने वाले और तुम्हीं जगत् की पुष्टि करने वाले हो। तुम्हीं मेघ, तुम्हीं वायु, तुम्हीं सस्यों के उत्पादन के हेतु बीज हो ।।४७।।

पोषाय सर्वभूतानां भूतभव्यभवो ह्यसि । त्वं ज्योतिः सर्वभूतेषु त्वमादित्यो विभावसुः ।।४८
त्वमहस्त्वं तथा रात्रिरुभे सन्ध्ये तथा भवान्। हिरण्यरेतास्त्वं वह्ने हिरण्योद्भवकारणम् ।।४९
हिरण्यगर्भश्च भवान् हिरण्यसदृशप्रभः । त्वं मुहूर्त्तं क्षणश्च त्वं त्वं त्रुटिस्त्वं तथा लवः ।।५०
कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासि जगत्प्रभो । त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान् ।।५१

या जिह्वा भवतः काली काल कालनिष्ठाकरी प्रभो ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५२

कराली नाम या जिह्वा महाप्रलयकारणम् । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५३
मनोजवा च या जिह्वा लघिमा-गुणलक्षणा । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५४
करोति कामं भूतेभ्यो या ते जिह्वा सुलोहिता । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५५
सधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदायिका । तया न पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५६
स्फुलिङ्गिनी च या चिह्वायतः सकल पुद्गलाः । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५७
याते विश्वसृजा जिह्वा प्राणिनां शर्मदायिनी । तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ।।५८

सभी प्राणियों के पोषण के लिए तुम्हीं भूत, भविष्य और वर्तमान रूप हो । तुम्हीं सब प्राणियों में ज्योति स्वरूप आदित्य हो ।।४८।।

तुम्हीं विभावसु हो, तुम्हीं दिन और तुम्हीं रात्रि एवं तुम्हीं दोनों संध्या हो । हे वह्ने हिरण्यरेता तुम्हीं, हिरण्य की उत्पत्ति का कारण भी तुम्हीं हो ।।४९।।

तुम्हीं हिरण्य गर्भ एवं हिरण्य के समान कांति वाले हो और तुम्हीं मुहूर्त, क्षण, त्रुटि एवं लव हो ।।५०।।

हे जगत् प्रभो ! कला, काष्ठा और निमेषादि के रूप में तुम्हीं इस सम्पूर्ण जगत् के परिणामात्मक काल हो ।।५१।।

हे प्रभो ! तुम्हारी जो काल निष्ठा करने वाली काली जीभ है । उसके द्वारा भयंकर पाप एवं ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ।।५२।।

महाप्रलय का कारण, कराली नाम की जो तुम्हारी जिह्वा है । उससे हमारे पाप एवं भयंकर ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ।।५३।।

लघिमा गुण सम्पन्न मनोजव नाम की तुम्हारी जो जीभ है उससे भयंकर पापों एवं ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ।।५४।।

और सुलोहिता नाम वाली तुम्हारी जो जीभ प्राणियों की कामना पूर्ति करती हैं, उससे पापों एवं ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ।।५५।।

प्राणियों को रोग देने वाली, धूम्रवर्ण से युक्त, तुम्हारी जो जीभ हैं । उससे पापों एवं ऐहिक भय से तुम हमारी रक्षा करो ।।५६।।

तुम्हारी स्फुलिङ्गिनी (चिनगारियों वाली) जो जीभ है, जिससे कि सम्पूर्ण पुद्गलोकों का निर्माण होता है, उससे हमारे पापों एवं ऐहिक भय से हमारी रक्षा करो ।।५७।।

प्राणियों को मंगल प्रदान करने वाली, विश्व का सृजन करने वाली, तुम्हारी जो विश्व सृजा जिह्वा हैं वह हमारे पाप और ऐहिक भय से हमारी रक्षा करें ।।५८।।

पिङ्गाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्म हुताशन । त्राहि मां सर्वदोषेभ्यः संसारादुद्धरेह माम् ॥५९
प्रसीद वह्ने सप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन । अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरुदीरितः ॥६०
अग्नेऽग्रे सर्वभूतानां समुत्पत्तिर्विभावसो । प्रसीद हव्यवाहाख्य अभिष्टुत मयाव्यय ॥६१

त्वमक्षयो वह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमन्दुष्प्रसहोऽति तीव्रः ।
तवाव्ययं भीममशेषलोकसंवर्धकं हन्त्यथवातिवीर्यम् ॥६२
त्वमुत्तमं तत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुण्डरीकस्थमनन्तमीड्यम् ।
त्वया ततं विश्वमिदं चराचरं हुताशनैको बहुधा त्वमत्र ॥६३
त्वमक्षयः सगिरिबना वसुन्धरा नभः ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।
महोदधेर्जठरगतश्च वाडवो भवान् विभुः पिबति पयांसि पावकः ॥६४
हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे महाक्रतौ नियमपरैर्महर्षिभिः ।
अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे वषट् कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥६५
त्वं विप्रैः सततमिहेज्यसे फलार्थं वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयसे त्वम् ।
त्वद्धेतोर्यजनपरायणाद्द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्वकाले ॥६६

हे हुताशन ! तुम्हारे नेत्र, पीतवर्ण, ग्रीवा-लोहितवर्ण और सरीर कृष्ण वर्ण हैं। तुम मेरी सब दोषों से रक्षा करो एवं मेरा इस विश्व से उद्धार करो ॥५९॥

हे वह्नि तुम सप्तार्चि, कृशानु, हव्यवाहन, अग्नि, पावक, शुक्र आदि आठ नामों से पुकारे जाते हो। तुम (मेरे ऊपर) प्रसन्न होओ ॥६०॥

हे अग्ने ! तुम्हारी सभी प्राणियों से पहले उत्पत्ति हुई है। हे विभावसो, हे अव्यय ! हे हव्यवाह ! नाम वाले (अग्नि देव) मैंने तुम्हारी स्तुति की है, तुम प्रसन्न होओ ॥६१॥

तुम अक्षय वह्नि हो, अचिन्त्य रूप हो, समृद्धिवान् असह्य, अतितीव्र ताप युक्त, अत्यन्त तीक्ष्ण हो और अव्यय एवं भीम वहा के मूर्तिमान् रूप, अत्यन्त बलशाली एव समस्त जगत् का भी विनाश करने वाले हो ॥६२॥

हे हुताशन ! तुम श्रेष्ठ, सत्व और समस्त जीवों के हृदय कमल सदृश हो एवं उन सबके पूज्य अनन्त ब्रह्म रूप हो। तुम एक होकर भी बहुत रूपों वाले ॥६३॥

तुम अक्षय हो, पर्वत और वन सहित, पृथ्वी, चन्द्रमा और सूर्य के सहित आकाश एवं दिन और रात में निखिल काल स्वरूप तथा महासमुद्र में बडवानल एवं उदर की जठराग्नि तुम ही हो। हे पावक ! तुम्हारी किरणों के द्वारा देवगण भी जल पीते हैं ॥६४॥

तुम हवन में डाली गयी हवि को खाते हो, इसलिए नियम परायण महर्षियों द्वारा विशाल यज्ञ में तुम सदा पूजे जाते हों। स्तुति किये जाने पर (जगत् के) कल्याण के लिए यज्ञ में सोम और वषट्कार सहित हवि का पान करते हों ॥६५॥

ब्राह्मणों के द्वारा सर्दव अभीष्ट फल प्राप्ति के लिए तुम्हारा यजन किया जाता है और सम्पूर्ण वेदांगों में तुम्हीं गाये जाते हो। तुम्हारे लिए ही यजन परायण ब्राह्मण हर समय वेदांगों का अध्ययन करते रहते हैं ॥६६॥

त्वं ब्रह्मा यजनपरस्तथैव विष्णुर्भूतेशः सुरपतिरर्यमा जलेशः ।
सूर्येन्दू सकलसुरासुराश्च हव्यैः सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ॥६७
अर्चिभिः परममहोपघातदुष्टं संस्पृष्टं तव शुचि जायते समस्तम् ।
स्नानानां परममतीव भस्मना सत् सन्ध्यायां मुनिभिरतीवसेव्यसे तत् ॥५८
तत्कृत्वा त्रिदिवमवाप्नुवन्ति लोकाः । सद्भक्त्या सुखनियताः समूहगीतम् ॥६९
प्रसीद वह्ने शुचिनामधेय प्रसीद वायो विमलातिदीप्ते ।
प्रसीद मे पावक वैद्युताभ प्रसीद हव्याशन पाहि मां त्वम् ॥७०
यत्ते वह्ने शिवं रूपं ये च ते सप्तहेतयः । तैः पाहि नः स्तुतो देव पितापुत्रमिवात्मजम् ॥७१

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे मौत्यमन्वन्तरेऽग्निस्त्रोत्रं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ।

यजन परायण ब्रह्मा और विष्णु, भूतनाथ (शिव) देवराज, अर्यमा वरुण, सूर्य, चन्द्रमा, सभी सुर एवं असुर हव्य आदि के द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट करके अभियत फल प्राप्त करते हैं ॥६७॥

महाउपघात से दूषित समस्त वस्तुएँ तुम्हारी ज्वालाओं के स्पर्श मात्र से पवित्र हो जाती हैं। स्नानों में भस्म द्वारा स्थान ही सर्वोत्तम हैं, इसीलिए ऋषिगण संध्याकाल में इसी का सेवन करते हैं ॥६८॥

उस (भस्म स्नान) को करके मनुष्य सद्भक्ति से सुखी होकर सब से गाये गये स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ॥६९॥

हे शुचि नाम वाली वह्नि ! तुम प्रसन्न होओ, हे अति दीप्ति युक्त विमल वायु रूप ! तुम प्रसन्न होओ। हे विद्युत की आभा वाले पावक ! तुम मेरे ऊपर प्रसन्न होओ। हे ! हव्य का भक्षण करने वाले (अग्नि) तुम प्रसन्न होओ और मेरी रक्षा करो ॥७०॥

हे वह्नि ! तुम्हारा जो मंगलमय रूप हैं और तुम्हारी जो सप्त ज्वालाएँ हैं, उनसे स्तुति किये गये देव जैसे पिता अपने पुत्र की रक्षा करता हैं वैसे ही तुम मेरी रक्षा करो ॥७१॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में मौत्यमंन्वन्तर में अग्नि स्तोत्र नामक
छयानवेंवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

एवं स्तुतस्ततस्तेन भगवान् हव्यवाहनः । ज्वालामालावृततनुस्तस्यासीदग्रतो मुने ॥१

मार्कण्डेय बोले—

हे मुने ! उसके द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर, ज्वालाओं की मालाओं से घिरे हुए शरीर वाले भगवान् हव्य वाहन उसके समक्ष प्रकट हुए ॥१॥

देवो विभावसुः प्रीतस्तोत्रेणानेन वै द्विज । तं शान्तिमाह प्रणतं मेघगम्भीरवागथ ॥२

अग्निरुवाच —

परितुष्टोऽस्मि ते विप्र भक्त्या या ते स्तुतिः कृता । वरं ददामि भवते प्रार्थ्यतां यत्तवेप्सितम् ॥३

शान्तिरुवाच—

भगवन् कृतकृत्योऽस्मि यत्त्वां पश्यामि रूपिणम् । तथापि भक्तिनम्रस्य भवता श्रूयतां मम ॥४

भ्रातृयज्ञं गतो देव ममाचार्यो निजाश्रमात् । आगतश्चाश्रमं धिष्ण्यं त्वत्सनाथं स पश्यतु ॥५

ममापराधात्सन्त्यक्तं धिष्ण्यं यत्ते विभावसो । तत्त्वयाधिष्ठितं सोऽद्यपूर्ववत्पश्यतु द्विजः ॥६

तथान्यदपि मे देव प्रसादं कुरुषे यदि । पुत्रो विशिष्टो भवतु तदपुत्रस्य मे गुरोः ॥७

यथा च मैत्रीं तनये स करिष्यति मे गुरुः । तथा समस्तसत्त्वेषु भवत्वस्य मनो मृदु ॥८

यश्च त्वां स्तोष्यतेऽनेन प्रीतिं यातोऽसि मेऽव्यय । स्तोत्रेण तस्य वरदो भवेथा मत्प्रसादितः ॥९

मार्कण्डेय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य तमाह द्विजसत्तमम् । स्तोत्रेणाराधितस्तेन गुरुभक्त्या च पावकः ॥१०

हे द्विज ! तब इन स्तोत्रों से प्रसन्न हुए विभावसु देव, प्रणत हुए उस शक्ति से मेघ के समान गम्भीर वाणी में बोले ॥२॥

अग्नि ने कहा —

हे विप्र ! जो तुमने भक्ति पूर्वक स्तुति की हैं, मैं उससे प्रसन्न हूँ । मैं तुम्हें वर देता हूँ । अतः तुम्हारा जो वाञ्छित हो वह माँग लो ॥३॥

शान्ति ने कहा—

हे भगवन् मैं जो तुम्हारे इस रूप को देख रहा हूँ, इससे कृतकृत्य हो गया हूँ । फिर भी भक्ति से नम्र मेरा तुमसे निवेदन है, उसे सुनिये ॥४॥

हे देव ! मेरे आचार्य गुरु अपने आश्रम से भाई के यज्ञ में गये हैं । आने पर वे आश्रम के यज्ञ कुण्ड को तुम से युक्त देखें ॥५॥

हे विभावसो ! जिस अग्नि कुण्ड को तुमने मेरे अपराध के कारण त्याग दिया है, उसको वे द्विज (श्रेष्ठ गुरु) आने पर पहले के समान, तुमसे युक्त देखें ॥६॥

और हे देव ! यदि मेरे ऊपर तुम और भी कृपा करते हो तो निःसन्तान मेरे गुरु को विशिष्ट गुणों से युक्त पुत्र की प्राप्ति हो ॥७॥

और मेरे गुरु जिस प्रकार का स्नेह अपने पुत्र में करें । उनका मन उसी प्रकार सभी प्राणियों के प्रति भी कोमल हो जाए ॥८॥

हे अव्यय ! जिन स्तोत्रों के स्तवन से तुम मुझ पर प्रसन्न हुए हो, जो व्यक्ति उन स्तोत्रों से तुम्हारा स्तवन करे उसको तुम उसी प्रकार वर प्रदान करो, जिस प्रकार मुझ पर प्रसन्न होकर वर प्रदान करने वाले हुए हो ॥९॥

मार्कण्डेय बोले—

गुरु भक्ति से युक्त एवं उसके द्वारा इस स्तोत्र से आधारित अग्नि ने इन वचनों को सुनकर उस द्विज श्रेष्ठ से कहा ॥१०॥

अग्निरुवाच –

गुरोरर्थे यतो ब्रह्मन् याचितं ते वरद्वयम् । नात्मार्थं तेन मे प्रीतिस्त्वय्यतीव महामुने ॥११
भविष्यत्येतदखिलं गुरोर्यत्प्रार्थितं त्वया । मैत्रीसमस्तभूतेषु पुत्रश्चास्य भविष्यति ॥१२
मन्वन्तराधिपः पुत्रो भौत्यो नाम भविष्यति । महाबलो महावीर्यो महाप्राज्ञो गुरुस्तवः ॥१३
अनेन यश्च स्तोत्रेण स्तोष्यते मां समाहितः। तस्याभिलषितं सर्वं पुण्यं चास्य भविष्यति ॥१४
यज्ञेषु पर्वकालेषु तीर्थे ज्याहोमकर्मसु । धर्माय पठतामेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥१५
अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतत्सकृद् द्विज । नाशयिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम् ॥१६
अहोमकालदोषादीनयोग्यैरपि तत्कृतैः । ये दोषास्ता निदं सद्यः शमयिष्यति संश्रुतम् ॥१७
पौर्णमास्याममावास्यां पर्वस्वन्येषु च स्तवः । ममैष संश्रुतो मर्त्यैर्भविता पापनाशनः ॥१८

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्त्वा भगवानग्निः पश्यतस्तस्य वै मुने । बभूवादर्शनः सद्यो दीपस्थो निर्वृतो यथा ॥१९
स च शान्तिर्गते वह्नौ परितुष्टेन चेतसा । हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमं गुरोः ॥२०

अग्नि बोले—

हे ब्रह्मन् ! क्योंकि तुमने दोनों वर गुरु के लिये ही मांगे हैं, अपने लिये नहीं । इसलिये हे महामुने ! मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ ॥११॥

गुरु का वह सब इष्ट कार्य पूर्ण होगा जो तुमने मांगा है, उसकी समस्त जीवों के प्रति प्रीति और पुत्र भी होगा ॥१२॥

तुम्हारे गुरु महाप्राज्ञ है, उनके महाबली, महापराक्रमी एवं मन्वन्तराधिपति भौत्य नामक पुत्र होगा ॥१३॥

और जो दत्त चित्त होकर इस स्तोत्र से मेरा स्तवन करेगा । उसको सभी अभिलाषितों की एवं पुण्यों की प्राप्ति होगी ॥१४॥

यज्ञों में, पर्वकालों में तीर्थ, यज्ञ और धर्मार्थ यज्ञ कर्मों में मुझे पुष्टि प्रदान करने वाले, इस स्तोत के पढ़ने से— ॥१५॥

हे द्विज ! दिन रात में किये गये पाप इसको एक बार सुनने मात्र से शीघ्र ही निःसन्देह नष्ट हो जायेंगे । यह स्तोत्र मुझे परम तुष्टि प्रदान करने वाला है ॥१६॥

यज्ञ काल के व्यतीत होने पर, यज्ञ करने एवं अनधिकारी पुरुष द्वारा यज्ञादि करने पर जो दोष होता है । वह सभी इस स्तोत्र के श्रवण से तुरन्त ही नष्ट हो जायेगा ॥१७॥

पूर्णिमा, अमावस्या और दूसरे पर्वों में मनुष्यों द्वारा मेरा यह स्तवन सुनने पर पाप नाशक होगा ॥१८॥

मार्कण्डेय बोले—

हे मुने ! अग्नि भगवान् यह कहकर उसके देखते-देखते जिस प्रकार जलता हुआ दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार अदृश्य हो गये ॥१९॥

अग्नि देव के जाने पर सन्तुष्ट एवं प्रसन्नता से रोमांच युक्त शरीर वाले शान्ति ने गुरु के आश्रम में प्रवेश किया ॥२०॥

जाज्वल्यमानं तत्रासौ गुरुधिष्ण्ये हुताशनम् । ददर्श पूर्ववत् प्राप ततः स परमां मुदम् ।।२१
एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मनः । भ्रातुर्यवीयसो यज्ञादाजगाम स्वमाश्रमम् ।।२२
तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रे पादाभिवन्दनम् । गृहीतासनपूजश्च तमाह स तदा गुरुः ।।२३
वत्सातिहार्दं त्वयि मे तथान्येषु च जन्तुषु । न वेद्मि किमिदं त्वञ्चेद् वेत्स्येतत् कथयाशु मे ।।२४
ततः स शान्तिस्तत्सर्वमाचार्याय महामुने । अग्निनाशादिकं विप्रः समाचष्टे यथातथम् ।।२५
तच्छ्रुत्वा स परिष्वज्य स्नेहार्द्रनयनो गुरुः । शिष्याय प्रददौ वेदान्साङ्गोपाङ्गान् महामुने ।।२६
भौत्यो नाम मनुस्तस्य पुत्रो भूतेरजायत । तस्य मन्वन्तरे देवानृषीन् भूपांश्च मे शृणु ।।२७
भविष्यस्य भविष्यांस्तु गदतो मम विस्तरात् । देवेन्द्रो यश्च भविता तस्य विख्यातकर्मणः ।।२८
चाक्षुषाश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिरास्तथा । धरावृकाश्चेत्येते वै पञ्चदेवगणाः स्मृताः ।।२९
शुचिरिन्द्रस्तदा तेषां त्रिदशानां भविष्यति । महाबलो महावीर्यः सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ।।३०

आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च शुचिर्मुक्तोऽथ माधवः ।
शुक्रोऽजितश्च सप्तैते तदा सप्तर्षयः स्मृताः ।।३१

और गुरु के अग्नि कुण्ड में पहले के समान अग्नि को प्रज्वलित देखा तो अत्यधिक प्रसन्नता को प्राप्त हुए ।।२१।।

इसी बीच उस महात्मा के गुरु भी छोटे भाई के यज्ञ से अपने आश्रम में लौट आए ।।२२।।

तब सम्मुख आकर शिष्य शान्ति ने उनकी चरण वन्दना की । इसके बाद पूजा और आसन ग्रहण करके गुरु उससे बोले ।।२३।।

हे वत्स ! मेरी तुमसे और अन्य प्राणियों में अब अत्यधिक प्रीति हो गयी है । मैं नहीं जानता कि यह क्या है ? यदि इसका कारण तुम जानते हो तो शीघ्र कहो ।।२४।।

हे महामुने ! तब उस विप्र शान्ति ने अग्नि शमन आदि से लेकर सब कुछ वृन्तात आचार्य से ठीक-ठीक कह दिया ।।२५।।

उसको सुनकर स्नेह के कारण गीली आँखों वाले गुरु ने उसका आलिंगन करके, उस शिष्य को अंगों, उपांगों सहित सभी वेदों का ज्ञान करा दिया ।।२६।।

तब उन भूति को भौत्य नामक मनु पुत्र की प्राप्ति हुई । तब उसके भविष्य में होने वाले (भौत्य मनु के) मन्वन्तर में होने वाले देव, ऋषि और राजाओं का वर्णन विस्तार से मुझसे सुनो और जो उस विख्यात कर्म वाले भौत्य मन्वन्तर में) देवेन्द्र होगा (वह भी सुनो) ।।२७-२८।।

चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिन एवं धरावृक् उस मन्वन्तर में ये पांच देव गण कहे गये हैं ।।२९।।

एवं उन देवताओं का महाबली, महापराक्रमी एवं सभी इन्द्र गुणों से युक्त शुचि नामक इन्द्र होगा ।।३०।।

उस मन्वन्तर में आग्नीध्र, अग्नि बाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शुक्र और अजित ये सात सप्तर्षी कहे गये हैं ।।३१।।

गुरुर्गभीरो ब्रध्नश्च भरतोऽनुग्रहस्तथा । श्रीमानी च प्रतीरश्च विष्णुः संक्रन्दनस्तथा ॥३२
तेजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुता । चतुर्दशं मयैतत्ते मन्वन्तरमुदाहृतम् ॥३३
श्रुत्वा मन्वन्तराणीत्थं क्रमेण मुनिसत्तम । पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथाऽक्षीणां च सन्ततिम् ॥३४
श्रुत्वा मन्वन्तरं पूर्वं धर्ममाप्नोति मानवः । स्वारोचिषस्य श्रवणात् सर्वकामानवाप्नुते ॥३५
औत्तमे धनमाप्नोति ज्ञानमाप्नोति तामसे । रैवते च श्रुते बुद्धिं सरूपां विन्दते स्त्रियम् ॥३६
आरोग्यं चाक्षुषे पुंसां श्रुते वैवस्वते बलम् । गुणवत्पुत्रपौत्रांस्तु सूर्यसावर्णिके श्रुते ॥३७
माहात्यं स्वब्रह्मसावर्णेर्धर्मसावर्णिके शुभाम् । मतिमाप्नोति मनुजो रुद्रसावर्णिके जयम् ॥३८
ज्ञाति श्रेष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके श्रुते । निशातयत्यरिबलं रौच्यं श्रुत्वा नरोत्तम ॥३९
देवप्रमादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे श्रुते । तथाग्निहोत्रं पुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नुते ॥४०
सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्च श्रृणोति मुनिसत्तम । मन्वन्तराणि तस्यापि श्रूयतां फलमुत्तमम् ॥४१
तत्र देवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान् । श्रुत्वा वंशांश्च सर्वेभ्यः पापेभ्यो विप्र मुच्यते ॥४२

गुरु, गभीर, ब्रह्म, भरत, अनुग्रह, श्रीमानी, प्रतीर, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी और सुबल ये भौत्य मनु के पुत्र होंगे । इस प्रकार मैंने चौदह मन्वन्तरों के विषय में कहा ॥३२-३३॥

हे मुनि श्रेष्ठ ! इस प्रकार इन मन्वन्तरों का क्रम से श्रवण करके मनुष्य अक्षीण सन्तति और पुण्य प्राप्त करता है ॥३४॥

प्रथम मन्वन्तर को सुनकर मनुष्य धर्म प्राप्त करता है और स्वारोचिष मन्वन्तर को सुनने से (मनुष्य की) सबइच्छाएँ पूर्ण होती हैं ॥३५॥

औतम के श्रवण से धन एवं तामस के श्रवण से ज्ञान प्राप्त करता है । रैवत के सुनने पर बुद्धि एवं रूपवती स्त्री प्राप्त करता है । ३६॥

चाक्षुष मन्वन्तर के सुनने पर मनुष्यों को आरोग्य की एवं वैवस्वत के सुनने पर बल की तथा सावर्णिक के सुनने पर गुणवान् पुत्र और पौतों की प्राप्ति होती है ॥३७॥

ब्रह्म सावर्णिक के श्रवण से माहात्म्य और धर्म सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से मनुष्य कल्याण युक्त बुद्धि प्राप्त करता है एव रूद्र सावर्णिक के श्रवण से विजय की प्राप्ति होती है ॥३८॥

हे नर श्रेष्ठ ! दक्ष सावर्णिक मन्वन्तर के श्रवण से पुरुष जाति में सर्वोत्तम और गुणवान् होता है और रौच्य के सुनने पर शत्रुओं का बल शमन करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है ॥३९॥

भौत्य मन्वन्तर के श्रवण से देवों की कृपा, अग्नि होत्र फल, एवं गुणी पुत्रों की प्राप्ति होती है ॥४०॥

हे ऋषि ! श्रेष्ठ प्रथम मन्वन्तर के क्रम बद्ध सभी मन्वन्तरों का जो मनुष्य श्रवण करता है, उनके भी उत्तम फल का श्रवण करो ॥४१॥

उन मन्वन्तरों के देवगण, ऋषि, इन्द्र, मनु एवं उनके पुत्र नृपगणों को एवं उनकी वंशावलियों को सुनकर मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है ॥४२॥

देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः। ते प्रीयन्ते तथा प्रीताः प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।।४३
ततः शुभां मतिं प्राप्य कृत्वा कर्म तथा शुभम् । शुभां गतिमवाप्नोति यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।।४४
सर्वे स्युर्ऋतवः क्षेम्याः सर्वे सौम्यास्तथा ग्रहाः। भवन्त्यसंशयं कृत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ।।४५

।। इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे चतुर्दशमन्वन्तरवर्णनसमाप्तिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ।।

देव, ऋषि, राजा और दूसरे जो मन्वन्तरों के अधिपति मनु हैं, वे प्रसन्न होते हैं एवं सन्तुष्ट होने पर सद्बुद्धि प्रदान करते हैं ।।४३।।

उसके बाद सद्बुद्धि प्राप्त करके तथा शुभ कर्म करने से जब तक चौदह इन्द्र रहेंगे तब तक (मनुष्य) सद् बुद्धि प्राप्त करता रहेगा ।।४४।।

क्रमबद्ध मन्वन्तरों का वर्णन श्रवण करने से सम्पूर्ण ऋतुएँ सहनीय होती है एवं निःसन्देह सम्पूर्ण ग्रह भी शान्त हो जाते हैं ।।४५।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में चतुर्दश मन्वन्तर वर्णन समाप्ति
नामक सत्तानवेंवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टनवतितमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच—

भगवन् कथिता सम्यक् त्वया मन्वन्तरस्थितिः। क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तो मया चैवावधारिता ।।१
ब्रह्माद्यमखिलं वंशं भूभुजां द्विजसत्तम। श्रोतुं ममेच्छतः सम्यग्भगवन् प्रब्रवीहि मे ।।२

मार्कण्डेय उवाच—

शृणु वत्स नृपाणां त्वमशेषाणां समुद्भवम् । चरितं च जगन्मूलमादौ कृत्वा प्रजापतिम् ।।३
अयं हि वंशो भूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः । संग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैः शतसंख्यैरलंकृतः ।।४
श्रुत्वा चैषां नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् । उत्पत्तयश्च पुरुषः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५

क्रौष्टुकि ने कहा —

भगवन् आपने मन्वन्तरों की स्थिति का वर्णन भली प्रकार क्रम से विस्तार पूर्वक किया और मैंने उसको स्थिर चित्त से श्रवण किया है ।।१।।

हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं ब्रह्मा से लेकर राजाओं की सम्पूर्ण वंशावलि को भली प्रकार सुनने का इच्छूक हूँ। भगवन्, वह आप मुझसे कहिये ।।२।।

मार्कण्डेय ने कहा—

हे वत्स ! जगत् के मूल आधार प्रथम प्रजापति से लेकर सम्पूर्ण अधिपतियों की उत्पत्ति एवं चरित्र को सुनो ।।३।।

यह वंश यज्ञ करने वाले, रणविजेता, धर्मज्ञ सैकड़ों विविध नृपों से अलंकृत है ।।४।।

इन महान् राजाओं के जन्म एवं चरित्रों को सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।।५।।

मनुर्यत्र तथेक्ष्वाकुरनरण्यो भगीरथः। अन्ये च शतशो भूपाः सम्यक् पालितभूमयः ॥६
धर्मज्ञा यज्विनः शूराः परमार्थार्थवेदिनः। श्रुते तस्मिन् पुमान्वंशे पापौघाद् विप्रमुच्यते ॥७
तदयं श्रूयतां वंशो यतो वंशाः सहस्रशः। भिद्यन्ते मनुजेन्द्राणामवरोहा यथा वटात् ॥८
ब्रह्मा प्रजापतिः पूर्वं सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः। अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद् दक्षमसृजद् द्विजसत्तम ॥९
वामाङ्गुष्ठाच्च तत्पत्नीं जगत्सूतिकरो विभुः। ससर्ज भगवान्ब्रह्मा जगतां कारणं परम् ॥१०
अदितिस्तस्य दक्षस्य कन्याजायत शोभना। तस्याञ्च कश्यपो देवं मार्तण्डं समजीजनत् ॥११
ब्रह्मास्वरूपं जगतामशेषाणां वरप्रदम्। आदिमध्यान्तभूतं च सर्गस्थित्यन्तकर्मसु ॥१२
यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेषं च स्थितं द्विज। यत्स्वरूपं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ॥१३
यः सर्वभूतः सर्वात्मा परमात्मा सनातनः। अदित्यामभवद् भास्वान्पूर्वमाराधितस्तया ॥१४

क्रोष्टुकिरुवाच—

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्स्वरूपं विवस्वतः। यत्कारणं चादिदेवः सोऽभवत् कश्यपात्मजः ॥१५

जहाँ पर, इक्ष्वाकु अनरण्य, भगीरथ, तथा अन्य सैंकडों धर्मज्ञ, यज्ञकर्त्ता, पराक्रमी और ब्रह्मज्ञानी राजाओं ने पृथ्वी का भली प्रकार पालन किया। उस वंश का वर्णन सुनने से मनुष्य पाप समूहों से मुक्त हो जाता है ॥६-७॥

जिस प्रकार एक वट बीज से विशाल वृक्ष खड़ा हो जाता है, उसी प्रकार मनुजेन्द्रों के सहस्रों वंश उत्पन्न हो गये। अब उन सबको सुनो ॥८॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! पूर्वकाल में विविध प्रजाओं की सृष्टि की कामना से प्रजापति ब्रह्मा जी ने दांये हाथ के अंगूठे से दक्ष का सृजन किया ॥९॥

और जगत् को उत्पन्न करने वाले भगवान् ब्रह्मा ने बांये हाथ के अंगूठे से उसकी पत्नी को उत्पन्न किया ॥१०॥

दक्ष की अदिति नाम की सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। और उस (कन्या) से कश्यप ने मार्तण्ड देव को उत्पन्न किया ॥११॥

(जो) ब्रह्म स्वरूप, सम्पूर्ण विश्व को वर प्रदान करने वाले, सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के कार्य में आदि, मध्य और अंत स्वरूप है ॥१२॥

हे द्विज ! क्योंकि वे सम्पूर्ण विश्व के जन्म दाता हैं, जिनमें यह सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है। सुर, असुर और मनुष्यों सहित यह विश्व उनका स्वरूप है ॥१३॥

जो सर्व प्राणि स्वरूप एवं सर्वात्मा सनातन परमात्मा हैं। प्राचीन काल में अदिति द्वारा स्तुति करने पर ये ही भास्कर सूर्य उनसे उत्पन्न हुए ॥१४॥

क्रोष्टुकि बोले—

हे भगवन् ! मैं विवस्वान् का जो स्वरूप है उसका श्रवण करना चाहता हूँ क्योंकि जो आदिदेव सभी (जगत) के कारण हैं वे भी कश्यप के पुत्र हुए ॥१५॥

यथा चाराधितो देव्या सोऽदित्या कश्यपेन च । आराधितेन चोक्तं यत्तेन देवेन भास्वता ॥१६
प्रभावं चावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम । भवता कथितं सम्यक् छ्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥१७

मार्कण्डेय उवाच—

विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा । कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूः प्राकाम्यं संविदेव च ॥१८
बोधश्चावगतिश्चैव स्मृतिर्विज्ञानमेव च । इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वतः ॥१९
श्रूयतां च महाभाग विस्तराद् वदतो मम । यत्पृष्टवानसि रवेराविर्भावो यथाभवत् ॥२०
निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसा वृते । बृहदण्डमभूदेकमक्षरं कारणं परम् ॥२१
तद्विभेद तदन्तःस्थो भगवान् प्रपितामहः । पद्मयोनिः स्वयं ब्रह्मा यः सृष्टा जगतां प्रभुः ॥२२
तन्मुखादोमिति महानभूच्छब्दो महामुने । ततो भूस्तु भुवस्तस्मात् ततश्च स्वरनन्तरम् ॥२३
एता व्याहृतयस्त्रिस्रः स्वरूपं तद्विवस्वतः । ओमित्यस्मात् स्वरूपात्तु सूक्ष्मरूपं रवेः परम् ॥२४
ततो महरिति स्थूलं जनं स्थूलतरं ततः । ततस्तपस्ततः सत्यमिति मूर्तानि सप्तधा ॥२५
स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च । स्वभावभावयोर्भावं यतो गच्छन्ति संशयम् ॥२६

तथा कश्यप और अदिति के द्वारा वे किस प्रकार आराधित हुए ? और आराधित किये जाने पर उन भगवान् सूर्य देव ने जो कहा ॥१६॥

और हे मुनि श्रेष्ठ ! प्रकट हुए सूर्य देव का जो प्रभाव आपने पहले वर्णन किया उस सम्पूर्ण को मैं भली प्रकार से सुनना चाहता हूँ ॥१७॥

मार्कण्डेय ने कहा —

विस्पष्टा, परमा, विद्या—ज्योतिभा, शाश्वती, प्रकाशिता, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, संवित्, बोध, अवगति, स्मृति एवं विज्ञान ये सब उस रूपहीन सूर्य देव के रूप हैं ॥१८-१९॥

हे महाभाग ! मैं उनका विस्तार से वर्णन कर रहा हूँ, तुम सुनो । तुमने सूर्य की उत्पत्ति के विषय में प्रश्न किया, कि उनका जन्म कैसे हुआ ? ॥२०॥

चारों ओर से अंधकार से आवृत्त हुए, प्रभा एवं आलोक रहित इस संसार में एक परम अक्षर कारण रूप बृहद् अण्ड उत्पन्न हुआ ॥२१॥

तब उसके मध्य में स्थित भगवान् प्रपितामह, पद्म योनि ब्रह्मा जो स्वयं इस संसार को उत्पन्न करने वाले हैं, उन्होंने इसका भेदन किया ॥२२॥

हे महामुने ! उस समय उनके मुख से 'ओम्' इस प्रकार का महान् शब्द हुआ । उसके बाद भू फिर भुव और उसके बाद स्वः उत्पन्न हुआ ॥२३॥

कही गयी ये तीनों व्याहृतियाँ जो विवस्वान् का स्वरूप है क्योंकि 'ओम्' इस स्वरूप से सूर्य का अत्यन्त सूक्ष्म रूप हुआ है ॥२४॥

उसके बाद अति स्थूल महः और उससे भी स्थूल जन एवं उसके बाद तपः तथा पुनः सत्य उत्पन्न हो गया । इस प्रकार ओंकार के सप्त रूप उत्पन्न हुए ॥२५॥

उनके ये सप्त रूप कभी होते हैं और कभी नहीं होते हैं । अतः उनका स्वभाव और भाव संशयात्मक ही हैं ॥२६॥

आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम् । ओमित्युक्तं मया विप्र तत्परं ब्रह्म तद्वपुः ॥२७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे वंशानुकीर्त्तनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।

हे ब्राह्मण ! इस जगत् के आदि एवं अन्त में जो निराकार परम सूक्ष्म परमात्मा हैं, उनको मैंने 'ओम्' इस प्रकार कहा है वही परम ब्रह्म हैं, एवं उसका शरीर है ॥२७॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में वंशानुकीर्त्तन नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

नवनवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

तस्मादण्डाद विभिन्नात्तु ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । ऋचो बभूवुः प्रथमं प्रथमाद् वदनान्मुने ॥१

जपापुष्पनिभाः सद्यस्तेजोरूपा ह्यसंहताः । पृथक् पृथग्विभिन्नाश्च रजोरूपवहास्ततः ॥२

यजूंषि दक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानिकानिचित् । यादृग्वर्णं तथा वर्णान्यसंहति धराणि च ॥३

पश्चिमं यद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । आविर्भूतानि सामानि तत्तच्छन्दांसि तान्यथ ॥४

अथर्वणामशेषं च भृङ्गाञ्जनचयप्रभम् । यावद्घोरस्वरूपं तदाभिरारिकशान्तिकम् ॥५

उत्तरात् प्रकटीभूतं वदनात्तस्य वेधसः । सुखसत्त्वतमः प्रायं सौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥६

ऋचो रजोगुणाः सत्त्वं यजुषां च गुणा मुने । तमोगुणानि सामानि तमः सत्त्वमथर्वसु ॥७

एतानि ज्वलमानानि तेजसाऽप्रतिमेन वै । पृथक् पृथगवस्थानं भाञ्जि पूर्वमिवाभवन् ॥८

मार्कण्डेय बोले —

हे मुने ! उस अण्डे के विभिन्न होने से (फूटने से) उत्पन्न अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के प्रथम मुख से पहले ऋग्वेद उत्पन्न हुआ ॥१॥

जपा पुष्प के समान कांति वाले एवं तेजो रूप असह्य तेज समूह से युक्त उसने शीघ्र ही पृथक्-पृथक् विभिन्न रजो रूप धारण कर लिया ॥२॥

फिर उसके दक्षिण मुख से स्वर्ण के समान वर्ण वाले असंहति धारण करने वाले, यजुर्वेद की अनिरूद्ध भाव से उत्पत्ति हुई ॥३॥

तथा स्वामी परमेष्ठी ब्रह्मा का जो पश्चिम मुख था उससे छन्दो बद्ध सामवेद की उत्पत्ति हुई । ४॥

एवं उन ब्रह्मा के उत्तर मुख से भृंग (भौरे) और अंजन समूह के समान कान्तिमान् (कृष्ण वर्ण) आभिचारिक, शान्ति कर्त्ता सुख, सत्त्व एवं तमस् से युक्त, सौम्य और असौम्य स्वरूप वाले अशेष अथर्व की रचना हुई ॥५-६॥

हे मुने ! ऋग्वेद में रजोगुण, यजुर्वेद में सत्त्व एवं सामवेद में तमोगुण एवं अथर्ववेद में सत्त्व और तमगुण प्रधान हैं ॥७॥

ये सभी अद्वितीय तेज से प्रकाशमान् होकर पृथक्-पृथक् स्थान ग्रहण किये हुए, पहले के समान ही हुए ॥८॥

ततस्तदाद्यं यत्तेज ओमित्युक्त्वाभिशब्द्यते। तस्य स्वभावाद् यत्तेजस्तत्समावृत्य संस्थितम् ॥९
यथा यजुर्मयं तेजस्तद्वत् साम्नां महामुने। एकत्वमुपयातानि परे तेजसि संश्रये ॥१०
शान्तिकं पौष्टिकं चैव तथा चैवाभिचारिकम्। ऋगादिषु लयं ब्रह्मंस्त्रितयं त्रिष्वथागमत् ॥११
ततो विश्वमिदं सद्यस्तमोनाशात् सुनिर्मलम्। विभावनीयं विप्रर्षे तिर्य्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥१२
ततस्तन्मण्डलीभूतं छान्दसं तेज उत्तमम्। परेण तेजसा ब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्य तत् ॥१३
आदित्यसंज्ञामगमदादावेव यतोऽभवत्। विश्वस्यास्य महाभाग कारणञ्चाव्ययात्मकम् ॥१४
प्रातर्मध्यन्दिने चैव तथा चैवापराह्णिके। त्रयी तपति सा काले ऋग्यजुः सामसंज्ञिता ॥१५
ऋचस्तपन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्ने च यजूंषि वै। सामानि चापराह्णे वै तपन्ति मुनिसत्तम ॥१६

शान्तिकमृक्षु पूर्वाह्णे यजुःष्वेव च पौष्टिकम्।
विन्यस्तं साम्नि सायाह्नेऽह्याभिचारिकमन्ततः ॥१७

मध्यंदिनेऽपराह्णे च समे चैवाभिचारिकम्। अपराह्णे पितॄणान्तु साम्ना कार्याणि तानि वै ॥१८
विसृष्टौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः। रुद्रः साममयोऽन्ते तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥१९

एवं आद्य तेज जो 'ओम्' शब्द द्वारा कहा जाता है, उसके स्वभाव से वह तेज उसको अपने में सिमेट कर स्थित हुआ ॥९॥

हे महामुने ! जिस प्रकार यजुर्मय तेज उस परम तेज को आश्रित कर एकत्व को प्राप्त हुआ उसी प्रकार साममय तेज भी एकत्व को प्राप्त हुआ ॥१०॥

ऋगादि तीनों वेदों के ब्रह्म में लीन होने पर शान्तिक, पौष्टिक, आभिचारिक, इनका भी तीनों में समावेश हो जाता है ॥११॥

हे विप्रर्षे ! उसके बाद अंधकार के नाश से यह जगत् शीघ्र ही स्वच्छ हो गया एवं उसके ऊर्ध्व, अध एवं तिर्यक् प्रदेश प्रवेश में आये ॥१२॥

हे ब्रह्मन् ! तत्पश्चात् वह परम छान्दस तेज मण्डलीभूत होकर उस परम तेज में लीन होकर एक हो गया ॥१३॥

क्योंकि यह तेज सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न हुआ इसीलिए इनका नाम आदित्य हुआ। हे महाभाग ! इस विश्व का यही अव्ययात्मक कारण है ॥१४॥

ऋक्, यजुः, साम संज्ञायुक्त तीनों प्रातः, मध्याह्न एवं अपराह्न काल में तपती हैं ॥१५॥

हे मुनिश्रेष्ठ, इनमें ऋक् प्रातः काल में, यजुः मध्याह्न में, एवं साम अपराह्न में तपती हैं ॥१६॥

ऋक से सम्बन्धित प्रातः काल में, शान्ति कर्म, यजुः से सम्बन्धित मध्याह्न में पौष्टिक कर्म एवं साम से सम्बन्धित आभिचारिक कर्म अन्त में सायंकाल में करने चाहिये ॥१७॥

मध्याह्न और अपराह्न समय में ही आभिचारिक कर्म करे। अपराह्न में पितरों के साम सम्बन्धी वे ही कार्य करने चाहिये ॥१८॥

सृष्टि काल में ब्रह्मा, ऋक्मय, स्थिति काल में विष्णु यजुर्मय एवं प्रलयकाल में रुद्र साममय होते हैं। इसी कारण अपराह्न काल को अशुचि कहते हैं ॥१९॥

तदेवं भगवान् भास्वान्वेदात्मा वेदसंस्थितः। वेदविद्यात्मकश्चैव परः पुरुष उच्यते ॥२०

सर्गस्थित्यन्तहेतुश्च रजः सत्त्वादिकान् गुणान्।
आश्रित्य ब्रह्मविष्ण्वादिसंज्ञामभ्येति शाश्वतः ॥२१

देवैः सदेड्यः स तु वेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिः।
विश्वाश्रयं ज्योतिरवेद्य धर्मा वेदान्तगम्यः परमः परेशः ॥२२

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे मार्त्तण्डमाहात्म्यवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः।

इसलिए भगवान् सूर्य को वेदात्मा, वेद, संस्थित, एवं वेद विद्या युक्त परम पुरुष कहा जाता है ॥२०॥

सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय के कारण सत्त्व, रज और तमोगुण को आश्रय करके वह शाश्वत आदि सत्य, ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि संज्ञा प्राप्त करते हैं ॥२१॥

देवताओं द्वारा सदैव स्तुत्य, वेदमूर्ति, निराकार, सम्पूर्ण प्राणि स्वरूप, एवं ज्योति स्वरूप आदि पुरुष भगवान् आदित्य विश्व के आश्रय दाता, अवेद्य धर्मा, वेदान्त गम्य एवं श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर हैं ॥२२॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मार्त्तण्डमाहात्म्य वर्णन नामक निन्यानवेंवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

शततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

तस्य सन्ताप्यमाने तु तेजसोर्द्धमधस्तथा। सिसृक्षुश्चिन्तयामास पद्मयोनिः पितामहः ॥१

सृष्टिः कृतापि मे नाशं प्रयास्यत्यभितेजसा। भास्वतः सृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥२

अप्राणाः प्राणिनः सर्वे आपः शुष्यन्ति तेजसा।
न चाम्भसा विना सृष्टिर्विश्वस्यास्य भविष्यति ॥३

इति सञ्चिन्त्य भगवान् स्तोत्रं भगवतो रवेः। चकार तन्मयो भूत्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥४

मार्कण्डेय ने कहा—

तब उस (आदित्य) के तेज से ऊर्ध्व एवं अध के संतप्त होने पर सृष्टि की रचना करने के इच्छुक पद्मयोनि पितामह ब्रह्मा ने सोचा ॥१॥

मेरे द्वारा सृष्टि का निर्माण किये जाने पर भी उसका (जगत् की) सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण स्वरूप महात्मा भास्कर के तेज युक्त किरणों से नाश हो जायेगा ॥२॥

और (उनके) तेज से सम्पूर्ण जल सूख जायेगा और सभी प्राणी निष्प्राण हो जायेंगे तथा जल के बिना इस विश्व की सृष्टि सम्भव नहीं हो सकेगी ॥३॥

यह सोचकर सभी लोकों के पितामह ब्रह्मा जी तन्मय होकर भगवान् भास्कर की स्तुति करने लगे ॥४॥

ब्रह्मोवाच—

नमस्ये यन्मयं सर्वमेतत्सर्वमयश्च यः। विश्वमूर्तिः परं ज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्ति योगिनः ॥५
य ऋङ्मयो यो यजुषां निधानं साम्नां च योऽयोनिरचिन्त्यशक्तिः।
त्रयीमयः स्थूलतयार्धमात्रा परस्वरूपो गुणपारयोग्यः ॥६
त्वां सर्वहेतुं परमं च वेद्यमाद्यं परं ज्योतिरवेद्यरूपम्।
स्थूलञ्च देवात्मतया नमस्ये भास्वन्तमाद्यं परमं परेभ्यः ॥७
सृष्टिं करोमि यदहं तव शक्तिराद्या तत्प्रेरितो जलमहीपवनाग्निरूपाम्।
तद्देवतादिविषयां प्रणवाद्यशेषां नात्मेच्छया स्थितिलयावपि तद्वदेव ॥८
वह्निस्त्वमेव जलशोषणतः पृथिव्याः सृष्टिं करोषि जगतां च तथाद्यपाकम्।
व्यापी त्वमेव भगवन् गगनस्वरूप त्वं पञ्चधा जगदिदं परिपासि विश्वम् ॥९
यज्ञैर्यजन्ति परमात्मविदो भवन्तं विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयं विवस्वन्।
ध्यायन्ति चापि यतयो नियतात्मचित्ताः सर्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामाः ॥१०
नमस्ते देवरूपाय यज्ञरूपाय ते नमः। परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिभिः ॥११
उपसंहर तेजो यत्तेजसः संहतिस्तव। सृष्टेर्विघाताय विभो सृष्टौ चाहं समुद्यतः ॥१२

ब्रह्मा ने कहा—

जिससे यह सम्पूर्ण (जगत्) लिप्त है और जो सर्वमय है एवं जिस विश्व मूर्ति परम ज्योति (स्वरूप) का योगी भी ध्यान करते हैं, उन (भगवान् सूर्य) को नमस्कार है ॥५॥

जो ऋङ्मय है और यजुः का निधान है और साम का उद्गम स्थल है और अचिन्त्य शक्ति है तथा त्रयीमय है। स्थूलता के कारण तीनों में निहित अर्द्धमात्रा (स्वरूप) परम ब्रह्म स्वरूप एवं गुणातीत है ॥६॥

सभी का परम हेतु जानने योग्य प्रथम ज्योति, अवद्य रूप है, और देवात्मा होने के कारण स्थूल रूप पर से भी पर तम आदि पुरुष भगवान् भास्कर को नमस्कार है ॥७॥

और मैं जो, पृथ्वी, जल, वायु. अग्नि रूप वाली देवता आदि विषयक प्रणवादि अशेषों की सृष्टि करता हूँ, वह तुम्हारी आद्य (नित्य) शक्ति से प्रेरित होकर ही करता हूँ। और उसी प्रकार उसकी स्थिति एवं लय आदि भी मैं अपनी इच्छा से नहीं करता हूँ ॥८॥

तुम्हीं वह्नि स्वरूप हो और तुम ही पृथ्वी का जल सोखकर जगत् की सृष्टि करते हो और तुम ही आद्य पावक हो। हे भगवन् गगन स्वरूप तुम्हीं सर्वत्र व्याप्त हो। पञ्च रूपात्मक इस सम्पूर्ण जगत् की भी तुम्हीं रक्षा करते हो ॥९॥

हे विवस्वन् परम आत्मविद् (ज्ञानी) सम्पूर्ण इष्टियों से युक्त तुम्हारे विष्णु स्वरूप का यज्ञों द्वारा भजन करते हैं और आत्म मोक्ष के आकांक्षी जितेन्द्रिय यति भी तुम्हें परम ब्रह्म परमेश्वर मानकर तुम्हारा ध्यान करते हैं ॥१०॥

देवरूप तुमको नमस्कार है। तुम्हीं योगियों के द्वारा यज्ञ रूप और परब्रह्म रूप मानकर चिंतन किये जाते हो, तुमको मैं नमस्कार करता हूँ ॥११॥

हे विभो! तुम अपने तेज का संयमन करो, क्योंकि मैं सृष्टि की रचना के लिए उद्यत हुआ हूँ और तुम्हारा तेज सृष्टि की रचना में बाधक है ॥१२॥

मार्कण्डेय उवाच—

इत्येवं संस्तुतो भास्वान् ब्रह्मणा सर्गकर्तृणा । उपसंहृतवांस्तेजः परं स्वल्पमधारयत् ।।१३
चकार च ततः सृष्टिं जगतः पद्मसम्भवः । तथा तेषु महाभागः पूर्वकल्पान्तरेषु वै ।।१४
देवासुरादीन् मर्त्यांश्च पश्वादीन् वृक्षवीरुधः । ससर्ज पूर्ववद् ब्रह्मा नरकांश्च महामुने ।।१५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे आदित्यस्तवो नाम शततमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेय बोले—

सृष्टि का निर्माण करने वाले ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किये गये, भगवान् ने अपने तीव्र तेज का संयमन कर लिया । केवल बहुत थोड़ा धारण किया ।।१३।।

उसके बाद हे महाभाग ! कमल से उत्पन्न होने वाले (ब्रह्मा ने) पूर्व कल्पान्त कल्प में जगत् की सृष्टि की ।।१४।।

हे महामुने ! ब्रह्मा जी ने पहले के समान सुर, असुर, मनुष्य, पशु, वृक्ष और लता एवं नरकों आदि की रचना की ।।१५।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में आदित्य स्तवन नामक सौवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एकाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

सृष्ट्वा जगदिदं ब्रह्मा प्रविभागमथाकरोत् । वर्णाश्रमसमुद्रादिद्वीपानां पूर्ववद्यथा ।।१
देवदैत्योरगादीनां रूपस्थानानि पूर्ववत् । वेदेभ्य एव भगवानकरोत् कमलोद्भवः ।।२
ब्रह्मणस्तनयो योऽभून्मरीचिरितिविश्रुतः । कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् काश्यपो नाम नामतः ।।३
दक्षस्य तनया ब्रह्मंस्तस्य भार्यास्त्रयोदश । बहवस्तत्सुताश्चासन् देवदैत्योरगादयः ।।४
अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान् । दैत्यान्दितिर्दनुश्चोग्रान् दानवानुरुविक्रमान् ।।५

मार्कण्डेय बोले—

ब्रह्माजी ने इस जगत् का निर्माण करके पुनः उसको पहले के समान वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपों में विभक्त किया ।।१।।

और भगवान् कमलोद्भव (ब्रह्मा) ने वेदों से ही, देव, दैत्य और नाग पहले के समान रूप निर्माण किया ।।२।।

मरीचि इस नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मा के पुत्र हुए और उनके पुत्र कश्यप नाम से विख्यात हुए ।।३।।

हे ब्रह्मन् ! दक्ष की तेरह पुत्रियाँ उसकी पत्नियाँ थी और देव, दैत्य और उरग (नाग) आदि बहुत से उसके पुत्र थे ।।४।।

और अदिति ने तीनों लोकों के स्वामी देवताओं और दिति ने दैत्यों एवं दनु ने महा पराक्रमी, भयंकर दानवों को जन्म दिया ।।५।।

गरुडारुणौ च विनता यक्षरक्षांसि वैखसा । कद्रूः सुषाव नागांश्च गन्धर्वान्सुषवे मुनिः ॥६
क्रोधाया जज्ञिरे कुल्या रिष्टायाश्चाप्सरोगणाः । ऐरावतादीन्मातङ्गानिरा च सुषुवे द्विज ॥७
ताम्रा च सुषुवे श्येनी प्रमुखाः कन्यका द्विज । यासां प्रसूताः खगमाः श्येनभासशुकादयः ॥८
इलायाः पादपाजाताः प्रधाया यादसां गणाः । अदित्यां या समुत्पन्ना कश्यपस्येति सन्ततिः ॥९
तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रिकादिभिः । व्याप्तमेतज्जगत्सूत्या तेषां तासाञ्च वै मुने ॥१०
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः । सात्त्विका राजसास्त्वेते तामसाश्च मुने गणाः ॥११
देवान्यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान् । ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥१२
तानबाधन्त सहिताः सपत्ना दैत्यदानवाः । राक्षसाश्च तथा युद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ॥१३
दिव्यं वर्षसहस्रं तु पराजीयन्त देवताः । जयिनश्चाभवन्विप्र बलिनो दैत्यदानवाः ॥१४
ततो निराकृतान् पुत्रान् दैतेयैर्दानवैस्तथा । हृतत्रिभुवनान् दृष्ट्वा ह्यदितिर्मुनिसत्तम ॥१५
आच्छिन्नयज्ञभागांश्च शुचा संपीडिता भृशम् । आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे ॥१६
एकाग्रा नियताहारा परंनियममास्थिता । तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम् ॥१७

विनता ने गरुड़ और अरुण को, खसा ने यक्ष एवं राक्षस, कद्रू ने नागों और मुनि ने गन्धर्वों को जन्म दिया ॥६॥

हे द्विज ! क्रोधा से कुल्या (गण) और रिष्टा से अप्सराएँ तथा इरा से ऐरावत आदि हाथियों की उत्पत्ति हुई ॥७॥

हे द्विज ! ताम्रा ने श्येनी आदि कन्याएँ उत्पन्न की, जिनसे श्येन, भास एवं शुक आदि (खेचर) पक्षी उत्पन्न हुए ॥८॥

इला से पादप और प्रधा से पतंगे उत्पन्न हुए और अदिति (के गर्भ) से उत्पन्न, कश्यप की जो सन्तानें थीं ॥९॥

उनके भी पुत्र, पौत्रों एवं नाति, धेवतों ने और उनकी भी सन्तानों ने इस सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर लिया ॥१०॥

कश्यप के उन पुत्रों में देवगण प्रधान हैं । हे मुने ! ये (त्रिविध) गण, सात्विक, राजस एवं तामस हैं ॥११॥

ब्रह्मविद्, श्रेष्ठ, परमेष्ठी, प्रजापति ब्रह्मा ने त्रिभुवनेश्वर देवताओं को यज्ञ भोगी बनाया ॥१२॥

किन्तु विमाताओं से उत्पन्न दैत्य, दानव और राक्षस, मिलकर उन (देवताओं) को बाधा उपस्थित करते थे । इसलिए उनका (देवताओं के साथ) हजारों दिव्य वर्षों तक विकराल युद्ध हुआ । जिनमें देवताओं की पराजय और बलवान् दैत्य एवं दानवों की विजय हुई ॥१३-१४॥

हे मुनि श्रेष्ठ ! तब दैत्य और दानवों से पराजित, छीने गये तीनों भुवनों के राज्य वाले, और यज्ञ भागों से वंचित अपने पुत्रों को देखकर अत्यधिक शोक और पीड़ा से युक्त होकर अदिति ने सूर्य भगवान् की स्तुति करना प्रारम्भ किया ॥१५-१६॥

एकाग्रचित्त, नियत आहार एवं परम नियम परायणा उस (अदिति) ने तेजो राशि गगन में स्थित दिवाकर की स्तुति की ॥१७॥

अदितिरुवाच—

नमस्तुभ्यं परां सूक्ष्मां सौवर्णीं बिभ्रते तनुम् । धाम धामवतामीश धाम्नामाधारशाश्वत ।।१८
जगतामुपकाराय तथापस्तव गोपते । आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ।।१९
ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनेन्दुमयं रसम् । बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत् ।।२०
तमेव मुञ्चतः सर्वं रसं वै वर्षणाय यत् । रूपमाप्यायकं भास्वंस्तस्मै मेघाय ते नमः ।।२१
वार्युत्सर्गविनिष्पन्नमशेषञ्चौषधीगणम् । पाकाय तव यद्रूपं भास्करं तं नमाम्यहम् ।।२२
यच्च रूपं तवातीतं हिमोत्सर्गादिशीतलम् । तत्कालसस्यपोषाय तरणे तस्य ते नमः ।।२३
नातितीव्रं च यद्रूपं नातिशीतं च यत्तव । वसन्तर्तौ रवे सौम्यं तस्मै देव नमो नमः ।।२४
आप्यायनमशेषाणां देवानां च तथा परम् । पितृणां च नमस्तस्मै सस्यानां पाकहेतवे ।।२५
यद्रूपं जीवनायैकं वीरुधाममृतात्मकम् । पीयते देवपितृभिस्तस्मै सोमात्मने नमः ।।२६
आप्यायद् दाहरूपाभ्यां रूपं विश्वमयं तव । समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने ।।२७

अदिति ने कहा—

हे शाश्वत् ज्योतिष्मानों के स्वामी, और ज्योतिष्मानों के आधार, स्वर्ण के समान वर्ण वाले, सूक्ष्म और परम सुन्दर शरीर से युक्त, तुमको नमस्कार है ।।१८।।

हे गोपते ! जगत् के उपकार के लिए जल ग्रहण करने वाला, तुम्हारा जो तीक्ष्ण (दीप्त युक्त) स्वरूप है, उसको मैं नमस्कार करती हूँ ।।१९।।

आठ महीने तक इन्दुमय रस को ग्रहण करके पुनः उसको धारण करने वाला अति ओज सम्पन्न तुम्हारा जो स्वरूप है, उसको मैं प्रणाम करती हूँ ।।२०।।

उसी सम्पूर्ण रस को परित्याग करते हुए, वर्षा करने के लिए तुम जो तृप्ति कारक कान्तिमान् मेघ रूप धारण करते हो, उस तुम्हारे मेघ रूप को नमस्कार है ।।२१।।

जल वर्षा से उत्पन्न सम्पूर्ण औषधियों को पकाने के लिए तुम्हारी जो भास्कर मूर्ति है, उसको मैं नमस्कार करती हूँ ।।२२।।

हे तरणे शस्य पोषण के लिए उस समय, हिमोत्सर्गादि (वर्षा) इत्यादि के लिए अत्यन्त शीतल तुम्हारे स्वरूप को नमस्कार है ।।२३।।

और तुम्हारा जो स्वरूप न तो अत्यधिक शीतल है और न अधिक तीव्र है । बसन्त ऋतु की तुम्हारी जो सौम्य मूर्ति है, हे देव ! तुम्हारी उस मूर्ति को नमस्कार है ।।२४।।

सम्पूर्ण देवताओं और पितृगणों की तृप्ति प्रदान करने वाले और अन्न को पकाने वाले तुम्हारे स्वरूप को नमस्कार है ।।२५।।

सम्पूर्ण गुल्मलता के जीवन का आधार तुम्हारा जो अमृतमय रूप है । जिसका देव और पितरगण भी पान करते हैं ।।२६।।

हे गुणात्मन् ! दाह और रूप (सौन्दर्य) दोनों के मिलने से तुम्हारा जो जगत्मय स्वरूप बना है, अग्नि और सोम युक्त उस स्वरूप को नमस्कार है ।।२७।।

यद्रूपमृग्यजु: साम्नामैक्येन तपते तव । विश्वमेतत् त्रयीसंज्ञं नमस्तस्मै विभावसो ।।२८
यत्तु तस्मात्परं रूपमोमित्युक्त्वाऽभिशब्दितम् । अस्थूलानन्तममलं नमस्तस्मै सदात्मने ।।२९

मार्कण्डेय बोले –

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम् । निराहारा विवस्वन्तमारिराधयिषुर्मुने ।।३०
ततः कालेन महता भगवांस्तपनोऽम्बरे । प्रत्यक्षतामगादस्या दाक्षायण्या द्विजोत्तम ।।३१
सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंश्रितम् । जगाद मे प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ।।३२
यथा दृष्टवती पूर्वमम्बरस्थं सुदुर्दृशम् । निराहारा विवस्वन्तं तपन्तं तदनन्तरम् ।।३३
संघातं तेजसां तद्वदिह पश्यामि भूतले । प्रसादं कुरु पश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर ।।
भक्तानुकम्पक विभो भक्ताहं पाहि मे सुतान् ।।३४

त्वंधाता विसृजसि विश्वमेतत्त्वं पासि स्थिति करणाय संप्रवृत्तः ।
त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तत्त्वं त्वत्तोऽन्या न हि गतिरस्ति सर्वलोके ।।३५
त्वं ब्रह्माहरिरजसंज्ञितस्त्वमिन्द्रो वित्तेशः पितृपतिरप्पतिः समीरः ।
सोमोऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धिः किं स्तव्यं तव सकलात्मरूपधाम्नः ।।३६

ऋक्, यजुः और साम की एकता वाला तुम्हारा जो रूप सम्पूर्ण विश्व में चमकता है । त्रयी संज्ञक विभा सम्पन्न तुम्हारे उस रूप को नमस्कार है ।।२८।।

हे श्रेष्ठात्मन् ! ओ३म् इस पद द्वारा कहा गया तुम्हारा जो सूक्ष्म, अनन्त और स्वच्छ स्वरूप हैं तुम्हारे उस स्वरूप को नमस्कार है ।।२९।।

मार्कण्डेय बोले—

हे मुने ! इस प्रकार निराहार और नियम परायण वह देवी सूर्य भगवान् की आराधना करने की इच्छा से दिन, रात स्तुति करने लगी ।।३०।।

हे द्विजोत्तम ! इसके बाद बहुत समय बीतने पर, गगन से तपते हुए, भगवान् सूर्य ने दक्ष सुता (अदिति) को प्रत्यक्ष दर्शन दिया ।।३१।।

फिर उसने, चमकते हुए वस्त्र को धारण किये हुए, तेजो राशि सम्पन्न भगवान् सूर्य को देखा और बोली हे गोपते ! मुझ पर प्रसन्न होओ, मैं तुमको नहीं देख पा रही हूँ ।।३२।।

तप करते समय निराहार रहते हुए, मैंने जिस प्रकारआकाश में स्थित दुर्दर्शनीय तुम्हें जैसा देखा था । उसके बाद भी ।।३३।।

तेजों के समूह, तुमको मैं भूतल पर भी उसी के समान देख रही हूँ । हे दिवाकर, मुझ पर प्रसन्न होओ, जिससे मैं तुम्हारे स्वाभाविक स्वरूप को देख सकूं । हे प्रभो ! तुम भक्तों पर कृपा करने वाले हो, मैं तुम्हारी भक्त हूँ, मेरे पुत्रों की रक्षा करो ।।३४।।

तुम ब्रह्मा के रूप में इस जगत् के जन्म दाता हो । जगत् की सृष्टि के पश्चात् स्थिति काल में इसका पोषण करते हो एवं प्रलय काल में तुम्हीं में यह सम्पूर्ण जगत् विलीन हो जाता है, इसलिए सभी लोकों में तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं है ।।३५।।

तुम ही ब्रह्मा हरि, अज संज्ञित, शिव, इन्द्र' धनपति कुवेर, यम, वरुण एवं समीर, सोम, अग्नि, गगनपति, पृथ्वी का आधार और सागर हो । (इसके अतिरिक्त) तुम्हीं समस्त तेज पदार्थों के आत्मा रूप हो । मैं तुम्हारी क्या स्तुति कर सकती हूँ ।।३६।।

यज्ञेश त्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ताः स्तुन्वन्तो विविधपदैर्द्विजा यजन्ति ।
ध्यायन्तो विनियतचेतसो भवन्तं योगस्थाः परमपदं प्रयान्ति मर्त्याः ।।३७
तपसि पचसि विश्वं पासि भस्मीकरोषि प्रकटयसि मयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ।
सृजसि कमलजन्मा पालयस्यच्युताख्यः । क्षपयसि च युगान्ते रुद्ररूपस्त्वमेकः ।।३८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे दिवाकरस्तुतिर्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ।

हे यज्ञेश ! अपने कर्मों में लीन ब्राह्मण विविध प्रकार के पदों द्वारा स्तुति करते हुए प्रतिदिन तुम्हारी आराधना करते हैं । एकाग्रचित्त योगी मनुष्य तुम्हारा ध्यान करते हुए, परमपद प्राप्त करते हैं ।।३७।।

तुम्हीं विश्व को उष्णता प्रदान करते हो, सभी (वस्तुओं को) पकाते हो. विश्व का पालन करते हो, पदार्थों को भस्म करते हो, जल गर्भ को भेदने वाली किरणों के समूह से आह्लादित एवं पुनः उत्पन्न करते हो । तुम अकेले ही कमल जन्मा बनकर निर्माण करते हो, अच्युत नाम वाले बनकर तुम जगत् का पालन करते हो, और रुद्र का रूप धारण करके, तुम संहार करते हो ।।३८।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में दिवाकर स्तुति नामक एक सौ एक वाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः । अदृश्यत तदाऽऽदित्यस्तप्तताम्रोपमप्रभः ।।१
अथ तां प्रणतां देवीं तस्य संदर्शनान्मुने । प्राह भास्वान् वृणुष्वेष्टवरं मत्तो यमिच्छसि ।।२
प्रणता शिरसा सा च जानुपीडितमेदिनी । प्रत्युवाच विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम् ।।३
देव प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम । यज्ञभागाश्च दैत्यैश्च दानवैश्च बलाधिकैः ।।४
तन्निमित्तं प्रसादं त्व कुरुष्व मम गोपते । अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा नाशय तद्रिपून् ।।५

मार्कण्डेय बोले –

तब तप्त ताँबे के समान प्रभा वाले अपने तेज मण्डल से युक्त भगवान् आदित्य प्रकट हुए ।।१।।

हे मुने ! प्रणाम करती हुई उस देवी को देखकर, सूर्य बोले—तुम्हारी जो इच्छा हो वही अभीष्ट वर मुझसे माँग लो ।।२।।

और घुटने पृथ्वी पर टेककर सिर नवाकर प्रणाम करती हुई वह वर देने के लिए आये हुए, सूर्य भगवान् से बोली—।।३।।

हे देव ! तुम प्रसन्न हो, अधिक बल वाले दैत्यों और दानवों ने मेरे पुत्रों (देवताओं) का यज्ञ भाग और तीनों लोकों का राज्य छीन लिया है ।।४।।

हे गोपते ! इसलिए तुम मेरे ऊपर कृपा करो और अपने अंश से उनके भाई बनकर शत्रुओं का संहार करो ।।५।।

यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो । भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ।।६
तथानुकम्पां पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे मम । कुरु प्रपन्नार्ति हर स्थितिकर्त्ता त्वमुच्यसे ।।७

मार्कण्डेय उवाच —

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्करः । त्वत्पुत्रशत्रूनदिते नाशयाम्याशु निर्वृतः ।।९
इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत् । निवृत्ता सापि तपसः संतृप्ताखिलवाञ्छिता ।।१०
ततो रश्मिसहस्रात्तु सौसुम्नाख्यो रवेः करः । विप्रावतारं संचक्रे देवमातुरथोदरे ।।११
कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि सा च चक्रे समाहिता । शुचिः संधारयामास दिव्यं गर्भमिति द्विज ।।१२
ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् । किं मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिनी ।।१३
सा च तं प्राह गर्भाण्डमेतत् पश्येति कोपना । न मारितं विपक्षाणां मृत्यवे तद्भविष्यति ।।१४

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज सुरारणिः । जाज्वल्यमानं तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ।।१५

हे प्रभो ! जिससे मेरे पुत्रगण पुनः तीनों लोकों के स्वामी और यज्ञ भागों के भोगने वाले हो जाएँ ।।६।।

और हे रवे ! मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे पुत्रों पर अनुकम्पा करो क्योंकि तुमको प्रणत का कष्ट हरने वाला और लोक पालक कहा जाता है ।।७।।

मार्कण्डेय बोले —

हे विप्र ! उसके बाद जल को सुखाने वाले, भगवान् भास्कर प्रणाम करती हुई (प्रणत) अदिति से प्रसन्न मुख होकर बोले—। ८।।

हे अदिते ! सहस्र अंशुओं से तुम्हारे गर्भ में उत्पन्न होकर मैं तुम्हारे पुत्रों के समस्त शत्रुओं को शीघ्र ही समूल नष्ट करूँगा ।।९।।

यह कहकर भगवान् भास्कर अन्तर्धान हो गये और वह अदिति भी मनोवाञ्छित वरदान से सन्तुष्ट हुई और तपस्या से विरत हो गयीं ।।१०।।

हे विप्र ! इसके पश्चात् सूर्य की सौषुम्न नामक किरण देवमाता अदिति के गर्भ में अवतरित हुई ।।१ ।।

हे द्विज ! तब अदिति ने समाहित चित्त होकर कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत आदि व्रतों को किया और पवित्रता पूर्वक दिव्य गर्भ को धारण किया ।।१२।।

तब उससे कुछ क्रोध में भरकर कश्यप ने कहा--'प्रतिदिन' उपवास करके क्या तुम अपने गर्भ की हत्या करोगी ? ।।१३।।

फिर उस (अदिति) ने उनसे अतिकुपित होकर कहा— मैं इसे मारूँगी नहीं, अपितु इस गर्भाण्ड को तुम देखो । यह तो शत्रुओं का संहारक होगा ।।१४।।

मार्कण्डेय बोले--

तब उस (कश्यप) को इस प्रकार कहकर पति के वचनों से कुपित हुई उस देवमाता अदिति ने तेज से जाज्वल्यमान उस गर्भ का परित्याग कर दिया ।।१५।।

तं दृष्ट्वा कश्यपो गर्भमुद्यद्भास्करवर्च्चसम् । तुष्टाव प्रणतो भूत्वा ऋग्भिराद्याभिरादरात् ॥१६
संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् । पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥१७
अथान्तरिक्षादाभाष्य कश्यपं मुनिसत्तमम् । सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी ॥१८
मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने । तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्तण्डाख्यो भविष्यति ॥१६
सूर्याधिकारं च विभुर्जगत्येष करिष्यति । हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन् ॥२०
तेवा निशम्येति वचो गगनात्समुपागमन् । प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हृतौजसः ॥२१
ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः । सह देवैर्मुदायुक्तो दानवाश्च समभ्ययुः ॥२२
देवां युत्तमभद्घोरं देवानामसुरैः सह । शस्त्रास्त्रदीप्तिसंदीप्तं समस्तभुवनान्तरम् ॥२३
तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः । तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः ॥२४
ततः प्रहर्षमतुलं प्राप्ताः सर्वे दिवोकसः । तुष्टुवुस्तेजसां योनिं मार्त्तण्डमदितिं तथा ॥२५
स्वाधिकारांस्तथा प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् । भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ॥२६

उगते हुए सूर्य के समान प्रभा सम्पन्न उस गर्भ को देखकर कश्यप ने आदर सहित आद्यऋचाओं से नतमस्तक होकर स्तुति की ॥१६॥

तब स्तुति किये जाते हुए, पद्म पत्र के समान आभा वाले अपने तेज से दिशाओं को व्याप्त करते हुए वह भास्कर गर्भाण्ड से प्रकट हुए ॥१७॥

इसके बाद अन्तरिक्ष से जल मेघ के समान गम्भीर अशरीरिणी वाणी मुनि श्रेष्ठ कश्यप को सम्बोधन करती हुई बोली ॥१८॥

हे मुने ! क्योंकि तुमने इस अण्ड को 'मारोगी' इस प्रकार कहा है, इसलिए हे मुनिवर ! तुम्हारा यह पुत्र 'मार्तण्ड' नाम से प्रसिद्ध होगा ॥१६॥

और यह विभु सूर्य के समान सम्पूर्ण संसार पर एकछत्र राज्य करेगा और यह यज्ञ भाग का हरण करने वाले शत्रुदैत्यों का भी सहार करेगा ॥२०॥

(अशरीरी व णी के) इस प्रकार के वचनों को सुनकर, देवता आकाश से आये और अत्यधिक प्रसन्न हुए तथा दैत्य और दानवगण तेजोहीन हो गये ॥२१॥

उनके पश्चात् देवताओं सहित इन्द्र ने आनन्दित होकर दैत्यों को युद्ध के लिए ललकारा। तो दानव भी (युद्ध के लिए) आ पहुँचे ॥२२॥

फिर असुरों के साथ उन देवताओं का घोर युद्ध हुआ और उनके शस्त्रास्त्रों की चमक से भुवनों का समस्त अन्तराल खूब दीप्तिमान् हो गया ॥२३॥

उस भयंकर युद्ध में भगवान् मार्तण्ड का असुरों के ऊपर दृष्टिपात होते ही उनके प्रचन्ड तेज से जलकर वे सभी महाअसुर भस्मीभूत हो गये ॥२४॥

तब सभी देवता अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्होंने तेजों के उद्गम स्थल मार्तण्ड और अदिति की स्तुति की ॥२५॥

और देवों ने पहले के समान अपने अधिकारियों और यज्ञ भागों को प्राप्त किया। तथा भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकार के अनुरूप सूर्य का कार्य करने लगे ॥२६॥

कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वं च रश्मिभिः। वृत्ताग्निपिण्डसदृशो दध्रे नातिस्फुरद् वपुः ॥२७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे मार्त्तण्डोत्पत्तिर्नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः।

और कदम्ब के पुष्प के समान अपनी रश्मियों से नीचे और ऊपर चमकते हुए गोल अग्निपिण्ड के समान अति स्फुरण रहित शरीर (आकृति) धारण किया ॥२७॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में मार्त्तण्डोत्पत्ति नामक एक सौ दोवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

अथ तस्मै ददौ कन्यां संज्ञां नाम विवस्वते। प्रसाद्य प्रणतो भूत्वा विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥१

वैवस्वतस्तु सम्भूतो मनुस्तस्यां विवस्वतः। पूर्वमेव तथा ख्यातं तत्स्वरूपं विशेषतः ॥२

(क्रौष्टुकिरुवाच)—

(भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि मार्तण्डस्य महात्मनः। चरितं हन्ति यत्पापं कलौ संश्रृण्वतां नृणाम् ॥)

मार्कण्डेय उवाच—

त्रीण्यपत्यान्य सौतस्यां जनयामास गोपतिः। द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां मुने ॥३

मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः। ततो यमो यमी चैव यमलौ संबभूवतुः ॥४

यत्तेजोऽभ्यधिकं तस्य मार्तण्डस्य विवस्वतः। तेनातितापयामास त्रींल्लोकान् सचराचरान् ॥५

गोलाकारं तु तं दृष्ट्वा संज्ञा रूपं विवस्वतः। असहन्ती महत्तेजः स्वां छायां प्रेक्ष्य साऽब्रवीत् ॥६

मार्कण्डेय ने कहा—

इसके बाद विश्वकर्मा प्रजापति ने प्रणत होकर (विवस्वान् को) प्रसन्न करके अपनी संज्ञा नाम की कन्या को विवस्वान् को दे दिया ॥१॥

विवस्वान् से उस (संज्ञा) में वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। वह सब वृत्त पहले ही कह दिया है। उसका स्वरूप भी विशेष रूप से बता दिया है ॥२॥

(क्रौष्टुकि बोले—

हे भगवन्! मैं भगवान् मार्तण्ड के चरित को पुनः सुनना चाहता हूँ, जो चरित कलियुग में मनुष्यों के पापों को दूर करने वाला है।)

मार्कण्डेय ने कहा—

गोपति ने उससे तीन संतानों को उत्पन्न किया, महाभाग्यवान् दो पुत्र और एक कन्या यमुना ॥३॥

इनमें सबसे बड़े वैवस्वत मनु थे, श्राद्धदेव प्रजापति यम और यमी दोनों जुड़वाँ उत्पन्न हुए ॥४॥

विवस्वान् का जो (पूर्वकाल का) अति तीव्र (तीक्ष्ण) तेज था, उसने चराचर तीनों को अत्यधिक सन्तप्त किया ॥५॥

विवस्वान् के उन गोलाकार रूप को देखकर, संज्ञा उनके महान् तेज को सहन न कर सकी और अपनी छाया को देखकर उसने उससे कहा ॥६॥

संज्ञोवाच —

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः। निर्विकारं त्वयाऽप्यत्र स्थेयं मच्छासनाच्छुभे ।।७

इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी। संभाव्यौ नैव चाख्येयमिदं भगवते त्वया ।।८

छायासंज्ञोवाच—

आकेशग्रहणाद् देवि आशापान्नैव कर्हिचित्। आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम् ।।९

इत्युक्त्वा छायया संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम्। तत्रावसत्पितुर्गेहे कंचित् कालं शुभेक्षणा ।।१०

भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः। अगच्छद् बडवा भूत्वा कुरून् विप्रोत्तरांस्ततः ।।११

तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा महामुने। पितुः समीपं यातायाः संज्ञाया वाक्यतत्परा ।।१२

तद्रूपधारिणीछाया भास्करं समुपस्थिता। तस्यां च भगवान् सूर्यः संज्ञेयमिति चिन्तयन् ।।१३

तथैव जनयामास द्वौ सुतौ कन्यकां तथा। पूर्वजस्य मनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेन सोऽभवत् ।।१४

यस्तयोः प्रथमं जातः पुत्रयोर्द्विजसत्तम। द्वितीयो योऽभवच्चान्यः सग्रहोऽभूच्छनैश्चरः ।।१५

संज्ञा ने कहा—

हे शुभे ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं स्वयं ही अपने पिता के घर जा रही हूँ। तुम्हें मेरी आज्ञा से यहाँ निर्विकार रहते हुए, रहना है ।।७।।

और यह वरवर्णिनी कन्या है, मेरे ये दोनों बालक हैं। इनके प्रति अच्छा व्यवहार करना और यह बात कभी तुम भगवान् से प्रकट न करना ।।८।।

छाया संज्ञा ने कहा—

हे देवि ! केश पकड़ने और शाप देने तक तुम्हारी इस बात को मैं किसी से नहीं कहूँगी, अतः तुम जहाँ जाना चाहती हो, जा सकती हो ।।९।।

छाया संज्ञा से इस प्रकार कहकर वह (संज्ञा) अपने पिता के घर गयी और शुभ दृष्टि वाली उसने वहाँ पिता के घर में कुछ समय तक निवास किया ।।१०।।

फिर पिता के द्वारा—'पति के पास जाओ, इस प्रकार बार-बार कहे जाने पर वह (पति के घर) न जाकर घोड़ी बनकर उत्तर कुरु प्रदेश में गयी और फिर हे महामुने ! निराहार रहते हुए उस साध्वी ने वहाँ तपस्या की। पिता के समीप गयी हुई संज्ञा की बात पर तत्पर ।।११–१२।।

तब उस (संज्ञा) का रूप धारण किये हुए छाया संज्ञा सूर्य के पास गयी और भगवान् सूर्य ने उसको यही संज्ञा है ऐसा सोचते हुए ।।१३।।

उसी प्रकार दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की। उससे उत्पन्न प्रथम पुत्र पहले मनु के समान (गुणों से युक्त) सावर्णि मनु हुआ ।।१४।।

हे द्विज ! श्रेष्ठ उन दोनों पुत्रों में जो पहला पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पहले मनु के गुणों के समान गुणों वाला सावर्णि मनु हुआ और जो दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ वह शनैश्चर ग्रह बना ।।१५।।

कन्याऽभूत्तपती या तां वव्रे संवरणो नृपः। संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां यथाऽकरोत् ॥१६
स्नेहान्न पूर्वजातानां तथा कृतवती सती। मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमश्चास्या न चक्षमे ॥१७
बहुशो याच्यमानस्तु पितुः पत्न्या स दुःखितः। स वैकोपाच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥१८
पदा सन्तर्जयामास छायासंज्ञां यमो मुने। ततः शशाप च यमं संज्ञा सामर्षिणी भृशम् ॥१९

छायोवाच—

पदा तर्जयसे यस्मात् पितृभार्यां गरीयसीम्। तस्मात् चवैवचरणः पतिष्यति न संशय ॥२०
यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः। मनुना सह धर्मात्मा सर्वंपित्रे न्यवेदयत् ॥२१

यम उवाच—

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव न वर्तते। विसृज्य ज्यायसोऽप्यस्मान् कनीयांसौ बुभूर्षति ॥२२
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः। बाल्याद् वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥२३
शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः। ततो न मन्ये जननीमिमां वै तपतांवर ॥२४
विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा पितः। पादस्ते पततां पुत्र कथमेतत् प्रवक्ष्यति ॥२५

और जो तपती (नाम की) कन्या हुई उसका (यथा समय) राजा संवरण के साथ विवाह किया गया। जिस प्रकार पार्थिव संज्ञा अपने पुत्रों से प्रेम करती थी, उस प्रकार का स्नेह वह (छाया संज्ञा) पहले उत्पन्न हुए पुत्रों पर न करती थी। मनु ने तो (इसके लिए) उसको क्षमा कर दिया, किन्तु यम ने इसे क्षमा नहीं किया।।१६-१७।

पिता की पत्नी से दुःखी उसने बहुत बार, प्रार्थना करने पर भी (जब उसमें परिवर्तन नहीं पाया तो) बाल सुलभ क्रोध वश और होनहार के वशीभूत होने से (बाल चापल्य वश) ॥१८॥

हे मुने! यम ने छाया संज्ञा को पदाघात के लिए चरण उठाया, तब अत्यधिक क्रुद्ध हुई उस छाया सज्ञा ने यम को शाप दे दिया ॥१९॥

छाया ने कहा—

क्योंकि अपने पिता की भार्या होने पर भी तुम मुझे लात मारते हो, इसलिए तुम्हारा यह पैर गिर जायेगा। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है ॥२०॥

उस शाप से अत्यधिक पीड़ित मन वाले यम ने धर्मात्मा मनु के साथ पिता के पास जाकर पिता से सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥२१॥

यम ने कहा—

हे देव! माता का हममें समान स्नेह नहीं है। ज्येष्ठ होने पर भी हमें छोड़कर वह छोटों पर अधिक स्नेह और पालन पोषण करती है ॥२२॥

(इस कारण) बाल स्वभाव वश अथवा मोह से मैंने उनकी ओर लात, मात्र उठायी थी, किन्तु मारी नहीं। फिर भी उसके लिए आप मुझे क्षमा कीजिए ॥२३॥

हे तपस्वि श्रेष्ठ! तात, क्योंकि पुत्र होते हुए भी माता के द्वारा क्रोधपूर्वक मैं शप्त हुआ हूँ, इसलिए हे तात! मैं इनको अपनी माता नहीं मानता हूँ ॥२४॥

हे पिताजी! क्योंकि पुत्र के दुष्ट होने पर भी माता दुष्ठता का व्यवहार नहीं करती है फिर (मेरे पैर उठाने मात्र से ही) हे पुत्र! 'तुम्हारा पैर गिर जाए' ऐसा क्यों कर कहेगी (शाप देगी) ॥२५॥

तव प्रसादाच्चरणो न पतेद् भगवन् यथा। मातृशापादयं मेऽद्य तथा चिन्तय गोपते ॥२६

रविरुवाच—

असंशयमिदं पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम्। येन त्वामाविशत्क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥२७

सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते। न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥२८

न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं मातुर्वचस्तव। किञ्चित्तव विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥२९

कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम्। कृतं तस्या वचः सत्यं त्वं च त्रातो भविष्यसि ॥३०

मार्कण्डेय उवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयेषु वै। तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ॥३१

नूनां नैषां त्वं जननी संज्ञा कापि त्वमागता। विगुणेष्वप्यपत्येषु कथं माता शपेत् सुतम् ॥३२

मार्कण्डेय उवाच—

सा तत्परिहरन्ती च नाचचक्षे विवस्वतः। स चात्मानं समाधाय युक्तस्तत्त्वमपश्यत ॥३३

तं शप्तुमुद्यतं दृष्ट्वा छायासंज्ञा दिवस्पतिम्। भयेन कम्पिता ब्रह्मन् यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥३४

इसलिए हे भगवन्! आप वैसा कीजिए, जिससे कि आपकी कृपा से माता के शाप के कारण आज मेरा यह चरण न गिरे ॥२६॥

सूर्य ने कहा—

क्योंकि धर्मज्ञ और सत्यवादी होते भी तुम क्रोध के वशीभूत हो गये। इस कारण हे पुत्र! यह सब कुछ तो निश्चय ही होगा ॥२७॥

अन्य सभी शापों का प्रतिघात विद्यमान हैं, किन्तु माता के द्वारा दिये गये शाप को कोई निवर्तन करने वाला कोई उपाय नहीं है ॥२८॥

तुम्हारी माता के इन वचनों को मिथ्या करने में (तो) मैं भी समर्थ नहीं हूँ, फिर भी पुत्र स्नेह वश मैं तुम्हारे ऊपर कुछ अनुग्रह कर दूंगा ॥२९॥

कीड़े तुम्हारे पैर के मांस को लेकर पृथ्वी तल पर चले जायेंगे। इस प्रकार उनका वचन भी सत्य होगा और तुम्हारा भी त्राण होगा ॥३०॥

मार्कण्डेय बोले—

तब छाया संज्ञा से आदित्य भगवान् ने कहा—समान पुत्रों में भी एक स्थान पर (कुछ में) तुम अधिक स्नेह क्यों करती हो ॥३१॥

तुम निश्चय ही इनकी संज्ञा माता नहीं हो। तुम कौन हो? और कहाँ से आयी हो? कुपुत्र को भी माता कैसे कभी शाप दे सकती है ॥३२॥

मार्कण्डेय बोले—

उसको सुनती हुई, उस (छाया संज्ञा) ने सूर्य से कुछ नहीं कहा और उन्होंने समाधिस्थ होकर वास्तविकता को जान लिया ॥३३॥

हे ब्रह्मन् तब उन दिवस्पति को शाप देने के लिए उद्यत देखकर भय से कांपती हुई छाया संज्ञा ने वास्तविक घटना निवेदन कर दी ॥३४॥

विवस्वांस्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमभ्यगात्। स चापि तं यथान्यायमर्चयित्वा दिवाकरम् ॥
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास स सुव्रतः ॥ ३५

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम्। असहन्ती ततः संज्ञा वने चरति वै तपः ॥३६
द्रक्ष्यते तां भवानद्य स्वभार्यां शुभचारिणीम्। रुपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्ती सुमहत्तपः ॥३७
स्मृतं मे ब्रह्मणो वाक्यं यदि ते देव रोचते। रूपं निवर्तयाम्येतत् तवकान्तं दिवस्पते ॥३८

मार्कण्डेय उवाच —

यतो हि भास्वतो रूपं प्रागासीत् परिमण्डलम्। ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः ॥३९
विश्वकर्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः। भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातनायोपचक्रमे ॥४०
भ्रमताऽशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता। समुद्राद्रिवनोपेता सारुरोह मही नभः ॥४१
गगनञ्चाखिलं ब्रह्मन् सचन्द्रग्रहतारकम्। अधोगतं महाभाग बभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥४२
विक्षिप्तसलिलाः सर्वे बभूवुश्च तथाऽब्धयः। व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥४३

क्रुद्ध हुए भगवान् सूर्य उसको सुनकर (अपने) श्वसुर के पास गये। उसने भी सूर्य देव की यथा योग्य पूजा करके, क्रोध से जलने के इच्छुक उनको सुव्रत ने शान्त किया ॥३५॥

विश्वकर्मा बोले—

तुम्हारे तेज से व्याप्त अत्यन्त असह्य इस रूप को संज्ञा सहन नहीं कर पाती थी, इसलिए वह वन में तपस्या कर रही है ॥३६॥

शुभाचरण वाली अपनी भार्या को तुम आज भी तुम्हारे तेजोमय स्वरूप को सौम्य बनाने के लिए वन में तपस्या करते हुए देख सकते हो ॥३७॥

हे देव ! मुझे ब्रह्मा की बात स्मरण आ रही है, यदि तुमको रुचिकर प्रतीत हो तो हे दिवस्पते ! तुम्हारे रूप को मैं सौम्य रूप में परिवर्तित कर दूँ ॥३८॥

मार्कण्डेय ने कहा —

क्योंकि पहले सूर्य का रूप मण्डलाकारथा और अत्यधिक तेजस्वी था। इसलिए सूर्य भगवान् ने त्वष्टा से कहा, कि—'वैसा ही कीजिए' ॥३९॥

तब विश्व कर्मा ने रवि की अनुमति प्राप्त करके शाकद्वीप में सूर्य को भ्रमि (शान, चक्र) पर रखकर तेज को छाँटने के लिए उपक्रम किया। (विश्वकर्मा उन्हें खराद पर घुमाकर सौम्य रूप देने लगे, ॥४०॥

सम्पूर्ण जगत् के केन्द्र स्वरूप भगवान् सूर्य के घूमने से समुद्र, पर्वत, वन से युक्त पृथ्वी आकाश में चढ़ गयी ॥४१॥

और हे ब्रह्मन् (उस समय) चन्द्रमा, ग्रह और तारा गण सहित सम्पूर्ण गगन मण्डल ही हे महाभाग ! व्याकुल होकर आकाश से गिरता हुआ सा जान पड़ा ॥४२॥

सभी जल राशि और सागर सभी के जलों में हलचल पैदा हो गयी और बड़े-बड़े पर्वतों की चोटियों के टूटने से टुकड़े-टुकड़े होने लगे !४३॥

ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तम। त्रुट्याद्रश्मिनिबन्धानि ह्यधो जग्मु: सहस्रश: ।।४४
वेगभ्रमणसंजातवायुक्षिप्ताः समन्ततः । व्यशीर्यंत महामेघा घोररावविराविण: ।।४५
भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तं भूम्याकाशरसातलम् । जगादाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तम ।।४६
त्रैलोक्ये सकले विप्र भ्रममाणे सुरर्षयः । देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवु :।।४७
आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत् स्वरूपतः । स्वर्गस्थित्यन्तकालेषुत्रिधा भेदेन तिष्ठसि ।।४८
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ धर्मवर्षाहिमाकर । जुषस्व शान्ति लोकानां देवदेव दिवाकर ।।४९
इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानं यथाऽस्तुवत् । जय देव जगद्व्यापिञ्जयाशेष जगत्पते ।।५०
ऋषयश्च ततः सप्तवसिष्ठात्रिपुरोगमाः। तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ।।५१
वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः। भास्वन्तमृग्भिराद्याभिर्लिख्यमानं मुदायुताः ।।५२

त्वं नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ।
त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डेऽपि वर्तताम् ।।५३

शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश शन्नोऽस्तु जगताम्पते । शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शन्नश्चास्तु चतुष्पदे ।।५४

हे मुनि श्रेष्ठ ! ध्रुव आधार वाला सम्पूर्ण ग्रह मण्डल एवं रश्मि पिण्डों की स्थिति उलट पुलट होने लगी (और वे) सहस्रों की संख्या में नीचे गिरने लगे ।।४४।।

सूर्य के भ्रमण से उत्पन्न वायु भी चारों ओर महा भयंकर वेग से चक्कर काटने लगा और महामेघ भयंकर शब्द करने लगे ।।४५।।

हे मुनि श्रेष्ठ ! सूर्य के घूमने से जब भूमि, आकाश, और पाताल डोलने लगे तो उस समय यह जगत् अत्यधिक व्याकुल हो गया ।।४६।।

हे विप्र ! तब सम्पूर्ण त्रैलोक्य के घूमने पर, सुर, ऋषि और देव ब्रह्मा के साथ सूर्य की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।।४७।।

तुम देवताओं में आदिदेव हो, यह तुम्हारे स्वरूप से ही प्रतीत होता है। तुम्हीं (स्वर्ग आदि तीनों लोकों की) स्थिति, अन्त क ल में भी तीन प्रकार से अवस्थित हो। (तुम्हीं स्वर्ग आदि समस्त लोकों और अखिल भुवनों की स्थिति का कारण हो) ।।४८।।

ग्रीष्म, वर्षा और शीत स्वरूप, हे जगत् ! के स्वामी तुम्हारा कल्याण हो। हे देवाधिदेव दिवाकर, सम्पूर्ण लोकों को शान्ति प्रदान करो ।।४९।।

तब इन्द्र ने आकर, सूर्य को शान पर चढ़े हुए को देखकर, इस प्रकार स्तुति की हे जगद्व्यापि देव ! तुम्हारी जय हो हे अखिल ! जगत् के स्वामी तुम्हारी जय हो ।।५०।।

इसके बाद वसिष्ठ और अत्रि आदि ऋषियों को अग्रणी करके विविध प्रकार के स्तोत्रों से स्वस्ति वाचन करते हुए, सप्त ऋषियों ने (सूर्य भगवान् की विविध स्तोत्रों से स्तुति की ।।५१।।

इसके पश्चात् वेदोक्त ऋषियों में अग्रणी बालखिल्यादि ऋषि भी आनन्दित होकर ऋग्वेद के आद्य वचनों द्वारा शानपर चढ़े हुए, सूर्य की इस प्रकार स्तुति करने लगे ।।५२।।

हे नाथ ! तुम मुमुक्षुओं के लिए मोक्ष और ध्यानियों के लिए परम ध्यान हो और तुम्हीं कर्मकाण्ड में लगे हुए सभी प्राणियों की गति हो ।।५३।।

हे देवेश ! प्रजाओं का कल्याण हो, हे जगत् पते ! हमारा कल्याण हो और हम सभी द्विपदों का और सब चतुष्पदों का कल्याण हो ।।५४।।

ततो विद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः । कृताञ्जलिपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् ।।५५
ऊचुरेवं विधा वाचो मनः श्रोत्रसुखावहाः । सह्यं भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन ।।५६
ततो हाहाहूहूश्चैव नारदस्तुम्बुरुस्तथा । उपगायितुमारब्धा गान्धर्वकुशला रविम् ।।५७
षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः । मूर्च्छनाभिश्च तालैश्च संप्रयोगैः सुखप्रदम् ।।५८
विश्वाची च घृताची च उर्वश्यथ तिलोत्तमा । मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसां वरा ।।५९
ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ । ज्ञानभावविलासाढ्यान् कुर्वन्तोऽभिनयान् बहुन् ।।६०
प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वेणुवीणादिदुर्दराः (झर्झराः) । पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः ।।६१
देवदुन्दुभयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः । गायद्भिश्चैव गांधर्वं नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ।।६२
तूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् । ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।।६३
लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्वदेवताः । ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे ।।-
तेजसः शातनञ्चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ।।६४

इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ।।६५

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे भानुतनुलेखनवर्णनं नाम त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ।

उसके बाद विद्याधर, यक्ष, राक्षस और पन्नगगण सब हाथ जोड़कर और मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए, मन और कानों को सुख प्रदान करने वाले इस प्रकार के वचन बोले—हे भूतभावन ! तुम्हारा तेज सभी प्राणियों के लिए सहन करने योग्य हो ।।५५-५६।।

तदनन्तर हा, हा, हू, हू नारद और तुम्बुरू आदि षडज, मध्यम और गान्धार तीनों ग्रामों एवं मूर्च्छना ताल आदि के प्रयोगों से विशारद सूर्य भगवान् का सुख प्रद गान करने लगे ।।५७-५८।।

इसी अवसर पर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या और रम्भा आदि स्वर्ग की श्रेष्ठ अप्सराएँ भी शान पर चढ़े हुए जगत् के स्वामी सूर्य के नवीन रूप की ज्ञान, भाव, विलास आदि से युक्त तरह तरह के नृत्यों का प्रदर्शन करने लगी ।।५९-६०।।

उसके बाद वहाँ पर वेणु वीणा, दुर्दर, पणव, पुष्करा, मृदंग, और पटह आनकदेव, दुन्दुभि हजारों और सैकडों शंख आदि वाद्यों की ध्वनि करते हुए (गन्धर्व गाने लगे) ।।६१।।

इस प्रकार गन्धर्वों के संगीत अप्सराओं के नृत्य और देवगणों के सूर्यादि बाद्यों द्वारा समस्त जगत् कोलाहल युक्त कर दिया गया । और उसके बाद हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक नम्र होकर सभी देवताओं ने शातित होते हुए भगवान् सहस्रांशु को प्रणाम किया । तब सभी देवसमूह के उस कोलाहल में विश्वकर्मा ने धीरे-धीरे सूर्य का तेज कम (क्षीण) कर दिया ।।६२-६४।।

जो सूर्य भगवान् जाड़ा, वर्षा और ग्रीष्म आदि ऋतुओं के कारणहैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिनकी स्तुति करते हैं, ऐसे उन सूर्य) भगवान् के तनु लेखन की कथा सुनकर (मनुष्य) आयु के अन्त में सूर्य लोक को प्राप्त होते हैं ।।६५।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में भानुतनुलेखन वर्णन नामक एक सौ तीनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुरधिकशततमोऽध्याय:

मार्कण्डेय उवाच —

लिख्यमाने ततो भानौ विश्वकर्मा प्रजापतिः । उद्भूतपुलकः स्तोत्रमिदं चक्रे विवस्वतः ।।१

विवस्वते प्रणतहितानुकम्पिने महात्मने समजवसप्तसप्ततये ।
सुतेजसे कमलकुलावबोधिने नमस्तमः पटलपटावपाटिने ।।२
पावनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविषयप्रदायिने ।
भास्वरानलमयूखशायिने सर्वलोकहितकारिणे नमः ।।३
अजाय लोकत्रयकारणाय भूतात्मने गोपतये वृषाय ।
नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्याय चक्षुः प्रभवालयाय ।।४
विवस्वते ज्ञानभूतान्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे ।
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः ।।५
क्षणमुदयाचलमौलिमणिः सुरगणमहितोहितो जगतः ।
त्वमुरुमयूखसहस्रवपुर्जगति विभासि तमांसि नुदन् ।।६
भवतिमिरासवपानमदाद् भवति विलोहितविग्रहता ।
मिहिर विभासि यतः सुतरां त्रिभुवनभावनभानिकरैः ।।७

मार्कण्डेय बोले—

इसके बाद सूर्य का खराद करते हुए विश्वकर्मा प्रजापति ने पुलकित होकर भगवान् विवस्वान् की इस प्रकार स्तुति की ।।१।।

जो विवस्वान् नमनशील का हित और अनुकम्पा करने वाले हैं । जो अति तेजस्वी हैं, कमल समूह को खिलाने वाले हैं और सप्त अश्व वाले हैं । हे ! अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य देव नमस्कार हो ।।२।।

अतिशयपावन, पुण्यकर्मा, अनेक काम्य विषय प्रद, भास्वर अग्नि सदृश किरणशाली, सब लोकों के हितकारी (सूर्य देव को) नमस्कार है ।।३।।

सर्वभूत, स्वरूप, रश्मियों के स्वामी, साक्षात् धर्मरूप, महाकारुणिक चाक्षुष विषय के आलय (स्वरूप) सूर्य को नमस्कार है ।।४।।

जगत् के आधार, जगत् के हितैषी, स्वयं भू, ज्ञान स्वरूप समस्त लोकों के चक्षु स्वरूप, अन्तरात्मा को प्रकाश करने वाले, देवताओं में श्रेष्ठ, महत् तेजस्वी, सूर्य भगवान् को नमस्कार है ।।५।।

तुम्हीं सुरगणों से मण्डित होकर, जगत् का हित करते हो और उदयाचल के शिखर रूपी मस्तक के मुकुट हो और तुम्हीं सहस्रों किरणों वाले शरीर को धारण करके एवं अन्धकार समूह का विनाश करके, जगत् को प्रकाशित करते हो ।।६।।

और तुम्हीं संसार के तिमिर रूपी आसव को पान करने के कारण तुम्हारा शरीर लाल छन जाता है । सूर्य, तीनों भुवनों को प्रकाशित करने वाले तुम्हीं किरण समूह में अत्यधिक दीप्तिमान् हो रहे हो ।।७।।

रथमधिरुह्य समावयवं चारु विकम्पितमुरुरुचिरम् ।
सततमखिन्नहयैर्भगवंश्चरसि जगद्धिताय विततम् ॥८
अमृतमयेन रसेन समं विबुध पितॄनपि तर्पयसे ।
अरिगणसूदन तेन तव प्रणतिमुपेत्य लिखामि वपुः ॥९
शुकसमवर्णहयप्रथितं तव पादपांसु पवित्रतमम् ।
नतजनवत्सल मां प्रणतं त्रिभुवपावन पाहि रवे ॥१०
इति सकलजगत्प्रसूतिभूतं त्रिभुवभावनधामहेतुमेकम् ।
रविमखिलजगत्प्रदीपभूत त्रिदशवर प्रणतोऽस्मि सर्वदा त्वाम् ॥११

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे सूर्यस्तवन नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।

हे भगवन् ! तुम समान अवयव वाले, सुन्दर किञ्चित् कम्पन करने वाले अत्यन्त आकर्षक और कभी खिन्न न होने वाले, घोड़ों द्वारा निरन्तर खींचे जाने वाले रथ पर चढ़कर जगत् के हित के लिए आकाश में विचरण करते हो ॥८॥

हे अरिगण सूदन ! तुम देवताओं और पितरों को एक ही अमृतमय रस से तृप्त करते हो । इसलिए मैंने पहले तुम्हें प्रणाम करके ही तुम्हारे शरीर को तराशा है । ९॥

हे तीनों लोकों को पवित्र करने वाले, प्रणतपुरुष वत्सल ! शुक के समान वर्ण वाले घोड़ों से प्रसिद्ध (मैं तुम्हारी ही इस हरीभरी सृष्टि के कारण ही विख्यात हुआ हूँ) और तुम्हारे चरणों की धूल से ही अत्यधिक पवित्र हुआ हूँ । हे सूर्य प्रणाम करते हुये तुम मेरी रक्षा करो ॥१०॥

'इस प्रकार सम्पूर्ण संसार के (कारण रूप) तीनों भुवनों को प्रकाशित करने वाले, तेज के हेतु, जगत् के प्रकाशक स्वरूप, देवताओं में श्रेष्ठ सूर्यदेव मैं तुमको सदैव प्रणाम करता हूँ ॥११॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में सूर्यस्तवन नामक एकसौचारवां
अध्याय समाप्त हुआ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

एवं सूर्यस्तवं कुर्वन् विश्वकर्मा दिवस्पतेः । तेजसः षोडशं भागं मण्डलस्थमधारयत् ॥१
शाततैस्तेजसो भागैर्दशभिः पञ्चभिस्तथा । अतीवकान्तिमच्चारुभानोरासीत्तदा वपुः ॥२

मार्कण्डेय ने कहा—

इस प्रकार सूर्य स्तवन करते हुये विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज का केवल सौलहवाँ भाग ही उनके मण्डल में रहने दिया ॥१॥

तब तेज के पन्द्रह भागों के छँट जाने के कारण सूर्य भगवान् का शरीर अत्यधिक कान्तिमान् तथा सौम्य हो गया ॥२॥

शातितं चास्य यत्तेजस्तेन चक्रं विनिर्मितम् । विष्णोः शूलं च शर्वस्य शिबिका धनदस्य च ।।३
दण्डः प्रेतपतेः शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा । अन्येषां चैव देवानामायुधानि स विश्वकृत् ।।४
चकार तेजसा भानोर्भासुराण्यरिशान्तये । इति शातिततेजाः स शुशुभे नातितेजसा ।।५
वपुर्दधार मार्त्तण्डः सर्वावयवशोभनम् । स ददर्श समाधिस्थः स्वां भार्यां वडवाकृतिम् ।।६
अधृष्यां सर्वभूतानां तपसा नियमेन च । उत्तरांश्च कुरून् गत्वा भूत्वाऽश्वो भानुरागमत् ।।७
सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया । जगाम संमुखे तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ।।८
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः । वडवायां च तत्तेजो नासिकाभ्यां विवस्वतः ।।९
देवौ तत्र समुत्पन्नावश्विनौ भिषजां वरौ । नासत्यदस्रौ तनयावश्विवक्त्राद् विनिर्गतौ ।।१०
मार्त्तण्डस्य सुतावेतावश्वरूपधरस्य हि । रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गीधन्वीतनुत्रधृक् ।।११
अश्वारुढः समुद्भूतो बाणतूणसमन्वितः । ततः स्वरूपममलं दर्शयामास भानुमान् ।।१२
तस्य शान्तं समालोक्य सा रूपं मुदमाददे । स्वरूपधारिणीं चेमां स निनाय निजालयम् ।।१३
संज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः । ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद् वैवस्वतो मनुः ।।१४

और इनका जो तेज छीला गया उससे विश्वकर्मा ने विष्णु के चक्र, शिव के त्रिशूल, कुबेर की पालकी, यम के दण्ड, देवताओं के सेनापति (कार्तिकेय) की शक्ति और अन्य देवताओं के विविध आयुधों का निर्माण किया ।।३-४।।

इस प्रकार शत्रुओं (दैत्यों) के नष्ट करने के लिये सूर्य के तेज से चमकते हुये (हथियारों का) निर्माण किया गया ।।५।।

इस प्रकार काटे गये तेज वाले सूर्य भगवान् तराशे गये और मन्द तेज से युक्त मार्तण्ड ने सभी सुन्दर अवयवों से युक्त शरीर धारण किया और समाधिस्थ होकर, उन्होंने घोड़ी का रूप धारण किये हुये अपनी पत्नी को देखा ।।६।।

जो सभी प्राणियों के जीवनदाता (सूर्य के रूप को सौम्य करने के लिये) तपस्या और नियमों से उत्तर कुरु में तपस्या कर रही थी । तब भगवान् सूर्य भी अश्व का रूप धारण करके उसके पास गये ।।७।।

और वह उसको आते हुये देखकर पर पुरुष की आशंका से अपने पृष्ठ भाग की रक्षा करती हुई, उसके पास गयी ।।८।।

उसके बाद जब दोनों की नासिकाएं मिलीं तो सूर्य भगवान् का तेज उस घोड़ी की नासिका मार्ग से ही घोड़ी के भीतर चला गया ।।९।।

जिससे दो अश्वनी कुमार उत्पन्न हुये, जो देवताओं के वैद्य हुये और घोड़ी के मुख से निकले तेज से नासत्य और दस्र—।।१०।।

ये दोनों अश्वरूपधारी मार्तण्ड के पुत्र थे । वीर्य के शेष भाग से खड्ग, धनु और रक्षा, आवरण (कवच ढाल) धारण करने वाले, बाणों से युक्त तूणीर को धारण करने वाले, घोड़े पर चढ़े हुये रेवन्त का जन्म हुआ ।।११-१२।।

उसके शान्त और सौम्य स्वरूप को देखकर वह (संज्ञा) अत्यधिक प्रसन्न हुई । पुनः जल के तस्कर भगवान् भास्कर अपने पूर्व रूप को धारण करने पर, अपनी इस प्रतिमति (संज्ञा) भार्या को लेकर अपने घर आ गये ।।१३-१४।।

द्वितीयश्च यमः शापाद् धर्मदृष्टिरनुग्रहात् । यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानस ।।१५
धर्मोऽभिरोचते यस्माद् धर्मराजस्ततः स्मृतः । कृमयो मांसमादाय पादतस्ते महीतलम् ।।
पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम् ।।१६
धर्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते । ततो नियोगे तं याम्ये चकार तिमिरापहः ।।१७
तस्मै ददौ पिता विप्र भगवाँल्लोकपालताम् । पितॄणामाधिपत्यञ्च परितुष्टो दिवाकरः ।।१८
यमुनां च नदीं चक्रे कलिदान्तरवाहिनीम् । अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना ।।१९
गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तो विनियोजितः ।।२०
एवमप्याह च ततो भगवाँल्लोकभावितः । त्वमप्यशेषलोकस्य पूज्यो वत्स भविष्यति ।।२१
अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषु च । त्वां स्मरिष्यन्ति ये मर्त्या मोक्ष्यन्ते ते महापदः । २२
क्षेमं बुद्धि सुखं राज्यमारोग्यं कीर्तिमुन्नतिम् । नराणां परितुष्टस्त्वं पूजितः संप्रदास्यसि ।।२३
छायासंज्ञासुतश्चापि सावर्णिः सुमहायशाः । भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकोऽष्टमः ।।२४
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः । भ्राता शनैश्चरस्तस्य ग्रहोऽभूच्छासनाद् रवेः ।।२५
यवीयसी तु या कन्याऽऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम । अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा तपती लोकपावनी ।।२६

उसके बाद इसका जो पहला पुत्र था, वह वैवस्वत मनु हुआ। और शापवश तथा धर्म दृष्टि धारण करने के कारण (छाया संज्ञा) के शाप से अत्यधिक दुःखी मन वाले दूसरे पुत्र यम धर्म में रुचि होने के कारण धर्मराज बने। 'कीड़े तुम्हारे पैर का माँस लेकर पृथ्वी तल पर गिर जायेंगे' इस प्रकार कहकर उसके पिता ने स्वयं उसके शाप को दूर कर दिया ।।१५-१६।।

क्योंकि इसकी शत्रु और मित्र में समान धर्म दृष्टि थी, इस लिये अंधकार दूर करने वाले भगवान् सूर्य ने इसको यमराज के कार्य में नियुक्त किया ।।१७।।

हे विप्र ! संतुष्ट हुये पिता भगवान् सूर्य ने उसको लोकपाल और पितरों का अधिकार भी प्रदान किया ।।१८।।

पुत्री यमुना को कालिंद देश में बहने वाली नदी बताया और अश्विनीकुमारों को देवताओं का वैद्य एवं रेवन्त को गुह्यकों का शासक नियुक्त किया ।।१९-२०।।

इसके अतिरिक्त लोक भावित भगवान् सूर्य ने यह भी कहा—कि हे वत्स ! तुम सम्पूर्ण लोकों में पूजनीय भी होओगे ।।२१।।

और जो पुरुष अरण्य, दावानल, शत्रु और दस्युओं से भय उत्पन्न होने पर तुम्हारा स्मरण करेंगे, वे महान् आपत्तियों से भी छूट जायेंगे ।।२२।।

मनुष्यों की (पूजा से) सन्तुष्ट तुम उनको क्षेम (कल्याण) बुद्धि, सुख, राज्य, आरोग्य, कीर्ति एवं उन्नति प्रदान करते रहना ।।२३।।

छाया संज्ञा का, महान् यशस्वी पुत्र सावर्णि भी भविष्य में सावर्णिक अष्टम मनु होगा ।।२४।।

वह आज भी मेरु के ऊपर घोर तप कर रहा है उसका भाई शनैश्चर रवि की आज्ञा से ग्रह बन गया ।।२५।।

और हे द्विज श्रेष्ठ ! आदित्य की जो छोटी कन्या थी, वह संसार को पवित्र करने वाली तपती, सरिताओं में श्रेष्ठ यमुना हुई ।।२६।।

यस्तु ज्येष्ठो महाभागः सर्गो यस्येह साम्प्रतम् । विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥२७
इदं यो जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा । विवस्वतस्तनूजानां रवेमाहात्म्यमेव च ॥२८
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः । अहोरात्रकृतं पापमेतच्छमयते श्रुतम् ॥
माहात्म्यमादिदेवस्य मार्त्तण्डस्य महात्मनः ॥२९

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे रवेर्माहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ।

उनका जो सबसे बड़ा पुत्र (वैवस्वत) जिसका वर्तमान में भी यह सर्ग चल रहा है। उस वैवस्वत मनु के मन्वन्तर को मैं विस्तरपूर्वक तुमसे कहता हूँ ॥२७॥

जो (मनुष्य) देवताओं के जन्म, सूर्य भगवान् का महात्म्य और उनके पुत्रों के इस (वृत्तान्त) को पढ़ता अथवा सुनता है ॥२८॥

वह सब प्रकार की विपत्तियों से छुटकारा पाकर महान् यश को प्राप्त करता है। एवं उसके दिन रात किये गये पानी भी शान्त हो जाते हैं जो महात्मा आदिदेव आदित्य के महात्म्य को सुनता है ॥२९॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में सूर्य माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच —

भगवन् कथितः सम्यग्भानोः सन्ततिसम्भवः । माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपञ्चातिविस्तरात् ॥१
भूयोऽपि भास्वतः सम्यङ् माहात्म्यं मुनिसत्तम । श्रोतुमिच्छाम्यहं तन्मे प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥२

मार्कण्डेय उवाच—

श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यं कथयामि ते । विवस्वतो यच्चकार पूर्वमाराधितो जनैः ॥३
दमस्य पुत्रो विख्यातो राजाऽभूद्राज्यवर्धनः । स सम्यक् पालनं चक्रे पृथिव्याः पृथिवीपतिः ॥४

क्रोष्टुकि बोले

हे भगवान् आपने भलीभाँति सूर्य की संतान और आदिदेव के माहात्म्य और स्वरूप आदि का विस्तार से कथन किया ॥१॥

हे मुनि श्रेष्ठ ! सूर्य माहात्म्य को पुनः भली प्रकार सुनना चाहता हूँ, यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो (वह वृत्तान्त) मुझसे कहिए ॥२॥

मार्कण्डेय बोले —

आदिदेव सूर्य भगवान् के माहात्म्य और पूर्वकाल में मनुष्यों द्वारा पूजे गये भगवान् सूर्य ने जो कुछ किया उस सब वृत्तान्त को मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो ॥३॥

दम के पुत्र राज्यवर्द्धन प्रसिद्ध राजा हुए। उन पृथिवी पति ने पृथ्वी का सम्यक् प्रकार पालन किया ॥४॥

धर्मतः पाल्यमानं तु तेन राष्ट्रं महात्मना । ववृधेऽनुदिनं विप्र जनेन च धनेन च ॥५
हृष्टपुष्टमतीवासीत् तस्मिन् राजन्यशेषतः । निर्भयः सकलश्चोर्व्यां पौरजानपदो जनः ॥६
नोपसर्गो न च व्याधि र्न च व्यालोद्भवं भयम् । न चावृष्टिभयं तत्र दमपुत्रे महीपतौ ॥७
स ईजे च महायज्ञैर्ददौ दानानि चार्थिनाम् । सुधर्मस्याविरोधेन बुभुजे विषयानपि ॥८
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं सम्यक् पालयतः प्रजाः । सप्तवर्षसहस्राणि जग्मुरेकमहर्यथा ॥९
विदूरथस्य तनया दाक्षिणात्यस्य भूभृतः । तस्य पत्नी बभूवाथ मानिनी नाम मानिनी ॥१०
कदाचित्तस्य सा सुभ्रूः शिरसोऽभ्यञ्जनादृता । पश्यतो राजलोकस्य मुमोचाश्रूणि मानिनीम् ॥११
तदश्रुबिन्दवो गात्रे यदा तस्य महीपतेः । तदा वीक्ष्याश्रुवदनां तामपृच्छत मानिनी ॥१२
निःशब्दमश्रुमोक्षेण रुदन्तीं तां विलोक्य वै । किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं राज्यवर्धनः ॥१३
पृष्टा सा तु ततस्तेन भर्त्रा प्राह मनस्विनी । न किंचिदिति तां भूयः पपृच्छ स महीपतिः ॥१४
बहुशः पृच्छतस्तस्य भूभृतः सा सुमध्यमा । (न किंचिदिति होवाच सा भूयो राज्यवर्धनम् ॥
किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं पार्थिवः पुनः । बहुशः प्रेरिता तेन सा भर्त्रा तत्र भामिनी ॥)
दर्शयामास पलितं केशभारान्तरोद्भवम् ॥१५

हे विप्र ! उस महात्मा के द्वारा राष्ट्र का धर्मपूर्वक पालन किये जाते हुए उनके राज्य में धन और जन की प्रतिदिन वृद्धि हुई ॥५॥

उनके राज्य में सम्पूर्ण पृथ्वी पर सभी जनपदवासी और नगरवासी निर्भय हृष्टपुष्ट थे ॥६॥

दमपुत्र उस राजा के शासन काल में कोई विपत्ति रोग, हिंसक जीवों एवं अनावृष्टि आदि का भी भय नहीं था ॥७॥

उन्होंने महायज्ञों का अनुष्ठान किया और याचकों को दान दिया तथा धर्मानुसार विषयों का भी उपभोग किया ॥८॥

इस प्रकार राज्य करते और भली प्रकार प्रजापालन करते हुए, उनके सात हजार वर्ष एक दिन के समान व्यतीत हो गये ॥९॥

दक्षिण देश के राजा विदूरथ की मानिनी पुत्री उनकी पत्नी हुई जो स्वाभिमानिनी थी ॥१०॥

कभी राजपुरुषों के सामने राजा के सिर में आदरपूर्वक तेल लगाते हुए, सुन्दर भौंहों वाली मानिनी ने आँसू छोड़े (उसके आँसू टपक पड़े) ॥११॥

वे अश्रुबिन्दु जब राजा के शरीर पर गिरे तो उनको देखकर उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली उस मानिनी से पूछा ॥१२॥

आँसू टपकाते हुये उसको चुपचाप रोते हुये देखकर, राज्यवर्धन ने मानिनी से पूछा– कि यह क्या है ॥१३॥

पति द्वारा पूछने पर वह मनस्विनी बोली कि—कुछ नहीं । राजा ने उससे फिर पूछा ॥१४॥

उस राजा के अनेक बार पूछने पर सुन्दर कटिभाग वाली उसने (तब राज्यवर्धन से बार-बार कहा कि कुछ नहीं) किन्तु राजा ने मानिनी से पुनः पूछा कि यह क्या है ? पति द्वारा बहुत बार पूछने पर उस पत्नी (मानिनी ने) केश समूह के बीच में उगे हुये सफेद बाल राजा को दिखाया (और बोली)—॥१५॥

एतत्पश्येति भूपाल किमन्यन्मन्युकारणम् । ममातिमन्दभाग्याया जहासाथ नृपस्ततः ।।१६
स विहस्याह तां पत्नीं शृण्वतां सर्वभूभृताम् । पौराणां च महीपाला ये तत्रासन् समावृताः ।। ७
शोकेनालं विशालाक्षि रोदितव्यं न ते शुभे । जन्मर्द्धिपरिणामाद्या विकाराः सर्वजन्तुषु ।।१८
अधीताः सकला वेदा इष्टा यज्ञाः सहस्रशः । दत्तं द्विजानां पुत्राश्च समुत्पन्ना वरानने ।।१९
भुक्ता भोगास्त्वया सार्द्धं यैर्मर्त्यैरतिदुर्लभाः ।
सम्यक् च पालिता पृथ्वी शौर्यं युद्धेष्वनुष्ठितम् ।।२०
मित्रैः सहेष्टैर्हसितं विहृतं च वनान्तरे । किमन्यन्न कृतं भद्रे पलितेभ्यो बिभेषि यत् ।।२१
भवन्तु केशाः पलिता वलयः सन्तु मे शुभे । शैथिल्यमेतु मे कायः कृतकृत्योऽस्मि मानिनि ।।२२
मूर्ध्नि यद्दर्शितं भद्रे भवत्या पलितं मम । चिकित्सामेव तस्याहं करोमि वनसंश्रयात् ।।२३
बाल्ये बालक्रिया पूर्वं तद्वत् कौमारके च या । यौवने चापि या योग्या वार्द्धके वनसंश्रया ।।२४
एवं मत्पूर्वजैर्भद्रे कृतं त्वत्पूर्वजैश्च यत् । अतो न तेऽश्रुपातस्य किञ्चित् पश्यामि कारणम् ।।२५
अलं ते मन्युना भद्रे नन्वभ्युदयकारि मे । दर्शनं पलितस्यास्य मा रोदीर्निष्प्रयोजनम् ।।२६

हे राजन् ! पौरजन के क्रुद्ध होने का कोई कारण नहीं है, आप यह देखिये यह तो मेरा भाग्य ही है। (यह बात सुनने के बाद) राजा बहुत जोर से हंस पड़े ।।१६।।

तब हंसते हुये राजा ने वहाँ बैठे राजाओं, महाराजाओं और नगरवासियों को सुनाते हुये पत्नी से कहा—।।१७।।

हे विशाल नेत्रों वाली ! शोक नहीं करो। हे शुभे ! तुमको रोना नहीं चाहिये क्योंकि सभी जीवों में जन्म, वृद्धि और परिणाम आदि विकार होते हैं ।।१८।।

हे भद्रे ! मैंने सभी वेदों का अध्ययन कर लिया है और सहस्रों यज्ञों का यजन किया । ब्राह्मणों को दान दिया और हे सुन्दर मुख वाली ! पुत्र उत्पन्न किये । और जो मनुष्यों के लिये अति दुर्लभ भोग हैं, उनको मैंने तुम्हारे साथ मुक्त होकर भोगा है और पृथ्वी का भली प्रकार पालन किया तथा युद्धों में पराक्रम प्रदर्शित किया और इष्ट मित्रों के साथ वनों में विहार किया । हे भद्रे ! शेष ऐसा क्या कार्य है, जो नहीं किया, जो तुम मेरे सफेद बाल होने से डर रही हो ।।१९-२१।।

हे शुभे ! हे मानिनी ! मेरा केश श्वेत होवें और मेरा शरीर भी शिथिल हो जाये । मैं तो इससे कृतकृत्य हो गया हूँ ।।२२।।

हे भद्रे ! तुमने जो मेरे सिर पर श्वेत बाल देखा है, उसकी चिकित्सा मैं वन में निवास करके ही करूँगा ।।२३।।

बाल्यकाल में बाल सुलभ क्रियाएँ, कुमारावस्था में उसके अनुरूप कार्यों और यौवन में भी उचित भोगादि और वृद्धावस्था में वन का आश्रम ही उचित है ।।२४।।

हे भद्रे ! मेरे और तुम्हारे पूर्वजों ने इसी प्रकार का आचरण किया है । इसीलिये मैं तुम्हारे इस अश्रुपात का कोई कारण नहीं देखता हूँ ।।२५।।

हे भद्रे ! इसलिये शोक छोड़ो, इस श्वेत बाल का दर्शन तो निश्चय ही मेरे अभ्युदय का कारण है। इसलिये तुमको अकारण रुदन नहीं करना चाहिये ।।२६।।

मार्कण्डेय उवाच—

ततः प्रणम्य तं भूपाः पौराश्चैव समीपगाः। साम्ना प्रोचुर्महीपाला महर्षे राज्यवर्धनम् ॥२७

न रोदितव्यमनया तव पत्न्या नराधिप। रोदितव्यमिहास्माभिरथवा सर्वजन्तुभिः ॥२८

त्वं ब्रवीषि यथा नाथ वनवासाश्रितं वचः। पतन्ति तेन नः प्राणा लालितानां त्वया नृप ॥२९

सर्वे यास्याम हे भूप यदि याति भवान् वनम्। ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥३०

भविष्यति न संदेहस्त्वयि नाथ वनाश्रये। सा च धर्मोपघाताय यदि तत्प्रविमुच्यताम् ॥३१

सप्तवर्षसहस्राणि त्वयेयं पालिता मही। तत्समुत्थं महापुण्यमालोक्य नराधिप ॥३२

वने वसन् महाराज त्वं करिष्यसि यत्तपः। तन्महीपालनस्यास्या कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३३

राजोवाच—

सप्तवर्षसहस्राणि मयेयं पालिता मही। इदानीं वनवासस्य मम कालोऽयमागतः ॥३४

ममापत्यानि जातानि दृष्ट्वा मेऽपत्यसन्ततीः। स्वल्पैरेवमहोभिर्मे ह्यन्तको न सहिष्यति ॥३५

यदेतत्पलितं मूर्ध्नि तद्विजानीत नागराः। दूतभूतमनार्यस्य मृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥३६

मार्कण्डेय बोले—

हे महर्षे! इसके बाद उन (राज्यवर्धन) को प्रणाम करके पास बैठे राजा, महाराजा, नगरवासियों ने राज्यवर्धन से विनम्रतापूर्वक कहा—॥२७॥

हे राजन्! आपकी इन पत्नी को रोना नहीं चाहिए। अपितु अब तो हमें अथवा सभी प्राणियों को रोना चाहिये ॥२८॥

हे नाथ! जैसा कि आपने वनवास सम्बन्धी वचन कहे उनको सुनकर हे राजन् आपके द्वारा पाले गये ये हमारे प्राण ही निकले जा रहे हैं ॥२९॥

हे भूप! यदि आप वन में जाते हैं तो हम सब भी (आपके साथ ही वन में) जायेंगे। हे नाथ! आपके वन गमन से सभी पृथ्वीवासियों की क्रियाओं (यज्ञ आदि) की हानि होगी। इसमें तनिक भी सदेह नहीं है। और उन क्रियाओं की हानि से धर्म की हानि होगी। इसलिये यदि आप इन सब बातों का विचार करते हैं तो अपने वनगमन के निश्चय को त्याग दीजिये ॥३०-३१॥

आपने इस पृथ्वी का सात हजार वर्षों तक पालन किया, हे राजन् उस (पृथ्वी पालन) से उत्पन्न महापुण्यों का विचार कीजिये ॥३२॥

हे महाराज! वन में रहते हुये आप जो तप करेंगे (उसका फल) वह इस पृथ्वी पालन रूप कर्म के सोलहवें भाग के बराबर भी नहीं होगा ॥३३॥

राजा बोले—

मैंने सात हजार वर्षों तक इस पृथ्वी का पालन किया। इस समय मेरा वनवास का समय आ गया है ॥३४॥

मेरे पुत्र उत्पन्न हो गये है। मेरी पुत्र सन्तान को देखकर यमराज मुझे इस प्रकार (राज्य करते हुये) कुछ समय तक भी सहन नहीं करेंगे ॥३५॥

हे नागरिको! मेरे सिर में यह जो पका हुआ बाल है, उसको तुम उग्रकर्मा मृत्यु का दूत ही समझो ॥३६॥

सोऽहं राज्ये सुतं कृत्वा भोगांस्त्यक्त्वा वनाश्रयः। तपस्तप्स्ये समायान्ति न यावद्यमसैनिकाः ॥३७

मार्कण्डेय उवाच

ततो यियासुः स वनं दैवज्ञानवनीपतिः। पुत्रराज्याऽभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छत ॥३८

श्रुत्वा च ते तु नृपतेर्वचो व्याकुलचेतसः। दिनं लग्नं च होराश्च न विदुः शास्त्रदृष्टयः ॥३९

ऊचुश्च तं महीपालं दैवज्ञा बाष्पगद्गदम्। ज्ञानानि नः प्रनष्टानि श्रुत्वैतत्ते वचो नृप ॥४०

ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यै राष्ट्रेभ्य एव च। ततस्तस्माच्च नगरात् प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥४१

समुत्पत्य महीपालं तं यियासुं मुने वनम्। प्रकम्पिशिरसो भूत्वा प्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥४२

प्रसीद पाहि नो राजन् पालिताः स्म यथा पुरा।
सीदिष्यत्यखिलो लोकस्त्वयि भूप वनाश्रये ॥४३

त्वं कुरुष्व तथा राजन् यथा नो सीदते जगत्। यावज्जीवामहे वीर स्वल्पकालमिमे वयम्॥
नेच्छामश्च भवच्छून्यं द्रुष्टुं सिंहासनं विभो ॥४४

मार्कण्डेय उवाच —

इत्येवं तैस्तथान्यैश्च द्विजैः पौरपुरः सरैः। भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्च राजा प्रोक्तः पुनः पुनः ॥४५

इसलिये मैं राज्य पुत्रों को सौंपकर, भोगों को त्यागकर, वन में रहते हुये, तब तक तपस्या करूँगा, जब तक कि यमराज के सैनिक नहीं आते हैं ॥३७॥

मार्कण्डेय बोले —

तब वन जाने के इच्छुक उस राजा ने ज्योतिषियों से पुत्र के राज्याभिषेक के लिये (शुभ) दिन और लग्न पूछा ॥३८॥

राजा के वचनों को सुनकर व्याकुल हृदय शास्त्रदर्शीज्योतिषी भी (राज्याभिषेक का) दिन, लग्न और होरा देखने में समर्थ न हो सके ॥३९॥

और आँसुओं से रुंधे हुये गले वाले वे दैवज्ञ (ज्योतिषी) राजा से बोले—हे राजन्! आपके इन वचनों को सुनकर हमारा सभी ज्ञान लुप्त हो गया है ॥४०॥

उसके बाद अन्य नगरों से सेवक और अधीन राष्ट्रों से और उस नगर से अत्यधिक संख्या में (वृद्ध ब्राह्मण) उनके पास आये ॥४१॥

हे मुने! तब सिर को कम्पित करते हुये उन श्रेष्ठ ब्राह्मण वृद्धों ने वन जाने के इच्छुक राजा से इस प्रकार कहा —॥४२॥

हे राजन्! प्रसन्न होइये और हमारा उसी प्रकार पालन कीजिये जैसा आपने अब तक किया है। हे भूप! आपके वन गमन से सम्पूर्ण जीवलोक पीड़ित हो रहा है ॥४३॥

हे राजन्! आप ऐसा कार्य कीजिये, जिससे यह विश्व दुःखी न हो। हे वीर! अब हमारा बहुत थोड़ा जीवन शेष है। हे विभो! जब तक हमारा जीवन है तब तक इस सिंहासन को हम आप से शून्य नहीं देखना चाहते हैं ॥४४॥

मार्कण्डेय बोले —

उन विप्रों, राजाओं, प्रजाओं, मन्त्रियों और भृत्यों द्वारा भी बार-बार इस प्रकार कहे जाने पर राजा ने—॥४५॥

वनवासविनिर्बन्धं नोपसंहरते यदा । क्षमिष्यत्यन्तको नेति ददौ स च तदोत्तरम् ॥४६
ततोऽमात्याश्च भूपाश्च पौरवृद्धास्तथा द्विजाः । समेत्य मन्त्रयामासुः किमत्र क्रियतामिति ॥४७
तेषां मन्त्रयतां विप्र निश्चयोऽयमजायत । अनुरागवतां तत्र महीपालेऽतिधार्मिके ॥४८
सम्यग्ध्यानपरा भूत्वा प्रार्थयामः समाहिताः । तपसाराध्य भास्वन्तमायुरस्य महीपते ॥४९
तत्रैकनिश्चयाः कार्ये केचिद् गेहे च भास्करम् । सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥५०
अपरे मौनिनो भूत्वा ऋग्जापेन तथाऽपरे । यजुषामथ साम्ना च तोषयाञ्चक्रिरे रविम् ॥५१
अपरे च निराहारा नदी-पुलिन-शायिनः । तपांसि चक्रुरिच्छन्तो भास्कराराधनं द्विजाः ॥५२
अग्निहोत्रपराचान्ये' रविसूक्तान्यहर्निशम् । जेपुस्तत्रापरे तस्थुर्भास्करे न्यस्तदृष्टयः ॥५३
इत्येवमतिनिर्बन्धं भास्कराराधनं प्रति । बहुप्रकारं चक्रुस्ते तं तं विधिमुपाश्रिताः ॥५४
तथा तु यततां तेषां भास्कराराधनं प्रति । सुदामा नाम गन्धर्वउपगम्येदमब्रवीत् ॥५५
यद्याराधनमिष्टं वो भास्करस्य द्विजातयः । तदेतत् क्रियतां येन भानुः प्रीतिमुपैष्यति ॥५६

अपने वन गमन के निश्चय का परित्याग नहीं किया । उन्होंने उन सबको यही उत्तर दिया कि—"यमराज मुझे क्षमा नहीं करेंगे"॥४६॥

तब मन्त्रियों, राजाओं, वृद्ध नगरवासियों एवं ब्राह्मणों ने मिलकर विचार विमर्श किया कि अब क्या करना चाहिये ॥४७॥

हे विप्र ! अत्यन्त धार्मिक राजा के प्रति अति स्नेह रखने वाले उन्होंने विचार करने पर यही निश्चय किया कि—॥४८॥

हम भली प्रकार ध्यानपूर्वक समाहित चित्त से सूर्य की तपस्या और आराधना करके इस राजा की आयु वृद्धि की प्रार्थना करें ॥४९॥

तब ऐसा निश्चय करके उनमें कुछ अपने-अपने घरों में अर्घ्य, उपचार और उपहार आदि से भगवान् भास्कर की पूजा करने लगे ॥५०॥

दूसरे मौन होकर और अन्य ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम, वेद के मंत्रों के जप से सूर्य को प्रसन्न करने लगे ॥५१॥

और उनमें अन्य कुछ ने निराहार रखते हुये, नदी के तट पर रेत में सोकर तप किया । सूर्य को प्रसन्न करने की इच्छा करते हुये अन्य ब्राह्मणों ने—॥५२॥

अग्निहोत्र परायण होकर और अन्यों ने रातदिन रवि सूक्तों का जप किया । उनमें कुछ सूर्य की ओर एक टक दृष्टि से देखते हुये ही खड़े रहे ॥५३॥

इस प्रकार अत्यधिक कठोर नियम पूर्वक भास्कर कीआराधना के लिये, उन्होंने उस-उसविधि का आश्रय लेकर अति कठोर नियमपूर्वक भुवन भास्कर की आराधना की ॥५४॥

उनको इस प्रकार भास्कर भगवान् की आराधना करते हुये देखकर सुदामा नाम का गन्धर्व आकर इस प्रकार बोला—॥५५॥

हे विप्र गण ! यदि आपको भास्कर की आराधना अभिष्ठ है तो ऐसा कार्य कीजिये, जिससे भगवान् सूर्य प्रसन्न होंवें ॥५६॥

तस्माद् गुरुविशालाख्यं वनं सिद्धनिषेवितम् । कामरूपे महाशैले गम्यतां तत्र वै लघु ।।५७
तस्मिन्नाराधनं भानोः क्रियतां सुसमाहितैः । सिद्धक्षत्रं हितं तत्र सर्वकामानवाप्स्यथ ।।५८

मार्कण्डेय उवाच —

इति ते तद्वचः श्रुत्वा गत्वा तत्काननं द्विजाः । ददृशुर्भास्वतस्तत्र पुण्यमायतनं शुभम् ।।५९
तत्र ते नियताहारा वर्णाविप्रादयो द्विज । धूपपुष्पोपहराढ्यां पूजां चक्रुरतन्द्रिताः ।।६०
पुष्पानुलेपनाद्यैश्च धूपगन्धादिकैस्तथा । जपहोमान्नदानाद्यैः पूजनं ते समाहिताः ।।
कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन् विवस्वन्तं द्विजातयः ।।६१

ब्राह्मणा ऊचुः—

देवदानवयक्षाणां ग्रहाणां ज्योतिषामपि । तेजसाऽभ्यधिकं देवं व्रजाम शरणं रविम् ।।६२
दिविस्थितं च देवेशं द्योतयन्तं समन्ततः । वसुधामन्तरिक्षं च व्याप्नुवन्तं मरीचिभिः ।।६३
आदित्यं भास्करं भानुं सवितारं दिवाकरम् । पूषाणमर्यमाणं च स्वर्भानुं दीप्तदीधितिम् ।।६४
चतुर्युगान्तकालाग्निदुष्प्रेक्ष्यं प्रलयान्तगम् । योगीश्वरमनन्तं च रक्त पीतं सितासितम् ।।६५

इसलिये कामरूप नाम के विशाल पर्वत पर 'गुरु विशाल' नामक वन है जो सिद्ध पुरुषों द्वारा सेवित हैं। आप लोग शीघ्रतापूर्वक वहीं जाइये ।।५७।।

और उस वन में समाहित चित्त से भानु की आराधना कीजिये, क्योंकि वह सिद्ध क्षेत्र हैं वहां आप अपने सभी अभीष्टों को प्राप्त करोगे ।।५८।।

मार्कण्डेय बोले —

हे ब्राह्मन् श्रेष्ठ ! उस (गन्धर्व) के इन वचनों को सुनकर सभी आराधक ब्राह्मणों ने उस वन में जाकर भगवान् सूर्य का पवित्र मन्दिर देखा ।।५९।।

हे द्विज ! नियताहार करने वाले ब्राह्मण आदि द्विजातियों के लोगों ने वहां पर आलस्य रहित होकर धूप पुष्पोपहारादि के द्वारा (सूर्य भगवान्) की पूजा की ।।६०।।
हे ब्रह्मन् सावधान चित्त वाले उन ब्राह्मणादिकों ने पुष्प, गन्ध, धूप, अंगराग आदि पदार्थों से एवं जप होम और अन्नदानादि साधनों से पूजा करते हुए भगवान् सूर्य की स्तुति की ।।६१।।

ब्राह्मण बोले —

हम देव, दानव, यक्षों से और ज्योतिप्र (चमकने वाले) ग्रहों से भी अधिक तेज युक्त भगवान् सूर्य देव की शरण में उपस्थित होते हैं ।।६२।।

जो देवेश्वर आकाश में स्थित होकर अपनी रश्मियों से सभी दिशाओं को प्रकाशित और सम्पूर्ण पृथ्वी और अन्तरिक्ष को व्याप्त कर रहे हैं ।।६३।।

जो आदित्य, भास्कर, भानु, सविता देव, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्त और दीधिति तथा योगीश्वर (कहे जाते हैं) तथा चारों युगों के अन्त में प्रलय काल के समय दुष्प्रेक्ष्य, कालाग्नि के समान होते हैं अथवा जो अनन्त, रक्त, पीत और कृष्ण हैं ।।६५।।

ऋषिणामग्निहोत्रेषु यज्ञदेवेष्ववस्थितम् । व्रजाम शरणं देवं तेजोराशिं तमच्युतम् ।।
अक्षरं परमं गुह्यं मोक्षद्वारमनुत्तमम् ।।६६
छन्दोभिरश्वरूपैश्च सकृद्युवतैर्विहङ्गमम् । उदयास्तमने युवतं सदा मेरोः प्रदक्षिणे ।।६७
अनृतं च ऋतं चैव पुण्यतीर्थं पृथग्विधम् । विश्वस्थितिमचिन्त्यं च प्रपन्नाः स्म प्रभाकरम् ।।६८
यो ब्रह्मा यो महादेवो यो विष्णुर्यः प्रजापतिः । वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः ।।६९
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्या वानस्पत्यं द्रुमौषधम् । व्यक्ताव्यक्तेषु भूतेषु धर्माधर्मप्रवर्त्तकः ।।७०
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैवते तनुः । त्रिधा यस्य स्वरूपं तु भानोर्भास्वान्प्रसीदतु ।।७१
यस्य सर्वमयस्येदमङ्गभूतं जगत्प्रभो । स नः प्रसीदतां भास्वाञ्जगतां यश्च जीवनम् ।।७२
यस्यैकमक्षरं रूपं प्रभामण्डलदुर्द्दशम् । द्वितीयमैन्दवं सौम्यं स नो भास्वान् प्रसीदतु ।।७३
ताभ्यां च तस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम् । अग्नीषोममयं भास्वान्स नो देवः प्रसीदतु ।।७४

मार्कण्डेय उवाच—

इत्थं स्तुत्या तदा भक्त्या सम्यक् पूजाविधानतः ।
तुतोष भगवान् भास्वांस्त्रिधिमसैर्द्विजोत्तम ।।७५

और जो ऋषियों के अग्निहोत्र में यज्ञदेव के रूप में अवस्थित हैं, ऐसे अक्षर, परम गुह्य, अत्यन्त श्रेष्ठ, मुक्ति द्वार, अच्युत् स्थिर तेजो राशि, भगवान् सूर्य देव की शरण में हम जाते हैं ।।६६।।

एक बार जोड़े गये छन्द रूप अश्वों से युक्त विहङ्ग (पक्षी) उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुये जो सदैव गमनशील रहते हैं ।।६७।।

जो असत्य, सत्य, पुण्यतीर्थ और पृथक प्रकार से विश्व स्थिति रूप है, उन अचिन्त्य स्वरूप आदिदेव भगवान् भास्कर की हम शरण में आये हैं ।।६८।।

जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, सागर और ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रमा, वृक्ष, वनस्पति, औषधि स्वरूप है और जो व्यक्त एवं अव्यक्त प्राणियों में धर्म और अधर्म के प्रवर्तक हैं ।।६९-७०।।

और जिनका शरीर ब्राह्मी, वैष्णवी तथा माहेश्वरी के भेद से तीन रूपों से युक्त है । वे दीप्तिमान् भास्कर हमारे ऊपर प्रसन्न होवें ।।७१।।

जिस सर्व व्यापी भगवान् सूर्य का यह जगत् अंशरूप है, जो जगत् के जीवन हैं विश्व के स्वामी भुवन भास्कर हमारे ऊपर प्रसन्न होवें ।।७२।।

प्रथम अक्षर स्वरूप जिनका प्रभा मण्डल दुर्दर्श है और दूसरा स्वरूप चन्द्रमा अति सौम्य है, वे भगवान् सूर्य हम पर प्रसन्न होवें ।।७३।।

उनके उन दोनों स्वरूपों से ही इस विश्व का निर्माण हुआ है । अग्नि और सोममय वे भगवान् सूर्य हम पर प्रसन्न हों ।।७४।।

मार्कण्डेय बोले--

हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार तीन महीनों के पश्चात् स्तुति भक्ति एवं उचित प्रकार के पूजा विधान के द्वारा भगवान् भास्कर प्रसन्न हुये ।।७५।।

ततः स मण्डलादुद्यन्निजबिम्बसमप्रभः। अवतीर्य ददौ तेभ्यो दुर्दृशो दर्शनं रविः ॥७६
ततस्ते स्पष्टरूपं तं सवितारमजं जनाः। पुलकोत्कम्पिनो विप्रा भक्तिनम्राः प्रणेमिरे ॥७७
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्ररश्मे सर्वस्य हेतुस्त्वमशेषकेतुः।
पाता त्वमीड्योऽखिलयज्ञधामध्येयस्तथायोगविदां प्रसीद ॥७८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भानुस्तवो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः।

तत्र दुर्दर्श होते हुये भी (आकाश) मण्डल से प्रकट होकर अपनी उदय कालीन प्रभा युक्त बिम्ब वाले भगवान् सूर्य ने दर्शन दिया ॥७६॥

उसके पश्चात् उनके प्रत्यक्ष स्वरूप का दर्शन करके, पुलकायमान हुये उन भक्ति युक्त ब्राह्मणों एवं मनुष्यों ने भक्ति से नम्र होकर उन अजन्मा सविता देव को प्रणाम किया ॥७७॥

(उन्होंने कहा)—हे सहस्र रश्मे, आपको बार-बार नमस्कार है। हे यज्ञधाम! आप ही सभी (पदार्थों, सत्, असत्) के हेतु और आप ही सम्पूर्ण जगत की केतुओं से रक्षा करने वाले हैं। आप ही पूज्य और आप ही सब यज्ञों के आश्रय तथा योगियों के ध्यान योग्य हैं। आप हम पर प्रसन्न होइये ॥७८॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में भानुस्तवन नामक एक सौ छःवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततः प्रसन्नो भगवान् भानुराहाखिलाञ्जनान्। व्रियतां यदभिप्रेतं मत्तः प्राप्तुं द्विजादयः ॥१

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्ते प्रणिपत्योचुर्विप्र-क्षत्रादयोजनाः। ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्य पुरः स्थितम् ॥२

प्रजा ऊचुः—

भगवन् यदि नो भक्त्या प्रसन्नस्तिमिरापह ॥३

मार्कण्डेय बोले—

तब प्रसन्न हुये भगवान् सूर्य सभी मनुष्यों से बोले—हे ब्राह्मणों, तुम मुझ से जो प्राप्त करना चाहते हो, वह माँग लो ॥१॥

मार्कण्डेय ने कहा—

तब उन ब्राह्मण, क्षत्रियादि मनुष्यों ने अपने सामने खड़े हुए उन वरदायक उष्ण रश्मियों वाले सूर्य को देखकर, हड़बड़ाहट के साथ प्रणाम करके बोले—॥२॥

प्रजागण बोले—

हे तिमिर को दूर करने वाले भगवान्! यदि आप हमारी भक्ति से प्रसन्न हैं ॥३॥

दशवर्षसहस्राणि ततो नो जीवितां नृपः । निरामयो जितारातिः सुकोशः स्थिरयौवनः ।।४

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा जनान् भास्वानदृश्योऽभून्महामुने । तेऽपि लब्धवरा हृष्टाः समाजग्मुर्जनेश्वरम् ।।५

यथावृत्तं च ते तस्मै नरेन्द्राय न्यवेदयन् । वरं लब्ध्वा सहस्रांशोः सकाशादखिलं द्विज ।।६

तच्छ्रुत्वा जहृषे तस्य सा पत्नी मानिनी द्विज ।
स च राजा चिरं दध्यौ नाह किञ्चिच्च तं जनम् ।।७

ततः सा मानिनी भूपं हर्षापूरितमानसा । दिष्ट्याऽऽयुषा महीपाल वर्द्धस्वेत्याह तं पतिम् ।।८

तथा तया मुदा भर्त्ता मानिन्याथ सभाजितः । नाहं किञ्चिन्महीपालश्चिन्ताजडमना द्विज ।।९

सा पुनः प्राह भर्त्तारं चिन्तयानमधोमुखम् । कस्मान्न हर्षमभ्येषि परमाभ्युदये नृप ।।१०

दशवर्षसहस्राणि नीरुजः स्थिरयौवनः । भावी त्वमद्यप्रभृति किं तथापि न हृष्यसे ।।११

किन्तु तत्कारणं ब्रूहि यच्चिन्ताक्रुष्टमानसः । परमाभ्युदयेऽपि त्वं सम्प्राप्ते पृथिवीपते ।।१२

तो हमारे महाराज (राज्य वर्द्धन) रोग रहित, शत्रुओं के विजेता और स्थिर यौवन वाले होकर दस सहस्र वर्षों तक जीवित रहें ।।४।।

मार्कण्डेय ने कहा—

हे महामुने ! तब 'ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और वरदान प्राप्त किये हुए वे (प्रजाजन) भी प्रसन्न होकर राजा के पास आये ।।५।।

और हे द्विज ! सहस्र रश्मि वाले सूर्य भगवान् से वर प्राप्ति पर्यन्त जो जैसा घटित हुआ था, सम्पूर्ण वृत्तान्त वैसा ही राजा से निवेदन किया ।।६।।

हे द्विज ! उसको सुनकर राजमहिषी मानिनी अत्यन्त प्रसन्न हुई । किन्तु राजा बहुत देर तक सोचते रहे । उस जन-समूह से उन्होंने कुछ कहा नहीं ।।७।।

तब प्रफुल्लचित्त वाली उस मानिनी ने अपने स्वामी से कहा—हे महाराज ! भाग्य से प्राप्त आयु से युक्त होकर आप वृद्धि को प्राप्त हो ।।८।।

हे द्विज ! प्रसन्नचित्त वाली मानिनी के सत्कृत् वचनों को सुनकर चिन्तित चित्त के कारण राजा कुछ नहीं बोले ।।९।।

नीचा मुँह करके सोचते हुए पति को देखकर वह फिर बोली हे राजन् ! परम अभ्युदय के समय में भी आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ।।१०।।

आप आज से लेकर निरामय और स्थिर यौवन होकर दस सहस्र वर्षों तक जीवित रहेंगे, फिर भी आप प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? ।।११।।

हे पृथिवीपते ! इस प्रकार के परम अभ्युदय के उपस्थित होने पर भी आप चिंतित मन वाले हैं । इसका जो कारण हो वह मुझसे कहिए ।।१२।।

राजोवाच—

कथमभ्युदयो भद्रे किं स भाजयसे माम् । प्राप्तो दुःखसहस्राणां किं सभाजनमिष्यते ॥१३

दशवर्षसहस्राणि जीविष्याम्यहमेककः । न त्वं तव विपत्तौ मे किन्न दुःखं भविष्यति ॥१४

पुत्रान्पौत्रान् प्रपौत्रांश्च तथाऽन्यानिष्टबान्धवान् ।
पश्यतो मे मृतान्दुःखंकिमल्पं हि भविष्यति ॥१५

भृत्येषु चातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथा मृते । भद्रे दुःखमपारं मे भविष्यति तु सन्ततम् ॥१६

यैर्मदर्थं तपस्तप्तं कृशैर्धमनिसन्ततैः । ते मरिष्यन्त्यहं भोगी जीविष्यामीतिधिक्करम् ॥१७

सेयमापद्वरारोहे प्राप्ता नाभ्युदयो मम । कथं वा मन्यसे न त्वं यत्स भाजयसेऽद्य माम् ॥१८

मानिन्युवाच—

महाराज यथात्थ त्वं तथैतन्नात्र संशयः । मया पौरैश्च दोषोऽयं प्रीत्या नालोकितस्तव ॥१९

एवं गतेऽत्र किं कार्यं नरनाथ विचिन्त्यताम् ।
नान्यथा भावि यत्प्राह प्रसन्नो भगवान् रविः ॥२०

राजा ने कहा—

हे भद्रे ! मेरा कौन सा भाग्योदय हुआ है और मेरा उतना सत्कार किसलिए कर रही हो ? सहस्रों दुःखों को प्राप्त होकर भी मैं किस आनन्द का उपभोग करूँगा ॥१३॥

मैं अकेला दस हजार वर्षों तक जीवित रहूँगा, परन्तु तुम उस विपत्ति में (जीवित) नहीं रहोगी तो फिर क्या तुम्हारे न रहने का मुझे दुःख नहीं होगा ? ॥१४॥

पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र तथा अन्य इष्ट बन्धुओं को मरते हुए देखकर क्या मुझे कुछ कम दुःख होगा ॥१५॥

और हे भद्रे ! अत्यन्त भक्ति वाले भृत्यों और मित्र वर्ग की मृत्यु होने पर मुझे सदैव ही महान् दुःख (भोगना) होगा ॥१६॥

जिन्होंने अपने शरीर को निरन्तर कृश करते हुए, मेरे लिए तप किया है वे मर जायेंगे और मैं जीवित रहकर सुख भोगूँगा, मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है ॥१७॥

इसलिए यह (आयुवृद्धि) मेरा अभ्युदय नहीं है अपितु मेरे लिए विपत्तियों का द्वार बन गयी है । क्या तुम इन सब बातों को नहीं विचारती हो ? जो मेरा आज इतना सम्मान कर रही हो ॥१८॥

मानिनी बोली—

हे महाराज ! जैसा आपने कहा, वैसा ही है, इसमें तनिक भी संशय नहीं हैं । मैंने और नगरवासियों ने प्रीति के कारण इस बात के ऊपर ध्यान नहीं दिया ॥१९॥

हे नरनाथ ! ऐसा होने पर अब क्या करना चाहिए, इस बात पर विचार कीजिए । क्योंकि प्रसन्न हुए भगवान् सूर्य ने जो कहा है, वह कदापि अन्यथा नहीं हो सकता ॥२०॥

राजोवाच —

उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम ।
कथं भक्ष्याम्यहं भोगान् गत्वा तेषामनिष्कृतिम् ।।२१
सोऽहमद्य प्रभृत्यद्रिं गत्वा नियतमानसः । पौरलोकहितार्थं च तोषयिष्यामि भास्करम् ।।
यथा पौरा मम कृते बान्धवाश्च समन्ततः । आराधनाय देवेशं तथाऽहमपि साम्प्रतम् ।।
तपस्तप्स्ये निराहारो भानोराराधनोद्यतः ।।२२
दशवर्षसहस्राणिं यथाहं स्थिरयौवनः । तस्य प्रसादाद्देवस्य जीविष्यामि निरामयाः ।।२३
तथा यदि प्रजाः सर्वा भृत्यास्त्वं च सुताश्च मे । पुत्राः पौत्राः प्रपौत्राश्च सुहृदश्च वरानने ।।२४
जीवन्त्येतं प्रसादं च करोति भगवान् रविः ।
ततोऽहं भविता राज्ये भोक्ष्ये भोगांस्तथा मुदा ।।२५
न चेदेवं करोत्यर्कस्तदाऽऽद्रौ तत्र मानिनी । तपस्तप्स्ये निराहारो यावज्जीवित न संशयः ।।२६

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्त्वा सा तदा तेन तथेत्याह नराधिपम् । जगाम तेन च समं साऽपि तं धरणीधरम् ।।२७

राजा ने कहा—

पुरवासियों और भृत्यों ने प्रीतिपूर्वक मेरा जो उपकार किया है । उससे छुटकारा पाये बिना मैं किस प्रकार भोगों को भोगूँगा ? ।।२१।।

(इसलिए) वह मैं आज ही मन का नियन्त्रण करके पर्वत पर जाकर पुरवासियों के हित के लिए मैं भगवान् भास्कर को सन्तुष्ट करूँगा । जिस प्रकार से पुरवासियों एवं बन्धुओं ने मेरे लिए सब प्रकार से सूर्य भगवान् के आराधन के लिए प्रवृत्त हुए उसी प्रकार मैं भी अब निराहार रहकर भगवान् सूर्य की आराधना में उद्यत होकर तपस्या करूँगा ।।२२।।

उस भगवान् सूर्य की कृपा से जिस प्रकार मैं नीरोग और स्थिर यौवन रहते हुए दस सहस्र वर्षों तक जीवित रहूँगा ।।२३।।

हे सुमुखी ! उसी प्रकार से यदि मेरी समस्त प्रजा, भृत्य, तुम, (राजमहिषी) और मेरी पुत्रियाँ, पुत्र, प्रपौत्र, सुहृद्जन ।।२४।।

भी (उतने ही समय तक) जीवित रहें । यदि ऐसी कृपा सूर्य भगवान् कर देते हैं तब तो मैं भी राजा रहते हुए आनन्द पूर्वक भोगों को भोगूँगा ।।२५।।

हे मानिनी ! यदि सूर्य भगवान् ऐसी कृपा नहीं करते हैं, तब मैं पर्वत पर निराहार रहते हुए जीवन पर्यन्त तप करूँगा । इसमें तनिक भी संशय नहीं है ।।२६।।

मार्कण्डेय ने कहा—

उनके ऐसा कहने पर उस मानिनी ने भी राजा से कहा कि, यही ठीक है और वह भी उस राजा के साथ उस पर्वत पर तपस्या के लिए गयी ।।२७।।

स तदायतनं गत्वा भार्यया सह पार्थिवः। भानोराराधनं चक्रे शुश्रूषानिरतो द्विज ।।२८
निराहारा कृशा सा च यथाऽसौ पृथिवीपतिः। तेपे तपस्तथैवोग्रं शीतवातातपक्षमा ।।२९
तस्य पूजयतो भानुं तप्यतश्च तपो महत्। साग्रे संवत्सरे याते ततः प्रीतो दिवाकरः ।।३०
समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणां च कृते द्विज। ददौ यथाभिलषितं वरं द्विजवरोत्तम ।।३१
लब्ध्वा वरं स नृपतिः समभ्येत्यात्मनः पुरम्। चकार मुदितो राज्यं प्रजाधर्मेण पालयन् ।।३२

ईजे यज्ञान् स च बहून् ददौ दानान्यहर्निशम्।
मानिन्या सहितो भोगान् बुभुजे च स धर्मवित् ।।३३

दशवर्षसहस्राणि पुत्रपौत्रादिभिः सह। भृत्यैः पौत्रैः प्रमुदितः सोऽभवत् स्थिरयौवनः ।।३४
तस्येति चरितं दृष्ट्वा प्रमतिर्नाम भार्गवः। विस्मयाकृष्टहृदयो गाथामेतामगायत ।।३५
भानुर्भक्तेरहो शक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धनः। आयुषो वर्द्धने जातः स्वजनस्य तथात्मनः ।।३६
इति ते कथितं विप्र यत्पृष्टोऽहं त्वयादितः। आदिदेवस्य माहात्म्यमादित्यस्य विवस्वतः ।।३७

हे ब्रह्मन् ! तब पत्नी सहित उस राजा ने उसी मन्दिर में जाकर, भगवान् सूर्य की आराधना और सेवा में तत्पर हो गया ।।२८।।

जिस प्रकार राजा निराहार रहकर तप कर रहा था, उसी प्रकार रानी भी वर्षा, शीत और ग्रीष्म ऋतु में कष्ट सहते हुए उग्र तप कर रही थी ।।२९।।

भानु की इस प्रकार आराधना करते हुए और कठोर तप करते हुए, लगभग एक वर्ष से अधिक बीत गया, तो सूर्य भगवान् प्रसन्न हुए ।।३०।।

हे द्विज श्रेष्ठ ! तब उनको समस्त पुत्र, भृत्य और नगरवासियों के लिए मनोवांछित वरदान प्रदान किया ।।३१।।

वर प्राप्त करके राजा अपने नगर में आया और प्रसन्नता पूर्वक प्रजा का धर्म पूर्वक पालन करते हुए राज्य किया ।।३२।।

और उसने बहुत से यज्ञ किये और दिन रात (सत्पात्रों को) बहुत सा दान दिया। इस प्रकार पत्नी के साथ उस धर्मविद् (राजा) ने विविध भोगों का उपभोग किया ।।३३।।

और पुत्र, पौत्र, भृत्य और पुरवासियों के साथ, प्रसन्नचित्त से स्थिर यौवन उस राजा ने दस सहस्र वर्ष व्यतीत किये ।।३४।।

उसके इस प्रकार के चरित को देखकर विस्मय से आकृष्ट चित्त वाले प्रमति नामक भार्गव ने इस प्रकार इस गाथा का गान किया ।।३५।।

सूर्य की भक्ति की कैसी शक्ति है जो कि राजा राज्यवर्द्धन अपनी और अपने आत्मीय जनों की आयु की वृद्धि कराने में सफल हुआ ।।३६।।

हे ब्रह्मन् ! जो तुमने मुझ से पूछा था, वह यह आदि देव आदित्य भगवान् विवस्वान् का माहात्म्य मैंने तुमसे कह दिया ।।३७।।

विप्रैतदखिलं श्रुत्वा भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् । पठंश्च मुच्यते पापैः सप्तरात्रकृतैर्नरः ।।३८
अरोगोधनवानाढ्यः कुले महति धीमताम् । जायते च महाप्राज्ञो यश्चैतद् धारयेद् बुधः ।।३९
(यजते च महायज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । श्रुत्वा चरितमेतद्धि समानं लभते फलम् ।।)
मन्त्राश्च येऽत्राभिहिता भास्वतो मुनिसत्तम । जपः प्रत्येकमेतेषां त्रिसंध्यं पातकापहः ।।४०
समस्तमेतन्माहात्म्यं यत्र चायतने रवेः । पठ्यते तत्र भगवान् सान्निध्यं न विमुञ्चति ।।४१
तस्मादेतत्त्वया ब्रह्मन् भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् । धार्यं मनसि जाप्यं च महत्पुण्यमभीप्सता ।।४२

सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीं पयस्विनीं गां प्रददाति यो हि ।
शृणोति चैतत् त्र्यहमात्मवान्नरः समंतयो पुण्यफलं द्विजाग्र्य ।।४३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भानोर्माहात्म्यं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।

हे विप्र ! भगवान् सूर्य के इस उत्तम माहात्म्य को सुनकर और पढ़ने से मनुष्य सप्तरात्र में किये गये पापों से छूट जाता है ।।३८।।

जो बुद्धिमान् पुरुष इस (माहात्म्य) को धारण करता है, वह महाप्राज्ञ, धनी, निरोगी और महान् विद्वान् होकर उत्तम कुल में जन्म लेता है ।।३९।।

उत्तम दक्षिणाओं से युक्त, महान् यज्ञों के यजन से और इस चरित्र को सुनकर समान फल की ही प्राप्ति होती है । हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् सूर्य के जो मन्त्र यहाँ कहे गये हैं, इनमें से प्रत्येक का त्रिकाल संध्या में जप करने से पाप दूर हो जाते हैं ।।४०।।

सूर्य के मन्दिर में जहाँ इस सम्पूर्ण माहात्म्य का पाठ होता है। वहाँ से भगवान् सूर्य नहीं हटते (अपना सन्निध्य नहीं त्यागते) ।।४१।।

इसलिए हे ब्रह्मन् ! तुम्हें भी महान् पुण्य की अभिलाषा से भगवान् सूर्य के इस उत्तम माहात्म्य को हृदय में धारण करके जप करना चाहिये ।।४२।।

हे द्विजवर ! जो व्यक्ति सींगों पर स्वर्ण लगी हुई, अत्यन्त सुन्दर अंगों वाली दुधारु गौओ का दान करता है और जो मनुष्य इस माहात्म्य को संयत चित्त से तीन दिन तक सुनता है । उन दोनों को समान फल की प्राप्ति होती है ।।४३।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में भानोर्माहात्म्य नामक एक सौ सातवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

एवं प्रभावो भगवाननादिनिधनो रविः । यस्य त्वं क्रौष्टुके भक्त्या माहात्म्यं परिपृच्छसि ।।१

मार्कण्डेय बोले—

हे क्रौष्टुके ! तुमने जिसका माहात्म्य भक्ति पूर्वक पूछा था वे अनादि निधन भगवान् सूर्य इस प्रकार के उत्कृष्ट प्रभाव वाले हैं ।।१।।

परमात्मा स योगिनां युञ्जतां चेतसां लयम् । क्षेत्रज्ञः सांख्ययोगानां यज्ञेशो यज्विनामपि ॥२
सूर्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वेधसः । मनुस्तस्याभवत् पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥३
मन्वन्तराधिपो विप्र यस्य सप्तममन्तरम् । इक्ष्वाकुर्नाभगोरिष्टो महाबलपराक्रमः ॥४
नरिष्यन्तोऽथ नाभागः पृषध्रो धृष्ट एव च । एते पुत्रा मनोस्तस्य पृथग्राज्यस्य पालकाः ॥५
विख्यातकीर्त्तयः सर्वे सर्वेशस्त्रास्त्रपारगाः । विशिष्टतरमन्विच्छन् मनुः पुत्रं तथा पुनः ॥६
मित्रावरुणयोरिष्टिं चकार कृतिनां वरः । यत्र चापहृते होतुरपचारान्महामुने ॥७
इला नाम समुत्पन्ना मनोः कन्या सुमध्यमा । तां दृष्ट्वा कन्यकां तत्र समुत्पन्नां ततो मनुः ॥८
तुष्टाव मित्रावरुणौ वाक्यं चेदमुवाच ह । भवत्प्रसादात्तनयो विशिष्टो मे भवेदिति ॥९
कृते मखे समुत्पन्ना तनया मम धीमतः । यदि प्रसन्नौ वरदौ तदियं तनया मम ॥१०
प्रसादाद् भवतोः पुत्रो भवत्वतिगुणान्वितः । तथेति चाभ्यामुक्ते तु देवाभ्यां सैव कन्यका ॥११
इला समभवत् सद्यः सुद्युम्न इति विश्रुतः । पुनश्चेश्वरकोपेन मृगयामटता वने ॥
स्त्रीत्वमासादितं तेन मनुपुत्रेण धीमता ॥१२

वे संयत चित्त वाले योगियों के लिए ईश्वर और सांख्य योगियों के लिए क्षेत्रज्ञ एवं याज्ञिकों के लिए यज्ञेश्वर हैं ॥२॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप सूर्य—अधिकार के वहन करने वाले उन भगवान् भास्कर के सभी संदेहों से रहित मनु नाम का पुत्र हुआ ॥३॥

हे विप्र ! जिन मनु का यह सातवां मन्वन्तर चल रहा है, उन्हीं मनु के महाबली और पराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभाग, रिष्ट, नरिष्यंत, नाभग, पृषध्र और धृष्ट नामक पुत्र हुए ये पुत्र पृथक्-पृथक् राज्यों के पालक हैं ॥४-५॥

प्रसिद्ध यश वाले, सभी सब शास्त्रास्त्रों में पारंगत हुये फिर उन मनु के अतिविशिष्ट पुत्र की कामना करते हुये ॥६॥

पुण्यात्माओं में श्रेष्ठ उन मनु ने मित्रावरुण को लक्ष्य करके यज्ञ का आयोजन किया । हे मुने ! उस यज्ञ में होता के अपचार के कारण, उस यज्ञ के अपहृत (दूषित, अंगहीन) हो जाने से ॥७॥

मनु की सुन्दर कटि वाली इला नाम की कन्या उत्पन्न हुई । उस यज्ञ से (वहां) उत्पन्न हुई, उस कन्या को देखकर, मनु ने ॥८॥

मित्रावरुण की स्तुति की और यह कहा—आप की कृपा से मुझे एक असाधारण पुत्र की प्राप्ति हो ॥९॥

यज्ञ करने पर मुझे कन्या की प्राप्ति हुई, यदि आप दोनों मुझ पर प्रसन्न हैं तो आप की कृपा से यह मेरी पुत्री अत्यन्त गुणों से युक्त पुत्र हो जाये । 'ऐसा ही हो' उन दोनों देवों के इस प्रकार कहने पर, इला नामक वही कन्या शीघ्र ही सुद्युम्न इस नाम से प्रसिद्ध पुत्र हो गयी, लेकिन फिर शिकार के लिये जंगल में घूमते हुए उस मनु के मेधावी उस पुत्र ने शिवजी के कोप से पुनः स्त्रीत्व प्राप्त किया ॥१०-१२॥

पुरूरवसनामानं चक्रवर्तिनमूर्जितम् ॥१३

जनयामास तनयं यत्र सोमसुतो बुधः । जाते सुते पुनः कृत्वा सोऽश्वमेधं महाक्रतुम् ॥१४

पुरुषत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नः पार्थिवोऽभवत् । सुद्युम्नस्य त्रयः पुत्रा उत्कलो विनयो गयः ॥१५

पुरुषत्वे महावीर्या यज्विनः पृथुलौजसः । पुरुषत्वे तु ये जातास्तस्य राज्ञस्त्रयः सुताः ॥१६

बुभुजुस्ते महीमेतां धर्मे नियतचेतसः । स्त्रीभूतस्य तु यो जातस्तस्य राज्ञः पुरूरवाः ॥

न स लेभे महीभागं यतो बुधसतो हि सः ॥१७

ततो वसिष्ठवचनात् प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् । तस्मै दत्तं स राजाऽभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥१८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे वंशानुक्रमोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ।

तब उससे सोम के पुत्र बुध ने पुरुरवा नाम का चक्रवर्ती और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न किया । पुत्र के उत्पन्न होने के बाद अश्वमेघ नामक महान् यज्ञ करके पुरुषत्व प्राप्त करके वह पुनः सुद्युम्न नामक राजा बना । पुरुषत्व प्राप्त होने पर उस महा शक्तिमान् सुद्युम्न के अत्यन्त वीर, यज्ञ करने वाले विपुल तेजस्वो उत्कल, विनय और गय नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुये । उस राजा के उत्पन्न तीनों पुत्र धार्मिक थे और उन्होंने इस पृथ्वी का उपभोग किया (तीनों राजा बने) और स्त्री बनने पर उस राजा का जो पुरुरवा नामक पुत्र हुआ था, उसको (राजा सद्युम्न के राज्य में से) भाग प्राप्त नहीं हुआ ॥१३-१७॥

क्योंकि वह बुध का पुत्र था । तब वसिष्ठ मुनि की आज्ञा से उसको प्रतिष्ठान नामक अति सुन्दर नगर दे दिया, वहीं वह राजा बना ॥१८॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में वंशानुक्रम नामक एक सौ आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

नवाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

पृषध्राख्यो मनोः पुत्रो मृगयामगमद्वनम् । तत्र चङ्क्रममाणोऽसौ विपिने निर्जने वने ॥१

नाससाद मृगं कञ्चिद्भानुदीधितितापितः । क्षुत्तृट्तापपरीताङ्ग इतश्चेतश्च चङ्क्रमन् ॥२

स ददर्श तदा तत्र होमधेनुं मनोहराम् । लतान्तर्देहच्छन्नार्धां ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥३

मार्कण्डेय बोले—

(एक बार) मनु का पृषध्र नामक पुत्र शिकार के लिये वन में गया । वहाँ निर्जन वन में घूमते हुए उसको ॥१॥

कोई शिकार नहीं मिला । सूर्य की किरणों से तपते हुये, भूख, प्यास और गर्मी से अत्यन्त व्याकुल अंगों वाले, इधर-उधर घूमते हुए उसने ॥२॥

किसी अग्निहोत्री की लता गुल्म में आधे छिपे अंगों वाली अत्यन्त सुन्दर होम धेनु को देखा ॥३॥

स मन्यमानो गवयमिषुणा तामताडयत् । पपात सापि तद्बाणविभिन्नहृदया भुवि ।।४
ततोऽग्निहोत्रिण: पुत्रो ब्रह्मचारी तपोरति: । शप्तवान् स पितुर्दृष्ट्वा होमधेनुं निपातिताम् ।।५
गोपाल: प्रेषित: पुत्रो बाभ्रव्यो नाम नामत: । कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततो मुने ।।६
चुकोप विगलत्स्वेदजलोलाविलेक्षण: । तं क्रुद्धं प्रेक्ष्य स नृप: पृषध्रो मुनिदारकम् ।।७
प्रसीदेति जगौ कस्माच्छूद्रवत् कुरुषे रूषम् । न क्षत्रियो न वा वैश्य एवं क्रोधमुपैति वै ।।
यथा त्वं शूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मण: कुले ।।८

मार्कण्डेय उवाच—

इति निर्भर्त्सितस्तेन स राज्ञा मौलिन: सुत: । शशाप तं दुरात्मानं शूद्र एव भविष्यसि ।।९
प्रयास्यति क्षयं ब्रह्मन् यत्तेऽधीतं गुरोर्मुखात् । होमधेनुर्मम गुरोर्यदियं हिंसिता त्वया ।।१०
एवं शप्तो नृप: क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडित: । प्रतिशापपरो विप्र तोयं जग्राह पाणिना ।।११
सोऽपि राज्ञो विनाशाय कोपं चक्रे द्विजोत्तम: । तमभ्येत्य त्वरायुक्तो वारयामास वै पिता ।।१२
वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनातीव वैरिणा । ऐहिकामुष्मिकहित: शम एव द्विजन्मनाम् ।।१३

उसने उस गाय को गवय (जंगली गाय) समझते हुए, उसके ऊपर तीर छोड़ा, बाण से विदीर्ण हृदय होकर, वह गाय पृथ्वी पर गिर पड़ी ।।४।।

तब अग्निहोत्री के तपस्वी ब्रह्मचारी पुत्र ने पिता की होमधेनु को (पृथ्वी पर) गिरी हुई देखकर (उस राजा को) शाप दिया ।।५।।

(अग्निहोत्री ऋषि के) उस पुत्र का नाम बाभ्रव्य था, उसे गाय की देखभाल के लिये भेजा गया था। उसका मन हे मुनि ! क्रोध से अत्यन्त आविष्ट हो गया ।।६।।

उसको क्रोध आया और क्रोध से उसके शरीर से पसीने की बूंदें टपकने लगीं, उसकी आँखें (क्रोध से) अति चञ्चल हो गयीं । उस मुनि पुत्र को क्रुद्ध देखकर राजा पृषध्र ने ।।७।।

'प्रसन्न होओ' ऐसा कहा, क्यों शूद्र के समान इतना क्रोध कर रहे हो ? न तो क्षत्रिय और न वैश्य ही कोई इस प्रकार क्रोधवश होता है, जैसा कि तुम विशिष्ट ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भी शूद्र के समान बन गये हो ।।८।।

मार्कण्डेय ने कहा—

इस प्रकार से जब उस राजा ने मौली के उस पुत्र को झिड़का (डाँटा) तो उसने उस दुरात्मा को शाप दिया कि 'तुम शूद्र ही हो जाओगे ।।९।।

क्योंकि तुमने मेरे पिता की होमधेनु का वध किया है, इसलिए तुमने जो कुछ गुरु के मुख से पढ़ा है, वह सब नष्ट हो जायेगा ।।१०।।

हे विप्र ! इस प्रकार सप्त हुए राजा ने शाप से क्रुद्ध और दुःखी होकर प्रतिशाप देने के लिये अपने हाथ में जल लिया ।।११।।

हे द्विजोत्तम ! (फिर) उस ऋषि पुत्र ने भी राजा के विनाश के लिये क्रोध किया । तब शीघ्रता से उसके पास आकर पिता ने उसको (पुनः) शाप से रोका । (और कहा) ।।१२।।

हे वत्स ! अतिक्रोध मत करो, यह (मानव का) अतीव शत्रु होता है । इससे ब्राह्मणों के ऐहिक एवं आमुष्मिक हितों के लिए शान्ति ही उचित है ।।१३।।

कोपस्तपो नाशयति क्रुद्धो भ्रश्यत्यथायुषः । क्रुद्धस्य गलते ज्ञानं क्रुद्धश्चार्थाच्च हीयते ॥१४
न धर्मः क्रोधशीलस्य नार्थं चाप्नोति रोषणः। नालं सुखाय कामाप्तिः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥१५
यदि राज्ञा हता धेनुरियं विज्ञानिना सता । युक्तमत्र दयां कर्तुमात्मनो हितबोधिना ॥१६
अथवाऽजानता धेनुरियं व्यापादिता मम । तत्कथं शापयोग्योऽयं दुष्टं नास्य मनो यत ॥१७
आत्मनो हितमन्विच्छन् बाधते योऽपरं नरः । कर्तव्या मूढविज्ञाने दया तत्र दयालुभिः ॥१८
अज्ञानतः कृते दण्डं पातयन्ति बुधा यदि । बुधेभ्यस्तमहं मन्ये वरमज्ञानिनो नराः ॥१९
नाद्य शापस्त्वया देयः पार्थिवस्यास्य पुत्रक । स्वकर्मणैव पतिता गौरेषा दुःखमृत्युना ॥२०

मार्कण्डेय उवाच—

पृषध्रोऽपि मुनेः पुत्रे प्रणम्यानम्रकन्धरः । प्रसीदेति जगादोच्चैरज्ञानाद् घातितेति च ॥२१
मया गवयबुद्ध्या गौरवध्या घातिता मुने । अज्ञानाद् होमधेनुस्ते प्रसीद त्वं च नो मुने ॥२२

ऋषिपुत्र उवाच—

आजन्मनो महीपाल न मया व्याहृतं मृषा । क्रोधश्चाद्य महाभाग नान्यथा मे कदाचन ॥२३

क्रोध तप को नष्ट करता है, क्रुद्ध से व्यक्ति की आयु क्षीण होती है और क्रुद्ध पुरुष के ज्ञान और अर्थ का नाश होता है ॥१४॥

क्रोधी पुरुष को धर्म और अर्थ की प्राप्ति नहीं होती और कोपाविष्ट चित्त वाले को सुख के लिए काम की भी प्राप्ति नहीं हो पाती ॥१५॥

यदि इस राजा ने जानबूझ कर इस गाय को मारा है, तो भी अपने हित को जानने वाले व्यक्ति को इस पर दया ही करनी चाहिये ॥१६॥

अथवा यदि इसने मेरी गाय को अनजाने में मारा है तो फिर यह शाप देने के योग्य भी नहीं है, क्योंकि इसका मन कलुषित नहीं था ॥१७॥

अपने हित को चाहते हुये जो पुरुष दूसरों को पीड़ित करते हैं, तो भी दयालु पुरुषों को उन अज्ञानियों के ऊपर दया ही करनी चाहिये ॥१८॥

यदि बुद्धिमान् पुरुष अज्ञान वश किए गए अपराध पर भी दण्ड देते हैं तो मैं उन पुरुषों को महान् अज्ञानी मानता हूँ ॥१९॥

इसलिए हे पुत्र ! तुम्हें अब राजा को शाप नहीं देना चाहिए, क्योंकि अपने कर्मों से ही यह गो दुःखपूर्ण मृत्यु को प्राप्त हुई है ॥२०॥

मार्कण्डेय बोले—

राजा पृषध्र ने भी कन्धे झुकाकर प्रणाम करके मुनि के पुत्र को उच्च स्वर में कहा—हे मुनि श्रेष्ठ ! प्रसन्न होइये मुझ से भूल से ही यह गाय मारी गयी है ॥२१॥

हे मुने ! मैंने गवय समझकर ही अज्ञानवश आपकी इस होमधेनु की हत्या की है, इसलिए हे मुने ! आप प्रसन्न होइये ॥२२॥

ऋषि पुत्र बोला—

हे महीपाल ! आजन्म मैंने असत्य भाषण नहीं किया है, इस लिए हे महाभाग ! मेरा आज का क्रोध अन्यथा नहीं होगा ॥२३॥

तन्नाहमेनं शक्नोमि शापं कर्तुं नृपान्यथा । यस्ते समुद्यतः शापो द्वितीयः स निर्वर्तितः ।।२४
इत्युक्तवन्तं तं बालमादाय स पिता ततः । जगाम स्वाश्रमं सोऽपि पृषध्रः शूद्रतामगात् ।।२५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे वंशानुचरिते पृषध्रोपाख्याने नवाधिकशततमोऽध्यायः ।

इसलिये हे नृप ! मैं इस शाप को अन्यथा करने में असमर्थ हूँ, लेकिन तुमको जो दूसरा शाप देने के लिए मैं उद्यत था, उसको मैंने लौटा लिया है ।।२४।।

तब इस प्रकार कहते हुये, उस बालक को लेकर वह पिता अपने आश्रम में गये और वह पृषध्र भी शूद्रत्व को प्राप्त हो गया (शूद्र बन गया) ।।२५।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में वंशानुचरित में पृषध्रोपाख्यान नामक
एक सौ नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

दशाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

कारुषाः क्षत्रियाः शूराः करुषस्याभवन्सुताः । ते तु सप्तशतं वीरास्तेभ्यश्चान्ये सहस्रशः ।।१
दिष्टपुत्रस्तु नाभागः स्थितः प्रथमयौवने । ददर्श वैश्यतनयामतीव सुमनोहराम् ।।२
तस्यां संदृष्टमात्रायां मदनाक्षिप्तमानसः । बभूव भूपतनयो निःश्वासाक्षेप तत्परः ।।३
तस्याः स गत्वा जनकं वव्रे वैश्यकन्यकाम् । ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिं नृपात्मजम् ।।४
तं चाह स पिता तस्या राजपुत्रं कृताञ्जलिः । बिभ्यत्तस्य पितुर्विप्र प्रश्रयावनतं वचः ।।५
भवन्तो भूभुजो भृत्या वयं वः करदायकाः । कथं सम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि ।।६

मार्कण्डेय बोले—

करुष राजा के पुत्र कारुष शूरवीर क्षत्रिय हुये । वे (पहले) सात सौ की संख्या में थे । फिर उनसे सहस्रों उत्पन्न हुए ।।१।।

(इसी वंश में) दिष्ट का पुत्र नाभाग था जिसने प्रथम यौवन में पदार्पण किया था । उसने (किसी समय) परम सुन्दर वैश्य कन्या को देखा ।।२।।

उसको देखने मात्र से ही उसका चित्त कामासक्त हो गया । वह राजपुत्र लम्बे-लम्बे श्वाँस छोड़ने लगा ।।३।।

तब कामदेव के अधीन मनोवृत्ति वाले राज पुत्र नाभाग ने उसके पिता के पास जाकर उस वैश्य कन्या की याचना की ।।४।।

उससे डरते हुये उसके पिता ने उस राजपुत्र से झुकते हुए हाथ जोड़कर विनम्र शब्दों में कहा—।।५।।

आप राजा हैं और हम आपके कर देने वाले सेवक हैं । इसलिए हम असमान हैं आप हमारे साथ (इस प्रकार के) सम्बन्ध की क्यों अभिलाषा कर रहे हैं ।।६।।

राजपुत्र उवाच—

साम्यं मानुषदेहस्य काममोहादिभिः कृतम्। तथापि काले तैरेव योज्यते मानुषं वपुः ॥७
तथैव चोपकाराय जायन्ते तस्य तान्यपि। अन्यानि चान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमतां सताम् ॥८
तथान्यान्यप्ययोग्यानि योग्यतां यान्ति कालतः।
योग्यान्ययोग्यतां यान्ति कालवश्या हि योग्यता ॥९
आप्यायते यच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः। कालं ज्ञात्वा यथा भुक्तं तदेव परिशिष्यते ॥१०
इत्थं ममैषाऽभिमता तनया दीयतां त्वया। अन्यथा मच्छरीरस्य विपत्तिरुपलक्ष्यते ॥११

वैश्य उवाच—

परतन्त्रा वयं त्वं च परतन्त्रो महीभुजः। पित्रा तेनाभ्यनुज्ञातस्त्वं गृहाण ददाम्यहम् ॥१२

राजपुत्र उवाच—

प्रष्टव्याः सर्वकार्येषु गुरवो गुरुवर्तिभिः। न त्वीदृशे स्वकार्येषु गुरुणां वाक्यगोचरः ॥१३
क्व मन्मथकथालापो गुरुणां श्रवणं क्व च। विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्या गुरवो नृभिः ॥१४

राजपुत्र बोला—

(ब्रह्मा जी ने) मनुष्य के शरीर में काम, क्रोध आदि का समान रूप से निर्माण किया है, फिर भी समय-समय पर उनका मनुष्य के शरीर से सम्बन्ध होता है ।.७।।

फिर भी मनुष्य के शरीर में वे उपकार के लिए ही उत्पन्न होते हैं। विभिन्न जाति वाले पुरुषों में ये विविध रूपों में जीवित रहते हैं ॥८॥

और दूसरे अयोग्य (काम, क्रोध आदि से युक्त) पुरुष भी कालक्रमानुसार योग्यता (सामर्थ्य) को प्राप्त हो जाते हैं और अन्य योग्य भी समय के वशीभूत होने के कारण अयोग्य (असमर्थ) हो जाते हैं क्योंकि योग्यता काल के वशीभूत होती है ॥९॥

अभिलषित आहारादि द्वारा जो शरीर तृप्त किया जाता है, काल को जानकर उस प्रकार से भोगा गया ही शेष रहता है ॥१०॥

इसलिए तुम मेरे अभीष्ट इस (अपनी) पुत्री को मुझे दे दो। मेरे शरीर के लिये विपत्ति (मृत्यु) ही प्रतीत हो रही है ॥११॥

वैश्य बोला—

हम परतन्त्र हैं और तुम भी राजा (अपने पिता) के अधीन हो। इसलिए तुम को अपने पिता से अनुमति प्राप्त होने पर मैं (अपनी पुत्री) देता हूँ, तुम स्वीकार करो ॥१२॥

राजपुत्र ने कहा—

यद्यपि अन्य सभी कार्यों में गुरु के समीप रहने वाले लोगों को गुरुओं से पूछना चाहिये किन्तु इस प्रकार के (विवाहादि) अपने कार्यों में गुरुओं के आगे बात करना अच्छा नहीं है ॥१३॥

कहाँ तो काम कथा का आलाप और कहाँ उनका गुरुओं (माता-पिता) द्वारा सुनना दोनों परस्पर विरुद्ध है। इसलिये मनुष्य को (काम सम्बन्धी बातों के) अतिरिक्त विषयों में ही गुरुओ (माता पिता आदि) को पूछना चाहिए ॥१४॥

वैश्य उवाच—

एवमेतत् स्मरालापस्तवायं पृच्छ मा गुरुम्। अहं पृच्छामि नालापो मम कामकथाश्रयः ॥१५

मार्कण्डेय उवाच —

इत्युक्तः सोऽभवन्मौनी राजपुत्रः स चापि तत्। तत्पित्रे सर्वमाचष्ट राजपुत्रस्य यन्मतम् ॥१६
ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन् द्विजोत्तमान्। प्रवेश्य राजपुत्रं च यथाख्यानं न्यवेदयत् ॥१७
निवेद्य च ततः प्राह मुनीनेवं व्यवस्थिते। यत्कर्तव्यं तदादेष्टुमर्हन्ति द्विजसत्तमाः ॥१८

ऋषय ऊचुः—

राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्ततौ। तदस्तु धर्मं एवैष किन्तु न्यायक्रमेण सः ॥१९
मूर्धाभिषिक्ततनया पाणिग्राहोत्सवः पुरा। भवत्वनन्तरं चेयं तव भार्या भविष्यति ॥२०
एवं न दोषो भवति तथेमामुपभुञ्जतः। अन्यथाऽभ्येति जातिरुत्कृष्टा बालिका नयात् ॥२१

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्तस्तदपास्यैव वचस्तेषां महात्मनाम्। विनिष्क्रम्य गृहीत्वा तामुद्यतासिरथाब्रवीत् ॥२२
राक्षसेन विवाहेन मया वैश्यसुता हृता। यस्य सामर्थ्यमत्रास्ति स एतां मोचयत्विति ॥२३

वैश्य बोला—

ठीक है यह (बात) तुम्हारे लिए कामालाप (काम कथा) है तो तुम माता पिता से मत पूछो, किन्तु यदि मैं इस सम्बन्ध में पूछूं तो वह काम कथा नहीं कही जायेगी ॥१५॥

मार्कण्डेय बोले—

यह कहने पर वह राजपुत्र मौन हो गया और उस (कन्या) के पिता ने भी उस (राजपुत्र) के पिता से राजकुमार की इच्छा को निवेदेन कर दिया ॥१६॥

उसके बाद उसके पिता ने ऋचीक आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों को और राजकुमार को बुलाकर सम्पूर्ण वृत्तांत जैसा था वैसा निवेदन कर दिया ॥१७॥

निवेदन करके कहा—कि हे श्रेष्ठ मुनियों ! ऐसी स्थिति में जो करने योग्य हो, उसका आप आदेश दीजिए ॥१८॥

ऋषि बोले—

हे राजकुमार ! यदि तुम्हारा इस वैश्य कन्या से प्रेम हो गया है तो यह अधर्म नहीं है। किन्तु न्याय के अनुसार, पहले तुम क्षत्रिय कन्या के साथ पाणिग्रहण महोत्सव (विवाह) करो फिर यह वैश्य कन्या तुम्हारी भार्या हो जायेगी ॥१९–२०॥

इस प्रकार इस वैश्य कन्या का उपभोग करने पर दोष नहीं होगा, अन्यथा बालिका के हरण के कारण तुम्हारी उत्कृष्ट जाति सामने आयेगी (अर्थात् उसमे तुम्हें हीन माना जायेगा ॥२१॥

मार्कण्डेय बोले—

ऐसा कहने पर, उन महात्माओं के उन वचनों का तिरस्कार करके बाहर निकल कर, तलवार निकालते हुए उस (कन्या) को पकड़कर बोला—॥२२॥

मैंने राक्षस विवाह के द्वारा वैश्य कन्या का हरण कर लिया है। यहाँ पर जिसकी सामर्थ्य हो, वह इसे (मुझसे) छुड़ा लेवे ॥२३॥

ततः स वैश्यस्तां दृष्ट्वा गृहीतां तनयां द्रुतम् । त्राहीति पितरं तस्य प्रययौ शरणं द्विज ।।२४
ततस्तस्य पिता क्रुद्ध आदिदेश बलं महत् । हन्यतां हन्यतां दुष्टो नाभागो धर्मदूषकः ।।२५
ततस्तद्युयुधे सैन्यं तेन भूभृत्सुतेन वै । कृतास्त्रेण तदास्त्रेण तत्प्राचुर्येण पातितम् ।।२६
स श्रुत्वा निहतं सैन्यं राजपुत्रेण भूपतिः । स्वयमेव ययौ योद्धुं स्वसैन्यपरिवारितः ।।२७
ततो युद्धमभूत्तस्य भूभुंजः स्वसुतेन यत् । राजपुत्रेण शस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयितः पिता ।।२८
ततोऽन्तरिक्षादागत्य परिव्राट् स महामुनिः । प्रत्युवाच महीपालं विरमस्वेति संयुगात् ।।२९
त्वत्पुत्रस्य महाभाग विधर्मोऽयं महात्मनः । तवापि वैश्येन सह न युद्धं धर्मवन्नृप ।।३०
ब्राह्मण्या ब्राह्मणः पूर्वं कुर्वन्दारपरिग्रहम् । ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषु न हानिमुपगच्छति ।।३१
तथैव क्षत्रियसुतां क्षत्रियः पूर्वमुद्वहन् । इतरे च ततो राजंश्च्यवते न स्वधर्मतः ।।३२
पूर्वं वैश्यस्तथा वैश्यां पश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् । न हीयते वैश्यकुलादयं न्यायः क्रमोदितः ।।३३
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः सवर्णा पाणिसंग्रहम् । अकृत्वाऽन्यभवापाणेः पतन्ति नृप संग्रहात् ।।३४

हे द्विज ! (तब) उसके बाद (उस राजपुत्र द्वारा) पकड़ी हुई अपनी पुत्री को देखकर शीघ्र ही वह उसके पिता की शरण में गया (और बोला—) मुझे बचाइये, मुझे बचाइये ।।२४।।

तब उसके पिता ने क्रुद्ध होकर अपनी विशाल सेना को आदेश दिया। इस अधर्मी दुष्ट नाभाग को, 'मारो', 'मारो' ।।२५।।

तदनन्तर उस सेना का राजा के पुत्र के साथ युद्ध शुरू हो गया। किन्तु उसने अत्यधिक (बलशाली) अस्त्रों के प्रयोग से (उस सब सेना को) मार गिराया ।।२६।।

तब राजपुत्र के द्वारा सेना के पराभव को सुनकर वह राजा अपनी शेष सेना के साथ उससे युद्ध करने के लिए, स्वयं ही गया ।।२ ।।

तब उस राजा का अपने पुत्र के साथ युद्ध हुआ। राजपुत्र अस्त्र और शस्त्रों के प्रयोग द्वारा युद्ध में पिता से आगे निकल गया अर्थात् अपने पिता को उसने पराजित कर दिया ।।२८।।

तभी परिव्राट् महामुनि (नारद) अन्तरिक्ष से आकर राजा से बोले – अब आप युद्ध बन्द कीजिए ।।२९।।

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र का विधर्मी होना और हे महाभाग आपका भी वैश्य के साथ युद्ध (करना) धर्म संगत नहीं है ।।३०।।

ब्राह्मण यदि पहले ब्राह्मण स्त्री का पाणिग्रहण कर ले और उसके बाद वह ब्राह्मणेतर अन्य जाति की स्त्री के साथ विवाह करे तो कोई धर्म हानि नहीं है ।।३१।।

और उसी प्रकार क्षत्रिय भी यदि पहले क्षत्रिय कन्या को ग्रहण करे और उसके बाद दूसरे वर्ण की कन्या को (ग्रहण करे) तो हे राजन् ! उसको धर्मच्युत नहीं कहा जा सकता ।।३२।।

इसी प्रकार यदि वैश्य भी पहले वैश्य कन्या से और उसके बाद शूद्र कन्या से विवाह करे तो वह अपने वैश्य कुल से भ्रष्ट नहीं होता। यही (शास्त्रोच्चरित) विधान है ।। ३।।

और हे राजन् ! यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपनी जाति में विवाह न करके अन्य जाति में पाणिग्रहण करते हैं तो वे अपनी जाति से गिर जाते हैं ।।३४।।

यस्या यस्या हि हीनाया: कुरुते पाणिसंग्रहम् । अकृत्वा वर्णसंयोगं सोऽपि तद्वर्णभाग्भवेत् ॥३५
सोऽयं वैश्यत्वमापन्नस्तव पुत्र: सुमन्दधी: । नास्याधिकारो युद्धाय क्षत्रियेण त्वया सह ॥३६
वयमेतन्न जानीम: कारणं नृपनन्दन । यथा भविष्यतीदं च निवर्त्त रणकर्मत: ॥३७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे वंशानुचरिते नाभागचरित्रवर्णनं नाम दशाधिकशततमोऽध्याय: ।

जो व्यक्ति अपनी जाति में विवाह न करके जिस हीन (निम्न) जाति की कन्या के साथ विवाह करता है, वह पुरुष भी उसी जाति का हो जाता है ॥३५॥

इसलिए तुम्हारा यह मूर्ख पुत्र वैश्य बन गया है अत: अब इसका क्षत्रिय तुम्हारे साथ युद्ध करने का अधिकार नहीं है ॥३६॥

हे नृपनन्दन ! हम कारण तो नहीं जानते कि यह ऐसा होगा, लेकिन तुम इस युद्ध कर्म से विरत हो जाओ ॥३७।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में वंशानुचरित में नाभाग चरित वर्णन नामक एक सो दसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एकादशाधिकशततमोऽध्याय:

मार्कण्डेय उवाच—

निवृत्तोऽसौ ततो भूप: संग्रामात् स्वसुतेन वै । उपयेमे च तां वैश्यतनयां सोऽपि तत्सुत: ॥१
तत: स वैश्यतां प्राप्त: समुपेत्याह पार्थिवम् । भूपाल यन्मया कार्यं तत्समादिश्यतां मम ॥२

राजोवाच—

धर्माधिकरणे युक्ता बाभ्रव्याद्यास्तपस्विन: । यदस्य कर्मधर्माय तद्वदन्तु तथा चर ॥३

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्ते मुनयस्तस्य पाशुपाल्यं तथा कृषिम् । वाणिज्यं च परं धर्ममाचचक्षु: सभासद: ॥४

मार्कंडेण्य बोले—

तब वह राजा अपने पुत्र के साथ युद्ध से निवृत्त हो गया और उस पुत्र ने भी उस वैश्य कन्या के साथ विवाह कर लिया ॥१॥

तब वैश्यत्व को प्राप्त हुआ वह, राजा के पास आकर बोला—हे राजन् ! मेरा जो कर्तव्य हो, उसका मुझे आदेश दीजिए ॥२॥

राजा ने कहा—

बाभ्रव्य आदि जो तपस्वी धर्माधिकार में नियुक्त है, वे बतायें (उनसे अपने धर्म और कर्म के सम्बन्ध में पूछो जैसा वे कहें वैसा आचरण करो ॥३॥

मार्कण्डेय बोले—

तब उन सभासद (धर्माधिकारी) मुनियों ने उसके लिये पशुपालन, कृषि कर्म, और वाणिज्य कर्म ही परम धर्म बताया ॥४॥

तथैव चक्रे स सुतस्तस्य राज्ञो यथोदितम् । तैर्धर्मवादिभिर्धर्मच्युतस्य निजधर्मतः ।।५
तस्य पुत्रस्ततो जातो नाम्नाख्यातो भलन्दनः । स मात्रा प्रहितोऽगच्छद्गोपालो भव पुत्रक ।।६
मात्रा तथा नियुक्तोऽथ प्रणिपत्य स्वमातरम् । राजर्षिमगमन्नीपं हिमवत्पर्वताश्रयम् ।।७
तं समेत्य स जग्राह तस्य पादौ यथाविधि । प्रणिपत्याह चैवैनं राजर्षि स भलन्दनः ।।८

आदिष्टो भगवन् मात्रा गोपालस्त्वं भवेति वै ।
मया च पालनीया क्ष्मा तस्याः स्वीकरणं कथम् ।।९
मया हि गौः पालनीया सा यदा स्वीकृता भवेत् ।
आक्रान्ता बलवद्भिः सा दायादैः पृथिवी मम ।।१०

तां यथा प्राप्नुयां पृथ्वीं त्वत्प्रसादादहं विभो । तथादिश करिष्यामि तवाज्ञां प्रणतोऽस्मि ते ।।११

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स नीपो राजर्षिस्तस्मै निरवशेषतः । भलन्दाय ददौ ब्रह्मन्नस्त्रग्रामं महात्मने ।।१२
प्राप्तास्त्रविद्यः स ययौ पितृव्यतनयान् द्विज । वसुरातादिकान् पुत्रानादिष्टः स महात्मना ।।१३
अयाचत स राज्यार्धं पितृपैतामहोचितम् । ते चोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वं कथं भोक्ष्यसि मेदिनीम् ।।१४

और उस पुत्र ने भी वैसा ही किया जैसा उस राजा के उन धर्माधिकारियों ने अपने धर्म से गिरे हुए उस राजपुत्र को कहा था ।।५।।

उसके बाद उसे भलन्दन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । उसको माता ने आदेश दिया कि, हे पुत्र ! गोपाल हो जाओ ।।६।।

माता के द्वारा इस प्रकार कहने पर अपनी माता को प्रणाम करके वह भलन्दन) हिमालय में रहने वाले राजर्षि नीप के पास गया ।।७।।

उनके पास जाकर उस भलन्दन ने उनके चरणों की वन्दना की और राजर्षि को प्रणाम करके बोला ।।८।।

हे भगवन् ! माता ने मुझे अदेश दिया है कि 'जाओ गोपाल हो जाओ' इसलिए पृथ्वी पालन मेरा कर्तव्य है । अतः वह पृथ्वी किस प्रकार प्राप्त होगी ? ।।९।।

यदि मैं उनका पालन करता हूँ तब तो मुझे गो (पृथ्वी) का पालन करना चाहिए लेकिन वह मेरी पृथ्वी बलवान् कुटम्बियों से आक्रान्त है ।।१०।।

हे स्वामी ! आप ऐसी आज्ञा दीजिए, जिससे मैं आपकी कृपा से उस पृथ्वी को प्राप्त कर सकू । मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।।११।।

मार्कण्डेय ने कहा—

हे महात्मन् ! तब उन राजर्षि नीप ने भलन्दन को समस्त अस्त्रों की (शिक्षा) प्रदान की ।।१२।।

हे द्विज ! अस्त्र विद्या को प्राप्त करके और उन महात्मा के आदेश से वह वसुरात आदि पितृव्य पुत्रों के पास गया ।।१३।।

और उसने उनसे पितृ और पितामह का आधा राज्य माँगा । उन्होंने कहा—तुम तो वैश्य पुत्र हो, पृथ्वी का उपभोग कैसे करोगे ? ।।१४।।

ततस्तैर्युद्धमभवद् भलन्दनस्यात्मवंशजैः । बसुरातादिभिः क्रुद्धैः कृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः ।।१५
स जित्वा तानशेषांस्तु शस्त्रविक्षतसैनिकान् । जहार पृथिवीं तेषां धर्मयुद्धेन धर्मवित् ।।१६
स निर्जितारिः सकलां पृथ्वीं राज्यं तथा पितुः । निवेदयामास ततस्तत्पिता जगृहे न च ।।१७

नाभाग उवाच—

भलन्द राज्यमेतत्ते क्रियतां पूर्वजैः कृतम् ।।१८
अहं न कृतवान् राज्यं नासामर्थ्ययुतः पुरा ।।१९

कृत्वाऽप्रीतिं पितुरहं वैश्यकन्यापरिग्रहात् । न पुण्यलोकभाग्राजा यावदाभूतसंप्लवम् ।।२०
उल्लंघ्याज्ञां पुनस्तस्य पालयामि महीं यदि । नास्ति मोक्षस्ततो नूनं मम कल्पशतैरपि ।।२१
न चापि युक्तं त्वद्बाहुनिर्जितं मम मानिनः । राज्यं भोक्तुमनीहस्य दुर्बलस्येव कस्यचित् ।।२२
राज्यं कुरु स्वयं पुत्र दायादेभ्यो विमुञ्च वा । ममाज्ञापालनं शस्तं पितुर्न क्षितिपालनम् ।।२३

मार्कण्डेय उवाच—

ततः प्रहस्य तद्भार्या सुप्रभा नाम भामिनी । प्रत्युवाच पतिं भूप गृह्यतां राज्यमूर्जितम् ।।२४

तब उस भलन्दन का अपने क्रुद्ध वंशज वसुरातादि के साथ अस्त्रों से युद्ध हुआ ।।१५।।

तब धर्मविद् उसने धर्म युद्ध के द्वारा उन सबको जीतकर और सैनिकों को शस्त्रों से घायल करके पृथ्वी को छीन लिया ।।१६।।

फिर सम्पूर्ण पृथ्वी और राज्य को जीतने वाले उसने पिता से निवेदन किया। लेकिन उसके पिता ने उस (राज्य) को ग्रहण नहीं किया और पत्नी के सामने ही पुत्र से बोला—।।१७।।

नाभाग बोला—

हे भलन्द ! यह राज्य तुम्हारा है। पूर्वजों द्वारा शासित इस राज्य का शासन करो ।।१८।।

मैंने राज्य नहीं किया। मैं सामर्थ्यहीन हूँ यह बात नहीं है, अपितु मैंने वैश्यत्व प्राप्त करने और उसी प्रकार पिता की आज्ञा के कारण ही राज्य नहीं किया है ।।१९।।

और वैश्य कन्या के साथपाणि ग्रहण के कारण पिता को अप्रसन्न करके मैं प्रलय काल पर्यन्त पुण्य लोकों का भागी नहीं होऊंगा ।।२०।।

लेकिन उन (पिता) की आज्ञा का उल्लंघन करके यदि मैं फिर पृथ्वी का पालन करता हूँ तो मेरा सौ कल्पों तक भी निश्चय ही मोक्ष न हो सकेगा ।।२१।।

वैसे भी मुझ स्वाभिमानी के लिए, तुम्हारी भुजाओं द्वारा जीते गये राज्य का उपभोग करना, किसी दुर्बल के विषय भोग के समान उचित नहीं है ।।२२।।

इसलिए हे पुत्र ! तुम स्वयं राज्य करो अथवा उसे कुटुम्बियों को ही सौंप दो। मेरे लिए पिता की आज्ञा का पालन प्रशंसनीय है, पृथ्वी का नहीं ।।२३।।

मार्कण्डेय बोले—

तब उसकी सुप्रभा नाम की पत्नी हंसकर पति से बोली—हे राजन् ! आप उत्तम राज्य को ग्रहण कीजिए ।।२४।।

न त्वं वैश्यो न चैवाहं जाता वैश्यकुले नृप । क्षत्रियस्त्वं तथैवाहं क्षत्रियाणां कुलोद्भवा ॥२५
पूर्वमासीन्महीपाल: सुदेव इति विश्रुत:। तस्याभूच्च सखा राज्ञो धूम्राश्वस्य सुतो नल: ॥२६
स तेन सख्या सहितो जगामाम्रवनं वनम् । पत्नीभि: स समं रन्तुं माधवे मासि पार्थिव ॥२७
तत: पानान्यनेकानि भक्ष्याणि बुभुजे तदा । भार्याभि: सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वित: ॥२८
तत: पुष्करिणी तीरे ददर्शातिमनोरमाम् । पत्नीं च्यवनपुत्रस्य प्रमते: पार्थिवात्मजाम् ॥२९
सखा तस्य नलो मत्तो जगृहे तां च दुर्मति: । पश्यतस्तस्य राज्ञश्च त्रात त्रातेति वादिनीम् ॥३०
आक्रन्दितं निशम्यैव स तस्या: प्रमति: पति । आजगाम त्वरायुक्त: किमेतदिति वै वदन् ॥३१
ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम् । गृहीतां च तथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना ॥३२
तत: सुदेवं प्रमति: प्राहायं शास्यतामिति । त्वं च शास्ता भवद्राज्ये दुष्टश्चायं नलो नृप ॥३३

मार्कण्डेय उवाच—

तस्यार्तस्य वच: श्रुत्वा सुदेवो नलगौरवात् । प्राह वैश्योऽस्मि गच्छान्यं क्षत्रियं त्राणकारणात् ॥३४
तत: स प्रमति: क्रुद्धस्तेजसा निर्दहन्निव । प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ॥३५

हे नृप ! न तो आप वैश्य हैं और न ही मैं वैश्य कुल में उत्पन्न हुई हूँ । जिस प्रकार आप क्षत्रिय हैं, उसी प्रकार मैं भी क्षत्रीय कुल में उत्पन्न हुई हूँ ॥२५॥

पूर्वकाल में सुदेव नाम से विख्यात राजा हुये, राजा धूमाश्व के पुत्र नल उनके मित्र थे ॥२६॥

(एक बार) वह राजा बसन्त काल में अपनी पत्नियों के साथ विहार करने के लिए, मित्र के सहित आम्र वन में गया ॥२७॥

तब (वहां पर) उसने उन पत्नियों और मित्र के साथ अनेक प्रकार के पेय और भक्ष्य पदार्थों का उपभोग किया ॥२८॥

तब पुष्कारिणी के तट पर (उन्होंने) च्यवन पुत्र प्रमति की अत्यन्त सुन्दर पत्नी (किसी) राजपुत्री को देखा ॥२९॥

तो (राजा) के मतवाले और दुर्बुद्धि नल ने उस राजा के देखते-देखते, बचाओ-बचाओ इस प्रकार कहती हुई, उस रमणी को पकड़ लिया ॥३०॥

आक्रन्दन सुनकर उसका पति प्रमति 'क्या बात है' यह कहते हुये अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक आ गया ॥३१॥

(वहां आकर) उसने दुरात्मा नल के द्वारा पकड़ी हुई पत्नी और वहां पर स्थित राजा सुदेव को देखा ॥३२॥

तब प्रमति ने राजा सुदेव से कहा कि आप इसको रोकिए (इसे दण्डित कीजिये) क्योंकि आप ही यहाँ के शासक हैं और आपके राज्य में, हे राजन् हैं यह दुष्ट नल दुराचरण कर रहा है ॥३३॥

मार्कण्डेय बोले—

उस दुखी के वचनों को सुनकर नल के सम्मान के कारण राजा सुदेव ने कहा—मैं तो वैश्य हूँ, इस लिए रक्षा के लिए किसी अन्य क्षत्रिय के पास जाओ' ॥३४॥

तब क्रोध से मानो जलते हुए, क्रुद्ध उस प्रमति ने, 'मैं वैश्य हूँ' इस प्रकार कहते हुये उस राजा से कहा—॥३५॥

प्रमतिरुवाच —

एवमस्तु भवान् वैश्य: क्षत्रिय: क्षतरक्षणात् । क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रं नार्त्तशब्दो भवेदिति ।।
स त्वं न क्षत्रियो भावी वैश्य एव कुलाधम: ।।३६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे नाभागचरितवर्णनं नाम एकादशाधिकशततमोऽध्याय: ।

प्रमति बोला —

'ऐसा ही हो', तुम वस्तुतः वैश्य हो जाओ । पीडित की रक्षा करने के कारण क्षत्रीय, 'क्षत्रिय' होता है । क्षत्रिय के द्वारा इसलिये शस्त्र धारण किया जाता है कि किसी दु:खी व्यक्ति का आर्त शब्द (आर्तनाद) न हो इसलिए तुम क्षत्रिय नहीं हो । तुम कुलाधम वैश्य ही हो जाओ ॥३६॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में नाभाग चरित्र वर्णन नामक एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

द्वादशाधिकशततमोऽध्याय:

मार्कण्डेय उवाच —

तस्मै दत्त्वा तत: शापं नलं क्रुद्धोऽब्रवीद् द्विज । प्रमतिर्भार्गव: कोपात् त्रैलोक्यं निर्दहन्निव ।।१
मदोन्मत्तो यतो भार्यां भवानत्र ममाश्रमे । बलाद् गृह्णाति भस्म त्वं तस्माद् व्रजतु मा चिरम् ।।२
तेनोदाहृतमात्रे च वाक्ये तस्मिंस्तदानल: । देहजेनाग्निना सद्यो भस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ।।३
दृष्ट्वा प्रभावं तं तस्य सुदेवो विमदस्तत: । प्रणामनम्र: प्राहेदं क्षम्यतां क्षम्यतामिति ।।४
यदुक्तवांस्त्वां भगवन् सुरापानमदाकुलम् । तत्क्षम्यतां प्रसीद त्वं शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ।।५

मार्कण्डेय बोले—

तब उस राजा को शाप देकर क्रुद्ध भार्गव वंशोउत्पन्न प्रमति ने क्रोध से मानो तीनों लोकों को जलते हुए नल से कहा—॥१॥

क्योंकि मेरे आश्रम में मदोन्मत्त तुमने मेरी पत्नी को बलपूर्वक पकड़ा है, इसलिये तुम तुरन्त भस्म हो जाओ ॥२॥

तब उसके मुख से शब्द निकलते ही वह नल अपने शरीर से उत्पन्न हुई अग्नि के द्वारा शीघ्र ही भस्म का समूह मात्र बन गया ॥३॥

उस (प्रमति) के उस प्रभाव को देखकर मदरहित सुदेव प्रणाम पूर्वक नम्रता से इस प्रकार बोला—(भगवान्) क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये ॥४॥

हे भगवन् ! शराब के पीने से मत हुए मैंने आप से जो कहा उसको क्षमा कीजिये । आप प्रसन्न होइये और इस शाप को लौटा लीजिये ॥५॥

एवं प्रसादितस्तेन प्रमतिः प्राह भार्गवः ।
गतकोपोऽनले दग्धे नावनीतेन (भावहीनेन) चेतसा ॥६
नान्यथा भावि तद्वाक्यं यन्मया समुदीरितम् । तथापि ते करिष्यामि प्रसन्नोऽनुग्रहं परम् ॥७
भविता वैश्यजातीयो भवान्नास्त्यत्र संशयः । भविता क्षत्रियो वैश्यस्तस्मिन्नेवाशु जन्मनि ॥८
ग्रहीष्यति बलात् कन्यां यदा ते क्षत्रसम्भवः । तदा त्वं क्षत्रियो वैश्यः स्वगृहीतो भविष्यसि ॥६
एवं स वैश्यो भूपाल सुदेवोऽस्मत् पिताऽभवत् । अहं च या महाभाग तत्सर्वं श्रूयतां त्वया ॥१०
सुरतो नाम राजर्षिः प्रागासीद् गन्धमादने । तपस्वीं नियताहारस्त्यक्त सङ्गो वनाश्रयः ॥११
ततः श्येनमुखभ्रष्टां दृष्ट्वैकां शारिकां भुवि । कृपाऽभूज्जनिता मूर्च्छा तथा तस्य महात्मनः ॥१२
ततो मूर्छावसानेऽहं तस्योत्पन्नाशरीरतः । स मां दृष्ट्वा च जग्राह स्निह्यमानेन चेतसा ॥१३
यस्मात् कृपाभिभूतस्य मम जातेयमात्मजा । तस्मात्कृपावती नाम्ना भविष्यत्याह स प्रभो ॥१४
ततोऽहमाश्रमे तस्य वर्धमाना दिवानिशम् । सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामि वनानि च ॥१५
ततो मुनेरगस्त्यस्य भ्रातागस्त्य इति श्रुतः । स चिन्वन्कानने वन्यं सखीभिः कोपितोऽशपत् ॥
यस्मान्मां वैश्य इत्याह भवती तेन ते शपे ॥१६

इस प्रकार उस (सुदेव) के द्वारा प्रसन्न किया और नल के जल जाने पर क्रोध के शान्त हो जाने से भार्गव प्रमति ने प्रसन्न होकर कहा—॥६॥

मैंने जो वाक्य कहे हैं वे अन्यथा नहीं हो सकते, फिर भी मैं प्रसन्न हूँ तुम पर अनुग्रह करूँगा ॥७॥

इसमें तनिक भी सशय नहीं है कि तुम वैश्य हो जाओगे। किन्तु शीघ्र ही तुम इसी जन्म मे वैश्य से क्षत्रिय हो जाओगे ॥८॥

जब कोई क्षत्रिय वंश में उत्पन्न व्यक्ति तुम्हारी कन्या को बलपूर्वक ग्रहण करेगा तब तुम पुनः वैश्य से क्षत्रिय ही हो जाओगे ॥६॥

इस प्रकार वह वैश्य राजा सुदेव मेरे पिता हुए और मैं जो हूँ, हे महाभाग ! उस सब को भी आप सुनिए ॥१०॥

पूर्व काल में गन्धमादन पर्वत पर नियत आहार वाले सभी प्रकार के भोगों को त्यागे हुए वनवासी महर्षि सुरत निवास करते थे ॥११॥

तब ही बाज के मुंह से पृथ्वी पर गिरी हुई एक सारिका को देखकर (उसके तड़पने से) कृपा अभिभूत होने से महात्मा मूर्छित हो गये ॥१२॥

उसके बाद मूर्छा टूटने पर मैं उनके शरीर से उत्पन्न हुई। तब स्नेह से आप्लावित चित्त से उन्होंने मुझे उठा लिया ॥१३॥

और उन्होंने कहा—क्योंकि कृपाविष्ट मुझसे यह पुत्री उत्पन्न हुई है, इसलिये इनका नाम कृपावती होगा ॥१४॥

तदन्तर उनके आश्रम में मैं प्रतिदिन बढ़ती हुई, समान आयु वाली सखियों के साथ वन में विचरण करने लगी ॥१५॥

तदन्तर मुनि अगस्त्य के भाई अगस्त्य नाम से सुने जाते हैं। एक बार वन में पुष्प चुनते हुये, सखियों द्वारा क्रुद्ध कर दिये जाने पर उन्होंने मुझे शाप दिया—क्योंकि तुमने मुझे वैश्य कहा है, इसलिए मैं तुमको शाप देता हूँ ॥१६॥

वैश्या भविष्यसीत्युक्ते प्रसाद्योक्तो मया मुनिः। नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम ॥
अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि ॥१७

ऋषिरुवाच —

दुष्टता दुष्टसंसर्गाददुष्टमपि गच्छति। सुराबिन्दुनिपातेन पञ्चगव्यघटो यथा ॥१८
प्रणिपत्य ह्यनिष्टोऽपि यत्त्वयाहं प्रसादितः। तस्मादनुग्रहं बाले शृणुष्व च करोम्यहम् ॥१९
वैश्ययोनौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि। राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥२०
ततोभूयः क्षत्रजातिं प्राप्ता त्वं पतिना सह। दिव्यानवाप्स्यसे भोगान् गच्छ भीतिरपैतु ते ॥२१
एवं शप्तास्मि राजेन्द्र तेन पूर्वं महर्षिणा। पिता च मे पूर्वमेवं शप्तः प्रमतिनाऽभवत् ॥२२
एवं वैश्यो न राजंस्त्वं नं च वैश्यः पिता मम।
न त्वं हि मय्यदुष्टायामदुष्टो दुष्यसे कथम् ॥२३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे नाभागस्य वैश्यजातित्वनिराकरणवर्णनं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः।

तुम वैश्या (वैश्य की स्त्री) हो जाओगी, मुनि के इस प्रकार कहने पर, उनको प्रसन्न करने के लिए मैंने मुनि से कहा—हे द्विजोत्तम ! मैंने तो आपके प्रति कोई अपराध नहीं किया है। दूसरे के किए गये अपराध के लिए आप मुझे शाप क्यों दे रहे हैं ॥१७॥

ऋषि बोले —

निर्दोष भी दुष्टों के संसर्ग से उसी प्रकार दूषित हो जाता है जैसे पञ्च गव्य से परिपूर्ण घट सुरा की एक बूंद गिरने से ही दूषित हो जाता है ॥१८॥

अनिष्टकारी होते हुये भी क्योंकि तुमने प्रणामपूर्वक मुझे प्रसन्न कर लिया है, इसलिए हे बाले ! सुनो मैं जो तुम पर अनुग्रह करता हूँ, उसे सुनो ॥१९॥

जब वैश्य योनि में उत्पन्न हुई तुम पुत्र को राज्य ग्रहण करने के लिए बोधित करोगी तब तुम अपनी जाति स्मरण को प्राप्त करोगी ॥२०॥

तब तुम फिर पति सहित क्षत्रिय जाति को प्राप्त हो कर दिव्य भोगों को प्राप्त करोगी। इसलिये अब तुम भय त्याग कर जाओ ॥२१॥

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार मैं पूर्व काल में उन महर्षि के द्वारा शप्त हुई और मेरे पिता तो पहले ही प्रमति के द्वारा शप्त हो चुके थे ॥२२॥

इस प्रकार हे राजन् ! न तो आप वैश्य हैं और न मेरे पिता ही वैश्य हैं। तब अदूषित मेरे ससर्ग के कारण अदूषित आप कैसे दूषित हो सकते हैं ॥२३॥

इस प्रकार श्रीमार्कंडेय महापुराण में नाभाग का वैश्य जाति से निराकरण वर्णन नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

इति तस्या वचः श्रुत्वा पुत्रस्य स च पार्थिवः । पुनः प्रोवाच धर्मज्ञस्तां पत्नीं तनयं तथा ।।१
यन्मया पितुरादेशात्त्यक्तं राज्यं न तत्पुनः । ग्रहीष्यामि वृथोक्तेन किमात्मा क्लिश्यते त्वया ।।२
अहं ते सम्प्रदास्यामि करं वैश्यव्रते स्थितः । भुङ्क्ष्व राज्यमशेषं त्वमिच्छया वा परित्यज ।।३
इत्युक्तः स तदा पित्रा राजपुत्रो भलन्दनः । चकार राज्यं धर्मेण तद्वद् दारपरिग्रहम् ।।४
अव्याहतं तस्य चक्रं पृथिव्यामभवद् द्विज । न चाधर्मे मनो भूपास्तस्य सर्वेऽभवन् वशे ।।५
तेनेष्टो विधिवद्यज्ञैः सम्यक् शास्ति वसुन्धराम् । स एवैकोऽभवद् भर्त्ता पृथिव्यामरिशासनः ।।६
अजायत सुतस्तस्य वत्सप्रीतिस्तु नामतः । पितातिशयितो येन गुणौघेन महात्मना ।।७
तस्यापि भार्या सौनन्दा विदूरथसुताऽभवत् । प्रतिव्रता महाभागा सा प्राप्ता तेन शौर्यतः ।।
हत्वा पुरन्दररिपुं कुजृम्भं दितिजेश्वरम् ।।८

क्रौष्टुकिरुवाच —

भगवंस्तेन सम्प्राप्ता कुजृम्भनिधनात् कथम् । एतदाख्यानमाख्याहि प्रसन्नेनान्तरात्मना ।।९

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार उस (पत्नी) के और पुत्र के वचनों को सुनकर वह धर्मज्ञ राजा पत्नी और पुत्र से फिर बोला—।।१।।

जिस राज्य को मैंने पिता के आदेश से त्याग दिया उसको मैं पुनः ग्रहण नहीं करूंगा । व्यर्थ भाषण से तुम अपनी आत्मा को क्यों पीड़ित कर रहे हो ।।२।।

वैश्य वृत्त में स्थित मैं तुमको कर दूंगा इसलिए तुम्हीं अब इस सम्पूर्ण संसार का उपभोग करो अथवा चाहो तो त्याग भी सकते हो ।।३।।

तब पिता के ऐसा कहने पर राजपुत्र भलन्द ने धर्मपूर्वक राज्य किया और (उचित समय में) दारपरिग्रह अर्थात् विवाह किया ।।४।।

हे द्विज ! उसका रथचक्र अव्याहत गति से पृथ्वी पर घूमता था । राजा का मन कभी अधर्म की ओर प्रवृत्त नहीं हुआ, इसलिए सभी राजा उसके वश में हो गये ।।५।।

भली प्रकार पृथ्वी पर शासन करते हुए उसने विधिवत् यज्ञों का आयोजन किया और शत्रुओं का नियन्त्रण करने वाला, वह अकेला ही पृथ्वी का स्वामी हुआ ।।६।।

वत्सप्रीति नाम का उसका एक पुत्र हुआ, जिसने गुण समूह से पिता को भी पीछे छोड़ दिया ।।७।।

(राजा) विदूरथ की पुत्री सौनन्दा उसकी पत्नी बनी । भाग्यशालिनी उस पतिव्रता को उसने इन्द्र के शत्रु दैत्यराज कुजृंभ को मारकर शौर्य से प्राप्त किया था ।।८।।

क्रौष्टुकि बोले—

हे भगवन् ! उसने उसको कुजृंभ के निधन द्वारा कैसे प्राप्त किया ? प्रसन्न मन से आप इस आख्यान को मुझसे कहिये ।।९।।

मार्कण्डेय उवाच—

विदूरथो नाम नृपः ख्यातकीर्तिरभूद् भुवि । तस्य पुत्रद्वयं जातं सुनीतिः सुमतिस्तथा ।।१०
एकदा तु वनं यातो मृगयां स विदूरथः । ददर्श गर्तं सुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ।।११
तं दृष्ट्वा चिन्तयामास किमेतदिति भैरवम् । पातालविवरं मन्ये नैतद् भूमेश्चिरन्तनम् ।।१२
चिन्तयन्निति तत्राऽसौ ददर्श विजने वने । ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमुपागतम् ।।१३
स तं पप्रच्छ च नृपः किमेतदिति विस्मितः । अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितान्तर्गतोदरम् ।।१४

ऋषिरुवाच—

किन्न वेत्सि महीपाल वागर्थस्त्वं हि मे मतः । ज्ञेयं सर्वं नरेन्द्रेण वर्तते यन्महीतले ।।१५
दानवः सुमहावीर्यो वसत्युग्रो रसातले । स जृम्भयति यत्पृथ्वीं कुजृम्भः प्रोच्यते ततः ।।१६
क्रियते तेन यत्किञ्चिद्रत्नभूतं महीतले । त्रिदिवे वा नरपते तं कथं वेत्ति नो भवान् ।।१७
सुनन्दंनाम मुशलं त्वष्ट्रा यन्निर्मितं पुरा । तज्जहार स दुष्टात्मा तेन हन्ति रणे रिपून् ।।१८
पातालान्तर्गतस्तेन भिनत्ति वसुधामिमाम् । ततोऽसुराणां सर्वेषां द्वाराणि कुरुतेऽसुरः ।।१९

मार्कण्डेय ने कहा—

पृथ्वी पर विख्यात कीर्ति वाला विदूरथ नाम का राजा हुआ। उसके सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।।१०।।

वह विदूरथ एक बार वन में शिकार के लिए गया। वहाँ उसने ऊपर को निकले भूमि के मुख के समान विशाल गड्ढा देखा ।।११।।

उसे देखकर उसने सोचा—'यह अति भयंकर क्या है'? यह तो मुझे पाताल विवर लगता है ।।१२।।

इस प्रकार सोचते हुए उसने उस निर्जन वन में आये हुए सुव्रत नामक तपस्वी ब्राह्मण को देखा ।।१३।।

विस्मित हुए उस राजा ने पृथ्वी के भीतर हुए अत्यन्त गहरे इस गड्ढे को दिखाते हुए उन तपस्वी से 'यह क्या है' इस प्रकार पूछा ।।१४।।

ऋषि बोले—

हे महीपाल ! क्या तुम इसे नहीं जानते ? मेरे विचार में तो तुम प्रत्येक बात को जानते थे, क्योंकि राजा को जो भी पृथ्वी पर है, उस सबको जानना चाहिये ? ।।१५।।

रसातल में बहुत भयंकर और महाशक्तिशाली दानव रहता है, क्योंकि जब वह जम्भाई लेता है तो सम्पूर्ण पृथ्वी को कम्पित करता रहता है, इसलिए उसको 'कुजृम्भ' कहा जाता है ।।१६।।

हे नरपति ! इस महीतल और स्वर्ग में जो कुछ अति महत्वपूर्ण इसके द्वारा किया जाता है, उसको आप कैसे नहीं जानते हैं ? ।।१७।।

पूर्व काल में त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने जो सुनन्द नाम का मूसल बनाया था। उस दुष्टात्मा ने उसका हरण कर लिया है, और उसी से युद्ध में शत्रुओं को मारता है ।।१८।।

पाताल के भीतर स्थित वह उसी मूसल से इस पृथ्वी को फोड़ता रहता है। उसी से यह असुर अन्य सभी असुरों के लिए द्वारों का निर्माण करता रहता है ।।१९।।

तेन भिन्नात्र वसुधा सुनन्दमुशलेन तु । भोक्ष्यते वसुधामेतां तमजित्वा कथं भवान् ॥२०
यज्ञान्विध्वंसयत्युग्रो देवानामुपरोधकः । आप्याययति दैतेयान् स बली मुशलायुधः ॥२१
यद्यरिं घातयस्येनं पातालन्तरगोचरम् । ततः समस्तवसुधापतिस्त्वं परमेश्वरः ॥२२
मुशलं तस्य बलिनः सौनन्दं प्रोच्यते जनैः । तथा बलाबलञ्चैव तं वदन्ति विचक्षणाः ॥२३
तत्तु निर्वीर्यतां याति संस्पृष्टं योषिता नृपः । तस्मिन्दिने द्वितीयेऽह्नि वीर्यवत्तदुदीर्यते ॥२४
न स वेत्ति दुराचारः प्रभावं मुशलस्य तम् । योषित्कराग्रसंस्पर्शे दोषं वीर्यविशातनम् ॥२५
एव तस्य बलं भूप दानवस्य दुरात्मनः । मुशलस्य च ते प्रोक्तं यद्युक्तं तत्समाचर ॥२६
आसन्नमेतद् भवतः पुरस्य पृथिवीपते । कृतं तेन महारन्ध्रं निश्चिन्तः किं भवान् वृथा ॥२७
इत्युक्त्वा तु गते तस्मिन् पुरं गत्वा महीपतिः । मन्त्रयामास मन्त्रज्ञैः पुरमध्ये तु मन्त्रिभिः ॥२८
यथाश्रुतमशेषं तत्कथयामास मन्त्रिणाम् । मुशलस्य प्रभावञ्च वीर्यशातनमेव च ॥२९
तं मन्त्रं क्रियमाणन्तु मन्त्रिभिस्तेन भूभृता । तत्पार्श्ववर्तिनी कन्या शुश्रावाथ मुदावती ॥३०

उस सुनन्द नामक मूसल से उसने इस पृथ्वी को विदीर्ण किया है। उसको बिना जीते आप किस प्रकार इस पृथ्वी का भोग कर सकते हैं ? ॥२०॥

मूसलायुध वाला वह शक्तिशाली दैत्य बड़ा भयंकर है। देवताओं को पीडित करने वाला वह यज्ञों का ध्वंश करता है और दैत्यों को संतुष्ट करता है ॥२१॥

यदि तुम पाताल के भीतर रहने वाले इस शत्रु का वध करोगे तभी तुम, हे राजन् ! समस्त पृथ्वी के स्वामी बन सकोगे ॥२२॥

उस शक्तिशाली के मूसल को मनुष्य सौनन्द कहते हैं एवं उसके बल और अबल के सम्बन्ध में विद्वानों का कथन है कि ॥२३॥

जिस दिन वह मूसल स्त्री के हाथ से छू लिया जाए उस दिन वह शक्तिहीन हो जाता है। लेकिन दूसरे दिन उसकी शक्ति पुनः चढ़ जाती है ॥२४॥

किन्तु वह दुराचारी मूसल के उस प्रभाव को नहीं जानता है और यह भी नहीं जानता है कि स्त्री के कराग्र के स्पर्श से वह शक्तिहीन हो जाता है ॥२५॥

हे राजन् ! उस दुरात्मा दानव के मूसल के बल को मैंने तुमसे कह दिया है, अब आप जो उचित हो कीजिए ॥२६॥

हे पृथ्वीपते ! यह विवर उसने तुम्हारे नगर के समीप ही बनाया है। इस विषय में आपका निश्चिन्त होना व्यर्थ है ॥२७॥

इस प्रकार कहकर उसके चले जाने पर नगर में जाकर उस राजा ने अपने नगर के विद्वान् मन्त्रियों से विचार विमर्श किया ॥२८॥

और मूसल का प्रभाव और शक्तिहीनता की बात को जैसा सुना था वह सब उसने मन्त्रियों से कह दिया ॥२९॥

मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करते हुए उस राजा की बात को पास में स्थित कन्या मुदावती ने सुन लिया ॥३०॥

ततः कतिपयाहेतु तां कन्यां वयसान्विताम् । जहारोपवनाद् दैत्यः कुजृम्भः ससखीवृताम् ।।३१
तच्छ्रुत्वा स महीपालः क्रोधपर्याकुलेक्षणः । पुत्रावुवाच त्वरितं गच्छ तं वनकौविदौ ।।३२
निर्विन्ध्यायास्तटे गर्तस्तेन गत्वा रसातलम् । स हन्यतां योपहर्ता मुदावत्याः सुदुर्मतिः ।।३३

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्तौ तत्सुतौ प्राप्य तं गर्तं तत्पदानुगौ । युयुधाते कुजृम्भेण स्वसैन्येनातिकोपितौ ।।३४
ततः परिघनिस्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैः । बाणैश्चाविरतं युद्धं तेषामासीत्सुदारुणम् ।।३५
ततो मायाबलवता तेन दैत्येन तावुभौ । राजपुत्रौ रणे बद्धौ निहताशेषसैनिकौ ।।३६
तच्छ्रुत्वा स महीपालः प्राहेदं सर्वसैनिकान् । बद्धपुत्रः परामार्तिमुपेतो मुनिसत्तम ।।३७
यस्तं निहत्य दैतेयं मोचयिष्यति मे सुताम् । तस्याहं संप्रदास्यामि तामेवायतलोचनाम् ।।३८
इत्येवं घोषयाञ्चक्रे स राजा स्वपुरे तदा । निराशः पुत्रतनयाबन्धमोक्षाय वै मुने ।।३९
ततः शुश्राव वत्सप्रीर्भलन्दन सुतोहि तत् । आघोष्यमाणं बलवान् कृतास्त्रः शौर्यसंयुतः ।।४०

उसके बाद किसी कारण वह कन्या सखियों के साथ (वन में गयी) वहाँ पर सखियों सहित उसका कुजृम्भ दैत्य ने हरण कर लिया ।।३१।।

इस (बात) को सुनकर क्रोध से व्याकुल नेत्रों वाले राजा ने अपने दोनों पुत्रों से कहा—उस प्रदेश का हाल जानने वाले तुम दोनों शीघ्र उस वन में जाओ ।।३२।।

निर्विन्ध्या नदी के तट पर जो गड्ढा है उससे पाताल में जाकर मुदावती का अपहरण करने वाले उस दुर्मति दैत्य का वध कर दो ।।३३।।

मार्कण्डेय ने कहा—

तब उनके पैरों का अनुसरण करते हुए उन दोनों पुत्रों ने उस गड्ढे को प्राप्त करके अत्यन्त क्रुद्ध होते हुए उन दोनों की सेना और कुजृम्भ राक्षस की सेना का घोर युद्ध हुआ ।।३४।।

परिघ, निस्त्रिंश, शक्ति, शूल, फरसा, बाण आदि आयुधों से निरन्तर होता हुआ उनका युद्ध अत्यन्त भयंकर था ।।३५।।

तब उस दैत्य ने माया के बल से युद्ध में सभी सैनिकों को मार डाला और उन दोनों राजपुत्रों को युद्ध में बाँध लिया ।।३६।।

हे मुने श्रेष्ठ ! पुत्रों को बंधा हुआ सुनकर राजा अत्यधिक दुःखी हुआ और सभी सैनिकों से इस प्रकार बोला—।।३७।।

जो भी उस दैत्य को मारकर मेरी पुत्री को छुड़ायेगा, उसको ही मैं उस विशाल नेत्रों वाली अपनी पुत्री दे दूंगा (उसी के साथ विवाह कर दूंगा) ।।३८।।

तब अपने पुत्रों और पुत्री को बन्धन से छुड़ाने के लिये निराश हुये उस राजा ने अपने नगर में इस प्रकार घोषणा करायी ।।३९।।

उसके बाद बलवान् पराक्रमी शस्त्र धारण करने वाले, भलन्दन के पुत्र वत्सप्रीति ने भी उनको घोषणा करते हुए सुना ।।४०।।

स चागम्याभिवाद्यैनं प्राह पार्थिवसत्तमम् । विनयावनतो भूत्वा पितुर्मित्रमनुत्तमम् ।।४१
आज्ञापयाशु मामेव तनयौ मोचयामि ते । तवैव तेजसा हत्वा तं दैत्यं तनयां च ते ।।४२

मार्कण्डेय उवाच—

स तं मुदा परिष्वज्य प्रियसख्युरथात्मजम् । गम्यतामिति संसिद्धयै वत्सेत्याह स पार्थिवः ।।४३
स्थाने स्थास्यति मे वत्सो यद्येवं कुरुते विधिम् । वत्सैतत् क्रियतामाशु यद्युत्साहि मनस्तव ।।४४

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स खड्गः सधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् । जगाम वीरः पातालं तेन गर्तेन सत्वरः ।।४५
ततो ज्यास्वनमत्युग्रं स चक्रे पार्थिवात्मजः । येन पातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ।।४६
ततो ज्यास्वनमाकर्ण्य कुजृम्भी दानवेश्वरः । आजगामातिकोपेन स्वसैन्यपरिवारितः ।।४७
ततोयुद्धमभूत्तस्य तेन पार्थिवसूनुना । ससैन्यस्य ससैन्येन बलिनो बलशालिना ।।४८
दिनानि त्रीणि स यदा योधितस्तेन दानवः । ततः कोपपरीतात्मा मुशलायाभ्यधावत ।।४९
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैः पूज्यमानः स तिष्ठति । अन्तःपुरे महाभाग प्रजापतिविनिर्मितः ।।५०

इस घोषणा को सुनकर वह नियमपुर्वक अवनत होकर अपने पिता के प्रिय मित्र (विदूरथ) के पास जाकर राजा से बोले ।।४१।।

हे महाराज ! आप मुझे आज्ञा दीजिये मैं आपके प्रताप से दैत्य को मारकर आपके पुत्रों और पुत्री को छुड़ाता हूँ ।।४२।।

मार्कण्डेय बोले—

तब अपने प्रिय मित्र के पुत्र का प्रसन्नतापूर्वक आलिंगन करके उस राजा ने कहा— हे वत्स ! कार्य की सिद्धि के लिये तुम जाओ ।।४३।।

हे वत्स ! यदि तुमने इस कार्य को विधिपूर्वक पूर्ण कर लिया तो तुम ही मेरे स्थान पर बैठोगे। इसलिए हे वत्स ! यदि तुम्हारे मन में इस कार्य के लिए उत्साह है, तो इसे शीघ्र करो ।।४४।।

मार्कण्डेय ने कहा—

तब ख़ड्ग, धनुष, गोधा और अंगुलित्राण आदि आयुधों से युक्त वह वीर वत्सप्रीति शीघ्र ही उस गड्ढे से पाताल में पहुँचा ।।४५।।

वहाँ पहुँचने के बाद उस राजपुत्र ने अत्यन्त भयंकर धनुष की टंकार की, जिसकी ध्वनि से सम्पूर्ण पाताल भर गया ।।४६।।

तब धनुष की टंकार को सुनकर दैत्यराज कुजृम्भ अपनी सेना सहित अत्यन्त क्रोध से भरकर आया ।।४७।।

तदन्तर सेना सहित उसका उस बलवान् राजपुत्र (वत्सप्रीति) के साथ भयंकर युद्ध हुआ ।।४८।।

जब तीन दिनों तक उसके साथ दानव का युद्ध हुआ तो क्रोध में भरकर वह दानव उस मूसल को लेने के लिए दौड़ा ।।४९।।

हे महाभाग ! प्रजापति त्वष्ट्रा द्वारा बनाया हुआ वह (मूसल) माला, धूप और गन्ध से पूजा गया अन्तःपुर में रखा हुआ था ।।५०।।

ततो विज्ञातमुशलप्रभावा सा मुदावती । पस्पर्श मुशलश्रेष्ठमतिनम्रशिरोधरा ।।५१
पुनर्यावत् स गृह्णाति मुशलं तं महासुरः । तावत्सा वन्दनव्याजात् पस्पर्शानेकशः शुभा ।।५२
ततः स गत्वा युयुधे मुशलेनासुरेश्वरः । व्यर्था मुशलपातास्ते संजग्मुस्तेषु शत्रुषु ।।५३
परमास्त्रे तु निर्वीर्ये सौनन्दे मुशले मुने । अस्त्रैश्शस्त्रैश्च दैतेयः सोऽयुध्यत रणेऽरिणा ।।५४
शस्त्रास्त्रैर्न समस्तस्य राजपुत्रस्य सोऽसुरः। मुशलेन बलं तस्य तच्च तन्व्या निराकृतम् ।।५५

ततः पराजित्य स भूपसूनुरस्त्राणि शस्त्राणि च दानवस्य ।
चकार सद्यो विरथं ततश्च स चर्मखड्गः पुनरप्यधावत् ।।५६
तमापतन्तं रभसाऽभ्युदीर्णं विस्पष्टकोपं त्रिदशेन्द्रशत्रुम् ।
शस्त्रेण वह्नेर्भुवि राजपुत्रो जघान कालानलसप्रभेण ।।५७
स पावकास्त्रेण हृदि क्षतो भृशं तत्याज देहं त्रिदशारिरात्मनः ।
वभूव सद्यश्च महोरगाणां रसातलान्तेषु महानथोत्सवः ।।५८

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्महीपाल-सुतोपरि । जगुर्गन्धर्वपतयो देववाद्यानि सस्वनुः ।।५९
स चापि राजपुत्रस्तं हत्वा तौ नृपतेः सुतौ । मोचयामास तन्वङ्गीं ताञ्च कन्यां मुदावतीम् ।।६०

तब मूसल के प्रभाव को जानने वाली मुदावती ने उस मूसल श्रेष्ठ को विनीत-भाव से प्रणाम करके उसका स्पर्श कर दिया ।।५१।।

फिर भी जब तक उस महासुर ने उस मूसल को ग्रहण किया तब तक उस शुभा (मुदावती) ने वन्दना के बहाने उसका अनेक बार स्पर्श किया ।।५२।।

तब उस दैत्यराज ने जाकर उस मूसल से युद्ध किया । लेकिन उन शत्रुओं पर फेंका गया वह मूसल व्यर्थ हो गया ।।५३।।

हे मुने ! उस परमास्त्र सौनन्द मूसल के शक्तिहीन हो जाने पर उस दैत्य ने युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं के साथ अस्त्रों शस्त्रों से युद्ध किया ।।५४।।

शस्त्र और अस्त्रों में वह असुर उस राजपुत्र के समान नहीं था । उसका बल (भरोसा) मूसल पर था और उस (मूसल के बल) को उस कोमलांगी ने पहले ही दूर कर दिया था ।।५५।।

इसके बाद उस राजपुत्र ने दैत्य के समस्त शस्त्रास्त्रों को पराजित करके, उसे शीघ्र ही रथ से हीन कर दिया तो वह फिर तलवार और ढाल लेकर उसके पीछे दौड़ा ।।५६।।

देवताओं के राजा इन्द्र के शत्रु, जिसका क्रोध स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा था, ऐसे उस (दैत्य) को वेगपूर्वक आते हुये देखकर कालाग्नि से युक्त प्रभा वाले आग्नेयास्त्र से राजपुत्र ने भूमि पर मारा ।।५७।।

आग्नेयास्त्र से हृदय पर चोट खाकर देवताओं के शत्रु उस दैत्यराज के प्राणों ने शीघ्र ही अपने शरीर को छोड़ दिया । उसके बाद शीघ्र की पातालवासी नागों में महान् उत्सव मनाया गया ।।५८।।

और उसके बाद राजपुत्र (वत्सप्रीति) के ऊपर आकाश से पुष्प वृष्टि हुई तथा गन्धर्वों ने गान किया और देवताओं ने वाद्य बजाए ।।५९।।

और उस राजपुत्र ने भी उस दैत्य को मारकर उन दोनों राजपुत्रों और कृशाङ्गी मुदावती कन्या को भी छुड़ाया ।।६०।।

तच्चापि मुशलं तस्मिन् कुजृम्भे विनिपातिते। जग्राह नागाधिपतिरनन्तः शेषसंज्ञितः ॥६१
तस्याश्च परितुष्टोऽसौ शेषः सर्वोरगेश्वरः। मुदावत्यामुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ॥६२
सुनन्दमुशलस्पर्शं यच्चकार पुनः पुनः। योषित्-करतलस्पर्श-प्रभावज्ञाति-शोभना ॥६३
मुदावत्यास्ततो नाम नागराजस्तदाकरोत्। सुनन्दामिति सानन्दं सौनन्दगुणजं द्विज ॥६४
स चापि राजपुत्रस्तां भ्रातृभ्यां सहितां पितुः। समीपमानिनायाशु प्रणिपत्याह चैव तम् ॥६५
आनीतौ तनयौ तात तथैवेयं मुदावती। तवाज्ञया मयाऽन्यद्यत् कर्तव्यं तत्समादिश ॥६६

मार्कण्डेय उवाच —

ततः प्रहर्षसम्पूर्णहृदयः स महीमतिः। साधु साध्वित्यथाहोच्चैर्वत्स वत्सेति शोभनम् ॥६७

सभाजितोऽस्मि त्रिदशैर्वत्साहं कारणैस्त्रिभिः।
त्वं जामाता च यत्प्राप्तो यच्चारिर्विनिपातितः ॥६८

आगतान्यक्षतान्यत्र यच्चापत्यानि मे पुनः। तद्गृहाणाद्य शस्तेऽह्नि पाणिमस्या मयोदितम् ॥६९
त्वं राजपुत्र चार्वङ्ग्याः कन्याया दुहितुर्मम। मुदावत्या मुदायुक्तः सत्यवाक्यं कुरुष्व माम् ॥७०

तथा कुजृम्भ के मरने पर उस मूसल को अनन्त शेष नामक नागराज ने ग्रहण किया ॥६१॥

तपोधन नागराज मुदावती का अभिप्राय समझकर हर्षपूर्वक उससे सन्तुष्ट हुआ ॥६२॥

क्योंकि स्त्री के हाथ के स्पर्श को जानने वाली उस शोभना (सुन्दर मुख वाली) उसने सुनन्द मूसल को बार-बार स्पर्श किया था ॥६३॥

अतः हे द्विज ! आनन्दपूर्वक सौनन्द में गुणों (शक्ति) को उत्पन्न करने के कारण नागराज ने मुदावती का नाम सुनन्दा रख दिया ॥६४॥

और वह राजपुत्र भी भाइयों के सहित उसको पिता के समीप शीघ्र लाकर प्रणाम करके उनसे इस प्रकार बोले—॥६५॥

हे तात ! मैंने आपकी आज्ञा से आपके दोनों पुत्रों और इस मुदावती को ला दिया है । अब मेरे योग्य जो अन्य कार्य हो उसका आदेश दीजिए ॥६६॥

मार्कण्डेय बोले—

तब पूर्ण रूप से प्रसन्न हुए हृदय वाले उस राजा ने उच्च स्वर से 'ठीक है, ठीक है' और हे वत्स ! हे वत्स ! तुमने बहुत अच्छा कार्य किया है, इस प्रकार कहा ॥६७॥

हे वत्स ! मैं आज तीन कारणों से देवताओं की भी प्रशंसा का पात्र बन गया हूँ। प्रथम तो तुम मेरे जामाता हो गये, द्वितीय मेरा शत्रु मारा गया ॥६८॥

और फिर मेरी सन्तति बिना घायल हुई वापस आ गयी तो आज, जैसा मैंने कहा है, इसका पाणि ग्रहण करो ॥६९॥

हे राजपुत्र ! तुम सुन्दर अंगों वाली मेरी पुत्री मुदावती का प्रसन्नता युक्त होकर पाणि ग्रहण करो और मेरे वचन को सत्य करो ॥७०॥

राजपुत्र उवाच—

तातस्याज्ञा मयाकार्या यद्‌ब्रवीषि करोमि तत् । त्वमेव तात जानीषे नैवात्राधिकृता वयम् ।।७१

मार्कण्डेय उवाच—

ततस्तयोः स राजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकं क्रमम् । मुदावत्याश्च दुहितुर्भलन्दनसुतस्य वै ।।७२

ततः सह तया रेमे वत्सप्रीर्नवयौवनः । रमणीयेषु देशेषु प्रासादशिखरेषु च ।।७३

कालेन गच्छता वृद्धः पिता तस्य भलन्दनः । वनं जगाम वत्सप्रीः स बभूव महीपतिः ।।७४

इयाज यज्ञान् सततं प्रजाधर्मेण पालयन् । पुत्रवत् पाल्यमानास्तु प्रजास्तेन महात्मना ।।७५

ववृधुर्विषये तस्य न चाभूद्वर्णसंकरः । न दस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्च कस्यचित् ।।

नोपसर्गभयं चैव तस्मिञ्छासति भूपतौ ।।७६

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे भलन्दनवत्सप्रीचरितं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

राजपुत्र बोला—

तात (पिता) की प्रत्येक आज्ञा मेरे लिये पालनीय है, इसलिये जो आप कहते हैं मैं वह सब करता हूं । हे तात ! आप ही जानते हैं कि हमारा इस विषय में कोई अधिकार नहीं है ।।७१।।

मार्कण्डेय ने कहा—

उनके बाद उस राजेन्द्र ने उन दोनों (अपनी पुत्री मुदावती) और भलन्दन पुत्र (वत्सप्रीति) का विवाह संस्कार करांया ।।७२।।

तब नव यौवन सम्पन्न वत्सप्री ने उस (मुदावती) के साथ रमणीय प्रदेशों, प्रासादों और पर्वत शिखरों पर रमण किया ।।७३।।

समय बीतने पर जब उसके वृद्ध पिता भलन्दन ने वन में प्रस्थान किया तो वत्सप्री राजा हुआ ।।७४।।

तो उस महात्मा ने सतत् यज्ञों का यजन किया एवं प्रजा का धर्मपूर्वक, पुत्र के समान पालन किया ।।७५।।

उसके राज्य में सभी प्रकार की वृद्धि हुई, कोई वर्णसंकर नहीं हुआ । उसके पृथ्वी पर शासन करते हुए, हिंसक जन्तुओं, डाकुओं और दुष्टों तथा अन्य किसी प्रकार की आपत्ति का भय नहीं था ।।७६।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयमहापुराण में भलन्दन वत्सप्री चरित नामक एक सौ तेरहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्रा द्वादश जज्ञिरे । प्रांशुः प्रवीरः शूरश्च सुचक्रो विक्रमः क्रमः ॥१
बली बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुविक्रमः । सुनयश्च महाभागः सर्वे संग्रामजित्तमाः ॥२
तेषां ज्येष्ठो महावीर्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः । इतरे भृत्यवत्तस्य बभूवुर्वशवर्त्तिनः ॥३
तस्य यज्ञे द्विज त्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः । न्यूनवर्णविसृष्टैश्च सत्यनामा वसुन्धरा ॥४
सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् । योऽभूद्धनचयः कोशे तेन निष्पादितास्तु ये ॥५
क्रतवः शतं सहस्रास्ते तेषां संख्या न विद्यते । अयुताद्येन कोटीभिर्न च पद्मादिभिर्मुने ॥६
प्रजातिस्तस्य पुत्रोऽभूद्यस्य यज्ञे शतक्रतुः । अवाप्य तृप्तिमतुलां यज्ञभागैः सुरैः सह ॥७
दानवानां सुवीर्याणां जघान नवतीर्नव । बलं च बलिनां श्रेष्ठो जम्भं चासुरसत्तमम् ॥८
अन्यांश्च सुमहावीर्यानाजघानामरद्विषः । प्रजातेस्तनयाः पञ्चखनित्रप्रमुखा मुने ॥९
तेषां खनित्रो राजाऽभूत् प्रख्यातो निजविक्रमैः । स शान्तः सत्यवाक्छूरः सर्वप्राणिहिते रतः ॥१०

मार्कण्डेय ने कहा—

उस (वत्सप्री) के सुनन्दा से प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बली, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और सुनय आदि बारह पुत्र उत्पन्न हुये, ये सब अत्यन्त भाग्यशाली और संग्राम में विजय प्राप्त करने वाले थे ॥१-२॥

उनमें महापराक्रमी बड़ा पुत्र प्रांशु राजा हुआ और अन्य उसके वशवर्ती होते हुए भृत्य के समान रहने लगे ॥३॥

हे द्विज ! उनके अनेक प्रकार की द्रव्यराशियों के दान द्वारा यज्ञ करने पर निम्न जातियों ने भी धन त्याग नहीं किया, इसलिये वसुन्धरा सत्य नाम वाली हुई ॥४॥

प्रजा का औरस पुत्रों के समान भली प्रकार पालन करते हुए उसके कोष में जो धन संचय हुआ, उसी धन से अपने प्रशंसनीय असंख्य यज्ञों का अनुष्ठान किया । ये क्रतु सैंकड़ों, हजारों, लाखों, सम्पादित किए, कि हे मुने ! उनकी अयुत, करोड़, पद्म आदि संख्याओं द्वारा भी गणना सम्भव नहीं है ॥५-६॥

जिनके यज्ञ में यज्ञ भाग प्राप्त करने वाले देवताओं के सहित इन्द्र ने भाग प्राप्त करके परम तृप्ति प्राप्त की वह प्रजाति राजा प्रांशु का पुत्र था ॥७॥

बलवानों में श्रेष्ठ उस प्रजाति ने शक्तिशाली दानवों के बल (सेनाओं) को नष्ट कर दिया तथा असुर श्रेष्ठ जम्भ को भी मार दिया तथा अन्य देव शत्रु असुरों का वध किया । हे मुने ! प्रजाति के खनित्र आदि पांच पुत्र हुए ॥७-९॥

उनमें अपने पराक्रम से प्रसिद्ध खनित्र राजा हुआ । वह शान्त, सत्यवक्ता, शूरवीर और सब प्राणियों के हित में लगे रहने वाला था ॥१०॥

स्व धर्माभिरतो नित्यं वृद्धसेवी बहुश्रुतः । वाग्मी विनयसम्पन्नः कृतास्त्रोऽप्यविकत्थनः ।।११
सर्वलोकप्रियो नित्यमुवाचैतदहर्निशम् । नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि ।।१२
स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च । मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ।।१३
मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने । शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्परम् ।।१४
समृद्धिः सर्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्मणाम् ।
भो लोकाः सर्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः ।।१५
यथात्मनि यथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्वदा । तथा समस्तभूतेषु वर्त्तध्वं हितबुद्धयः ।।१६
एतद्वो हितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते । यत्करोत्यहितं किञ्चित् कस्यचिन्मूढमानसः ।।१७
तं समभ्येति तन्न्यूनं कर्तृगामिफलं यतः । इति मत्वा समस्तेषु भो लोका हितबुद्धयः ।।१८
सन्तु मा लौकिकं पापं लोकाः प्राप्स्यथ वै बुधाः ।
या मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ।।१९
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपिभद्राणि पश्यतु ।
एवं स्वरूपः पुत्रोऽभूत् खनित्रस्तस्य भूपतेः ।।२०

अपने धर्म में परायण, वृद्धजनों की सेवा करने वाला, बहुश्रुत, वाग्मी, विनय से युक्त, अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में कुशल होने पर भी आत्मश्लाघी नहीं था ।।११।।

और वह सर्वलोक प्रिय था। वह नित्यप्रति 'अहर्निश' ही यह कहता था—सभी प्राणी प्रसन्न रहें। जनशून्य में निवास करने वालों को भी स्नेह करें ।।१२।।

सभी प्राणियों का कल्याण हो और सभी आतंक रहित होवें। प्राणियों को न तो शारीरिक पीड़ा हो और न ही मानसिक पीड़ा हो ।।१३।।

सभी मनुष्यों में मित्रता की वृद्धि हो, ब्रह्मणों का कल्याण हो और परस्पर प्रेम होवे ।।१४।।

सभी वर्णों की समृद्धि होवे, सभी कर्मों की सिद्धि हो हे मनुष्यों ! तुम्हारी मंगलमयी मति सदैव सब प्राणियों के हित में लगी रहे ।।१५।।

जिस प्रकार तुम अपना और अपने पुत्रों का सदैव हित चाहते हो, उसी प्रकार समस्त प्राणियों के हित की कामना करो ।।१६।।

यह तुम्हारे लिये अत्यन्त हितकारी है कौन किसका अपराध करता, यदि कोई मूर्ख मनुष्य किसी का कुछ अहित करता है ।।१७।।

तो उससे उसी का अहित होता है, क्योंकि कर्म के फल को भोगने वाला ही कर्ता होता है। यह मान कर हे मनुष्यों ! सभी प्राणियों के हित में अपनी बुद्धि रखो ।।१८।।

हे ज्ञानियों ! लौकिक पापों में प्रवृत्त मत हो, इसी से तुम सबको निश्चय ही (पुण्य) लोकों की प्राप्ति होगी। आज जो मुझसे स्नेह करते हैं, उसका इस पृथ्वी पर सदैव कल्याण हो ।।१९।।

और इस लोक में जो मनुष्य मुझसे द्वेष करते हैं उनका भी कल्याण हो। उस राजा का पुत्र खनित्र इस प्रकार के स्वरूप वाला था ।।२०।।

समस्तगुणसम्पन्न श्रीमानब्जदलेक्षणः । तेन ते भ्रातरः प्रीत्या पृथग्राज्येषु योजिताः ॥२१
स्वयं च पृथिवीमेतां बुभुजे सागराम्बराम् । प्राच्यां तेन कृतः शौरिर्दक्षिणस्यामुदावसु ॥२२
दिशि प्रतीच्यां सुनय उत्तरस्यां महारथाः । तेषां तस्य च भूपस्य पृथग्गोत्राःपुरोहिताः ॥२३
बभूवुर्मुनयश्चैव मन्त्रिवंशक्रमागताः । शौरेरत्रिकुलोद्भूतः सुहोत्रो नाम वै द्विजः ॥२४
उदावसोः कुशावर्त्तो गौतमान्वयजोऽभवत् । काश्यपः प्रमतिर्नाम सुनयस्य पुरोहितः ॥२५
महारथस्य वासिष्ठः पुरोधाऽभून्महीभृतः । बुभुजुस्ते स्वराज्यानि चत्वारोऽपि नराधिपः ॥२६
खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः । तेषु भ्रातृष्वशेषेषु खनित्रः स महीपतिः ॥२७
प्रजासु च समस्तासु पुत्रेष्विव सदा हितः । एकदा मन्त्रिणा शौरिः स प्रोक्तो विश्ववेदिना ॥२८
विविक्ते पृथिवीपाल किञ्चिद् वक्तव्यमस्ति नः ।
यस्येयं पृथिवी कृत्स्ना यस्य भूपावशानुगाः ॥२९
स राजा तस्य पुत्रश्च तत्पौत्राश्चान्वयस्ततः । इतरे भ्रातरस्तस्य प्राक् स्वल्पविषयाधिपाः ॥३०
तत्पुत्राश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पकाः । कालेन ह्रासमासाद्य पुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥३१

कमल के समान नेत्रों वाला, समस्त गुण सम्पन्न उस श्रीमान् ने अपने भाईयों को अलग-अलग राज्यों में नियुक्त कर दिया ॥२१॥

और स्वयं भी सागरवसना (समुद्रपर्यन्त) इस पृथ्वी का उपभोग किया । उन्होंने शौरि को पूर्व प्रदेश में और उदावसु को दक्षिण प्रदेश में ॥२२॥

सुनय को पश्चिम दिशा में और महारथ को उत्तर दिशा में (नियुक्त किया) उन-उन राजाओं के और उसके पृथक् गोत्र वाले पुरोहित हुये ॥२३॥

हे राजन् ! मन्त्रीवंश के क्रम से मुनिजन मन्त्री हुए । शौरि के अत्रि वंश में उत्पन्न सुहोत्र नामक द्विज और उदावसु के गौतम वंश में उत्पन्न कुशवर्त्त मुनि पुरोहित हुये। सुनय के कश्यप गोत्रीय प्रमति और महारथ के वसिष्ठ पुरोहित थे । इस प्रकार इन चारों राजाओं ने अपने-अपने राज्यों का उपभोग किया ॥२४-२६॥

और सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी राजा खनित्र उन सबके राजा हुये, इस प्रकार उन सभी भाईयों के खनित्र ही अधीश्वर हुये ॥२७॥

(राजा खनित्र) सम्पूर्ण प्रजाओं में सदैव पुत्रों के समान हितकारी बुद्धि रखता था । एक बार शौरि के मन्त्री विश्ववेदी ने उस (शौरी) से कहा— ॥२८॥

हे राजन् ! इस एकान्त में हमें आप से कुछ निवेदन करना है । यह सम्पूर्ण पृथिवी जिसकी है और राजा लोग जिसके अधीन हैं ॥२९॥

वह राजा और उसके पुत्र तथा पौत्र एवं उस वंश में उत्पन्न दूसरी संतानें (इस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी राजा बनते रहते हैं) तथा उसके दूसरे भाई पहले थोड़े राज्य के स्वामी होते हैं ॥३०॥

फिर उनके पुत्र उनसे भी थोड़े तथा पौत्र उनसे भी थोड़े राज्य के अधिकारी होते हैं। समयानुसार एक पुरुष से दूसरे पुरुष (पीढ़ी) तक घटते हुए; ॥३१॥

कृष्योपजीविनो भूप भवन्तीति तदन्वयाः। नोद्धारं कुरुते भ्राता भ्रातृस्नेहबलार्पणः ॥३२
स्नेहः कः पृथिवीपाल परयोर्भ्रातृपुत्रयोः। तत्पुत्रयोः परतरा मतिर्भवति पार्थिव ॥३३
तत्पुत्रः केन कार्येण प्रीतियुक्तो भविष्यति। अथवा येन तेनैव संतोषं कुरुते नृपः ॥३४
क्रियते तत्किमर्थं तु भूपैर्मन्त्रिपरिग्रहः। भुज्यते सकलं राज्यं मया ते मन्त्रिणा सता ॥३५
तत्किं मुधा धारयसे संतोषं कुरुते यदि। कार्यनिष्पादकं राज्यं करणं कर्तुरिष्यते ॥३६
राज्यलुब्धश्च ते कार्यं त्वं कर्त्ता करणं वयम्। सोऽस्माभिः करणै राज्यं पितृपैतामहं कुरु ॥
फलप्रदा भविष्यामः परलोके न ते वयम् ॥३७

राजोवाच—

ज्येष्ठो भ्राता महीपालो वयं तस्यानुजा यतः।
ततः स भुङ्क्ते पृथिवीं वयं चाल्पवसुन्धराम् ॥३८

वयन्तु भ्रातरः पञ्चपृथ्वी चैका महामते। अतोऽस्याः पृथगैश्वर्यं कथं कृत्स्नं भविष्यति ॥३९

विश्ववेद्युवाच—

एवमेतद् भवत्वत्र यद्येका वसुधा नृप। तां त्वमेवाभिपद्य स्वज्येष्ठः शास्तु यथा भवान् ॥४०

उस वंश में उत्पन्न होने वाले व्यक्ति कृष्योपजीवी हो जाते हैं। हे राजन्! भाई के स्नेह में बंधा हुआ भाई कभी भी (एक दूसरे का) उद्धार नहीं करता ॥३२॥

तो फिर, हे पृथ्वीपाल! भाईयों के पुत्रों का परस्पर स्नेह कैसे हो सकता है? हे राजन्! उनके पुत्रों के पुत्रों की बुद्धि तो उससे भी अधिक आगे पहुंची हुई होती है ॥३३॥

फिर उनके भी पुत्र भला कैसे प्रेमयुक्त होंगे अथवा यदि राजा जैसी जैसी-तैसी स्थिति में ही संतोष करता है ॥३४॥

तो फिर राजा लोग मंत्रियों को क्यों रखते हैं? मेरे मन्त्री होते हुए आप सम्पूर्ण राज्य का उपभोग कर सकते हैं ॥३५॥

तो फिर व्यर्थ ही क्यों संतोष धारण किये हुए हैं। कर्ता का कार्य सम्पादक राज्य करण कहा जाता है ॥३६॥

आपके राज्य - प्राप्ति रूप कार्य में आप कर्ता होंगे और हम कारण होंगे। इसलिए हम जैसे करणों के द्वारा आप अपने राज्य को पितृपैतामहिक बनाइए। हम आपको परलोक में फल देने वाले नहीं होंगे ॥३७॥

राजा बोले—

बड़े भाई राजा हैं और क्योंकि हम उसके अनुज हैं। इसलिए वे समस्त पृथ्वी का और हम थोड़ी पृथ्वी का उपभोग कर रहे हैं ॥३८॥

हे महामते! हम पाँच भाई हैं और पृथ्वी एक है। इसलिए इस सम्पूर्ण पृथ्वी का ऐश्वर्य किस प्रकार अलग-अलग भोगा जा सकता है? ॥३९॥

विश्ववेदी ने कहा—

राजन्! आपने जो कहा वह ठीक है। यदि पृथ्वी एक ही है, तो उसके शासक आप ही बनिये और जिस प्रकार से इस समय आप शासन कर रहे हैं, आपके बड़े भाई करें ॥४०॥

सर्वाधिपत्यः सर्वेभ्यो भव त्वमखिलेश्वरः । यतन्ते च यथाहं ते तेषामपि हि मन्त्रिणः ॥४१

राजोवाच—

ज्येष्ठो राजा यथा प्रीत्या भजतेऽस्मान् सुतानिव ।
कथं तस्य करिष्यामि ममत्वं जगतीगतम् ॥४२

विश्ववेद्युवाच—

राज्ये स्थितः पूजयेथा ज्येष्ठो भूपार्हणैर्धनैः । कनिष्ठज्येष्ठता केयं राज्यं प्रार्थयतां नृणाम् ॥४३

मार्कण्डेय उवाच—

तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजा तेन सत्तम । विश्ववेदी ततो मन्त्री तद्भ्रातॄननयद्वशम् ॥४४
तेषां पुरोहितांश्चैव आत्मनः शान्तिकादिषु । निवोजयामा ततः खनित्रस्याभिचारके ॥४५
बिभेद तस्य निभृतान् सामदानादिभिस्तथा । चक्रे च परमोद्योगं निजदण्डप्रभावने ॥४६
आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनि कुर्वताम् । पुरोधसां चतुर्णां च जज्ञे कृत्या चतुष्टयम् ॥४७
विकरालं महावक्रमतिभीषणदर्शनम् । समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ॥४८
ततस्तदागतन्तत्र खनित्रो यत्र पार्थिवः । निरस्तं चाप्यदुष्टस्य तस्य पुण्यचयेन तत् ॥४६

इसलिए सम्पूर्ण आधिपत्य को प्राप्त करके, सब भाईयों के आप ही स्वामी बनिये । जिस प्रकार मैं उसी प्रकार उनके मन्त्री भी प्रयत्न कर रहे हैं ॥४१॥

राजा बोले—

जब बड़े राजा (भाई) पुत्रवत् हम सबमें प्रीति रखते हैं, तो फिर उनकी अधिकृत पृथ्वी के लिए (राज्याधिकार में) मैं ममत्व क्यों करूँ ? ॥४२॥

विश्ववेदी ने कहा—

हे राजन् ! तो फिर आप यथायोग्य सत्कारों और धनों के द्वारा राज्य करते हुए अपने भाई की पूजा करिये । राज्य के इच्छुक व्यक्ति के लिए, यह छोटे बड़े की भावना कैसी ? ॥४३॥

मार्कण्डेय बोले—

तब उस राजा के 'ऐसा ही हो' इस प्रकार वचनबद्ध होने पर विश्ववेदी ने उसके अन्य भाईयों को वश में किया ॥४४॥

और उनके पुरोहितों को अपने लिए शान्ति कर्म और खनित्र के लिए आभिचारिक कर्म करने के लिए नियुक्त किया ॥४५॥

और उस (खनित्र) के विश्वासपात्र सेवकों पर भी साम दान आदि नीतियों के द्वारा अपने दण्ड-प्रभाव को बढ़ाने का प्रयत्न करने लगा ॥४६॥

(पुरोहितों द्वारा) प्रतिदिन अत्युग्र आभिचारिक कर्म किये जाने पर (यज्ञ कुंड से) चारों पुरोहितों ने चार कृत्याओं को उत्पन्न किया ॥४७॥

वे कृत्यायें विकराल, विशाल मुख युक्त, अत्यन्त भयानक दीखने वाली हाथ में महाशूल उठाए हुए अत्यन्त दारुण थीं ॥४८॥

उसके बाद वे वहाँ गयीं जहाँ पर राजा खनित्र स्थित था । किन्तु राजा के पुण्य समूह से वे दुष्टायें प्रभावहीन हो गयीं ॥४६॥

कृत्याचतुष्टयं तेषु निपपात दुरात्मसु । पुरोहितेषु भूपानां तथा वै विश्ववेदिनि ।।५०
ततो निहन्त्या निर्दग्धाः कृत्यया ते पुरोहिताः । विश्ववेदी तथा मन्त्री स शौरेर्दुष्टमन्त्रदः ।।५१

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुरणे खनित्रचरित्रवर्णनं नाम चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ।

(तब) वे चारों कृत्यायें (अन्य) राजाओं के चारों दुरात्मा पुरोहितों एवं विश्ववेदी के ऊपर गिर पड़ीं ।।५०।।

उसके बाद दुष्ट मन्त्रणा देने वाला शौरिका वह दुष्ट मन्त्री विश्ववेदी और वे पुरोहित कृत्याओं के द्वारा मारे जाकर भस्मीभूत हो गये ।।५१।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में खनित्र चरित वर्णन नामक एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच —

ततः समस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान् । यदेककालं नेशुस्ते पृथक् पुरनिवासिनः ।।१
ततः शुश्राव निधनं यातान् भ्रातृपुरोहितान् । मन्त्रिणञ्च तथा भ्रातुर्दग्धं तं विश्ववेदिनम् ।।२
किमेतदिति सोऽतीवविस्मितो मुनिसत्तम । खनित्रोऽभून्महाराजो नाजानात्तच्च कारणम् ।।३
ततो वसिष्ठं पप्रच्छ स राजा गृहमागतम् । यत्कारणं विनेशुस्ते भ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ।।४
तेन पृष्टस्तदा प्राह यथावृत्तं महामुनिः । यच्छौरिमन्त्रिणा प्रोक्तं यच्च शौरिरुवाच तम् ।।५
यथा चानुष्ठितं तेन भ्रातृणां भेदकारि वै । मन्त्रिणा तेन दुष्टेन यच्चक्रुश्च पुरोहिताः ।।६
यन्निमित्तं विनेशुस्ते अपापस्यापकारिणः । पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयावतः ।।७

मार्कण्डेय ने कहा—

तब सभी लोगों को महान् विस्मय हुआ कि पृथक्-पृथक् नगरों में निवास करने वाले ये एक ही समय में किस प्रकार नष्ट हो गये ।।१।।

उसके बाद (राजा खनित्र ने) भाईयों के पुरोहितो और भाई के मन्त्री विश्ववेदी का जलने से हुई मृत्यु का समाचार सुना ।।२।।

तब हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके कारण को न समझते हुए 'ऐसा क्यों हुआ' ? इस प्रकार विचार करते हुए महाराजा खनित्र अत्यन्त विस्मित हुआ ।।३।।

तत्पश्चात् राजा ने घर पर आये हुए वसिष्ठ से भाईयों के मन्त्री-पुरीहितों के नाश का कारण पूछा ।।४।।

उसके पूछने पर उन महामुनि ने जैसा घटित हुआ, जो शौरि के मंत्री ने कहा और जो शौरि ने मंत्री से कहा था, सब बताया और उस दुष्ट मन्त्री ने जो भाईयों में फूट डालने वाले कार्य किये थे तथा जो पुरोहितों ने (अनुष्ठानादि) किये थे तथा जिस कारण पुण्यात्मा एवं शत्रुओं पर भी दया करने वाले राजा के प्रति अपकारी बने हुए वे सब नष्ट हुए थे, वह सब वृत्तांत आद्योपान्त राजा खनित्र को सुना दिया ।।५–७।।

स तच्छ्रुत्वा ततो राजा हा हतोऽस्मीति वै वदन् ।
निनिन्दात्मानमत्यर्थं वसिष्ठस्याग्रतो द्विज ॥८

राजोवाच—

धिङ् मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् । दैवदोषकृतं पापं सर्वलोकविगर्हितम् ॥९
मन्निमित्तं विनष्टं तत्तद् ब्राह्मणचतुष्टयम् । मत्तः कोऽन्यः पापतरो भविष्यति पुमान् भुवि ॥१०
नाभविष्यं यदि पुमानहमत्र महीतले । ततस्ते न विनश्येयुर्मम भ्रातृपुरोहिताः ॥११
धिग्राज्यं धिक् च मे जन्म भूभुजां महतां कुले । कारणत्वं गतो योऽहं विनाशस्य द्विजन्मनाम् ॥१२
कुर्वन्तः स्वामिनां तेऽर्थं भ्रातृणां मम याजकाः । नाशं ययुर्न दुष्टास्ते दुष्टोऽहं नाशकारणे ॥१३
किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मत्तो हि पापकृत् ।
पृथिव्यामस्ति हेतुत्वं द्विजनाशस्य योगतः ॥१४
इत्थमुद्विग्नहृदयः खनित्रः पृथिवीपतिः । वनं यियासुः पुत्रस्य कृतवानभिषेचनम् ॥१५
अभिषिच्य सुतं राज्ये क्षुपसंज्ञं महीपतिः । भार्याभिस्तिसृभिः सार्धं तपसे स वनं ययौ ॥१६
तत्र गत्वा तपस्तेपे वानप्रस्थविधानवित् । शतानित्रीणिवर्षाणां सार्द्धानि नृपसत्तमः ॥१७

हे द्विज ! इसको सुनने के बाद 'हाय मैं मारा गया' इस प्रकार कहते हुए राजा ने वसिष्ठ के सामने ही अपनी अत्यधिक निन्दा की ॥८॥

राजा बोला—

भाग्यहीन, शोभा रहित, अपुण्यों का एकमात्र स्थान (उद्गम स्थल) भाग्य द्वारा दूषित पापी, लोक द्वारा निन्दित मुझको धिक्कार है ॥९॥

क्योंकि मेरे कारण वे चारों ब्राह्मण नष्ट हो गये। इस पृथ्वी पर मुझसे बढ़कर अन्य कौन पापी होगा ? ॥१०॥

यदि मैं इस पृथ्वी पर मनुष्य रूप में उत्पन्न न होता तो मेरे भाईयों के वे पुरोहित विनष्ट न होते ॥११॥

इस राज्य को धिक्कार है और राजाओं के इस महान् कुल में मेरे जन्म को धिक्कार है। जो कि मैं ब्राह्मणों के विनाश का कारण बना ॥१२॥

और अपने स्वामियों के लिए कार्य करते हुए भाईयों के पुरोहित जो नाश को प्राप्त हुए। वस्तुतः वे दुष्ट नहीं थे अपितु दुष्ट तो नाश का एकमात्र कारण मैं ही हूँ ॥१३॥

क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? ब्राह्मणों की हत्या के कारण, इस पृथ्वी पर मेरे समान अन्य कोई पापी नहीं है ॥१४॥

इस प्रकार उद्विग्न हृदय राजा खनित्र ने वन जाने की इच्छा से पुत्र का अभिषेक कर दिया ॥१५॥

क्षुप नामक पुत्र का राज्याभिषेक करके राजा अपनी तीनों पत्नियों के साथ तपस्या के लिए वन में चला गया ॥१६॥

और वहाँ जाकर विधि विधान पूर्वक वानप्रस्थ आश्रम में रहते हुए साढ़े तीन सौ वर्षों तक उस नृप श्रेष्ठ ने तप किया ॥१७॥

तपसा क्षीणदेहस्तु राजवर्यो द्विजोत्तम । निगृह्य सर्वं स्रोतांसि तत्याजासून् वनेचरः ॥१८
ततः पुण्यान् ययौ लोकान् सर्वकामदुहोऽक्षयान् । अश्वमेधादिभिर्यज्ञैरवाप्या ये नराधिपैः ॥१९
भार्यश्च तस्य तास्तिस्रः समं तेनैव तत्यजुः । प्राणानवापुः सालोक्यं तेनैव सुमहात्मना ॥२०
एतत् खनित्रचरित्रं श्रुतं कल्मषनाशनम् । पठताञ्च महाभाग क्षुपस्यातो निशामय ॥२१

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे खनित्रचरितसमाप्तिर्नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ।

हे द्विज श्रेष्ठ ! वनवासी, तप से क्षीण हुए शरीर वाले, उस श्रेष्ठ राजा ने सभी शरीर के स्रोतों को रोक कर प्राणों का त्याग कर दिया ॥१८॥

तत्पश्चात् वह सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाले उन अक्षय पुण्य लोकों को गया, जिनको अनेक अश्वमेधादि यज्ञों के द्वारा भी राजा लोग प्राप्त नहीं कर पाते हैं ॥१९॥

और उसकी इन तीनों पत्नियों ने भी उसी के साथ प्राणों को त्याग दिया तथा उन्हीं लोकों को प्राप्त किया जिनको उस महात्मा खनित्र ने प्राप्त किया था ॥२०॥

हे महाभाग ! आपने कहते हुए, मुझसे, पापों को नष्ट करने वाला, यह राजा खनित्र का चरित्र सुना । अब आप उसके पुत्र क्षुप का चरित्र सुनिये ॥२१॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में खनित्र चरित समाप्ति नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

क्षुपः खनित्रपुत्रस्तु प्राप्य राज्यं यथा पिता । तथैव पालयामास प्रजा धर्मेण रञ्जयन् ॥१
स दानशीलो यष्टा च यज्ञानामवनीपतिः । समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारादिवर्त्मनि ॥२
एकदा स महीपालो निजस्थान गतो मुने । सूतैरुक्तो यथापूर्वं क्षुपो राजा तथाऽभवत् ॥३
ब्रह्मणस्तनयः पूर्वं क्षुपोऽभूत् पृथिवीपतिः । यादृक्चरितमस्यासीत् तादृक् तस्यैव चेष्टितम् ॥४

मार्कण्डेय बोले—

खनित्र के पुत्र क्षुप ने राज्य प्राप्त करके पिता के समान ही धर्म के द्वारा प्रजा को प्रसन्न करते हुए उसका पालन किया ॥१॥

दानशील उस राजा ने यज्ञों का सम्पादन किया और शत्रु, मित्र सभी में समान व्यवहार के मार्ग में प्रवृत्त हुआ ॥२॥

हे मुने ! एक बार अपने सिंहासन पर बैठे हुए उस राजा से सूतों ने कहा—जैसे पूर्ववर्ती क्षुपराज हुए थे, वैसे ही आप भी हैं ॥३॥

पुराकाल में ब्रह्मा का पुत्र क्षुप राजा हुआ था । जैसा उसका चरित्र था ठीक वैसा ही आपका भी व्यवहार है ॥४॥

राजोवाच—

श्रोतुमिच्छामि चरितं क्षुपस्य सुमहात्मनः। यदि तादृङ्मया शक्यं चेष्टितुं तत्करोम्यहम् ॥५

सूता ऊचुः—

स चकाराकरान् भूप राजा गोब्राह्मणान् पुरा। षष्ठांशेन कृता चोर्व्यामिष्टिस्तेन महात्मना ॥६

राजोवाच—

तेषां महात्मनां राज्ञां कोऽनुयास्यति मद्विधः। तथाप्युत्कृष्टचेतनां चेष्टासूद्यमवान् भवेत् ॥७

तच्छ्रूयतां प्रतिज्ञा या साम्प्रतं क्रियते मया। क्षुपस्यानुकरिष्यामि महाराजस्य चेष्टितम् ॥८

त्रींस्तीन् यज्ञान् करिष्यामि सस्यापाते गतागते। पृथिव्यां चतुरन्तायां प्रतिज्ञेयं कृता मया ॥९

यच्च गोब्राह्मणाः पूर्वमददन् भूभृते करम्। तमेव प्रतिदास्यामि ब्राह्मणानां तथा गवाम् ॥१०

मार्कण्डेय उवाच—

इति प्रतिज्ञाय वचः क्षुपस्तत्कृतवांस्तथा। सस्यापति स यज्ञांस्त्रीनयजद्यजतां वरः ॥११

गोब्राह्मणाः पुरा राज्ञामददद्यं च वै करम्। तावत्संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणाय सः ॥१२

तस्य पुत्रोऽभवद् वीरः प्रमथायामनिन्दितः। यस्य प्रतापशौर्याभ्यां कृता वश्या महीभृतः ॥१३

राजा बोला—

मैं उस महात्मा क्षुप के चरित को सुनना चाहता हूँ। यदि मैं भी उन्हीं के समान आचरण कर सका तो मैं वैसा ही प्रयत्न करूँगा ॥५॥

सूत बोले—

हे राजन्! वह महातमा राजा गौ और ब्राह्मण से कर नहीं लेता था और छटे अंश से पृथ्वी पर यज्ञों का अनुष्ठान करता था ॥६॥

राजा बोला—

मेरे समान मनुष्य उनके कार्यों का अनुकरण कैसे कर सकता है? फिर भी उत्कृष्ट चित्त वाले मनुष्यों की चेष्टाओं को पालन करने का प्रयत्न करना चाहिए ॥७॥

इसलिए मैं जो प्रतिज्ञा कर रहा हूँ उसको तुम सब सुनो। मैं भी महाराज क्षुप के आचरण का ही अनुकरण करूँगा ॥८॥

मैंने चारों समुद्रों से सीमित पृथ्वी में यह प्रतिज्ञा की है कि फसल के आने से पूर्व, फसल के समय में और फसल के समय के बीत जाने पर मैं तीन-तीन यज्ञों का अनुष्ठान करूँगा ॥९॥

और गो-ब्राह्मणों ने राजा को पहले जो कर दिया है, उसको मैं ब्राह्मणों और गायों को लौटा दूँगा ॥१०॥

मार्कण्डेय ने कहा—

इस प्रकार प्रतिज्ञा करके राजा क्षुप ने अपने वचनों का पालन किया और फसल की उपस्थिति के समय तीन उत्तम यज्ञों का अनुष्ठान किया ॥११॥

और गो-ब्राह्मणों ने पहले राजाओं को जो कर दिया था उतनी ही मात्रा में उस राजा ने गो-ब्राह्मणों को धन प्रदान किया ॥१२॥

उसकी प्रथमा नाम की पत्नी से एक वीर एवं प्रशंसनीय पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसने प्रताप और शौर्य से सभी राजाओं को वश में कर लिया ॥१३॥

तस्यापि नन्दिनी नाम वैदर्भी दयिताऽभवत् । विविंशं तनयं तस्यां जनयामास स प्रभुः ।।१४
विविंशे शासति महीं महीपाले महौजसि । महीतलमभूद् व्याप्तं निरन्तरतया नरैः ।।१५
ववर्ष काले पर्जन्यो महीसस्यवती तथा । सुफलानि च सस्यानि रसवन्ति फलानि च ।।१६
रसा पुष्टिकराश्चासन् पुष्टिर्नोन्मादकारिणी । न वित्तनिचयानृणां प्रभूता मदहेतवः ।।१७
तत्प्रतापेन रिपवो भयमापुर्महामुने । स्वास्थ्यं जनः सुहृद्वर्गो मुदमाप सुपूजितः ।।१८

इष्ट्वा स यज्ञान् सुबहून्सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम् ।
संगामे निधनं प्राप्य शक्रलोकमितो गतः ।।१९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे विविंशचरितवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ।

विदर्भ देश के राजा की पुत्री नन्दिनी उसकी पत्नी हुई और उसने उससे विविंश नामक पुत्र को उत्पन्न किया ।।१४।।

अति तेजस्वी विविंश के पृथ्वी के शासन करते हुए सम्पूर्ण भूतल मनुष्यों से अन्तर रहित हो गया ।।१५।।

उस समय मेघ समय पर वर्षा करते थे और पृथ्वी अन्न से परिपूर्ण रहती थी । फसलें अच्छी होती थीं और फल रस युक्त होते थे ।।१६।।

तथा रस पुष्टि प्रदान करते थे, किन्तु पुष्टि उन्माद उत्पन्न करने वाली नहीं थी । मनुष्यों का परम धनवान् होना भी मद का कारण नहीं था ।।१७।।

हे महामुने ! उनके प्रताप से शत्रु भयभीत रहते थे । सभी मनुष्य स्वस्थ थे और भली प्रकार सम्मानित सुहृद वर्ग प्रसन्न रहता था ।।१८।।

इस प्रकार पृथ्वी का भली प्रकार पालन करते हुए (उस राजा ने) बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया और युद्ध में मृत्यु प्राप्त कर वह इस लोक से इन्द्र लोक को गया ।।१९।।

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में विविंश चरित नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

तस्य पुत्रः खनीनेत्रो महाबलपराक्रमः । यस्य यज्ञेष्वगायन्त गन्धर्वा विस्मयान्विताः ।।१
खनीनेत्रसमो नान्यो भुवि यज्वा भविष्यति । तेन यज्ञायुते पूर्णे दत्ता पृथ्वी ससागरा ।।२

मार्कण्डेय बोले –

महान् पराक्रमी और बली खनीनेत्र उसका पुत्र हुआ, जिसके यज्ञों में विस्मययुक्त गन्धर्व भी गान किया करते थे ।।१।।

खनीनेत्र के समान यज्ञकर्ता इस पृथ्वी पर दूसरा कोई नहीं होगा क्योंकि उसने दस सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान किया और समुद्र पर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वी का दान दिया ।।२।।

दत्त्वा च सकलां पृथ्वीं ब्राह्मणानां महात्मनाम् । तपसा द्रव्यमासाद्य मोदयन् साधिते नयः ॥३
यतश्च प्राप्य वित्तर्द्धिमतुलां दातृसत्तमात् । जगृहुर्ब्राह्मण विप्र नान्यराज्ञः प्रतिग्रहम् ॥४
सप्तषष्टिसहस्राणि सप्तषष्टिशतानि च । सप्तषष्टिं च यो यज्ञानयजद् भूरिदक्षिणान् ॥५
अपुत्रः स महीपालो मृगयामुपचक्रमे । पुत्रार्थं पितृयज्ञाय मांसकामो महामुने ॥६
अश्वारूढो विना सैन्यमेक एव महावने । बद्धगोधांगुलित्राणो बाणखड्गधनुर्धरः ॥७
तं वाहयन्तं तुरगमन्यतो गहनाद्वनात् । विनिष्क्रम्य मृगः प्राह 'मां हत्वाभिमतं कुरु ॥८

राजोवाच —

अन्ये मृगाः पलायन्ते महाभीत्या विलोक्य माम् । कथमात्मप्रदानं त्वं मृत्यवे कर्तुमिच्छसि ॥९

मृग उवाच —

अपुत्रोऽहं महाराज वृथा जन्म-प्रयोजनम् । विचारयन्न पश्यामि प्राणानामिह धारणम् ॥१०

मार्कण्डेय उवाच —

अथाभ्येत्य मृगः प्राह तमन्यो वसुधाधिपम् । मृगस्य तस्य प्रत्यक्षमलमेतेन पार्थिव ॥११
घातयस्वेति मां मांसैर्मम कर्म समाचर । यथा कृतार्थता ते स्यान्मम चाप्युपकारि तत् ॥१२

और ब्राह्मणों को सम्पूर्ण पृथ्वी देकर तपस्या के द्वारा धन प्राप्त करके प्रसन्नता पूर्वक अपनी नीति का पालन किया ॥३॥

हे विप्र ! दाताओं में श्रेष्ठ, जिस (खनीनेत्र) से ब्राह्मणों ने अतुल सम्पत्ति प्राप्त करके किसी अन्य राजा से दान नहीं लिया ॥४॥

इस प्रकार उसने विपुल दक्षिणा वाले सरसठ हजार सरसठ सौ सरसठ यज्ञों का अनुष्ठान किया ॥५॥

हे महामुने ! पुत्रहीन उस राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए पितृयज्ञ का अनुष्ठान करने के लिए मांस की कामना करते हुए, गोधा और अंगुलित्राण बाँधे हुए, बाण खड्ग और धनुष धारण किये हुए, अश्व पर आरूढ़ होकर बिना सेना के अकेला ही वह राजा एक बार शिकार के लिए वन में गया ॥६-७॥

उस अश्व को दौड़ाते हुए (उस राजा से) किसी गहन वन से निकल कर एक मृग बोला - हे राजन् ! मेरा वध करके अपना अभीष्ट सिद्ध कीजिए ॥८॥

राजा बोला —

मुझे देखकर दूसरे मृग तो अति भयभीत होकर भाग जाते हैं। लेकिन तुम स्वयं अपने को देकर मरने की क्यों इच्छा कर रहे हो ॥९॥

मृग बोला—

हे महाराज ! मैं पुत्रहीन हूँ, इसलिए मेरा जन्म व्यर्थ है । विचार करते हुए भी मैं इन प्राणों के धारण का कोई कारण नहीं समझता हूँ ॥१०॥

मार्कण्डेय बोले —

तब ही एक दूसरा मृग राजा के पास आकर बोला—हे राजन् ! सामने खड़े हुए इस मृग को मत मारिये ॥११॥

आप मेरा वध कीजिए और मेरे मांस से अपने कार्य का सम्पादन कीजिए, जिससे आप भी कृतार्थ होंगे और मेरा भी उपकार होगा ॥१२॥

पुत्रार्थं त्वं महाराज स्वपितन् यष्टुमिच्छसि । अपुत्रस्यास्य मांसेन लप्स्यसे वाञ्छितं कथम् ॥१३
यादृक् कर्म विनिष्पाद्यं तादृग् द्रव्यमुपाहरेत् । दुर्गन्धैर्न सुगन्धानां गंधज्ञानविनिर्णयः ॥१४

राजोवाच—

वैराग्यकारणं प्रोक्तमनेनापुत्रता मम । कथ्यतां प्राणसंत्यागे यत्ते वैराग्यकारणम् ॥१५

मृग उवाच—

बहवो मे सुता भूप बह्व्यो दुहितरस्तथा । यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्ये वसाम्यहम् ॥१६
सर्वसाध्या नरेन्द्रेयं मृगजातिः सुकातरा । तेष्वपत्येषु मे चातिममत्वं तेन दुःखितः ॥१७
मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्यो बिभेम्यहम् । विहीनात् सर्वसत्त्वेभ्यः श्वश्रृगालादपि प्रभो ॥१८

सोऽहं निमित्तं बन्धूनामिमां शून्यां वसुन्धराम् ।
नृसिंहादिभयात् सर्वामिच्छामि सुनृशंसकृत् ॥१९
तृणान्यन्येऽपि खादन्ति गोऽजावितुरगादिकाः ।
तांस्तेषां पोषणायाहमिच्छामि निधनं गतान् ॥२०

हे महाराज ! आप पुत्र प्राप्ति के लिए पितृयज्ञ का अनुष्ठान करना चाहते हैं । इस पुत्रहीन के मांस से आप कैसे अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकते हैं ॥१३॥

क्योंकि जैसा कर्म करना हो उसके लिए वैसा ही द्रव्य (सामग्री) ग्रहण करना चाहिए । दुर्गन्ध से कभी सुगन्ध ज्ञान का विनिश्चय नहीं हो सकता ॥१४॥

राजा बोला—

इसने पुत्र हीनता को ही अपने वैराग्य का कारण बताया है किन्तु तुम अपने वैराग्य का कारण भी तो बताओ जो कि (तुम) अपने प्राण देने के लिए तत्पर हुए हो ॥१५॥

मृग बोला—

हे राजन् ! मेरे बहुत से पुत्र हैं और पुत्रियों की भी अधिकता है । जिससे मैं चिन्ता और दुःख की दावाग्नि की ज्वालाओं से सदैव जलता रहता हूँ ॥१६॥

हे नरेन्द्र ! अति हीन यह मृग जाति कातर है, सभी की साध्य (मारने योग्य) है । क्योंकि उन संतानों में मेरा अत्यधिक ममत्व है, इसलिए मैं सदैव दुःखी रहता हूँ ॥१७॥

और हे प्रभो ! मैं मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया आदि और सभी प्राणियों से हीन श्वान तथा गीदड़ आदि से भी सदैव भयभीत रहता हूँ ॥१८॥

इसलिए बन्धुओं के (जीवन का) कारण मैं सदा ही कामना करता हूँ कि यह पृथ्वी नृशंस कर्म करने वाले मनुष्य, सिंह आदि के भय से पूर्ण रूप से शून्य हो जाए ॥१९॥

गो, बकरी, भेड़, अश्व आदि दूसरे पशु भी घास खाते हैं । अपने पुत्रों के पोषण के लिए मैं चाहता हूँ कि वे सभी अन्य पशु मर जायें ॥२०॥

निष्क्रान्तेषु ततस्तेषु ममापत्येषु वै पृथक् । भवन्ति चिन्ताः शतशो ममत्वावृतचेतसः ।।२१
किं कूटपाशं किं वज्रं वागुरां किं सुतो मम । प्राप्तश्चरन्वने किं वा नृसिंहादिवशं गतः ।।२२
प्राप्तोऽयमेकः सम्प्राप्तास्तेऽवस्थां कीदृशीं मम । साम्प्रतं ते चिरान्ते ये गताः सुमहावनम् ।।२३
दृष्ट्वा प्राप्तान् ममाभ्याशमहं तानात्मजान्नृप । ईषदुच्छ्वसितः क्षेममिच्छामि रजनीं पुनः ।।२४
प्रभाते दिवसं क्षेममस्तगेऽर्के निशामपि । वाञ्छाम्यहं कदा क्षेमं सर्वकालं भविष्यति ।।२५
एतत्ते कथितं भूप ममोद्वेगस्य कारणम् । अतः प्रसादं कुरु मे बाणोऽयं पात्यतां मयि ।।२६
इति दुःखशताविष्टः प्राणान्नाहं त्यजामि यत् । तत्कारणं निबोध त्वं ब्रुवतो मम पार्थिव ।।२७

असूर्यां नाम ते लोका यान् गच्छन्त्यात्मघातकाः ।
यज्ञोपयुक्ताः पशवः सम्प्रयान्त्युच्छ्रितीः प्रभो ।।२८

अग्निः पशुरभूत् पूर्वं पशुरासीज्जलाधिपः । भास्वानथोच्छ्रितीः प्राप्ता यज्ञे निष्ठामुपागताः ।।२९
तन्मभैतां कृपां कृत्वा नय मामुच्छ्रितिं नृप । आत्मनश्चेप्सितं कामं पुत्रलाभादवाप्स्यसि ।।३०

और जब मेरे पुत्र (अपने भोजन के लिए) अलग-अलग (जंगल में) निकल जाते हैं तो मेरे हृदय में स्नेह के कारण सैकड़ों चिन्ताएँ उठती रहती हैं ।।२१।।

इससे कभी मुझे लगता है कि मेरा पुत्र किसी कठोर पाश में बंधा पड़ा है अथवा किसी ने मेरे पुत्र को वज्र से घायल कर दिया है अथवा वन में घूमते हुए, वह किसी मनुष्य या सिंहादि के अधिकार में आ गया है ।।२२।।

एक के आने पर, जिनको महावन से गये हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है, इस समय वे कैसी दशा में होंगे । मुझे सदैव दूसरे पुत्रों की यही चिन्ता बनी रहती है ।।२३।।

हे राजन् ! पास में आये हुए, उन पुत्रों को देखकर मैं, चैन की एक सांस लेता हूँ । किन्तु फिर रात्रि के समय उनके कल्याण की कामना करता हूँ ।।२४।।

प्रातःकाल होने पर दिन भर के कल्याण की और सूर्य के अस्त होने पर रात्रि काल में भी उनके कल्याण की मैं कामना करता रहता हूँ । भला सभी समय उनका कल्याण कैसे होगा ? ।।२५।।

हे राजन् ! यह मैंने आपसे अपने उद्वेग का कारण कह दिया । इसलिए मेरे ऊपर कृपा कीजिए और यह बाण मेरे ऊपर छोड़िए ।।२६।।

हे राजन् ! इन सैकड़ों दुःखों से घिरा हुआ भी मैं अपने प्राणों को नहीं छोड़ पा रहा हूँ । उसका कारण भी मैं आपको बताता हूँ, सुनिए ।।२७।।

हे प्रभो ! आत्मघाती प्राणी असूर्य (सूर्य प्रकाश रहित) नरक में जाते हैं । और यज्ञ के लिए प्रयुक्त हुए पशु सद्गति को प्राप्त होते हैं ।।२८।।

पूर्वकाल में अग्नि, वरुण और सूर्य भी पशु थे और यज्ञ निष्ठा को प्राप्त करके सद्गति को प्राप्त हुए ।।२९।।

इसलिए हे राजन् ! मुझ पर कृपा करके मुझे सद्गति को प्राप्त कराइये । आप अपने इच्छित पुत्र को प्राप्त करेंगे ।।३०।।

पूर्वमृग उवाच—

राजेन्द्र नैष हन्तव्यो धन्योऽयं सुकृती मृगः । बहवस्तनया ह्यस्य हन्तव्योऽहमसन्ततिः ।।३१

उत्तरमृग उवाच—

एकदेहभवं यस्य दुःखं धन्यः स वै भवान् । बहूनि यस्य देहानि तस्य दुःखान्यनेकधा ।।३२

एको यदाहमासं तु प्राक् तदा देहजं मम । दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्यायास्तदभूद् द्विधा ।।३३

यदा जातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै । तावच्छरीरभूमीनि मम दुःखान्यथा भवन् ।।३४

न कृतार्थो भवाम्यस्य नार्तिदुःखाय सम्भवः । इह दुःखाय मत्सूतिः परत्र च विरोधिनी ।।३५

यतो रक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमि तत् । चिन्तयामि च संभूतिस्तेन मे नरके ध्रुवम् ।।३६

राजोवाच –

न वेद्मि किं सन्ततिमान् धन्योऽपुत्रोऽत्र किं मृग । पुत्रार्थश्चायमारम्भो मम दोलायते मनः ।।३७

दुःखाय सन्ततिः सत्यमैहिकामुष्मिकाय तत् । तथाप्यतनयान् यान्ति ऋणानीति श्रुतं मया ।।३८

सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृते प्राणिवधं मृग । तापसैव प्रचण्डेन यथापूर्वं महीपतिः ।।३९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे खनीनेत्रचरितंवर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोध्यायः ।

पहला मृग बोला—

हे राजन् ! इसका वध नहीं करना चाहिए क्योंकि इसके बहुत सी संतानें हैं । अतः यह तो सुकृती है किन्तु मुझ निःसन्तान का ही वध करना चाहिए ।।३१।।

दूसरा मृग बोला—

जिसे एकमात्र शरीर का ही दुःख है, वह आप धन्य हैं । लेकिन जिसके बहुत से शरीर हैं, उसके दुःख भी अनेक होते हैं ।।३२।।

पहले जब मैं अकेला था, तो केवल मेरे शरीर से ही दुःख की उत्पत्ति होती थी (तब मेरे अकेले शरीर को ही दुःख था) फिर भार्या के आने पर उसके ममत्व में वह दुःख दो भागों में विभक्त हो गया ।।३३।।

फिर जितनी संतानों की उत्पत्ति होती गयी, तब उतने ही भागों में दुःख बढ़ता गया । इस प्रकार मुझे अनेक शरीरों के कारण अनेक दुःखों की प्राप्ति हुई है ।।३४।।

इस अत्यन्त महान् दुःख के उत्पन्न होने से मैं धन्य नहीं हूँ क्योंकि मेरी ये संतानें तो इस लोक में भी दुःख के लिए हैं और परलोक में भी विरुद्ध फल देने वाली हैं ।।३५।।

और मैं अपनी संतान की रक्षा और पोषण के लिए जो चिन्ताएँ और प्रयत्न करता हूँ, उन सबसे भी मुझे निश्चय ही नरक की प्राप्ति होगी ।।३६।।

राजा बोला—

हे मृग ! पुत्रहीन और पुत्रवान् दोनों में कौन धन्य हैं ? यह मैं नहीं जान पा रहा हूँ और मेरा समस्त प्रयत्न पुत्र प्राप्ति के लिए है ! इसलिए मेरा मन दोलायमान हो रहा है ।।३७।।

सन्तान के कारण ही इस लोक और परलोक में दुःख भोगने पड़ते हैं, यद्यपि यह सत्य ही है । फिर भी मैंने सुना है कि पुत्रहीन मनुष्य ऋण मुक्त नहीं होते ।।३८।।

इसलिए हे मृग ! मैं जीव हत्या किये बिना ही पुत्र प्राप्ति के लिए प्रयत्न करूँगा । जिस प्रकार पूर्वकालीन राजाओं ने प्रचण्ड तप से ही पुत्र प्राप्ति की है ।।३९।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में खनीनेत्र चरित वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अष्टादशाधिकशततमोध्याय:

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स नृपतिर्गत्वा गोमतीं पापनाशिनीम् । तत्र तुष्टाव नियतो भूत्वा देवं पुरन्दरम् ॥१
तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्-काय-मानसः । तुष्टाव प्रयतः शक्रसपत्यार्थं महीपतिः ॥२
तस्य स्तोत्रेण तपसा भक्त्या चापि सुरेश्वरः । तुतोष भगवानिन्द्रः प्राह चैनं महामुनेः ॥३
अनेन तपसा भक्त्या स्तोत्रेणोच्चारितेन च । परितुष्टोऽस्मि ते भूप व्रियतां भवता वरः ॥४

राजोवाच—

अपुत्रस्य सुतो मेऽस्तु सर्वशस्त्रभृतां वरः । सदा चाव्याहतैश्वर्यो धर्मकृद्धर्मवित् कृती ॥५

मार्कण्डेय उवाच—

तथेति चोक्तः शक्रेण राजा प्राप्तमनोरथः । प्रजाः पालयितुं भूप आजगाम निजं पुरम् ॥६
तत्रास्य कुर्वतो यज्ञं सम्यक् पालयतः प्रजाः । अजायत सुतो विप्र तदा शक्रप्रसादतः ॥७
तस्य नाम पिता चक्रे बलाश्व इति भूपतिः । अस्त्रग्राममशेषं च ग्राहयामास तं सुतम् ॥८
पितर्युपरते विप्र सोऽधिराज्ये स्थितो नृपः । स बलाश्वो वशं निन्ये भुवि सर्वमहीक्षितः ॥९

मार्कण्डेय बोले —

तब उस राजा ने पाप नाशिनी गोतमी पर जाकर नियमपूर्वक देवराज इन्द्र की स्तुति की ॥१॥

निःसन्तान होने के कारण, उस राजा ने वाणी, शरीर और मन को नियन्त्रित कर उग्र तप का आचरण करते हुए, इन्द्र की आराधना की ॥२॥

हे महामुने ! उसके तप, भक्ति और स्तुति से सुरेश्वर प्रसन्न हुए और भगवान् इन्द्र ने इससे कहा—॥३॥

हे राजन् ! मैं तुम्हारे तप, भक्ति और उच्चारण किये गये स्तोत्रों से तुमसे प्रसन्न हूँ । तुम वरदान माँगो ॥४॥

राजा ने कहा—

हे प्रभो ! पुत्रहीन मुझको शस्त्रधारियों से बढ़कर, अव्याहत ऐश्वर्य वाला, धार्मिक और धर्म को जानने वाला पुण्यवान् पुत्र प्राप्त होवे ॥५॥

मार्कण्डेय बोले—

इन्द्र के द्वारा 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहने पर प्राप्त हुए मनोरथ वाला राजा अपनी प्रजा का पालन करने के लिए अपने नगर में आ गया ॥६॥

वहाँ भली प्रकार प्रजा का पालन एवं यज्ञानुष्ठान करते हुए, हे विप्र ! इन्द्र की कृपा से उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥७॥

उसके पिता राजा ने उसका नाम बलाश्व रखा और उस पुत्र को सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा प्रदान की ॥८॥

हे विप्र ! पिता के मरणोपरान्त राज्य पर बैठे हुए उसने बलपूर्वक पृथ्वी पर सभी राजाओं को अपने अधीन कर लिया ॥९॥

करं च दापयामास सारग्रहणपूर्वकम् । स सर्वभूमिपान् राजा पालयामास च प्रजाः ।।१०
अथाखिलनरेन्द्रास्ते दायादस्तस्य दुर्मदाः । न चाभ्युत्थाय सततं ते चास्मै प्रददुः करान् ।।११
व्युत्थिताः स्वेषु राष्ट्रेषु न सन्तोषपरास्ततः । भुवं तस्य नरेन्द्रस्य जगृहुस्ते नराधिपाः ।।१२
स गृहीत्वा स्वकं राज्यं पृथिवीशो बलान्मुने । तस्थौ स्वनगरे भूपैर्विरोधो बहुभिः कृतः ।।१३
समेत्य सुमहावीर्याः समाधनधनास्ततः । रुरुधुस्तं महीपालं पुरे तत्र नरेश्वराः ।।१४
पुररोधेन तेनाथ कुपितः स महीपतिः । स्वल्पकोशोऽल्पदण्डश्च वैक्लव्यं परमं गतः ।।१५
अपश्यमानः शरणं सबलो द्विजसत्तम । करौ मुखाग्रतः कृत्वा निशश्वासार्तमानसः ।।१६
ततोऽस्य हस्तविवरान् मुखानिलसमाहताः । निर्जग्मुः शतशो योद्धारथनागतुरङ्गमाः ।।१७
ततः क्षणेन तत्सर्वं नगरं तस्य भूपतेः । व्याप्तमासीद् बलौघेन सारेणातिबलान्मुने ।।१८
अथ सोऽतिबलौघेन महता तेन संवृतः निर्गम्य नगरात्तस्मात्तान्विजिग्ये नराधिपः ।।१९
जित्वा च वशमानीय चकार करदान्पुनः । यथापूर्वं महाभाग महाभाग्यो नरेश्वरः ।।२०

और उन सब राजाओं से सार रूप कर को ग्रहण करते हुए उस राजा ने प्रजा का पालन किया ।।१०।।

उसके बाद उसको कर देने वाले, उन सभी अभिमानी राजाओं और जाती वालों ने उन्नति के लिए इसको निरन्तर कर नहीं दिया ।।११।।

जब अपने-अपने राष्ट्रों पर अधिकार किये हुए वे राजा सन्तुष्ट नहीं हुए तो उन राजाओं ने उस राजा की भूमि भी छीन ली ।।१२।।

हे मुने ! अपने राज्य को बल पूर्वक ग्रहण करके वह राजा बहुत से राजाओं के विरोध करने पर भी अपने नगर में ही राज्य करने लगा ।।१३।।

उसके बाद महान् पराक्रमी, साधन (सेना) सम्पन्न, उन राजाओं ने एकत्र होकर उस राजा को नगर में ही घेर लिया ।।१४।।

नगर को घेरने से क्रुद्ध हुआ, वह राजा अत्यल्प कोष और सेना के होने से अत्यन्त विकल हुआ ।।१५।।

हे द्विज श्रेष्ठ ! किसी की शरण को न देखते हुए, अत्यन्त दुःखी मन से मुख को दोनों हाथों से ढक कर दीर्घ निःश्वास छोड़ने लगा ।।१६।।

तब इसके हाथों के छेदों से, निकलती हुई मुख की वायु से सैकड़ों योद्धा, रथ, हाथी और अश्व निकल पड़े ।।१७।।

हे मुने ! इस प्रकार क्षण भर में ही अत्यन्त बलयुक्त सेनाओं के द्वारा उस राजा का सम्पूर्ण नगर व्याप्त हो गया ।।१८।।

तब उस राजा (बलाश्व) ने अपनी उस महान् सेना सहित उस नगर से बाहर निकल कर युद्ध किया और उन (शत्रुओं) पर विजय प्राप्त की ।।१९।।

और फिर कर देने वाले उन राजाओं को जीतकर वश में कर लिया और उस महाभाग्यशाली राजाने उन राजाओं को पुनः कर दाता बनाया ।।२०।।

धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम् । बलं करन्धमस्तस्मात्सबलाश्वोऽभिधीयते ॥२१
स धर्मात्मा महात्मा च समैत्रः सर्वजन्तुषु । करन्धमोऽभवद् भूपस्त्रिषुलोकेषु विश्रुतः ॥२२
सम्प्राप्तस्य परमार्त्ति ददावरिविनाशनम् । बलं धर्मेण चाक्षिप्तमभ्युपेत्य स्वयं नृपम् ॥२३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे करन्धमचरितं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ।

क्योंकि शत्रुओं का दमन करने वाले उस राजा के दोनों हाथों से सेना उत्पन्न हुई थी, इसलिए उस बलाश्व राजा को 'करन्धम' इस नाम से भी पुकारा जाता है ।२१॥

धर्मात्मा, महात्मा और सभी प्राणियों में मित्र भाव रखने वाला वह राजा करन्धम तीनों लोकों में विख्यात हुआ ॥२२॥

इस प्रकार वह राजा अपने धर्म से स्वयं सेना प्राप्त करके, परमार्त्त (दुःखी) प्राणियों के शत्रुओं का नाश करने वाला हुआ ॥२३॥

इस प्रकार श्रीमार्कंडेय महापुराण में करन्धम चरित नामक एक सौ अट्ठारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

वीर्यचन्द्रसुता सुभ्रूर्वीरा नाम शुभव्रता । स्वयंवरे सा जगृहे महाराजं करन्धमम् ॥१
तस्यां पुत्रं स राजेन्द्रो जनयामास वीर्यवान् । अविक्षितमिति ख्यातिमुपेतं जगतीतले ॥२
जाते तस्मिन् सुते राजा स दैवज्ञानपृच्छत । कच्चित् प्रशस्तनक्षत्रे शस्तलग्ने सुतो मम ॥३
कच्चिच्चालोकितं जन्म मम पुत्रस्य शोभनैः । ग्रहैः कच्चिन्न दुष्टानां ग्रहाणां दृक्पथं गतम् ॥४
इत्युक्तास्तेन दैवज्ञास्तमूचुर्नृपतिं ततः । शस्ते मुहूर्ते नक्षत्रे लग्ने चैव सुतस्तव ॥५

मार्कण्डेय बोले—

राजा वीर्यचन्द्र की शुभ्रव्रता वीरा नाम की पुत्री ने महाराज करन्धम का स्वयंवर में वरण किया ॥१॥

उस राजा ने उस (पत्नी) से एक पराक्रमी पुत्र को उत्पन्न किया। जिसने कि इस सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर अविक्षित इस नाम से ख्याति अर्जित की ॥२॥

पुत्र के उत्पन्न होने पर राजा ने ज्योतिषियों से पूछा—मेरे पुत्र ने शुभ नक्षत्र और शुभ लग्न में तो जन्म लिया है न ? ॥३॥

मेरे पुत्र के जन्म (लग्न) स्थान में किन-किन शुभ ग्रहों की दृष्टि पड़ रही है ? किन्हीं दुष्ट ग्रहों के दृष्टिपथ में तो वह नहीं आ रहा है ? ॥४॥

राजा के ऐसा कहने पर वे ज्योतिषी उस राजा से बोले—आपके पुत्र ने उत्तम मुहूर्त, नक्षत्र और लग्न में ही जन्म लिया है ॥५॥

समुत्पन्नो महावीर्यो म ाभागो महाबलः । भविष्यति महाराज महाराजस्तवात्मजः ॥६
अवैक्षतेमं देवानां गुरुः शुक्रश्च सप्तमः । सोमश्चतुर्थस्तनयं तवैनं समवैक्षत ॥७
उपान्तसंस्थितश्चैव सोमपुत्रोऽप्यवैक्षत । नावैक्षतेमं सविता न भौमो न शनैश्चरः ॥८
तव पुत्रं महाराज धन्योऽयं तनयस्तव । सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतो भविष्यति ॥९

मार्कण्डेय उवाच—

इति दैवज्ञवचनं निशम्य वसुधाधिपः । हर्षपूर्णमनाः प्राह निजस्थानगतस्तदा ॥१०
अवैक्षतेमं देवानां गुरुः सोमः सितो बुधः । नावैक्षतैनमादित्यो नार्कसूनुर्न भूमिजः ॥११
अवैक्षतेति यत्प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः । अविक्षितेति तेनास्य ख्यातं नाम भविष्यति ॥१२

मार्कण्डेय उवाच—

अविक्षितः सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः । अस्त्रग्राममशेषं स कण्वपुत्रादथाग्रहीत् ॥१३
स रूपेणतिभिषजौ देवानां पार्थिवात्मजः । बद्ध्या वाचस्पतिं कान्त्या शशाङ्कं तेजसा रविम् ॥१४
धैर्येणाब्धिं तथोर्वीं च सहिष्णुत्वेन वीर्यवान् । शौर्येण न समस्तस्य कश्चिदासन्मीहात्मनः ॥१५

हे महाराज ! इसलिए उत्पन्न हुआ आपका यह पुत्र महाबली, महापराक्रमी और भाग्यवान् महाराज होगा ॥६॥

क्योंकि इसके सप्तम स्थान को देवताओं के गुरु वृहस्पति और शुक्र सप्तम ग्रही होकर देख रहे हैं। और चन्द्रमा चतुर्थ ग्रही होकर, आपके इस पुत्र का अवलोकन कर रहे हैं ॥७।

और ग्यारहवें घर पर चन्द्रमा के पुत्र बुध की दृष्टि हैं। रवि, मंगल और शनि जैसे क्रूर ग्रह इसको नहीं देख रहे हैं ॥८॥

हे महाराज ! आपका यह पुत्र धन्य है। यह सभी कल्याणों से युक्त होकर वैभवशाली होगा ॥९॥

मार्कण्डेय उवाच—

ज्योतिषिओं के इन वचनों को सुनकर अपने सिंहासन पर बैठे हुए, राजा ने हर्ष पूर्ण मन से कहा ॥१०॥

इसके (लग्न को) देवताओं के गुरु वृहस्पति, चन्द्रमा और बुद्ध आदि ग्रह देख रहे हैं और सूर्य, मंगल और शनि इसे नहीं देख रहे हैं ॥११॥

इस प्रकार कहते हुए तुम्हारे द्वारा 'अवैक्षत' पद को बहुत बार कहा गया है। इसलिए यह अविक्षित नाम वाला होगा ॥१२॥

मार्कण्डेय ने कहा—

उस (राजा) के वेद-वेदांगों में पारंगत अविक्षित पुत्र ने कण्व के पुत्र से सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र एवं विद्याओं को प्राप्त किया ॥१३॥

वह पराक्रमी राजपुत्र सौन्दर्य में देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों के समान अति सुन्दर, बुद्धि में वाचस्पति के, कान्ति में चन्द्रमा के और तेज में रवि के ॥१४॥

धैर्य में समुद्र के, सहिष्णुता में पृथ्वी के समान था। और हे महात्मन् ! पराक्रम में कोई भी उसके समान नहीं था ॥१५॥

स्वयंवरे तं जगृहे हेमधर्मात्मजा वरा । सुदेवतनया गौरी सुभद्रा बलिनः सुता ॥१६
लीलावती वीरसुता वीरभद्रसुतानिभा । भीमात्मजा मान्यवती दम्भपुत्री कुमुद्वती ॥१७
याश्चैनं नाभिनन्दन्ति स्वयंवरकृतक्षणाः । ताश्चापि स बलाद्वीरो जग्राह नृपतेः सुतः ॥१८
निराकृत्य नृपान् सर्वांस्तासां पितृकुलानि च । स्वयं हि वीर्यमाश्रित्य बलवान् स बलोद्धतः ॥१९
एकदा तु विशालस्य वैदिशाधिपतेः सुताम् । वैशालिनीं स सुदतीं स्वयंवरकृतक्षणाम् ॥२०
परिभूयाखिलान् भूपान् स्वेच्छया न वृतस्तया । बलाज्जग्राह विप्रर्षे यथान्या बलगर्वितः ॥२१
ततस्ते भूभृ : सर्वे बहुशतेन मानिना । निराकृताः सुनिर्विण्णाः प्रोचुरन्योन्यमाकुलाः ॥२२
क्षमतां वंचनामेतामेकस्माद् बलशालिनाम् । बहूनामेकवर्णानां जन्म धिग् वो महीभृताम् ॥२३
क्षत्रियो यः क्षतात्त्राणं वध्यमानस्य दुर्मदैः । करोति तस्य तन्नाम वृथैवान्ये हि बिभ्रति ॥२४
आत्मनोऽपि क्षतत्राणं दुष्टादस्मादकुर्वताम् । भवतां क्षत्रियकुले जातानां कीदृशी मतिः ॥२५
उच्चार्यते स्तुतिर्या वः सूतमागधबन्दिभिः । सा सत्या मा वृथा वोरा भवत्वरिविनाशनात् ॥२६
चरतां सा तथैवैषा भूपाश्चारैर्दिगन्तरे । पौरुषाश्रयिणः सर्वे विशिष्टकुलसम्भवाः ॥२७

हेम धर्म की पुत्री वरा ने, सुदेव की पुत्री गौरी ने, बलि की पुत्री सुभद्रा ने, वीर की पुत्री लीलावती ने, वीरभद्र की पुत्री निभा ने, भीम की पुत्री मान्यवती ने तथा दम्भपुत्री कुमुद्वतीने उसको स्वयंवर में वरण किया ॥१६-१७॥

और (जिन कन्याओं ने) इसको स्वयंवर के समय वरण नही किया उनका भी उस बलवान् और बलोद्धत वीर राजपुत्र ने, वहाँ उपस्थित सभी राजाओं और उनके पितृकुल को तिरस्कृत करके अपने पराक्रम के अवलम्बन से उन सबको बलपूर्वक हरण कर लिया ॥१८-१९॥

हे विप्रर्षे ! एक बार वैदिश नामक राज्य के राजा विशाल की अच्छे दाँतों वाली पुत्री वैशालिनी को स्वयंवर के अवसर पर उसने सभी राजाओं को पराजित करके स्वेच्छा से अनाचारपूर्वक उन दोनों कन्याओं का उसी प्रकार हरण कर लिया, जिस प्रकार बल के गर्व से उसने अन्य कन्याओं का हरण किया था ॥२०-२१॥

इसके बाद, उस स्वाभिमानी से अनेक बार तिरस्कृत हुए अत्यन्त दुःखी और व्याकुल वे सभी राजा एक दूसरे से कहने लगे ॥२२॥

अकेले इसने बहुत से बलशाली राजाओं की वंचना करके इसका हरण किया हैं। हम सब राजाओं के जन्म को धिक्कार है ॥२३॥

वस्तुतः क्षत्रिय वही होता है जो दुर्मदों के द्वारा मारे जाते हुए पीड़ित की रक्षा करता है। वही अपने नाम को सार्थक भी करता है। अन्यों के लिए तो क्षत्रिय का नाम धारण करना भी व्यर्थ है ॥२४॥

लेकिन क्षत्रिय कुल में उत्पन्न तुम्हारी बुद्धि न जाने कैसी हो गयी है कि इस दुष्ट के द्वारा पीड़ित किये जाते हुए भी तुम लोग अपनी रक्षा नहीं कर पाते हो ॥२५॥

सूत, मागध और बन्दीजनों के द्वारा तुम्हारी जो स्तुति गायी जाती है उसे व्यर्थ मत करो, अपितु शत्रु के विनाश से उसे सत्य कर दिखाओ ॥२६॥

चारणों के द्वारा दिग्दिगन्तरों में उसी प्रकार भूप इस प्रकार की कीर्ति प्रचारित की जाती है और तुम सब श्रेष्ठ कुलों में उत्पन्न हुए वीर और पराक्रमी हो ॥२७॥

विभेति को न मरणात् को युद्धेन विनाऽमरः। विचिन्त्यैतन्न हातव्यं पौरुषं शस्त्रवृत्तिभिः ॥२८
एतन्निशम्य ते भूपा विस्पष्टामर्षपूरिताः। ऊचुः परस्परं सर्वे समुत्तस्थुश्च सायुधाः ॥२९
केचिद्रथानारुरुहुः केचिन्नागांस्तथा हयान्। अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताः पदातयः ॥३०
इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणेऽविक्षिच्चरितं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

वीर पुरुष मृत्यु से कब डरते हैं ? कौन व्यक्ति युद्ध के बिना अमरता प्राप्त कर सकता है ? यह सोचकर क्षत्रियों को कभी पौरुष का त्याग नहीं करना चाहिए ॥२८॥

यह सुनकर वे राजा अत्यधिक क्रोध से भरकर परस्पर वार्तालाप करके अपने हथियार ले-लेकर खड़े हो गये ॥२९॥

उनमें कुछ रथ पर, कुछ हाथियों पर एवं दूसरे घोडों पर सवार हो गये और उनमें से कुछ तो अत्यधिक क्रोध के कारण पैदल ही उस राजा अविक्षित के पास गये ॥३०॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में अविक्षित चरित्र नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

इति संग्रामसज्जास्ते भूपा भूपसुतास्तथा। निराकृताः सुबहुशस्तत्कालञ्चाप्यविक्षिता ॥१
ततो बभूव संग्रामस्तस्य तैः सह दारुणः। एकस्य बहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने ॥२
तेऽसि-शक्ति-गदा-बाण-पाणयस्तं सुदुर्मदाः। अभिघ्नन्तो युयुधिरेतैः समस्तैरसावपि ॥३
स ताञ्छरशतैरुग्रैर्बिभेद नृपनन्दनः। कृतास्त्रो बलवान् बाणैस्ते च तं बिभिदुः शितैः ॥४
कस्यचिच्चिच्छिदे बाहुमन्यस्य च शिरोधराम्। हृदि विव्याध चैवान्यमन्यं वक्षस्यताडयत् ॥५

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार युद्ध के समय अविक्षित के द्वारा अनेक बार पराजित हुए वे राजा और राजपुत्र युद्ध के लिए तैयार हो गये ॥१॥

हे मुने ! उसके बाद उस अकेले राजा का उन बहुत से राजाओं और राजपुत्रों के साथ भयंकर युद्ध हुआ ॥२॥

वे खड्ग, शक्ति, गदा, बाण आदि आयुधों से प्रहार करते हुए और वह भी अकेला सभी के साथ युद्ध करने लगा ॥३॥

शस्त्र धारण किये हुए (शस्त्रास्त्रों में निपुण) बलवान् उस राजपुत्र ने उन सब आयुधों को सैकड़ों भयंकर तीक्षण बाणों से काट डाला ॥४॥

और उसने किसी की भुजा काट डाली और किसी के मस्तक को धराशायी किया और किसी का हृदय भेद डाला तथा अन्यों के वक्ष स्थल पर प्रहार किया ॥५॥

करञ्चिच्छेद करिणस्तुरगस्य तथा शिरः । रथस्येषां तथैवाश्वान् रथस्यान्यस्य सारथिम् ॥६
बाणानापततश्चक्रे द्विधाबाणैस्तथा द्विषाम् । चिच्छेदान्यस्य खड्गञ्च धनुरन्यस्य लाघवात् ॥७
तनुत्रेऽपहृते तेन ननाशान्यो नृपात्मजः । अविक्षिताहतश्चान्यः पदातिः प्रजहौ रणम् ॥८
इत्याकुलीकृते तस्मिन् समग्रे राजमण्डले । तस्थुः सप्तशतं वीरा मरणे कृतनिश्चयाः ॥९
आभिजात्यवयः शौर्य्यलज्जाभारसमन्विताः । निर्जिते सकले सैन्ये पलायनपरायणे ॥१०
तैः समेत्य महीपालैः स तु पुत्रो महीभृतः । युयुधे धर्मयुद्धेन तेन तं नातिकोपितः ॥११
विच्छिन्नयन्त्रकवचान् स तानपि महाबलः । कर्त्तुं व्यवस्थितस्ते च ततः क्रुद्धा महामुने ॥१२
धर्ममुत्सृज्य युयुधुर्युध्यमानेन धर्मतः । नरेन्द्रपुत्राः प्रस्वेदजलविलन्ना ननाः समम् ॥१३
विव्याध कश्चिद् बाणौघैः कश्चिच्चिच्छेद कार्मुकम् ।
ध्वजमस्यापरो बाणैश्छित्वा भूमावपातयत् ॥१४
जघ्नुरन्ये तथैवाश्वान् बभञ्जुश्चापरे रथम् । गदापातेनाथ चान्ये बाणैः पृष्ठमताडयन् ॥१५
छिन्ने धनुषि सक्रोधः स तदा नृपतेः सुतः । जग्राहासिं तथा चर्मतदप्यन्योऽन्वपातयत् ॥१६

हाथी के सूंड को, घोड़ों के सिरों को काट डाला और उसी प्रकार इनके रथों के घोड़ों को तथा कुछ के रथ के सारथियों को ही मार डाला ॥६॥

और शत्रुओं के बरसते हुए बाणों को अपने बाणों से दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया और किसी के धनुष को तो किसी की तलवार को ही क्षण भर में काट डाला ॥७॥

कोई वीर कवच के कट जाने से मारा गया और कोई पैदल युद्ध करने वाला राजपुत्र अविक्षित के द्वारा घायल होकर युद्ध-क्षेत्र से हट गया ॥८॥

इस प्रकार उस सम्पूर्ण राजमण्डल को व्याकुल कर देने पर केवल सात सौ वीर मरने का दृढ़ निश्चय करके युद्ध में डटे रहे ॥९॥

अपने वंश अवस्था और शौर्य का विचार करके लज्जा के भार के कारण भागती हुई सम्पूर्ण सेना के जीत लिये जाने पर, वह राजा का पुत्र अकेला ही एकत्रित उन सभी राजाओं के साथ अत्यधिक क्रुद्ध होकर एकत्र हुए उन राजाओं के साथ धर्म-युद्ध करने लगा ॥१०–११॥

हे महामुने ! जब वह महाबली उनके भी अस्त्रों और कवच आदि को काटने लगा तो क्रुद्ध हुए वे सब राजागण इकट्ठे होकर, पसीने से लथपथ मुख वाले, धर्मपूर्वक युद्ध करते हुए उस राजपुत्र के साथ धर्म का परित्याग करके युद्ध करने लगे ।.१२–१३॥

किसी ने बाणों के समूह से इसका शरीर छेद डाला तो किसी ने इसका धनुष काट डाला और इसकी ध्वजा को भी बाणों द्वारा काट कर भूमि पर गिरा दिया ॥१४॥

और उसी प्रकार किसी ने इसके अश्वों को मार डाला और किसी ने गदा तथा बाणों से पीछे से प्रहार करते हुए उसके रथ को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥१५॥

धनुष के कटने पर क्रुद्ध हुए राजपुत्र ने तलवार और ढाल को उठा लिया। परन्तु किसी अन्य ने उसको भी काट डाला ॥१६॥

च्छिन्नासिचर्मा जग्राह स गदां गदिनां वरः। तामप्यन्यः क्षुरप्रेण चिच्छेदकृतहस्तवत् ॥१७
अन्ये शरसहस्रेण शतेनान्ये नराधिपाः। विव्यधुः कोष्ठकीकृत्य धर्मयुद्धपराङ्मुखाः ॥१८
स विह्वलः पपातोर्व्यामेको बहुभिरर्दितः। राजपुत्रा महाभागा बबन्धुस्ते च तं ततः ॥१९
तमधर्मेण ते सर्वे गृहीत्वा नृपतेः सुतम्। विशालेन समं राज्ञा वैदिशं विविशुः पुरम् ॥२०
हृष्टाः प्रमुदिता बद्धं समादाय नृपात्मजम्। स्वयंवरा च सा कन्या न्यस्ता तेन ततः पुरः ॥२१
पुनः पुनश्च पित्रोक्ता तथापि च पुरोधसा। आलम्ब्यतामिति वरो यस्ते राजसु रोचते ॥२२
यदा सा मानिनी कञ्चिन्न जग्राह वरं मुने। तदा पप्रच्छ दैवज्ञं विवाहार्थं नरेश्वरः। ॥२३
विशिष्टतरं मे तस्या विवाहाय दिनं वद। अद्यैतदीदृक् संजातं युद्धं विघ्नोपपादकम् ॥२४

मार्कण्डेय उवाच—

इति पृष्टो नरेन्द्रेण स दैवज्ञो विमृश्य तत्। दुर्मनाः प्राह विज्ञातपरमार्थो महीपतिम् ॥२५
भविष्यन्त्यपराणीह दिनानि पृथिवीपते। प्रशस्तलग्नयुक्तानि शोभनान्यचिरेण वै ॥२६
करिष्यसि विवाहं त्वं तेषु प्राप्तेषु मानद। अलमेतेन यत्रायं महाविघ्न उपस्थितः ॥२७

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणेऽविक्षिच्चरितवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

ढाल और तलवार के कटने पर गदाधारियों में श्रेष्ठ उसने गदा उठायी। उसको भी एक अन्य व्यक्ति ने क्षुरप्र से इस प्रकार काट डाला मानो उसे हाथ में लिया ही नहीं था ॥१७॥

इसके बाद धर्म-युद्ध से पराङ्मुख हुए उन राजाओं ने उसको घेर कर किन्हीं ने हजारों बाणों से, किन्हीं ने सैकड़ों बाणों से उसे घायल कर दिया ॥१८॥

इस प्रकार अकेला वह बहुतों के द्वारा पीड़ित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसके बाद उन राजाओं ने उसको बांध लिया ॥१९॥

अधर्म युद्ध के द्वारा वे सब उस राजपुत्र को पकड़ कर विशाल राजा के साथ वैदिशपुर मे प्रविष्ट हुए ॥२०॥

बांधे गये उस राजपुत्र को ले जाकर वे सभी राजा अत्यधिक प्रसन्न और प्रफुल्लित हुए। उसके बाद वह स्वयंवरा कन्या बाँधे गये उसके सामने लायी गयी ॥२१॥

तत्पश्चात् पिता, राजा और पुरोहितों ने स्वयंवरा कन्या से बार-बार कहा, 'इन राजाओं में तुमको जो अच्छा लगे उसका वरण कर लो' ॥२२॥

हे मुने! जब उस मानिनी ने किसी राजा को वर रूप में ग्रहण नहीं किया, तब राजा ने ज्योतिषियों से विवाह के लिए पूछा और कहा—॥२३॥

आज तो यह इस प्रकार का विघ्न उत्पन्न करने वाला युद्ध उपस्थित हो गया, इसलिए इसके विवाह के लिए आप अन्य कोई विशिष्ट दिन बताईये ॥२४॥

मार्कण्डेय बोले—

राजा के इस प्रकार पूछने पर परमार्थ जानने वाले उस ज्योतिषी ने विचार करके खिन्न मन से राजा से कहा – हे पृथिवीपते! प्रशस्त लग्न वाले दूसरे शोभन दिन शीघ्र ही आयेंगे ॥२५-२६॥

हे मानद! उसी दिन के आने पर आप अपनी कन्या के विवाह की व्यवस्था करें। इस दिन इस विवाह के कार्य को न कीजिए क्योंकि यहाँ तो यह महा विघ्न उपस्थित हो गया है ॥२७॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में अविक्षित चरित वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततः शुश्राव तं बद्धं तनयं स करन्धमः । तस्य पत्नी तथा वीरा अन्ये चापि महीभृतः ॥१
तमधर्मेण तनयं बद्धं श्रुत्वा महीपतिः । समन्तैः पृथिवीपालैश्चिरं दध्यौ महामुने ॥२
केचिदूचुर्महीपाला वध्याः सर्वे महीभृतः । यैरेकः संयुगे बद्धः समस्तैस्तैरधर्मतः ॥३
युज्यतां वाहिनी शीघ्रमूचुरन्ये किमास्यते । विशालो बध्यतां दुष्टस्तत्र येऽन्ये समागताः ॥४
अन्ये तथोचुधर्मोऽत्र त्यक्तः पूर्वमहीक्षिता । अन्यायेन बलाद्येन एहीता तमवांछती ॥५
स्वयंवरेष्वशेषेषु तेन राजसुतास्तदा । खिलीकृतास्ततः सर्वे समेत्य स वशीकृतः ॥६
तेषामेतद् वचः श्रुत्वा वीरा वीरप्रजावती । वीरगोत्रसमुद्भूता वीरपत्नी प्रहर्षिता ॥७
उवाच भर्त्तुः प्रत्यक्षमन्येषां च महीक्षिताम् । भद्रं कृतं भद्रभुजा मम पुत्रेण पार्थिवाः ॥८
गृहीता यद्बलात्कन्या जित्वा सर्वमहीक्षितः । तदर्थं युध्यमानोऽयं बद्ध एको न धर्मतः ॥९
तदप्यस्मत् सुतस्याजौ मन्ये नापचयप्रदम । एतदेव हि पौरुष्यं यदमर्षवशान्नरः ॥१०

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद राजा करन्धम और उसकी पत्नी वीरा और दूसरे राजाओं ने पुत्र के बाँधे जाने का समाचार सुना ॥१॥

हे महामुने ! तब अधर्म से पुत्र को बंधा हुआ सुनकर राजा ने राजाओं और सामन्तों के साथ बहुत देर तक मन्त्रणा की ॥२॥

उनमें कुछ राजाओं ने कहा कि वे सभी राजा वध के योग्य हैं क्योंकि जिन्होंने एक जुट होकर अधर्मपूर्वक उस अकेले को बांध लिया है ॥३॥

और दूसरे बोले—अरे ! सेना तैयार करो, आप सब क्यों बैठे हुए हैं। अब तुरन्त उस दुष्ट राजा विशाल को एवं वहाँ जो अन्य राजा आये हुए हैं, उन सब को बाँध लो ॥४॥

तथा कुछ दूसरों ने कहा इस सम्बन्ध में तो पहले उस राजपुत्र ने ही धर्म का त्याग किया है। क्योंकि उसने वरण करने के लिए अनिच्छुक राजकन्या का बलपूर्वक हरण किया है ॥५॥

दूसर बहुत से स्वयंवरों में भी उस राजकुमार ने इसी प्रकार कन्याओं का हरण किया है। इसीलिए उन सबने मिलकर उसको बाँध लिया है ॥६॥

उनके इन वचनों को सुनकर वीरप्रसविनी, वीर वंश में उत्पन्न वीर पत्नी वीरा प्रसन्न होकर पति महाराज करन्धम तथा अन्य सामन्तों के सामने बोली—भद्र भुजाओं वाले मेरे पुत्र ने यदि सब राजाओं को जीतकर कन्या को बलपूर्वक ग्रहण किया है, उसके लिए युद्ध करते हुए उस (राजकुमार) को अधर्म से अकेले को बाँध लिया गया है तो उसको भी मैं अपने पुत्र का युद्ध में अपमान नहीं मानती हूँ। क्योंकि यही पौरुष कहलाता है कि क्रोधी से भी मनुष्य भयभीत न हो ॥७-१०॥

नीतिं न गणयत्येवं जिघांसुरिव केसरि । स्वयंवराय विन्यस्ताम मम पुत्रेण कन्यका ।।११
बह्व्यो गृहीता भूपानां पश्यतामतिमानिनाम् । क्व क्षत्रियकुले जन्म क्व याञ्चाहीनसेविता ।।१२
बलादेव समादत्ते क्षत्रियो बलिनां पुरः । लोहश्रृङ्खलबद्धा न वशं यान्ति कातराः ।।१३
प्रसह्यकारिणो यान्ति राजानो धर्मशालिनः । तदलं दौर्मनस्येन श्लाघ्यमेवास्य बन्धनम् ।।१४
युष्माकमपि ये पूर्वे कृत्वाऽरीणां निपातनम् । हृत्वैव पृथिवीशानां पृथ्व.पुत्रादिकं वसु ।।१५
भार्या वीर्यनिमित्तानि ततो यातातिगौरवम् । तत् त्वर्य्यतां रणायाशु स्यन्दनान्यधिरोहत ।।१६
सज्जो कुरुत नागाश्वमचिरेण ससारथिम् । मन्यध्वं किं महीपालैर्बहुभिः सह विग्रहम् ।।१७
प्रभूता एव तोषाय शूरस्याल्प रणे क्रियाः । कस्य नाल्पेषु सामर्थ्यं नरेन्द्रादिषु जायते ।।१८

येभ्यो न विद्यते भीतिर्विक्रान्तस्यापि शत्रुषु ।
व्याप्य लोकान् समस्तान्यो ह्यभिभूय ततो नरः ।।
व्यरोचतेति शूरः स तमांसीव दिवाकरः ।।१९

मार्कण्डेय उवाच —

इत्थमुर्द्धषितो राजाऽनया पत्न्या करन्धमः । चकार स बलोद्योगं हन्तुं पुत्राहितान् मुने ।।२०

और धर्म, अधर्म की चिन्ता किये बिना सिंह के समान सदैव शत्रुओं को मारने में तत्पर रहे। अतिमानी राजाओं के देखते-देखते स्वयंवर के लिए उपस्थित की गयी बहुत सी कन्याओं का मेरे पुत्र ने (बलपूर्वक) अपहरण किया। कहाँ तो क्षत्रिय कुल में जन्म और कहाँ याचना जैसी हीन वृत्ति का सेवन ? ।।११-१२।।

क्षत्रिय तो बलवानों के सामने बलपूर्वक ही किसी वस्तु को ग्रहण करता है। लोहे की जंजीर में बाँधे जाने पर भी कायर मनुष्यों के समान परवशता स्वीकार नहीं करता है ।।१३।।

(इसलिए) धर्म प्रवृत्ति वाले राजा लोग तो प्रथम वीरता प्रदर्शन करके पश्चात् वशवर्ती भी हो जाते हैं। इसलिए मन को खिन्न नहीं करना चाहिए। वस्तुतः तो इसका इस प्रकार बंधना प्रशंसनीय ही है ।:१४।।

तुम्हारे भी पूर्वजों ने शत्रुओं का वध करके और राजाओं की पृथ्वी का हरण करके उनके राज्य, कोष, पुत्र, भार्या आदि को बलपूर्वक जीतकर ही परम गौरव प्राप्त किया। इसलिए युद्ध के लिए शीघ्रता करो और शीघ्र रथों पर आरूढ़ होओ तथा शीघ्र ही सारथि सहित हाथी, घोड़ों और रथों को भी तैयार करो। आप लोग क्या बहुत से राजओं के साथ इस युद्ध को कठिन मान रहे हैं ।।१५-१७।।

छोटे युद्ध में भी बड़ा पराक्रम दिखाकर, शूरवीर को संतोष होता है। थोड़े से नरेन्द्रादिकों में सामर्थ्य प्रकट करने की किसकी (इच्छा) नहीं होती ? ।।१८।।

जिसको शक्तिशाली शत्रुओं से भी भय नहीं होता और जो समस्त लोकों को अपने पराक्रम से व्याप्त करके, शत्रुओं को पराजित करता है, वह शूरवीर अंधकार में सूर्य के समान दीप्तिमान् होकर भासित होता है ।।१९।।

मार्कण्डेय बोले —

हे मुने ! इस प्रकार राजा करन्धम की पत्नी के द्वारा उत्साहित किये गये वे सब राजा सेनाओं के साथ, पुत्र को मारने वाले उन शत्रुओं को मारने के लिए तैयार हो गये ।।२०।।

ततस्तस्य समं भूपैर्विशालेन च सङ्गरः । बभूव बद्धपुत्रस्य तैरशेषैर्महामुने ॥२१
दिनत्रयमभूद्युद्धं तेन राज्ञा समं तदा । करन्धमेन भूपानां विशालस्यानुकुर्वताम् ॥२२
यदा पराजितप्रायं तत्सर्वं भूपमण्डलम् । तदा विशालोऽर्घ्यकरः करन्धममुपस्थितः ॥२३
करन्धमोऽपि सम्प्रीत्या तेन राज्ञाऽभिपूजितः । विमुक्ते तनये तत्र निशां तां सुखमावसत् ॥२४
तां च कन्यामुपादाय विशालं समुपस्थितम् । अविक्षित् प्राह विप्रर्षे विवाहार्थं पितुः पुरः ॥२५
नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप । परैर्यस्या निरीक्षन्त्याः संग्रामेऽहं पराजितः ॥२६
अन्यस्मै सम्प्रयच्छेमामियञ्चान्यं वृणोतु तम् । अखण्डितयशो वीर्यो यः परैर्नापमानितः ॥२७
परैः पराजितोऽहं यत्कातरेयं यथाऽबला । किमत्र मानुषत्वं मे नैतस्या मम चान्तरम् ॥२८
स्वतन्त्रता मनुष्याणां परतन्त्रा सदाऽबला । नरोऽपि परतन्त्रो यस्तस्य कीदृङ् मनुष्यता ॥२९
सोऽहमस्या मुखं भूयो दृष्टं दर्शयिता कथम् । योऽहमस्याः पुरो भूमौ परैर्भूपैः खिलीकृतः ॥३०

हे महामुने ! इसके बाद उसके पुत्र को बाँधने वाले समस्त राजाओं और राजा विशाल के साथ (करन्धम) का घोर युद्ध हुआ ॥२१॥

इस प्रकार विशाल का अनुकरण करने वाले राजाओं का राजा करन्धम के साथ तीन दिनों तक युद्ध हुश्र ॥२२॥

जब वह समस्त राजमण्डल लगभग पराजित हो गया। तब राजा विशाल हाथ में अर्घ्य लेकर करन्धम के सामने उपस्थित हुआ ॥२३॥

और राजा करन्धम ने भी उस राजा के द्वारा की गयी पूजा को प्रेमपूर्वक ग्रहण किया। पुत्र के मुक्त होने पर उस रात वहीं विश्राम किया ॥२४॥

तब राजा विशाल उस कन्या को लेकर विवाह के लिए उपस्थित हुए, हे विप्रर्षे ! तब अविक्षित ने पिता के सामने ही कहा—॥२५॥

हे राजन् ! अब मैं न तो इसको और नहीं अन्य स्त्री को ही (विवाह के लिए) ग्रहण करूँगा, क्योंकि इसके देखते हुए मैं शत्रुओं द्वारा पराजित किया गया हूँ ॥२६॥

आप इसे किसी अन्य व्यक्ति को प्रदान कीजिए, और यह भी अन्य का वरण कर ले। इसका विवाह किसी दूसरे के साथ कीजिए। जिसका पराक्रम और यश अखण्डित हो और जो शत्रुओं के द्वारा पराजित न हुआ हो ॥२७॥

जब शत्रुओं से कातर अबला के समान पराजित हो गया हूँ तो मेरा पुरुषत्व ही क्या रहा अब मैं उसमें और अपने में कुछ अन्तर नहीं मानता हूँ ॥२८॥

मनुष्यों की स्वतन्त्रा प्रशंसनीय होती हैं और परतन्त्रता सदैव अबलाओं के लिए ही उचित है। जो पुरुष परतन्त्र होता है, उसको मनुष्य (पुरुष) कैसे कहा जा सकता है ? ॥२९॥

इसलिए मैं इसको अपना मुख कैसे दिखाऊँगा और इसको कैसे देखूंगा क्योंकि मैं इसके सामने ही शत्रु राजाओं के द्वारा भूमि पर तिरस्कृत किया गया हूँ ॥३०॥

इत्युक्ते तेन तनयामुवाच जगतीपतिः । श्रुतं ते वचनं वत्से वदतोऽस्य महात्मनः ॥
वरयान्यं पतिं यत्र मनस्ते रमते शुभे ॥३१
वयं वा संप्रयच्छामो यस्मिंस्तस्मिंस्तवादृतिः । एतयो ह्येकमातिष्ठ मार्गयो रुचिरानने ॥३२

कन्योवाच —

पराजितोऽयं बहुभिर्न सम्यक् सम्यगाचरन् । संग्रामे तद्यशो वीर्यहानिकारि न पार्थिव ॥३३
एको बहूनां युद्धाय गजानामिव केसरी । यत्संस्थितः परं शौर्यं तेनास्य प्रकटीकृतम् ॥३४
न केवलमयं तस्थौ युद्धे तेऽप्यखिलाजिताः । बहुशोऽनेन यत्नेन विक्रमोऽपि प्रकाशितः ॥३५
शौर्यविक्रमसंयुक्तमिमं सर्वमहीक्षितः । धर्मयुद्धमधर्मेण जितवन्तोऽत्र का त्रपा ॥३६
न चापि रूपमात्रेऽहं लोभमस्य गता पितः । शौर्यविक्रमधैर्याणि हरन्त्यस्य मनो मम ॥३७
तत्किमुक्तेन बहुना याच्यतां मत्कृते नृपः । त्वया महानुभावोऽयं नान्यो मे भविता पतिः ॥३८

विशाल उवाच —

राजपुत्र सुता प्राह ममैतच्छोभनं वचः । एवं चैव त्वया तुल्यः कुमारो न महीतले ॥३९

उसके ऐसा कहने पर राजा विशाल ने अपनी पुत्री से कहा—हे वत्से ! तुमने कहते हुए इन महात्मा राजकुमारों की बात सुन ली । हे शुभे ! जो तुम्हारे मन को अच्छा लगे उस अन्य पति का वरण कर लो ॥३१॥

अथवा हम तो तुम्हें उसी को प्रदान कर देंगे, जिसमें तुम्हारा सम्मान होगा । हे रुचिरानने ! इन दोनों मार्गों में से एक मार्ग का अवलम्बन कर लो ॥३२॥

कन्या बोली —

यह बहुत से राजाओं से भली प्रकार आचरण करते हुए पराजित नहीं हुआ है । इसलिए हे राजन् ! इसका यश अथवा वीर्य की युद्ध में कोई हानि नहीं हुई है ॥३३॥

बहुत से हाथियों में एक सिंह के समान अकेले ही बहुतों से युद्ध करते हुए, पराक्रम प्रदर्शित करते हुए युद्ध में खड़े रहे इससे इनका अति शौर्य प्रकट हो गया है ॥३४॥

ये केवल युद्ध में ही नहीं खड़े रहे अपितु उन सबको इन्होंने विजित भी किया । इस प्रकार इन्होंने बहुत प्रकार की चेष्टाओं से अपने पराक्रम का प्रकाशन किया है ॥३५॥

फिर धर्म पूर्वक युद्ध करते हुए, शौर्य और पराक्रम से युक्त इनको, सभी राजाओं ने अधर्म के द्वारा यदि जीत भी लिया तो इसमें लज्जा की कौन सी बात है ? ॥३६॥

पिता जी, मैं इनके केवल रूप के ही लोभ में नहीं आयी हूँ, अपितु इनके शौर्य, पराक्रम और धैर्य आदि सभी ने मेरे मन को हर लिया है ॥३७॥

इसलिए हे राजन् ! अधिक कहने से क्या ? आप इन्हीं महानुभाव को मेरे लिए समझाइये । अब मेरा अन्य कोई पति नहीं होगा ॥३८॥

विशाल ने कहा —

हे राजपुत्र ! मेरी पुत्री ने ठीक ही कहा है कि तुम्हारे समान इस पृथ्वी तल पर अन्य कुमार नहीं है ॥३९॥

अविसंवादिते शौर्यमतीव च पराक्रमः । पावयास्मत् कुलं वीर दुहितुर्मे परिग्रहात् ।।४०

राजपुत्र उवाच—

नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप । आत्मन्येव हि मे बुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेश्वर ।।४१

मार्कण्डेय उवाच—

ततः करन्धमः प्राह पुत्रेयं गृह्यतां त्वया । विशालतनया सुभ्रूस्त्वयि हार्दवती दृढम् ।।४२

राजपुत्र उवाच—

नाज्ञाभङ्गः कदाचित्ते कृतः पूर्वं मया प्रभो । तथाऽऽज्ञापय मां तात यथाज्ञां करवाणि ते ।।४३

मार्कण्डेय उवाच—

अत्यन्तनिश्चितमतौ तस्मिन् राजसुते सुताम् । तामुवाच विशालोऽपि व्याकुलीकृतमानसः ।।४४

निवर्त्यतां मनः पुत्रि एतस्माच्च प्रयोजनात् । अन्यं वरय भर्त्तारं सन्त्यनेके नृपात्मजाः ।।४५

कन्योवाच—

वरं वृणोम्यहं तात मामेष यदि नेच्छति । तपसाऽन्यो न मे भर्त्ता जन्मन्यस्मिन् भविष्यति ।।४६

क्योंकि तुम्हारा शौर्य और अति पराक्रम संदेह रहित हैं। इसलिए हे वीर ! मेरी कन्या को स्वीकार करके हमारे कुल को पवित्र करो ।।४०।।

राजपुत्र बोला—

हे राजन् ! मैं न तो इसे और न ही अन्य स्त्री को ही ग्रहण करूँगा क्योंकि, हे मनुजेश्वर ! अपने सम्बन्ध में मेरी बुद्धि स्त्रीमयी हो गयी है ।।४१।।

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद करन्धम ने कहा—हे पुत्र ! सुन्दर भौहों वाली यह राजा विशाल की कन्या तुममें ही दृढ़ हृदय वाली है, इसलिए तुम्हीं इसको ग्रहण करो ।।४२।।

राजपुत्र बोला—

हे प्रभो ! मैंने पहले कभी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया है। इसलिए हे तात ! आप मुझे आज्ञा दीजिए जिसका मैं पालन कर सकूँ ।।४३।।

मार्कण्डेय बोले—

पुत्री की उसी राजपुत्र में दृढ़ निश्चय वाली बुद्धि देखकर, व्याकुल मन वाले राजा विशाल ने भी उस (पुत्री) से कहा—।।४४।।

हे पुत्री ! इस प्रयोजन से अपने मन को लौटा लो, यहाँ बहुत से राजकुमार (उपस्थित) हैं, इनमें किसी को भी अपना पति चुन लो ।।४५।।

कन्या बोली—

मैं अन्य वर का वरण कर लूँ ? हे तात ! यदि ये मुझको नहीं चाहते हैं तो इस जन्म में मेरा तप के अतिरिक्त अन्य कोई पति नहीं होगा ।।४६।।

मार्कण्डेय उवाच—

ततः करन्धमो राजा विशालेन समं मुदा । स्थित्वा दिनत्रयं तत्र निजमभ्याययौ पुरम् ।।४७
अविक्षितोऽपि तेनैव पित्राऽन्यैश्च नराधिपैः । निदर्शनैः पुरावृत्तैः सान्त्वितोऽभ्यागमत् पुरम् ।।४८
सापि कन्या वनं गत्वा निसृष्टानिजबान्धवैः । ततस्तेपे निराहारा वैराग्यं परमास्थिता ।।४९
निराहारा यदा सा तु मासत्रयमवस्थिता । सम्प्राप परमामार्तिं कृशा धमनिसन्तता ।।५०
मन्दोत्साहाऽतितन्वङ्गी मुमूर्षुरपि बालिका । देहत्यागाय सा चक्रे तदा बुद्धिं नृपात्मजा ।।५१
आत्मत्यागाय तां ज्ञात्वा कृतबुद्धिंसुरास्ततः । समेत्य प्रेषयामासुर्देवदूतं तदन्तिकम् ।।५२
समुपेत्य स तां प्राह दूतोऽहं पार्थिवात्मजे । प्रेषितस्त्रिदशै स्तुभ्यं यत्कार्यं तन्निशामय ।।५३
न भवत्या परित्याज्यं शरीरमतिदुर्लभम् । त्वं भविष्यसि कल्याणि जननी चक्रवर्तिनः ।।५४
पुत्रेण च महाभागे भोक्तव्या निहतारिणा । अव्याहताज्ञेन चिरं सप्तद्वीपवती मही ।।५५
हन्तव्यस्तेन तरुजिद्देवानां पुरतो रिपुः । अयः शंकुस्तथा क्रूरो धर्मे स्थाप्यास्ततः प्रजाः ।।५६
परिपालनीयमखिलं चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मतः । हन्तव्या दस्यवो म्लेच्छा ये चान्ये दुष्टचेष्टिताः ।।५७

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद राजा करन्धम तीन दिन तक राजा विशाल के यहाँ प्रसन्नतापूर्वक ठहरकर पुनः अपने नगर में लौट आया ।।४७।।

अविक्षित भी पिता तथा अन्य राजाओं के द्वारा पुरा ऐतिहासिक उदाहरणों के द्वारा सान्त्वना देने पर उन्हीं के साथ नगर में लौट आया ।।४८।।

और वह कन्या भी अपने बन्धुओं से विदा लेकर वन में जाकर, परम वैरागी होकर, निराहार रहते हुए तप करने लगी ।।४९।।

जब उसने तीन महीनों तक निराहार रहते हुए तप किया तो वह अत्यन्त दुर्बल हो गयी और उसकी नसें दिखायी पड़ने लगीं ।।५०।।

तब अत्यन्त दुबले अंगों वाली, मरणासन्न हुई राजपुत्री उस बालिका ने निरुत्साहित होकर अपना शरीर त्यागने का निश्चय किया ।।५१।।

तब देवताओं ने उसको आत्म हत्या करने की इच्छुक जानकर उसके पास एक देवदूत भेजा ।।५२।।

वह दूत उसके पास जाकर बोला—हे नृपात्मजे ! मुझे देवताओं ने तुम्हारे पास भेजा है । तुमको जो कार्य करना चाहिए, उसे सुनो ।।५३।।

तुमको अत्यन्त दुर्लभ इस शरीर को नहीं त्यागना चाहिए । हे कल्याणि ! तुम चक्रवर्ती पुत्र की माता बनोगी ।।५४।।

हे महाभागे ! तुम्हारा पुत्र समस्त शत्रुओं को मारकर चिरकाल तक, बिना किसी विरोध के, सप्त द्वीपों वाली, इस पृथ्वी का उपभोग करेगा ।।५५।।

और वह देवताओं के समक्ष तरुजित् और क्रूर अयः शंकु का वध करने वाला होगा तथा उसके बाद प्रजा को धर्माचरण में स्थित करेगा ।।५६।।

उसके राज्य में सभी चारों वर्ण अपने धर्मों का पालन करेंगे और वह दस्युओं, म्लेच्छों तथा अन्य दुष्ट चेष्टा वालों को मारने वाला होगा ।।५७।।

यष्टव्यं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । वाजिमेधादिभिर्भद्रे षट्सहस्रैश्च संख्यया ॥५८

मार्कण्डेय उवाच —

तं दृष्ट्वा साऽन्तरिक्षस्थं दिव्यस्रगनुलेपनम् । देवदूतमुवाचेदं राजपुत्री ततो मृदु ॥५९

सत्यं त्वमागतः स्वर्गाद्देवदूतो न संशयः । किन्तु भर्त्रा विना पुत्रः स कथं मे भविष्यति ॥६०

अविक्षितमृते भर्त्ता मम नान्योऽत्र जन्मनि । भवितेति प्रतिज्ञातं मयैतत् सन्निधौ पितुः ॥६१

स च नेच्छति मां प्रोक्तो मत्पित्रा जनकेन च । करन्धमेनाथ सम्यग् याचितश्च मया तथा ॥६२

देवदूत उवाच—

किमनेन महाभागे बहुनोक्तेन ते सुतः । समुत्पत्स्यति मा त्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्मतः ॥६३

अत्रैव कानने तिष्ठ तनुं क्षीणां च पोषय । तपः प्रभावादेतत्ते सर्वं साधु भविष्यति ॥६४

मार्कण्डेय उवाच —

इत्युक्त्वा देवदूतोऽसौ यथागतमगच्छत । चकारानुदिनं सुभ्रूः साप्यात्मतनुपोषणम् ॥६५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणेऽविक्षितचरित्रवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

और हे भद्रे ! वह उत्तम दक्षिणाओं के द्वारा समाप्त होने वाले छः सहस्र संख्या वाले अश्वमेधादिक विविध प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करेगा ॥५८॥

मार्कण्डेय बोले —

दिव्य मालाओं से युक्त, अन्तरिक्ष में स्थित उस (देवदूत) को देखकर, वह राजपुत्री देवदूत से मृदु वचनों में इस प्रकार बोली—॥५९॥

आप स्वर्ग से आये हुए देवदूत हैं, यह सत्य ही है इसमें संशय नहीं है। किन्तु पति के बिना मुझे पुत्र किस प्रकार होगा ? ॥६०॥

और पिता के सामने मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि मेरे इस जन्म में अविक्षित को छोड़कर मेरा अन्य कोई पति नहीं होगा ॥६१॥

लेकिन मेरे पिता और अपने पिता करन्धम के कहने पर भी वह मुझे नहीं चाहता है और (इसके अतिरिक्त) मैंने भी उससे बहुत प्रार्थना की है ॥६२॥

देवदूत बोला—

हे महाभागे ! इस बहुत अधिक कहने से क्या लाभ ? तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। इसलिए तुम अधर्म पूर्वक अपने शरीर का त्याग मत करो ॥६३॥

और इसी वन में रहो तथा अपने क्षीण शरीर का पोषण करो। तुम्हारे इस तप के प्रभाव से सभी कुछ ठीक ही होगा ॥६४॥

मार्कण्डेय बोले—

यह कहकर वह देवदूत जिस प्रकार आया था, उसी प्रकार चला गया और वह सुभ्रू (सुन्दरी) भी प्रतिदिन अपने शरीर का पोषण करने लगी ॥६५॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में अविक्षित चरित वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

अथ साऽविक्षितो माता वीरा वीरप्रजावती । पुण्येऽहनि समाहूय प्राह पुत्रमविक्षितम् ॥१
पुत्राहमभ्यनुज्ञाता तव पित्रा महात्मना । उपवासं करिष्यामि दुष्करोऽयं किमिच्छकः ॥२
स चायत्तस्तव पितुस्त्वया साध्यो मयापि च । प्रतिज्ञाते त्वया पुत्र ततस्तत्र यताम्यहम् ॥३
द्रव्यस्यार्द्धं महाकोशात् तव दास्याम्यहं पितुः । धनं ते पितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मि तेन च ॥४
क्लेशसाध्यो मदायत्तः स हि श्रेयो भविष्यति । साध्यो भवेद् वा यदि ते कश्चिद् बलपराक्रमैः ॥५
स तेऽसाध्यो ह्यन्यथा वा दुःखसाध्यो भविष्यति । तत्त्वं प्रतिज्ञां कुरुषे यदि पुत्रात्र चैव ते ॥
तदैतदहमावाप्स्ये कथ्यतां यन्मतं तव ॥६

अविक्षिदुवाच —

वित्तं मे पितुरायत्तं मत्स्वामित्वं न तत्र वै । यन्मच्छरीरनिष्पाद्यं तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥७
किमिच्छकं व्रतं मार्तार्निश्चिन्ता भव निर्व्यथा । राज्ञा पित्राऽभ्यनुज्ञातं यदि वित्तेश्वरेण मे ॥८

मार्कण्डेय बोले—

तब वीर प्रसविनी अविक्षित की उस माता वीरा ने शुभ दिन में अपने पुत्र अविक्षित को बुलाकर कहा—॥१॥

हे पुत्र ! तुम्हारे पिता से आज्ञा प्राप्त करके मैं अत्यन्त दुष्कर इस किमिच्छक उपवास को करूँगी। यह किमिच्छक व्रत अति दुष्कर है ॥२॥

वह (उपवास) तुम्हारे पिता के अधीन और तुम्हारे और मेरे द्वारा साध्य है। हे पुत्र ! जब तुम (उसे पूर्ण कराने की) प्रतिज्ञा करो तो मैं उसको करने का प्रयत्न करूँगी ॥३॥

तुम्हारे पिता के कोष से मैं सम्पूर्ण कोष का आधा भाग दान करूँगी। धन तो तुम्हारे पिता के अधीन हैं। उन्होंने मुझे आज्ञा प्रदान कर दी है ॥४॥

शारीरिक कष्ट सहना मेरा कार्य है, वह मैं भली प्रकार करूँगी, और उसे उपवास में जो कुछ बल और पराक्रम के द्वारा साध्य होगा तो वह तुम्हें करना होगा। अन्यथा वह व्रत दुःसाध्य ही है। इसलिए हे पुत्र यदि तुम इसे पूर्ण कराने की प्रतिज्ञा करते हो तो ही मैं इस व्रत को आरम्भ करूँगी। इसलिए जो तुम्हारा मत हो उसे कहो ॥५-६॥

अविक्षित बोला —

धन तो मेरे पिता के अधिकार में है, मेरा उस पर कोई स्वामित्व नहीं है। और जो मेरे शरीर के द्वारा करने योग्य है, आपके द्वारा कहे गये उस कार्य को मैं अवश्य करूँगा ॥७॥

यदि धन के स्वामी, मेरे पिता महाराज ने अनुमति दे दी है तो हे माता ! आप 'का किकिच्छक' निश्चिन्त और व्यथा रहित होकर पूर्ण होगा ॥८॥

मार्कण्डेय उवाच—

ततः सा राजमहिषी तद् व्रतं समुपोषिता । यथोक्तं साऽकरोत् पूजां राजराजस्य संयता ।।९
निधीनामप्यशेषाणां निधिपालगणस्य च। लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाक्कायमानसा ।।१०
विविक्ते तु गृहस्थोऽयमथ राजा करन्धमः । आसीन उक्तः सचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ।।११

सचिवा ऊचुः —

राजन् वयः परिणतस्तवैतच्छासतो महीम् । एकस्ते तनयोऽविक्षित् त्यक्तदारपरिग्रहः ।।१२
अपुत्रः स च ते निष्ठां यदा भूप गमिष्यति। तदारिपक्षं पृथिवी निश्चितं तव यास्यति ।।१३
वंशक्षयस्ते भविता पितृपिण्डोदकक्षयः । एतन्महत्तेऽरिभयं क्रियाहान्या भविष्यति ।।१४
तस्मात् कुरु तथा भूप यथा ते तनयः पुनः । करोति सततं बुद्धिं पितृणामुपकारिणीम् ।।१५

मार्कण्डेय उवाच—

एतस्मिन्नन्तरे शब्दं शुश्राव जगतीपतिः । पुरोहितस्य वीराया गदतो ह्यर्थिनं प्रति ।।१६
कः किमिच्छति दुःसाध्यं कस्य किं साध्यतामिति। करन्धमस्य महिषी किमिच्छिकमुपोषिता ।।१७
राजपुत्रोऽप्यविक्षित्तु श्रुत्वा पौरोहितं वचः । प्रत्युवाचार्थिनः सर्वान् राजद्वारमुपागतान् ।।१८

मार्कण्डेय ने कहा—

तब उस राजमहिषी ने उस कहे हुए व्रत को प्रारम्भ किया । और उसने संयतचित्त से महाराज की और जो समस्त निधियों का पालन करते हैं, उन निधिपालगण की, लक्ष्मी की परम भक्ति पूर्वक वाणी, शरीर और मन को नियन्त्रित करके पूजा की ।।९-१०।।

इसके बाद एकान्त में घर बैठे हुए राजा करन्धम से नीति शास्त्र में प्रवीण मन्त्रियों से कहा—।।११।।

सचिवों ने कहा—

हे राजन् ! इस पृथ्वी का पालन करते हुए आपकी अवस्था पूर्ण हो चुकी है और आपके एक मात्र पुत्र अविक्षित ने स्त्री का ग्रहण (विवाह) नहीं किया है ।।१२।

और वह पुत्र रहित है । हे राजन् ! जब वह आपके पश्चात् राजा होगा । तब वह आपकी पृथ्वी निश्चय ही शत्रु पक्ष के पास चली जायेगी ।।१३।।

आपके वंश का क्षय होकर पितरों का श्राद्ध और तर्पण बन्द हो जायेगा इस प्रकार आपके महान् शत्रु भय से क्रियाओं की हानि होगी ।।१४।।

इसलिए हे राजन् ! ऐसा उपाय कीजिए, जिससे आपका पुत्र फिर पितरों का उपकार करने वाली बुद्धि बना ले (गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर ले) ।।१५।।

मार्कण्डेय बोले—

इसी बीच राजा ने पुरोहित के शब्दों को सुना कि—महाराज करन्धम की राजमहिषी वीरा क्रिमिच्छिक' व्रत कर रही हैं, जो याचकों के प्रति कह रही है कि, कौन क्या चाहता है और किसका क्या साध्य है और कौन क्या पूर्ण करना चाहता है ? ।।१६-१७।।

राजपुत्र अविक्षित भी पुरोहित के वचनों को सुनकर, राजद्वार पर आये हुए, सभी अर्थियों से बोले— ।।१८।।

मया साध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद् ब्रवीतु सः ।
मम माता महाभागा किमिच्छिकमुपोषिता ।।१९

शृण्वन्तु मेऽर्थिनः सर्वे प्रतिज्ञातं मया तदा । किमिच्छथ ददाम्येष क्रियमाणे किमिच्छके ।।२०

मार्कण्डेय उवाच —

ततो राजा निशम्यैतद्वाक्यं पुत्र मुखाच्छ्रुतम् । समुत्पत्याब्रवीत् पुत्रमहमर्थी प्रयच्छ मे ।।२१

अविक्षिदुवाच—

दातव्यं यन्मया तात भवते तद् ब्रवीहि माम् । कर्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यंदुःसाध्यमेव वा ।।२२

राजोवाच—

यदि सत्यप्रतिज्ञस्त्वं ददासि च किमिच्छकम् । पौत्रस्य दर्शय मुखं ममोत्सङ्गगतस्य तत् ।।२३

अविक्षिदुवाच —

अहं तवैकस्तनयो ब्रह्मचर्यं च मे नृप । न मे पुत्रोऽस्ति पौत्रस्य दर्शयामि कथं मुखम् ।।२४

राजोवाच—

पापाय ब्रह्मचर्यं ते यदिदं धार्यते त्वया । तस्मात्त्वं मोचयात्मानं मम पौत्रं च दर्शय ।।२५

अविक्षिदुवाच—

विषमं स्यान्महाराज यदन्यत्तत् समादिश । वैराग्येण मया त्यक्तः स्त्रीसंभोगस्तथास्तु सः ।।२६

मेरी भाग्यवती माता किमिच्छक व्रत कर रही हैं। हे अर्थीगण तुम सब मेरी प्रतिज्ञा को सुनो, जिसका जो कार्य मेरे शरीर द्वारा पूर्ण होना सम्भव है। वह उस कार्य को अथवा जो भी तुम लोग मुझसे चाहते हो, कहो, माता के किमिच्छक व्रत करते हुए वे सभी चीजे मैं तुम्हें दूंगा ।।१९-२०।।

मार्कण्डेय ने कहा—

तब पुत्र के मुख से कहे गये उन वाक्यों को सुनकर राजा पुत्र के पास जाकर बोला—हे पुत्र ! मैं अर्थी हूँ, मुझे मेरा अभिलषित प्रदान करो ।।२१।।

अविक्षित बोला —

हे तात ! मेरे द्वारा आपको जो देने योग्य हो वह मुझसे कहिए। मैं आपके साध्य अथवा दुःसाध्य या दुष्कर कार्य को भी करूंगा ।।२२।।

राजा ने कहा —

यदि सत्य प्रतिज्ञा करने वाले तुम, मेरे अभिलषित को प्रदान करते हो, तो मेरी गोद में पौत्र के मुख को दिखाओ ।।२३।।

अविक्षित ने कहा—

हे राजन् ! मैं अकेला ही तो आपका पुत्र हूँ और मैंने ब्रह्मचर्य धारण किया है। मेरा कोई पुत्र नहीं है तब मैं आपको पौत्र का मुख कैसे दिखाऊँ ? ।।२४।।

राजा बोला —

तुमने जिस ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया है, वह पाप है। (नीति विरूद्ध है) इसलिए तुम इसको त्याग दो और मुझे पौत्र के दर्शन कराओ ।।२५।।

अविक्षित बोला—

हे महाराज ! (ब्रह्मचर्य का त्याग) मेरे लिए बहुत कष्ट कर होगा, इसलिए आपकी अन्य कोई इच्छा हो तो उसका आदेश दीजिए। मैंने वैराग्य से स्त्री भोग का त्याग किया है। वह इसी प्रकार चलना चाहिए ।।२६।।

राजोवाच—

बहुभिर्युध्यमानानां दृष्टो वै वैरिणां जयः । तत्रापि यदि वैराग्यमुपैषि तदपण्डितः ॥२७
किं वा नो बहुनोक्तेन ब्रह्मचर्यं परित्यज । मातुस्त्वमिच्छया वक्त्रं पौत्रस्य मम दर्शय: ॥२८

मार्कण्डेय उवाच—

यदा स बहुशस्तेन प्रोक्तः पुत्रेण पार्थिवः । नान्यत् प्रार्थयते किञ्चित्तदा पुत्रोऽब्रवीत् पुनः ॥२९

दत्त्वा किमिच्छकं तुभ्यं प्राप्तोऽहं तात सङ्कटम् ।
तत्करिष्यामि निर्लज्जो भूयो दारपरिग्रहम् ॥३०

स्त्रियाः समक्षं विजितः पतितो धरणीतले । स्त्री पतिर्भविता भूयस्तातैतदतिदुष्करम् ॥३१
तथापि किं करोम्येष सत्यपाशवशङ्गतः । करिष्यामि यथाऽऽत्थत्वं भुज्यतां निजशासनम् ॥३२

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणेऽविक्षित् चरिते द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

राजा बोला—

तुमने युद्ध करते हुए बहुत से वैरियों पर विजय प्राप्त की है फिर भी यदि तुम वैराग्य धारण करते हो तो तुम बुद्धिमान् नहीं हो ॥२७॥

अथवा बहुत अधिक कहने से क्या लाभ ? माता की (किमिच्छक पूर्ण करने की) इच्छा (पूर्ण करने के लिए) से मुझे तो तुम पौत्र का मुख दिखलाओ ॥२८॥

मार्कण्डेय बोले—

तब पुत्र द्वारा अनेक प्रकार से कहे जाने पर भी जब राजा ने किसी अन्य वस्तु को नहीं माँगा तो फिर पुत्र ने कहा—॥२९॥

हे तात ! आपको किमिच्छक व्रत में आश्वासन (वचन) देकर मैं संकट में पड़ गया हूँ । इसलिए मैं पुनः निर्लज्ज होकर पुनः दार परिग्रह (विवाह) करूँगा ॥३०॥

स्त्री के समक्ष पराजित होकर मैं पृथ्वी तल पर गिर पड़ा था, इसलिए वह स्त्री अब मेरा पुनः पति होगी (पति के समान होकर रहेगी) हे तात ! यह कार्य तो मेरे लिए बहुत कठिन है ॥३१॥

फिर भी क्या करूँ मैं अपनी इस सत्य (प्रतिज्ञा) के पाश में बंध गया हूँ । हे राजन् ! इसलिए, आप जैसा कह रहे हैं, मैं वैसा ही करूँगा । आप अपने राज्य को पूर्ववत् पालन करते रहिये ॥३२॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेय महापुराण में अविक्षित चरित में एक सौ बाइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रयोविंशत्यधिकशततमोध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौ मृगयामचरद् वने । मृगान् विध्यन् वराहांश्च शार्दूलादींश्च दंष्ट्रिणः ॥१

मार्कण्डेय ने कहा—

कभी शिकार के लिए वन में घमते हुए बहुत से मृगों, सूअरों, चीतों और गेंडों को मारते हुए उस राजपुत्र ने, ॥१॥

शुश्राव सहसा शब्दं त्राहि त्राहीति योषितः। विक्रोशन्त्याः सुबहुशो भयगद्गदमुच्चकैः ॥२
मा भैर्मा भैरिति वदन् राजपुत्रः सवेगितः। चोदयामास तुरगं यतः शब्दः समागतः ॥३
ततश्च सापि चुक्रोश कन्यका विजने वने। गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ॥४
करन्धमसुतस्याहं भार्या चाहमविक्षितः। हरत्यनार्यो विपिने पृथिवीशस्य धीमतः ॥५
यस्य सर्वे महीपालास्तथा गन्धर्वगुह्यकाः। न समर्थाःपुरःस्थातुं तस्य भार्या हृतास्म्यहम् ॥६
यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः। करन्धमसुतस्यैषा तस्य भार्या हृतास्म्यम् ॥७

मार्कण्डेय उवाच—

इत्याकर्ण्य महीपालतनयः स शरासनी। चिन्तयामास किमिदं मम भार्याऽत्र कानने ॥८
मायेयं रक्षसां नूनं दुष्टानां काननौकसाम्। अथवाऽऽगंत एवाहं सर्वं वेत्स्यामि कारणम् ॥९

मार्कण्डेय उवाच—

त्वरितः स ततो गत्वा ददर्शातिमनोरमाम्। कानने कन्यकामेकां सर्वालङ्कारभूषिताम् ॥१०
गृहीतां दनुपुत्रेण दृढ़केशेन दण्डिना। त्राहि त्राहीति करुणं विक्रोशन्तीं पुनः पुनः ॥११

अचानक भय के कारण रुँधे हुए गले से उच्च स्वर से आक्रन्दन करती हुई, किसी स्त्री के 'त्राहि', 'त्राहि' शब्द को सुना ॥२॥

तब 'मत डरो, मत डरो' इस प्रकार कहते हुए राजपुत्र ने अपना घोड़ा उस ओर दौड़ाया, जिस ओर से यह शब्द आ रहा था ॥३॥

तब उस विजन वन में दनुपुत्र दृढ़कोष नामक दानव के द्वारा पकड़ी गयी उस मानिनी कन्या इस प्रकार क्रन्दन कर रही थी ॥४॥

मैं करन्धम के पुत्र अविक्षित की पत्नी हूँ, श्रीमान महाराज करन्धम के पृथ्वी पर शासन करते हुए, यह अनार्य मुझे बल पूर्वक ले जा रहा है ॥५॥

जिसके सामने सभी महीपाल, गन्धर्व और गुह्य आदि देवगण भी ठहरने में समर्थ नहीं हैं, उन्हीं की पत्नी मेरा हरण किया जा रहा है ॥६॥

जिसका क्रोध मृत्यु के समान और पराक्रम इन्द्र के समान है। उन्हीं करन्धम के पुत्र की पत्नी मेरा आज बल पूर्वक हरण किया जा है ॥७॥

मार्कण्डेय बोले—

यह सुनकर धनुष धारण किये हुए, उस राजकुमार ने सोचा मेरी पत्नी इस जंगल में कैसे आयी ? ॥८॥

निश्चय ही यह वनवासी दुष्ट राक्षसों की माया है अथवा मैं यहाँ आ ही गया हूँ। इसका सब कुछ कारण जान लूँगा ॥९॥

मार्कण्डेय बोले—

तब उसने शीघ्रता से जाकर सभी प्रकार के आभूषणों से सजी हुई, दण्ड धारी दृढ़कोष नामक दनुपुत्र के द्वारा पकड़ी हुई और बार-बार बचाओ-बचाओ इस प्रकार करुण क्रन्दन करती हुई अत्यन्त सुन्दर एक वन कन्या को देखा ॥१०-११॥

मा भैरिति स तामाह हतोऽसीति च तं वदन्। शासती मां महीं दुष्टः को दूयेत करन्धमे ॥१२
यस्य प्रतापावनता भुवि सर्वे महीक्षितः। ततस्तमागतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम् ॥१३
मां त्राहीत्याह तन्वङ्गी हृतास्म्येषेति चासकृत्। राज्ञः करन्धमस्याहं स्नुषा भार्याप्यविक्षितः॥
हृतास्म्येतेन दुष्टेन सनाथाऽनाथवद् वने ॥१४

मार्कण्डेय उवाच —

ततो विममृशे वाक्यमविक्षित् स तथोदितम्।
कथमेषा हि मे भार्या स्नुषा तातस्य वा कथम् ॥१५

अथवा मोचयाम्येतां तन्वीं वेत्स्यामि तत्पुनः। क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रमार्त्तानां त्राणकारणात् ॥१६
ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरो दानवं तं सुदुर्मतिम्। जीवन्गच्छ विमुच्यैनामन्यथा न भविष्यसि ॥१७
ततः स तां विहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्य दानवः। तमप्यधावत् सोऽप्येनं शरवर्षैरवाकिरत् ॥१८
स वार्य्यमाणो बाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः। राजपुत्राय चिक्षेप दण्डं शंकुशतावृतम् ॥१९
तमापतन्तं चिच्छेद शरैर्भूपसुतस्ततः। सोऽप्यासन्नं गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौ व्यवस्थितः ॥२०

तब उसने उस (कन्या) से कहा 'डरो मत'। राक्षस की 'तेरी मृत्यु आ चुकी है' इस प्रकार कहते हुए, जिसके प्रताप के समक्ष पृथ्वी के सभी राजा लोग मस्तक झुकाए रहते हैं उन करन्धम के इस पृथ्वी पर शासन करते हुए यह कौन दुष्ट (अबला को) पीड़ित कर रहा है ? तब श्रेष्ठ धनुष धारण किये उस (राजपुत्र) को आया हुआ देखकर, ॥१२-१३॥

उस तन्वंगी ने अनेक बार कहा—'मुझे बचाओ' मैं इसके द्वारा बल पूर्वक ले जायी जा रही हूँ। मैं राजा करन्धम की पुत्र बधू और अविक्षित की पत्नी हूँ और सनाथ होते हुए भी इस दुष्ट के द्वारा अनाथों के समान इस वन में बल पूर्वक ले जायी जा रही हूँ ॥१४॥

मार्कण्डेय बोले—

तब अविक्षित ने उस प्रकार कहे गये उन वाक्यों पर विचार किया। यह मेरी पत्नी और पिताजी की पुत्र वधू कैसे है ? ॥१५॥

अथवा पहले इसको छुड़ाता हूँ। इसे फिर ही जानूँगा। क्योंकि क्षत्रियों के द्वारा दुःखियों के त्राण के लिए ही शस्त्र धारण किया जाता है ॥१६॥

तब क्रुद्ध हुआ वह वीर उस दुर्मति दानव से बोला—यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो इसको छोड़कर भाग जाओ। अन्यथा तुम नहीं रहोगे ॥१७॥

तब वह दानव उसको छोड़कर डण्डे को ऊँचा उठाकर उसी के पीछे दौड़ा, उसने भी उस डण्डे को बाणों की वर्षा से रोक दिया ॥१८॥

तब बाणों के समूह के द्वारा रोके जाते हुए उस दानव ने अत्यन्त अहंकार में भरकर, सैकड़ों शंकुओं से युक्त उस दण्ड को राजपुत्र के ऊपर फेंका ॥१९॥

तब अपनी ओर आते हुए उस दण्ड को राजपुत्र ने बाणों के द्वारा काट डाला। तो उसने भी युद्ध क्षेत्र में समीप ही खड़े हुए ऊँचे विशाल वृक्ष को उखाड़ कर, ॥२०॥

सृजतः शरवर्षाणि तं चिक्षेप ततो द्रुमम्। स च तं तिलशश्चक्रे भल्लैः कार्मुकमोचितैः ।।२१
ततश्चिक्षेप च शिलां राजपुत्राय दानवः। सापि मोघा पपातोर्व्यामुज्झिता तेन लाघवात् ।।२२
राजपुत्राय कुपितो यद्यच्चिक्षेप दानवः। तत्तच्चिच्छेद बाणौघैर्भूभृत् सूनुः सलीलया ।।२३
ततो विच्छिन्नदण्डोऽसौ विच्छिन्नसकलायुधः। मुष्टिमुद्यम्य स क्रोधो राजपुत्रमधावत ।।२४
तस्यापतत एवासौ करन्धमसुतः शिरः। छित्त्वा वेतसपत्रेण पातयामास वै भुवि ।।२५
तस्मिन् विनिहते देवैर्दानवे दुष्टचेष्टिते। करन्धमसुतः सर्वैः साधु साध्विति भाषितः ।।२६
वरं वृणीष्वेति तदा देवैरुक्तो नृपात्मजः। वव्रे पुत्रं महावीर्यं पितुः प्रियचिकीर्षया ।।२७

देवा ऊचुः—

भविष्यति हि ते पुत्रश्चक्रवर्ती महाबलः। अस्यामेव हि कन्यायां मोक्षितायां त्वयाऽनघ ।।२८

राजपुत्र उवाच—

पित्राहं सत्यपाशेन बद्ध इच्छाम्यहं सुतम्। राजभिर्निर्जितेनाजौ त्यक्तो मे दारसंग्रहः ।।२९
सा च मे यावता त्यक्ता विशालनृपतेः सुता। तया च मत्कृते त्यक्तो मामृते नरसङ्गमः ।।३०

बाणों की वर्षा करते हुए उसकी ओर उस वृक्ष को फेंका। तब उसने उसको भी अपने धनुष से छोड़े गये भल्ल के द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।।२१।।

तब उस दानव ने राजपुत्र ऊपर के पत्थर की शिला फेंकी तो उसने उसको भी क्षण में व्यर्थ करके पृथ्वी पर गिरा दिया ।।२२।।

(इस प्रकार) क्रुद्ध हुए दानव ने राजपुत्र के ऊपर जो-जो फेंका, उस-उस को राजपुत्र ने खेल-खेल में ही अपने बाण समूहों से काट डाला ।।२३।।

तत्पश्चात् काटे गये दण्ड और विविध आयुधों वाला वह (दानव) घूंसा उठाकर क्रोध पूर्वक राजकुमार की ओर दौड़ा ।।२४।।

उसके आते हुए ही, इस करन्धम के पुत्र ने वेतस पत्र से सिर को काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ।।२५।।

उस दुष्ट आचरण करने वाले दानव के मर जाने पर सभी देवताओं ने हे करन्धम पुत्र! 'साधु-साधु' इस प्रकार कहा ।।२६।।

उसके बाद देवताओं ने कहा तुम कोई वरदान माँग लो। तब राजपुत्र ने पिता की प्रिय इच्छा के कारण परम पराक्रमी पुत्र की मांग की ।।२७।।

देवता बोले—

हे अनघ! निश्चय ही तुम्हारे द्वारा छुड़ायी गयी इस कन्या से चक्रवर्ती और परम पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होगा ।।२८।।

राजपुत्र बोला—

पिता के द्वारा सत्य वचनों के पाश में बंधा हुआ ही मैं पुत्र की अभिलाषा कर रहा हूँ। युद्ध में राजाओं के द्वारा विजित होने पर मैंने विवाह न करने की प्रतिज्ञा की थी ।।२९।।

तभी मैंने विशाल राजा की पुत्री (के साथ) विवाह न करना अस्वीकार किया था। तभी उसने भी मेरे अतिरिक्त अन्य मनुष्य के संसर्ग को मेरे लिए त्याग दिया था ।।३०।।

तत्कथं तामपास्याद्य विशालतनयामहम् । नृशंसात्मा करिष्यामि अन्यनारीपरिग्रहम् ॥३१

देवा ऊचुः—

इयमेव हि ते भार्या श्लाघ्यते या त्वया सदा ।
विशालस्य सुता सुभ्रूस्त्वत्कृते याऽऽश्रिता तपः ॥३२

अस्यामुत्पत्स्यते वीरः सप्तद्वीपप्रसाधकः । यष्टा यज्ञसहस्राणां चक्रवर्त्ती सुतस्तव ॥३३

मार्कण्डेय उवाच —

इत्युच्चार्य ययुर्देवाः करन्धमसुतं द्विज । सोऽप्याह तां तदा पत्नीं कथ्यतां भीरु किं त्विदम् ॥३४
सा चास्मै कथयामास त्यक्ताहं भवता यदा । त्यक्तबन्धुजनाऽरण्यं निर्वेदात्समुपागता ॥३५
अत्राहं तपसा वीर क्षीणप्रायं कलेवरम् । त्यक्तुकामा समभ्येत्य देवदूतेन वारिता ॥३६
भविष्यति च पुत्रस्ते चक्रवर्त्ती महाबलः । प्रीणयिष्यति यो देवानसुरांश्च हनिष्यति ॥३७
इति देवाज्ञया तेन देवदूतेन वारिता । न संत्यक्तवती देहं त्वत्सङ्गममनोरथा ॥३८
परश्वश्च महाभाग स्नातुं गङ्गाह्लदं गता । अवतीर्णाविकृष्टास्मि वृद्धनागेन केनचित् ॥३९

इसलिए उस राजा विशाल की पुत्री को छोड़कर नृशंसात्मा मैं आज अन्य स्त्री को कैसे ग्रहण करूँगा ॥३१॥

देवता बोले—

यही तुम्हारी भार्या है जिसकी तुम प्रशंसा करते हो । यह राजा विशाल की सुन्दर भ्रूवों वाली पुत्री है, जिसने तुम्हारे लिए वन में तपस्या का आश्रय लिया है ॥३२॥

इससे तुमको सात द्वीपों पर शासन करने वाला, सहस्रों यज्ञों का कर्त्ता चक्रवर्ती वीर पुत्र प्राप्त होगा ॥३३॥

मार्कण्डेय ने कहा—

हे द्विज ! करन्धम के पुत्र को इस प्रकार कहकर देवता चले गये । तब उसने भी उस पत्नी से कहा—हे भीरू ! कहो तुम यहाँ कैसे ? ॥३४॥

तब उसने उससे कहा—जब मैं तुम्हारे द्वारा त्याग दी गयी तो बन्धु जनों को त्यागकर वैराग्य के कारण मैं वन में चली आयी ॥३५॥

हे वीर ! यहाँ पर मैंने तप के द्वारा अपने शरीर को क्षीण प्रायः कर दिया । तब मैं अपने प्राणों का त्याग करने को इच्छुक हुई तो देव दूत ने आकर मुझे (मरने से) रोक दिया ॥३६॥

(और कहा) कि तुम्हें चक्रवती और महाबली पुत्र उत्पन्न होगा, जो देवताओं को प्रसन्न करेगा तथा असुरों का वध करेगा ॥३७॥

इस प्रकार देवताओं की आज्ञा से उस देवदूत ने मुझे रोक दिया । तुम्हारे साथ मिलन की कामना से मैंने अपनी देह का त्याग नहीं किया ॥३८॥

हे महाभाग ! परसों (जब मैं) गंगा नदी में स्नान के लिए गयी और उसमें उतरी तो मुझे किसी वृद्ध नाग ने खींच लिया ॥३९॥

ततो रसातलं नीता तेन तत्र च मे पुरः। नागासहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ॥४०
तुष्टुवुर्मां समभ्येत्य मामन्येऽपूजयंस्तथा। ययाचिरे स विनयं नागा मामङ्गनास्तथा ॥४१
प्रसादं कुरु सर्वेषां त्वमस्माकं सुतस्त्वया। अपराधमुपेतानां संनिवार्यो वधोन्मुखः ॥४२
अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः। तेन्निमित्तं निवार्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ॥४३
तथेति च मया प्रोक्ते दिव्यैः पातालभूषणैः। भूषिताहं तथा पुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ॥४४
समानीता तथा लोकमिमं तेनानिलाशिना। पुरा यथा कान्तिमति पूर्ववद् रूपशालिनी ॥४५
इति रूपवतीं दृष्ट्वा सर्वालङ्कारभूषिताम्। जग्राह दृढकेशोऽयं हर्तुकामः सुदुर्मतिः ॥४६
युष्मद् बाहुबलेनाहं राजपुत्र विमोक्षिता। तत्प्रसीद महाबाहो मां प्रतीच्छ त्वया समः ॥
भूलोके राजपुत्रोऽन्यो नास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥४७

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणेऽविक्षिच्चरितंनाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोध्यायः।

तब मैं उसके द्वारा रसातल में ले जायी गयी तब वहाँ मेरे सामने सहस्रों नाग, नागपुत्र और नाग स्त्रियाँ खड़ी हुईं ॥४०॥

और मेरे समीप आकर उनमें से किसी ने मेरी पूजा और किसी ने मेरी स्तुति की एवं उन नागों और नाग स्त्रियों ने विनय पूर्वक मुझसे याचना की ॥४१॥

आप हम सबके ऊपर कृपा कीजिए। कभी हमारे द्वारा अपराध किये जाने पर बध के लिए उद्यत हुए अपने पुत्र से हमारी रक्षा करें ॥४२॥

यदि ये वायु भक्षी आपके पुत्र का कभी कोई अपराध कर देवें तो आप (उस समय हमारी सहायिका बनकर) उनको रोकें। बस आप हमारे ऊपर इतनी ही कृपा कर दीजिए ॥४३॥

'ऐसा ही होगा' मेरे ऐसा कहने पर उन्होंने मुझे पाताल लोक के दिव्य आभूषणों, मनोहर गंध, वस्त्र और उत्तम पुष्पों से सजाया ॥४४॥

और उस वायु भक्षी नाग के द्वारा, मेरी पहले जैसी कान्ति थी, उसी के समान कान्तिमति और रूपवती मैं, इस लोक में लायी गयी ॥४५॥

इस प्रकार सभी आभूषणों से अलंकृत, मुझ रूपवती को देखकर, इस दुर्मति दृढ़कोष नामक दानव ने मेरा हरण करने की इच्छा से मुझे पकड़ लिया ॥४६॥

हे राजपुत्र! तुम्हारे बाहुबल से ही मैं छुड़ाई गयी हूँ। इसलिए हे महाबाहो! आप प्रसन्न होकर मुझे ग्रहण कीजिए। मैं सत्य ही कहती हूँ कि तुम्हारे समान इस भूलोक में अन्य कोई राजकुमार नहीं है ॥४७॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में अविक्षित चरित नामक एक सौ तेइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

इति तस्या वचः श्रुत्वा स्मृत्वा पितृवचः शुभम् । किमिच्छके प्रतिज्ञाते यदुक्तं तेन भूभृता ।।१

प्रत्युवाच स तां कन्यामविक्षिन्नृपतेः सुतः । सानुरागमनाः कन्यां त्यक्तभोगाञ्च तत्कृते ।।२

यदाहं त्यक्तवांस्तन्वीं त्वामरातिपराजितः । विजित्य शत्रून् संप्राप्ता त्वं मयात्र करोमि किम् ।।३

कन्योवाच—

मम पाणिं गृहाण त्वं रमणीयेऽत्र कानने । सकामायाः सकामेन सङ्गमो गुणवान् भवेत् ।।४

राजपुत्र उवाच

एवं भवतु भद्रं ते विधिरेवात्र कारणम् । अन्यथा कथमन्यत्र त्वामहञ्च समागतः ।।५

मार्कण्डेय उवाच—

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो गन्धर्वतनयो मुने । वराप्सरोभिः सहितो गन्धर्वैरपरैर्वृतः ।।६

गन्धर्व उवाच

राजपुत्र सुतेयं मे भामिनी नाम मानिनी । अभिशापादगस्त्यस्य विशालतनयाऽभवत् ।।७

मार्कण्डेय बोले—

उनके इन वचनों को सुनकर किमिच्छक व्रत के समय प्रतिज्ञा करने पर जो राजा ने कहा था, पिता के उन वचनों का स्मरण करके, ।।१।।

राजकुमार अविक्षित जिसने उस (कन्या) के लिए सम्पूर्ण भोगों का परित्याग कर दिया है, उस अनुरागवती कन्या से बोला—।।२।।

हे तन्वी ! जब मैंने तुमको त्यागा था तो मैं शत्रुओं द्वारा पराजित किया गया था । किन्तु अब मैंने शत्रु को जीतकर प्राप्त किया है । अब (बताओ) मुझे क्या करना चाहिए ।।३।।

कन्या ने कहा—

अब आपको इस रमणीय कानन में मेरा पाणिग्रहण करना चाहिए सकाम युवती का सकाम युवक के साथ सम्मिलन गुणवान् होता है ।।४।।

राजपुत्र बोला—

'ऐसा ही हो', तुम्हारा कल्याण हो । विधाता ही इस सब में एक मात्र कारण है नहीं तो तुम और मैं पृथक्-पृथक् स्थान पर रहते हुए भी आज कैसे एकत्र हो सकते थे ।।५।।

मार्कण्डेय बोले—

हे मुने ! इसी बीच श्रेष्ठ अप्सराओं सहित गन्धर्वों से घिरा हुआ तनय नामक गन्धर्व वहाँ आ पहुँचा ।।६।।

गन्धर्व बोला—

हे राजपुत्र ! यह मानिनी मेरी भामिनी नाम की पुत्री है जो अगस्त्य के शाप के कारण राजा विशाल की पुत्री हुई ।।७।।

ब.लभावेन योऽगस्त्य: कोपित: क्रीडमानया । ततस्तेन तदा शप्ता मानुषीत्वं भविष्यसि ।।८
प्रसादित: स चास्माभिर्बालियमविवेकिनी । तवापराद्धा विप्रर्षे प्रसाद: क्रियतामिति ।।९
प्रसाद्यमान: सोऽस्माभिरिदमाह महामुनि: ।
बालेति मत्वा शापोऽल्पोदत्तोऽस्या नान्यथैव तत् ।।१०
इति शापादगस्त्यस्य विशालभवने शुभा । जातेयं मत्सुता सुभ्रूर्भामिनी नाम नामत: ।।११
तदस्याहं कृते प्राप्तो गृहाणेमां नृपात्मजाम् । ममात्मजां सुतस्तेऽत्र चक्रवर्ती भविष्यति ।।१२

मार्कण्डेय उवाच—

तथेत्युक्तेवति तस्याश्च स पाणिं पार्थिवात्मज: । जग्राह विधिवद् होमं चक्रे तत्र च तुम्बुरु: ।।१३
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणा: । पुष्पाणि ससृजुर्मेघा देववाद्यानि सस्वनु: ।।१४
विवाहे राजपुत्रस्य तया तत्र समेयुष: । समस्तवसुधात्राणकर्तृ कारणभूतया ।।१५
ततो गन्धर्वलोकं ते सह तेन महात्मना । नि:शेषेण ययु: सा च स च राजसुतो मुने ।।१६
भामिन्या मुमुदे सार्द्धमविक्षिन्नृपनन्दन: । सा च तेन समं तत्र भोगसम्पत्समन्विता ।।१७

एक बार जब लड़कपन के कारण खेलती हुई इस (कन्या) के ऊपर अगस्त्य ऋषि क्रुद्ध हुए तो उन्होंने (इसको) शाप दे दिया । (जाओ) तुम मानुषी योनि में जन्म लोगी ।।८।।

जब मैंने उनको (यह कहकर) प्रसन्न किया कि—हे विप्रर्षे ! इस अबोध बालिका ने आपके प्रति अपराध कर दिया है, इसलिए आप कुछ कृपा कीजिए ।।९।।

तब वे महामुनि प्रसन्न होते हुए मुझसे बोले--यह बाला है, यही सोच कर मैंने इसे छोटा सा शाप दिया है । वह अब अन्यथा नहीं होगा ।।१०।।

इस प्रकार अगस्त्य के शाप के कारण भामिनी नाम की सुन्दर भौहों वाली मेरी पुत्री ही राजा विशाल के घर में उत्पन्न हुई ।।११।।

अब मैं इसके लिए ही यहाँ आया हूँ,इस राजपुत्री का तुम पाणि ग्रहण करो । मेरी इस पुत्री से तुमको चक्रवर्ती पुत्र होगा ।।१२।।

मार्कण्डेय बोले —

तब राजकुमार ने 'ऐसा ही होगा' इस प्रकार कहकर उसका पाणिग्रहण किया एवं इस अवसर पर गन्धर्वों के पुरोहित, तुम्बुरु ने यथा पूर्वक होम किया ।।१३।।

देव और गन्धर्वों ने हर्ष से गाना-बजाना किया और अप्सराएँ नाचने लगीं । मेघों ने (आकाश से) पुष्प वर्षा की और देवताओं ने अपने मंगल वाद्य बजाए ।।१४।।

समस्त पृथ्वी का त्राण करने वाले पुत्र की कारण स्वरूप उस कन्या के साथ राजपुत्र के विवाह के अवसर पर वहाँ आये हुए, ।।१५।।

हे मुने ! वे सभी गन्धर्व और अप्सराएँ तथा वह राजकुमार और कन्या उसके बाद उस तनय नामक गन्धर्व के साथ गन्धर्व लोक में चले गये ।।१६।।

राजकुमार अविक्षित ने उस भामिनी (राजकुमारी) के साथ और उस (राजकुमार) के साथ, समस्त भोज्य पदार्थों के साथ, वहाँ (गन्धर्व लोक) में आनन्द प्राप्त किया ।।१७।।

कदाचिददतिरम्येऽसौ गगनोपवने तया। विक्रीडति समं तन्व्या कदाचिद्दुपपर्वते ॥१८
कदाचिद् पुलिने नद्या हंससारसशोभिते। कदाचिद् भवनस्यान्ते प्रासादे चातिशोभने ॥१९
विहारदेशेष्वन्येषु रमणीयेष्वहर्निशम्। स रेमे सहितस्तन्व्या सा च तेन महात्मना ॥२०
भक्ष्यानुलेपनं वस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम्। उपाजह्रुस्तयोस्तत्र मुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥२१
तया च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे। गन्धर्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुषुवे शुभा ॥२२
तस्मिञ्जाते महावीर्ये गन्धर्वाणां महोत्सवः। बभूव मनुजव्याघ्रे तेन कार्यमवेक्षताम् ॥२३
जगुः केचित्तथैवान्ये मृदङ्गपटहानकान्। अवादयन्त चैवान्ये वेणुवीणादिकांस्तथा ॥२४
ननृतुश्च तथा तत्र बहवोऽप्सरसां गणाः। पुष्पवृष्टिमुचो मेघा जगर्जुर्मृदुनिस्वनाः ॥२५
तथा कोलाहले तस्मिन् वर्तमानेऽथ तुम्बुरूः। प्रणयेन स्मृतोऽभ्येत्य जातकर्माकरोन्मुनिः ॥२६
देवाः समाययुः सर्वे तथा देवर्षयोऽमलाः। पातालात्पन्नगेन्द्राश्च शेषवासुकितक्षकाः ॥२७
तथादेवासुराणां च ये प्रधाना द्विजोत्तम। यक्षाणां गुह्यकानां च वायवश्च तथाऽखिलाः ॥२८
तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः। मुनिभिश्चाकुलमभूद् गन्धर्वाणां महत्पुरम् ॥२९

कभी वह उसके साथ अति रमणीय आकाशोपवन में और कभी पर्वत के ऊपर उस तन्वंगी के साथ क्रीड़ा करता था ॥१८॥

और कभी हंस और सारस आदि से सुशोभित नदी तट पर और कभी महल के अति सुन्दर भवन में और अन्य रमणीय प्रदेशों में प्रतिदिन राजपुत्र ने उस तन्वंगी के साथ और तन्वंगी ने उसके साथ विहार किया ॥१९-२०॥

उसके बाद वहाँ (रहने वाले) मुनि, गन्धर्व और किन्नरों ने उन दोनों को उत्तम भक्ष्य पदार्थ, अंगराग, वस्त्र, माला और पानादि श्रेष्ठ वस्तुएँ उपहार स्वरूप प्रदान कीं ॥२१॥

तब उस दुर्लभ गन्धर्व लोक में उस अपनी पत्नी के साथ विचरण करते हुए कल्याणी ने उस वीर राजपुत्र के पुत्र को जन्म दिया ॥२२॥

हे मनुज व्याघ्र ! महावीर्य शाली इस पुत्र के उत्पन्न होने पर उसके द्वारा भविष्य में प्रयोजन सिद्ध होने की आशा से गन्धर्वों ने महान् उत्सव का आयोजन किया ॥२३॥

वहाँ पर कुछ लोगों ने गान किया और कुछ लोग मृदंग, पटह, ढोल, वेणु, वीणा बजाने लगे और वहाँ बहुत सी अप्सराओं के समूह नृत्य करने लगे तथा मेघों ने पुष्प वृष्टि एवं मृदु ध्वनि में गर्जना की ॥२४-२५॥

और उस (उत्सव) के कोलाहल के अवसर पर प्रेम पूर्वक स्मरण किये गये तुम्बुरू मुनि ने वहाँ आकर शिशु का जातकर्म संस्कार किया ॥२६॥

उस अवसर पर सभी देवता अमल देवर्षि पाताल से नागराज शेष, वासुकि, तक्षक, आदि नागगण और हे द्विजोत्तम ! देव और असुरों के प्रधान और सभी यक्ष एवं गुह्यक और समस्त वायुकुल के लोग उपस्थित हुए ॥२७-२८॥

एवं तभी आये हुए मुनि, ऋषि, देव, दानव और पन्नगों से गन्धर्वों का विशाल नगर भर गया ॥२९॥

ततः स तुम्बुरुः कृत्वा जातकर्मादिकाः क्रियाः ।
चक्रे स्वस्त्ययनं तस्य बालस्य स्तुतिपूर्वकम् ।।३०
चक्रवर्ती महावीर्यो महाबाहुर्महाबलः । महान्तं कालमीशित्वमशेषायाः क्षितेः कुरु ।।३१
इमे शक्रादयः सर्वे लोकपालास्तथर्षयः । स्वस्ति कुर्वन्तु ते वीर वीर्यं चारिविनाशनम् ।।३२
मरुत्तव शिवायास्तु वाति पूर्वेण यो रजाः । मरुत्ते विमलोऽक्षीणोऽवैषम्यायास्तु दक्षिणः ।।३३
पश्चिमस्ते मरुद्वीर्यमुत्तमं ते प्रयच्छतु । बलं यच्छतु चोत्कृष्टं मरुत्ते च तथोत्तरः ।।३४
इति स्वस्त्ययनस्यान्ते वागुवाचाशरीरिणी । मरुत्तवेति बहुशो यदिदं गुरुरब्रवीत् ।।३५
मरुत्त इति तेनायं भुवि ख्यातो भविष्यति । भुवि चास्य महीपाला यास्यन्त्याज्ञावशायतः ।।३६
एष सर्व क्षितिशानां वीरः स्थास्यति मूर्द्धनि । चक्रवर्त्ती महावीर्यः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।।३७
आक्रम्य पृथिवीपालानयं भोक्ष्यत्यवारितः । प्रधानःपृथिवीशानां भविष्यत्येष यज्विनाम् ।।
आधिक्यं शौर्यवीर्येण भविष्यत्यस्य राजसु ।।३८

उसके बाद तुम्बुरू ने (शिशु की) जात कर्म आदि क्रियाएँ की, और उस बालक की स्तुति पूर्वक स्वस्त्यन किया ।।३०।।

हे वीर ! महाबली, महापराक्रमी और महाबाहु, तुम चक्रवर्ती होकर इस सम्पूर्ण पृथ्वी का आधिपत्य बहुत समय तक करो ।।३१।।

ये सभी इन्द्रादि लोकपाल एवं ऋषि तुम्हारा मंगल करें एवं शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला वीर्य प्रदान करें ।।३२।।

पूर्व दिशा से धूलि रहित बहने वाली वायु तुम्हारा कल्याण करे । और दक्षिण दिशा की निर्मल और अक्षीण वायु तुम्हारे लिये अनुकुल रहे ।।३०।।

पश्चिम दिशा से बहने वाली वायु तुमको उत्तम पराक्रम प्रदान करे और उत्तर की वायु तुमको उत्कृष्ट बल प्रदान करे ।।३४।।

इस स्वस्त्ययन के अन्त में अशरीरिणी वाणी बोली—क्योंकि इन गुरु ने तुमको बहुत बार मरुत् तव पद कहा है ।।३५।।

इसलिए यह शिशु पृथ्वी पर 'मरुत्त' इस नाम से प्रसिद्ध होगा । पृथ्वी के सभी राजा इसकी आज्ञा के वशवर्ती होंगे ।।३६।।

इस प्रकार वह वीर सभी राजाओं में शिरोमणि होगा । और महापराक्रमी यह चक्रवर्ती होकर सभी राजाओं पर आक्रमण करके अप्रतिरुद्ध, निर्विरोध होकर सात द्वीपों वाली इस पृथ्वी का उपभोग करेगा । यह राजाओं में और यज्ञ कर्ताओं में प्रधान होगा और इसका शौर्य एवं पराक्रम सभी राजाओं से अधिक होगा ।।३७-३८।।

मार्कण्डेय उवाच —

इत्याकर्ण्य वचः सर्वे केनाप्युक्तं दिवौकसाम्। तुतुषुर्विप्र गन्धर्वाश्चास्य माता तथा पिता ॥३९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणेऽविक्षिच्चरितेऽविक्षितो मरुत्त पुत्रोत्पत्तिवर्णनंनाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

मार्कण्डेय बोले —

हे विप्र ! तब देवताओं में किसी के भी द्वारा कहे गये इन वचनों को सुनकर सभी देवता, गन्धर्व और इस (शिशु) के माता-पिता अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए ॥३९॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में अविक्षित चरित में अविक्षित पुत्र मरुत्त की उत्पत्ति वर्णन नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

ततः स राजपुत्रस्तमादाय दयितं सुतम् । पत्नीञ्चानुगतो विप्र गन्धर्वैराययौ पुरम् ॥१

स पितुर्भवनं प्राप्य ववन्दे पितुरादरात् । चरणौ सा च तन्वङ्गी ह्रीमती नृपतेः सुता ॥२

तथाह राजपुत्रोऽसौ गृहीत्वा बालकं सुतम् । धर्मासनगतं भूपं राज्ञां मध्ये करन्धमम् ॥३

मुखं पौत्रस्य पश्यैतदुत्सङ्गस्थस्य यन्मया । किमिच्छके प्रतिज्ञातं तुभ्यं मातुः कृते पुरा ॥४

इत्युक्त्वा पितुरुत्सङ्गे तं कृत्वा तनयं ततः । यथावृत्तमशेषं स कथयामास तस्य तत् ॥५

स परिष्वज्य तं पौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः । स भाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ॥६

मार्कण्डेय बोले—

उसके बाद गन्धर्वों के द्वारा अनुगमन किया जाता हुआ वह राजपुत्र (अविक्षित) उस प्रिय पुत्र और और पत्नी को लेकर अपने नगर में आ गया ॥१॥

अपने पिता के भवन में आकर उस (राजपुत्र) ने आदर पूर्वक पिता के चरणों में प्रणाम किया और तन्वंगी एवं लज्जावती उस राजपुत्री ने भी पिता (श्वसुर) के चरणों की आदर-पूर्वक वन्दना की ॥२॥

एवं राजपुत्र ने अपने पुत्र को लेकर राजाओं के बीच में सिंहासन पर बैठे हुए करन्धम से कहा—॥३॥

पूर्व काल में माता के किमिच्छक व्रत के अवसर पर मैंने आपसे जो प्रतिज्ञा की थी। उसी प्रतिज्ञा के अनुसार आप गोद में बैठे हुए इस पौत्र का मुख देखिये ॥४॥

यह कहकर एवं पिता की गोद में उस पुत्र को बैठाकर, उनसे विवाह और पुत्र जन्म का सम्पूर्ण वृत्तान्त ठीक-ठीक सुना दिया ॥ ॥

तब आनन्दाश्रुओं से युक्त मुख वाले उस राजा ने उस पौत्र का आलिंगन करके, मैं परम भाग्यवान् हूँ' इस प्रकार कहकर बार-बार अपनी प्रशंसा की ॥६॥

ततः सोर्घ्यादिना सम्यग्गन्धर्वान् समुपागतान् । सम्मानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ॥७
ततः पुरे महानासीदानन्दः पौरवेश्मसु । अस्माकं सन्ततिर्जाता नाथस्येति महामुने ॥८
हृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन गीतवाद्यैर्वराङ्गना । विलासिन्योऽति चार्वङ्ग्यो ननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥९
राजा च द्विजमुख्येभ्यो रत्नानि च वसूनि च । गावो वस्त्राण्यलङ्कारानददाद्धृष्टमानसः ॥१०
ततः स बालो ववृधे शुक्लपक्षे यथा शशी । पितृणां प्रीतिजनको जनस्येष्टश्च सोऽभवत् ॥११
आचार्याणां सकाशात् स प्राग्वेदाञ्जगृहे मुने । ततः शास्त्राण्यशेषाणि धनुर्वेदं ततः परम् ॥१२
कृतोद्योगो यदा सोऽभूत् खड्गकार्मुककर्मणि । अन्येयु च तथा वीरः शस्त्रेषु विजितश्रमः ॥१३
ततोऽस्त्राणि स जग्राह भार्गवाद् भृगुसंभवात् । विनयावनतो विप्र गुरोः प्रीतिपरायणः ॥१४
गृहीतास्त्रः कृती वेदे धनुर्वेदस्य पारगः । निष्णातः सर्वविद्यासु न बभूव ततः परः ॥१५

विशालोऽपि सुतावार्त्ता मुपलभ्याखिलामिमाम् ।
हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद् दौहित्रस्य च योग्यताम् ॥१६

तब उसने वहाँ आये हुए गन्धर्वों का अर्घ्य आदि के द्वारा स्वागत सत्कार किया । प्रसन्नता के कारण (उस समय) वे अन्य प्रयोजनों को भी भूल गये ॥७॥

हे महामुने ! उसके बाद हमारे स्वामी राजा के सन्तान उत्पन्न हुई है इस कारण सम्पूर्ण नगर और नगर वासियों के घरों में परम आनन्द का संचार हुआ ॥८॥

परम सम्पन्न उस नगर में सुन्दर अंगों वाली विलासिनी वरांगनाओं ने गीत और वाद्य सहित उत्तम लास्य नृत्य किया ॥९॥

हर्षितमन वाले राजा ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों को धन, रत्न, गौएँ, वस्त्र और आभूषणों का दान दिया ॥१०॥

तब वह बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगा और माता-पिता को प्रसन्नता प्रदान करने वाला, वह बालक अन्य साधारण जनों का प्रिय हुआ ॥११॥

हे मुने ! आचार्यों के पास जाकर उसने पहले सम्पूर्ण वेदों को पढ़ा, पुनः सम्पूर्ण शास्त्र एवं उसके बाद धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की ॥१२॥

उसके बाद परिश्रम को जीतने वाले (आलस्य रहित) उस वीर ने तलवार और धनुष चलाने से पर्याप्त श्रम कर लेने पर, अन्य शस्त्रों को चलाने के लिये भी उसने पूर्ण श्रम किया ॥१३॥

हे विप्र ! तब विनय से अवनत एवं गुरु के प्रति प्रीति परायण उसने भृगुकुल में उत्पन्न भार्गव (परशुराम) से समस्त अस्त्रों की शिक्षा ग्रहण की ॥१४॥

वेद और धनुर्वेद में पारंगत, समस्त शस्त्रास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करके वह समस्त विद्याओं में निष्णात हो गया, इन विद्याओं में उससे अधिक कोई दिखाई नहीं पड़ता था ॥१५॥

राजा विशाल भी पुत्री के इस सम्पूर्ण समाचार एवं दौहित्र की विशेष योग्यता को सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हुआ ॥१६॥

अथ राजा सुतसुतं दृष्ट्वा प्राप्तमनोरथः । यज्ञाननेकान्निष्पाद्य दत्त्वा दानानि चार्थिनाम् ।।१७
कृतशेषक्रियोयुक्तः सवर्णैर्धर्मतो महीम् । परिपाल्यारिविजयी बलबुद्धिसमन्वितः ।।१८
स यियासुर्वनं पुत्रमविक्षितमभाषत । पुत्रवृद्धोऽस्मि गच्छामि वनं राज्यं गृहाण मे ।।१९
कृतकृत्योऽस्मि नास्त्यन्यत्किञ्चित्त्वदभिषेचनात् ।
सुनिष्पन्नमतो राज्यं त्वं गृहाण मयार्पितम् ।।२०
इत्युक्तः पितरं प्राह सोऽविक्षिन्नृपनन्दनः । प्रश्रयावनतो भूत्वा यियासुस्तपसे वनम् ।।२१
नाहं तात करिष्यामि पृथिव्याः परिपालनम् । नापैति ह्रीर्मे मनसि राज्येऽन्यं त्वं नियोजय ।।२२
तातेन मोक्षितो बद्धो न स्ववीर्यादहं यतः । ततः कियत्पौरुषं मे पुरुषैः पाल्यते महीम् ।।२३
योऽहं न पालनायालमात्मनोऽपि वसुन्धराम् । स कथं पालयिष्यामि राज्यमन्यत्र विक्षिप ।।२४
स स्त्री सधर्मा पुरुषो यश्चान्येनावद्रुह्यते । आत्माऽमोहाय भवता बन्धनाद्येन मोक्षितः ।।२५
सोऽहं कथं भविष्यामि स्त्रीसधर्मा महीपतिः ।
स्त्रियः पुमान् भवेद् भर्ता यः शूरः स महीपतिः ।।२६

इसके बाद अपने पुत्र के पुत्र को देखकर प्राप्त हुए मनोरथ वाले राजा ने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करके याचकों को प्रभूत दान दिये ॥१७॥

फिर सम्पूर्ण क्रियाओं को करने वाले शत्रु पर विजय करने वाले एवं बुद्धि सम्पन्न उस राजा ने वर्ण धर्म के अनुसार पृथ्वी का पालन करके, वन जाने के इच्छुक उसने अपने पुत्र अविक्षित से कहा—हे पुत्र ! मैं वृद्ध हो गया हूँ इसलिये मैं वन में जाता हूँ, अतः तुम मेरे इस राज्य को ग्रहण करो ।।१८-१९।।

मैं कृतकृत्य हो गया हूँ। तुम्हारे अभिषेक को छोड़कर अन्य कुछ शेष नहीं बचा है इसलिए तुम मेरे द्वारा सौंपे गये इस सुसमृद्ध राज्य को ग्रहण करो ॥२०॥

पिता के ऐसा कहने पर तपस्या के लिए (स्वयं) वन जाने की इच्छा वाले, पिता से, शिष्टता से विनम्र होकर राजपुत्र अविक्षित ने कहा—॥२१॥

हे तात ! मैं पृथ्वी पालन नहीं करूँगा क्योंकि मेरे मन से लज्जा दूर नहीं है। इसलिए आप किसी अन्य को राज्य का भार सौंप दीजिए ।।२२।।

क्योंकि (शत्रुओं द्वारा) बाँधा गया मैं पिता के द्वारा छुड़ाया गया हूँ नाकि अपने पराक्रम से। इसलिए मुझमें कितना पौरुष है, जिससे मैं पृथ्वी पालन करूँ ॥२३॥

जब मैं अपना भी पालन करने में समर्थ नहीं हुआ हूँ, तब पृथ्वी का पालन कैसे करूँगा ? इसलिए आप यह राज्य किसी दूसरे को सौंप दीजिए ।।२४।।

जो पुरुष अन्य (शत्रु) के द्वारा पराजित हो जाता है वह तो स्त्री के समान हो जाता है। अपने पुत्र मोह के कारण आपने मुझे बन्धन से छुड़ाया है ॥२५॥

इसलिए स्त्री के गुणों से युक्त मैं राजा कैसे बनूंगा ? जो शूरवीर स्त्री और पुरुषों का स्वामी होता है, वही राजा (होने योग्य) है ॥२६॥

पितोवाच—

न भिन्न एव पुत्रस्य पिता पुत्रस्तथा पितुः । नान्येन मोक्षितो वीर यस्त्वं पित्रा विमोक्षितः ।।२७

पुत्र उवाच—

हृदयं नान्यथा नेतुं मया शक्यं नरेश्वर । हृदये ह्रीर्ममातीव यस्त्वहं मोक्षितस्त्वया ।।२८

पित्रोपात्तां श्रियं भुङ्क्ते पित्रा कृच्छ्रात् समुद्धृतः ।
विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नो कुले ।।२९
स्वयमर्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम् ।
स्वयं निस्तीर्णकृच्छ्राणां या गतिः साऽस्तु मे गतिः ।।३०

मार्कण्डेय उवाच—

इत्याह बहुशः पित्रा यदाप्युक्त्वोऽप्यसौ मुने । तदा तस्य सुतं राज्ये मरुत्तमकरोन्नृपः ।।३१

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् । चकार सम्यक् सुहृदामानन्दमुपपादयन् ।।३२

राजा करन्धमश्चापि वीरामादाय तां तथा । वनं जगाम तपसे यतवाक्कायमानसः ।।३३

तत्र वर्षसहस्रं स तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् । विहाय देहं नृपतिः शक्रस्याप सलोकताम् ।।३४

पिता ने कहा—

जिस प्रकार पिता पुत्र से भिन्न नहीं है, उसी प्रकार पुत्र भी पिता से अलग नहीं होता । इसलिए हे वीर ! यदि तुमको पिता ने छुड़ाया तो तुम किसी अन्य के द्वारा नहीं छुड़ाए गये हो ।।२७।।

पुत्र बोला —

हे राजन् ! मैं अपने हृदय को अन्यथा ले जाने में समर्थ नहीं हूँ । मेरे हृदय में अतीव लज्जा हो रही है कि मैं आपके द्वारा छुड़ाया गया हूँ ।।२८।।

जो मनुष्य पिता द्वारा प्राप्त करायी गयी लक्ष्मी (ऐश्वर्य) को भोगता है और पिता के द्वारा ही कष्टों से उबारा जाता है तथा पिता की कीर्ति से ही जाना जाता है। ऐसा मनुष्य हमारे कुल में उत्पन्न न होवे ।।२९।।

लेकिन स्वयं धन का अर्जन करना, स्वयं प्रसिद्धि प्राप्त करना, और स्वयं ही कष्टों से उबरना ऐसी जो स्थिति है, वही मेरी भी स्थिति होवे ।।३३।।

मार्कण्डेय बोले—

हे मुने ! जब-जब पिता ने अनेक बार इस प्रकार कहा—तब-तब उसने भी उसी प्रकार कहा, तब राजा ने उसके पुत्र मरुत्त को राज्य में नियोजित कर दिया ।।३१।।

तब पिता से अनुज्ञा प्राप्त किये हुए उसने पितामह से राज्य ग्रहण करके बन्धुवर्ग को आनन्दित करते हुए, भली प्रकार (राज्य का पालन) किया ।।३२।।

और राजा करन्धम भी अपनी पत्नी वीरा को लेकर शरीर, वाणी और मन को नियन्त्रित करके तप के लिए वन में गया ।।३३।।

वहाँ उस राजा ने सहस्रों वर्षों तक कठोर तप करके शरीर को छोड़कर इन्द्रलोक को प्राप्त किया ।।३४।।

साऽस्य पत्नी तदा वीरा वर्षाणामपरं शतम् । तपश्चचार बिप्रर्षे जटिलामलपंकिनी ।।३५
सालोक्यमिच्छती भर्त्तः स्वर्गतस्य महात्मनः । फलमूलकृताहारा भार्गवाश्रमसंश्रया ।।
द्विजातिपत्नीमध्यस्था द्विजशुश्रूषणादृता ।।३६

इति श्रीमार्कण्डेय महापुराणे मरुत्तचरिते पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

हे विप्रर्षे ! तब इसकी जटा धारिणी पुण्यात्मा वीरा ने और भी सौ वर्षों तक तप का आचरण किया ।।३५।।

भार्गव ऋषि के आश्रम में स्थित केवल फल मूल का आहार करने वाली, द्विज पत्नियों के बीच में रहने वाली एवं उनसे सेवा और सम्मान प्राप्त करती हुई वह वीरा सदैव, स्वर्ग लोक में भी अपने पति के सामीप्य की इच्छा करती थी ।।३६।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मरुत्त चरित में एक सौ पच्चीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच—

भगवन् विस्तरात् सर्वं ममैतत् कथितं त्वया । करन्धमस्य चरितमविक्षिच्चरितं च यत् ।।१
आविक्षितस्य नृपतेर्मरुत्तस्य महात्मनः । श्रोतुमिच्छामि चरितं श्रूयते सोऽतिचेष्टितः ।।२
चक्रवर्ती महाभागः शूरः कान्तो महामतिः । धर्मविद् धर्मकृच्चैव सम्यक् पालयिता भुवः ।।३

मार्कण्डेय उवाच —

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् । धर्मतः पालयामास पिता पुत्रानिवौरसान् ।।४
इयाज सुबहून्यज्ञान् यथावत् स्वाप्तदक्षिणान् । ऋत्विक्पुरोरितादेशादनिर्विण्णो महिपतिः ।।५

क्रौष्टुकि बोले—

हे भगवन् ! आपने राजा करन्धम और अविक्षित का चरित मुझ से विस्तार पूर्वक कहा ।।१।।

हे महात्मन् ! अब मैं आपसे राजा अविक्षित के पुत्र मरुत्त के चरित का श्रवण करना चाहता हूँ । सुना जाता है कि अत्यन्त उद्यमी, चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, कान्त और श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् धर्मज्ञ, धर्माचारी उस राजा ने सम्यक् प्रकार से पृथ्वी का पालन किया ।।२-३।।

मार्कण्डेय बोले —

अपने पिता से आज्ञप्त (आज्ञा प्राप्त किये हुए उसने) पितामह से राज्य प्राप्त करके उसका उसी प्रकार धर्म पूर्वक पालन किया, जिस प्रकार पिता अपने औरस पुत्रों का पालन करता है ।।४।।

ऋत्विक् और पुरोहितों के आदेश से प्रसन्न होकर उस महीमति ने प्रभूत दक्षिणा वाले बहुत से यज्ञों का विधि पूर्वक अनुष्ठान किया ।।५।।

तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद् द्वीपेषु सप्तसु । गतिश्चाप्यनवच्छिन्ना स्वः पाताल जलादिषु ।।६
ततः प्राप्य धनं विप्र यथावत् स्वक्रियापरः । अयजत् स महायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ।।७
इतरे च यथा वर्णाः स्वे-स्वे कर्मण्यतन्द्रिताः । तदुपात्तधनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाः क्रियाः ।।८
पाल्यमाना मही तेन मरुत्तेन महात्मना । योऽस्पर्द्धत् त्रिदशावासवादिभिर्द्विजसत्तम ।।९
तेनातिशयिताः सर्वे केवलं न महीक्षितः । यज्विना देवराजोऽपि शतयज्ञाभिसन्धिना ।।१०
ऋत्विक् तस्य तु संवर्त्तो बभूवाङ्गिरसः सुतः । भ्राता बृहस्पतेर्विप्र महात्मा तपसां निधिः ।।११
सौवर्णो मुञ्जवान्नामं पर्वतः सुरसेवितः । पातितं तेन तच्छृङ्गं कृते तस्य महीपतेः ।।१२
तेन यस्याखिलं यज्ञे भूमिभागादिकं द्विज । प्रासादाश्च कृताः शुभ्रास्तपसा सर्वकाञ्चनाः ।।१३
गाथाश्चाप्यत्र गायन्ति मरुत्त चरिताश्रयाः । सातत्येनर्षयः सर्वे कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ।।१४
मरुत्तेन समो नाभूद्यजमानो महीतले । सदः समस्तं यद्यज्ञे प्रासादाश्चैव काञ्चनाः ।।१५
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः । विप्राणां परिवेष्टारः शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ।।१६

उसका रथचक्र सातों द्वीपों में अप्रतिहत था एवं उसकी गति स्वर्ग, पाताल और जलों में भी रुकने वाली नहीं थी ।।६।।

तब उचित साधनों के द्वारा धन प्राप्त करके स्व क्रिया परायण उसने महा यज्ञों के द्वारा इन्द्र आदि देवताओं का यजन किया ।।७।।

अपने अपने कार्यों में आलस्य रहित होकर लगे हुए जो दूसरे वर्ण थे उन्होंने उससे प्राप्त धन से ही इष्टापूर्त क्रियाओं का सम्पादन किया ।।८।।

हे द्विज श्रेष्ठ ! उस महात्मा मरुत्त के द्वारा पालन की जाती हुई पृथ्वी (उस समय) देवताओं की निवास भूमि स्वर्ग से भी स्पर्द्धा करने वाली थी ।।९।।

वह राजा केवल अन्य राजाओं में ही प्रमुख नहीं था वरन् सैकड़ों यज्ञों को करने के कारण देवराज इन्द्र से भी यज्ञों में प्रति स्पर्द्धा करने वाला था ।।१०।।

हे ब्रह्मन् अंगिरा के पुत्र बृहस्पति का भाई, महात्मा, तपोनिधि, संवर्त्त उसके ऋत्विक हुए ।।११।।

देवताओं द्वारा सेवित मुञ्जवान् नामक स्वर्ण पर्वत की चोटी संवर्त्त ने उस राजा के लिए गिरा ली थी ।।१२।।

हे द्विज ! उन्होंने (संवर्त्त ने) उस स्वर्ण के द्वारा उनकी सम्पूर्ण यज्ञ भूमियाँ एवं सभी महलों को शुभ्र एवं तप से स्वर्णमय बना दिया था ।।१३।।

और जिस मरुत्त के चरित्त सम्बन्धिनी गाथाओं को ऋषि लोग भी मानो अध्ययन करते हुए निरन्तर गाते रहते हैं ।।१४।।

राजा मरुत्त के समान इस पृथ्वी तल पर कोई यजमान नहीं हुआ । जिसके यज्ञ में समस्त सभा-भवन और प्रासाद स्वर्णमय बनाये गये थे ।।१५।।

जिसके यज्ञों में इन्द्र सोम पान से और ब्राह्मण दक्षिणाओं से मदमत्त हो जाते थे । इसके यज्ञ में इन्द्रादि श्रेष्ठ देवता भी ब्राह्मणों को भोजन परोसने वाले होते थे ।।१६।।

यथा यज्ञे मरुत्तस्य तृप्ताः सर्वे महीपतेः। सुवर्णमखिलं त्यक्तं रत्नपूर्णगृहे द्विजैः ॥१७
प्रासादादिसमस्तं च सौवर्णं तस्य यत्कृतौ। त्रयो वर्णा ह्यलभ्यन्त तस्मात् केचित्तथा ददुः ॥१८
(तेन त्यक्तेन शिष्टा ये जनाः पूर्णमनोरथाः। तेऽपि यज्ञान् यजन्ते स्म देशे देशे पृथक् पृथक् ॥)
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं सम्यक् पालयतः प्रजाः। तपस्वी कश्चिदभ्येत्य तमाह मुनिसत्तम ॥१९
पितुर्माता तवाहेदं दृष्ट्वा तापसमण्डलम्। विषाभिभूतमुरगैर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर ॥२०
पितामहस्ते स्वर्यातः सम्यक् संपाल्य मेदीनीम्। पिता तव तथा शक्तो हित्वा ग्रामं वनं गतः ॥
(तपश्चरणशक्ताऽहमिह चौर्वाश्रमे स्थिता ॥)२१
साऽहं पश्यामि वैकल्यं तव राज्यं कशासतः। पितामहस्य तेनाभूद्यत् पूर्वेषां च ते नृप ॥२२
नूनं प्रमत्तो भोगेषु सक्तो वाऽविजितेन्द्रियः।
चारान्धता यतोऽस्तीयं दुष्टादुष्टं न वेत्सि यत् ॥२३
पातालादभ्युपेतैस्तु भुजगैर्दंशशालिभिः। दष्टा मुनि सुताः सप्तदूषिताश्च जलाशयाः ॥२४
स्वेदमूत्रपुरीषेण दूषितं सुश्रृतं हविः। अपराधं समुद्दिश्य दत्तो नागबलिश्चिरात् ॥२५

महीपति मरुत्त के यज्ञ में, ब्राह्मण (दक्षिणा में प्राप्त) रत्नों से घर पूर्ण हो जाने के कारण परितृप्त होकर प्राप्त सुवर्ण का परित्याग कर देते थे ॥१७॥

उनके समय में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्ण स्वर्ण मय भवनादि आदि को पा सके थे। इसलिये ऐसा दान उसके अतिरिक्त अन्य किस पुरुष ने दिया है ? ॥१८॥

उसके द्वारा दिये गये दान से पूर्ण मनोरथ जो शिष्ट पुरुष थे, उन्होंने भी अपने-अपने घरों में अलग-अलग यज्ञ किये। उनके इस प्रकार राज्य पालन एवं भली प्रकार प्रजा पालन करते हुए हे मुनिश्रेष्ठ ! कोई तपस्वी उनके पास जाकर बोला— ॥१९॥

हे नरेश्वर ! मदोन्मत्त नागों के द्वारा विष से अभिभूत किये गये (काटे गये) इस तापस मण्डल को देखकर आपकी माता मही ने कहा—॥२०॥

पृथ्वी का सम्यक् प्रकार पालन करते हुए, तुम्हारे पितामह स्वर्ग चले गये और शक्तिशाली होते हुए भी तुम्हारे पिता तुमको राज्य सौंपकर वन में चले गये। और मैं भी तप में आसक्त होकर औवश्रिम में रह रही हूँ ॥२१॥

हे राजन् ! जो विकलताएँ पूर्व काल में तुम्हारे पितामह के शासन काल में या पूर्व राजाओं के शासन काल में नहीं हुई थी, उन्हीं को मैं तुम्हारे शासन काल में देख रही हूँ ॥२२॥

इसलिए तुम निश्चय ही या तो भोगों में आसक्त होकर प्रमत्त हो गये हो अथवा फिर इन्द्रियों के वश में हो गये हो। वस्तुतः यह तुम्हारा गुप्तचर राहित्य (अन्धपान) ही है, जो कि तुम दुष्ट और सज्जन को नहीं जान पाते हो। (तुम गुप्त चरों को न रखने के कारण ही अच्छी बुरी घटनाओं को जानने में समर्थ नहीं हो) ॥२३॥

दंशशील नागों ने पाताल से आकर सात मुनि कुमारों को डस लिया है एवं स्वेद, मूत्र और पुरीष से सब जलाशय और यज्ञ हवि को दूषित कर दिया है। उनके इसी अपराध को लक्ष्य करके ही मुनिगण चिरकाल से नाग बलि दे रहे हैं ॥२४-२५॥

एते समर्था मुनयो भस्मीकर्त्तुं भुजंगमान् । किन्त्वेषां नाधिकारोऽत्र त्वमेवात्राधिकारवान् ।।२६
तावत्सुखं भूपतिजैर्भोगजं प्राप्यते नृप । अभिषेकजलं यावन्न मूर्ध्नि विनिपात्यते ।।२७
कानि मित्राणि कः शत्रुर्मम शत्रोर्बलं कियत् । कोऽहं के मन्त्रिणः पक्षे के वा भूपतयो मम ।।२८
(कियान्कोशो बलं किं वा कोऽनुरक्तो जनो मम)
विरक्तो वा परैर्भिन्नः परेषामपि कीदृशः । कः सम्यगत्र नगरे विषये वा जनो मम ।।२९
धर्मकर्माश्रयो मूढः कः सम्यगपि वर्त्तते । को दण्ड्यः परिपाल्यः कः के चोपेक्ष्या नरा मया ।।३०
ग्रामभेदतया दम्या देशकालमवेक्षता । चाराश्च चारयेदन्यैरज्ञातान् भूपतिश्चरैः ।।३१
सचिवादिषु सर्वेषु चरान्दद्यान्महीपतिः । इत्यादौ भूपतिर्नित्यं कर्मण्यासक्तमानसः ।।३२
नयेद्दिनं तथा रात्रिं न तु भोगपरायणः । राज्ञां शरीरग्रहणं न भोगाय महीपते ।।३३
क्लेशाय महते पृथ्वी स्वधर्मपरिपालने । सम्यक् पालयतः पृथ्वीं स्वधर्मं च महीपतेः ।।३४
इह क्लेशो महान् स्वर्गे परमं सुखमक्षयम् । तदेतदवबुध्यस्व हित्वा भोगान्नरेश्वर ।।३५

यद्यपि ये मुनि इन नागों को भस्म करने में समर्थ हैं। किन्तु इनका यह अधिकार नहीं है। इस सम्बन्ध में तो तुम्हीं अधिकारी हो ।।२६।।

हे राजन् ! राजपुत्र भोग जनित सुख को तभी तक प्राप्त कर सकते हैं। जब तक उनके मस्तक पर अभिषेक का जल नहीं डाला जाता है ।।२७।।

कौन मेरा मित्र है ? कौन शत्रु है ? मेरे शत्रु के पास कितनी सेना है ? मैं कौन हूँ ? कौन मन्त्री मेरे पक्ष में हैं ? अथवा कौन राजा मेरे पक्ष में है ? ।।२८।।

मेरे पास कितना कोष है ? और सेना कितनी है ? अथवा कौन व्यक्ति मुझसे प्रीति करता है ? अथवा कौन शत्रुओं के द्वारा टूटा हुआ मुझसे विरक्त है और शत्रु भी किस प्रकार के हैं और कौन व्यक्ति मेरे इस नगर या राज्य में भली प्रकार आचरण कर रहा है ।।२९।।

कौन मेरे राज्य में धर्म कर्म का आश्रय लेने वाला है ? कौन मूर्ख हैं ? कौन दण्डनीय है ? कौन पालनीय और कौन उपेक्षणीय है ।।३०।।

राजा को देश काल को देखते हुए साम, दाम, भेद का प्रयोग करना चाहिये। अन्य राजाओं के चरों से अपरिचित चरों की नियुक्ति करनी चाहिये ।।३१।।

इस प्रकार देश काल के अनुसार राजा को सचिव आदियों पर भी गुप्तचरों द्वारा दृष्टि रखनी चाहिये। इस प्रकार राजा को नित्य कर्मों में दत्त चित्त होना चाहिये ।।३२।।

और भोग परायण न होते हुए, इन्हीं कार्यों में अपने दिन और रातों को व्यतीत करें। हे महीपते ! राजाओं का शरीर धारण भोग के लिये नहीं होता ।।३३।।

हे महीपते ! अपने धर्म और पृथ्वी का भली प्रकार पालन करते हुए' राजा को तो महान् कष्ट ही भोगने होते हैं। वस्तुतः तो राजा को अपने धर्म पालन और पृथ्वी पालन में कष्ट ही भोगना पड़ता है ।।३४।।

इस लोक में क्लेश भोगने से राजा को स्वर्ग में अक्षय सुख की प्राप्ति होती है। इसलिये हे नरेश्वर ! इस बात को समझो और भोगो का त्याग करके ।।३५।।

पालनाय क्षितेः क्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि । इति वृत्तमृषीणां यद्व्यसनं त्वयि शासति ॥३६
भुजङ्गहेतुकं भूप चारान्धो नापि वेत्सि तत् । बहुनात्र किमुक्तेन पुष्टे दण्डो निपात्यताम् ॥३७
शिष्टान् पालय राजंस्त्वं धर्मषड्भागमाप्स्यसि । अरक्षन् पापमखिलं दुष्टैरविनयात् कृतम् ॥३८
समवाप्स्यस्य सन्दिग्धं यदिच्छसि कुरुष्व तत् । एतन्मयोक्तं सकलं यत्तवाहं पितामही
कुरुष्वैवं स्थिते यत्ते रोचते वसुधाधिप ॥३९

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे मरुत्तचरिते षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

पृथ्वी के पालन के लिये कष्टों को अंगीकार करो। तुम्हारे शासन करते हुए, ऋषियों को सर्पों से जो भय उपस्थित हुआ है ॥३६॥

हे राजन्! नागों के इस अनाचार को गुप्तचरों के अभाव में ही तुम नहीं जान पाये हो अथवा अधिक कहने से क्या लाभ? दुष्टों को दण्डित करो ॥३७।

और हे राजन्! तुम शिष्टजनों का पालन करो, इसी प्रकार ही तुम्हें धर्म के षष्ठ भाग की प्राप्ति होगी। दुष्टगण अविनय के कारण जो पाप करते हैं, उन सभी से सज्जनों की रक्षा (यदि) नहीं करते तो ॥३८॥

तुम निश्चय ही सम्पूर्ण पाप के भागी होओगे। अब तुम जो उचित समझो करो। यह मैंने तुमसे इसलिये सम्पूर्ण बात कह दी है क्योंकि मैं तुम्हारी पितामही हूँ। ऐसी स्थिति में हे राजन्! जो तुम्हें उचित लगे वही करो ॥३९॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मरुत्तचरित में एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

इति तापसवाक्यं स श्रुत्वा लज्जापरो नृपः ।
धिङ् मां चारान्धमित्युक्त्वा निःश्वस्य जगृहे धनुः ॥१
ततः स त्वरितं गत्वा तमौर्वस्याश्रमं प्रति । ववन्दे शिरसा वीरां मातरं पितुरात्मनः ॥२
तापसांश्च यथान्यायं तैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः । दृष्ट्वा तापसान् सप्त नागैर्दष्टान् मृतान् भुवि ॥३
निनिन्दात्मानमसकृत् पुरस्तेषाँ महीपतिः । उवाच चैतदद्याहं मद्वीर्यमवमन्यताम् ॥४
यत्करोमि भुजङ्गानां दुष्टानां ब्राह्मणद्विषाम् । तत्पश्यतु जगत् सर्वं स देवासुरमानुषम् ॥५

मार्कण्डेय ने कहा—

इस प्रकार तपस्विनी के वचनों को सुनकर राजा अत्यन्त लज्जित हुआ। 'गुप्तचरों से रहित मुझे धिक्कार है' यह कहकर लम्बी सांस लेकर धनुष उठाया ॥१॥

तब उसने शीघ्रतापूर्वक और्वमुनि के आश्रम में जाकर अपने पिता की माता वीरा को एवं तपस्वियों को विधिपूर्वक सिर से प्रणाम किया। तब उन्होंने उसको आशीर्वाद प्रदान किए। तब राजा ने नागों के द्वारा काटने से मरे हुए पृथ्वी पर पड़े हुए सात तपस्वियों को देखकर उन सबके सामने ही अपनी बार-बार निन्दा की और इस प्रकार बोला—'ब्राह्मणों से द्वेष करने वाले एवं मेरे पराक्रम की अवमानना करने वाले इन दुष्ट नागों की आज मैं जो दशा करता हूँ। वह (दशा) सभी दैत्य, देवता और सम्पूर्ण विश्व अवलोकन करे ॥२-५॥

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्त्वा जगृहे कोपादस्त्रं सम्वर्तकं नृपः । नाशायाशेषनागानां पातालोर्वीविचारिणाम् ॥६
ततो जज्वाल सहसा नागलोकः समन्ततः । महास्त्रतेजसा विप्र दह्यमानो निवारितः ॥७
हा हा तातेति हा मातर्हा हा वत्सेति सम्भ्रमे । तस्मिन्नस्त्रकृते वाचः पन्नगानामथाभवन् ॥८
केचिज्ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्ये भुजङ्गमाः । गृहीत पुत्रदाराश्च त्यक्ताभरणवाससः ॥९
पातालमुत्सृज्य ययुः शरणं भामिनीं तदा । मरुत्तमातरं पूर्वं यया दत्तं तदाऽभयम् ॥१०
तामुपेत्योरगाः सर्वे स प्रणामं भयातुराः । सगद्‌गदमिदं प्रोचुः स्मर्यतां नः पुरोदितम् ॥११
प्रणम्याभ्यर्थितं पूर्वं यदस्माभी रसातले । तस्य कालोऽयमायातस्त्राहि वीर प्रजायिनि ॥१२
पुत्रो निवार्यतां राज्ञि प्राणैः संयोज्यमस्तु नः । दह्यते सकलो लोको नागानामस्त्रवह्निना ॥१३
एवं संदह्यमानानामस्माकं तनयेन ते । त्वामृते शरणं नान्यत् कृपां कुरु यशस्विनि ॥१४

मार्कण्डेय उवाच—

इति श्रुत्वा वचस्तेषां संस्मृत्यादौ च भाषितम् । भर्तारमाह सा साध्वी ससंभ्रममिदं वचः ॥१५

मार्कण्डेय ने कहा—

यह कहकर राजा ने क्रोधपूर्वक संवर्त्तक नामक अस्त्र को पाताल और पृथ्वी पर विचरने वाले सम्पूर्ण नागों के नाश के लिये, हाथ में उठाया ॥६॥

हे विप्र तभी सहसा नाग लोक चारों ओर से जल उठा। इस महास्त्र के अनिवारित तेज से जलते हुए ॥७॥

भयभीत होकर हा ! तात हा ! मात, हा ! हा ! वत्स उस अस्त्र के धारण करने पर नागों ने इस प्रकार चीत्कार करना प्रारम्भ किया ॥८॥

किसी की पूंछ का अग्र भाग और दूसरे नागों के फण जलने के कारण अपने वस्त्रों को त्याग कर एवं अपनी पुत्र व पत्नियों को हाथ से पकड़े हुए ॥९॥

पाताल को छोड़कर वे सब नाग मरुत्त की माता भामिनी की शरण में गये। जिसने उनको पूर्वकाल में अभय प्रदान किया था ॥१०॥

उनके पास जाकर सभी नाग भयभीत होकर प्रणाम करके गद्‌गद् वाणी से इस प्रकार बोले—पूर्वकाल में कहे गये, हमारे वचन को स्मरण कीजिये ॥११॥

पाताल लोक में प्रणाम करके जो हमने प्रार्थना की थी उसी (प्रार्थना को पूरा करने) का समय आ गया है। हे वीर ! प्रसविनी, हमारी रक्षा करो ॥१२॥

हे राजमहिषी ! अपने पुत्र को रोककर हमारे प्राणों कीं रक्षा करो। वह आग्नेयास्त्र से सम्पूर्ण नाग लोक को जला रहा है ॥१३॥

इस प्रकार तुम्हारे पुत्र के द्वारा जलाए जा रहे, हमारे लिए तुम्हें छोड़कर अन्य कोई शरण नहीं है। हे यशस्विनी ! कृपा करो ॥१४॥

मार्कण्डेय बोले—

उनके इन वचनों को सुनकर और पहले कहे गये अपने वचनों को स्मरण कर, वह साध्वी अपने पति से घबराहटपूर्वक ये वचन बोली ॥१५॥

पूर्वमेव तवाख्यातं पाताले यद् भुजङ्गमैः । प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वं ममासीत्तनयं प्रति ।।१६
त इमेऽभ्यागता भीता दह्यन्ते तस्य तेजसा । मामेते शरणं पूर्वं दत्तमेभ्यो मयाऽभयम् ।।१७
ये मां शरणमापन्नास्ते त्वां शरणमागताः । अपृथग्धर्मचरणा यातहं शरणं तव ।।१८
तान्निवारय पुत्रं त्वं मरुत्तं वचनात्तव । मया चाभ्यर्थितोऽवश्यं शममभ्युपयास्यति ।।१९

राजोवाच

महापराधे नियतं मरुत्तः क्रोधमागतः । दुर्निवर्त्यमहं मन्ये तस्य क्रोधं सुतस्य ते ।।२०

नागा ऊचुः—

शरणागतास्तव वयं प्रसादः क्रियतां नृप । क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तं शस्त्रधारणम् ।।२१

मार्कण्डेय उवाच—

नागानां तद्वचः श्रुत्वा भूतानां शरणैषिणाम् । तया चाभ्यर्थितः पत्न्या प्राहाविक्षिन्महायशाः ।।२२
गत्वा ब्रवीमि तं भद्रे तदयं त्वरया तव । परित्राणाय नागानां न त्याज्याः शरणागताः ।।२३
नोपसंहरते सोऽस्त्रं यदि मद्वचनान्नृपः । तदास्त्रैवारयिष्यामि तस्यास्त्रं तनस्य ते ।।२४

(हे स्वामी) ! पातालस्थित सर्पगणों ने विनयपूर्वक जो कुछ मेरे पुत्र के सम्बन्ध में कहा, उस सबको मैंने पहने आपसे कह दिया था ।।१६।।

मेरे द्वारा पूर्वकाल में अभय प्रदान किये हुए वे ही ये नागगण उस (पुत्र) के तेज से दग्ध हो रहे हैं और भयभीत होकर मेरी शरण में आये हैं ।।१७।।

जो मेरे शरणागत हैं, वही आपके भी शरणागत हैं क्योंकि मैं एक धर्म का आचरण करके आपकी शरण में ही आयी हुई हूँ ।।१८।।

इसलिए आप पुत्र मारुत्त को अपने आदेश से रोकिये । मेरे भी आग्रह से वह अवश्य शान्त हो जायेगा ।।१९।।

राजा ने कहा—

निश्चित ही इनके महान् अपराध के कारण ही मारुत्त क्रुद्ध हुआ। इसलिये मैं तो तुम्हारे पुत्र के क्रोध को दुर्निवार्य (रोका न जा सकने वाला) मानता हूँ ।।२०।।

नागों ने कहा—

हे राजन् ! हम आपकी शरण में आये हैं, इसलिये आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये । क्षत्रिय सदैव पीड़ित की रक्षा के लिये ही शस्त्र धारण करते हैं ।।२१।।

मार्कण्डय ने कहा—

शरण में आये हुए उन नागों के वचनों को सुनकर और पत्नी के द्वारा अभ्यर्थना करने पर, महायशस्वी अविक्षित ने कहा ।।२२।।

हे भद्रे ! मैं शीघ्र ही तुम्हारे पुत्र के पास जाकर नागों के परित्राण के लिये कहता हूँ । क्योंकि शरण में आये हुए त्याज्य नहीं होते हैं ।।२३।।

और यदि वह राजा (मरुत्त) मेरे कहने के भी अपना अस्त्र नहीं लौटाता है तो मैं तुम्हारे पुत्र के अस्त्र को अपने अस्त्रों से रोकूंगा ।।२४।।

मार्कण्डेय उवाच —

ततो गृहीत्वा स धनुरविक्षित् क्षत्रियोत्तमः। भार्यया सहितः प्रायात्त्वरावान् भार्गवाश्रमम् ॥२५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे मरुत्तचरिते सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

मार्कण्डेय ने कहा—

तब क्षत्रियों में उत्तम अविक्षित धनुष उठाकर पत्नी सहित शीघ्र ही भार्गव मुनि के आश्रम में गया ॥२५॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेयमहापुराण में मरुत्त चरित में एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टाविंशत्यधिकशततमोध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

स तु तत्र सुतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम्। धनुः शस्त्रं च तस्योग्रं ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१

उद्गिरन्तं महावह्निं दीपिताखिलभूतलम्। पातालान्तर्गतं प्राप्तमसह्यं घोरभीषणम् ॥२

स तं दृष्ट्वा महीपालं भृकुटीकुटिलाननम्। मा क्रुधस्त्वं मरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ॥३

प्राहासकृच्चानुलुप्तवर्णक्रममुदारधीः। स निशम्य गुरोर्वाक्यं दृष्ट्वा तं च पुनः पुनः ॥४

गृहीतकार्मुकः पित्रोः प्रणिपत्य स गौरवम्। प्रत्युवाचापराद्धा मे सुभृशं पन्नगाः पितः ॥५

शासती मां मयि महीं परिभूय बलं मम। सप्ताश्रममुपागम्य दष्टा मुनिकुमारकाः ॥६

ऋषीणामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते। मयि शासति दुर्वृत्तैर्दूषितानि हवींषि च ॥७

मार्कण्डेय बोले—

वहाँ उसने श्रेष्ठ धनुष धारण किये हुए अपने पुत्र को देखकर जिसके धनुष पर चढ़ाए गये उग्र अस्त्र की भयंकर ज्वालाओं से दिशाएँ, विदिशाएँ सभी व्याप्त हो रही थीं ॥१॥

और निकलती हुई भयंकर अग्नि समस्त भूतल को प्रकाशमान कर रही थी तथा जो अग्नि पाताल के अन्दर प्रवेश करके अत्यन्त भीषण और असह्य रूप धारण कर रही थी ॥२॥

वक्र भ्रकुटि युक्त मुख वाले उस राजपुत्र (मरुत्त) को देखकर (राजा ने कहा—) हे मरुत्त! क्रोध मत करो और अपने अस्त्र को लौटा लो ॥३॥

उदार बुद्धि वाले राजा के बार-बार कहने से उसके वचन में वर्ण क्रम लुप्त होने लगे। पिता के इन (अस्पष्ट) वचनों को सुनकर और उनको बार-बार देखकर, धनुष धारण किये हुए, माता-पिता को विनम्रता-पूर्वक प्रणाम करते हुए, वह बोला—पिताजी, ये पन्नग मेरे अत्यधिक अपराधी हैं ॥४-६॥

पिताजी, मेरे बलका तिरस्कार करके इस पृथ्वी पर मेरे शासन करते हुए इन नागों ने आश्रम में आकर सात मुनि कुमारों को डस लिया है।

और हे अवनिपते! मेरे शासन में ही इन दुराचारियों ने ऋषियों के आश्रम स्थान को और हवियों को दूषित कर डाला है ॥७॥

जलाशयास्तथाप्येतैः सर्वे एव हि दूषिताः । तदेतत् कारणं किञ्चिन्न वक्तव्यं त्वया पितः ।।
न निवारयितव्योऽहं ब्रह्मघ्नान् प्रतिपन्नगान् ।।८

अविक्षिदुवाच—
यद्येभिर्निहता विप्रा यास्यन्ति नरकं मृताः । ममैतत् क्रियतां वाक्यं विरमास्त्रप्रयोगतः ।।९

मरुत्त उवाच—
नाहमेषां क्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् । अहमेव गमिष्यामि नरकं यदि पापिनाम् ।।
न निग्रहे यताम्येषां मां निवारय मा पितः ।।१०

अविक्षितेवुवाच—
मामेत शरणं प्राप्ताः पन्नगा मम गौरवात् । उपसंह्रियतामस्त्रमलं कोपेन ते नृप ।।११

मरुत्त उवाच—
नाहमेषां क्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् । स्वधर्ममुल्लंध्यकथं करिष्यामि वचस्तव ।।१२
दण्डये निपातयन्दण्डं भूपः शिष्टांश्च पालयन् ।
पुण्यलोकानवाप्नोति नरकांश्चाप्युपेक्षणात् ।।१३

मार्कण्डेय उवाच—
एवं स बहुशः पित्रा वार्यमाणोऽम्बया सह । नोपसंहरते सोऽस्त्रं ततोऽसौ पुनरब्रवीत् ।।१४

और इन्होंने सभी जलाशयों को भी दूषित कर दिया है। इस कारण हे पिताजी ! इस विषय में आपको मुझसे कुछ नहीं कहना चाहिए और ब्रह्मघ्न (ब्राह्मणों के हत्यारे) इन सर्पों को मारते हुए मुझे आपको नहीं रोकना चाहिए ।।८।।

अविक्षित ने कहा—
यदि इन्होंने ब्राह्मणों को मारा है तो मरने पर ये नरक में जायेंगे । लेकिन तुम मेरी बात मानो और अपने अस्त्र प्रयोग से विरत हो जाओ ।।९।।

मरुत्त ने कहा—
मैं इन दुष्ट अपराधियों को क्षमा नहीं करूंगा । यदि मैं इन पापियों के निग्रह (दमन) का यत्न नहीं करता हूँ तो, मैं भी नरक में ही जाऊँगा । इसलिए पिताजी, आप मुझे मत रोकिये ।।१०।।

अविक्षित बोला—
ये नाग मेरी शरण में आये हैं, इसलिए मेरे गौरव की रक्षा के लिए अस्त्र को रोक लो और उनके ऊपर क्रोध मत करो ।।११।।

मरुत्त ने कहा—
अपने धर्म का उल्लंघन करके मैं आपके वचनों का पालन कैसे करूं, इसलिए मैं इन दुष्ट अपराधियों को क्षमा नहीं करूंगा ।१२।।

दण्डनीयों को दण्ड देते हुए और सज्जनों का पालन करते हुए, राजा पुण्य लोकों को प्राप्त करता है और उपेक्षा से नरक की प्राप्ति होती है ।।१३।।

मार्कण्डेय ने कहा—
इस प्रकार बहुत बार माता सहित पिता के द्वारा रोकने पर भी उसने अपना अस्त्र नहीं लौटाया। तब उस (अविक्षित) ने पुनः कहा—।।१४।।

हिंससे पन्नगान् भीतान् ममैतान्छरणं गतान् ।
वार्यमाणोऽपि तस्मात्ते करिष्यामि प्रतिक्रियाम् ।।१५
मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानि न त्वमेकोऽस्त्रविद् भुवि । मामग्रतः सुदुर्वृत्तपौरुषञ्च कियत्तव ।।१६
ततः कार्मुकमारोप्य कोपताम्रविलोचनः । अविक्षिदस्त्रं जग्राह कालस्य मुनिपुङ्गवः ।।१७
ततो ज्वालापरीवारमरिसंघ्घनमुत्तमम् । कालास्त्रं तु महावीर्यं योजयामास कार्मुके ।।१८
ततश्चुक्षोभ जगती संवर्त्तास्त्रप्रतापिता । साब्धिशैदाऽखिला विप्र कालस्यास्त्रे समुद्यते ।।१९

मार्कण्डेय उवाच —

कालास्त्रमुद्यतं पित्रा मरुत्तः सोऽपि वीक्ष्य तत् । प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मे दुष्टशास्ति समुद्यतम् ।।२०
न त्वद्वधाय कालास्त्रं मयि मुञ्चति किं भवान् । स्वधर्मचारिणि सुते सदैवाज्ञाकरे तव ।।२१
मया कार्यं महाभाग प्रजानां परिपालनम् । त्वयैवं क्रियते कस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम् ।।२२

अविक्षिदुवाच –

शरणागतसंत्राणं कर्तुं व्यवसिता वयम् । तस्य व्याघात कर्त्ता त्वं न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ।।२३
मां वा हत्वाऽस्त्रवीर्येण जहि दुष्टानिहोरगान् ।
त्वां वा हत्वाऽहमस्त्रेण रक्षिष्यामि महोरगान् ।।२४

यदि तुम मना करने पर भी मेरी शरण में आये हुए इन भयभीत नागों को मारते हो तो मैं तुम्हारा विरोध करूँगा ।।१५।।

मैंने भी शस्त्र (शिक्षा, ग्रहण की है। केवल तुम्हीं पृथ्वी पर एक मात्र शस्त्र विद् नहीं हो। हे दुर्वृत्त ! मेरे सामने तुम्हारा पौरुष ही कितना है ।।१६।।

हे मुनि श्रेष्ठ ! तब क्रोध से लाल नेत्रों वाले राजा अविक्षित ने कालास्त्र को धनुष पर चढ़ाकर उठा लिया ।।१७।।

तब ज्वालाओं से घिरे हुए, शत्रु समूह का संहार करने वाले अति शक्तिशाली, उत्तम कालास्त्र को राजा ने धनुष पर चढ़ाया ।।१८।।

हे विप्र ! कालास्त्र के संधान करने पर संवृत्तास्त्र के संताप से तप्त हुआ सागर और पर्वत सहित सम्पूर्ण संसार अत्यन्त क्षुभित हुआ ।।१९।

मार्कण्डेय ने कहा—

पिता को कालास्त्र का संधान करते हुए देखकर मरुत्त ने भी उच्च स्वर से कहा—मेरा यह अस्त्र दुष्टों पर शासन (नियन्त्रण) करने वाला है, न कि आपके वध के लिए। तो फिर सदैव अपने धर्म का पालन करने वाले और आपकी आज्ञा मानने वाले पुत्र के ऊपर आप इस कालास्त्र को क्यों छोड़ रहे हैं ? ।।२०-२१।।

हे महाभाग ! मेरा कर्त्तव्य प्रजा का पालन करना है। तो फिर आप किस कारण मेरे वध के लिये इस अस्त्र का संधान कर रहे हैं ।।२२।।

अविक्षित बोले —

हम शरणागत की रक्षा करने के लिए तत्पर हुए हैं और उसमें व्याघात करने वाले तुम मेरे अस्त्र के द्वारा जीवित नहीं बचोगे ।।२३।।

अथवा फिर इस शक्तिशाली अस्त्र से मुझको मारकर ही इन दुष्ट नागों का वध करो या फिर मैं तुमको अस्त्र से मारकर (शरण में आये हुए) इन महान नागों की रक्षा करूँगा ।।२४।।

धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् । यो नार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥२५

क्षत्रियोऽहमिमे सीताः शरणं मामुपागताः । अपकर्त्ता त्वमेवैषां कथं वध्यो न मे भवान् ॥२६

मरुत्त उवाच —

मित्रं वा बान्धवो वाऽपि पिता वा यदि वा गुरुः । प्रजापालनविघ्नाय यो हन्तव्यः स भूभृता ॥२७

सोऽहं ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं त्वया पितः । स्वधर्मः परिपाल्यो मे न मे क्रोधस्तवोपरि ॥२८

मार्कंडेय उवाच—

ततस्तौ निश्चितौ दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति । समुत्पत्यान्तरे तस्थुर्मुनयो भार्गवादयः ॥२९

ऊचुश्चैनं न मोक्तव्यं त्वथाऽस्त्रं पितरं प्रति । त्वया च नायं हन्तव्यः पुत्रः प्रख्यातचेष्टितः ॥३०

मरुत्त उवाच—

मया दुष्टा निहन्तव्याः सण्तो रक्ष्या महीक्षिता ।
इमे च दुष्टा भुजगाः कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः ॥३१

अविक्षिदुवाच—

शरणागतसन्त्राणं मया कार्यमयञ्च मे । अपराध्यः सुतो विप्रा यो हन्ति शरणागतान् ॥३२

क्योंकि उस मनुष्य के जीवन को धिक्कार है जो शरण में आये हुए दुःखी को अनुगृहीत नहीं करता। भले ही वह (शरणागत) वैरी पक्ष का ही क्यों न हो ? ॥२५॥

मैं क्षत्रिय हूँ और भयभीत ये मेरी शरण में आये हैं और तुम इनका अपकार करने वाले हो तो फिर तुम मेरे द्वारा वध्य क्यों नहीं हो ? ॥२६॥

मरुत्त ने कहा—

प्रजापालन से विघ्न करने वाला, चाहे मित्र हो या बन्धु हो अथवा पिता या गुरु ही क्यों न हो राजा को उसका अवश्य वध कर देना चाहिए ॥२७॥

इसलिए मैं आप पर प्रहार करूँगा। हे तात ? आपको मेरे ऊपर क्रोध नहीं करना चाहिए। मेरा आपके ऊपर क्रोध नहीं है अपितु मैं तो अपने धर्म का पालन कर रहा हूँ ॥२८॥

मार्कण्डेय बोले—

तब उन दोनों को एक दूसरे के वध के लिए निश्चित देखकर भार्गव आदि मुनि उठकर उनके बीच में खड़े हो गये ॥२९॥

और उस (मरुत्त) से बोले—तुमको पिता के ऊपर अस्त्र नहीं छोड़ना चाहिये और हे राजन् ! तुमको भी विख्यात कीर्ति इस पुत्र को नहीं मारना चाहिए ॥३०॥

मरुत्त ने कहा—

हे विप्रगण ! मैं राजा हूँ, मुझे पृथ्वी पर दुष्टों का वध करना चाहिए और सज्जनों की रक्षा करनी चाहिए। और ये नाग दुष्ट हैं (क्योंकि इन्होंने मेरी प्रजा ब्राह्मणों के प्रति अपराध किया है) फिर इसमें मेरा क्या अपराध है ॥३१॥

अविक्षित बोले—

हे विप्रों ! शरणागत की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है और यह मेरा पुत्र अपराधी है, जो कि शरणागतों का वध कर रहा है ॥३२॥

ऋषय ऊचुः—

इमे वदन्ति भुजगास्त्रासलोलविलोचनाः । संजीवयामस्तान् विप्रान् ये दष्टा दुष्टपन्नगैः ।।३३
तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्यौ प्रसीदताम् । उभावपि विनिर्व्यूढ प्रतिज्ञौ धर्मकोविदौ ।।३४

मार्कण्डेय उवाच—

सा तु वीरा समभ्येत्य पुत्रमेतदभाषत । मद्वाक्यादेष ते पुत्रो हन्तुं नागान् कृतोद्यमः ।।३५
तन्निष्पन्नं यदा विप्रास्ते जीवन्ति तथा मृताः । संजीवन्तश्च मुच्यन्ते यद्युष्मच्छरणं गता ।।३६

भामिन्युवाच—

अहमभ्यर्थिता पूर्वमेभिः पातालसंश्रयैः । तन्निमित्तमयं भर्त्ता मयात्र विनियोजितः ।।३७
तदेतदार्ये निवृत्तमुभयोरपि शोभनम् । मम भर्तुश्च पुत्रस्य त्वत्पौत्रस्यात्मजस्य च ।।३८

मार्कण्डेय उवाच—

ततः संजीवयामासुस्तान् विप्रांस्ते भुजङ्गमाः । दिव्यैरोषधिजातैश्च विषसंहरणेन च ।।३९
पित्रोर्ननाम चरणौ स ततो जगतीपतिः । मरुत्तश्च स तं प्रीत्या परिष्वज्येदमब्रवीत् ।।४०

ऋषियों ने कहा—

भय से चंचल नेत्रों वाले ये नाग कह रहे हैं कि जो विप्र दुष्ट नागों के द्वारा डसे गये हैं, हम उनको जीवित कर देते हैं ।।३३।।

इसलिए संघर्ष को रोक दीजिए । आप दोनों ही राज श्रेष्ठ, प्रतिज्ञा को पूर्ण करने वाले, और धर्मज्ञ हैं अतः आप प्रसन्न होओ ।।३४।।

मार्कण्डेय ने कहा—

वीरा भी पुत्र के पास आकर इस प्रकार बोली—मेरे कहने से ही तुम्हारा यह पुत्र नागों को मारने के लिए उद्यत हुआ था ।।३५।।

और यदि वे मरे हुए मुनि कुमार जीवित हो जाते हैं तो वह कार्य निष्पन्न हो गया । और उनको जीवित करते हुये तुम्हारे ये शरणागत भी मुक्त हो गये है ।।३६।।

भामिनी ने कहा—

इन पाताल में निवास करने वाले नागों ने मुझसे पहले अभ्यंना की थी उसी के लिये मैंने अपने पति को इस कार्य में लगाया (प्रेरित किया था) ।।३७।।

इसलिए हे आर्ये ! मेरे पति और पुत्र का आपसे पौत्र और पुत्र दोनों का यह कार्य श्रेष्ठ रीति से पूर्ण हो गया है ।।३८।।

मार्कण्डेय ने कहा—

उसके बाद उन नागों ने दिव्य औषधियों एवं विष के संहरण द्वारा उन ब्राह्मण पुत्रों को जीवित कर दिया ।।३९।।

तब उस राजा (मरुत्त) ने माता पिता के चरणों में प्रणाम किया । उन्होंने भी इसका प्रेमपूर्वक आलिगन कर इस प्रकार कहा ।।४०।।

मानहा भव शत्रूणां चिरं पालय मेदिनीम्। पुत्रपौत्रैश्च मोदस्व मा च ते सन्तु विद्विषः ॥४१
ततो द्विजैरनुज्ञातौ वीरया च नरेश्वरौ। समारूढौ रथं सा च भामिनी स्वपुरं गता ॥४२
वीराऽपि कृत्वा सुमहत्तपो धर्मभृतां वरा। भर्तुः सलोकतां प्राप्तामहाभागा पतिव्रता ॥४३
मरुत्तोऽपि चकारोर्व्यां धर्मतः परिपालनम्। विनिर्जितारिषड्वर्गो भोगांश्च बुभुजे नृपः ॥४४
तस्य पत्नी महाभागा विदर्भतनया तथा। प्रभावती सुवीरस्य सौवीरी चाभवत् सुता ॥४५
सुकेशी केतुवीर्यस्य मागधस्यात्मजाऽभवत्। सुता च सिन्धुवीर्यस्य मद्रराजस्य केकयी ॥४६
केकयस्य च सैरन्ध्री सिन्धुभर्तुर्वपुष्मती। चेदिराजसुता चाभूद्भार्या तस्य सुशोभना ॥४७
तासां पुत्रास्तस्य चासन् भूभृतोऽष्टादशद्विज। तेषां प्रधानो ज्येष्ठश्च नरिष्यन्तः सुतोऽभवत् ॥४८
एवं वीर्यो मरुत्तोऽभून्महाराजो महाबलः। तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद् द्वीपेषु सप्तसु ॥४९
यस्य तुल्योऽपरो राजा न भूतो न भविष्यति। सत्त्वविक्रमयुक्तस्य राजर्षेरमितौजसः ॥५०
तस्यैतच्चरितं श्रुत्वा मरुत्तस्य महात्मनः। जन्म चाग्र्यं द्विजश्रेष्ठ मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥५१

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे मरुत्तचरितेऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः।

शत्रुओं के मानमर्दक बनो! पृथ्वी का स्थिर काल तक पालन करो और तुमसे द्वेष करने वाले शत्रु नष्ट हो जाएं ॥४१॥

उसके बाद ब्राह्मणों और वीरा से आज्ञा प्राप्त करके दोनों राजा (पिता पुत्र) और भामिनी रथारूढ़ होकर अपने नगर को चले गये ॥४२॥

और धार्मिकों में श्रेष्ठ, परमभाग्यवती, पतिव्रता, वीरादेवी भी हमारे तप का आचरण करके स्वामी के सालोक्य को ही प्राप्त हुई (स्वर्ग चली गयी) ॥४३॥

राजा मरुत्त ने भी शत्रुओं को षड्वर्ग को जीतकर धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन किया एवं विविध भोगों को भोगा।

उसकी महाभागा विदर्भ पुत्री प्रभावती, सुवीर की पुत्री सौवीरी मगध के राजा केतुवीर्य की पुत्री सुकेशी मद्रराज सिंधु वीर्य की पुत्री, सैरन्ध्री केकय देश के केकयराज की केकयी सिंधु देश के राजा की पुत्री तथा चेदिराज की पुत्री वपुष्मती ये सुन्दर रूप वाली ललनायें उसकी पत्नियां हुई ॥४५–४७॥

हे द्विज! उस (मरुत्त) राजा की इन सब पत्नियों से अठारह पुत्र उत्पन्न हुए। जिनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम नरिष्यन्त था ॥४८॥

महाबली महाराज मरुत्त ऐसा शक्तिशाली था कि उसका रथचक्र सातों द्वीपों में अप्रतिहत गतिवाला था ॥४९॥

जिस राजर्षि के समान दूसरा कोइ राजा न तो हुआ है और न ही होगा, जो शक्ति, पराक्रम और अमिद तेज से युक्त था ॥५०॥

हे द्विज श्रेष्ठ! उस महापुरुष मरुत्त के इस चरित को सुनकर (मनुष्य) सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है और मरने के पश्चात् श्रेष्ठ जन्म प्राप्त करता है ॥५१॥

"इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में मरुत्त चरित्र में एक सो अट्ठाइसवां अध्यायसमाप्त हुआ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

क्रौष्टुकिरुवाच—

मरुत्तचरितं कृत्स्नं भगवन् कथितं त्वया। तत्संततिमशेषेण श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ॥१
तत्संततौ क्षितीशा ये राज्यार्हा वीर्यशालिनः। तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वया ख्यातान्महामुने ॥२

मार्कण्डेय उवाच—

नरिष्यन्त इति ख्यातो मरुत्तस्याभवत् सुतः। अष्टादशानां पुत्राणां स ज्येष्ठः श्रेष्ठ एव च ॥३
वर्षाणां च सहस्राणि सप्ततिं दश पञ्च च। बुभुजे पृथिवीं कृत्स्नां मरुत्तः क्षत्रियर्षभः ॥४
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण इष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान्। नरिष्यन्तसुतं ज्येष्ठमभिषिच्य ययौ वनम् ॥५
एकाग्रचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपो महत्। आरुरोह दिवं विप्र यशसाऽऽवृत्य रोदसी ॥६
नरिष्यन्तः सुतः सोऽस्य चिन्तयामास बुद्धिमान्। पितुर्वृत्तं समालोक्य तथान्येषां च भूभृताम् ॥७
अत्र वंशे महात्मानो राजानो मम पूर्वजाः। यज्विनो धर्मतः पृथ्वीं पालयामासुरूर्जिताः ॥८
दातारश्चापि वित्तानां संग्रामेष्वनिवर्तिनः। तेषां कश्चरितं शक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ॥९
किन्तु तैर्यत्कृतं कर्म धर्म्यमाहवनादिभिः। तदहं कर्तुमिच्छामि तच्च नास्ति करोमि किम् ॥१०

क्रौष्टुकि बोले—

हे भगवान् ! आपने मरुत्त के सम्पूर्ण चरित का कथन किया है। अब मैं उसकी सभी सन्ततियों के विषय में सुनना चाहता हूँ ॥१॥

हे महामुने ! उन संततियों में जो महीपति शासन योग्य पराक्रमी एवं शक्तिशाली था, उसका वृत्तात मैं आपके मुख से सुनना चाहता हूँ ॥२॥

मार्कण्डेय बोले—

राजा मरुत के अठारह पुत्रों में नरिष्यत नामक पुत्र सबसे बड़ा और श्रेष्ठ था ॥३॥

क्षत्रिय श्रेष्ठ मरुत्त ने सत्तर हजार पन्द्रह वर्षों तक इस सम्पूर्ण पृथ्वी का उपभोग किया ॥४॥

(राजा मरुत्त धर्मपूर्वक राज्य करते हुए, श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान करके, सबसे बड़े पुत्र नरिष्यन्त का राज्याभिषेक करके वन में चला गया ॥५॥

हे प्रिय ! वहाँ पर एकाग्रचित्त से उस राजा ने परमोत्कृष्ट तप का आचरण करके, पृथ्वी पर अपनी कीर्ति फैलाकर, स्वर्ग प्राप्त किया ॥६॥

तब उस बुद्धिमान्, नरिष्यन्त ने अन्य राजाओं और अपने पिता के व्यवहार को देखकर विचार किया ॥७॥

इस वंश में उत्पन्न हुए मेरे पूर्वज, महान् आत्मा राजा, यज्ञ करने वाले, धनों के दानी, महापराक्रमी संग्राम से कभी मुख न मोडने वाले और धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करने वाले हुए। उन महात्माओं के चरित का अनुगमन करने में कौन व्यक्ति समर्थ है ? ॥८-९॥

किन्तु उन्होंने धर्म, यज्ञादि के द्वारा जो कर्म किये उन को तो मैं भी करने का इच्छुक हूँ किन्तु यह (अकृत) नहीं है, मैं क्या करूँ ॥१०॥

धर्मात् पालयतः पृथ्वीं को गुणोऽत्र महीपतेः। असम्यक् पालनात् पापी नरेन्द्रो नरकं व्रजेत् ॥११
सति वित्ते महायज्ञाः कर्तव्या एव भूभृता। दातव्यं चात्र किञ्चित्रं सीदतामीश्वरो गति ॥१२
आभिजात्यं तथा लज्जा कोपश्चारिजनाश्रयः। कारयन्ति स्वधर्मश्च संग्रामादपलायनम् ॥१३
एतत् सर्वं यथा सम्यङ् मत्पूर्वैः पुरुषैः कृतम्। पित्रा च मे मरुत्तेन तथा तत्केन शक्यते ॥१४
तदहं किं करिष्यामि यत्तु तैः पूर्वजैः कृतम्। ये यज्विनो वरा दान्ताः संग्रामाच्चानिर्वतिनः ॥१५
महत्संग्रामसंमर्देष्वविसंवादिपौरुषाः। क्रमेणाहं यतिष्यामि कस्मै तानभिसंधितुम् ॥१६
अथवा तैः स्वयं यज्ञाः कृताः पूर्वंजनेश्वरैः। आविश्रमद्भिर्नान्यैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् ॥१७

मार्कण्डेय उवाच—

इति संचिन्त्य यज्ञं स चकारैकं नरेश्वरः। यादृशं न चकारान्यो वित्तोत्सर्गोपशोभितम् ॥१८
द्विजानां जीवनायालं दत्त्वा तु सुमहाधनम्। ततः शतगुणं तेषां यज्ञार्थमददान्नृपः ॥१९
गावोवस्त्राण्यलंकारं धान्यागारादिकं तथा। प्रत्येकमददात्तेषां सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥२०
ततस्तेन यदा यज्ञः प्रारब्धो भूभुजा पुनः। प्रारब्धे स मखे यष्टुं ततो नालभत द्विजान् ॥२१

यदि राजा धर्म पूर्वक पृथ्वी का पालन करता है तो इसमें क्या वैशिष्ट्य है। क्योंकि पृथ्वी का अनुचित प्रकार से (अधर्म पूर्वक) पालन करने के कारण पापी राजा नरक में जाता है ॥११॥

धन होने पर राजा को महान् यज्ञ करने चाहियें और दान देना चाहिए। इसमें भी क्या आश्चर्य है। राजा के खिन्न होने पर तो एक मात्र ईश्वर की गति है ॥१२॥

अपने धर्म का पालन करने के कारण ही राजा अपनी जाति में श्रेष्ठ, लज्जा, शत्रु के प्रति क्रोध एवं संग्राम से पलायन नहीं करता है ॥१३॥

यह सब कार्य मेरे पूर्व पुरुषों एवं मेरे पिता मरूत्त ने जिस प्रकार किये हैं वैसे कार्य कौन कर सकता है? ॥१४॥

तो अब मैं क्या करूँगा मेरे पूर्वजों ने इतना सब तो किया है। जो श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले, उत्तम दान देने वाले, संग्राम से कभी न लौटने वाले, बड़े-बड़े युद्धों में जिनका पराक्रम प्रशंसनीय होता था। मैं ऐसा कार्य करूँ, जिससे मेरे पूर्वजों के लक्ष्य की पूर्ति हो ॥१५-१६॥

अथवा जो यज्ञ मेरे पूर्वजों ने निरन्तर स्वयं किये थे। किन्हीं अन्यों से नहीं कराये, मैं उन्हीं को करूँगा ॥१७॥

मार्कण्डेय बोले—

यह सोचकर उस राजा ने एक ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान किया। धन के अत्यधिक दान से सुशोभित उस प्रकार का यज्ञ किसी अन्य ने नहीं किया था ॥१८॥

उस यज्ञ में ब्राह्मणों के जीवन के लिए सुमहान् धन-दान देकर राजा ने उससे भी सौगुना अन्न दान दिया ॥१९॥

इसके अतिरिक्त उसने समस्त पृथ्वी पर निवास करने वालों को गाय, वस्त्र, अलंकार, और धान्य के ढ़ेर आदि प्रदान किये ॥२०॥

उसके बाद जब उस राजा ने पुनः यज्ञ आरम्भ किया तो यज्ञ प्रारम्भ करने के लिए उसको ब्राह्मण उपलब्ध नहीं हुए ॥२१॥

यान यान् वृणोति स नृपो विप्रानार्त्विज्यकर्मणि । ते ते तमूचुर्यज्ञाय वयमप्यत्र दीक्षिताः ।।२२
अन्यं वरय यद्वित्तं त्वयाऽस्माकं विसर्जितम् । तस्यान्तो नास्ति यज्ञेषु दद्यास्त्वं नृपते कथम् ।।२३

मार्कण्डेय उवाच—

न चाप ऋत्विजो विप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः । बहिर्वेद्यां तदा दानं स दातुमुपचक्रमे ।।२४
तथापि जगृहुर्नैव धनसम्पूर्णमन्दिराः । द्विजाय दातुं भूयोऽसौ निर्विण्ण इदमब्रवीत् ।।२५
अहोतिशोभनं पृथ्व्यां यद्विप्रो नाधनः क्वचित् । अशोभनं च यत्कोशो विफलोऽयमयज्विनः ।।२५
नार्त्विज्यं कुरुते कश्चिद्यजमानोऽखिलो जनः । द्विजानां न च नो दानं ददतां संप्रतीच्छते ।।२७

मार्कंडेय उवाच—

ततः कांश्चिद् द्विजान् भक्त्या प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
स्वयज्ञे ऋत्विजश्चक्रे ते प्रचक्रुर्महामखम् ।।२८

अत्यद्भुतमिदं चासीद्यदा तस्य महीपतेः । स यज्ञोऽभूत्तदा पृथ्व्यां यजमानोऽखिलो जनः ।।२९
द्विजन्मनामभून्नासीत् सदस्यस्तत्र कश्चन । यजमाना द्विजाः केचित् केचित्तेषां तु याजकाः ।।३०

जिन-जिन ब्राह्मणों से राजा ऋत्विक् कर्म करने के लिए प्रार्थना करता था, उन-उन (ब्राह्मणों) ने उससे कहा—कि हम तो अन्यत्र ऋत्विक् कर्म को स्वीकार कर चुके हैं ।।२२।।

(इसलिए हे राजन् !) आप किसी अन्य को (ऋत्विक्) बना लीजिए । आपने (यज्ञ में) हमें जितना धन दिया उसका अन्त नहीं है । वह अनेकानेक यज्ञों में भी समाप्त नहीं हो पा रहा है । अब आप और अधिक क्या देंगे ? ।।२३।।

मार्कण्डेय बोले—

सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामी राजा नरिष्यन्त को जब ऋत्विक् ब्राह्मण नहीं मिल सके तो वे बहिर्वेदी में दान करने को उद्यत हुए ।।२४।।

लेकिन फिर भी धन से परिपूर्ण घर का दान भी जब ब्राह्मणों ने ग्रहण नहीं किया तो वह राजा अत्यन्त दुःखी होकर इस प्रकार बोला—।।२५।।

अरे कितना सुन्दर है कि इस पृथ्वी पर कोई भी ब्राह्मण धन हीन नहीं है । किन्तु यज्ञानुष्ठान के बिना मेरा यह राज्य कोष व्यर्थ है, यही अनुचित है ।।२६।।

सभी ब्राह्मण यजमान बने हुए हैं (कोई भी ऋत्विक् कर्म करने को तैयार नहीं है । कोई ब्राह्मण हमारे दिये हुए दान को ग्रहण नहीं करते हैं ।।२७।।

मार्कंडेय बोले—

उसके बाद कुछ ब्राह्मणों को बार-बार भक्ति पूर्वक प्रणाम करके अपने यज्ञ के लिए ऋत्विक् (नियुक्त) किया और फिर उन्होंने महान् यज्ञ का आयोजन किया ।।२८।।

वह यज्ञ अत्यधिक आश्चर्य जनक था जब उस राजा का वह यज्ञ हुआ तो उस समय इस पृथ्वी पर सभी जन यजमान बने ।।२९।।

उस यज्ञ में कोई भी सभासद (सदस्य) नहीं हुआ । उनमें कुछ ब्राह्मण तो स्वयं यजमान हुए और कुछ स्वयं याजक बने ।।३०।।

नरिष्यन्तो नरपतिरियाज स यदा तदा । तत्प्रदातुर्धनैर्यागं कुर्युः पृथ्व्यामशेषतः ॥३१
प्राच्याँ कोट्यस्तु यज्ञानामासन्नष्टादशाधिकाः ।
प्रतीच्यां सप्तवै कोट्यो दक्षिणस्यां चतुर्दश ॥३२
उत्तरस्यां च पञ्चाशदेककालं तदाऽभवन् । मुने ब्रह्मणयज्ञानां नरिष्यन्तो यदाऽयजत् ॥३३
एवं स राजा धर्मात्मा नरिष्यन्तोऽभवत्पुरा । मरुत्त तनयो विप्र विख्यातबल पौरुषः ॥३४

इति श्री मार्कंडेय महापुराणे नरिष्यन्तचरितं नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

राजा नरिष्यन्त ने जब-जब भी यज्ञ किये तब उन्हीं के द्वारा दिये गये धनों से ब्राह्मणों ने सम्पूर्ण पृथ्वी पर अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया ॥३१॥

हे मुनें ! जब राजा नरिष्यन्त एवं ब्राह्मणों ने यज्ञों का अनुष्ठान किया तो वे सब यज्ञ एक ही समय किये गये । उस समय पूर्व दिशा में अठारह करोड़ से भी अधिक और पश्चिम दिशा में सात करोड़, दक्षिण दिशा में चौदह करोड़ तथा उत्तर दिशा में पचास करोड़ यज्ञ हुए ॥३२-३३॥

हे ब्रह्मन् ! पुराकाल में विख्यात बल एवं पराक्रम सम्पन्न मरूत्त पुत्र नरिष्यन्त इस प्रकार का धर्मात्मा राजा हुआ ॥३४॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में नरिष्यन्त चरित नामक एक सो उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कंडेय उवाच—

नरिष्यन्तस्य तनयो दुष्टारिदमनो दमः । शक्रस्येव बल तस्य दयाशीलं मुनेरिव ॥१
बाभ्रव्यामिंद्रसेनायां स जज्ञे तस्य भूभृतः । नववर्षाणि जठरे स्थित्वा मातुर्महायशाः ॥२
यद्ग्राहयामास दमं मातरं जठरे स्थितः । दमशालश्चं भविता यतश्चायं नृपात्मजः ॥३
ततस्त्रिकालविज्ञानः सहितस्य पुरोहितः । दम इत्यकरोन्नाम नरिष्यंतसुतस्य तु ॥४
स दमो राजपुत्रस्तु धनुर्वेदमशेषतः । जगृहे सुरराजस्य सकाशाद् वृषपर्वणः ॥५

मार्कण्डेय बोले—

राजा नरिष्यन्त के, दुष्टों का दमन करने वाला, इन्द्र के समान बल शाली और मुनियों के समान दयावान् दम (दामक) पुत्र हुआ ॥१॥

उस राजा का वह पुत्र राजा बाभ्रव्य की पुत्री इन्द्रसेना से उत्पन्न हुआ । नो वर्षों तक पेट में रहकर महायशस्वी (दम) ने जन्म लिया । क्योंकि जब तक दम माता के पेट में रहा तब तक इसकी माता को इन्द्रिय निग्रहपूर्वक रहना पड़ा, इसलिये यह राजकुमार भी दमन शील हुआ ॥२-३॥

तब तीनों कालों का ज्ञान रखने वाले पुरोहित ने राजा नरिष्यन्त के इस पुत्र का नाम दम रख दिया ॥४॥

तब उस राजकुमार ने असुर राजा वृष पर्वा के समाप्ति से सम्पूर्ण धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण की ॥५॥

दुन्दुभेर्दैत्यवर्यस्य तपोवननिवासिनः । सकाशाज्जगृहे कृत्स्नमस्त्रग्रामञ्च तत्वतः ॥६
शक्तेः सकाशाद् वेदांश्च वेदाङ्गान्यखिलानि च । तथार्ष्टिषेणाद् राजर्षेर्जगृहे योगमात्मवान् ॥७
तं सरूपं महात्मानं गृहीतास्त्रं महाबलम् । स्वयंवरे कृता पित्रा जगृहे सुमना पतिम् ॥८
सुता दशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुवर्मणः । पश्यतां सर्वभूतानां ये तदर्थमुपागताः ॥९
तस्यां च सानुरागोऽभून्मद्रराजस्य वै सुतः । सुमनायाँ महानन्दो महाबलपराक्रमः ॥१०
तथा विदर्भाधिपतेः पुत्रः संक्रन्दनस्य च । वपुष्मान् राजपुत्रश्च महाधनुरुदारधीः ॥११
ते तदा तं वृतं दृष्ट्वा दुष्टारिदमनं दमम् । मन्त्रयामासुरन्योऽन्यं तत्रानङ्गविमोहिताः ॥१२
एतामस्य बलात् कन्यां गृहीत्वा रूपशालिनीम् । गृहं प्रयामस्तस्येयमस्माकं यं ग्रहीष्यति ॥१३
भर्तृं बुद्धया परारोहा स्वयंवर विधानतः । तस्येच्छया नो भवित्री भार्या धर्मोपपादिता ॥१४
अथ नेच्छति सा कञ्चिदस्माकं मदिरेक्षणा । ततस्तस्य भवित्री सा यो दमं घातयिष्यति ॥१५

मार्कण्डेय उवाच—

इति ते निश्चयं कृत्वा त्रयः पार्थिवनन्दनाः । जगृहुस्तां सुचार्वङ्गीं दमपार्श्वानुवर्त्तिनीम् ॥१६
ततः केचिन्नृपास्तेषां ये तत्पक्षा विचुक्रुशुः । चुक्रुशुश्चापरे भूपाः केचिन्मध्यस्थतां गताः ॥१७

और तपोवन में रहने वाले दैत्यवर्य दुन्दुभि के साकीप्य से सम्पूर्ण अस्त्र ग्राम की यथार्थ रूप में शिक्षा प्राप्त की ॥६॥

शक्ति मुनि के सानिध्य से सम्पूर्ण वेद और वेदाङ्ग एवं राजर्षि आर्ष्टिषेण से उस आत्मज्ञानी ने योग की शिक्षा प्राप्त की ॥७॥

स्वरूपवान्, अस्त्रशस्त्र की शिक्षा प्राप्त किए हुए, महाबली उन महात्मा (दम) को ही, पिता के द्वारा स्वयं वर को आयोजन किये जाने पर ज़ो राजा स्वयं के लिये आये थे उन सबके देखते हुए ही दशार्ण देश के अधिपति महावली चारुवर्मा की कन्या सुमनाने पति रूप में स्वीकार कर लिया ॥८-९॥

उस सुमना के प्रति मद्रराज का पुत्र महापराक्रमी महानन्द और विदर्भराज संक्रन्दन का महाधनु र्धारी, उदार बुद्धि युक्त राजकुमार वपुष्मान् भी सकाम थे ॥१०-११॥

तब दुष्ट शत्रुओं का दमन करने वाले दम के उस कार्य को देखकर कामदेव से मोहित हुए उन्होंने वहां परस्पर मन्त्रणा की ॥१२॥

इसकी रूपवती कन्या को बलपूर्वक छीनकर हम अपने घर ले जायेंगे तो यह राजकुमारी स्वयं वर की विधि से, हममें से, जिसको पति रूप में स्वेच्छा से स्वीकार करेगी । तब यह उसी की धर्म पत्नी मानी जायेगी ॥१३-१४॥

और यदि वह मदिरेक्षणा हममें से किसी को नहीं चाहती है तब, यह उसी की पत्नी होगी जो दम का वध करेगा ॥१५॥

मार्कण्डेय बोले —

इस प्रकार निश्चय करके उन तीनों राज पुत्रों ने दम में पास बैठी हुई, सुन्दर अंगों वाली उस सुमना का हरण कर लिया ॥१६॥

तब कुछ राजा, जो (दम के) पक्ष के थे, उनके ऊपर अत्याधीक क्रुद्ध हुए और दूसरे राजाओं ने उनकी निन्दा की तथा कुछ ने उनकी मध्यस्थता की ॥१७॥

ततो दमस्तान् भूपालानवलोक्य समन्ततः । अनाकुलमना वाक्यमिदमाह महामुने ॥१८

दम उवाच—

भो भूपा धर्मकृत्येषु यद् वदन्ति स्वयंवरम् । दशार्णपतिना भूपाः कृते धर्म्ये स्वयंवरे ॥
अधर्मो वाऽथवा धर्मो यदेभिर्गृह्यते बलात् ॥१९

यद्यधर्मो न मे कार्यमन्यभार्या भविष्यति । धर्मो वा तदलं प्राणैर्ये रक्ष्यन्तेऽरिलंघने ॥२०

ततो दशार्णाधिपतिश्चारुवर्मा नराधिपः । निःशब्दं कारयित्वा तत्सदः प्राह महामुने ॥२१

दमेन यदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः । तद्वदध्वं यथा धर्मो ममास्य च न लुप्यते ॥२२

मार्कण्डेय उवाच—

ततः केचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम् । परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः ॥२३

क्षत्रियाणां परमयं न विट्शूद्र द्विजन्मनाम् । दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्या दुहितुस्तव ॥२४

इति धर्माद् दमस्यैषा दुहिता तव पार्थिव । योऽन्यथा वर्त्तते मोहात् कामात्मा सम्प्रवर्त्तते ॥२५

तथाऽपरे तथा प्रोचुर्महात्मानो हि भूभृताम् । पक्षे ये भूभृतो विप्र दशार्णाधिपतिं वचः ॥२६

मोहात् किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्वं क्षत्रजन्मनः ।
न त्वेष शास्ता नान्यो हि राक्षसः शस्त्रजीविनाम् ॥२७

हे महामुने ! तब दम ने अपने चारों ओर स्थित उन राजाओं को देखकर, व्याकुल मन से, इस प्रकार कहा ॥१८॥

दम ने कहा—

हे राजाओ ! (विद्वान्) जिस स्वयंवर को धार्मिक कार्य कहते हैं और दशार्णाधिपति ने धर्म के लिये स्वयंवर का आयोजन किया है तथा ये बलपूर्वक इसे ग्रहण कर रहे हैं, वह धर्म है, अथवा अधर्म ॥१९॥

और यदि स्वयंवर वस्तुतः अधर्म कार्य हैं तो यह मेरी पत्नी न होकर अवश्य ही अन्य की हो जायेगी और यदि यह धर्म-कार्य है तो शत्रु के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी इन प्राणों को धारण करने से भी क्या लाभ ॥२०॥

हे महामुने ! तब दशार्णाधिपति राजा चारुवर्मा ने मूक हुए उन सभासदों से कहा ॥२१॥

हे राजाओ ! दम ने जो यह धर्म-अधर्म सम्बन्धी बात कही है, उस पर आप अपनी सम्मति दीजिये, जिससे मेरा और इसका धर्म लुप्त न हो ॥२२॥

मार्कण्डेय बोले—

तब कुछ राजाओं ने चारुवर्मा से कहा—परस्पर की प्रीति से गन्धर्व विवाह का विधान है ॥२३॥

और यह विवाह क्षत्रियों के लिए ही श्रेष्ठ है। ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र के लिए नहीं और तुम्हारी इस कन्या का उक्त विधान (गन्धर्व विवाह) दम के साथ ही सम्पन्न हो गया है।॥२४॥

इसलिए हे राजन् ! तुम्हारी यह पुत्री धर्मानुसार दम की ही पत्नी हुई। जो इस विषय में अन्यथा आचरण करते हैं, उन्हें मोह और काम के कारण ही प्रवृत्त समझा जायेगा ॥२५॥

हे विप्र ! तब जो राजा विरोध पक्ष के थे, उन्होंने राजा दशार्णाधिपति से ये वचन कहे—॥२६॥

मोह के वशीभूत हुए ये राजागण धर्म की कैसी बात कर रहे हैं। क्षत्रिय के लिए न केवल गन्धर्व विवाह ही उचित है, अपितु इनके लिए अन्य भी प्रशस्त है तथा शस्त्रजीवी के लिये तो राक्षस विवाह ही उत्तम है ॥२७॥

बलादिमाँ यो हरति हत्वा तु परिपन्थिनः । तस्यैषा स्याद् राक्षसेन विवाहेनावनीश्वराः ॥२८
प्रधानतर एषोऽत्र विवाह द्वितये मतः । क्षत्रियाणामतो धर्मो महानन्दादिभिः कृतः ॥२९

मार्कण्डेय उवाच—

अथ प्रोचुः पुनर्भूपा येः पूर्वमुदितो नृपः । परस्परानुरागेण जातिधर्माश्रितं वचः ॥३०
सत्यं शस्तो राक्षसोऽपि क्षत्रियाणां परो विधिः । किन्त्वसौ जनकस्वाम्ये कुमार्यानुमतो वरः ॥३१
हत्वा तु पितृसम्बन्धं बलेन ह्रियते हि या । स राक्षसो विधिः प्रोक्तो नात्र भर्तृकरे स्थिता ॥३२
पश्यतां सर्वभूपानामनया यद्वृतो दमः । गान्धर्वस्येह निष्पत्तौ विवाहो राक्षसोऽत्र कः ॥३३
विवाहितायाः कन्यायाः कन्यात्वं नैव विद्यते । कन्यायाश्च विवाहेन सम्बन्धः पृथिवीश्वराः ॥३४
त इमे ये बलादेनां दमादादातुमुद्यताः । बलिनस्ते यदि ततः कुर्वन्तु न तु साधु तत् ॥३५

मार्कण्डेय उवाच—

तच्छ्रुत्वाऽसौ दमः कोपकषायीकृतलोचनः । आरोपयामास धनुर्वचनं चेदमब्रवीत् ॥३६
ममापि भार्या बलिभिः पश्यतो ह्रियते यदि । तत्कुले न भुजाभ्यां वा को गुणः क्लीबजन्मनः ॥३७

हे राजन् ! शत्रुओं को मार करके जो (राजा) इस (कन्या) को बलपूर्वक ले लेगा, तो राक्षस विवाह के विधान से यह उसी की पत्नी होगी ॥२८॥

क्षत्रियों में जब यह दूसरे राक्षस विवाह की ही प्रधानता है, तो महानन्द आदि राजाओं ने धर्म का ही आचरण किया है ॥२९॥

मार्कंडेय बोले—

तब जिन राजाओं ने पहले परम्परागत जाति और धर्म के विषय में कहा था, वे राजा पुनः बोले—॥३०॥

यह भी सत्य है कि क्षत्रियों में राक्षस विवाह को भी प्रशस्त दूसरी विधि माना गया है। किन्तु इस राजकुमारी ने तो अपने पिता के स्वामित्व में दम का वरण किया है ॥३१॥

पिता और उनके सम्बन्धियों को मारकर, जो कन्या बलपूर्वक हरण की जाती है, उसी को राक्षस विधि कहा गया है न कि पति के हाथ में गयी हुई कन्या को ॥३२॥

सब राजाओं के देखते हुए ही इस कन्या ने दम का वरण किया है। इसलिए यह तो गन्धर्व विवाह ही हुआ। यह राक्षस विवाह कैसे ॥३३॥

हे नरेश्वरो ! विवाह होने पर कन्यात्व नहीं रह जाता है। इसलिए कन्यात्व का सम्बन्ध कन्या के विवाह तक ही रहता है। (विवाहोपरान्त कन्या, कन्या नहीं रहती ॥३४॥

इसलिये जो ये राजा इस (सुमना) को बलपूर्वक दम से लेने का प्रयास कर रहे हैं। यदि ये बली हैं तो बल के मद में ही भले ही ऐसा करें, किन्तु इसे प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता ॥३५॥

मार्कण्डेय बोले—

यह सुनकर क्रोध से लाल नेत्रों वाला दम धनुष पर बाण चढ़ाकर इस प्रकार वचन बोला ॥३६॥

यदि मेरी पत्नी को भी देखते-देखते शक्तिशाली हरण कर लेते हैं तो मेरे वंश के गौरव और इन दोनों भुजाओं में कोई गुण नहीं है और मेरा जीवन पुंसत्वहीन है ॥३७॥

धिङ्ममास्त्राणि धिक् शौर्य्यं धिक्छरान् धिक्छरासनम् ।
धिग् व्यर्थं मे कुले जन्म मरुत्तस्य महात्मनः ॥३८
यदि भार्यामिमे मूढाः समादाय बलान्विताः । प्रयान्ति जीवतो धिक् तां मम व्यर्थमनुष्यताम् ॥३९
इत्युक्त्वा तान् महीपालान् महानन्दमुखान्बली । अथाब्रवीत् तदा सर्वान् महारिदमनो दमः ॥४०
एषाऽतिशोभना बाला चार्वङ्गी मदिरेक्षणा। किं तस्य जन्मना भार्या न यस्येयं कुलोद्भवा ॥४१
इति संचिन्त्य भूपालास्तथा यततसंयुगे । यथा निर्जित्य मामेतां पत्नीं कुरुत मानिनः ॥४२
इत्याभाष्य यतस्तत्र शरवर्षममुञ्चत । छादयन् पृथिवीपालांस्तमसेव महीरुहान् ॥४३
तेऽपि वीरा महीपालाः शरशक्त्यृष्टिमुद्गरान्। मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्च दमश्चिच्छेद लीलया ॥४४
तेऽपि तत्प्रहितान्बाणांस्तेषां चासौ शरोत्करान्। चिच्छेद पृथिवीशानां नरिष्यन्तात्मजो मुने ॥४५
वर्त्तमाने तदा युद्धे दमस्य क्षितिपात्मजैः । प्रविवेश महानन्दः खड्गपाणिर्यतो दमः ॥४६
तमायान्तं दमो दृष्ट्वा खड्गपाणिं महामृधे । मुमोच शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥४७
तदस्त्राणि ततस्तानि शरजालानि तत्क्षणात् । महानन्दः प्रचिच्छेद खड्गेनान्यानवञ्चयत् ॥४८

यदि ये मूर्ख राजा मेरी पत्नी को बलपूर्वक लेकर चले जाते हैं तो मेरे अस्त्रों को, शौर्य को, बाणों को, धनुष को धिक्कार है और महामरुत के कुल में उत्पन्न होने को भी धिक्कार है तथा मेरे जीवन एवं मनुष्यता को भी धिक्कार है ॥३८-३९॥

महाबली राजाओं को इस प्रकार कहकर, शत्रुओं का दमन करने वाले दम ने, महानन्दादि राजाओं के प्रति कहा—॥४०॥

श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न हुई, सुन्दर अगों वाली, अत्यन्त सुन्दर यह मदिरेक्षणा बाला जिसकी पत्नी नहीं हुई, उसका जन्म व्यर्थ है ॥४१॥

यह सोचकर वैसा प्रयत्न करो, जिससे तुम मुझे युद्ध में पराजित करके, इसे अपनी पत्नी बना सको ॥४२॥

यह कहकर उसने जिस प्रकार अन्धकार वृक्षों के ढक लेता है, उसी प्रकार राजाओं को ढकते हुए, उनके ऊपर बाणों की वर्षा की ॥४३॥

उन वीर राजाओं ने भी बाण, शक्ति, ऋष्टि और मुद्गर आदि हथियारों को उसके ऊपर चलाया। दम ने उनके द्वारा प्रयुक्त हथियारों को खेल-खेल में ही काट डाला ॥४४॥

हे मुने ! उन्होंने भी इसके द्वारा चलाये गये बाणों और अस्त्रों को उसी प्रकार काट डाला जिस प्रकार नरिष्यन्त के पुत्र दम ने राजाओं के अस्त्रों को काटा था ॥४५॥

तब राजकुमारों के साथ चल रहे दम के इस युद्ध में खड्ग हाथ धारण किये हुए, महानन्द, दम के सामने आया ॥४६॥

खड्ग हाथ में लिये हुए उसे आता देखकर इन्द्र द्वारा जल वृष्टि करने के समान दम ने बाणोंकी वर्षा आरम्भ की ॥४७॥

तब महानन्द ने उन सब अस्त्रों और बाणों को अपने खड्ग से काट डाला। इससे राजा ठगे से रह गये ॥४८॥

ततो रोषात् समारुह्य तं दमस्य तदा रथम् । महानन्दो महावीर्यो दमेन युयुधे सह ।।४६
बहुधा युध्यमानस्य महानन्दस्य लाघवात् । दमो मुमोच हृदये शरं कालानलप्रभम् ।।५०
तं लग्नमात्मनोत्कृष्य विभिन्नेन ततो हृदा । दमं प्रति विचिक्षेप महानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ।।५१
पतन्तं चैनमुल्काभं शक्त्या चिक्षेप तं दमः । शिरो वेतसपत्रेण महानन्दस्य चाच्छिनत् ।।५२
तस्मिन् हते महानन्दे प्राचुर्येण पराङ्मुखाः । बभूवुः पार्थिवास्तस्थौ वपुष्मान् कुण्डिनाधिपः ।।५३
दमेन युयुधे चासौ बलगर्वमदान्वितः । दाक्षिणात्य महीपालतनयो रणगोचरः ।।५४
युध्यमानस्य तस्योग्रं करवालं स वै लघु । चिच्छेद सारथेश्चैव शिरः संख्ये तथा ध्वजम् ।।५५
छिन्नखड्गो गदां सोऽथ जग्राह बहुकण्टकाम् । तामप्यस्य स चिच्छेद करस्थामेव सत्वरः ।।५६
यावदन्यत् समादत्ते स वपुष्मान् वरायुधम् । तावच्छरेण तं विद्ध्वा दमो भूमावपातयत् ।।५७
स पातितस्ततो भूमौ विह्वलाङ्गः सवेपथुः । विनिवृत्तमतिर्युद्धाद् बभूव क्षितिपात्मजः ।।५८
तमालोक्य तथा भूतमयुद्धमतिमात्मवान् । उत्सृज्यादाय सुमनां सुमनाः प्रययौ दमः ।।५६

उसके बाद महापराक्रमी महानन्द क्रोध से दम के रथ पर चढ़कर, दम के साथ युद्ध करने लगा ।।४६।।

तब अनेक प्रकार से युद्ध करते हुये, महानन्द के हृदय पर दम ने कालाग्नि के समान प्रभा वाला एक बाण छोड़ा ।।५०।।

तदनन्तर उस बाण के लगने से विदीर्ण हुए हृदय वाले, महानन्द ने स्वयं ही उसको निकालकर, दम के ऊपर अपने अत्युज्ज्वल खड्ग का वार किया ।।५१।।

तब दम ने उल्का के समान आभा वाले, गिरते हुए उस खड्ग को शक्ति के द्वारा काट डाला और फिर तुरन्त ही वेतस पत्र के द्वारा उस महानन्द का सिर काट डाला ।।५२।।

महानन्द के मरने पर कुण्डिनाधिपति के अतिरिक्त अधिकतर राजागण युद्ध विमुख हो गये (केवल कुण्डिनाधिपति वपुष्मान् ही युद्ध में डटा रहा) ।।५३।।

बल के गर्व से मदमत्त हुए दाक्षिणात्य राजकुमार उस (वपुष्मान्) ने रणक्षेत्र में दम के साथ युद्ध आरम्भ किया ।।५४।।

तब दम ने रणक्षेत्र में युद्ध करते हुए उसकी तीक्ष्ण तलवार, सारथि का सिर तथा रथ की ध्वजा को क्षण भर में काट डाला ।।५५।।

तलवार के कटने पर वपुष्मान् ने अनेक काँटों से युक्त गदा को धारण किया, किन्तु हाथ में लेते ही उसने उसको भी शीघ्र ही काट डाला ।।५६।।

इसके बाद वपुष्मान् ने युद्ध में जितने भी श्रेष्ठ हथियारों को उठाया, उन सभी को दम ने अपनी बाण वर्षा से काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया ।।५७।।

इस पर उसने अपने व्याकुल एवं कम्पित शरीर को पृथ्वी पर गिरा दिया और उस राजपुत्र ने युद्ध का विचार त्याग दिया ।।५८।।

तब दम उसकी ऐसी स्थिति एवं युद्ध से पराङ्मुखता देखकर (उसे वैसा ही) छोड़कर प्रसन्न मन से सुमना को लेकर चला गया ।।५६।।

ततो दशार्णाधिपतिः प्रतिमानकरोत् तयोः । दमस्य सुमनायाश्च विवाहं विधिपूर्वकम् ॥६०
कृतदारो दमस्तत्र दशार्णाधिपतेः पुरे । स्थित्वाऽल्पकालं प्रययौ सभार्यो निजमन्दिरम् ॥६१
दशार्णाधिपतिश्चासौ दत्त्वा नागांस्तुरङ्गमान् । रथगोऽश्वखरोष्ट्रांश्च दासीदासांस्तथा बहून् ॥६२
वस्त्रालङ्कारचापादिवरोपस्करमासनम् । अन्यैस्तैश्च तथा भाण्डैः परिपूर्णं व्यसर्जयत् ॥६३

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे दमचरिते त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

इसके पश्चात् आनन्द चित्त दशार्णाधिपति ने उन दोनों (सुमना और दम) का विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न किया ॥६०॥

विवाह करके दम कुछ समय तक दशार्णाधिपति के नगर में रहकर पुनः पत्नी सहित अपने घर को चला गया ॥६१॥

और दशार्णाधिपति ने इसको बहुत से, हाथी, घोड़े, रथ, गौ, खर, ऊँट, दास, दासी, वस्त्र, आभूषण, धनुष आदि विविध प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट की एवं धन से भरे हुए बहुत से बर्तन देकर, सम्मान-पूर्वक विदा किया ॥६२-६३॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में दम चरित में एक सौ तीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

स तां लब्ध्वा तथा पत्नीं सुमनां सुमहामुने । प्रणम्य स पितुः पादौ मातुश्च क्षितिपात्मजः ॥१
सा च तौ श्वशुरौ सुभ्रूर्ननाम सुमना तदा । ताभ्यां तौ च तदा विप्र आशीर्भिरभिनन्दितौ ॥२
कृतदारे च सम्प्राप्ते दशार्णाधिपतेः पुरात् ॥३
महोत्सवश्च संजज्ञे नरिस्यंतस्य वै पुरे । श्रुत्वा पुत्रेण मुमुदे नरिष्यन्तो महीपतिः ॥४
सम्बन्धिनं दशार्णेशं जितांश्च पृथिवीश्वरान् ।

मार्कण्डेय बोले—

हे महामुने ! उस सब उपहार सामग्री और भार्या सुमना को लेकर उस राजकुमार दम ने अपने माता-पिता के चरणों में प्रणाम किया ॥१॥

एवं सुन्दर भौंहों वाली सुमना ने भी अपने सास एवं श्वसुर को प्रणाम किया । हे विप्र ! तब उन दोनों माता-पिता ने आशीर्वाद प्रदान करते हुए, उन दोनों का अभिनन्दन किया ॥२॥

दशार्णाधिपति के नगर से (अपने नगर में) आने पर राजा नरिष्यन्त के नगर में महोत्सव का आयोजन किया गया ॥३॥

पुत्र द्वारा दशार्णाधिपति के साथ सम्बन्ध एवं राजाओं पर विजय को सुनकर राजा नरिष्यन्त अत्यधिक प्रसन्न हुआ ॥४॥

सोऽपि रेमे सुमनया महाराज-सुतो दमः । वरोद्यानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ।।५
अथ कालेन महता रममाणा दमेन सा । अवाप गर्भं सुमना दशार्णाधिपतेः सुता ।।६
सोऽपि राजा नरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः । वयःपरिणतिं प्राप्य दमं राज्येऽभिषिच्य च ।।७
वनं जगामेन्द्रसेना पत्नी चास्य तपस्विनी । वानप्रस्थविधानेन स तत्र समतिष्ठत ।।८
दाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तः संक्रन्दनसुतो वने । वपुष्मान् स मृगान् हन्तुं ययावल्पपदानुगः ।।९
स तं दृष्ट्वा नरिष्यन्तं तापसं मलपङ्किनम् । इन्द्रसेनां च तत्पत्नीं तपसाऽतिसुदुर्बलाम् ।।१०
पप्रच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेचरः । वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ।।११
ततो मौनव्रती भूपो न हि तस्योत्तरं ददौ । इन्द्रसेना च तत्सर्वमाचष्टास्मै यथातथम् ।।१२

मार्कण्डेय उवाच—

ज्ञात्वा तञ्च नरिष्यन्तं वपुष्मान् पितरं रिपोः ।
प्राप्तोऽसीति वदन् कोपाज्जटासु परिगृह्य च ।।१३

हा हेति चेन्द्रसेनायां रुदन्त्यां बाष्पगद्गदम् । चकर्ष कोपात् खड्गं च वाक्यं चेदमुवाच ह ।।१४
निर्जितः समरे येन येन मे सुमना हृता । दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽवतु तं दमः ।।१५

इसके पश्चात् राजकुमार दम ने भी सुन्दर उद्यानों, वनों, महलों एवं पर्वतादि स्थलों पर अपनी पत्नी सुमना के साथ विहार किया ।।५।।

तब राजकुमार दम के साथ बहुत समय तक विहार करते हुए दशार्णाधिपति की पुत्री सुमना ने भी गर्भ धारण किया ।।६।।

राजा नरिष्यन्त भी वैभव का उपभोग करते हुए वृद्धावस्था के आने पर दम का राज्याभिषेक करके, वन में चला गया और उसकी तपस्विनी पत्नी इन्द्रसेना ने भी विधिपूर्वक वानप्रस्थ आश्रम का पालन करते हुए वन में निवास किया ।।७–८।।

एक बार दाक्षिणात्य राजा संक्रन्दन का दुराचारी पुत्र वपुष्मान् अपनी थोड़ी सी पैदल सेना के साथ मृगों का आखेट करने के लिए वन में गया ।।९।।

तब उसने मलिन तपस्वी नरिष्यन्त एवं अत्यन्त दुर्बल उसकी तपस्विनी पत्नी इन्द्रसेना को देखकर पूछा – अरे ! तुम कौन हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य में से किस जाति के हो ? जो वानप्रस्थी होकर वनवासी हुए हो, यह मुझे बताओ ।।१०-११।।

तब मौनव्रतधारी राजा (नरिष्यन्त) ने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु इन्द्रसेना ने इसको सारी बात यथातथ्य बतला दी ।।१२।।

मार्कण्डेय बोले—

तब वपुष्मान् ने उसको अपने शत्रु (दम) का पिता जानकर 'पकड़े गये' इस प्रकार कहते हुए क्रोध से उसकी जटा पकड़ ली ।।१३।।

तब आंसुओं से रुंधे गले से हा, हा, करके इन्द्रसेना के रोते हुए ही (उस दुराचारी ने) क्रोध से तलवार खींचकर इस प्रकार कहा—।।१४।।

जिसने मुझे युद्ध में हरा दिया था और जिसने मुझसे मेरी सुमना का हरण किया था उसी दम के पिता का मैं वध कर रहा हूँ, वह दम इसकी रक्षा करे ।।१५।।

येनाखिलमहीपालपुत्राः कन्यार्थमागताः । अवधूता हनिष्येऽहं पितरं तस्य दुर्मतेः ॥१६
यौवनास्त्रस्वरूपेषु मदो यस्य दुरात्मनः । स दमो वारयत्वेष हन्मि तस्य रिपोर्गुरुम् ॥१७

मार्कण्डेय उवाच—

इत्युक्त्वा स दुराचारी वपुष्मानवनीपतिः । क्रन्दन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद तस्य च ॥१८
ततो धिग्धिङ् मुनिजना अन्ये च वनवासिनः । तमूचुः स च तं हत्वा जगाम स्वपुरं वनात् ॥१९
गते तस्मिन् विनिश्वस्य सेन्द्रसेना वपुष्मती । प्रेषयामास पुत्रस्य समीपं शूद्रतापसम् ॥२०
गच्छेथा आशु मे पुत्रं दमं ब्रूहि वचो मम । अभिज्ञो ह्यसि मद्भर्तृवृत्तान्तं प्रोच्यतेऽत्र किम् ॥२१
तथापि वाच्यः पुत्रो मे यद्ब्रवीम्यतिदुःखिता । लंघनामीदृशीं प्राप्तां विलोक्यैतां महीपतेः ॥२२
मद्भर्त्राऽधिकृतो राजा चतुर्णां परिपालकः । त्वमाश्रमाणां किं युक्तं तापसान्यन्न रक्षसि ॥२३
भर्ता मम नरिष्यन्तस्तापसस्तपसि स्थितः । विलपन्त्यास्तथाऽनाथो यथा नासि तथा त्वयि ॥२४
आकृष्य केशेषु बलादपराधं विना ततः । हतो वपुष्मताख्यातिमिति ते भूपतिर्गता ॥२५
एवं स्थिते तत्क्रियतां यथा धर्मो न लुप्यते । तथा च नैव वक्तव्यं माताऽहं तापसी यतः ॥२६

जिसने कन्या की कामना से आये हुए सभी राजकुमारों को अपमानित किया, मैं उस दुर्मति के पिता को मार रहा हूँ ॥१६॥

जिस दुरात्मा को अपने यौवन, अस्त्र एवं सौन्दर्य पर अत्यधिक घमण्ड है, उसके पिता को मैं मार रहा हूँ। वह दम आकर मुझे रोक ले ॥१७॥

मार्कण्डेय बोले—

यह कहकर उस दुराचारी राजा वपुष्मान् ने इन्द्रसेना के क्रन्दन करते हुए ही, उसका मस्तक अलग कर दिया ॥१८॥

(यह देखकर) मुनिगण और अन्य वनवासियों ने उसको 'धिक्कार है, धिक्कार है' इस प्रकार कहा और वह उसको मारकर उस वन से अपने नगर में चला गया ॥१९॥

वपुष्मान् के जाने पर दीर्घ निश्वाँस छोड़कर, इन्द्र सेना ने एक शूद्र तपस्वी को अपने पुत्र (दम) के पास भेजा। (और कहा) ।२०॥

तुम शीघ्र जाकर मेरे पुत्र (दम से) मेरी ओर से कहना। तुम स्वयं हो मेरे पति की हत्या का सब वृत्तान्त जानते ही हो, और क्या कहा जाए। फिर भी तुम मेरे पुत्र से कहना कि मैं अति दुःखी होकर कह रही हूँ कि महाराज का ऐसा अपमान देखकर (मैं बहुत दुःखी हूँ), मेरे पति (और अपने पिता के द्वारा) तुम राजा बनाये गये हो। चारों वर्गों के तुम परिपालक हो। किन्तु तुम आश्रमवासी तपस्वियों की रक्षा नहीं करते, क्या यह उचित है ? ॥२१-२३॥

मेरे तपस्वी पति नरिष्यन्त तप कर रहे थे, तुम्हारे राजा रहते हुए, मेरे विलाप करते हुए, अनाथ के समान एवं जैसे तुम भी इस संसार में नहीं हो इस प्रकार बालों को बलपूर्वक पकड़कर, बिना अपराध के ही वपुष्मान् नामक राजा ने तुम्हारे पिता का वध कर दिया ॥२४-२५॥

ऐसी स्थिति में ऐसा कार्य करो, जिसमें धर्म लुप्त न हो। मुझे इससे अधिक नहीं कहना चाहिए, क्योकी में तुम्हारी तपस्विनी माता हूँ ॥२६॥

पिता वृद्धस्तपस्वी च नापराधेन दूषितः । निहतो येन यत्तस्य कर्त्तव्यं तद्विचिन्त्यताम् ।।२७
सन्ति ते मन्त्रिणो वीराः सर्वशास्त्रार्थवेदिनः । तैः सहालोच्य यत्कार्यमेवं भूते कुरुष्व तत् ।।२८
नास्माकमधिकारोऽत्र तापसानां नराधिपः । कुरुष्वैतदितीत्थं त्वमेवं भूपतिभाषितम् ।।२९
विदूरथस्य जनको यवनेन यथा हतः । तथाऽयं तव पुत्रस्य कुलं तेन विनाशितम् ।।३०
जम्भस्यासुरराजस्य पिता दष्टो भुजङ्गमैः । तेनाप्यखिलपातालवासिनः पन्नगा हताः ।।३१
पराशरेण पितरं शक्तिं तं रक्षसाऽऽहतम् । श्रुत्वाऽग्नौ पातितं कृत्स्नं रक्षसामभवत् कुलम् ।।३२
अन्यस्यापि स्ववंशस्य लंघना क्रियते ह्रिया । तां नालं क्षत्रियः सोढुं किं पुनः पितृमारणम् ।।३३
नायं पिता ते निहतो नास्मिञ्छस्त्रं निपातितम् । त्वामत्र निहतं मन्ये त्वयि शस्त्रं निपातितम् ।।३४
बिभेत्यस्य हि कः शस्त्रं न्यस्तं येन वनौकसाम् । तव भूपस्य पुत्रस्य मा बिभेतु बिभेतु वा ।।३५
तवेयं लंघना युक्ता यदस्मिंस्तत्समाचर । वपुष्मति महाराज सभृत्यज्ञातिबान्धवे ।।३६

तुम्हारे पिता वृद्ध थे, इस पर भी तपस्वी और अपराध से दूषित (अपराधी) नहीं थे। अतः जिसने उनकी हत्या की है, उसके प्रति तुम्हारा अब जो कर्तव्य हो उसको तुम सोच लो ॥२७॥

सभी शास्त्रों के ज्ञाता तुम्हारे वीर मन्त्री हैं, उनके साथ परामर्श करके, इस प्रकार के अन्याय के होने पर जो करणीय हो उसे करो ॥२८॥

हे राजन् ! हम तपस्वियों का इसमें कोई अधिकार नहीं है। इसके ऐसा (अकार्य) करने पर हे राजन् ! तुम ही उचित कार्य करो। तुम्हारे पिता ने मरते समय यही कहा था ॥२९॥

हे पुत्र ! जिस प्रकार विदूरथ के पिता का यवन ने वध किया था। वैसे ही उसने तुम्हारे पिता का वध करके कुल को नष्ट किया है ॥३०॥

और जब दैत्यराज जम्भ के पिता को सर्पों ने डस लिया तो उसने भी सभी पातालवासी नागों को मार डाला ॥३१॥

और उस राक्षस के द्वारा पिता की मृत्यु सुनकर पराशर ने भी सम्पूर्ण असुर वंश को अग्नि में दग्ध कर दिया था ॥३२॥

और अपने वंश के किसी भी व्यक्ति का अपमान यदि किसी के द्वारा किया जा रहा है तो भी क्षत्रिय उसे सहन करने में समर्थ नहीं होता। फिर पितृ हत्या का तो कहना ही क्या ? ॥३३॥

वह तुम्हारे पिता नहीं मारे गये हैं, और न ही उनके ऊपर शस्त्र प्रहार हुआ, अपितु मैं तो तुमको ही मरा हुआ और तुम पर ही शस्त्र प्रहार मानती हूँ ॥३४॥

उस राजा से कौन डरेगा जो वनवासियों के ऊपर भी शस्त्र चलाता है। तुम राजा के पुत्र हो (राजा हो) तुमसे कोई न डरे या डरे ? (अर्थात् शत्रु से ऐसा बदला लो कि तुमसे सब भय मानें) ॥३५॥

हे राजन् ! तुम्हारा ही यह अपमान हुआ है। अतः अब तुम वपुष्मान् और उसके भृत्य तथा बन्धुओं के प्रति जो तुम्हारा कर्तव्य है, वह करो ॥३६॥

मार्कण्डेय उवाच—

इति संक्रान्त-सन्देशमिन्द्रसेना विसृज्य तम् । पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ॥३७

इति श्री मार्कण्डेयमहापुराणे दमचरित्रवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

मार्कण्डेय बोले—

इस प्रकार संदेश देकर इन्द्रसेना ने उसको विदा किया और फिर वह मनस्विनी पति के शरीर का आलिंगन करके अग्नि में प्रविष्ट हो गयी ॥३७॥

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में दम चरित्र वर्णन नामक एक सौ इकत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

इन्द्रसेनासमाज्ञप्तः स गत्वा शूद्रतापसः । समाचष्ट यथापूर्वं दमाय निधनं पितुः ॥१

तापसेन समाख्याते दमस्तेन पितुर्वधे । क्रोधेनातीवजज्वाल हविषेवाग्निरुद्धतः ॥२

स तु क्रोधाग्निना धीरो दह्यमानो महामुने । करं करेण निष्पिष्य वाक्यमेतदुवाच ह ॥३

अनाथ इव मे तातो मयि पुत्रे तु जीवति । घातितः सुनृशंसेन परिभूय कुलं मम ॥४

तापं करोम्यहं किं वाऽप्येष क्लैव्यात् क्षमाम्यहम् ।
दुर्वृत्तशान्तौ शिष्टानां पालनेऽधिकृता वयम् ॥५

पितरं चापि निहतं दृष्ट्वा जीवन्ति शत्रवः । तत्किमेतेन बहुना हा तातेति च किं पुनः ॥५

मार्कण्डेय बोले—

इन्द्रसेना की आज्ञा से उस शूद्र तपस्वी ने दम के पास जाकर (उसके) पिता की मृत्यु का समाचार जैसा घटित हुआ था वैसा ही कह दिया ॥१॥

उस तपस्वी के द्वारा पिता के वध का समाचार देने पर राजा दम (घृत की) आहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान क्रोध से लाल हो गया ॥२॥

हे महामुने ! क्रोधाग्नि से जलते हुए, अपने हाथ को दूसरे हाथ से मसलते हुए, उसने ये वाक्य कहे—॥३॥

मुझ पुत्र के जीवित रहते हुए उस नृशंस (वपुष्मान्) ने मेरे कुल को अपमानित करके मेरे पिता की अनाथ के समान हत्या की है ॥४॥

अब मैं (उस पर) क्रोध करूँ या क्लीवता से (उसको) क्षमा कर दूँ। किन्तु हम दुष्टों का दमन और शिष्ट जनों के पालन के लिए ही नियुक्त हुए हैं ॥५॥

पिता का वध करके भी शत्रु जीवित है। अथवा अधिक कहने से क्या लाभ ? और बार-बार हा तात ! हा तात ! इस प्रकार रोदन करने से भी क्या ? ॥६॥

विलापेनात्र यत्कृत्यं तदेषोऽत्र करोम्यहम् । यद्यहं तस्य रक्तेन देहोत्थेन वपुष्मतः ।
न करोमि गुरोस्तृप्तिं तत्प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ॥७
तच्छोणितेनोदककर्म तस्यमांसेन सम्यग् द्विजभोजनं च ।
कुर्यां पितुस्तस्य च पिण्डदानं न चेत्प्रवेक्ष्मामि हुताशनं तत् ॥८
साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघाः ।
कुर्वन्ति चेत्तानपि चास्त्रपूगैर्भस्मी करोम्येष रुषासमेतः ॥९
निःशूरमाधार्मिकमप्रशस्तं तं दाक्षिणात्यं समरे निहत्य ।
भोक्ष्ये ततोऽहं पृथिवीं च कृत्स्नां वन्हि प्रवेक्ष्याम्यनिहत्य तं वा ॥१०
सुदुर्मति तापसवृद्धघातिनं वनस्थगं साधु विधि विदग्धगम् ।
हन्ताऽहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलैः समेतम् ॥११
एषोऽहमादाय धनुः सखड्गो रथी तथैवारिबलं समेत्य ।
करोमि वै यत्कदनं समस्ताः पश्यन्तु मे देवगणाः समेताः ॥१२
यो यः सहायो भविताऽद्य तस्य मया समेतस्य रणाय भूयः ।
तस्यैव निःशेषकुलक्षयाय समुद्यतोऽहं निजबाहुसैन्यः ॥१३
यदि कुलिशकरोऽस्मिन् संयुगे देवराजः पितृपतिरथ चोग्रं दण्डमुद्यम्य कोपात् ।
धनपतिवरुणार्का रक्षितुं तुं यतन्ते निशितशरवरौघैर्घातयिष्ये तथापि ॥१४

अब मेरा जो कर्तव्य है, मैं उसी को करता हूँ। यदि मैं उस वपुष्मान् के देह से निकले हुए रक्त से अपने पिता की तृप्ति (तर्पण) न करूँ, तो मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा ॥७॥

और यदि मैं उसके रक्त से उदककर्म (तिलोदक एवं तर्पण आदि कर्म) एवं उसके मांस से ब्राह्मणों का भली प्रकार भोजन तथा पितरों का पिण्डदान न कर सकूं तो मैं अग्नि में प्रविष्ट हो जाऊँगा ॥८॥

असुर, देव, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर अथवा सिद्धगण जो भी उसके सहायक होंगे तो उनको भी क्रुद्ध हुआ मैं अपने अस्त्रानल से भस्म कर डालूँगा ॥९॥

कायर, अधार्मिक, निन्दित उस दाक्षिणात्य को युद्ध में मारकर ही मैं सम्पूर्ण पृथ्वी को भोगूंगा अथवा न मार सकने पर मैं अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा ॥१०॥

जिस दुर्मति ने मेरे तपोनिरत वनवासी मौनव्रती वृद्ध पिता के शान्त वचनों के उपरान्त भी उनकी हत्या की है, उसे मैं अभी उसके सब बन्धुओं, मित्रों, पैदल, हाथी, घोड़ों की सेना सहित मार डालूंगा ॥११॥

तलवार और धनुष को लेकर एवं रथारूढ़ होकर शत्रु सेना के पास जाकर अब मैं जो संहार करूँगा, उसको देवगणों सहित सभी लोग देखें ॥१२॥

युद्ध में मेरे साथ लड़ने पर उसका जो भी सहायक होगा, उसको अपनी बाहु और सेना के द्वारा मैं कुल सहित नष्ट कर दूँगा ॥१३॥

और यदि इस संग्राम में वज्रधारी इन्द्र, उग्र दण्ड वाले यम, अथवा कुबेर, वरुण और सूर्य भी उसकी रक्षा का यत्न करेंगे तो मैं इन तीक्ष्ण बाणों के समूह से कोप पूर्वक उनको भी मार दूँगा ॥१४॥

नियतमतिरदोषः काननाखण्ड लोका निपतितफलभक्षः सर्वभूतेषु मत्रः ।
प्रभवति मयि पुत्रे हिंसितो येन तातः पिशितरुधिरतृप्तास्तस्य सन्त्वद्य गृध्राः ॥१५

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे दमचरिते स्वप्रतिज्ञावर्णनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

मुझ प्रभावशाली पुत्र के रहते हुए भी जिसने संयमी, निर्दोष, वनवासी, केवल गिरे हुए फल को खाने वाले, सभी प्राणियों में मैत्री भाव रखने वाले, मेरे पिता की हत्या की है, उसके मांस और रुधिर से आज गृध्रगण तृप्त होंगे ।।१५।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में दम चरित में स्वप्रतिज्ञा वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच—

इति प्रतिज्ञाय तदा नरिष्यन्तसुतो दमः । कोपामर्षविवृत्ताक्षः श्मश्रुमावृत्य पाणिना ।।१
हा हतोऽस्मीति पितरं ध्यात्वा दैवं विनिंद्य च । प्रोवाच मंत्रिणः सर्वानानिनाय पुरोहितम् ।।२

दम उवाच—

यदत्र कृत्यं तद् ब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम् । श्रुतं भवद्भिर्यत् प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना ।।३
वृद्धस्तपस्वी स नृपो वानप्रस्थव्रते स्थितः । मौनव्रतधरोऽशस्त्रो मन्मात्रा चेन्द्रसेनया ।।४
प्रोक्तं संसृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यं वपुष्मते । तेनापि खड्गमाकृष्य जटां सव्येन पाणिना ।।५
धृत्वा जघान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत् । माता च संदिश्य हि मां धिक्छब्दं ब्रुवती सती ।।६
मन्दभाग्यं च निःश्रीकं प्रविष्टा हव्यवाहनम् । तमालिंग्य नरिष्यन्तं प्रयाता त्रिदशालयम् ।।७

मार्कण्डेय बोले—

राजा नरिष्यन्त के पुत्र दम ने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके, क्रोध और अमर्ष से आँखें निकाले हुए, हाथ से मूछों को ऐंठकर, ।।१।।

एवं पिता का स्मरण करने पर 'हाय, मैं तो मारा गया' इस प्रकार कहकर, दैव की निन्दा करके सब मंत्रियों और पुरोहितों को बुलाकर बोला—।।२।।

दम ने कहा—

पिताजी के स्वर्गवासी होने पर, जो उस शूद्र तपस्वी ने कहा वह आपने सुन लिया है, अब इस सम्बन्ध में जो करणीय है, वह कहिए ।।३।।

वृद्ध तपस्वी और वानप्रस्थ आश्रम में स्थित मौनव्रतधारी मेरे पिता को एवं वपुष्मान् द्वारा परिचय पूछने पर मेरी माता इन्द्रसेना के द्वारा अपना सम्पूर्ण परिचय यथार्थ रूप से देने पर भी, उसने तलवार निकालकर वाम हस्त से जटा पकड़कर, उस दुष्ट ने संसार के स्वामी मेरे पिता को अनाथ के समान मार डाला, और मेरी सती माता ने मुझे संदेश देकर मुझ मन्द भाग्य और निःश्रीक को धिक्कारा तथा उन नरिष्यन्त का आलिंगन करके अग्नि में प्रविष्ट होकरदेव लोक को चली गयी ।।४–७।।

सोऽहमद्य करिष्यामि यन्मे मातुरुदीरितम् । हस्त्यश्वरथपादातं सैन्यं च परिकल्प्यताम् ।।८
अनिर्याप्य पितुर्वैरमहत्वा पितृघातकम् । अकृत्वा च वचो मातुर्जीवितुं किमिहोऽस्हे ।।९

मार्कण्डेय उवाच—

मन्त्रिणस्तद्वचः श्रुत्वा हा हेत्युक्त्वा तथा च तत् । कृतवन्तो विमनसः सभृत्यबलवाहनाः ।।१०
निर्ययुः सपरिवाराःपुरस्कृत्य दमं नृपम् । गृहीत्वा चाशिषो विप्रात्त्रिकालज्ञात् पुरोधसः ।।११
अहिराडिव निःश्वस्य दमः प्रायाद् वपुष्मतम् ।
सीमापालादिसामन्तान्निघ्नन् याम्यां दिशं त्वरा ।।१२
निरीक्ष्य तं समायांतं वपुष्मानमर्षपूरितः । संक्रंदनसुतेनापि दमो ज्ञातो वपुष्मता ।।
आयातः सपरिवारः सामात्यः सपरिच्छदः ।।१३
अकंपितेन मनसा स सैन्यां निदिदेश ह । दूतं च प्रेषयामास निर्गम्य नगराद् बहिः ।।१४
त्वं शीघ्रतरमागच्छ नरिष्यन्तः प्रतीक्षते । सभार्यक्षत्रबंधो त्वं समायाहि ममान्तिकम् ।।१५
इमे मद्बाहुनिर्मुक्ताःशिता बाणाःपिपासिताः । भित्त्वा शरीरं संग्रामे पास्यन्ति रुधिरं तव ।।१६
श्रुत्वा दमस्तु तत्सर्वं दूतप्रोक्तं ययौ त्वरन् । स्मृत्वा प्रतिज्ञां पूर्वोक्तां निःश्वसन्नुरगो यथा ।।१७

इसलिए मैं आज वही करूँगा जो मेरी माता ने कहा है। अतः हाथी, अश्व, रथ और पैदल सेना को तैयार करो ।।८।।

पिता के वैर का निराकरण किये बिना और पितृघातक को मारे बिना तथा माता की आज्ञा का पालन किए बिना मैं जीने का साहस किस प्रकार करूँ ।।९।।

मार्कण्डेय बोले—

तब उसके बचनों को सुनकर मन्त्रियों ने शोक से हाय-हाय इस प्रकार कहकर उद्विग्न चित्त से भृत्य, सैन्य और वाहनों के साथ जैसा कहा गया था, वैसा किया ।।१०।।

तब राजा को आगे करके (वे सब) सपरिवार निकल पड़े । दम ने त्रिकालज्ञ ब्राह्मण पुरोहित से आशीर्वाद प्राप्त करके नागराज के समान श्वांस छोड़ते हुए राजा दम भी वपुष्मान् की ओर चला और सीमा-पालक सामन्तों को मारते हुए शीघ्र ही दक्षिण दिशा में पहुंच गया ।।११-१२।।

सपरिवार और मन्त्रिगण के साथ दम को आए देखकर संक्रन्दन के पुत्र वपुष्मान ने क्रोध में भरकर; दृढ़चित्त से अपनी सेना को युद्ध की आज्ञा दी और नगर से बाहर निकल कर दूत के द्वारा यह संदेश भेजा ।।१३-१४।।

हे क्षत्रियाधम ! तू शीघ्र ही मेरे सामने आ, नरिष्यन्त पत्नी सहित तेरी प्रतीक्षा कर रहा है ।।१५।।

मेरी भुजाओं से छोड़े गये तेरे रक्त के प्यासे ये तीक्ष्ण बाण युद्ध में तेरे शरीर को विदीर्ण करके तेरा रक्त पियेंगे ।।१६।।

दूत द्वारा कहे हुए उस सब को सुनकर और पहले कही गयी अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके एवं सर्प के समान श्वांस छोड़ते हुए, राजा दम भी शीघ्रता से वहाँ पहुंचा ।।१७।।

आहूतः समरे चैव पुमान् सेनाविकत्थनः । ततो युद्धमतीवासीद् दमस्य च वपुष्मतः ॥१८
रथी च रथिना नागी नागिना हय्यिना हयी । अयुध्यन्त च विप्रर्षे तद्युद्धं तुमुलं ह्यभूत् ॥१९
पश्यतां सर्वदेवानां सिद्धगन्धर्वरक्षसाम् । चकम्पे वसुधा ब्रह्मन् युध्यमाने दमे युधि ॥२०
न गजो न रथी नाश्वस्तस्य बाणसहस्तु यः । ततो दमेन युयुधे सेनाध्यक्षो वपुष्मतः ॥२१
हृदि विव्याध च दम इषुणागाद्यमांतिकम् । तस्मिन्निपतिते सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत् ॥२२
स स्वामिनं ततः प्राह दमः शत्रुंदमस्तथा। क्व यासि दुष्टपितरं घातयित्वा तपस्विनम् ॥२३
अशस्त्रं च तपस्यन्तं क्षत्रियोऽसि निवर्तताम् । ततो निवृत्य स दमं योधयामास सानुजः ॥२४
सपुत्रः सहसम्बन्धिबान्धवैर्युयुधे रथी । ततः शरासनान् मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततो दिशः ॥२५
दमं च सरथं चाशु शरजालैरपूरयत् । ततः पितृवधोत्थेन कोपेन स दमस्तथा ॥२६
चिच्छेद ताञ्छरांस्तेषां विव्याधान्यैश्च तानपि । एकैकेन बाणेन सप्तपुत्रांस्तथा द्विज ॥२७
सम्बन्धिबांधवान् मित्रान्निनाय यम सादनम् । वपुष्मान् स रथी क्रोधान्निहतात्मजबान्धवः ॥२८
युयुधे च स तेनाजौ शरैराशीविषोपमैः । चिच्छेद तस्य तान् बाणान् स दमश्च महामुने ॥२९

और युद्ध में उसे ललकारा जो सेना के आगे डींग मार रहा था। इसके बाद दम का और वपुष्मान् का घोर युद्ध हुआ ॥१८॥

हे विप्रर्षे ! तब रथी से रथी, हाथी सवार से हाथी सवार, और अश्वारोही से अश्वारोही युद्ध करने लगे। इस प्रकार सभी देवता, सिद्ध, गन्धर्व और राक्षसों के देखते हुए घोर युद्ध हुआ। हे ब्रह्मन् ! संग्राम स्थल में दम के युद्ध करने पर पृथ्वी काँपने लगी ॥१९-२०॥

न तो हाथी, न रथी, और न अश्व ही उसके बाणों को सहन कर पा रहे थे। उसके बाद दम ने वपुष्मान् के सेनाध्यक्ष से युद्ध किया ॥२१॥

उसके बाद दम ने बाणों से उसका हृदय बींध दिया और वह यमराज के पास चला गया। उस सेनापति के गिर जाने पर वपुष्मान् की सेना भागने लगी ॥२२॥

तत्पश्चात् शत्रुओं का दमन करने वाले दम ने (सेना के) स्वामी से कहा—रे दुष्ट ! तपस्वी, निःशस्त्र एवं तप करते हुए, पिता को मारकर कहाँ जा रहा है? यदि क्षत्रिय है तो लौट आ। तब अनुजों, बन्धुबान्धवों एवं पुत्रों तथा सम्बन्धियों सहित उस रथी (रथारूढ़) वपुष्मान् ने लौट कर दम के साथ युद्ध किया। तब धनुषों से छोड़े गये बाणों से समस्त दिशाएं व्याप्त हो गयीं ॥२३-२५॥

तब उसने अपने बाणों के जाल से दम को रथ एवं अश्व सहित ढक दिया। अपने पिता के वध से उत्पन्न क्रोध से उत्तेजित होकर दम ने उसके सब बाणों को काट डाला तथा अपने दूसरे बाणों से उन सब को बींध डाला। हे द्विज ! फिर एक-एक बाण से उसके सात पुत्र, सम्बन्धी, बन्धु और मित्रों को यमलोक में पहुंचा दिया। तब अपने पुत्र और बन्धु-बन्धवों के मारे जाने पर रथारूढ़ वपुष्मान् क्रोधपूर्वक उस युद्ध में, ॥२६-२८॥

नागों के समान बाणों से युद्ध करने लगा। किन्तु हे महामुने ! दम ने उसके उन सब बाणों को भी काट डाला ॥२९॥

युयुधाते च संरब्धौ परस्परजयैषिणौ । परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषौ त्वरा ।।३०
गृहीत खड्गावुत्तीर्य चिक्रीडाते महाबलौ । दमः क्षणं नृपं ध्यात्वा पितरं निहतं वने ।।३१
केशेष्वाकृष्य चाक्रम्य निपात्य धरणीतले । शिरोधरायां पादेन भुजमुद्यम्य चाब्रवीत् ।।३२
पश्यन्तु देवताः सर्वा मानुषाः पन्नगाः खगाः । पाट्यमानं च हृदयं क्षत्रबन्धोर्वपुष्मतः ।।३३
एवमुक्त्वा स च दमो हृदयं च व्यदारयत् । पातुकामश्च स सुरैः क्षतजेन निवारितः ।।३४
ततश्चकार तातस्य रक्तेनैवोदकक्रियाम् । आनृण्यं प्राप्य स पितुः पुनः प्रायात्स्वमन्दिरम् ।।३५
वपुष्मतश्च मांसेन पिण्डदानं चकार ह । ब्राह्मणान् भोजयामास रक्षः कुलसमुद्भवान् ।।३६
एवं विधा हि राजानो बभूवुः सूर्यवंशजाः । अन्येऽपि सुधियः शूरा यज्विनो धर्मकोविदाः ।।३७
वेदान्तपारङ्गांस्तांश्च न संख्यातुमिहोत्सहे । एतेषां चरितं श्रुत्वा नरः पापैः प्रमुच्यते ।।३८

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे दमचरिते वपुष्मद्वधोनाम त्रयींत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

इस प्रकार युद्ध-भूमि में परस्पर विजय के अभिलाषी वे दोनों क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे और परस्पर बाणों के आघात से टूटे हुए धनुष वाले वे दोनों महाबली शीघ्र ही खड्ग लेकर मैदान में उतर कर युद्ध करने लगे। तब वन में मारे गये पिता का क्षण भर ध्यान करके दम ने, ।।३०-३१।।

उस पर आक्रमण करके केशों से खींचकर पृथ्वी तल पर गिराकर एवं उसकी गर्दन पर पैर रखकर भुजा उठाकर इस प्रकार कहा ।।३२।।

सभी देवता, मनुष्य, पन्नग एवं सिद्ध तथा पक्षी इस क्षत्रिय के हृदय को फाड़े जाते हुए अवलोकन करें ।।३३।।

यह कहकर दम ने उसका हृदय फाड़ डाला और उसका रक्त पीने के इच्छुक उसको देवताओं ने रोका ।।३४।।

उसके बाद उसने उस वपुष्मान् के रक्त से अपने पिता का उदकदान एवं मांस से पिण्डदान दिया। इस प्रकार अपने पिता के ऋण से मुक्त होकर वह अपने घर गया तथा (वहाँ) राक्षस कुल में उत्पन्न ब्राह्मणों को (उसके मांस से) भोजन कराया ।।३५-३६।।

अतः सूर्य वंश में उत्पन्न राजा इस प्रकार के हुए और दूसरे बुद्धिमान्, शूरवीर, यज्ञ करने वाले, धर्मात्मा, ज्ञानी तथा वेदान्त में पारंगत राजा हुए, जिनकी संख्या का भी कथन करना कठिन है। इन सबके चरित को सुनकर मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है ।।३७-३८।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण में दम चरित में वपुष्मान् वध नामक एक सौ तेंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।।

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

पक्षिण ऊचुः—

एवमुक्त्वा जैमिनेयं मार्कण्डेयो महामुनिः। विसृज्य क्रोष्टुकिमुनिं चक्रे माध्याह्निकीं क्रियाम् ॥१
अस्माभिश्च श्रुतं तस्माद्यत्ते प्रोक्तं महामुने । अनादिसिद्धमेतद्धि पुरा प्रोक्तं स्वयंभुवा ॥२
मार्कण्डेयाय मुनये यत्तेऽस्माभिरुदाहृतम् । पुण्यं पवित्रमायुष्यं धर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥३
पठतां शृण्वतां सद्यः सर्वपापप्रमोचनम् । आदावेव कृता ये च प्रश्नाश्चत्वार एव हि ॥४
पितुः पुत्रस्य संवादस्तथा सृष्टिः स्वयंभुवः । तथा मनूनां स्थितयो राज्ञां च चरितं मुने ॥५
अस्माभिरेतत्ते प्रोक्तं किमद्य श्रोतुमिच्छसि । एतान्सर्वान्नरः श्रुत्वा पठते वा सभासु च ॥६
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मणोऽन्ते लयं व्रजेत् । अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितामहः ॥७
तेषां तु सप्तमं ज्ञेयं मार्कण्डेयं सुविश्रुतम् । ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥८
तथाऽन्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् । आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ॥९
दशमं ब्रह्मवैवर्त्तं लैंगमेकादशं स्मृतम् । वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दमत्र त्रयोदशम् ॥१०
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा । मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम् ॥११

पक्षियों ने कहा—

हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डेय ने इस प्रकार कह कर क्रोष्टुकि मुनि को विदा करके (अपनी) मध्याह्न की क्रियाएँ सम्पन्न कीं ॥१॥

हे महामुने ! जो कुछ तुमसे कहा वह सब हमने भी उनसे ही सुन लिया है। अनादि और सिद्ध जो यह मार्कण्डेय पुराण अभी हमने तुमको कहा, वह प्राचीन काल में स्वयं ब्रह्मा जी ने मार्कण्डेय मुनि से कहा था। यह पुराण पुण्य युक्त, पवित्र, आयुष्य, धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि करने वाला है ॥२–३॥

इसके पढ़ने वाले और सुनने वाले की शीघ्र ही पापों से मुक्ति हो जाती है। प्रारम्भ में ही आपने जो चार प्रश्न किये थे ॥४॥

हे मुने ! हमने पिता-पुत्र-संवाद, स्वायंभुव की सृष्टि, मनुओं की उत्पत्ति (स्थिति) और राजाओं के चरित; ॥५॥

(उन प्रश्नों के उत्तर में ही) तुमसे कह दिये हैं। अब आज और क्या सुनना चाहते हैं ? इस सबको सुनकर अथवा सभा-स्थल में पढ़ने पर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है ॥६–७॥

पितामह ब्रह्मा ने जिन अट्ठारह पुराणों को कहा, उनमें इस प्रसिद्ध मार्कण्डेय पुराण को सातवां जानना चाहिए। (इससे पहले) ब्रह्म, पद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय और सातवां मार्कण्डेय हैं। अग्नि पुराण आठवां और भविष्य को नवां कहा गया है ॥८–९॥

दसवां ब्रह्मवैवर्त्त और लिंग को ग्यारहवां, वाराह को बारहवां तथा स्कन्द पुराण को तेरहवां पुराण कहा गया है ॥१०॥

चौदहवां वामन और कूर्म पन्द्रहवां पुराण है । मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड पुराण उसके बाद आते हैं ॥११॥

अष्टादशपुराणानां नामधेयानि यः पठेत् । त्रिसन्ध्यं जपते नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१२
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥१३
चतुः प्रश्नसमोपेतं पुराणं ह्येतदुत्तमम् । श्रुत्वा पुनश्च ते पापं कल्पकोटिशतैः कृतम् ॥१४
ब्रह्महत्यादिपापानि यान्यन्यान्यशुभानि च । तानि सर्वाणि नश्यन्ति तृणं वातहतं यथा ॥१५
पुष्करे दानजं पुण्यं श्रवणादस्य जायते । सर्ववेदाधिकफलं समाप्त्या चाधिगच्छति ॥१६
यः श्रावयेत् पूजयेत्तं यथा देवं पितामहम् । गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥१७
यथाशक्त्या च दातव्यं नृपैर्ग्रामादिवाहनम् । एतत् पुराणमखिलं वेदार्थैरूपबृंहितम् ।
धर्मशास्त्रैकनिलयं श्रुत्वा सर्वार्थमाप्नुयात् ॥१८
श्रुत्वा पुराणमखिलं व्यासं संपूजयेद् बुधः । धर्मार्थकाममोक्षाणां यथोक्तफलहेतवे ॥१९
दद्याद् गां गुरवे स्वर्णवस्त्रालंकारसंयुताम् । श्रवणस्य फलावाप्त्यै दानैः संतोषयेद् गुरुम् ॥२०
अपूज्य पाठकर्त्तारं श्लोकमेकं शृणोति यः । नासौ पुण्यमवाप्नोति शास्त्रचोरः स्मृतो हि सः ॥२१
न तस्य देवाः प्रीणन्ति पितरौ नैव पुत्रकान् । दत्तं श्राद्धं तथेच्छन्ति तीर्थस्नानफलं न च ॥२२

इन अठारहों पुराणों के नामों को जो व्यक्ति पढ़ता है और तीनों संध्याओं में इनका जप करता है, उसे अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ॥१२॥

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित ये पुराण के पांच लक्षण हैं ॥१३॥

चार प्रश्नों से युक्त यह उत्तम पुराण है । इसको सुनकर मनुष्य सौ करोड़ कल्प के किये गये पापों से मुक्त हो जाता है ॥१४॥

और ब्रह्म हत्या आदि जो दूसरे अशुभ पाप हैं, वे सब (इसके सुनने से) प्रचण्ड वायु से हरण किये गये तिनके के समान नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

इसके सुनने से पुष्कर तीर्थ में दान देने से उत्पन्न पुण्य मिलता है । इसकी सम्पूर्णता में वेद पाठ की सम्पूर्णता के समान फल की उपलब्धि होती है ॥१६॥

जो इस पुराण को सुनाए उन ब्राह्मणों की देव, पितामह के समान गन्ध, पुष्प, वस्त्रादि से तथा तर्पण आदि से पूजा करनी चाहिए ॥१७॥

एवं (इसके सुनाने वाले को) राजा यथाशक्ति ग्राम तथा वाहनादि का दान करें । यह पुराण सम्पूर्ण वेदार्थों से युक्त धर्मशास्त्रों का एकमात्र स्थान है । इसे सुनकर मनुष्य को चारों अर्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) की प्राप्ति होती है ॥१८॥

बुद्धिमान् व्यक्ति, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपर्युक्त फल की प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण पुराण को सुनकर व्यास का पूजन करे ॥१९॥

और वस्त्र, अलंकारादि से युक्त गौ गुरु को प्रदान करे । इस प्रकार सुनने के फल की प्राप्ति के लिए विविध दानों से गुरु को सन्तुष्ट करे ॥२०॥

जो व्यक्ति पाठक की पूजा के बिना इसका एक भी श्लोक सुनता है उसे पुण्य की प्राप्ति नहीं होती और (ज्ञानी जन) उसे शास्त्र चोर कहते हैं ॥२१॥

उससे न तो देवता और न पितर ही प्रसन्न होते हैं और उन्हें पुत्र प्राप्ति भी नहीं होती । पितर उनके दिये हुए श्राद्ध को ग्रहण नहीं करते और उसको तीर्थ स्नान के फल की भी प्राप्ति नहीं होती ॥२२॥

लभते शास्त्रचोरश्च निन्दां सज्जनसंसदि । अवज्ञया न श्रोतव्यं शास्त्रमेतद् विचक्षणैः ।।२३
पठ्यमाने त्ववज्ञाते साधुभिः शास्त्र उत्तमे । मूको भवति जन्मानि सप्त मूर्खः प्रजायते ।।२४
श्रुत्वा तत्पूजयेद्यस्ते पुराणं सप्तमं पुनः । सर्वपापनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम् ।।२५
पूतो याति न संदेहो विष्णुलोकं सनातनम् । च्युतस्ततः पुनर्नैव स भविष्यति मानवः ।।२६
पुराणश्रवणादेव परं योगमवाप्नुयात् । नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके ।।२७
गुरुद्विजातिनिन्दाय तथा भग्नव्रताय च । मातापित्रोर्निन्दकाय वेदशास्त्रादिनिन्दिने ।।२८
भिन्नमर्यादिने चैव तथा वै ज्ञातिकोपिने । एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि ।।२९
लोभाद् वा यदि वा मोहाद् भयाद्वापि विशेषतः । पठेद् वा पाठयेद् वापि स गच्छेन्नरकं ध्रुवम् ।।३०

मार्कण्डेय उवाच —

एतत्सर्वमुपाख्यानं धर्म्यं स्वर्गापवर्गदम् । यः शृणोति पठेद्वापि सिद्धं तस्य समीहितम् ।।३१
आधिव्याधिजदुःखेन कदाचिन्नाभियुज्यते । ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ।।३२

और शास्त्र चोर सज्जनों की सभा में निन्दित होता है। इसलिए बुद्धिमानों को इस शास्त्र को अवज्ञा-पूर्वक श्रवण नहीं करना चाहिए ।।२३।।

जो व्यक्ति सज्जनों द्वारा इस उत्तम शास्त्र के पढ़ने पर उनकी अवज्ञा करते हैं, वे कई जन्मों तक मूक और सात जन्मों तक मूर्ख होते हैं ।।२४।।

लेकिन जो (व्यक्ति) इस सप्तम पुराण को श्रवण करके पूजा करता है, वह सब पापों से छूटकर अपने कुल को पवित्र करता है ।।२५।।

और वह मनुष्य पवित्र होकर सनातन विष्णु लोक को जाता है, और फिर वहाँ से लौट कर (मृत्यु लोक में) नहीं आता है ; इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है ।।२६।।

पुराणों के सुनने मात्र से ही परम योग की प्राप्ति होती है। यह पुराण नास्तिक, पापी (अधर्मी) वेदनिन्दक, गुरु और ब्राह्मणनिन्दक, भग्न हुए व्रत वाले, माता-पिता की निन्दा करने वाले, एवं वेद शास्त्र आदि के निन्दक को नहीं देना चाहिए ।।२७-२८।।

एवं मर्यादा तोड़ने वाले, जाति को दूषित करने वाले और प्राण कण्ठगत होने पर भी यह पुराण उन-उन को नहीं देना चाहिए ।।२९।।

इन मनुष्यों में जो कोई लोभ से अथवा मोह या भय के कारण अथवा अन्य किसी विशेष कारण वश इस पुराण को पढ़ता अथवा पढ़ाता है, वह निश्चय ही नरक में जाता है ।।३०।।

मार्कण्डेय बोले —

यह सम्पूर्ण आख्यान धर्म, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करने वाला है। जो (व्यक्ति) इसका श्रवण अथवा पाठ करता है उसकी सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं ।।३१।।

उसे कभी आधि और व्याधि से उत्पन्न दुःख की प्राप्ति नहीं होती है और वह ब्रह्म-हत्या आदि के पाप से भी छूट जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है ।।३२।।

सन्तः स्वजनमित्राणि भवन्ति हितबुद्धयः । नारयः संभविष्यन्ति दस्यवो वा कदाचन ।।३३
सदर्थोमिष्टभोगी च दुर्भिक्षैर्नावसीदति । परदारपरद्रव्यपरहिंसादिकिल्बिषैः ।।३४
मुच्यतेऽनेकदुःखेभ्यो नित्यं चैव द्विजोत्तम । ऋद्धिर्वृद्धिः स्मृतिः शान्तिः श्रीः पुष्टिस्तुष्टिरेव च ।।
नित्यं तस्य भवेद् विप्र यः शृणोति कथामिमाम् ।।३५

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलं शृण्वन्न शोच्यः पुमा—
न्योवा सम्यगुदीरयेद् रसमयं शोच्यो न सोऽपि द्विज ।
योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितः स्वर्गादि लोकेप्यसौ
शक्राद्यैश्च सुरादिभिः परिवृतः स्वर्गे सदा पूज्यते ।।३६

पुराणमेतच्छ्रुत्वा च ज्ञानविज्ञानसंयुतम् । विमानवरमारुह्य स्वर्गलोके महीयते ।।३७
पुराणाक्षरसंख्या च प्रख्याता तत्त्वबुद्धिना। श्लोकानां षट्सहस्राणि तथा चाष्टशतानि च ।।३८
श्लोकास्तत्र नवाशीतिरेकादश समाहिताः । कथिता मुनिना पूर्वं मार्कण्डेयेन धीमता ।।३९

जैमिनिरुवाच—

भारते नाभवद्यन्मे संशयस्फोटनं द्विजाः । तद्भवद्भिः कृतं यन्न कश्चिदद्य करिष्यति ।।४०

सज्जन, स्वजन और मित्र उसके हितेच्छु हो जाते है और उसका कोई शत्रु भी नहीं होता तथा न ही उसको कभी चोरों की बाधा होती है ।।३३।।

श्रेष्ठ धन युक्त, मिष्ठान्नभोजी वह व्यक्ति कभी दुर्भिक्षः से पीड़ित नहीं होता है, और हे द्विजोत्तम ! वह परनारी, परधन और परहिंसा आदि पापों से और दूसरे अनेक प्रकार के दुःखों से सदैव के लिए छूट जाता है ।।३४।।

हे विप्र ! जो व्यक्ति इस (पुराण) की कथा का नित्य श्रवण करता है उसको सदैव ऋद्धि, वृद्धि, स्मृति, शान्ति, श्री, पुष्टि, तुष्टि आदि की प्राप्ति होती है ।।३५।।

इस सम्पूर्ण मार्कण्डेय पुराण का श्रवण करने वाला व्यक्ति शोचनीय नहीं होता और हे द्विज ! जो इस पुराण का आनन्दातिरेक से भली प्रकार पाठ करता है, वह भी कभी शोचनीय नही होता । वे व्यक्ति योग, ज्ञान और विशुद्ध सिद्धि के सहित स्वर्गादि लोकों में, इन्द्रादि देवताओं से घिरे हुए, सदैव पूजे जाते हैं ।।३६।।

ज्ञान-विज्ञान से युक्त इस पुराण को सुनकर (मनुष्य) श्रेष्ठ विमान पर चढ़कर स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठा पाते हैं ।।३७।।

तत्त्व बुद्धि विद्वानों ने पुराणों की अक्षर संख्या और श्लोक संख्या का भी उल्लेख किया है। पहले सूक्ष्मदर्शी महामुनि मार्कण्डेय ने इस पुराण में ६ हजार आठ.सौ निन्यानवें श्लोक कहे ।।३८-३९।।

जैमिनी बोले—

हे द्विजो ! महाभारत में मुझको जो संशय था, जिसको आज तक कोई दूर नहीं कर सका है, वह आपने दूर कर दिया ।।४०।।

यूयं दीर्घायुषः स्यात प्रज्ञाबुद्धिविशारदाः । सांख्ययोगे तथा चास्तु बुद्धिरव्यभिचारिणी ।।४१
पितृशापकृताद् दुःखाद् दौर्मनस्यं व्यपेतु वः । एतावदुक्त्वा वचनं जगाम स्वाश्रमं मुनिः ।।
चिन्तयन् परमोदारं पक्षिणां वाक्यमीरितम् ।।४२

इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे एतत्पुराणमाहात्म्यश्रवणपठनफलं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

।। ॐ ।। सम्पूर्णं मार्कण्डेयमहापुराणम् ।। ॐ ।।

हे प्रज्ञबुद्धिविशारदों ! आप दीर्घायु होवें और सांख्य योग में आपकी वृद्धि निर्मल एवं श्रेष्ठ गति वाली होवे ।।४१।।

पिता के शाप से जनित दुःख से जो आपका दौर्मनस्य है, वह दूर हो जाए । बस इतनी बात कहकर और पक्षियों के कहे गये उदार वचनों पर विचार करते हुए मुनि अपने आश्रम को चले गये ।।४२।।

इस प्रकार श्री मार्कण्डेय महापुराण श्रवण-पठन-फल और माहात्म्य नामक एक सौ चौतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।।

श्री मार्कण्डेय महापुराण का हिन्दी अनुवाद डा० धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, एम० ए०, पी-एच० डी० भूतपूर्व संस्कृत-विभागाध्यक्ष डी० ए० वी० महाविद्यालय देहरादून के द्वारा सम्पन्न हुआ ।।

।। ॐ ।। श्री मार्कण्डेय-महापुराण समाप्त हुआ ।। ॐ ।।

परिशिष्ट

मार्कण्डेय महापुराण में आये व्यक्तिवाची संज्ञा शब्दों की अनुक्रमणी

(अ)

(आ)

(इ)

(ई)

(उ)

(ऊ)

(ऋ)

(ए)

(ऐ)

(औ)

(क)

(क्ष)

(ख)

(ग)

(घ)

(च)

(छ)

(ज)

(त)

(द)

(प)

(फ)

(ब)

(भ).

(म)

(श)

(स)

(ह)

卐